वीरसेवा-मन्दिर सस्ती-ग्रन्थमालाका छठा पुष्प

स्वामिसमन्तभद्राचार्य रचित

श्रीरत्नकरण्डश्रावकाचार

[सटीक]

टीकाकार

पं० सदासुखदासजी काशलीवाल

(जयपुर निवासी)

प्रकाशक

मन्त्री—वीरसेवा-मन्दिर सस्ती-ग्रन्थमाला

दरियागंज, देहली।

मुद्रक

अजितकुमार जैन शास्त्री

अकलङ्क प्रेस सदरबाजार,

देहली।

प्रथमावृत्ति तीन हजार — वीर नि० सं० २४७६ — मूल्य लागतमात्र तीन रुपया

ग्रंथमाला का परिचय

इस वर्ष भारतके सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक पुरुष श्री १०५ पूज्य क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी (न्यायाचार्य) के देहली चतुर्मास के अवसर पर उनके सत्परामर्श तथा १०५ क्षुल्लक चिदानंद जी महाराजकी प्रेरणासे इस ग्रन्थमालाकी स्थापना हुई।

पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजीको स्वाध्याय तथा ग्रन्थप्रचार का विशेष चाव है तथा आपकी भावना है कि उपयोगी धार्मिक ग्रन्थोंका सैट कमसे कम मूल्यमें प्रत्येक घरमे पहुंच जाय। जिससे सब लोग स्वाध्याय कर जैनधर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकें वर्तमानमे यही जैन संस्कृति रक्षा का एक मात्र सुलभ साधन हो सकता है इसके लिये आपने पुरुष, स्त्री और बालक सबके योग्य पुस्तकोंका चुनाव कर ८ ग्रन्थोंका एक सैट निश्चित किया इन ग्रन्थोंकी छपाईका खर्च १५) होता है पर पूरा सैट १२) में देने का संकल्प किया गया। इसके लिये कुछ धार्मिक सज्जनों ने सहर्ष सहायता देना स्वीकार किया और यह कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। आप चाहते थे कि सभी ग्रन्थ जल्दी छपकर आपके देहली जानेसे पहिले तैयार हो जावें और लोगों तक पहुँच जावे इसलिये कई प्रेसों मे १-१ ग्रन्थ देकर ग्रन्थोंकी छपाई का कार्य प्रारंभ कराया गया परन्तु काममे समय तो लगता ही है। अस्तु।

अब तक छहढाला सरल जैनधर्म, श्रावकधर्म-संग्रह तथा

सुखकी कुंजी ये पांच ग्रन्थ तैयार हो चुके हैं रत्नकरण्डश्रावकाचार आपके हाथोंमें है मोक्षमार्ग प्रकाशक छपकर पूरा होनेको है। तथा आठवां ग्रन्थ पद्मपुराण का कार्य अभी बाकी है जिसकी छपाई की व्यवस्था होने वाली है।

ग्रन्थमाला के संरक्षक और सहायक

संरक्षक—

श्री सेठ लालचन्दजी जैन देहली	२५००)
ला० राजकृष्णजी प्रेमचन्द देहली	१०००)
मातेश्वरी ला० अजितप्रसादजी	१०००)
ला० त्रिलोकचद जी मालिक फर्म—कूडियामल बनारसीदासजी देहली	१०००)
ला० विश्वंभरदास अजितप्रसादजी देहली	१०००)
मातेश्वरी ला० शीतलप्रसादजी नई देहली	१०००)

विशेष सहायक—

ला० रतनलालजी मादीपुरिया देहली	५००)
श्रीमती सुशीलादेवीजी धर्मपत्नी रा. ब. ला० सुल्तानसिंहजी देहली	५००)

सहायक—

ला० फिरोजीलालजी देहली	३०१)
ला० छुट्टनलालजी मैदावाले देहली	२५१)

सुखकी कुंजी ये पांच ग्रन्थ तैयार हो चुके हैं रत्नकरण्डश्रावकाचार आपके हाथोंमें है मोक्षमार्ग प्रकाशक छपकर पूरा होनेको है। तथा आठवां ग्रन्थ पद्मपुराण का कार्य अभी बाकी है जिसकी छपाई की व्यवस्था होने वाली है।

ग्रन्थमाला के संरक्षक और सहायक

संरक्षक—

श्री सेठ लालचन्दजी जैन देहली २४००)
ला० राजकृष्णजी प्रेमचन्द देहली १०००)
मातेश्वरी ला० अजितप्रसादजी १०००)
ला० त्रिलोकचद जी
मालिक फर्म–कूडियामल बनारसीदासजी देहली १०००)
ला० विश्वंभरदास अजितप्रसादजी देहली १०००)
मातेश्वरी ला० शीतलप्रसादजी नई देहली १०००)

विशेष सहायक—

ला० रतनलालजी मादीपुरिया देहली ५००)
श्रीमती सुशीलादेवीजी
धर्मपत्नी रा. ब. ला० सुल्तानसिंहजी देहली ५००)

सहायक—

ला० फिरोजीलालजी देहली ३०१)
ला० छुट्टनलालजी मैदावाले देहली २५१)

ग्रंथमाला का परिचय

इस वर्ष भारतके सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक पुरुष श्री १०५ पूज्य क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी (न्यायाचार्य) के देहली चतुर्मास के अवसर पर उनके सत्परामर्श तथा १०५ क्षुल्लक चिदानंद जी महाराजकी प्रेरणासे इस ग्रन्थमालाकी स्थापना हुई।

पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजीको स्वाध्याय तथा ग्रन्थप्रचार का विशेष चाव है तथा आपकी भावना है कि उपयोगी धार्मिक ग्रन्थोंका सैट कमसे कम मूल्यमें प्रत्येक घरमे पहुंच जाय। जिससे सब लोग स्वाध्याय कर जैनधर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकें वर्तमानमे यही जैन संस्कृति रक्षा का एक मात्र सुलभ साधन हो सकता है इसके लिये आपने पुरुष, स्त्री और बालक सबके योग्य पुस्तकोंका चुनाव कर ८ ग्रन्थोंका एक सैट निश्चित किया इन ग्रन्थोंकी छपाईका खर्च १५) होता है पर पूरा सैट १२) में देने का संकल्प किया गया। इसके लिये कुछ धार्मिक सज्जनों ने सहर्ष सहायता देना स्वीकार किया और यह कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। आप चाहते थे कि सभी ग्रन्थ जल्दी छपकर आपके देहली जानेसे पहिले तैयार हो जावें और लोगों तक पहुँच जावें इसलिये कई प्रेसों मे १-१ ग्रन्थ देकर ग्रन्थोंकी छपाई का कार्य प्रारंभ कराया गया परन्तु काममें समय तो लगता ही है। अस्तु।

अब तक छहढाला सरल जैनधर्म, श्रावकधर्म-संग्रह तथा

ग्रंथमाला का परिचय

इस वर्ष भारतके सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक पुरुष श्री १०५ पूज्य क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी (न्यायाचार्य) के देहली चतुर्मास के अवसर पर उनके सत्परामर्श तथा १०५ क्षुल्लक चिदानंद जी महाराजकी प्रेरणासे इस ग्रन्थमालाकी स्थापना हुई।

पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजीको स्वाध्याय तथा ग्रन्थप्रचार का विशेष चाव है तथा आपकी भावना है कि उपयोगी धार्मिक ग्रन्थोंका सैट कमसे कम मूल्यमें प्रत्येक घरमें पहुंच जाय। जिससे सब लोग स्वाध्याय कर जैनधर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकें वर्तमानमें यही जैन संस्कृति रक्षा का एक मात्र सुलभ साधन हो सकता है इसके लिये आपने पुरुष, स्त्री और बालक सबके योग्य पुस्तकोंका चुनाव कर ८ ग्रन्थोंका एक सैट निश्चित किया इन ग्रन्थोंकी छपाईका खर्च १५) होता है पर पूरा सैट १२) में देने का संकल्प किया गया। इसके लिये कुछ धार्मिक सज्जनों ने सहर्ष सहायता देना स्वीकार किया और यह कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। आप चाहते थे कि सभी ग्रन्थ जल्दी छपकर आपके देहली जानेसे पहिले तैयार हो जावें और लोगों तक पहुँच जावे इसलिये कई प्रेसों मे १-१ ग्रन्थ देकर ग्रन्थोंकी छपाई का कार्य प्रारंभ कराया गया परन्तु काममें समय तो लगता ही है। अस्तु।

अब तक छहढाला सरल जैनधर्म, श्रावकधर्म-संग्रह तथा

सुखकी कुंजी ये पांच ग्रन्थ तैयार हो चुके हैं रत्नकरण्डश्रावकाचार आपके हाथोंमें है मोक्षमार्ग प्रकाशक छपकर पूरा होनेको है। तथा आठवां ग्रन्थ पद्मपुराण का कार्य अभी बाकी है जिसकी छपाई की व्यवस्था होने वाली है।

ग्रन्थमाला के संरक्षक और सहायक

संरक्षक—

श्री सेठ लालचन्दजी जैन देहली	२५००)
ला० राजकृष्णजी प्रेमचन्द देहली	१०००)
मातेश्वरी ला० अजितप्रसादजी	१०००)
ला० त्रिलोकचद जी मालिक फर्म—कूडियामल बनारसीदासजी देहली	१०००)
ला० विश्वंभरदास अजितप्रसादजी देहली	१०००)
मातेश्वरी ला० शीतलप्रसादजी नई देहली	१०००)

विशेष सहायक—

ला० रतनलालजी मादीपुरिया देहली	५००)
श्रीमती सुशीलादेवीजी धर्मपत्नी रा. ब. ला० सुल्तानसिंहजी देहली	५००)

सहायक—

ला० फिरोजीलालजी देहली	३०१)
ला० छुट्टनलालजी मैदावाले देहली	२५१)

ला० मनोहरलाल जी दरियागंज, देहली	२५०)
रायसाहब ला० उल्फतराय जी	२०१)

इनके अलावा अन्य कई महानुभावोंने इससे कम रकम देकर ग्रन्थमालाको सहायता पहुँचाई है मैं सभी दानी सज्जनों-को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। वर्तमानमें कागज, छपाई आदिमें बहुत खर्च पड़ता है तथा विना सहायताके ग्रन्थोंको इतने सस्ते मूल्यमें दे सकना कठिन है। अतः धार्मिक सज्जनोंसे प्रार्थना है किं अधिकसे अधिक संख्यामें इस ग्रन्थमालाके संरक्षक, विशेष सहायक, सहायक व आजीवन-सदस्य बनकर या फुटकर सहायता देकर जिनवाणी प्रचारके इस कार्य को सुलभ बनावें।

नियमानुसार १००) पर ग्रन्थमाला से प्रकाशित एक सैट के हिसाब से दानी सज्जनोंको ग्रन्थमाला के ग्रन्थ भी भेंट किये जाते है।

अंतमे समाजसे प्रार्थना है कि इन ग्रन्थोंका घर २ प्रचार कर पूज्य क्षुल्लकजी की भावना को सफल बनावें।

ता० १२ मार्च १९५०

प्रेमचन्द जैन,
मंत्री—सस्ती ग्रन्थमाला,
दरयागंज, देहली।

श्री १०५ पूज्य क्षुल्लक चिदानन्द जी महाराज
संस्थापक—वीर-सेवा-मन्दिर, सस्ती ग्रन्थमाला।

प्रकाशकीय वक्तव्य

संसार विषम समस्या रूप है। यहां सभी प्राणी दुःखी और संतप्त हैं। सर्वथा सुखी कोई भी दृष्टिगोचर नहीं होता और न हो ही सकता है। जब तक प्राणी इस बात को नही समझता, फंसा रहता है तथा विविध-योनियों में भ्रमण कर दुःख भोगता रहता है। संसार की इस समस्या को सुलझाना तो दूर पूर्णतया समझना भी आसान नहीं है। विविध धर्मोंनेइस पर विचार किया पर इसको समझने और सुलझाने के स्थान में वे स्वयं ही उलझ गये और स्वमनोनुकूल प्रचारकर लोगों को भी भ्रममें डाल दिया। आत्मा, मोक्ष तथा उसके साधन विषयक विविध मान्यतायें इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। संसार से व्याकुल व्यक्ति इन परस्पर-विरोधी विविध मान्यताओं को देखकर विभ्रान्त सा हो जाता है तथा उसे सत्य मार्ग का दर्शन नहीं हो पाता।

जैनधर्म ने इस समस्या को बड़ी गम्भीरता और वास्तविकता पूर्वक सुलझाया है। वह प्रत्येक प्राणी को चरमोन्नतिका मार्ग बतलाता है और आत्मा को परमात्मा बना देना ही उसका अन्तिम लक्ष्य है। उसके लिये दो धर्म वर्णन किये गये हैं। मुनि-धर्म और श्रावकधर्म। यद्यपि संसार से छूटने के लिये पवित्र मुनिदीक्षा ही एकमात्र मार्ग है परन्तु यदि उसके धारण की शक्ति नहीं हो तो गृहस्थ के व्रत अंगीकार करना चाहिये।

गृहस्थ अपने जीवन में सांसारिक आकांक्षाओं को कम करते हुये चारित्र का अभ्यास बढ़ाता है तथा धीरे धीरे उन्नति करता हुआ मुनिधर्म धारण करने के योग्य बन जाता है। इस प्रकार क्रमशः उन्नति करनेवाले श्रावक के व्रत परिपक्व हो जाते हैं

और वह सफल गृहस्थ जीवन बिताता हुआ जब तक घर में रहता है अपनी उन्नति, साधर्मी जन और निकटवर्ती व्यक्तियोंके चारित्र को भी ऊंचा बनाने में सहायक होता है।

विविध-ग्रन्थोंमें पवित्र गृहस्थधर्म की पर्याप्त प्रशंसा की गई है तथा मुनियोंको पवित्र आहारादि श्रावकों से ही प्राप्त होता है। यदि निर्दोष श्रावकधर्म न रहे तो मुनिधर्म का ह्रास हो जाना भी अवश्यम्भावी है। इस दृष्टि से भी गृहस्थधर्म का महत्व स्पष्ट है।

एक समय था जब लोगों में विशेष धार्मिकता थी तथा जीवन और खानपान शास्त्रानुकूल सात्विक तथा पवित्र था। उस समय जैन मुनि अच्छी संख्या मे सर्वत्र विहार करते रहते थे और उनके द्वारा अनेक प्राणियों का उद्धार होता रहता था। अब समय बदल गया है। इस काल में आत्मामें कल्याण की उच्चभावना उत्पन्न होनी ही कठिन है और यदि किसी को हो भी तो समय को देखते हुये वह ऊंचे व्रत धारण करने में संकोच करता है। इस समय हमें बहुत ही थोड़े मुनिराजों व विशिष्ट त्यागियों के दर्शन हो पाते है और वह भी बड़े भाग्य से। वर्तमान में भारतवर्षमें चारित्रचक्रवर्ती श्री १०८ पूज्य आचार्य शांतिसागर जी महाराज और उनसे, उनके शिष्योंसे तथा अन्य संयमियोंसे दीक्षित हुए अनेक मुनिराज आर्यिकायें ऐलक क्षुल्लक क्षुल्लिकायें तथा ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियां धर्म प्रचार कर रही हैं। उनको भी अपना चारित्र निर्विघ्न पालन करनेमें अनेक कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं। इसमें वर्तमान वातावरण के साथ-साथ श्रावकों के आचार व्यवहार की शिथिलता भी एक प्रधान कारण है। इस प्रकार हमारी शिथिलता हमारे कल्याण के मार्गमें रुकावट बनने

के साथ दूसरों के कल्याण में भी बाधक बन जाती है। यदि हम मुनिमार्ग को चलता हुआ देखने की भावना रखते हैं कि सारे मुनिराजों व त्यागीमंडल का चारित्र प्राचीनकाल जैसा ही हो जोकि होना ही चाहिये तो श्रावकोंको भी वर्तमान भौतिक-वादके चक्कर में विशेष न फसकर अपने चारित्र को आदर्श बनाने की ओर दृष्टि रखनी चाहिये।

प्रस्तुत ग्रन्थ

रत्नकरण्डश्रावकाचार सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्री समन्तभद्र स्वामीकी अनुपम कृति है जिनका समय विक्रमकी दूसरी शताब्दी माना जाता है। यह उपलब्ध श्रावकाचारोंमें सबसे प्राचीन व प्रसिद्ध ग्रन्थ है और अपनी अनेक विशेषताओंके कारण समाजमें घर २ इसका प्रचार है। इस पर लिखी हुई मान्य विद्वद्वर पं० सदासुखदासजीकी यह हिन्दी टीका भी जैन समाज में अत्यन्त प्रचलित है। इसमें प्रत्येक विषयको भली भांति समझाया गया है तथा मूर्तिपूजामण्डन. तीर्थंकर प्रकृतिकी कारण भूत सोलह कारण भावनायें, दश धर्म, बारह अनुप्रेक्षा तथा ध्यान आदि अनेक विषयोंका बहुत ही सरल और सुन्दर विवेचन किया गया है। पवित्र पर्युषण पर्वमें अनेक स्थानों पर दश धर्मोंकी वचनिका इसीमें से की जाती हैं तथा वैसेभी यह टीका अत्यन्त प्रिय रही है और सर्वत्र मन्दिरों व धार्मिक गृहों में इसका स्वाध्याय होता रहता है। पिछले महायुद्धके पश्चात् इसका मिलना अत्यन्त कठिन हो रहा था। इसलिये यह आवश्यक समझा गया कि यह ग्रन्थ कम से कम मूल्यमें लोगोंको प्राप्त हो जिससे लोग आसानीसे लेकर लाभ उठा सकें। इसी

दृष्टिसे यह ग्रन्थ इस ग्रन्थमालाके छठे पुष्पके रूपमें प्रकाशित होकर आपके सम्मुख है।

धन्यवाद

श्री १०५ क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज की सत्प्रेरणा और लगनसे ही ग्रन्थमालाके सब ग्रन्थ इतने शीघ्र समाजके सम्मुख आ सके हैं। इसके लिये इस अवसर पर उनको याद किये बिना नहीं रहा जा सकता।

श्री पं० परमानन्दजी शास्त्रीने इसकी व्यवस्था, संशोधन तथा प्रस्तावना लिखने आदिमें पर्याप्त परिश्रम किया है उन्हें भी धन्यवाद है। अकलंक प्रेसके मालिक श्री पं० अजितकुमारजी शास्त्रीने इसका प्रूफ संशोधन करने तथा ग्रन्थको समय पर इस रूपमें प्रकाशित करनेमें जो बहुमूल्य सहायता दी है उसके लिये ग्रन्थमाला की ओरसे मैं उनका भी आभारी हूं।

अन्तमें अपने पाठकोंसे यह नम्र निवेदन है कि इस ग्रन्थमें गृहस्थोंके कर्तव्यको भली भांति अध्ययन कर उनको कार्यरूपमें परिणत करनेका यत्न करें तथा अपने मानव-जीवनको सफल बनावें।

विनीत—
हीरालाल जैन "कौशल"
(साहित्यरत्न, शास्त्री न्यायतीर्थ)

प्रस्तावना

•••○○○•••

ग्रन्थ और ग्रन्थकार—

भारतीय धर्मोंमें जैनधर्मका सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि उसके अहिंसा और अपरिग्रहवाद आदि सिद्धान्त, उनकी विचार सरणी और अहिंसाके व्यावहारिक सुन्दर एवं सुगमरूपका दर्जे ब दर्जे कथन, जैसा जैनधर्ममें पाया जाता है-वैसा अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। जैनधर्मकी अहिंसाके उद्गमका इतिवृत्त बहुत ही प्राचीन है उसके प्रवर्तक भगवान आदिनाथ अथवा ऋषभदेव-हैं जिन्हें आदि-ब्रह्मा भी कहा जाता है, और जिनके सुपुत्र भरत चक्रवर्तीके नामसे इस देशका नाम 'भारतवर्ष' भूतलमें प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ है। भारतके सभी धर्मोंपर जैनी अहिंसाकी छाप है, इसमें किसीको विवाद नहीं। उसनेही लोकमें समता समानता अथवा विश्वप्रेमकी अनुपम धाराको जन्म दिया है उसका दायरा भी संकुचित नहीं है और न वह केवल मानवोंतक ही सीमित है, किन्तु वह संसारके प्रत्येक प्राणीमें विश्व प्रेमकी भावनाको उद्भावित करता है और उनमें अभिनवमैत्रीका संचारभी करता है तथा अनेकान्तके व्यवहार द्वारा उनके पारस्परिक विरोधोंका निरसन करता हुआ उनके

जीवनमें समन्वय और सहिष्णुताका आदर्श पाठ सिखाता है।

जैनधर्ममें भावोंकी प्रधानता है, उसमें परिणामोंकी अच्छाई बुराईका जो स्वरूप एवं फल बतलाया गया है। और जो जीवनकी उन्नति अवनतिका स्पष्ट प्रतीक है जिसके द्वारा नैतिक एवं आध्यात्मिक रूपसे मानव अपने जीवन-स्तरको ऊंचा उठा सकता है इतना ही नहीं किन्तु उसे मंजिलेमकसूद (पूर्ण विकास) तक पहुँचा सकता है। जीवनके क्रम वार आध्यात्मिक विकासका नामही गुणस्थान है जिनकी संख्या १४ बतलाई गई है और जिनमें आत्माके क्रमिक विकाससे लेकर पूर्ण विकासकी झाँकीका अनुपम चित्रण किया गया है। अर्थात् यह बतलाया गया है कि जीवात्मा किस तरह सांसारिक विषय वासनाओंके जालसे निकलकर आत्मपतनके प्रधान कारण मोहशत्रु पर विजय प्राप्त कर अपना पूर्ण विकास करता है और मोहरूपी समुद्रकी राग द्वेषमयी माया मिथ्या रूप तरंगोंकी चचंल कल्लोलोंके कठिन थपेड़ोंको मारकर कैसे निश्चेष्ट करता हुआ अपने विवेकी स्वभावद्वारा अथवा सत् चित् आनन्द रूप वस्तुतत्त्वके चिन्तन मनन एवं आत्मध्यान द्वारा कर्म शृंखलाओंका उन्मूलन कर आत्माको सर्वतन्त्र स्वतन्त्र परमात्मा बनाता है।

जैनधर्ममें जहाँ भावोंकी प्रधानता है वहां उसके आचार को भी प्रमुख स्थान दिया गया है। उसके सिद्धान्त चार भागों मे विभक्त हैं जिन्हें चार अनुयोग अथवा वेद कहते हैं। चरणानुयोगमें जीवोंके आचारमार्गका विधिवत कथन दिया

हुआ है इस विषयके लिए विवेचक अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं जिनमें गृहस्थ और साधुओंके आचार-विचारका विवेचन पाया जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थभी श्री आचार मार्गसे सम्बन्ध रखता है जिसको श्री पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार साहबके शब्दोंमें सभी जैनधर्मशास्त्र अथवा रत्नकरण्डश्रावकाचार कहते है ग्रन्थमें जैन श्रावकके आचारोंका सांगोपाङ्ग कथन दिया हुआ है यह ग्रन्थ उपलब्ध श्रावकाचारोंमें सबसे प्राचीन है, रचना संक्षिप्त सरल तथा सूत्रात्मक होते हुएभी गम्भीर अर्थकी प्रतिपादक है उसका एक एक वाक्य जंचा तुला है ग्रंथमें लक्षणोंके अर्थकी अभिव्यंजकता, आप्त-आगम और गुरुके लक्षणोंकी परिभाषाएँ तथा रत्नत्रय द्वादश व्रतों और प्रतिमाओंके लक्षण और सम्यग्दर्शनकी महत्ताका स्पष्ट कथन दिया हुआ है साथही जैनतीर्थंकर केवलीकी अनीहित धर्मदेशनाको सुन्दर उदाहरण द्वारा पुष्ट किया गया है और बतलाया है कि संगीतज्ञके हस्त स्पर्शसे बजने वाला मृदङ्ग क्या शिल्पीके कर स्पर्शकी अपेक्षा रखता है, नहीं रखता, उसी तरह वीतराग आप्तकी देशना सार्वजनके हित-के लिए भव्योंके पुण्योदयसे विना किसी इच्छा के होती है।

ग्रन्थमें वाक्य-विन्यास सुन्दर है और वे अनेक उत्तम सक्तियों तथा अनुप्रास आदिकी दिव्यछटासे ओत-प्रोत हैं। विवेचन शैली सरल और श्रुति मधुर है। ग्रंथमें दार्शनिकताका पद पद पर अनुभव होते हुए भी उसमें दार्शनिक ग्रन्थों जैसी जटिलता एवं दुरूहता नहीं है और न विचारोंमें कहीं संकीर्ण-

ताको ही स्थान प्राप्त है, किन्तु सर्वत्र उन्नत एवं उदारविचारों का समर्थन पाया जाता है जो कि जैनधर्मकी आत्माका प्राण है और जो सर्वोदय विश्वतीर्थकी अनुपमधाराका प्रतीक है। ग्रन्थका प्रतिपाद्य विषय चित्ताकर्षक और आचार शास्त्रके दोहनसे निःष्यन्दपीयूषकी वह विमल धारा है जिसका पानकर जीव मिथ्यात्वका वमन करदेता हैं और निर्मलसम्यक्त्वी बनकर अनन्त अविनाशी सुखका पात्र बनजाता है। यहां पाठकोंकी जानकारीके लिये ग्रन्थके कुछ ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किए जाते है जिनसे पाठक ग्रन्थकी महत्ता और सन्दर्भका अनुमान सहजही लगा सकते है।

"सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मार्तंगदेहजम्।
देवा देवं विदुर्भस्म-गूढागारान्तरौजसम्॥

इस पद्यमें सम्यग्दर्शनसहित चाण्डाल पुत्रको देव बतलाया गया है।

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान्
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः॥

इस पद्यमें निर्मोही गृहस्थको मोही मुनिसे श्रेष्ठ बतलाया है।

नांगहीनमलं छेत्तुं दर्शनं जन्मसंततिम्।
नहि मंत्रोऽक्षरन्यूनो निहन्ति विषवेदनां॥

जिस तरह अंगहीन सम्यग्दर्शन जन्म सन्ततिका—संतान परम्पराका—उच्छेदन करनेमें समर्थ नहीं है। उसी तरह अक्षर न्यून मंत्र विष वेदनाको दूर नहीं कर सकता।

यदि पापनिरोधोऽन्यसम्पदा किं प्रयोजनम्
अथ पापास्रवोऽस्त्यन्यसम्पदा किं प्रयोजनम् ॥

यदि पापास्रव–पापका आना—रुक गया है तो अन्य सम्पदासे क्या प्रयोजन है ? और यदि पापास्रव जारी है तब अन्य सम्पदासे क्या प्रयोजन है।

अनपेक्षितार्थवृत्तिःकः पुरुषः सेवते नृपतीन् ।"

अनीहितअर्थवृत्ति—धनेच्छासे रहित—कौन पुरुष राजा की सेवा करता है।

इन उद्धरणोंका ध्यानसे समीक्षण करने पर पाठक ग्रन्थकारकी सर्वतो-मुखी प्रतिभाका और वस्तुतत्त्व विवेचनकी गंभीर एवं सुगम और सुन्दर सरणीका सहज ही आभास पा सकेंगे।

इस ग्रंथरत्नके कर्ता प्रतिभा-सम्पन्न विद्वान कविकुलकमलदिवाकर, गमक, वाग्मी, वादी, आचार्य, तर्क-शिरोमणि, और महान् योगी थे। आपमें वाद करनेकी अद्भुत शक्ति थी। आपकी आत्मा भस्माच्छादित अंगार सदृश अन्तर्ज्वाज्वल्यमान सम्यग्दर्शनरूप अनुपम ज्योतिसे उद्दीपित थी। आपका व्यक्तित्व महान और प्रज्ञामें असाधारणता थी। आप क्षत्रिय राजपुत्र थे और क्षात्र तेज आपकी रग-रगमें समाया हुआ था आपका बाल्यकालीन नाम शान्ति वर्मा था[1]। उन्होंने सांसारिक

[1] आचार्य समन्तभद्रके जीवन परिचयके लिए श्री पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार द्वारा लिखा हुआ स्वामी समन्तभद्र नामक इतिहास ग्रन्थ देखना चाहिये।

वैभवको निःसार समझकर छोड़ दिया था और गुरुके निकट जैन दीक्षा ले ली थी और अब वे नग्न दिगम्बर साधु बनकर तेजस्वी सिंहके समान निर्भय सर्वत्र भूमंडलमें विचरण करते थे और स्वयं आत्म साधन करते हुए जगतको आत्म-कल्याणका मार्ग बतलाते थे आपका मुनिजीवन बड़ा ही शान्त और निःस्पृह था और वे उदयागत कर्म-विपाकको—उपसर्ग परीषहोंकी महान् एवं असह्य पीड़ाको—साम्यभावसे सहते थे और उनसे कभी भी दिलगीर नहीं होते थे। आपका अधिकांश समय आत्म-चिंतन, ग्रंथ-प्रणयन और मुनिपदके योग्य असावद्य क्रियाओंके अनुष्ठानमें व्यतीत होता था। आप्तपरीक्षाप्रधानी थे—वस्तुतत्त्वको—युक्ति और आगमसे अबाधित स्वीकार करते थे। आपका युक्तिवाद अकाट्य और गम्भीर रहस्यका उद्भावक है और वह वस्तुमें निहित अन्त-र्बाह्य स्वरूपका उद्‌बोधक है। आपमें वस्तुतत्त्वके परीक्षण अथवा समीक्षणकी असाधारण क्षमता थी, यही कारण है कि प्रतिवादिजन आपसे पराजित हो जाते थे, और वे प्रायः अपने अभिग्रह अथवा हठको छोड़कर सद्दृष्टि बन जाते थे। आप केवल दार्शनिकही न थे, किन्तु आपमें भक्तिका वह अपूर्व स्रोत विद्यमान था जिसके द्वारा आत्मा अपनेको ऊँचा उठाकर विश्ववंद्य बन जाता है। तीन ग्रंथ तो आपके स्तुति विषयके ही प्रतिपादक हैं जिनमें स्तुति करते हुए ऐतिहासिक, दार्शनिक और सैद्धान्तिक विषयोंकी

गम्भीर पर संक्षिप्त चर्चा की गई है इसीसे आपको 'आद्यस्तुतिकार' जैसे शब्दोंके द्वारा उल्लेखित किया गया है।

प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् पं० जुगलकिशोरजी मुख्तारको जो आपका एक परिचयपद्य मिला था[1]। और जिसमें अन्यविशेषणों के साथ आपको 'सिद्ध सारस्वत' और 'आज्ञासिद्ध' तक बतलाया गया है अर्थात् आपको सरस्वतीका अनुपम वरदान मिला हुआ था, और उनकी आज्ञा सर्वत्र मानी जाती थी। जिनसे स्पष्ट मालूम होता है कि आप उससमयके महान् योगी थे, इसीसे एक शिलावाक्यमें तो आपके द्वारा महावीर शासनकी हजारगुणी वृद्धि होना तक सूचित किया है। आपकी महत्ता, तपस्वी जीवन और अटूट श्रद्धा ये सब आपके असाधारण व्यक्तित्वके परिचायक हैं। आपमें आगत आपत्तियों उपसर्गों अथवा परिषहोंके सहन करनेकी अपूर्व सामर्थ्य थी। और था हृदयमें वह स्व-परका अद्भुत विवेक, जो अभद्रता अथवा मिथ्यात्वका शत्रु है और स्वानुभवकी अन्तरज्योतिसे उद्दीपित है।

आचार्य समन्तभद्रने जैनशासनकी जो अपूर्व सेवा की है और आपकी अनेक अनूठी कृतियोंसे उसके साहित्यको अलंकृत किया है। यद्यपि खेदहै कि हम आपकी सभी कृतियोंका संरक्षण नहीं कर सके, पर जो संरक्षित है उनकाभी हम लोकमें प्रचार एवं प्रसार करनेमें असमर्थ रहे हैं, वे कृतियां महान् सूत्रात्मक और गम्भीर अर्थके रहस्यसे ओत-प्रोत हैं। और वे दार्शनिक जगतमें अपनी

---

१ देखो, अनेकान्त वर्ष ७ अंक, ३-४

समता नहीं रखतीं। इस समय आपकी निम्न कृतियां उपलब्ध हैं—युक्त्यनुशासन, देवागम (आप्तमीमांसा), बृहत्स्वयंभूस्तोत्र, स्तुतिविद्या (जिनशतक) और रत्नकरण्ड श्रावकाचार। ये सभी ग्रंथ वीरसेवामन्दिर ग्रन्थमालासे हिन्दी अनुवादादिके साथ 'समन्तभद्र भारती' के नामसे प्रकाशित हो रहे हैं।

आचार्य समन्तभद्रका समय विक्रमकी दूसरी-तीसरी शताब्दी है, वे बौद्धविद्वान् नागार्जुनके उत्तरवर्ती जान पड़ते हैं, क्योंकि उनके ग्रन्थोंमें नागार्जुनके युक्तिवादका निरसनभी पाया जाता है। इससे ऐतिहासिक विद्वान् समन्तभद्रको विक्रम की दूसरी शताब्दीके उत्तरार्धका अथवा तीसरी शताब्दीके प्रारम्भका विद्वान मानते हैं जो सुसंगत जान पड़ता है।

टीका और टीकाकार पं० सदासुखदासजी

रत्नकरण्ड श्रावकाचारकी यह टीका पंडितजीके जीवनकी आत्म-साधना अथवा ज्ञानाभ्यासका अनुपम फल है। इस टीकाके अवलोकनसे जहाँ पंडितजी की आन्तरिक भावनाका परिज्ञान होता है वहां उनकी लगन कर्तव्यनिष्ठा, उत्साह और आत्मजागृतिका भान सहजमें हो जाता है। टीकाकी भाषा सरल तथा सुबोध है। यद्यपि उसमें ढुंढारी भाषाकी पुट अंकित है और ब्रज भाषाके प्रभावसे भी वह अछूती नहीं है। फिरभी वह उस समयके ग्रंथोंकी भाषासे बहुत कुछ परिमार्जित है उसमें सरलताऔर मधुरताका अनुभव पढ़तेही होने लगता है। उसका

प्रधान कारण टीकाकारकी आन्तरिक विशुद्धताही है। टीका विशाल काय और प्रमेयबहुल तो है ही, पर उसमें चर्चित विविध विषयोंकी गम्भीर विवेचनाके साथ कुछ विषयोंकी आलोचना भी की गई है। यहां पाठकोंकी जानकारीके लिये परिग्रह परिमाण-व्रतका विवेचन करने वाली जो पंक्तियां नीचे दी जा रही हैं। उनसे पाठक टीकाकी भाषा और उसकी कथन शैलीका सहजही अनुभव कर सकते हैं। आज विश्वको परिग्रह-परिमाणव्रतके अचारणकी भारी आवश्यकता है। विश्वके मानव यदि अपनी अपनी आवश्यकतानुसार परिग्रहका परिमाण करलें तो वे न केवल चाह-दाहकी भीषण ज्वालाओंसे बचेंगे, बल्कि सांसारिक सुख-शान्तिका अनुभव भी कर सकेंगे। आज संसार अशान्तिके घोर अन्धकारमें से गुजर रहा है। धन लिप्सा, हवाई प्रतिष्ठा और ऐहिक सुखद सामग्रीके उपभोगकी अभिलाषाओंने उसे जर्जरित कर दिया है—उसकी रीढ़की हड्डियोंमें अन्तर्बाह्य मूर्छा (ममता) का कीड़ा लगा हुआ है जो उसके सारभागको खोखला कर रहा है। परिग्रहकी चाहने जगतको अंधा बना दिया है, वह हेयोपादेयके विवेकसे शून्य हो रहा है और लूट-पाट, अन्याय, अत्याचार, दुराचार, अनिष्ट, अनुपसेव्य और लोक निंद्य अभक्ष्य पदार्थोंके भक्षण करनेकी प्रवृत्तिमें विना किसी हिच किचाटके आगे बढ़ रहा है। वृक्षकी हरी भरी डाली पर बैठकर उसकी जड़को काटता हुआ अपनेको सुखी और समृद्धि-शाली मान रहा है और भौतिक अस्त्र-शस्त्रोंकी चकाचौंधमें

अनुरक्त हो उन्हींके संग्रह और अन्वेषणमें साम्राज्यवादकी घोर लिप्सामें अपना सर्वस्व अर्पण कर रहा है। इस घोर विप्लव अशान्ति अथवा चाह-दाहकी भीषण विभीषिकाओंसे बचनेका एक मात्र कारण अहिंसा और अपरिग्रह है। ये दोनोंही सिद्धान्त जैन धर्मकी अपूर्व देन हैं। जिनका आचरणही विश्व अशान्तिका अमोघ उपाय है। परिग्रह हिंसा और तृष्णाका जनक है, अतएव उसका परिमाण तथा परित्याग अहिंसा और शान्तिका मूल कारण है। नीचे उसी प्रकरणकी कुछ पंक्तियां यहां दी जा रही हैं जिनसे पाठक मानवताके आदर्शके साथ अशान्तिके मूल कारण को जानकर उसके परित्याग और परिमाण द्वारा अपनेको और जगतको सुखी एवं समृद्धिशाली बनानेका प्रयत्न करेंगे।

"जो पुरुष लोभको नष्टकरि संतोषरूप रसायणकरि आनन्दित हुआ समस्त धन सम्पदादिकनिनै विनाशीक मानि दुष्टा तृष्णाकी अगामी वांछाकूं छांडकरि धनधान्य सुवर्णक्षेत्र स्थानादिकनिको अपना अभिप्राय जानि परिमाण करै है जो इतना परिग्रह सूं मेरा निर्वाह करना अधिकमें मेराप्रवृत्ति करनेका त्याग है ऐसे पापरूप जानि वांछा छांड़े ताकै परिग्रह परिमाण नामा अणुव्रत होय है। बहुरि परिग्रहका लक्षण मूर्छा कह्या है जीवकै जो पर-पदार्थनिमें ममता बुद्धि सो ही मूर्छा है, जातैं पर वस्तुमे ऐसा अपना मान करि राग है जो आत्माका मरण जीवन हित अहित योग्य अयोग्यके विचारमें अचेत होय रह्या है मोहकी उदीरणातैं म्हारो म्हारो ऐसो परद्रव्यमें परिणाम सो ही मूर्छा है मूर्छा ही कूं भग-

वान् परिग्रह कह्या है याही तैं बाह्य परिग्रह अल्प होहु वा मत होहु, समस्त परिग्रह रहित है तो हू मूर्छावान परिग्रही है सो ही कहैं हैं:—

बाहिरगंथविहीणा दलिद्द मणुआ सहावदो हुंति ।
अब्भंतरगंथं पुण ण सक्कदे को वि छंडेदुं ॥२६७॥

बाह्य परिग्रह रहित तो दरिद्र मनुष्य स्वभावही तैं होय है सो देखिये ही है हजारां लाखां मनुष्य ऐसे हैं जिनकूं जन्म लिये पीछे पीतल तांबा कांसाका पात्र मिल्याही नाहीं, जो जन्मतै घृत भक्षण किया नाहीं, मोदकादिक खाया नाहीं, पाग अंगरखी जामा कदे पहिरयाही नाहीं, स्त्री विवाही नाहीं, कदे उदर भर भोजन मिल्या नाहीं, सुवर्णादिक देख्या नाहीं, समस्त जन्ममें दोय चार दिनके खावने योग्य अन्नमात्रका हू संग्रह हुआ नाहीं, अन्य सुवर्णरूपादिकनिका तो दर्शन ही नाहीं, पैसा रुपया एकभी जिनकूं कदे प्राप्त हुआ नाहीं, रहनेकूं कुटीमात्रहू अपनी भई नाहीं । ऐसे अनेक मनुष्य देखिये हैं;परन्तु अभ्यन्तर ममता छोड़नेकूं कोऊ समर्थ नाहीं तातैं मूर्छा ही परिग्रह है ।

यहां कोऊ पूछै जो मूर्छाही परिग्रह है तो बाह्य धनधान्य वस्त्रादिक बाह्यवस्तुका संगमके परिग्रहपना नहीं ठहर्याताकूं उत्तर करैं हैं—

ये बाह्य परिग्रह-अंतरंग परिग्रहके निमित्त हैं इन बाह्य परिग्रहका देखना, श्रवण करना, चिन्तवन करना शीघ्र ही परिग्रहमें लालसा उपजावै है, ममता उपजावै है, अचेत करै है तातैं बहि-

रङ्ग परिग्रह मूर्छाका कारण त्यागने योग्य है अर अन्तरङ्ग बहिरङ्ग दोऊ प्रकार परिग्रहके ग्रहणकूं भगवान हिंसा कही है अर दोय प्रकारका परिग्रहका त्याग सो अहिंसा है ऐसैं परमागमके जानने वाले कहें है। जातैं मिथ्यात्व कषायादिक अन्तरंग परिग्रह तो हिंसा हो के दूजे पर्याय नाम है अर बाह्य परिग्रहमें मूर्छा सो ही हिंसा है। बहुरि ये कृष्णादिक लेश्याके अशुभ परिणामहू परिग्रहमें रागकरि ही होय हैं; क्योंकि परिणमनिकी शुद्धता मंदकषाय करि होय है कषायनिकी मंदता होय सो परिग्रहके अभावतैं होय अर महान आरम्भ भी परिग्रहकी अधिकतातैं ही होय है। ऐसैं जानि समस्त परिगह छांडनेका राग नाहीं घटा तो परिग्रहमें उपयोग माफिक परिमाण करिकैं तो रहो। अर जो परिग्रह तो अल्प है अर अधिककी वांछा बनि रही है सो इस वांछा तैं प्राप्त नाहीं होयगा, लाभ तौ अंतराय कर्मका क्षयोपशमतैं होयगा, वांछातैं तो और पाप कर्मका वंध ही होयगा तातैं पापका कारण परिग्रहकी ममता छांडि जेता प्राप्त भया तितनामें सन्तोष धारण करि ही रहो। यहां ऐसा विशेष जानना, यद्यपि समस्त परिग्रह त्यागने योग्य है परन्तु जो गृहस्थपनामें रहि धर्मसेवन करया चाहै सो अपने पुण्यके अनुकूल परिग्रह राखै ही, जो परिग्रह गृहस्थके नाहीं होय तो काल दुकालमें, रोगमें, वियोगमें, व्याहमें, मरणमें परिणाम ठिकाने रहैं नाहीं, परिणाम विगड़ जाय। तातैं गृहस्थ धर्मकी रक्षा वास्तै परिग्रह संचयको ही करै अर आजीविकाको उपाय न्यायमार्गतैं

करै ही; क्योंकि साधु तो परिग्रह अल्प हू राखै तो दोऊ लोकतैं भ्रष्ट होय जाय, अर गृहस्थ परिग्रह नाहीं राखै तो भ्रष्ट होय जाय, जातैं गृहस्थाचारमें रहै तो ताकै अल्प तथा बहुत परिग्रह विना परिणाममें समता नाहीं रहै, अर आजीविका नाहीं होय, तो निराधारका परिणाम धर्मसेवनमें ठहर सकै नाहीं। परिणाममें तीव्र आर्ति मिटै नाहीं, भोजनपान मिलने योग्य आजीविका विना स्वाध्यायमें, पूजनमें शुभभावनामें परिणाम ठहर सकै नाहीं, आकुलता करि बधतो जाय सन्तोष रहै नाहीं; जातैं रोग आवतैं वृद्धपना आवतैं, वियोग होतैं अन्नवस्त्रका आधार बिना अपना परिणाम कोऊ देशमें कोऊ कालमें थिरता पावै नाहीं, देहकी रक्षा आजीविका विना नाहीं, देह विना अणुव्रत शील संयम काहे तैं होय ? यातैं अपना पुण्यकी अनुकूलता अर उद्यम सामर्थ्य, सहाय साधनादिक देशकालके योग्य विचारि न्यायमार्गतैं आजीविका करि धर्म सेवन करो।"

टीकाके इस उद्धरणसे पाठक टीकाकी भाषा विशेषता और टीकाकारकी विवेचन शैलीका स्वयंही अनुभव करसकते हैं। इस तरह यह टीका गृहस्थोंके लिये बहुत ही उपयोगी है। हां टीका में कहीं कहींपर चरणानुयोगके विषयको उसके पात्रकी सीमासे कुछ ऊंचा लिखा गया है। अर्थात् आचार मार्गका विधि विधान धारण करनेवाले व्यक्तिकी अपेक्षा न कर उच्चादर्शसे प्रेरित होकर निरूपित किया गया है। परन्तु उससे टीकाकी उपयोगितामें कोई बाधा नहीं आती। भले ही उसे कुछ महानुभाव वर्तमान समयके प्रतिकूल बतलानेका प्रयत्न करें, पर टीकाकारका आशय विशुद्ध और वस्तु स्थितिके दिखलानेका रहा है।

टीकाकार पंडित सदासुखदासजी

इस रत्नकरण्ड श्रावकाचारकी भाषा टीकाके कर्ता पं० सदासुखदासजी हैं जो बीसवीं शताब्दीके हिन्दी साहित्यकारोंमें खास तौरसे उल्लेखनीय हैं। आपने अनेक गद्यात्मक हिन्दी टीकाओंका निर्माण किया है। आप जयपुरके निवासी थे। आपके पिताका नाम दुलीचन्द और गोत्रका नाम काशलीवाल था। माताका नाम मालूम नहीं हो सका, आपका वंश 'डेडराज' के नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त था, इसी कारण आपको 'डेडाका' के नामसे भी पुकारते थे।

डेडराज कब हुए और उनकी वंश-परम्परा क्या है? इसका कुछ भी पता नहीं चलसका।

पण्डितजीके वंशमें आज भी मूलचन्द्र नामके एक सज्जन मौजूद हैं। आपके मकानमें एक चैत्यालय है, जो जयपुरमें कचौड़ी मोदीखाना मणिहारोंके रास्तेमें स्थित है। पं० सदासुखदासजीने अपना कोई जीवन परिचय नहीं दिया; किन्तु अर्थप्रकाशिका टीकाकी प्रशस्तिमें निम्न पंक्तियों द्वारा अपना और अपने पिताजीका नाम तथा गोत्र आदिका उल्लेखमात्र किया

हैं। साथ ही आत्मसुखकी प्राप्तिकी इच्छा भी व्यक्त की है, जैसा कि निम्न पंक्तियोंसे स्पष्ट है:—

डेडराजके वंशमांहि इक किंचित् ज्ञाता,
दुलीचन्दका पुत्र काशलीवाल विख्याता।
नाम सदासुख कहैं आतमसुखका बहु इच्छुक,
सो जिनवाणी प्रसाद विषयतैं भए निरिच्छुक॥

आपका जन्म जयपुरमें संवत् १८५२ के लगभग हुआ था; क्योंकि पण्डितजीने स्वयं रत्नकरण्डश्रावकाचारकी टीकामें अपनी आयुके ६८ वर्ष व्यतीत होनेकी सूचना की है[1] और उस टीकाको सं० १९२० में बनाकर समाप्त किया है।

पण्डितजीकी जीवन-घटनाओंका और उनके कौटुम्बिक-जीवनका यद्यपि कोई विशेष परिचय उपलब्ध नहीं है तो भी जो कुछ टीका ग्रन्थोंमे दी गई संक्षिप्त प्रशस्तियों आदि परसे जाना जाता है उसमें पण्डितजीकी चित्त-वृत्ति, सदाचारता आत्मनिर्भयता, अध्यात्मरसिकता, विद्वत्ता और सच्ची धार्मिकता पद पदपर प्रकट होती है। आपमें संतोष और सेवाभावकी पूरी स्प्रिट थी और आपका जिनवाणीके प्रति बड़ा भारी स्नेह था, देश देशान्तरोंमें उसके प्रचार करनेकी आवश्यकताको आप बहुत ही ज्यादा अनुभव किया करते थे। इसीसे आपका अधिकांश समय शास्त्र-स्वाध्याय, सामायिक, तत्त्वचिन्तन, पठन-

---

१ अडसठ बरस जु आयुके, बीते तुभ आधार।
शेष आयु तव शरणतैं, जाहु यही मम सार॥१७॥

पाठन और ग्रन्थोंकी टीका अथवा अनुवादादि प्रशस्त कार्योंमें ही व्यतीत होता था। आप राजकीय प्राइवेट संस्था (कापड़द्वारे) में कार्य करते हुए भी सांसारिक देह-भोगोंसे बराबर विरक्तिका अनुभव किया करते थे। भोगोंमें आसक्ति अथवा अनुरक्ति जैसी कोई बात आपमें नहीं थी; प्रत्युत इसके उदासीनता संवेद और निर्वेदकी अनुपम भावना आपके चित्तमें घर किये हुए थी और स्वपरके भेद-विज्ञानरूप आत्म-रसके आस्वादनकी सदा लगन लगी रहती थी; फिर भी शास्त्रोंके प्रचारकी ममता आपके हृदयमें अपना विशिष्ट स्थान रखती थी।

यहां यह बात खास तौरसे नोट करने लायक है कि पण्डित-जीके कुटुम्बीजन यद्यपि बीसपंथके अनुयायी थे; फिर भी पण्डि-तजी स्वयं तेरा पंथके पूर्ण अनुयायी थे। जिसका कारण उनके गुरु पं० मन्नालालजी और प्रगुरु पं० जयचन्दजी छावड़ा आदिके विचारोंका उनपर प्रभाव बालशिक्षा समयसे ही पड़ना शुरू हो गया था, युवा प्रौढ़ावस्थामें उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होता चला गया। तथा जिनवाणीके सतत अभ्यासकी साधनाने उसे और भी सुदृढ़ बना दिया था। तेरापन्थ और बीसपंथके विकल्पों और उनसे होनेवाली कटुताका रौद्ररूप भी यद्यपि कभी कभी सामने आजाता था फिर भी आप अपनी चित्तवृत्तिको अस्थिर नहीं होने देते थे, यों ही सहजभावसे बीसपंथके रीति-रिवाजों तथा भट्टारकीय प्रवृत्तियोंके प्रतिकूल अपने मन्तव्योंका प्रचार करते थे और शुद्ध तेरापंथ आम्नायको शक्तिभर पुष्ट भी करते

थे। रत्नकरण्डश्रावकाचाकी टीकामें भी बीस पंथका निरसन पाया जाता है फिर भी वह उभय पंथके अनुयायियों द्वारा उपादेय बनी हुई है। इसका कारण पण्डितजीकी आन्तरिक विशुद्धि ही है। वे कलह और विसंवाद आदि अप्रशस्त कार्योंमे अपना योग देना उचित नहीं समझते थे। शास्त्र प्रवचनमें भी वस्तु तत्त्वका विवेचन इस रूपसे करते थे कि श्रोता जन कभी भी उनसे असन्तुष्टिका अनुभव नहीं करते थे। पंडितजी अपने समय और पर्यायके मूल्यको समझते थे इसीकारण वे अपने समयको व्यर्थ नहीं जाने देते थे, किन्तु धमसाधनादि प्रशस्त कार्योंमें उसें व्यतीत करना अपना कर्तव्य समझते थे। आपके अनेक शिष्य थे, जो आपकी प्रेरणा और पठन-पाठनकी सुविधासे सुयोग्य विद्वान् बने थे। उनमें पं. पन्नालालजी संघी, नाथूलालजी दोशी और पं. पारसदासजी निगोत्याके नाम खास तौरसे उल्लेखनीय है।

आपमें सहन-शीलता कूट-कूटकर भरी हुई थी और चित्तवृत्ति में अपार सन्तोष था। आजीविकाके निमित्त जो कुछ भी मिल जाता था आप उसीसे अपना निर्वाह कर लेते थे, पर उससे अधिक की चाह-दाहमें जलना पाप समझते थे। कहा जाता है कि आपको राज्यकीय संस्थासे जिसका नामोल्लेख ऊपर किया जा चुका है, सिर्फ आठ या दस रुपया महीना वेतन मिलता था और वह बराबर चालीस वर्ष तक उसी प्रमाणमें मिलता रहा—उसमें आपने कभी कोई वृद्धि नहीं चाही जब कि उस

विभागमें कार्य करनेवाले अन्य व्यक्तियोंके वेतनमें तिगुनी चौगुनी तक वृद्धि हो चुकी थी। आपकी इस सन्तोषवृत्तिके कुटुम्बी जनभी कायल थे, उसके कारण उनका बड़ा आदर करते थे।

आपके एक शिष्य पं० पारसदासजी निगोत्याने अपनी 'ज्ञानसूर्योदयनाटक'की टीकामें पंडितजीका परिचय देते हुए उनके विषयमें जो विचार व्यक्त किये है उनसे पंडितजीकी आत्मपरिणति, चित्तवृत्ति और दैनिक कर्तव्यकी झांकीका अच्छा पता चल जाता है। वे पद्य इस प्रकार हैं—

"लौकिक प्रवीना तेरापंथ मांहि लीना,
मिथ्या बुद्धि करिछीना जिन आतम गुण चीना है।
पढ़ैं औ पढ़ावैं मिथ्या अलटकूं कढ़ावैं,
ज्ञान दान देय जिन मारग वढ़ावैं हैं॥
दीसैं घर वासी रहैं घरहूतैं उदासी,
जिन मारग प्रकाशी जग कीरत जग-भासी है।
कहां लौं कहीजे गुणसागर सुखदासजूके,
ज्ञानामृत पीय वहु मिथ्या-तिस-नासी है॥१॥
जिनवर प्रणीत जिन आगमें सूक्ष्मदृष्टि,
जाको जस गावत अघावत नहिं सृष्टि है।
संशय-तम-भान संताप-सरमान रहैं,
सांचौ निज पर-स्वरूप भापत अभीष्ट है।
ज्ञान अमोघ छै पद्दर जाके,

आशाकी वासना मिटाई गुण इष्ट है।
सुखिया सदीव रहैं ऐसे गुण दुर्लभ,
पारस, आजमाई सदासुखजू पर दृष्टि है ॥२॥

इन पद्योंमें उल्लिखित दिन चर्यासे स्पष्ट मालुम होता है कि पंडितजीको ज्ञान गोष्ठी अथवा तत्वचर्चासे कितना अनुराग था और वे अपने समयको व्यर्थ नहीं जाने देते थे किन्तु उसे स्व-परके हित-साधनमें व्यतीत करते थे। उनका घरभी विद्याका केन्द्र बना हुआ था और ज्ञान-पिपासुजन वहाँ ज्ञानामृतका पान कर अपनी अज्ञानतृषाके सन्ताप को मिटाया करते थे। इस तरह पंडितजीका छह पहरका समय तो बहुत ही आनन्द और ज्ञानाराधना के साथ व्यतीत हो रहा था।

सेवा-कार्य

यों तो पं० सदासुखदासजीका सारा ही समय जैनधर्म और समाजकी सेवा करते हुए व्यतीत हुआ है। पर उनका विशेष-सेवा कार्य महान ग्रन्थों की टीका कार्य है जिसे उन्होंने निःस्वार्थभावसे सम्पन्न किया है। उनका यह टीकाकार्य संवत् १९०६ से संवत् १९२१ तक हुआ है इस १५ वर्षके अर्सेमें उन्होंने ७ ग्रन्थोंकी टीकाएं बनाई है। जिनके नाम इस प्रकार हैं—

भगवती-आराधना, तत्त्वार्थसूत्र, नाटक समयसार, अकलंक स्तोत्र, मृत्युमहोत्सव, रत्नकरण्डश्रावकाचार और नित्यनियम-पूजा संस्कृत।

इन सब कार्योंसे पंडितजीकी विद्वत्ता और सेवा-कार्यकी प्रशंसा केवल जयपुर तक ही सीमित नहीं रही; किन्तु वह जयपुरसे बाहर आरा आदि प्रसिद्ध नगरों तक पहुँच चुकी थी। चुनांचे आरा-निवासी पंडित परमेष्ठीसहायजी अग्रवालने अपने पिता कीरतचन्द्रजी के सहयोगसे जैन सिद्धान्तका अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था और बड़े धर्मात्मा सज्जन थे, और उस समय आरामें अच्छे विद्वान समझे जाते थे। उन्होंने साधर्मी श्री जगमोहनदासकी तत्त्वार्थ विषयके जानने की विशेष अभिरुचि देखकर स्व-परहितके लिये 'अर्थ-प्रकाशिका' नामकी एक टीका पांच हजार श्लोक प्रमाण लिखी थी और फिर उसे संशोधनादिके लिये जयपुरके प्रसिद्ध विद्वान पं० सदासुखदासजीके पास भेजा था। पंडित सदासुखदासजीने संशोधन सम्पादनादिके साथ उस टीकाको पल्लवित करते हुये ग्यारह हजार श्लोक प्रमाण बनाकर वापिस आरा भेज दिया था। इस टीकाके सम्पादनकार्यमें उनका पूरे दो वर्षका समय लगा था। और उसे उन्होंने सं० १९१४ में वैशाख शुक्ला रविवारके दिन पूर्ण किया था। यह टीका भी बहुतही प्रमेय-बहुल, सरल तथा रोचक है। जैसा कि उक्त ग्रन्थकी प्रशस्तिके निम्न पद्योंसे प्रकट है—

"पूरवमे गंगातट धाम, अति सुन्दर आरा तिस नाम।
तामैं जिन चैत्याल लसैं, अग्रवालै जैनी बहु वसैं १३
बहु ज्ञाता तिनमे जु रहाय, नाम तासु परमेष्ठिसहाय।
जैन ग्रन्थमें रुचि बहुकरै, मिथ्या धरम न चितमें धरै १४

सो तत्त्वारथ सूत्रकी, रची वचनिका सार।
नाम जु अर्थप्रकाशिका, गिणती पांच हजार॥ १५
सो भेजी जयपुर विषैं, नाम सदासुख जास।
सो पूरण ग्यारह सहस, करि भेजी तिन पास॥ १६
अग्रवाल कुलश्रावक कीरतचन्द्र जु आरे मांहि सुवास।
परमेष्ठीसहाय तिनके सुत, पिता निकटकरि शास्त्राभ्यास।१७
कियो ग्रंथ निज परहित कारण, लखि बहु रुचि जगमोहनदास।
तत्त्वारथ अधिगमसु सदासुख, रास चहुँ दिशअर्थप्रकाश॥१८॥

इन सब उल्लेखोंसे पंडितजीके सेवा भावी जीवनकी झाँकीका बहुत कुछ चित्र सामने आ जाता है।

अन्तिम जीवन और समाधिमरण

पंडितजीका यह सुखद जीवन दुर्दैवसे सहन नहीं हुआ। और उनके अन्तिम जीवनमें एक ऐसी दुखद घटना घटी, जिसकी स्वप्नमें भी किसीको कोई कल्पना ही नहीं हो सकती थी। पर उन्हें अपनी वृद्धावस्थामें इष्ट वियोग-जन्य असह्य दुःखकी वेदनाको सहसा उठाना पड़ा। अर्थात् उनके एक मात्र इकलौते सुपुत्र गणेशीलालजीका बीस वर्षकी अल्पायुमें ही अचानक स्वर्गवास हो गया। गणेशीलालजीका पंडितजीने केवल पालनपोषण ही नहीं किया था किन्तु पढ़ा लिखाकर सुयोग्य विद्वान भी बना दिया था। और समाजको उनकी सेवाका

सुयोग्य अवसर प्राप्त होने ही वाला था कि कालने उसे बीचमें ही कवलित कर लिया। जो पंडितजी की आशालताओंका केन्द्र बना हुआ था और पंडितजी उसे अपना उत्तराधिकार सौंपकर सर्व प्रकारसे निश्चिन्त होकर अपना शेष जीवन शांतिसे व्यतीत करना चाहते थे। पर विधिने बीचमें ही रंगमें भंग कर दिया। फलतः परिणाम वही हुआ जो होना था। इस असह्य दुखद घटनाका आपके जीवनपर बहुत प्रभाव पड़ा। उससे पंडितजीका उपयोग अब किसीभी कार्यमें नहीं लगता था और न चित्तमें पूर्व जैसी स्थिरताही थी। यद्यपि अन्तस्तलमें आत्म-विवेककी किरणें अपना प्रकाश कर रहीं थीं और वे कभी कभी उदित होकर सान्त्वनाकी अपूर्व रेखा सामने ला देती थीं, परन्तु चित्तमें वास्तविक शान्ति नहींथी। यद्यपि पंडित-जी अपनी दैनिक क्रियाओंका अनुष्ठान भी करते थे फिरभी उनमें पहले जैसी सरसता और उल्लासकी आभा दिखाई नहीं देती थी। पंडितजी संसारकी परिवर्तन-शीलतासे, और कर्मबन्ध तथा उससे होनेवाले कटुक परिणामसे तो परिचित ही थे। अतः जब कभी वे वस्तु-स्थितिका विचार करते थे तब कुछ समयके लिए उनकी वह चिन्ता दूर हो जाती थी; परन्तु मोहोदयसे पुत्रके गुणोंका स्मरण आतेही वह पुनः व्यग्र हो उठते थे। यद्यपि उनके इस दुःखमें उनके शिष्य और मित्र तरह तरहसे सान्त्वना देनेका उपक्रम करते थे, और पंडितजी भी जब ज्ञान और वैराग्यकी विवेचना करते थे तब वे इतने आनन्द-

विभोर होजाते थे कि मानो उन्हें अपनी इष्ट वियोगावस्थाका भान ही नहीं है। इसी बीच उनके एक शिष्य स्व० सेठ मूलचन्दजी सोनी पंडितजीको जयपुरसे अजमेर लेगये—वहां उन्हें कुछ अधिक शान्तिका अनुभव हुआ और कुछ समयके बाद उनकी चित्त परिणति पूर्व जैसी होगई इससे उनके शिष्यों तथा मित्रों आदिको भी संतोष हुआ।

अजमेरमें कुछ समय ठहरनेके बाद पंडितजी को अपनी इस पर्यायके अन्त होनेका भान होने लगा अतः सेठजीने जयपुरसे उनके प्रधान शिष्य पं० पन्नालालजी संघीको अपने पास बुला लिया। उस समय पंडित सदासुख दासजीने पंडित पन्नालालजी से अपनी हार्दिक अभिलाषा व्यक्त की और कहा कि "अब मैं इस अस्थायी पर्यायसे विदा होता हूँ। मैंने और मुझसे पूर्ववर्ती पंडित टोडरमल्लजी जयचन्द्रजी और पन्नालालजी आदिविद्वानोंने असीम परिश्रम करके अनेक उत्तमोत्तम ग्रंथोंकी सुलभ भाषावचनिकाएं बनाई हैं और अनेक नवीन ग्रन्थभी बनाए है, परन्तु अभी तक देश-देशान्तरोंमें उनका जैसा प्रचार होना चाहिये था वैसा नहीं हुआ है और तुम इस कार्यके सर्वथा योग्य हो, तथा जैनधर्मके मर्मको भी अच्छी तरह समझ गए हो, अतएव गुरु दक्षिणामें तुमसे केवल यही चाहता हूँ कि जैसे बने तैसे इन ग्रन्थोंके प्रचारका प्रयत्न करो वर्तमान समयमे इसके समान पुण्यका और धर्म की प्रभावनाका और कोई दूसरा कार्य नहीं है।" यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि पंडितजीके सुयोग्य

शिष्य संघीजीने गुरुदक्षिणा देनेमें जराभी आना कानी नहीं की। और आपने अपने जीवनमें राजवार्तिक, उत्तर-पुराण आदि आठ ग्रन्थों पर भाषा वचनिकाएं लिखी हैं और सत्ताईस हजार श्लोक प्रमाण 'विद्वज्जनबोधक' नामके ग्रंथकाभी निर्माण किया है इसके सिवाय 'सरस्वतीपूजा' आदि कुछ पुस्तकें भी लिखी हैं तथा अन्यसाधर्मी भाइयों की सहायतासे एक 'सरस्वतीभवन' की स्थापना की थी, जिससे मांग आने पर ग्रन्थ बाहर भेजे जाते थे इस कार्यको आप अपने गुरुकी अमानत समझते थे और उसका जीवनपर्यन्त तक निर्वाह करते रहे[1]।

आपका पं० सदासुखदासजीसे वि.सं. १६०१से१६०७ के मध्य किसी समय साक्षात्कार हुआ था। पन्नालालजी रतनचन्द्रजी वैद्य दूनीवालोंके सुपुत्र थे और वे पन्नालालजीको पढ़ा लिखा कर सुयोग्य विद्वान बनाना चाहते थे, अस्तु पंडितजीके सदुपदेश से ही संघीजीकी चित्तवृत्ति पलट गई और धर्मग्रन्थोंके अभ्यासकी ओर उनका चित्त विशेषतया उत्कंठित हो उठा, और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मैं आजसे रात्रिको १० बजे प्रतिदिन आपके मकानपर आकर जैन धर्मके ग्रन्थोंका अभ्यास एवं परिशीलन किया करूंगा। जब संघीजी अपनी प्रतिज्ञानुसार पंडित सदासुखदासजीके मकानपर रात्रिके १० बजे पहुँचे तब पंडितजीने कहा कि आप बड़े घरके है—सुखिया है—अत: आपसे ऐसे कठिन प्रणका निर्वाह कैसे हो सकेगा उत्तरमें संघीजीने उस समय तो कुछ नहीं कहा पर वे नियम-पूर्वक उनके पास पहुँचते

१ विद्वज्जनबोधक प्रथम भाग प्रस्तावना पृ० ६-७।

रहे और धार्मिक ग्रन्थोंका अभ्यास कर जैनधर्मके तत्त्वोंका परिज्ञान प्राप्त किया।

पंडितजीको जब अपनी इस अस्थायी पर्यायके छूटनेका आभास होने लगा, तब उसी समय सब संकल्प विकल्पोंका परित्याग कर समाधिमरण करानेकी भावना शिष्योंसे व्यक्त की। यद्यपि समाधिमरण करनेकी उनकी यह भावना संवत् १६०८ में समाप्त होने वाली भगवती आराधनाकी टीका प्रशस्तिके निम्न दोहोंमें पाई जाती है जिससे यह सहजही जाना जाता है कि वे अपनी इस अस्थायी पर्यायका परित्याग कषाय और शरीरकी कृशता-पूर्वक शांतिके साथ करना चाहते थे। और संयम सहित परलोक पानेकी उनको अपनी कामना थी।

"मेरा हित होने को और, दीखै नाहिं जगतमें ठौर।
यातैं भगवति शरण जु गही, मरणआराधन पाऊ सही॥
हे भगवति तेरे परसाद, मरणसमै मति होहु विषाद।
पंच परमगुरु पद करि ढोक, संयम सहित लहूँ परलोक॥"

इस तरह पंडित सदासुखदासजीका समय वि० सम्वत्की १६ वीं शताब्दी उत्तरार्ध और २० वीं शताब्दी पूर्वार्ध है। क्योंकि पंडितजीने अपनी पहली टीकाका निर्माण सं० १६०६ में ५४ वर्षकी अवस्थाके लगभग शुरू किया था और उसे दो वर्षमें बनाकर समाप्त किया था। आपकी यह टीका प्रौढ़ावस्थामें लिखी गई है। और सब टीकाएं इसके बादकी ही रचनाएं हैं।

चुनांचे पंडितजीने अपने शिष्योंके सहयोगसे अपने शरीरका परित्याग समाधिमरण-पूर्वक अजमेरमें संवत् १६२३ में या १६२४ के प्रारंभमें किया था। पर उसकी निश्चित तिथि भी प्रामाणिक उल्लेख न मिलनेसे उसे यहां नोट नहीं किया गया।

परमानन्द शास्त्री

विषय-सूची

पं० सदासुखजीकृत देशभाषामयवचनिकासहित

रत्नकरंडश्रावकाचार

यहाँ इस ग्रन्थकी आदिमें स्याद्वादविद्याके परमेश्वर परम-निर्ग्रंथ वीतरागी श्रीसमन्तभद्रस्वामी जगतके भव्यनिके परमोपकारके अर्थि रत्नत्रयका रक्षणको उपायरूप श्रीरत्नकरंड नाम श्रावकाचारकूं प्रगटकरनेके इच्छुक विघ्नरहित शास्त्रकी समाप्तिरूप फलकूं इच्छाकरता इष्ट विशिष्ट देवताकूं नमस्कार करता सूत्र कहैं हैं—

नमः श्रीवर्द्धमानाय निर्द्धूतकलिलात्मने ।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ॥ १ ॥

अर्थ—श्रीवर्द्धमान तीर्थंकरके अर्थि हमारा नमस्कार होहु। श्री कहिये अंतरंगस्वाधीन जो अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंतवीर्य अनंतसुखरूप अविनाशीक लक्ष्मी अर वहिरंग इन्द्रादिक देवनिकरि वंदनीक जो समवसरणादिक लक्ष्मी तिसकरि वृद्धिकूं प्राप्त होय सो श्रीवर्द्धमान कहिये है। अथवा अव—समंतात् कहिये समस्त

प्रकारकरि ऋद्ध कहिये परमअतिशयकूं प्राप्त भया है केवलज्ञानादिक मान कहिये प्रमाण जाका सो वर्द्धमान कहिये। इहां "अवाप्योरल्लोप:" इस व्याकरणशास्त्रके सूत्रकरि अकारका लोप भया है। कैसाक है श्रीवर्द्धमान निर्द्धूतकलिल है आत्मा जाका, निर्द्धूत कहिये नष्ट किया है आत्मातैं कलिल कहिये ज्ञानावरणादि पापमल जानै ऐसा है। बहुरि जाकी केवलज्ञानविद्या अलोकसहित समस्त तीनलोककूं दर्पणवत् आचरण करै है।

भावार्थ—जाके केवलविद्याज्ञानरूप दर्पणविषैं अलोकाकाशसहित षट्द्रव्यनिका समुदायरूप समस्त लोक अपनी भूत भविष्यत् वर्तमानकी समस्त अनंतानंत पर्यायनिकरि सहित प्रतिबिम्बित होय रहे हैं ऐसा अर जाका आत्मा समस्त कर्ममलरहित भया ऐसा श्रीवर्द्धमान देवाधिदेव अन्तिम तीर्थंकर ताकूं अपने आवरणकषायादिमलरहित सम्यग्ज्ञानप्रकाशके अर्थि नमस्कार किया। अब आगैं धर्मके स्वरूपकूं कहनेकी प्रतिज्ञारूप सूत्र कहैं हैं:—

देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिवर्हणं।
संसारदुःखतः सत्त्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे ॥ २ ॥

अर्थ—मैं जो ग्रन्थकर्ता हूं सो इस ग्रन्थविषै तिस धर्मकूं उपदेश करूं हूं जो प्राणीनिनै पञ्चपरिवर्तनरूप संसारके दुःखतैं निकाल स्वर्गमुक्तिके बाधारहित उत्तमसुखनिमें धारण करै। बहुरि कैसेक धर्मकूं कहूं हूं जो समीचीन कहिये जामें वादीप्रतिवादीकरि तथा प्रत्यक्ष अनुमानादिककरि बाधा नाहीं आवै, अर जो कर्मबंधनकूं नष्ट करनेवाला है तिस धर्मकूं कहूं हूं।

भावार्थ—संसारमें धर्म ऐसा नाम तो समस्त लोक कहैं हैं परन्तु शब्दका अर्थ तो ऐसा जो नरकतिर्यंचादिक गतिमें परिभ्रमणरूप दुःखतैं आत्माकूं छुड़ाय उत्तम आत्मीक अविनाशी अतीन्द्रिय मोक्षसुखमें धारण करै सो धर्म है। सो ऐसा धर्म मोल नाहीं आवै जो धन खरचि दानसन्मानादिकतै ग्रहण करिये तथा किसीका दिया नाहीं आवै, जो सेवा उपासनातैं राजी कर लिया जाय। तथा मन्दिर, पर्वत, जल, अग्नि, देवमूर्ति, तीर्थादिकनमें नाहीं धरया है जो वहां जाय ल्याइये। तथा उपवासव्रत, कायक्लेशादि तपमें हू शरीरादि कृश करनेतैं हू नाहीं मिलै। तथा देवाधिदेवके मन्दिरनिमें उपकरणदान मण्डलपूजनादिकरि तथा गृह छोड़ वन स्मशानमें वसनेकरि तथा परमेश्वरके नामजाप्यादिककरि नाहीं पाइये है। धर्म तो आत्माका स्वभाव है जो परमें आत्मबुद्धि छोड़ अपना ज्ञाता द्रष्टारूप स्वभावका श्रद्धान अनुभव तथा ज्ञायकस्वभावमें ही प्रवर्तनरूप जो आचरण सो धर्म है। तथा उत्तमक्षमादि दशलक्षणरूप अपना आत्माका परिणमन तथा रत्नत्रयरूप तथा जीवनकी दयारूप आत्माकी परणति होय तदि आत्मा आप ही धर्मरूप होयगा। परद्रव्यक्षेत्रकालादिक तौ निमित्तमात्र है। जिसकाल यह आत्मा रागादिरूप परणति छोड़ वीतरागरूप हुवा देखै है तदि मन्दिर, प्रतिमा, तीर्थ, दान, तप, जप समस्त ही धर्मरूप हैं। अर अपना आत्मा उत्तम क्षमादि वीतरागरूप सम्यग्ज्ञानरूप नाहीं होय तो वहां कहीं हू धर्म नाहीं होय। शुभराग होय जदि पुण्यबन्ध होय है अर अशुभ राग द्वेष मोह होय तहां पापबन्ध होय है। जहां शुभश्रद्धानज्ञानस्वरूपा-

चरण धर्म है तहां बन्धका अभाव है। बन्धका अभाव भये ही उत्तम सुख होय है। अब ऐसा सुखका कारण जो आत्माका स्वरूप धर्म ताकूं प्रगट करनेकूं सूत्र कहैं हैं,—

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः ।
यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धतिः ॥ ३ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र इन तीनोंको धर्मके ईश्वर भगवान तीर्थंकर परमदेव धर्म कहैं हैं अर इनतैं प्रतिकूल जे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र हैं ते संसार-परिभ्रमणकी परिपाटी होय है।

भावार्थ—जो आपका अर अन्य द्रव्यनिका सत्यार्थ श्रद्धान, ज्ञान, आचरण सो तो संसारपरिभ्रमणतैं छुड़ाय उत्तम सुखमें धारण करनेवाला धर्म है। अर आपका अर अन्य द्रव्यनिका असत्यार्थ श्रद्धानं, ज्ञान, आचरण संसारके घोर अनंतदुःखनिमें डवोवनेवाले हैं ऐसे भगवान वीतराग कहैं हैं। हम हमारी रुचि-विरचित नाहीं कहैं हैं। अब प्रथम ही सम्यग्दर्शनका लक्षण कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम् ।
त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥ ४ ॥

अर्थ—सत्यार्थ जे आप्त आगम तपोभृत तिनका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन होय है। आप्त तो समस्त पदार्थनिकूं ज्ञान तिनका स्वरूपकूं सत्यार्थ प्रगट करनेहारा है अर आगम आप्तका कह्या पदार्थनिकी शब्दद्वारकरि रचनारूप शास्त्र है अर आप्तका प्ररूप्या

शास्त्रके अनुसार आचरणकूं आचरनेवाला तपोभृत कहिये गुरु है। इहां जो सांचा आप्त, सांचा शास्त्र, सांचा गुरुका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। अर असत्य आप्त, आगम, गुरुका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन नाहीं है। सो सम्यग्दर्शन तीन मूढताकरि रहित है अर अपने अष्टअंगनिकरि सहित है अर अष्टमद जामें नाहीं हैं।

भावार्थ—सत्यार्थ आप्त, आगम, गुरुका तीन मूढतारहित निःशंकितादि अष्टअंगसहित अष्टमदरहित श्रद्धान होय सो सम्यग्दर्शन है।

इहां कोऊ कहै जो सप्ततत्त्व नवपदार्थनिका श्रद्धानकूं आगममें सम्यग्दर्शन कह्या है सो इहां कैसैं नाहीं कह्या ? ताका समाधान—जातै निर्दोष बाधारहित आगमका उपदेश विना सप्ततत्त्वनिका श्रद्धान कैसे होय। अर निर्दोष आप्त विना सत्यार्थ आगम कैसैं प्रगट होय है तातैं तत्वनिका श्रद्धानकाहू मूल कारण सत्यार्थ आप्त ही है। अब सत्यार्थ आप्तहीका लक्षणकूं प्रगट करैं हैं,—

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना ।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥५॥

अर्थ—धर्मका मूल भगवान आप्त है ताके तीन गुण हैं निर्दोषपणा, सर्वज्ञपणा, परमहितोपदेशकपणा। तिनमें जाकै क्षुधा, तृषादिक दोष नष्ट हो गये, तातैं निर्दोष, अर त्रिकालवर्ती समस्त गुण पर्यायनिकरि सहित समस्त जीव पुद्गल धर्म अधर्म काल आकाशनिकी अनन्त परणति तिनकूं युगपत् प्रत्यक्ष जाणै तातैं सर्वज्ञ, अर परमहितोपदेशकपणाकरि आगम जो द्वादशांग ताका मूल कर्ता तातैं आगमका स्वामी ऐसें यह कहे जे

तीन गुण तिनकरि संयुक्त होय सो निश्चयकरि आप्त होय है याहीकूं देव कहिये है। अन्य प्रकार इन तीन गुणनि बिना आप्तपणा नाहीं होय है जातैं जो आप ही दोषनिकरि सहित है सो अन्य जीवनकूं निराकुल सुखित निर्दोष कैसे करेगा। जो क्षुधाकी बाधा, तृषाकी बाधा, कामक्रोधादिक दोषसहित होय सो तो महादुःखित है, ताकै ईश्वरपणा कैसे होय। अर जो निरन्तर भयवान भया शस्त्र आदिक ग्रहण करता रहै ताकै वैरी विद्यमान है सो निराकुल कैसै होय। अर जाकै द्वेष, चिन्ता, खेदादिक निरन्तर वर्तैं सो सुखित नहीं होय। अर जो कामी रागी होय सो तो निरन्तर परकै वश है वाकै स्वाधीनता नाहीं, पराधीनतातै सत्यार्थवक्तापणा बणै नाहीं। अर मदके वशीभूत निद्राके वशीभूत होय ताकै सत्यार्थवक्तापणा नाहीं होय सकै है। अर जो जन्म-मरण सहित है ताकै संसारपरिभ्रमणका अभाव नाहीं संसारी ही है ताकै आप्तपणा नाहीं बणै। जातै निर्दोष होय ताही के सत्यार्थपणाकरि आप्त नाम बणै है। रागी-द्वेषी तो आपका अर परका रागद्वेष पुष्ट करनेरूप ही कहै यथार्थवक्तपणा तो वीतरागकै ही सम्भव है। बहुरि सर्वज्ञ नाहीं होय तो इंद्रियनिके अधीन ज्ञानवाला पूर्वैं भये जे राम रावणादिक तिनकूं कैसैं जानैं? अर दूरवर्ती जे मेरु कुलाचल स्वर्ग नरक परलोकादिनकूं कैसैं जानै? अर सूक्ष्मपरमाणूं इत्यादिनकूं कैसैं जानैं? इंद्रियजनित ज्ञान तो स्थूल विद्यमान अपने सन्मुखहीकूं स्पष्ट नाहीं जानै है। इस संसारमें पदार्थ तो जीवपुद्गल कालादिक अनन्त हैं अर एक कालमें अपनी भिन्न-भिन्न परणतिरूप परिणमें

हैं यातैं एकसमयवर्ती अनन्त-पदार्थोंकी भिन्न-भिन्न अनन्त ही परिणति हैं। अर इन्द्रियजनितज्ञान क्रमवर्ती स्थूल पुद्गलकी अनेक समयमें भई जे एक स्थूल पर्याय ताकूं जाननेवाला है। अनेक पदार्थनिकी अनेकपर्याय है। जो एक समयवर्ती ही जानने-कूं समर्थ नाहीं तो अनन्तकाल गया अर अनन्तकाल आवैगा तिनकी अनन्तानन्त परणतिकूं इन्द्रियजनित ज्ञान कैसैं जानैं। तातै सर्व त्रिकालवर्ती समस्तद्रव्यनिकी परिणतिकूं युगपत् जाननेकूं समर्थ ऐसा सर्वज्ञहीके आप्तपणा संभवै है। अर जो परम हितोपदेशक है सोई आप्त है ए तीन गुण जामें होंय सो ही देव है। यद्यपि अरहन्तदेव मनुष्यपर्यायकूं धारण करता मनुष्य है तो हू ज्ञानावरणादि चारिघातिया कर्मनिके नाशतै प्रगट भया जो अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, अनन्तसुखरूप निज-स्वभाव तिसमे रमनेतैं तथा कर्मनिके विजयतैं अप्रमाण शरीरकी कान्ति प्रगट होनेतैं अनन्त आनन्दसुखमे मग्न होनेतै तथा इन्द्रा-दिक समस्त देवनिकरि स्तुतियोग्य होनेतै तथा अनन्तज्ञानदर्शन-स्वभावकरि समस्त लोकालोकमें व्याप्त होनेतै अनन्त-शक्ति प्रगट होनेतैं अन्यदेव मनुष्यनितैं असाधारण आत्मरूपकरि दिपै है। तातैं मनुष्य पर्यायहीमें अपने अनन्त ज्ञानवीर्यसुखादि गुणनितैं याकूं देवाधिदेव कहिये है।

इहां कोऊ प्रश्न करे जो आप्तका लक्षण तीन काहेतैं कह्या? एक निर्दोष कहनेतै ही समस्त गुण लक्षण आवता? ताकूं कहिये है,—निर्दोषपणा तो आकाश धर्म अधर्म पुद्गल काला-दिकके हू है इनके हू अचेतनपणातैं क्षुधा तृषा रागद्वेषादिक नाहीं

हैं यातैं निर्दोषपणातैं आप्तपणाका प्रसङ्ग आवता तातैं निर्दोष होय अर सर्वज्ञ होय सोई आप्त है। अर निर्दोष सर्वज्ञ दोय ही गुण कहैं तो भगवान सिद्धनिके आप्तपणाका प्रसङ्ग आवता तब सत्यार्थ उपदेशका अभाव आवता तातैं निर्दोष सर्वज्ञ परमहितो-पदेशकता इन तीन गुणनिकरि सहित देवाधिदेव परम औदारिक शरीरमें तिष्ठता भगवान सर्वज्ञ वीतराग अरहंतहीके आप्तपणा हैं ऐसें निश्चय करना योग्य है। अब अरहन्तदेव जिन दोषनिकूं नष्ट करि आप्त भये तिन दोषनिके नाम कहनेकूं सूत्र कहै हैं:—

क्षुत्पिपासाजरातङ्कजन्मान्तकभयस्मयाः ।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते ॥६॥

अर्थः—क्षुत् कहिये क्षुधा १, पिपासा कहिये तृषा २, जरा कहिये वृद्धपणा ३, आतङ्क कहिये शरीर-सम्बन्धी व्याधि ४, जन्म कहिये कर्मके वशतै चतुर्गतिमे उत्पत्ति ५, अन्तक कहिये मृत्यु ६, भय कहिये इस लोकका भय, परलोकका भय, मरणभय, वेदना-भय, अनरक्षाभय, अगुप्तिभय अकस्मात्‌भय ऐसें सप्त प्रकारका भय ७, स्मय कहिये गर्व मद ८, राग ६, द्वेष १०, मोह ११, च शब्दतैं ग्रहण किये चिन्ता १२, रति १३, निद्रा १४, विस्मय कहिये आश्चर्य १५, विषाद १६, स्वेद कहिये पसेव १७, खेद व्याकुलता १८, ए अष्टादशदोष जाकै नाहीं सो आप्त कहिये।

अब यहाँ कोऊ श्वेताम्बरमतका धारक प्रश्न करै है,—भो दिगम्बरधर्मधारक-हो ! जो केवली भगवानकैं क्षुधा तृषाका अभाव है तो आहारादिकनिमें प्रवृत्तिका अभाव होतैं केवलीकैं

देहकी स्थिति नाहीं रही चाहिये अर देहकी स्थिति तुम्हारे मान्य ही है तातैं केवलीकैं आहार करनेकी सिद्धि भई। जैसैं आहार किये बिना अपने देहकी स्थिति नाहीं रहै तैसैं केवलीकै भी आहार बिना देह नाहीं रहै अर देहकी स्थिति है तो अवश्य आहार करै ही है। तिसकूं उत्तर कहैं हैं,—केवलीकें आहारमात्र साधिये है कि कवलाहार साधिये है? जो आहारमात्र हीकी सिद्धि चाहो तदि तो सयोगकेवलीपर्यन्त समस्त जीव आहारक ही हैं ऐसा परमागमका वाक्य है क्योंकि समस्त ही एकेंद्रियकूं आदि लेय सयोगीपर्यन्त जीव समय समयमे सिद्ध राशिके अनंतवें भाग अर अभव्यराशितैं अनंतगुणा कर्मपरमाणु अर नोकर्मपरमाणूंनिकूं निरन्तर ग्रहण करै हैं। अर जो तुम या कहो हम तो केवलीके कवलाहार कहिये ग्रास ग्रास मुखमें ले अन्नजलादिक अपना भक्षण करनेकी ज्यों आहार करना कहैं है? कवलाहार जो ग्रासरूप आहार तिस बिना केवलीके देहकी स्थिति नाहीं रहै। जैसैं अपना देह कवलाहार बिना नाहीं रहै। ताकूं कहै है—देवनिका देह कवलाहार बिना सागरांपर्यन्त कैसे तिष्ठै है? समस्त देवनिके कवलाहार कदाचित् नाहीं है अर देहकी स्थिति है ही, तातैं तुम्हारा हेतु व्यभिचारी भया। अर जो या कहो देवनिके देहकी स्थिति तो मानसिक आहारतैं है जो मनमें आहारकी इच्छा उपजते ही कण्ठ में अमृत झरै है तातैं तृप्ति होय है सो मानसिक आहार है सो भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी कल्पवासी चतुरनिकायके देवनिकै कवलाहार बिना मानसिक आहारतैं ही देहकी स्थिति है तो तैसैं ही केवली भगवानके कर्मनोकर्मवर्गणाके आहारतें देहकी स्थिति है।

अर जो या कहो केवलीकी तो मनुष्य देहमें स्थिति है यातै अपने देहकी तुल्य कवलाहारतैं ही देहकी स्थिति मानिये है तो अपना देहज्यों पसेव, खेद, उपसर्ग, परीषहादिक भी मानना चाहिये। अर जो या कहोगे केवलीके अतिशय प्रभावतै नाहीं होय है तो भोजनका अभावरूप भी अतिशय कैसैं नाहीं मानो हो। बहुरि अपने देहमे देखिये तैसैं केवलीकै हू मानो हो तौ जैसैं अपने इन्द्रियजनित ज्ञान है तैसैं केवलीके हू ज्ञान इन्द्रियजनित मानो। देखना, श्रवण करना, आस्वादना, चिन्तवना इन्द्रियनितै भया तदि केवलज्ञानरूप अतीन्द्रियज्ञानको जलांजलि दीनी, सर्वज्ञपणा का अभाव आया। अर जो या कहोगे ज्ञानकरि समान होते हू केवलीकै अतीन्द्रियज्ञान ही है तो देहमे स्थिति समान होते हू कवलाहार अभाव कैसै नाहीं मानो हो? अर जो या कहोगे केवलीकै वेदनीयकर्मका सद्भाव है यातै भोजनकी इच्छा उपजै है यातै कवलाहारमें प्रवृत्ति होय है। सो ऐसै कहना हू उचित नाहीं जातैं मोहनीयकर्मके सहायसहित ही वेदनीयकर्मकै भोजनकी इच्छा उपजावनेमें समर्थपणा है क्योंकि भोजनकी इच्छा सो बुभुक्षा है। इच्छा है सो मोहनीयकर्मका कार्य है यातैं नष्ट हुवा मोहनीयकर्म जाके ऐसे भगवान केवलीकै भोजन करनेकी इच्छा काहेतैं उपजै? अर मोहनीय विना हू इच्छा उपजै है तो मनोहर स्त्रीकूं भोगनेकी इच्छा हू उपजनेका प्रसंग आया तथा सुन्दर शय्यामें शयन, आभरण, वस्त्रादि भोगोपभोगकी इच्छाका प्रसंग आया तदि वीतरागका अभाव भया जहां इच्छा तहां वीतरागता नाहीं।

बहुरि तुम्हारे केवली आहार करै है सो एक दिनमे एक बार करें हैं कि अनेकबार करैं है कि एक दिनके अन्तर कि दोय दिन, पांच दिन, पक्ष मासादि केता अन्तर करि भोजन करै है ? जेता अन्तर कहोगे तितना प्रमाण ही शक्ति रही, शक्ति घटे भोजन करै है भोजनके आश्रय बल भया तदि अनन्तवीर्य भगवान् केवलीकै कहना असत्य भया। केवलीकै आहारकै अधीन ही बल रह्या। बहुरि केवली बुभुक्षाका उपशम करनेकेअर्थि भोजनका आस्वादन करै है सो केवलज्ञानतै भोजनका स्वाद ले हैं कि रसना इन्द्रियतैं आस्वादै हैं ? जो केवलज्ञानतैं आस्वादै है तो दूर क्षेत्रमें तिष्ठता हू भोजनका आस्वादन कर लें तदि कवलाहारकरि कहा प्रयोजन रह्या ? अर जो रसनाइन्द्रियतैं स्वाद ले हैं तो मतिज्ञानका प्रसङ्ग आया क्योंकि इंद्रियनिकरि देखना, स्वादना, श्रवण करना, स्पर्शना चिंतवन करना सो तो मतिज्ञान है। बहुरि जो तुम यह कहो कि सर्वज्ञपणाकै अर कवलाहारकै विरोध नाहीं। जैसै इहां आहार करि मनुष्यनिकैं ज्ञानकी हीनता नाहीं देखिये है तैसै भोजन करते हू केवलज्ञानकी हीनता नाहीं होय है। ताकूं कहिये है—जो हम पूछें है द्रव्य, आभरण, वस्त्र, वाहन, काम, विषय भोगनेमें हूँ सर्वज्ञपणाका विरोध नाहीं। अर जो तुम या कहो सर्वज्ञकै मोहके उदयका अभाव है यातैं द्रव्य, आभरण काम, विषयभोगादिकग्रहण करनेकी इच्छा नाहीं है अर असातावेदनीयका उदय विद्यमान है तातै आहार ग्रहण करैं हैं क्योंकि कर्मनिकी शक्ति भिन्न-भिन्न है। कर्मनिकी शक्ति एकसी होय तो कर्मनिमें जुदा-जुदा भेद नाहीं होय। मोहके उदयका अभाव भया तातैं द्रव्यादिक

नाहीं ग्रहण करै हैं। ताकूं कहै हैं—जो मोहका अभाव भया तदि ग्रास उठाय मुखमें देना, चावना, निगलना, यह इच्छा काहेतैं भई ? जो या कहौ कि—अन्तरायकर्मका अभाव भया तातैं इच्छा विना ही मुखमें ग्रास देपै हैं तो अन्तरायकर्मका अभाव भोगोपभोग काम-सेवनादिकका हू ग्रहण क्यों नाहीं करावै ? जो यह कहोगे कि—द्रव्य आभरण काम विषयादिक ग्रहण करनेतैं व्रत भंग हो जाय, दीक्षाका भंग हो जाय, साधूपणा नष्ट हो जाय है अर आहार करनेतैं व्रतका तथा दीक्षाका भंग नाहीं होय है कवलाहार करनेतैं तो साधूकै धर्मका कारण देहकी स्थिति रहै। ताका उत्तर करै है, तुम्हारे श्वेताम्बरमतमे व्रतधारणतै अर दीक्षाग्रहण करनेतैं ही केवलज्ञान उपजनेका नियम नाहीं है। मल्लीकुमारीके गृहस्थ अवस्थाहीमें केवलज्ञानकी उत्पत्ति कहो हो तथा भरतचक्रवर्तीकै समस्त छह खण्डका राज भोगते संतेहू आरसीका महलमें केवलज्ञान उपज्या कहो तथा मरुदेवी हाथीचढ़ी पुत्रके अर्थि रुदन करतीकै केवलज्ञान कहो हो। बांस चढ्या नटके केवलज्ञान कहो हो। उपासरामें बुहारी देती दासीकै केवलज्ञान कहो हो तथा गृहस्थीके वा स्त्रीके तथा अन्यधर्मी कोऊ भेशधारी होहु दंडी, त्रिदंडी, सन्यासी कपाली, फकीर, जटाधारी, मुण्डनकरनेवाला, मृगछाला बाघम्बर ओढ़नेवाला समस्त कुलिंगीनकै मोक्ष कहो हो। समस्त नाई धोबी खटीक चांडालादि समस्तकै मोक्ष कहो हो। ऋषिकेश चांडालके केवलज्ञान अर मोक्ष कहो हो। तुम्हारे व्रततैं, दीक्षातैं ही प्रयोजन नाहीं तुम्हारे केवलज्ञान तो पहले गृहस्थके उपजि आवै अर दीक्षा पाछें होय यतीपणा पाछें होय ऐसे कहो हो। सर्वज्ञपणा पहले हो

जाय अर दीक्षा पाछें होय तदि दीक्षातैं कौन प्रयोजन सध्या ? अर गृहस्थके मोक्ष होय अर अन्य कुलिंगीनकै हू मोक्ष हो जाय तदि तुम्हारा दीक्षाग्रहण, मुंहपट्टीवन्धन, दण्डग्रहण, वोधा पात्राका ग्रहण निरर्थक रह्या। इत्यादि तुम्हारे हजारां दोष आवैं हैं। अर जो तुम कहो असातावेदनीय उदयतैं केवलीकै क्षुधा, तृषा, रोग, मल मूत्रादिक होय सो नाहीं है इसका उत्तर सुनहु-क्षुधा तो असातावेदनीयकर्मकी उदीरणातैं होय है सो असाताकी उदीरणाकी छट्टे गुणस्थानमें व्युच्छित्ति है तदि सप्तम गुणस्थानादिकनिमें क्षुधादि वेदनाका अभाव है। वहुरि और सुनहु,—जिसकाल मुनि श्रेणी चढैं तदि सातिशय अप्रमत्तगुणस्थानमें अधःकरणके प्रारंभमें चार आवश्यक होय हैं एक तो प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धि १, अर दूजा स्थितिबन्धका अपसरण कहिये घटना २, अर सातावेदनीयादिक पुण्यप्रकृतिनिमें अनन्तगुणाकाररूप रसका वर्द्धित होना ३, अर असातादिक अशुभ प्रकृतनिका रस अनन्तगुणा घट निंबकांजीररूप दोय स्थानरूप रहै है विष हलाहलरूप शक्ति घट जाय है ४। पाछें अपूर्वकरणमें गुणश्रेणी निर्जरा १, गुणसंक्रमण २, स्थितिखण्डन ३, अनुभागखण्डन ४ ये चार आवश्यक होय हैं। तातैं तिन करणपरिणामनिके प्रभावतैं असातादिक अप्रशस्त प्रकृतिके रस के असंख्यात बार अनन्तका भाग लगि घटनेतैं ऐसी मन्द शक्ति रही सो सर्वज्ञकै असातावेदनीयपरीषह उपजायवेकूं समर्थ नाहीं। अर घातिया कर्मका सहाय रह्या नाहीं तातै परीषह देनेमें समर्थ नाहीं है। बहुरि उक्तं च गोमट्टसारे,—

"समयट्ठिदिगो बन्धो सादस्सुदयप्पगो जदो तस्स ।
तेणासादस्सुदओ सादसरूवेण परिणमदि ॥ १ ॥
एदेण कारणेण हु सादस्सेव दु णिरंतरो उदओ ।
तेणासादणिमित्ता परीसहा जिणवरे णत्थि ॥ २ ॥
णट्ठा य रायदोसा इन्दियणाणं च केवलम्हि जदो ।
तेण दु सादासादज सुहदुक्खं णत्थि इन्दियजं ॥ ३ ॥"

अर्थ—पूर्वली बांधी जो असातावेदनीय ताका असंख्यातवार अनन्तका भाग लागि रस घटि अति मन्द रह गया । अर नवीन असाताका बन्ध होय नाहीं । जातैं सप्तम गुणस्थानतैं एक सातावेदनीयका ही बन्ध नवीन होय है अर असाताका बन्ध होय नाहीं । अर केवलीकै साताकर्म बन्धै सो भी एक समयकी स्थितिरूप बन्धै सो उदय होता हुवा ही होय है तातैं असाताका उदय भी साताररूप ही परिणमै है ।

भावार्थ—साताका उदय तो नवीन निरन्तर अनंतगुणा रसरूप सर्वज्ञके उदयमें आवे अर असातावेदनीयका रस अनंतवें भाग, सो जैसें अमृतके समुद्रकूं एक विषकी कणिका विषरूप करनेकूं समर्थ नाहीं होय तैसें सर्वज्ञके अतितीव्र अनंतगुणा साताकर्मके रसका उदयमें अनंतभागरूप अतिमंद असाताका उदय कैसैं क्षुधाकी वेदना उपजावै? या कारणतैं भगवानसर्वज्ञकै निरंतर साताकर्मका ही उदय है, यामें किंचित् असाताका उदय है सातारूप ही परिणमैं है ना कारण असाताका उदयजनित परीषह जिनेंद्रकै नाहीं है । जातैं भगवान केवलीकै राग द्वेष नष्ट भया

तथा इंद्रियजनित ज्ञानका अभाव भया तातैं साता असातातैं उपज्या इन्द्रियजनित सुख दुःख हू केवलीकै नाहीं है। अर और हू कहैं हैं,—अतिमंद उदयरूप असाता अपना कार्य करनेमें समर्थ नाहीं है। जैसैं मंदउदयरूप संज्वलनकषाय अप्रमत्तादि गुणस्थाननिमें प्रमाद नाहीं उपजाय सकै तथा जैसै अतितीव्र वेदके उदयतै उपजी मैथुनसंज्ञा सो मंदवेदका उदयरूप नवमे गुणस्थानमें नाहीं है तथा निद्रा प्रचलाका उदय तो बारवैं गुणस्थानमें द्विचरम समय पर्यंत है परन्तु उदीरणा बिना निद्राकूं नाहीं कर सकै है तातैं जागृत अवस्था बिना आत्मानुभवनरूप ध्यान नाहीं बन सकै, तैसै असाताकी उदीरणा बिना असाता कर्म क्षुधा तृषादिक नाहीं उपजाय सकै है। अर और भी समझो कि—अप्रमत्त हू साधू आहारकी इच्छामात्रतैं प्रमत्तपणानै प्राप्त होय है तो भोजन करता हू केवली प्रमत्त नाहीं होय सो बड़ा आश्चर्य है। बहुरि केवली भगवान् त्रैलोक्यके मध्य मारण ताड़न छेदन ज्वालन मद्य मांसादि अशुचि द्रव्यनिकूं प्रत्यक्ष देखता कैसै भोजन करै है? अल्प शक्तिका धारक गृहस्थ हू अयोग्य वस्तु, निंद्य कर्म देख अन्तराय करै है अर केवली अन्तराय नाहीं करै तो केवलीकै गृहस्थनितैं हू अधिक भोजनमें लम्पटता रही। अर शक्तिकी हीनता रही तदि अनंतशक्ति कहां रही? अर जाकैं क्षुधा वेदना होय ताकै अनंतसुख कहां रह्या? क्षुधा समान वेदना जगतमें अन्य नाहीं है। यातै क्षुधा वेदना सर्वज्ञकै होतै अनंतवीर्य अनंतसुख नाहीं ठहरैं। तथा ऋद्धिजनित अतिशयवान मुनिविषै अन्य मनुष्यनिमें नाहीं पाइये ऐसा कार्य करनेका सामर्थ्य पाइये है तो अनंतवीर्यका

धारक केवली भगवान् कै आहार विना देहकी स्थिति रहना कहा नाहीं संभवै है। अर जो सर्वज्ञकै हू अन्य मनुष्यनिकी ज्यों आहार, निहार, निद्रा, रोग, स्वेद, खेद, मल, मूत्र विद्यमान होय तो सामान्य आत्मामें अर परमात्मामें कहा भेद रह्या ? बहुरि जीवना कवलाहारतैं ही नाहीं है आयुककर्मके उदयतै है। उक्तं च गाथा–

"णोकम्मकम्महारो कवलाहारो य लेपमाहारो ।
उज्जमणो वि य कमसो आहारो छव्विहो भणिओ ॥४॥
णोकम्मं तित्थयरे कम्मं णिरये माणसो अमरे ।
कवलाहारो णरपसु उज्जो पक्खी य इगि लेपो" ॥५॥

अर्थ—आहार छह प्रकार है—कर्मआहार १, नोकर्मआहार २, कवलाहार ३, लेपआहार ४, ओजआहार ५, मानसीकआहार ६, ऐसैं छह प्रकार है। भगवान अरहंतकें तो अन्य जीवनकें असंभव ऐसे शुभ सूक्ष्म नोकर्मवर्गणाका ग्रहण सो ही आहार है। अर नारकीनकैं कर्मका भोगना सोही आहार है, अर चारप्रकारके देवनिकैं मानसीक आहार है, मनमें वांछा होतैं ही कण्ठमेंतैं अमृत झरे है ताकरि तृप्तता होय है। मनुष्य अर पशुअनिकैं कवलाहार है। अर पक्षीनकैं अंडेमें तिष्ठतेनिकैं माताकी उदरकी ऊष्मा रूप ओजाहार है। अर एकेन्द्रिय पृथिव्यादिकनकैं लेपआहार है अर्थात् पृथिव्यादिकनका स्पर्श ही आहार है। बहुरि भोगभूमिके औदारिक देहके धारक मनुष्यनिका शरीर तीनकोस प्रमाण अर भोजन आंवला प्रमाण तीन दिनके अन्तर गये ले हैं यातैं कवलाहार ही देहकी स्थितिका कारण नाहीं है। अर जो

आहारकपनातैं कवलाहारकी ही कल्पना करो हो तो सयोगीपनातैं मनके माननेंका अर प्राण माननेंतैं पंच इन्द्रियनिका अर शुक्ल-लेश्यातैं कषायका हू प्रसंग आवैगा। अर एकादश परीषह जिनके हैं ऐसे कहना तो उपचारमात्र है। वेदनीयकर्म विद्यमान है यातैं कह्या है। परन्तु जैसैं मन्त्र औषधि आदिकके प्रभावकरि जाकी विष शक्ति नष्ट भई ऐसा विष मारनेंकूं समर्थ नाहीं, तैसैं शक्ति रहित असातावेदनीय क्षुधा उपजावनेकूं समर्थ नाहीं है। मणि-मन्त्र औषधि विद्या ऋद्धयादिकनिका अचिंत्य प्रभाव है।

श्वेताम्बरनिके कल्पित सूत्र है तिनमें अनेक, कल्पित असंभव रचना रची है। कोऊ एक गोशाला नाम गारोड्या महावीरस्वामी के निकट दीक्षित होय विद्याका मदकरि महावीर स्वामीसूं विवाद करनेकूं समोसरणमें जाय विवाद किया तो विवादमें हार गये। तदि क्रोधकरि भगवान ऊपरि तेजोलेश्या कोऊ ऋद्धि अग्निमय प्रज्वलित चलाई। तिसकरि समोसरणमें दोय मुनि सिंहासन नीचैं दग्ध भए। अर उस तैजस ऋद्धितै उपजी अग्निमयज्वाला भग-वानके ऊपर भी जाय पहुँची, भगवानकूं उपसर्ग भारी भया। तिस अग्निकी गरम बाधातै भगवानके आंवरुधिरका पेचस (अतीसार) भया। सो छह महीना रह्या। पाछै केवलज्ञानतैं जानकरि शिष्यकूं कहि सेठका घरतैं सुपक्षी जीवका पका मांसकूं मंगाय भक्षण करि व्याधि मेटी। अर कहीं मैं ऐसे कुपात्रकूं विना-समझ्यां दीक्षा दीनी ऐसा अवर्णवाद लिखैं हैं। तथा तीन ज्ञान लियें उपजे वीर जिनेन्द्रका चटशालामें पढ़ना कहैं हैं। तथा तीर्थंकर तो पहिले दीक्षित नग्न होय है। पीछे इन्द्र स्कन्ध

ऊपरि वस्त्र धरि देवै तब वस्त्रकूं (ग्रहण कर) लेहैं। तथा वीर-जिनकी वाणी गणधर विना निष्फल खिरी, कोऊ भी मानी नाहीं तथा आदिनाथकूं जुगलिया कहै हैं। अर कोऊ एक अन्य जुग-लियो मर गयौ ताकी स्त्री विधवा भई। तिस विधवा स्त्रीकों ऋषभदेव अङ्गीकार करी तदि दूजी सुनन्दा रानी नाताकी भई। इन ढुण्ढ्यादिक श्वेताम्बरिनिकैं ऐसे अनर्थरूप वचन कहनेका भय नाहीं है। तथा ऐसा विरुद्ध कहैं हैं कि—वीर जिन पहिली देव-नन्दा नाम ब्राह्मणीके गर्भमे अवतारलेय अस्सी दिन पर्य्यंत रह्या ता पीछैं इन्द्रने विचारी कि ऐसे नीच घरमे इनका जन्म योग्य नाहीं तातैं हरिणयगवेषी देवनैं आज्ञा करी, तदि देव जाय देवनन्दा नाम ब्राह्मणीके गर्भमेतैं निकालि राजा सिद्धार्थकी रानी त्रिसला ताके गर्भमें धरया। विचारो कि जीव अपने बांधे कर्मनिकरि कुलादिमें उपजै हैं देवनिकरि जन्म कैसें फिरै? परन्तु मिथ्या-दर्शनके प्रभावकरि कहनेका ठिकाना नाहीं। तथा तीर्थंकर केवलीकूं सामान्य केवली नमस्कार करै है। बाहुवलीने ऋषभदेवकूं नमस्कार किया कहैं हैं, सप्तम गुणस्थानतैं ही वंद्यवन्दक-भाव नाहीं। जहां आत्मस्वभावका अनुभव तहां विभाव कैसैं कहैं। कृतकृत्य भगवान् सर्वज्ञदेव तिनकै नमस्कार करि कहा साध्य है? वंदने योग्य परमेष्ठी अर मैं वंदना करनेवाला ऐसा भाव तो प्रमत्त नाम छट्ठा गुणस्थानपर्यंत ही है। तथा ऐसैं कहैं हैं एक स्कन्धक नाम त्रिदंडी कुलिंगी भेषीकूं अपने निकट आवता जान वीरजिन गौतमगणधरकूं कही कि—यह स्कंधक संन्यासी आवै है यह तेरा है थारे उनके मन है सामैं जाय याकूं ल्यावो। तदि गौतम

गणधर बड़ी भक्तिसूं सन्मुख जाय ल्यायो। बड़ा अनर्थ है अव्रतसम्यग्दृष्टी भी कुलिंगी का सम्मान नाहीं करै ? तो महाव्रती गणधर कैसैं भक्तिपूर्वक सन्मान करै ? स्त्रीकै पंचमगुणस्थान सिवाय गुणस्थान ही नाहीं, आदिके तीन संहनन नाहीं, अहमिंद्र-लोक नाहीं, अर सप्तम नरकमें गमन नाहीं, ता स्त्रीके मुक्ति कैसैं कहैं हैं ? तथा मल्लिजिनकूं नारी कहैं हैं ताकी प्रतिमा पुरुषरूप बनाय पूजैं हैं ऐसे महा असत्यवादी हैं। तथा कोऊ एक हरिक्षेत्र-का निवासी मनुष्य जाका दोयकोस ऊँचा काय तिसकूं कोऊ पूर्व जन्मका वैरी देव हेर ल्याया, अर दोय कोसके देहको छोटा करिकैं भरतक्षेत्रमें ल्याय मथुरा नगरका राज देय, अर मांस भक्षण कराय पापी करि नरक पहुँचाया। तासूं हरिवंश की उत्पत्ति कहैं है। तिन मूर्खनिकी मिथ्या कल्पनाका कुछ ठिकाना नाहीं। दोय कोसकी काय ताकूं कैसैं छोटी बनाई ? ऊपरसे छेद्या कि नीचैंसे कि वीचमेंसै छेद्या, ताका कछु उत्तर नाहीं। अर भोगभूमिके तो समस्त मनुष्य तिर्यंच देवगतिगामी हैं तथा भोगभूमिमें तो स्त्री-पुरुष प्रमाणित हैं। माता पिता मरै तिनकी एवज पहिलें उपजैं है। जो अनन्त काल गये भी एक-एक घटै तो समस्त भोगभूमि रीती हो जाय। परन्तु मिथ्यादृष्टीनिकै कुछ कुबुद्धिका ओर (अन्त) नाहीं है। तथा छह द्रव्य कहना अर मुख्य कालद्रव्यका अभाव कहना समयादिक विनाशीककूं ही काल जानना।

तथा और कहैं हैं कि—साधुके निंदकके मारनेंका पाप नाहीं। जो देव गुरु धर्मका द्रोही चक्री हू होय तो चक्रवर्तीका कटककूं हूँ विध्वंस करता साधु के पाप नाहीं। जो आपके श्रद्धयादिक

करि उपजी शक्ति होते हू नाहीं मारै तो वह साधु अनंतसंसारी है ऐसे पापी साधुके कहां साम्यभाव ? कहां वीतरागता रही ? तथा पापिष्ठ महान शीलवंतीनकै हू दोष लगाय निर्दोष कहैं है। भरत नामा चक्रवर्ती तो ब्राह्मी नामा बहनकूं परणि लीनी कहैं हैं। अर द्रोपदीकूं पंचभर्तारी कहैं है अर पंचभर्तारीहीकूं सती कहैं हैं। अर कोऊ पूछै तुम सती कहो हो तो पंचभर्तारी मति कहो अर पंचभर्तारी कहो हो तो सती मत कहो। ताकूं ये कहै हैं कोऊ राजादिक सौ स्त्रीका नियम राखे ताकै शीलवानपणा ही है, तैसैं स्त्रीहू कितनेक पुरुषनिका प्रमाण करै तातै सिवाय ग्रहण नाहीं ताकै शीलवतीपणा ही है। तथा देवनिकै अर मनुष्यनिकै कामभोग सेवन कहैं हैं सो वैक्रियिकदेहधारीके अर सप्तधातुमय मलीन देहकै संगम कदाचित नाहीं होय है। बहुरि कोऊ साधुकै उपवास होय अर अन्य साधुकै आहार उबरिजाय तो उपवासीक साधु भक्षण करले है गुरुकी आज्ञातैं व्रत भग नाहीं है। तथा उपवासमें औषधि भक्षण करै तो दोष नाहीं लागै। तथा समोसरणमे भगवान नग्न बैठे हैं अर वस्त्रसहित दीखता कहै हैं। तथा साधु यतिकैं लाठी पात्र वस्त्रादिक चौदह उपकरण रखना ही धर्म है। तथा चांडालादिकनिकै मुक्ति कहै हैं तथा वीरजिनका समोसरणमें चन्द्रमा सूर्य विमानसहित आये कहैं हैं। सरस्वती गतिकी मर्यादाका भंग कहैं हैं। तथा साधुका मन चल जाय तो श्रावक अपनी स्त्रीकूं देय कामवेदना मिटाय मन थिर करै। तथा गंगादेवीसे पचपन हजार वर्ष पर्यन्त भरतचक्रीने कामभोग किया कहैं हैं तथा भोगभूमिके युगल मलमूत्र धारण करैं हैं अर

मर जाय तदि तीनकोसके मुरदेके शरीरकूं देवता उठाय भैरूंडा-दिक पक्षीनको खुवाय देय हैं। जादव आदिक समस्त क्षत्रियनकूं मांसभक्षी कहैं हैं। गौतम नाम गणधर आनन्द नाम श्रावक के घर शरीरकी कुशल पूछने गया तदि झूंठ बोल्या, गणधर भी चूककर झूंठ बोलैं हैं। तथा जन्मके समयमें वीरजिन मेरुकूं कम्पायमान किया कहैं हैं। चर्मका नीर घृतादिक निर्दोष कहैं हैं। इत्यादि हजारां अनर्थ रूप कथन करि कल्पितसूत्र बनाये हैं तिन-की विशेष कथा कहां तक कहिये ?

इनही श्वेताम्बरीनमें महाभ्रष्ट ढूंडिया भए है ते प्रतिमाके वंदनका अभाव कहै है। अर भोले लोगनिकूं कहैं हैं ए प्रतिमा एकेन्द्रिय पाषाण तिनकै आगैं पंचेन्द्रिय होय कैसैं नाचो हो, कैसैं वंदन करो हो ? तुमकूं क्योंकर शुभगति देयगी तातै साधु ढूंडियानिकी बंदना दर्शन करो तिनकूं कहिये है कि—तुम्हारा चर्ममय मलीन चामकर ढक्या मलमूत्रादि करि भरया कफ लार करि लिप्त देह ताका दर्शन करनेतैं कहा साध्य ? तुम आत्म-ज्ञानकरि रहित समस्त जगतके अभक्ष वस्तुनिकूं भक्षणकरनेहारे तुम्हारा दर्शन तो बंधहीका कारण है। अर तुम्हारा कल्पितसूत्र का श्रवण सम्यक्त्वका विध्वंस करनेहारा बंधका कारण है। अर जिनेन्द्रका धातु पाषाणका प्रतिबिंब, तिनका दर्शनमात्रतैं परम वीतराग सर्वज्ञका ध्यान प्रकट होय जाय, परमशांतता शुभोपयोग प्राप्त होय जाय अर तुम्हारे पापमय देहके दर्शनतैं पापका बन्ध होय जाय। कैसे हो तुम महाविट्रूप विकारी रागद्वेष कषायादि पापमलसहित अयोग्य अभक्ष आहारके लम्पटी हिंसादिक पापनि-

में प्रवृत्ति करनेंवारे अन्य जीवनकूं मिथ्यामार्गमें प्रवर्तावनेहारे तुम्हारे देखनेंकरि घोर पापबंध होय। सराहनेंवालेके सत्तर कोडाकोडी सागरकी स्थिति लियें मोहनीय कर्मका बन्ध होय है। इस कलिकालमें जैनधर्मका सत्यार्थ मार्गकूं श्वेताम्बरोंने बिगाड्या है। यातैं इनका स्वरूप जाननेंके अर्थि ऐसे प्रकरण पाय श्वेताम्बरनिके मतका स्वरूप दिखाया। इनकैं सत्यार्थ आप्तता कैसै होय? और हू मतवाले जे देव प्रत्यक्ष भयभीत तथा असमर्थ होय चक्र त्रिशूल खड्ग ग्रहण करि राखे हैं और कामी होय स्त्रीनिके अधीन होय रहे हैं अरु क्षुधा, तृषा, काम, राग, द्वेष, निद्रा, नीहार, वैर, विरोध प्रकट जाकै प्रसिद्ध हैं तिनके निर्दोषपना कैसैं होय। अरु जे इन्द्रियज्ञानसहित ज्ञानी तिनके सर्वज्ञपना आप्तपना कहांसे होय? तातैं सर्वज्ञ वीतराग परमहितोपदेशकहीके आप्तपना बनें है। अब पूर्वापरविरोधादि दोषनिकरि रहित सत्यार्थ पदार्थनिका उपदेश देनेवाला जो शास्ता ताका नाम प्रकट करता सूत्र कहै हैं,—

परमेष्ठी परंज्योतिर्विरागो विमलः कृती।
सर्वज्ञोऽनादिमध्यान्तः सार्वः शास्तोपलाल्यते ॥७॥

अर्थ—जो अर्थसहित अष्ट नामनिकूं धारण करै है सो शास्ता कहिये है। परमेष्ठी, परंज्योतिः, विरागः, विमलः, कृती, सर्वज्ञः, अनादिमध्यान्तः, सार्वः, एते सार्थक नाम जाके हैं सो शास्ता है याही कूं आप्त कहिये है ॥ ७ ॥ परमेष्ठी कहिये परम इष्ट जो इन्द्रादिकनिकरि वंद्य जो परमात्मा स्वरूपमें तिष्ठै सो परमेष्ठी है। कैसा है परमेष्ठी अंतरंग तो घातियाकर्मनिके नाशतैं प्रगट

भया अनंतज्ञानदर्शनसुखवीर्यस्वरूप अपना निर्विकार अविनाशी परमात्मस्वरूप तिसमें तिष्ठै है। अर बाह्यमें इंद्रादिक असंख्यात-देवनिकरि वंद्यमान समवसरण नाम सभाके मध्य तीन पीठके ऊपरि दिव्यसिंहासनमें चार अङ्गुल अंतरीक्ष (अधर) चौसठ चमरनिकरि युक्त विराजमान छत्रत्रयादिक दिव्य संपदाकरि विभूषित, इंद्रादिक देव तथा मनुष्यादिक निकट भव्यनिकों धर्मोपदेशरूप अमृतपान कराय जन्मजरामरणका संतापकूं निराकरण करता तिष्ठै है यातैं भगवान् आप्तकूं परमेष्ठी कहिये है। अर जो कर्मनिकी आधीनतातैं इंद्रियनिके काम भोगादिविषयनिमें तथा विनाशीक सम्पदारूप राज्यसंपदामें लीन भये स्त्रीनिके अधीन भये विषयांकी आतापसहित तिष्ठैं तिनके परमेष्ठीपणा नाहीं संभवै है। बहुरि जो परंज्योति है जाका परं कहिये आवरणरहित ज्योतिः कहिये अतीन्द्रिय अनंज्ञानमें लोक अलोकवर्ती समस्त पदार्थ अपने त्रिकालवर्ती अनन्त गुणपर्यायनिकरि सहित युगपत प्रतिविंबित होय रहे है, सो भगवान परंज्योतिस्वरूप आप्त है। अन्य जे इन्द्रियजनित ज्ञानकरि सहित अल्पक्षेत्रवर्ती वर्तमान स्थूल पदार्थनिकूं अनुक्रमकरि जानैं ताकूं परंज्योति कैसैं कह्या जाय? बहुरि जाके मोहनीयकर्मके नाशतैं समस्त पर वस्तुमें रागद्वेषका अभावतैं वांछारहित परमवीतरागता प्रगट भई वस्तुका सत्यार्थस्वरूप जानैं तदि कौनमें राग करै? कौनमें द्वेष करै? जैसा वस्तुका स्वभाव है तैसा रागद्वेषरहित जानै ऐसा विराग नामसहित अर्हंत ही आप्त है। जो कामी विषयनिमें आसक्त, गीत नृत्य वादित्रनिमें आसक्त, जगत्की स्त्रीनिकूं राजी करनेंमें, वैरीनकूं

मार लोकनिमें अपणा शूरपणा प्रकट करनेमें वांछासहित होय तिसके विरागपणा नाहीं संभवै है। बहुरि जाके काम, क्रोध, मान, माया लोभादिक भावमल नष्ट भया अर ज्ञानावरणादिक कर्ममल नष्ट भया अर मूत्र, पुरीष, पसेव, वात, पित्तादिक शरीरमल नष्ट होय निगोदरहित परम औदारिक छायारहित कांतियुक्त क्षुधा, तृषा, रोग, निद्रा, भय, विस्मयादिक रहित शरीरमें तिष्ठै सो आप्त भगवान अरहंत ही विमल हैं। अन्य जे काम क्रोधादि मलसहित ते विमल नाहीं हैं। बहुरि जिनके कछु करना नाहीं रह्या जो शुद्ध अनन्त ज्ञानादिमय अपना स्वरूपकूं प्राप्त होय कृतकृत्य व्याधिउपाधिरहित भया सो भगवान आप्त ही कृती हैं। अन्य जे जन्म-मरणादिसहित चक्र त्रिशूल गदादिक आयुध अर कनककामिनीमे आसक्त भोजनपान कामभोगादिककी लालसासहित शत्रुनिके मारनेकी आकुलता सहित हैं ते कृती नाहीं हैं। बहुरि जो इन्द्रियादिक परकी सहायरहित युगपत् समस्त द्रव्यगुणपर्यायनिकूं क्रमरहित प्रत्यक्ष जानैं सो भगवान आप्त ही सर्वज्ञ हैं। अन्य इन्द्रियाधीन ज्ञानकरि सहित सो सर्वज्ञ नाहीं हैं। बहुरि जाका जीव द्रव्यकी अपेक्षा तथा ज्ञान दर्शन सुख वीर्यकी अपेक्षा आदि मध्य अन्त नाहीं तातैं अनादिमध्यान्त है अथवा भगवान आप्त अनादि कालतैं है अर अन्तको प्राप्त नाहीं होयगा तातैं अनादिमध्यान्त है अर जिनके मतमें आप्तके जन्म मरण तथा जीवका नवीन प्रगट होना तथा जीवके ज्ञानादि गुण नवीन प्रगट होना मानैं हैं तिनके अनादिमध्यान्तपणा नाहीं बनै है। बहुरि जिनके वचनकी अर कायकी प्रवृत्ति समस्त जीवनके हितके अर्थि ही है सो भगवान

आप्त सार्व कहिये है। अन्य जे काम क्रोध संग्रामादिक हिंसा-प्रधान समस्त पापनिकरि अपना परका अहितमें प्रवर्तन करै है करावै हैं तिनके सार्व ऐसा नाम हू नाहीं है। ऐसैं अष्ट विशेषण-सहित सार्थक नामनिकरि शास्ता जो आप्त, ताका असाधारण स्वरूप कह्या। 'शास्तीति शास्ता' इस निरुक्तिका ऐसा अर्थ है जो शिष्य जे निकट भव्य तिनकूं हितरूप शास्ति कहिये शिक्षा करै सो शास्ता कहिये। अब कहै हैं जो शास्ता कहिये आप्त है सो सत्पुरुषनिकूं स्वर्गमुक्तिके प्राप्तकरनेवाली शिक्षा करता आपके कुछ विख्यातता तथा लाभ पूजादिक फलकूं वांछा नाहीं करै है, ऐसा दिखावै है,—

अनात्मार्थं विना रागैः शास्ता शास्ति सतो हितं।
ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शान्मुरजः किमपेक्षते ॥ ८ ॥

अर्थ—शास्ता जो धर्मोपदेशरूप करनेवाला अरहंत आप्त सो अनात्मार्थं कहिये अपना ख्याति लाभ पूजादिक प्रयोजन बिना तथा शिष्यनिमें रागभाव बिना सत्पुरुष जो निकट भव्य तिननैं हितरूप शिक्षा करै है जैसैं शिल्पी जो वादित्र बजानेवाला ताका हस्तका स्पर्शमात्रतैं नाना शब्द करता जो मृदंग, सो किंचित् अपेक्षा नाहीं करै है ॥ ८ ॥

भावार्थ—संसारी जन लोकमें जितना कार्य करै हैं तितना अपना अभिमान लोभ जस प्रशंसादिकके अर्थि करै है अर भगवान अरिहंत आप्त अपना प्रयोजन-विना इच्छा-विना ही जगतके जीवनिकूं हितरूप शिक्षा करै हैं जैसे मेघ प्रयोजन विना ही लोकनिका पुण्यउदयका निमित्ततैं पुण्यदे-

शनि में गमन करै अर गर्जना करै अर प्रचुर जलकी वरषा करै है। तैसैं भगवान आप्त हू लोकनिकेपुण्यके निमित्ततैं पुण्यदेश-निमें विहार करै अर धर्मरूप अमृतकी वरषा करता उपदेश करै है जातैं सत्पुरुषनिकी चेष्टा जो आचरण सो परका उपकारके अर्थि है। तथा जैसै कल्पवृक्षादिक वृक्ष तथा धान्यादिक तथा आम्रादिक वृक्ष परजीवनिका उपकारके अर्थ ही फलैं हैं। पर्वतादिक सुवर्ण रत्नादिकनिनै तथा प्रचुर जलनै अनेक वृक्षादिकनिनै इच्छाविना ही जगतका उपकारके अर्थ धारण करै है तथा समुद्रहू रत्नादिक-निनै तथा गौ दुग्धनै परके अर्थि ही धारण करै हैं तथा दातार परके उपकार निमित्त धनकूं धारण करै है तैसैंही सत्पुरुष वच-ननिकूं परोपकारके अर्थि ही इच्छा विना धारण करैहैं। वहुत क-रि कहा? जेते उपकारक पदार्थं हैं तितने इच्छा विना ही लोकनिकै पुण्यके प्रभावतै प्रगटैं हैं तैसै ही भगवान आप्त इच्छा विना ही लोकनिका परमोपकारके निमित्त धर्मरूप हितोपदेश करैहैं। ऐसै आप्तका स्वरूप तो च्यार श्लोकनिमे कह्या।

अब एक श्लोकमें सत्यार्थ आगमका लक्षण कहैं हैं,—

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकं।
तत्वापदेशकृत् सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनं॥९॥

अर्थ—शास्त्र ताकूं कहिये हैं जो सर्वज्ञ वीतराग का कह्या होय अर किसी वादीप्रतिवादी करि उल्लंघन नाहीं किया जाय अर दृष्ट जो प्रत्यक्ष अर इष्ट जो अनुमान तिनकरि जामे विरोध नाहीं आवै अर तत्त्व कहिये जैसा वस्तुका स्वरूप होय तैसा उपदेश

करनेवाला होय अर सर्व जीवनिका हितरूप होय अर कुमार्ग जो मिथ्यामार्ग ताकूं निराकरण करै ऐसैं छह विशेषण सहित शास्त्रका स्वरूप वर्णन किया ॥ ६॥

इहां ऐसा भाव जानना—जो कालके निमित्तकरि मिथ्यामार्गी बहुत पैदा भये हैं तिननें अपना अभिमान विषय-कषायपुष्ट करनें कूं अनेक खोटे शास्त्र रचि जगतकूं सत्यार्थ धर्मतैं भ्रष्ट किया है। जेते मत संसार में प्रवर्त्तै हैं। तितनें समस्त शास्त्रनितैंही प्रवर्तै हैं शास्त्र विना कोऊ मत है ही नाहीं। ब्राह्मणादिक तो वेद स्मृति पुराण हिंसाकी प्रधानताकरि अश्वमेध नरमेधादिक यज्ञ अर जीवनिका शिकार समस्त जलचारी, थलचारीनिकी हिंसा करनेंमें धर्म कहैं हैं। तथा देवतानिके अर पित्र्य व्यंतरादिकनिकूं तृप्तताके अर्थ मांसपिंडका देना हू धर्म बतावैं है। अर भवानी भैरवादिक देव, भैंसा-बकरा इत्यादिकनिकूं मार चढावैं, अर भक्षण किये ही प्रसन्न होय हैं। तथा देवता मांसाहारी ही है। राजनिका धर्म शिकार ही है इत्यादिक शास्त्रनिके वचनतैं ही प्रवर्तैंहैं तथा हरिहर ब्रह्मादिक भगवान हैं परमेश्वर है ऐसे कह करिकै हरीकूं तो निरन्तर ग्वालनिकी स्त्रीनिमें आसक्त होय बांसुरी बजावना, नाचना तथा गोवर्द्धन अहीरकूं मार स्त्री का हरना, अनेक न्याय-अन्याय लीला करना सो सब शास्त्रनिमें लिखी ही जगत मानै है। तथा हर जो शिव ताके अर्द्धअंगमें नारीका धसना, अर भस्म लगावना, अनेक हत्या तथा सरापनै प्राप्त होना, त्रिशूलादिक आ-युध रखना, फिर लोकका संहार करना ए समस्त शास्त्रनिमें

लिखनेतैं ही जगतके लोग निश्चय करैं है। तथा शिवका लिंग पार्वतीकी योनिमें तिष्ठतेकूं निरन्तर जल सींचना आक-धतूरा चढावना इत्यादि समस्त शास्त्रनिमें लिखनेतै ही जगतमें अनेक मनुष्य ऐसी प्रवृत्तिकूं ही धर्म जानि सेवन करै है। तथा ब्रह्माकूं समस्त सृष्टिका कर्ता अर पितामह कहैं हैं तिस ब्रह्माकूं अति-कामी होय अपनी पुत्रीसूं विषय करि भ्रष्ट हुवा कहै है। उर्वसी नाम अप्सरामे मोहित होय अपने चार हजार वर्षके तपके फलतैं चार मुख धारण कर उर्वसीकूं अवलोकन करि तपतै भ्रष्ट भया अर उर्वसीका सरापकूं प्राप्त भया सो समस्त उनके शास्त्रनिमें ही लिखा है। तथा जगतकी रचना करनेवाला अर पालन करनेवा-ला भगवान नारायण कच्छ, मच्छ, सूर, सिंहादिक अनेक अव-तार धारण करि दानवां का संहार करना तथा हनूमानकूं वांदरा, गणेशकूं हस्तीरूप अर मूसापरि चढ्या अर मोदक (लाडू) के भक्षणमें अतिरागी सो समस्त शास्त्र हीमें लिखै हैं। तथा जीव मारि देवतानिकूं तृप्ति करनेमें तलाव, कूप वा वावड़ी खुदावनेमें बड़ा धर्म होना शास्त्रहीमें लिखा है। तथा श्वेताम्बर अनेक कल्पित सूत्र रचे हैं तिनका भ्रष्टाचार समस्त शास्त्रनितैं ही प्रवर्तै है। तथा कलिकालके भेषधारी कुलदेव्यांकी पूजा क्षेत्रपालदि व्यंतरांकी आराधना तथा पद्मावती चक्रेश्वरी इत्यादिक देवीनिकी पूजा तथा अनेक मिथ्या प्ररूपणा तर्प-णादि लिखदिये हैं। तथा अन्य भील, म्लेच्छ, मुसलमाना-दिक समस्तके शास्त्र हैं। शास्त्रां विना मिथ्या कल्पना कैसैं प्रवर्तै? तातैं जगत में शास्त्र बहुत हैं।

शास्त्रनिके बलतै ही अनेक पाखण्ड, भेष, मिथ्या धर्म प्रवर्ते हैं तातैं परीक्षा-प्रधानी होय परीक्षा करि शास्त्रकूं ग्रहण करना। पूर्वोक्त छह विशेषणकरि सहित ही आगम है। प्रथम तो सर्वज्ञ वीतरागका कह्या होय जो सर्वज्ञ विना इन्द्रियजनित ज्ञानकरि जीव अजीव अतींद्रिय अमूर्तिक पदार्थनिकूं नाहीं प्रगट कर सकेगा तथा पाप पुण्यादिक अदृष्ट पदार्थनिकूं तथा परमाणु इत्यादिक सूक्ष्म पदार्थनिकूं कैसैं प्ररूपण करैगा। तथा स्वर्ग नरककी पर्यायनिकूं अर स्वर्ग-नरकमें उपजे सुख-दुःखके कारण अनेक सम्बन्धनिकूं कैसैं जानैगा। तथा मेरु कुलाचलादिकनिका प्ररूपण कैसैं करैगा। तथा जीवादिक द्रव्यनिके अनन्त पर्याय होय गया अर अनन्त होयगा अर अनन्त वस्तुके अनन्त गुण अर अनन्तपर्यायनिका एक समयमें युगपत् परिणमन तिनको क्रमवर्ती इन्द्रियजनित ज्ञानका धारी कैसैं प्ररूपण करैगा। तातैं सर्वज्ञ बिना इन्द्रियजनितज्ञानिकै आगमका कहना यथार्थ नाहीं बनै है। सत्यार्थ आगमका कहना सर्वज्ञके ही बनैं है अर रागद्वेषका धारक अपना अभिमान पुष्ट करनेका इच्छुक, अपनी विख्यातता करनेका इच्छुक, तथा विषयांका लोभी होयगा सो सत्यार्थ नहीं कहैगा। तातैं सर्वज्ञ वीतरागका कह्या हुआ ही आगमकै प्रमाणता है। बहुरि जिस आगममे वादी प्रतिवादी करि दिखाया अनेक दोष आजाय सो आगम प्रमाण नाहीं जातैं वादी प्रतिवादी जाकूं उल्लंघन नाहीं कर सकै बाधा नाहीं दे सकै ऐसा अनुल्लंघ्य ही आगम है। बहुरि जिस आगममें प्रत्यक्ष अनुमानकरि बाधा नाहीं आवै सो आगम है। जिसमें प्रत्यक्ष

प्रमाणतै तथा अनुमान प्रमाणतैं बाधा आय जाय सो आगम प्रमाण नाहीं है। बहुरि जिस आगममें आपका अर परका निर्णय नाहीं तथा हेय उपादेय, कृत्य अकृत्य, देव कुदेव, धर्म-अधर्म, हित अहित,ग्राह्य अग्राह्य,भक्ष्य अभक्ष्यका निर्णय करि सत्यार्थ वस्तुका स्वरूप नाहीं वृथा शब्दोंका आडम्बररूप लोकरंजन असत्य कथा,देशकथा, राजकथा, स्त्रीकथा, कामकथा इत्यादिकरि अनेक विकथा संसारमें उरझानेवाला है, अर आत्माका संसारतैं उद्धार करनेका उपायरूप-कथन नाहीं कहै सो मिथ्या आगम है। यातैं तत्त्वभूत जीवके हितका उपदेशरूप जामें कथन होय सो तत्त्वोपदेशकृत् ही आगम है। बहुरि जो सर्व प्राणीनिका हितरूप उपदेश करनेवाला होय सो ही सार्वविशेषण सहित आगम है। जामें प्राणीनिकी हिंसाप्ररूपण करी तथा मांसभक्षण तथा जलथलआकाशगामी जीवनिके मारनेके उपाय तथा महाआरम्भके तथा मारण उच्चाटन करनेका, परधन हरनेका, संग्राम करनेका, सैन्यके विध्वंस करनेका, नगर ग्राम विध्वंस करनेका, परिग्रह परस्त्रीमे रुचनेका, उपाय वर्णन किया, सो आगम सार्व कहिये समस्त प्राणीनिका हितरूप नाहीं। बहुरि जो कुमार्गका निराकरण करि स्वर्ग मोक्षके मार्गका उपदेश करनेवाला होय सो कापथघट्टन विशेषण सहित आगम है अर जो शृंगार वीर रसादिकका वर्णनकरि कुमार्गमें प्रवर्तावनेवाला तथा जुआ मांसभक्षणादिक खोटे विसनिरूप मार्गमे तथा संसारमें डुबोवनेके कारण जो रागी, द्वेषी, विषयी, कषायी देव तिनकी सेवा तथा पाषंडी भेषीनिकी उपासना, मिथ्या धर्मरूप कुमार्ग तिनमें प्रवर्तिरूप कथनी जामें होय सो खोटा आगम है। जो विशेष नाहीं

समझैं तिनकूं भी इतना समझना चाहिये जो वीतरागका आगम होयगा तामें रागादिक विषय कषायका अभाव अर समस्त जीवनि की दया ये दोय तो प्रधान होंय ही। ऐसैं एक श्लोकमें आगमका लक्षण कह्या।

अब तपस्वी जो सत्यार्थगुरु ताका स्वरूप कहैं हैं,—

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥१०॥

अर्थ—जो पांच इन्द्रियनिकी विषयानिकी जो आशा कहिये वांछा ताकरि रहित होय, छह कायके जीवनिका घात करनेवाला आरम्भ करि रहित होय अर अन्तरंग बहिरंग समस्त परिग्रहकरि रहित होय अर ज्ञान ध्यान तपमें आसक्त होय ऐसैं चारि विशेषण सहित जो तपस्वी कहिये गुरु सो प्रशंसा करिये है ॥१०॥

जो रसना इन्द्रियका लम्पटी होय, नाना रसनिके स्वादकी आशाके वशीभूत होय रह्या होय तथा कर्ण इन्द्रियका वशीभूत होय, अपना यश प्रशंसा सुनवाका इच्छुक होय, अभिमानी होय तथा नेत्रादिककरि रूप महल मन्दिर वन बाग ग्राम आभरण वस्त्रादिक देखनेका इच्छुक तथा कोमल शय्या कोमल ऊंचा आसन ऊपरि सोवने बैठनेका इच्छुक, सुगन्धादिक ग्रहण करनेका इच्छुक विषयोंका लम्पटी होय सो औरनिकूं विषयनितैं छुडाय वीतराग मार्गमे नाहीं प्रवर्तावै, सराग मार्गमे लगाय संसार समुद्रमें डवोय देय है। तातैं विषयनिकी आशाके वश नाहीं होय सो ही गुरु आराधना-करने वन्दने योग्य है। जातैं विषयनिमें जाके अनुराग होय सो तो आत्मज्ञानरहित बहिरात्मा है गुरु कैसै होय बहुरि

जाकैं त्रसस्थावर जीवनिका घातका आरम्भ होय ताकै पापका भय नाहीं, पापिष्ठकैं गुरुपना कैसैं संभवै। बहुरि जो चौदह्प्रकार अन्तरंगपरिग्रह अर दसप्रकार वहिरंगपरिग्रहसहित होय सो गुरु कैसैं होय ? परिग्रही तो आप ही संसारमें फंसरह्या है सो अन्यका उद्धारक गुरु कैसैं होय। इहां मिथ्यात्व १, वेद जो स्त्री-पुरुष नपुंसक २, राग ३, द्वेष ४, हास्य ५, रति ६, अरति ७, शोक ८, भय ९ जुगुप्सा १०, क्रोध ११, मान १२, माया १३, लोभ १४, ऐसैं चौदह प्रकार अन्तरङ्ग परिग्रह हैं। इनका स्वरूप कहिये है,—यद्यपि मनुष्यादि पर्याय अर शरीर अर शरीरका नाम शरीरका रूप तथा शरीरके आधार जाति, कुल, पदस्थ, राज्य, धन, कुटुम्ब, जस-अपजस, ऊंच नीचपना, निर्धनपना, मान्यता अमान्यता, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादिक वर्ण, स्वामी सेवक, जती, गृहस्थपना इत्यादिक वहुत प्रकार हैं ते पुद्गलनिकी रचनामय कर्मनिके किये हुए प्रत्यक्ष देखैं हैं, सुनैं हैं, अनुभवैं हैं जो ये विनाशीक हैं पुद्गलमय हैं मेरा स्वरूप नाहीं है ऐसैं आछीतरह वारम्वार निर्णय करि राख्या हैं तो हू अनादिकालतैं मिथ्यात्वकर्मका उदयकरि ऐसा संस्कार दृढ होय रह्या है जो इनिका नाशतैं आपका नाश मानै हैं। इनके घटनेतैं अपना घटना, वढनेतैं अपना वढजाना, ऊंचापना नीचापना मानि समस्त देहादिकमय होय रहे हैं। यद्यपि अपने वचनकरि इन समस्तकूं पररूप कहैं हैं हमारा नाहीं, पराधीन विनाशीक हैं तथापि अभ्यन्तर इनका संयोग वियोगमें राग-द्वेष-सुख-दुःखरूप अपनें आत्माका होना सो मिथ्यात्व नाम परिग्रह है ॥१॥ बहुरि स्त्री पुरुष नपुंसकादिकमें कामसेवनेरूप राग अन्तरङ्ग मैं

होना सो वेद नामका परिग्रह है ॥ २ ॥ परद्रव्य जो देह धन स्त्री पुत्रादिकनिमें रंजायमान होना सो रागपरिग्रह है ॥ ३ ॥ परका ऐश्वर्य, यौवन, धन, सम्पदा, यश, राज्य विभवादिकतैं वैर रखना सो द्वेषपरिग्रह है ॥४॥ हास्यके परिणाम सो हास्यपरिग्रह है ॥५॥ अपना मरण होनेंतैं वियोग, वेदनादि होनेंतैं डरपना सो भयपरिग्रह है ॥ ६ ॥ आपके रागकरनेवाला पदार्थमें आसक्ततातै लीन होना सो रतिपरिग्रह है ॥ ७ ॥ आपकूं अनिष्ट लागे तिसमें परिणाम नहीं लगना सो अरतिपरिग्रह है ॥८॥ इष्टका वियोग होतें क्लेशरूप परिणाम होना सो शोकपरिग्रह है ॥ ९ ॥ घृणावान वस्तुको देख श्रवण स्पर्शन चितवनादिक करि परिणाममें ग्लानि उपजना सो जुगुप्सापरिग्रह है अथवा परका उदय देख सुहावै नहीं सो जुगुप्सापरिग्रह है ॥१०॥ रोषके परिणाम सो क्रोधपरिग्रह है ॥११॥ ऊंच जाति, कुल, तप, रूप, ज्ञान, विज्ञान, ऐश्वर्य, बल इत्यादिका मद करनेकरि आपकूं ऊंचा और परकूं नीचा समझि कठोर परिणाम होना सो मानपरिग्रह है ॥ १२ ॥ कपटलिये वक्रपरिणाम सो मायापरिग्रह है ॥ १३ ॥ परद्रव्यनिमें चाहरूप परिणाम सो लोभपरिग्रह है ॥ १४ ॥ ऐसैं संसारका मूल आत्माका घातक तीव्रबन्धके कारण चतुर्दशप्रकार अभ्यंतरपरिग्रह है। अर क्षेत्र १, वास्तु२, हिरण्य ३, सुवर्ण ४, धन ५,धान्य ६ दासी ७, दास ८, कुप्य ९, भांड १० ऐसैं दशभेदरूप बाह्यपरिग्रह है। ऐसैं अन्तरङ्ग बहिरंग चौवीसप्रकारके परिग्रहरहित निर्ग्रन्थ मुनिकैं ही गुरुपना निश्चय करना। संयमधारण करकै भी अन्तरङ्ग बहिरङ्ग परिग्रहकरि जिनका मन मलीन है तिनके गुरुपना

नाहीं बनैं है। बहुरि जे निरन्तर दिवस रात्रिविषैं चालते हालते, बैठते, भोजन करतेहू ज्ञानाभ्यासमें धर्मध्यानमें इच्छानिरोध नाम तपमें आसक्त हैं ते गुरु प्रशंसायोग्य मान्य हैं, पूज्य हैं, वंद्य हैं इन गुणनि विना अन्यकूं सम्यग्दृष्टि वन्दनादिक नाहीं करै है। अथवा "ज्ञानध्यानतपोरत्नः" ऐसा हू पाठ है याका अर्थ ऐसा है ज्ञान ध्यान तप ही हैं रत्न जाकै ऐसा गुरु होय है। ऐसा गुरुका स्वरूप कह्या।

ऐसैं देव गुरु आगमका श्रद्धान है लक्षण जाका ऐसा सम्यग्दर्शन ताका निःशंकित नाम गुण कहनेकूं सूत्र कहैं हैं;—

इदमेवेदृशं चैव तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा।
इत्यकम्पायसाम्भोवत्सन्मार्गेऽसंशया रुचिः ॥ ११ ॥

अर्थ—इदं कहिये यह आप्त आगम गुरुका लक्षण कह्या सो ही तत्वभूत सत्यार्थ स्वरूप हैं। ईदृशं चैव कहिये और इस प्रकार ही है, अन्यप्रकार नाहीं। ऐसैं अकम्प जो खड्गको जल तिसकी ज्यों सन्मार्गमें संशयरहित जो रुचि कहिये श्रद्धान सो निःशंकित गुण है ॥ ११ ॥

भावार्थ—संसारमें जब अनेक प्रकारके गदा चक्र त्रिशूलादिक आयुध अर स्त्रीनिमें अति आसक्त क्रोधी, मानी, मायाचारी, लोभी अपना कर्तव्य दिखावनेंके इच्छुकनिकूं देव कहैं हैं अर हिंसा तथा काम क्रोधादिकनिमें धर्मका प्ररूपक आगमकूं आगम कहैं हैं, अनेक पाखण्डी लोभी कामी अभिमानीनिकूं गुरु कहैं हैं सो कदाचित नाहीं हैं। ऐसा जाके दृढ़ श्रद्धान है मूढनिकी

खोटी युक्तिकरि जाका चित्त चलायमान नाहीं होय तथा खोटे देवतानिके विकार करनेकरि मन्त्र तन्त्रादिकरि परिणाम विकारी नाहीं होंय हैं। जैसे खड्गका जल पवनकरि चलायमान नाहीं होय तैसें परिणाम सत्यार्थ देव गुरु धर्मके स्वरूपतैं मिथ्यादृष्टीनिके वचनरूप पवनकरि संशयकूं नाहीं प्राप्त होंय, तिसके निःशंकित-गुण होय है। इहां और हू विशेष कहिये हैं,—

जो आत्मतत्त्वका स्वरूप निर्दोष आगममें कह्या ताकूं स्वानुभवकरि आपकूं आप जाण्या अर पर-पुद्गलनिके सम्बन्धकूं पररूप जाण्या सो सम्यग्दृष्टि सप्तभयकरिरहित होय, निःशंकित-गुणकूं प्राप्त होय है। सो सप्तभयके नाम कहैं हैं—इसलोकका भय १, परलोकका भय २, मरणका भय ३, वेदनाभय ४, अनरक्षक भय ५, अगुप्ति भय ६, अकस्मात् भय ७,। तिनमें अपना परिग्रह कुटम्बादिक तथा आजीविकादिक बिगड़ि जानेंका भय सो इसलोकका भय है सो समस्त संसारी जीवनिके है। बहुरि जा परलोकमें कौन गति क्षेत्रकूं प्राप्त हूंगा ऐसा परलोकका भय है। बहुरि मरण होनेंका बड़ा भय जो मेरा नाश होयगा, नाहीं जानिये कैसा दुःख होयगा, मेरा अभाव होयगा, ऐसा मरणभय है। बहुरि रोगादिक कष्ट आयवेका भय सो वेदनाभय है। बहुरि अपना कोऊ रक्षक नाहीं ऐसा जानि भय करना सो अनरक्षकभय जानना। बहुरि अपनी वस्तुका चोरनेका भय सो अगुप्ति भय है। बहुरि अकस्मात् अचानक दुःख उपजनेंका भय सो अकस्मात् भय है। अपना अर परका स्वरूपकूं सम्यक् जाननेवाला सम्यग्दृष्टिके ये सप्तभय नाहीं होंय हैं। इस देहमें

पगके नखतैं लगाय मस्तक पर्यंत जो ज्ञान है चैतन्य है सो हमारा धन है इस ज्ञानभावतैं अन्य एक परमाणू मात्र हू हमारा नाहीं है। देह अर देहके सम्बन्धी जे स्त्री पुत्र धन धान्य राज्य विभवादिक हैं ते मोतैं भिन्न परद्रव्य हैं, संयोगतै उपजैं हैं हमारा इनका कहा संबंध ? संसारमें ऐसे सम्बन्ध अनन्तानन्त होंय वियोग भये हैं। जिनका संयोग भया है तिनका वियोग निश्चयतैं होयहीगा। जो उपजा है सो विनसैगा। मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा उपज्या नाहीं, विनसूंगा नाहीं, ऐसा जाके दृढ निश्चय है तिसकै देह छूटनेंका अर दस प्रकार परिग्रहका वियोग होनेका भय नाहीं तदि इस लोकके भयरहित सम्यग्दृष्टि निःशंक हैं। बहुरि सम्यग्दृष्टिकै परलोकका भय हू नाहीं है। जिसमें समस्त वस्तु अवलोकन करिये सो लोक है। जातैं हमारा लोक तो हमारा ज्ञानदर्शन है जिसमें समस्त प्रतिबिंबित होय रहे हैं।

भावार्थ—जो समस्त वस्तु झलकैं हैं सो हमारा ज्ञानस्वभाव मैं अवलोकन करूं हूं, हमारे ज्ञानके बाह्य किसी वस्तुकूं मैं नाहीं देखूं हूं, नाहीं जाणूं हूं, जो कदाचित् हमारा ज्ञान है सो निद्राकरि मुद्रित होय जाय तथा रोगादिककरि मूर्छाकरि मुद्रित होय जाय तो समस्त लोक विद्यमान हैं तो हू अभावरूपसा ही भया यातैं हमारा लोक तो हमारा ज्ञान ही है। हमारा ज्ञान बाह्य किसी वस्तुकूं देखनें जाननेमें आवै नाहीं है अर हमारे ज्ञानतैं बाह्य जो लोक है जिसमें नानाप्रकार नरकस्वर्ग सर्वज्ञके प्रत्यक्ष हैं सो सब मेरा स्वभावतैं अन्य है। पुण्यका उदय है सो देवादि शुभगति का देनेवाला है। अर पापका उदय है सो नरकादिक अशुभगति

का देनेवाला है यातैं पाप पुण्य दोऊ ही विनाशीक हैं अर स्वर्ग नरकादिक पुण्य पापका फल हू विनाशीक है। अर मैं आत्मा ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यका अविनाशपणानैं धारण करता अखण्ड हूँ, अविनाशी हूं, मोक्षका नायक हूँ, मेरा लोक मेरे मांहीं ही है। तिसहीमें समस्त वस्तुकूं अवलोकन करता वसूं हूं। ऐसैं परलोकका भयकूं नाहीं प्राप्त होता सम्यग्दृष्टि निःशंक है। बहुरि स्पर्शन रसना घ्राण नेत्र कर्ण ये पंच इंद्रिय अर मन वचन कायका बल अर आयु अर श्वासोच्छ्वास ये कर्मनिकरि रचे बाह्य-प्राण हैं पुद्गलमय हैं इन प्राणनिका नाशकूं जगतमें मरण कहैं हैं अर आत्माका ज्ञान दर्शन सुख सत्तारूप भावप्राण हैं तिनका नाश कोऊ कालमें हू नाहीं है। यातैं जो उपजैगा सो मरैगा सो पुद्गल परमाणु संचयकूं प्राप्त होय इंद्रियादिक प्राणस्वरूपकरि उपजैं हैं ये ही विनशैं है ये मेरा स्वभावरूप ज्ञान-दर्शन सुख सत्ता कदाचित् तीनकालमें हू विनाशीक नाहीं हैं। इन्द्रियादिक प्राण पर्यायकी लार उपजैं हैं विनशैं हैं, मैं तो चैतन्य अविनाशी हूँ, ऐसा निश्चयका धारक सम्यग्दृष्टिके मरणके भयकी शंका नाहीं है। बहुरि वेदना भयकूं जीत निःशंक है। वेदना नाम जाननेंका है सो जाननेंवाला मैं जीव हूँ सो अपना एक अचलज्ञानका ही अनुभव करूं हूँ सो तो वेदना अविनाशीक है। सो ज्ञानका अनुभव वेदना तो शरीरविषै नाहीं है अर वेदनीयकर्म-जनित सुखदुःखरूप वेदना है सो मोहकी महिमातैं आपमें ही दीखै है परन्तु मेरा रूप नाहीं है शरीरमें हैं। मैं इसतैं भिन्न ज्ञाता हूँ, ऐसैं ज्ञानवेदनातै देहकी वेदनाकूं भिन्न जानता सम्यग्दृष्टि

निःशंक है। वहुरि अनरक्षकभय हू सम्यग्दृष्टिकै नाहीं होय है जातैं जगतविषै जो सत्तारूप वस्तु है ताका त्रिकालहूमें नाश नाहीं है ऐसा हमारे दृढ निश्चय है तातैं मेरा ज्ञानस्वरूप आत्मा हू स्वयं किसीकी सहाय विना ही सत् है। यातैं याका कोऊ रक्षा करनेवाला हू नाहीं, अर कोऊ याका विनाश करनेवाला भी नाहीं है। जाका कोऊ विनाश करनेवाला होय ताका रक्षक हू कहूँ देख्या चाहिये, तातैं सम्यग्दृष्टि अविनाशी स्वरूपकूं अनुभव करता अनरक्षाभयरहित निःशंक है। वहुरि अगुप्तिभय जो कपाटादिककी रक्षा विना हमारा धन नष्ट होय जासी, ऐसा चोरको भय सो हू नाहीं है जो वस्तुका स्वरूप निजरूप अपने स्वरूपकै मांहीं ही है अपना रूप आपतैं वाहर नाहीं है यातैं चैतन्यस्वरूप जो मैं आत्मा ताका चैतन्यरूप हमारे मांही ही है यामें परका प्रवेश नांही यो अनन्तज्ञानदर्शन हमारा रूप सो ही हमारा अप्रमाण अविनाशी धन है यामें चोरका प्रवेश नांही, चोर हर सकै नांही तातैं सम्यग्दृष्टि अगुप्तिभय रहित निःशङ्क है। वहुरि सम्यग्दृष्टि के अकस्मात्भय हू नाहीं है जातैं मेरा आत्मा तो सदा काल शुद्ध है, दृष्टा है, अचल है, अनादि है, अनन्त है, स्वभावतैं सिद्ध है, अलक्ष है, चैतन्य प्रकाशरूप सुखका स्थानक है इसमें अचानक कछु हू होना नाहीं है ऐसैं दृढभावयुक्त सम्यग्दृष्टि निःशङ्क है। जाकै सम्यग्दर्शन है ताके परिणाममें सप्त भय नांही हैं सत्यार्थ अपना स्वरूप जानैं विना सप्तभयरहित अपना आत्मा नांही होय है। वहुरि सम्यग्दृष्टि अहिंसाकूं ही धर्म निश्चयरूप जानैं है, जाकै ऐसी शङ्का नाहीं उपजै है, जो यज्ञ होमादिक जीवघातके

आरम्भ इनमें हू धर्म कछु तो होयगा ऐसी शङ्काका अभाव सो निःशङ्कित अङ्ग है।

अब एक श्लोक करि दूजे निःकांक्षितगुणकूं कहैं हैं:—

कर्मपरवशे सांते दुःखैरन्तरितोदये ।

पापबीजे सुखेऽनास्था श्रद्धानाकङ्क्षणा स्मृता ॥१२॥

अर्थ—जो इन्द्रियजनित सुखमें सुखपनाका आस्थारहित श्रद्धानभाव सो अनाकांक्षणा नामा सम्यक्त्वका गुण भगवान कह्या है। कैसाक है इन्द्रियजनित सुख, कर्मनिके परवश है स्वाधीन नाहीं है पुण्यकर्मके उदयके अधीन है। पुण्यकर्मका उदयके सहाय विना कोट्यां उपाय महान पुरुषार्थ करते हू सुखकी प्राप्ति नाहीं होय है इष्टका लाभ नाहीं होय है बहुत अनिष्टको प्राप्त होय है। अर कदाचित् पुण्यके उदय करि सुखकूं प्राप्त भी होय तो सो सुख अन्तकरि सहित है पराधीन कितने काल भोगैगा? जातैं इन्द्रियजनित सुख है सो अपने इष्ट विषयके अधीन है अर इष्टको समागम है सो विनाशीक है। इन्द्रधनुषवत् बिजुरीका चमत्कारवत् क्षणभंगुरि है तथा पराधीन है, शरीरकी नीरोगिताके अधीन तथा धनके अधीन, स्त्रीके अधीन, पुत्रके अधीन, आयुके अधीन, जीविकाके अधीन तथा क्षेत्रके अधीन, कालके अधीन इन्द्रियनिके अधीन, इन्द्रियनिके विषयके अधीन इत्यादिक हजारां पराधीनताकरि सहित अर पतनके सम्मुख केतेक काल भोगनेमें आवै है तातैं इन्द्रियजनित सुख है सो अवश्य अन्तकरि सहित ही है। अर अन्तकरि सहित है तो हू अखण्ड धारा प्रवाहरूप नाहीं है बीचि-बीचिमें अनेक दुःखनिके उदय

सहित है। कदे तो रोग आय जाय है, कदे स्त्री-पुत्र-मित्रको वियोग होना, कदे अपमानको होना, कदे धनकी हानि होना, कदे अनिष्ट को संयोग होना, ऐसैं अन्तरित अनेक दुःखनिसहित है। बहुरि पापका बीज है इन्द्रियजनित सुखनिमें लीन होते अपना स्वरूप भूलै ही, अर महाघोर आरम्भमें तो प्रवर्तै ही, अन्यायके विषय-सेवन करै ही, यातैं पापबन्ध होय ही है, तातैं इन्द्रयजनितसुख नरक तिर्यंचादिक गतिमें परिभ्रमण करावनेवाला पापबन्धका बीज है। ऐसा पराधीन अन्तसहित दुःखनिकरि व्याप्त जे इन्द्रियजनित सुख हैं ते सम्यग्दृष्टिकूं सुख नाहीं दीखैं हैं तदि सुखमें आस्थारूप श्रद्धान कैसैं होय ? जब श्रद्धान ही नाहीं तदि वांछा कैसैं करै ? भाव ऐसा जानना जो सम्यग्दृष्टि है ताकै आत्माका अनुभव होय ही अर आत्माका अनुभव भया तब आत्मा स्वभाव जो अतींद्रिय अनन्तज्ञान अर निराकुलतालक्षण अविनाशीक सुख तिसका अनुभव होय है। जातैं संसारीनिकै जो इन्द्रियनिके अधीन सुख है सो तो सुखाभास है, सुख नाहीं है, वेदनाका इलाज है जाकै क्षुधाकी तीव्र वेदना उपजैगी सो भोजन करि सुख मानैगा। तृषा उपजैगी सो शीतल जल पीया चाहैगा। शीतकी वेदना व्यापैगी सो रुईका वस्त्र तथा रोमादिक वस्त्र ओढ्या चाहैगा। गरमीकी वेदना उपजैगी सो शीतल पवन चाहैगा, जातैं वेदना विना इलाज कौन चाहै ? नेत्ररोग विना खपरयो नेत्रनिमें कौन क्षेपै ? कर्ण-रोग विना बकराका मूत्र तथा तैलादिक कर्णमें कौन क्षेपै ? तथा शीतज्वरकी वेदना विना अग्निका ताप तथा सूर्यका आताप आदरतैं कौन सेवन करै ? तथा वातरोग विना दुर्गंध तैलादिकका मर्दनादिक

कौन आदरै ? तातैं इन संसारीक पांचौं इन्द्रियनिके तीव्र चाह-रूप आताप उपजै है तदि विषयनिके भोगनेकी इच्छा उपजै है। तातैं विषय भोगना तो उपजी हुई वेदनाकूं थोरे काल शान्ति करै है फिर अधिक-अधिक वेदना उपजावै है यातैं इंद्रियनिके विषयनिके भोगनेतैं उपज्या सुख है सो तो दुःखही है। बाह्य-शरीर इन्द्रियादिककूं ही आत्मा जाननेंवाला बहिरात्मा है सो विषयनिकी वेदनापूर्वक इलाजकूं सुख मानैं है। सो मानना मोह-कर्मजनित भ्रम है। सुख तो वेदना ही नाहीं उपजै ऐसा निरा-कुलता लक्षणरूप है। विषयनिके अधीन सुख मानना मिथ्या श्रद्धान है, यातैं सम्यग्दृष्टिकूं अहमिंद्रलोकका हू सुख पराधीन आकुलतारूप विनाशीक केवल दुःखरूप ही दीखै है। तातैं सम्यग्दृष्टिकै इंद्रियजनित सुखमें वांछा कदाचित् नाहीं होय है। इस जन्ममें तो धन सम्पदा विभवादिक नाहीं चाहै है अर पर-लोकमें इंद्रपना, चक्रीपना इत्यादिक कदाचित् हू नाहीं चाहै है ए इन्द्रियनिके विषय तो अल्पकाल हैं अर आगै इनका फल असंख्यातकाल नरकका दुःख तथा अनन्तकाल, असंख्यातकाल तिर्यंचादिक गतिनिमें तथा महादरिद्री, महारोगी नीच कुलके धारक कुमानुषनिमें अनेक जन्म धारणकरि दुःख भोगवै है। इस जगतमें आशा अर शङ्का दोऊ मोहके उदयकरि जीवके निरंतर वर्तैं हैं। सो आशा किये कुछ प्राप्ति होय नाहीं है। समस्त जीव अपने नित्य ही धनकी प्राप्ति, नीरोगता, कुटुम्बकी वृद्धि, इंद्रिय-निका बल अपनी उच्चता चाहैं हैं परन्तु चाह किये कुछ होय नाहीं है समस्त जीव चाहकरि निरन्तर पापका बन्ध अर अन्त-

रायका तीव्र वन्ध करैं हैं । अर केतेक भोगाभिलाषी होय दान, तप, व्रत, शील, संयम धारण करैं हैं परन्तु वांछा करि पुण्यका घात होय है । पुण्यवन्ध तो निर्वाञ्छककै होय है । तथा शुभ-अशुभ कर्मके दिये विषयनिमें सन्तोषी होय, निराकुल होय विषयनिमे वांछा नाहीं करै तिसके पुण्यका वन्ध होय है । बहुरि समस्त जीव नित उठ यह चाहैं हैं मेरे वियोग, मरण, हानि, अपमान, धनका नाश, रोग वेदना, मत होहु । निरन्तर इनकी शङ्का करैं हैं, बहुत भय करै हैं तो हू वियोग होय ही, मरण होय ही तथा धनहानि, वलहानि, अपमान, रोग वेदना पूर्वकर्मबन्ध किये तिनके अनुकूल होय ही । तिनकूं टालनेकूं इन्द्र, जिनेन्द्र, मन्त्र-तन्त्रादिक कोऊ समर्थ नाहीं; क्योंकि मरण होय है सो आयुकर्मका नाशतै होय है । अलाभादिक अन्तरायकर्मके उदयतैं होय है, रोग वेदनादिक असाता कर्मके उदयतै होय है । अर कर्मकूं हरनेमें अर देनेमें अर पलटनेमें कोऊ देव दानव इंद्र जिनेन्द्रादिक समर्थ हैं नाहीं, अपने भावनिकरि बन्ध किये कर्मनितैं अपने किये सन्तोष क्षमा तपश्चरणादिक भावनिकरि छुड़ावनेकूं आप ही समर्थ है अन्य नाहीं । ऐसैं दृढनिश्चयका धारक निःशङ्क निर्वाञ्छक सम्यग्दृष्टि ही होय है ।

इहां कोऊ प्रश्न करै है,—जो सकल परिग्रहके त्यागी जे मुनीश्वर साधु तिनकै तथा त्यागी गृहस्थनिकै तो शंकारहितपना तथा वांछा का अभावपना होय सकै है परन्तु व्रतरहित गृहस्थीनिकै निःशंकित निःकांक्षित कैसैं सम्भवै । अव्रतसम्यग्दृष्टि गृहस्थीके भोगनिकी इच्छा देखिये है । वणिज व्यवहारमें, सेवा करनेमें; लाभ

चाहै ही है अपने कुटुम्बकी वृद्धि, धनको वांछै ही है तथा रोगकी शंका कुटुम्बके वियोगकी शंका, जीविकाके विगडि जानेकी, धनके नाश होने की शंका निरन्तर वर्त्तै है। तदि निःशंकपना निर्वाञ्छकपना कैसैं होय ? अर निःकांक्षितभाव विना सम्यक्त्व कैसैं होय, तातैं अव्रती गृहस्थीकै सम्यक्त्व होना कैसैं संभवै ? तिसका उत्तर ऐसा जानना—

जो सम्यक्त्व होय है सो मिथ्यात्व अर अनंतानुवन्धी कषायके अभावतैं होय है यातैं अव्रतसम्यग्दृष्टि गृहस्थकै मिथ्यात्वका अभाव भया अर अनन्तानुबन्धी कषायका हू अभाव भया तातैं मिथ्यात्वके अभावतै तो सत्यार्थ आत्मतत्वका अर परतत्वका श्रद्धान प्रगट होय है। अर अनन्तानुबन्धी कषायके अभावतैं विपरीत रागभावका अभाव भया तदि ज्ञान श्रद्धानकी विपरीताका का अभावतैं इसलोक परलोक मरणभय आदिक सप्त भय अव्रतसम्यग्दृष्टिकै नाहीं है याहीतै अपने आत्माकूं अविनाशी टंकोत्कीर्ण ज्ञान दर्शन स्वभाव श्रद्धान करै है। अर विपरीत जो पर वस्तुमें वांछा ताका अभावतैं समस्त इन्द्रियनिके विषयनिमें वाँछारहित है। स्वर्गलोकमें उपजे इंद्र अहमिंद्रनिके हू विषयभोगनिकूं विष समान दाह-दुःखके उपजावनेवाले जानि कदाचित् स्वप्नमे हू वांछा नाहीं करै है। अपना आत्माधीन निराकुलतालक्षणरूप अविनाशी ज्ञानानन्दहीकूं सुख मानैं है अर अपने देहकूं धन सम्पदादिकनिकूं कर्मजनित पराधीन विनाशीक दुःखरूप जानि ये हमारा है ऐसा विपरीत झूठा संकल्प हू नाहीं करै। यातैं अनंतानुवंधी कषायके उदयजनित विपरीत झूठा भय शंका परवस्तुमें वांछा अव्रतसम्यग्दृष्टि

के कदाचित् नाहीं है। परन्तु अप्रत्याख्यानावरण कषाय, प्रत्याख्यानावरण कषाय, संज्वलनकषाय तथा हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद पुरुषवेद नपुंसकवेद इन इकवीस कषायके तीव्र उदयतैं उपज्या रागभावका प्रभावकरि इन्द्रियनिका आतापका मारथा त्यागतै परिणाम कांपै है। यद्यपि विषयनिकूं दुःखरूप जानैं है तथापि वर्तमानकालकी वेदना सहनेकूं समर्थ नाहीं। जैसै रोगी कड़वी औषधिकूं कदाचित् पीवना भला नाहीं जानै है तथापि वेदनाका मारया कडवी औषधिकूं बड़ाआदरतै पीवैहै परन्तु अन्तरंगमे औषधि पीवना महा बुरा जानै जो ऐसा दिन कब आवैगा जिस दिन औषधिका नाम भी ग्रहण नाहीं करूंगा, तैसैं अव्रतसम्यग्दृष्टि हू भोगनिकूं भला कदाचित् नाँही जानै है परन्तु तिन विना निर्वाह होता दीखै नाहीं, परिणामनिकी दृढ़ता दीखै नाहीं। कषायनिका प्रवल धक्का लगि रहा है इन्द्रियनिका आताप सहा जाय नाहीं, यातैं वेदनाका मारथा वांछै है। संहनन कच्चा, कोई सहाई दीखै नाहीं, कषायनिका उदय करि शक्ति नष्ट हो रही है, परवश पड्या है तथा जैसै वन्दीगृहमें पड्या पुरुष वन्दीगृहतैं अति विरक्त है तथापि पराधीन पड्या महादुःखका देनेवाला वन्दीगृहकूं ही लीपै है, धोवै, भूवारै है। तैसैं सम्यग्दृष्टि हू वन्दीगृह समान देहकूं जानता क्षुधा तृषादिक वेदना सहनेकूं असमर्थ हुआ देहकूं अपना नांही जानैं है। वर्तमानकालकी वेदनाका ही याकै भय है। अर वेदना मेटनें मात्रही अव्रतसम्यग्दृष्टिकै वांछा है। कर्मके उदयके जालमें फंसा है। निकल्या चाहै है। तथापि राग द्वेष अभिमान अप्रत्याख्यानका

सम्बन्धही ऐसा है जो त्याग व्रतादिक चाहै है तो हू नाहीं होनें देहै। उदयकी दशा बड़ी बलवान है संसारी जीव अनादितै कर्मके उदयके जालमेंतैं निकल नाहीं सकैं हैं। देहका संयोग बनि रह्या तितने देहका निर्वाहकेअर्थि जीविका भोजन वस्त्रकूं वांछैही है। तथा अप्रत्याख्यान कषायका उदयकरि लोकमें अपनी नीची प्रवृत्तिका अभावरूप उच्चप्रवृत्ति चाहै है। धन सम्पदा जीविका बिगड़ जानेंका भय करै ही है, तिरस्कार होनेंका भय करै ही है। इन्द्रियनिका संताप सहनेंकी असमर्थपनातै विषयनिकूं वांछै है जातैं कषाय घटी नाहीं, राग घट्या नाहीं तातैं आगानै बहुत दुःख उपजतो दीखै, ताकूं टाल्या चाहै ही है, तथापि राज्यभोगसंपदानिकूं सुखकारी जानि वांछा नाहीं करै है। ऐसैं निःकांक्षित अंगका लक्षण कह्या।

अब निर्विचिकित्सा नामा तीसरा अंगका लक्षण कहनेकूं सूत्र कहैं हैं,—

स्वभावतोऽशुचौ काये रत्नत्रयपवित्रिते।
निर्जुगुप्सागुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता॥ १३॥

अर्थ—जो मनुष्यपर्यायका काय है सो स्वभावहीतैं अशुचि है यामें कोऊ उत्तम मनुष्यके रत्नत्रय प्रकट होजाय तो अशुचि भी काय पवित्र है। यातै व्रतीनिका देह रोगादिकतै मलिन हू देख इसमें जुगुप्सा जो ग्लानि ताका अभाव अर रत्नत्रयमें प्रीति सो निर्विचिकित्सित नामा अंग है॥ १३॥

भावार्थ—यो देह तो सप्तधातुमय तथा मलमूत्रादिकमय है। स्वभावहीतै अशुचि है। यो देह तो रत्नत्रयस्वरूप प्रकट होनेतैं

पवित्र है यातैं रोगसहित तथा वृद्धता तथा तपश्चरणकरि क्षीणता मलीनता देख ग्लानि जाकै नाहीं होय, अर गुणनिमें प्रीति होय ताकैं निर्विचिकित्सा नाम अंग है। यहां ऐसा विशेष जानना। जो सम्यग्दृष्टि है सो वस्तुका सत्यार्थ स्वरूप जानैं हैं। यातैं पुद्गलके नानास्वभाव जानि मलमूत्र, रुधिर, मांस, राध सहित तथा दरिद्र रोगादिक सहित मनुष्य तिर्यंचनिका शरीरादिकी मलीनता दुर्गन्धतादिक देखि करि तथा श्रवण करि ग्लानि नाहीं करै है। जो कर्मनिके उदय करि अनेक क्षुधा तृषा रोग दारिद्रादिककरि दुःखित होना तथा पराधीन वन्दीगृहादिकमें पड़ना, नीच कुलादिकमें उत्पन्न होना तथा नीचकर्मकरि मलीन भोजन करना, महामलीन वस्त्र धारना, खोटारूप अंग उपांगादिकनिका पावना होय है। सम्यग्दृष्टि यामे ग्लानि करि अपने मनकूं नाहीं विगाड़ै है। तथा कषायांके अधीन होय निंद्य आचरण करते देख अपने परिणाम नाहीं विगाड़ै है ताकैं निर्विचिकित्सा अंग होय है। तथा मलीन क्षेत्र. मलीन ग्राम तथा गृहादिकनिमें मलीनता, दरिद्रता देख ग्लानि नाहीं करै तथा अंधकार वर्षा ग्रीष्म शीत वेदना ताकरि सहित कालकूं देख ग्लानि नाहीं करै बहुरि आपके दरिद्रता तथा रोग आवता तथा वियोग होता तथा अशुभकर्मके उदयकूं आवता परिणामकूं मलीन नाहीं करै। जो मैं कर्मबन्ध किया ताके फलकूं मैं ही भोगूंगा, अशुभकर्मका फल तो ऐसा ही होय है ऐसैं जानि अपना परिणामकूं मलीन नाहीं करै। तिस पुरुषकै निर्विचिकित्सा अंग होय है। जिसके निर्विचिकित्सा अंग है तिसहीके दया है, तिसहीके वैयावृत्य होय, तिसहीके वात्सल्य स्थितिकरणादिक गुण

प्रकट होय हैं। ऐसैं सम्यक्त्वका निर्विचिकित्सा नामा अंग कह्या।

अब अमूढदृष्टिनामा सम्यक्त्वका चौथा अंग कहनेकूं सूत्र कहैं हैं,—

कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेऽप्यसंमतिः।
असंपृक्ति.रनुत्कीर्तिरमूढा दृष्टिरुच्यते ॥ १४ ॥

अर्थ— नरक तिर्यंच कुमानुषादि गतिनिका घोर दुःखनिका मार्ग ऐसा जो मिथ्यामार्ग तिसविषैं अर कुमार्गी जो मिथ्यामार्गमें तिष्ठनेवाले पुरुषनिविषैं जाकै मनकरि प्रशंसा नाहीं, वचनिकरि स्तवन नाहीं तथा कायकरि प्रशंसा जो अंगुलिनिके नखादिकनिका मिलाप नाहीं, सराहनां नाहीं सो अमूढदृष्टि है ॥ १४ ॥

इहां संसारी जीव मिथ्यात्वके प्रभावतैं रागी द्वेषी देवनिका पूजन प्रभावना देखि प्रशंसा करैं हैं, देवीनिकै जीवनिकी विराधना की प्रशंसा करैं हैं तथा दशप्रकारके कुदानकूं भला जानैं हैं तथा यज्ञ होमादिककूं तथा खोटे मंत्र तंत्र मारण उच्चाटनादिक कर्मनिकी प्रशंसा करै है तथा कुआ बावड़ी तालाब खुदावनेकी प्रशंसा करै है तथा कंदमूल शाक पत्रादिक भक्षण करनेवालेनिकूं उच्च जानि प्रशसा करै है तथा पंचाग्निकरि तपनेवाले, वाघंबर ओढ़नेवाले, भस्म लगानेवाले, ऊर्ध्वबाहु रहनेवालेनिकूं महान उच्च जानैं हैं तथा गेरुकरि रंगे वस्त्र तथा रक्त वस्त्र तथा श्वेतवस्त्रादिकनिकूं धारण करते कुलिंगीनके मार्गनिकी प्रशंसा करै हैं तथा खोटे तीर्थनिकी अर खोटे रागी द्वेषी मोही वक्रपरिणामी शस्त्रधारी देवनिकूं पूज्य जानैं हैं तथा जोगिनी, यक्षिणी, क्षेत्रपालादिनकूं धनके दातार

मानैं हैं तथा रोगादिक मेटनेवाले मानैं हैं, यक्ष क्षेत्रपाल पद्मावती चक्रेश्वरी इत्यादिकनिकूं जिनशासनके रक्षक मानि पूजैं हैं तथा देवतानिके कवलाहार मानि तेल, लापसी, पूवा, बड़ा, अतर पुष्पमाला इत्यादिककरि देवतानिकूं राजी करना मानैं हैं तथा देवतानिकूं रिसवत देनाकरि विचारैं हैं जो मेरा अमुक कार्य सिद्ध होजाय तो तेरे छत्र चढ़ाऊं, तेरे मन्दिर बनवाऊं, तेरे रुपया चढ़ाऊं, तथा जीव मारि चढ़ाऊं, सवामणका चूरमा करि चढ़ाऊं तथा बालकनिके जीवनेके अर्थि चोटी जडूला उतराऊं इत्यादिक अनेक बोली बोलना सो समस्त तीव्रमिथ्यात्वका उदयका प्रभाव है। जहां जीवनिकी हिंसा तहां महा घोर पाप है जातैं देवताके निमित्त, गुरुनिके निमित्त हिंसा संसार—समुद्रमें डबोवनेवाली है। कोऊ देवादिकनिके भयतैं तथा लोभतैं तथा लज्जातै हिंसाके आरंभमें कदाचित् मत प्रवर्तो। दयावानकी तो देव रक्षा ही करै है जो किसीका अपराध नाहीं करै ताकी विराधना देव हू नाहीं कर सकैं हैं। रागी द्वेषी शस्त्रधारी देव हैं ते तो आप ही दुःखी हैं, भयभीत हैं, असमर्थ है। समर्थ होय अर भयरहित होय सो शस्त्र कैसैं धारण करैं। अर क्षुधावान होय सो ही भोजनादिक करि पूजा चाहै, तातैं खोटे मार्ग जो संसारमें पतनके कारण ऐसे मिथ्यादृष्टीनिके त्याग व्रत तप उपवास भक्ति दानादिक अर इनके धारण करनेवालेनिकी मन-वचन-कायकरि प्रशंसा नाहीं करै सो अमूढ़दृष्टिनामा सम्यक्त्वका अङ्ग है। जावैं जाके देव कुदेवका तथा धर्म कुधर्मका तथा गुरु कुगुरुका तथा पाप पुण्यका तथा भक्ष्य अभक्ष्यका तथा त्याज्य अत्याज्यका

आराध्य अनाराध्यका तथा कार्य अकार्यका तथा शास्त्र कुशास्त्रका, दान कुदानका, पात्र अपात्रका तथा देनेयोग्य नाहींदेनेयोग्यका तथा युक्ति कुयुक्तिका तथा कहने-योग्य नाहीं—कहनेयोग्यका, ग्रहण करने-योग्य नाहीं-ग्रहण-करनेयोग्यका अनेकान्त रूप सर्वज्ञ वीतरागका परमागमतैं आछीतरह जानि निर्णय करि मूढ़ता रहित होय पक्षपात छोड़ करकैं व्यवहार परमार्थमें विरोधरहित होय तैसैं श्रद्धान करना सो अमूढ़दृष्टिनामा चौथा अङ्ग है।

अब उपगूहननामा सम्यक्त्वका पांचमा अङ्ग प्ररूपण करने कूं सूत्र कहैं हैं,—

स्वयंशुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्तजनाश्रयां।
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति तद्वदन्त्युपगूहनं॥ १५॥

अर्थ—यो जिनेन्द्रभगवानको उपदेश्यो हुवो रत्नत्रयरूप मार्ग है सो स्वयमेव शुद्ध है निर्दोष है, इस रत्नत्रयमार्गकै कोऊ अज्ञानीजनका आश्रय तथा कोऊ अशक्तजनकरि निंद्यता प्रगट भई होय ताहि जो दूर करें, शुद्ध निर्दोष करै तानै उपगूहन कहिये है॥ १५॥

इहां ऐसा जानना जो यो जिनेन्द्र भगवानका उपदेश्या हुवा दशलक्षणरूपधर्म तथा रत्नत्रयधर्म है सो अनादिनिधन है जगतके जीवनिका उपकार करने वाला है। समस्तप्रकार निर्दोष है कोऊ का हू यातैं अकल्याण नाहीं होय है अर कोऊकरि वाधा नाहीं दी जाय है ऐसा धर्मविषै कोऊ अज्ञानीके चूकनिके निमित्ततैं तथा कोऊ शक्तिहीनके निमित्ततैं जो धर्म की निन्दा होती होय ताकूं

दूर करै आच्छादन करै सो उपगूहननामा अङ्ग है।

भावार्थ—अन्य मिथ्यादृष्टि लोक सुनैंगे तो धर्मकी निन्दा करैंगे तथा एक अज्ञानीकी चूक सुनि समस्त धर्मात्मानिकूं दूषण लगावैंगे कहैंगे—इस जिनधर्ममें तो जेते ये ज्ञानी तपस्वी त्यागी व्रती हैं ते पाखण्डी हैं, गैरमार्गी हैं। एकका दोष देखि समस्त धर्म अर समस्त धर्मात्मा दूषित होय जायंगे तातैं धर्मात्मापुरुष होय सो धर्मात्मा में कोऊ दोष हू लगि जाय तो धर्मसूं प्रीति करि धर्ममें परके निमित्ततैं आगया दोषकूं ढांके हैं। जैसैं माताकी पुत्रमें ऐसी प्रीति है जो पुत्र कदाचित् अन्याय खोट हू करै तो ताके खोटकूं आच्छादन करै ही तैसैं धर्मात्मापुरुषकी साधर्मीतै तथा धर्मतैं ऐसी प्रीति है जो कर्मके प्रबलउदयकरि कोऊ साधर्मीके अज्ञानतातै तथा अशक्ततातैं व्रतमें, संयममें, शीलमें दोष आजाय, बिगड़ि जाय तो आपका सामर्थ्यप्रमाण तो आच्छादन ही करै। इहां विशेष ऐसा और हू जानना जो सम्यग्दृष्टिका स्वभाव ही ऐसा है जो कोऊ ही जीवका दोष प्रगट नाहीं करै अर अपना उच्चकर्तव्य प्रकाश नाहीं करै, अपनी प्रशंसा परकी निन्दा नाहीं करै है। सम्यग्दृष्टिकै परजीवनके दोष हूं देखि ऐसा विचार उपजै है जो इस संसारमें जीवनिकै अनादि कालका कर्मनिके वशीभूतपना है यातैं जहां मोहनीयका उदय तथा ज्ञानावरण दर्शनावरणका उदय प्रवर्तै है तहां दोषमें प्रवर्तनेका अर चूकनेका कहा आश्चर्य है। जीवनिकूं काम क्रोध लोभादिक निरन्तर मारै हैं, भुलावैं हैं, भ्रष्ट करै हैं। समस्त संसारमें रागद्वेष मोहके वशीभूत होय कौन

२ अनर्थ नाहीं किये हैं अब कोऊ जिनेन्द्रका परमागमका शरण का प्रसादतै किंचित् दोषकी अर गुणकी पहिचाण भई है तो हू अनादिकालका कषायनिका सस्कारकरि अनेक दोषनिमें प्राप्त होय रहा हूँ तातै अन्यजीवनिके कर्मके उदयकी पराधीनतातैं भये दोषनिकूं देखि करुणा ही करना। संसारी जीव विषयनिके अर कषायनिके वशीभूत होय पराधीन हैं। ए कषाय अर विषय ज्ञानकूं बिगाड़ि नाना प्रकार नाच नचावैं हैं अर आपा भुलावैं है। तातै अज्ञानी जनकृत दोषकूं देखि आप संक्लेश नाहीं करै है। क्षेत्रपालादिकके निमित्ततैं, जो भावी है, ताहि टालनेकूं कोऊ समर्थ नाहीं है। ऐसैं उपगूहन नामा सम्यक्त्वका पंचम अङ्ग कह्या।

अब स्थितिकरणनामा सम्यक्त्वका छठा अङ्ग कहनेकूं सूत्र कहैं हैं,—

दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितीकरणमुच्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—कोऊ पुरुष सम्यग्दर्शनकरि सहित श्रद्धानी था तथा चारित्रधारक व्रत संयमसहित था फिर कोऊ प्रबल कषायके उदयकरि तथा खोटी संगतिकरि तथा रोगकी तीव्र वेदना करि तथा दरिद्रताकरि तथा मिथ्याउपदेशकरि तथा मिथ्यादृष्टीनिके मन्त्र तन्त्रादिक चमत्कार देखि सत्यार्थ श्रद्धान, आचरणतैं चलायमान होता होय तिनकूं चलते जानि जिनकी धर्ममें वात्सल्यता है ऐसे धर्मात्मा प्रवीण पुरुष ताकूं उपदेशादिकरि फिर सत्यार्थ

श्रद्धानमें चारित्रमें स्थापन करैं सो स्थितिकरण कहिये ॥ १६ ॥

इहां ऐसा जानना कोऊ धर्मात्मा अव्रतसम्यग्दृष्टि तथा व्रती पुरुषका परिणाम रोगकी वेदनाकरि तथा दरिद्रताकरि वियोगकरि धर्मतैं चिग जाय तो धर्ममें प्रीतिके धारक प्रवीण पुरुष ताकूं धर्मतैं छूटता जानि ताकूं उपदेशकरि धर्ममे स्थिर करै ताकै स्थितिकरण अङ्ग है। भो धर्मके इच्छुक! धर्मानुरागी होय मनुष्यभव अर यामें उत्तम कुल, इन्द्रियनिकी शक्ति, धर्मका लाभ ये बहुत दुर्लभ मिल्या है अर छूटे पाछै इनका पावना अनन्तकालमें हू कठिन है तातैं कर्मका उदयकरि प्राप्त भया रोग वियोग दारिद्रादिक दुःख तिनकरि कायर होय आर्त्तपरिणामी होना योग्य नाहीं। दुःखित भये कर्मका अधिक वन्ध होयगा, कायर होय भी भोगे तो कर्म नाहीं छाडैगा। अर धीरवीरपनाकरि भोगोगे तो हू नाहीं छाडैगा। तातैं दुर्गतिका कारण जो कायरता ताकूं धिक्कार होऊ। अव साहस धारण करो। मनुष्य जन्मका फल तो धीरता तथा संतोषव्रतसहित धर्मका सेवन करि आत्माका उद्धार करना है। अर जो मनुष्यका देह है सो रोगनिका घर है इसमें रोग उपजनेका कहा आश्चर्य है। यामें तो धर्म ही शरण है। अर रोग तो उपजैहीगा अर संयोग है सो वियोगकरि सहित ही है। कौन-कौन पुरुपनिपै दुःख नाहीं आये? तातैं अपना साहस धारण करि एक धर्मका ही अवलम्बन करो; बहुरि जे-जे वस्तु उपजै हैं ते-ते समस्त विनाशसहित हैं जो देह हीका वियोग होयगा तो अन्य अपने कर्मके आधीन उपजैं मरैं तिनिका हर्ष

विषाद करना वृथा बन्धका कारण है।

बहुरि इसदु:षमकालके मनुष्य है ते अल्पआयु-अल्पबुद्धि लिये ही उपजै हैं इस कालमें कषायकी आधीनता अर विषयनिकी गृद्धिता, बुद्धिकी मन्दता, रोगकी अधिकता, ईर्षाकी बहुलता दरिद्रता लिये ही बहुधा उपजैहै तातैं सम्यग्ज्ञानकूं प्राप्त होय कर्मके जीतनेकूं उद्यम करना योग्य है, कायर मति होहू। ऐसैं उपदेश देय परिणामकूं स्थिर करै। रोगी होय तो औषधि भोजन, पथ्यादिक कर उपचार करै। द्वादश भावनाका स्मरण करावै शरीरकी टहल मलमूत्रादिक विकृतिको दूर करनेकरि जैसैं तैसै परिणामनिकूं धर्मविषै दृढ़ करना सो स्थितिकरण है। तथा कोऊकै रोगकी अधिकताकरि ज्ञान चलायमान हो जाय, व्रत भङ्ग करने लगि जाय, अकालमे भोजन पानादिक जाचवा लगि जाय, त्याग करी वस्तुकूं चाहिवा लगि जाय, ताकूं दयालु होय ऐसा मधुर उपदेशादिक करै जाकरि फिर सचेत हो जाय वाकी अवज्ञा नाहीं करै। कर्म बलवान है वातपित्तादिक करि ज्ञान बिगड़नेका कहा प्रमाण है, सो यहां बहुत उपदेश लिखने करि ग्रंथ बढ़ि जाय तातैं थोरा ही करि बहुत समझना। तथा दारिद्रादिकरि पीड़ित ताकूं अपनी शक्तिप्रमाण उपदेश तथा आहार, पान, वस्त्र, जीविका, रहनेका मकान तथा पात्र तथा जैसैं स्थंभन होय जाय तैसै दान, सम्मान उपाय करि स्थिर करना सो स्थितिकरण नामा सम्यक्त्वका छठा अङ्ग है। जो अपना आत्मा हू नीतिमार्ग छोड़ता होय तथा काम मद लोभके

वश होय अन्यायका विषय अन्याय धनकी चाहरूप हो जाय तथा अयोग्य वचनमें प्रवृत्ति करने लगजाय, तथा अभक्ष्य भक्षणमें प्रवृत्ति होय जाय, अभिमानके वशी होय जाय, संतोषतैं चिगि जाय, अनेकपरिग्रहोंमें लालसा बधि जाय, कुटुम्बमें अतिराग बधि जाय, तथा रोगमें कायर होय जाय, आर्तध्यानी होय जाय वियोगमें शोकसहित होय जाय, तथा दरिद्रतातैं दीन होय जाय, उत्साहरहित आकुलतारूप होय जाय, ताकूं हू अध्यात्मशास्त्रका स्वाध्याय कराय भावनाको शरण ग्रहण कराय अपना आत्माका स्वभाव अजर-अमर अविनाशी, एकाकी, अन्य परद्रव्यका स्वभावरहित चिंतवन कराय धर्मतै नाहीं छूटने देना। तथा असातावेदनीय कर्म अन्तरायकर्म तथा अन्य हू कर्मका उदयकूं आपतैं भिन्न मानि कर्मका उदयतैं अपना स्वभावकूं नाहीं चलने देना सो स्थितिकरण नामा छठा अङ्ग है।

अब वात्सल्यनामा सम्यक्त्वका सप्तम अङ्गकें कहनेकूं सूत्र कहैं हैं,—

स्वयूथ्यान् प्रति सद्भावसनाथापेतकैतवा।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते ॥१७॥

अर्थ—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप धर्मके धारकनिका जो यूथ (समूह) सो धर्मात्मा कै अपना यूथ है। रत्नत्रयके धारकनिका यूथमें भये ऐसे मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका तथा अव्रत सम्यग्दृष्टि तिनतैं सत्यार्थभावसहित अर कपटरहित यथायोग्य

प्रतिपत्ति कहिये उठि खड़ा होना, सन्मुख जाना, बन्दना करना, गुणनिका स्तवन करना, अञ्जुलि करना, आज्ञा धारण करना, पूजा-प्रशंसा करना, उच्चस्थान बैठाय आप नीचे बैठना तथा जैसैं कोऊ दरिद्रीकै महा निधानका लाभतैं हर्ष होय तैसै धारना महान् प्रीतिका उपजाना अर यथाअवसरमे आहार पान, वस्तिका, उपकरणादिक करि वैयावृत्य करि आनन्द मानना सो वात्सल्यनामा अङ्ग कहिये है ॥१७॥

बहुरि यहाँ और विशेष जानना—जाके अहिंसा धर्ममें प्रीति होय जे हिंसारहित कार्य होंय तिनकूं प्रीतिसहित करै अरहिंसाके कारणनिकूं दूरहीतैं टाल्या चाहै तथा सत्यवचनमें, सत्यवचनके धारकनिमे अर सत्यार्थधर्मकी प्ररूपणामें प्रीति होय तथा परका धन परकी स्त्रीनिके त्यागमे राग होय परधन परस्त्रीका त्यागिनिमें जाकै प्रीति होय, तिसहीके वात्सल्य अंग होय है। तथा दशलक्षणधर्ममें अर धर्मके धारक साधर्मीनिमें जाकै अनुराग होय ताकै वात्सल्यअग होय है। बहुरि जाकै धर्ममें अनुरागकरि त्यागी संजमीनिमें महान् आदरपूर्वक प्रिय वचनकरि प्रवर्त्तन होय ताकै वात्सल्य अंग होय है। यद्यपि सम्यग्दृष्टिकै अन्तरंगमे तो अपना शुद्ध ज्ञानदर्शनमें अनुराग है अर वाह्यमें उत्तम क्षमादिधर्मके धारकनिमें तथा धर्मके आयतनमें अनुराग है तथापि अन्य मिथ्याधर्मीनितैं द्वेष नाहीं करै है। जातै प्रवचनसार सिद्धान्तमें ऐसैं कह्या है जो राग द्वेष मोह ये बन्धके कारण हैं तिनमें मोह जो मिथ्यात्व अर द्वेष ये दोऊ तो अशुभभाव ही हैं एकान्तकरके

संसारपरिभ्रमणका कारण पापकर्मका ही बन्ध करैं। अर राग भाव है सो शुभ अर अशुभ दोय प्रकार है तिनिमें अरहंतादिक पंचपरमेष्ठिनमें तथा दशलक्षणधर्ममें तथा स्याद्वादरूप जिनेन्द्रका आगममें तथा वीतरागका प्रतिबिंब, वीतरागप्रतिबिंबके आयतनमें अनुरागरूप शुभ राग है सो स्वर्गादिक साधक पुण्यबन्धका करनेवाला तथा परम्परायकरि मोक्षका कारण है। अर विषयनिमे अनुराग तथा कषायनिमे अनुराग तथा मिथ्याधममें, मिथ्यादृष्टिनिमें, परिग्रहादि पंच पापनिमे अनुराग है सो अर मोहभाव अर द्वेषभाव है तें नरकनिगोदादिकनिमें अनन्तकाल परिभ्रमणके कारण हैं। यातैं सम्यग्दृष्टि है सो अन्य अज्ञानी मिथ्यादृष्टि पातकीनिमे हू द्वेषभाव नाहीं करै है। जातैं समस्त जीव मिथ्यात्वकर्मके तथा ज्ञानावरणादिकर्मके वशीभूत होय आपा भूल रहे हैं—अज्ञानी है इनमे वैर करि कहा साध्य है? इनकूं तो इनकी विपरीतबुद्धि ही मारि राखे है यातैं सम्यग्दृष्टि दयाभाव ही करै है रागद्वेषरहित मध्यस्थ रहै है। जातै सम्यग्दृष्टि है सो तो वस्तुका स्वभावनै सत्यार्थ जानि एक-इन्द्रियादिक जीवनिमें करुणाभाव रूप प्रीति ही करै है तथा समस्त मनुष्यनिमें वैररहित होय किसी जीवकी विराधना, अपमान, हानि नाहीं वांछै है तथा मिथ्यादृष्टिनिकरि किये जे देवनिके मन्दिर, स्थान, मठ तिनतैं वैर करि विगाडना नाहीं चाहे है तथा सरागदेवनिकी मूर्ति तथा देवनिकी क्रूरमूर्ति तथा योगिनी, यक्ष, भैरवादिक व्यन्तरनिकी स्थापनास्थान इनसूं कदाचित् वैर नाहीं करैजातैं ये देवनिकी मूर्ति अर इनके स्थान तो अनेक जीवनिके अभिप्रायके आधीन पूजनेकूं

आराधनेकूँ वनाये है। अन्यका अभिप्रायकूँ अन्यप्रकार करने कूँ कौन समर्थ है? समस्त ही मनुष्य अपना अपना धर्म मानि देवतानिका स्थापन करै हैं। जाकूँ जैसा सम्यक् तथा मिथ्या उपदेश मिल्या तैसै प्रवर्त्तन करैं है। तातैं वस्तुका यथावत् स्वरूपकूँ जानता समस्तमें साम्यभाव करता सम्यग्दृष्टि किसी मनुष्य हीकूँ रैकारो तूकारो नाहीं दे है तो अन्यके धर्म, अन्यके देवनिकूँ, अन्यके मन्दिरनिकूँ गाली अवज्ञाके वचन कैसैं कहै, नाहीं कहै। समस्त जीवनिमें मैत्रीभाव धारता सम्यग्दृष्टि है सो अचेतन जे स्थान, पाषाण, गृहादिक, अन्यके विश्रामस्थानतै स्वप्नमें हूं वैर नाहीं करै है। अर अन्य जे दुष्ट बलवान होयकरि अपना धन धरती आजीविका तथा कुटुम्वका घात अर आपका मरण करै तिसमें हूं वैर नाहीं करै। ऐसा विचार करै जो हमरा पूर्वोपार्जित कर्मके उदय करि मोतै वैर विचारि वलवान शत्रु उपज्या है। सो अब मैं जेता सामर्थ्य है तिस प्रमाण साम जो प्रियवचन, दाम जो धन देना तथा अपना वल प्रमाण दण्ड देना इनमें परस्पर भेद करना इत्यादिक उपायनितैं रोकि अपनी रक्षा करूं अर जो नाहीं रुके तो आप विचारै जो मेरे पूर्व उपजाये कर्मनिका उदय आया सो याकूं बलवान उपजाया है। मोकूं निर्बल उपजाय मोकूं दण्ड दिया है. सो मैं कौनसूं वैर करूं? मेरा वैरी कर्म निर्जर जाय तैसै साम्यभाव धारणकरि कर्मका विजय करूं। अन्यसूं वैर करि वृथा कर्मबन्ध नाहीं करूं। सम्यग्दृष्टिके वात्सल्य समस्तमें है कोऊसे वैर नाहीं करै है। बहुरि कोऊ दुष्ट जीव धर्मसूं वैर करि मन्दिर प्रतिमाका विघ्न करया चाहे तो ताकूं आपका सामर्थ्यसूं रोक्या जाय तो

रोकै अर प्रबल होय तो विचार करै जो कालनिमित्तसूं धर्मका घातक प्रकट होय अपना वैर साधै है सो प्रबल कैसै रुकै ? हमारे उत्तम क्षमादिक तथा सम्यग्ज्ञान श्रद्धानादिक कोऊ घातनेकूं समर्थ नाहीं है अर मन्दिरादिक दुष्ट विगाड़ै ही हैं अर धर्मात्मा फिर करावैं ही हैं। कालके निमित्तसूं अनेक दुष्ट उपजै हैं उनके रोकनेकों कौन समर्थ है। भावी वलवान है। आछी होनी होय तो दुष्ट मिथ्यादृष्टि प्रबल वलके धारक नाहीं उपजते तातैं वीतरागता ही हमारे परम शरण होहु। ऐसैं वात्सल्यनामा सम्यक्त्वका सप्तम अंग वर्णन किया।

अब प्रभावना नामा सम्यक्त्वका अष्टम अङ्ग कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथं।
जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥१७॥

अर्थ—संसारी जीवनिके हृदयविषैं अज्ञानरूप अन्धकारकी व्याप्ति होय रही है। ताहि सत्यार्थ स्वरूपके प्रकाशतैं दूरिकरिकै जिनेन्द्रके शासनका माहात्म्यका प्रकाश करना सो प्रभावनानामा सम्यक्त्वका आठवां अङ्ग है ॥ १८ ॥

इहां ऐसा विशेष है अनादिकालका संसारी जीव सर्वज्ञ वीतरागका प्रकाश्या धर्मकूं नाहीं जानै है याहीतैं ऐसा हू ज्ञान नाहीं है जो मैं कौन हूँ, मेरा स्वरूप कैसा है, मैं यहां जन्म नाहीं लिया तदि कैसा था, कौन था इहां मोकूं कौन उपजाया, अब रात्रि दिन व्यतीत होय आयु विनसै है मेरे कहा करनेयोग्य है, मेरा हित कहा है, आराधने योग्य कौन है, जीवनिकै नानाप्रकार,नाना

जीवनिके सुख दुःख कैसें है तथा देवका, गुरुका, धर्मकी स्वरूप कैसा है तथा मरणका, जीवनका कहा स्वरूप है तथा भक्ष्य अभक्ष्यका स्वरूप कहा है, इस पर्यायमें मेरे कौन कार्य करनेयोग्य है, मेरा कौन है, मैं कौन हूं इत्यादि विचाररहित मोहकर्मकृत अन्धकारकरि आच्छादित होय रहे हैं। तिनिका अज्ञानरूप अंधकारकूं स्याद्वादरूप परमागमका प्रकाशतैं दूरकरि स्वरूप पररूपका प्रकाश करना सो प्रभावना नामा अङ्ग है। बहुरि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र करि आत्माका प्रभाव प्रकट करना सो प्रभावना है तथा दानकरि, तपकरि, शील संयम, निर्लोभता विनय प्रियवचन जिनेन्द्रपूजन गुणप्रकाशनकरि जिनधर्मका प्रभाव प्रकट करना सो प्रभावना है। जिनका उत्तम परिणामकरि उत्तमदानकूं तथा घोर तप निर्वांछकताकूं देखिकरि मिथ्यादृष्टि हू प्रशंसा करै। अहो जैनीनके वात्सल्यतासहित बड़ा दान है यह निर्वांछक ऐसातप जैनीनतै ही बनै, अहो जैनीनका बड़ा व्रत है जो प्राण जाते हू व्रतभंग जिनके नाहीं। अहो जैनीनके बड़ा अहिंसाव्रत जो प्राण जाते हू अपने संकल्पतै जीवहिंसा नाहीं करैं हैं तथा जिनकै असत्यका त्याग तथा चोरीका त्याग, परस्त्रीका त्याग, परिग्रहका परिमाण करि समस्त अनीतितैं पराङ्मुख हैं अर अभक्ष्य नाहीं खावना, प्रमाणसहित दिवसमें देखि सोधि भोजन करना इन जिनधर्मीनिका बड़ा धर्म है। जिनके महा विनयवन्तपना है अर प्रियहित मधुरवचन ही करि समस्तकै आनन्द उपजावै हैं। तथा अतिशयकारी जिनकै बड़ी क्षमा है। अपना इष्ट देवमें अतिशयकारी भक्ति है। आगमकी आज्ञाका बड़ा दृढ़ श्रद्धानी जिनकै

बड़ी प्रबल विद्या, जिनकै महान् उज्वल आचरण है। वैरभाव-रहित हुआ समस्त जीवनिमें जिनकै मैत्रीभाव है। ऐसा आश्चर्यरूप धर्म इनतै ही बनै ऐसी प्रशंसा जिनधर्मकी जिनके निमित्ततैं मिथ्याधर्मीनिमें हू प्रकट होय तिनकरि प्रभावना होय है। जो अनीतिका धन कदाचित् नांहीं वांछैं है अर अन्याय विषय भोग स्वप्नमें हू अंगीकार नाहीं करै हैं जो हमारा निमित्तसूं जिन-धर्म की निन्दा होय जाय तो हमारा जन्म दोऊ लोकका नष्ट करने-वाला भया- तातै सम्यग्दृष्टि अपना तथा कुलका तथा धर्मका तथा साधर्मीनिका तथा दानशीलतपव्रतका अपवाद नाहीं होय तैसैं प्रवर्तन करै है। धर्मके दूषण लगवा बड़ा भय करै है। धर्मकी प्रशंसा उच्चता उज्वलता ही प्रगट होय तैसै प्रवर्तन करै, तिसकै प्रभावना नामा अष्टम अंग होय है। ऐसै सम्यक्त्वके अष्टअंगनिका संक्षेपतैं वर्णन किया। इन अष्टअंगनिका समुदाय सो ही सम्यग्दर्शन है। अंगनितै अंगी भिन्न नाहीं अंगनिका समूहकी एकता सो ही अंगी है। तैसै ही निःशङ्कितादिक गुण-निका समुदाय सो ही सम्यग्दर्शन होय है। अर इन अंगनिका प्रतिपक्षी जे शंका कांक्षा ग्लानि मूढ़ता अनुपगूहन अस्थितिकरण अवात्सल्य अप्रभावना इत्यादिककरि धर्मकूं दूषित नाहीं करै है।

अब निःशंकितादिक अंगनिका पालनमें जे आगमसे प्रसिद्ध भये तिनका नाम दोय श्लोकनिमें कहैं हैं,—

तावदञ्जनचौरोऽङ्गे ततोऽनंतमतिः स्मृता।
उद्दायनस्तृतीयेऽपि तुरीये रेवती मता॥ १९॥

ततो जिनेंद्रभक्तोऽन्यो वारिषेणस्ततः परः ।
विष्णुश्च वज्रनामा च शेषयोर्लक्ष्यतां गतौ ॥ २० ॥

अर्थ,—तावत् अंगे कहिये प्रथम अंग जो निःशंकित अंग तिसविषै अंजनचोर आगम विषै कह्या है। द्वितीय अंगविषै अनंतमतीनामा सेठकी पुत्री कही। तृतीय अंगविषै उद्दायननामा राजा अर चतुर्थअंगविषै रेवती नामा राणी कही। पंचम अंगविषै जिनेंद्रभक्त नामा श्रेष्ठी हुआ। छठा अंगविषै वारिषेण नामा राजपुत्र भया। बहुरि शेष जे सप्तम अर अष्टम अंगविषै विष्णुकुमार मुनि अर वज्रकुमार मुनि दृष्टान्तपनानैं प्राप्त होते भये। ऐसैं सम्यक्त्वके अष्टअङ्गनिमें प्रसिद्ध भये तिनकी कथा प्रथमानुयोगके आगममें प्रसिद्ध है, तहांतैं जाननी।

अब अंगहीन सम्यक्त्वके संसारपरिपाटीके छेदनेमें असमर्थता दिखावनेकूं सूत्र कहैं हैं,—

नाङ्गहीनमलं छेत्तुं दर्शनं जन्मसन्ततिं ।
न हि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो निहन्ति विषवेदनां ॥२१॥

अर्थ— अंगकरिहीन जो सम्यग्दर्शन सो संसारकी परिपाटीके छेदनेकूं समर्थ नाहीं होय है। जैसै अक्षर करि हीन जो मन्त्र सो विषकी वेदनाकूं नाहीं हनै है ॥२१॥ जातैं जाके परिणाममें निःशंकितादिक अंग प्रकट होय हैं सो ही सम्यग्दृष्टि संसारपरिभ्रमणकूं हनै है अर जाकै एक भी अंग नाहीं भया होय ताके संसारका अभाव नाहीं होय है। अक्षरकरि हीन मन्त्र जैसै सर्पादिकनिका विष दूर नाहीं करै।

अब तीनप्रकार मूढता हैं ते सम्यक्त्वके घातक हैं यातैं तीनप्रकार मूढताका स्वरूप जानि सम्यग्दर्शनको शुद्ध करना योग्य है सो तिनमेंतैं लोकमूढताके स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहैं हैं,—

आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनां ।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥२२॥

अर्थ—जो लौकिक जे मिथ्याधर्मी जन तिनकी रीति देख जे नदीस्नानमें धर्म मानैं हैं, समुद्रके स्नानमे धर्म मानैं हैं, बालू रेतका पुञ्ज करै हैं तथा पाषाणका ढेर करनेमें धर्म मानैं हैं, धर्म मानि पर्वततैं पड़ना अग्निविषै पड़ना, ताहि लोकमूढता कहिये है सो लोकमूढताकरिरहित सम्यग्दर्शन होय है ॥२२॥

इहां मिथ्यात्वके उदयतैं देशकालके भेदतैं लौकिक अज्ञानी परमार्थरहित जन अनेक प्रकारकी प्रवृत्तिकरि अपने धर्म होना, पवित्रता होना,लाभ होना, वियोग नाहीं होना,दीर्घ जीवना मानैं हैं सो लोकमूढताकूं प्रकट अज्ञानता जानि याका त्यागकरि सम्यक्त्वभावकी विशुद्धिता करो। इहां केते एकांती जन हैं ते स्नान करि आपकूं पवित्र मानै है सो ज्ञानीनिकूं आगमज्ञानपूर्वक विचार करना जो आत्मा है सो तो अमूर्तीक है तिसपर्यंत तो स्नान पहुंचे नाहीं अर काय है सो महाअपवित्र है जाका संगमतैं पवित्र हू चन्दन गंगाजल पुष्पादिक स्पर्शने योग्य नाहीं रहै अर जो हाड मांस रुधिर चाम इत्यादिक अशुचि सामग्रीकरि रच्या अर जो दुर्गंध विष्टा मूत्रादिक अशुचि द्रव्यनिकरि भरया अर

आवे मुखके द्वार होय तो महा अशुचि कफ अर लार दंत-मल जिह्वामलनिरन्तर बहै है अर नेत्रनिमें सचिक्कण दुर्गंध गीड स्रवै है अर कर्णनितैं कर्णमल स्रवै है अर नासिकातैं निरन्तर दुर्गंध घृणा योग्य सिणक बहै है, अधोद्वार मल मूत्र दुर्गंध आंव कृमिनिकूं निरन्तर बहै है अर समस्त शरीरके रोमतैं महा दुर्गंध मलीन पसेव स्रवै है ऐसैं जाके नवद्वार निरन्तर मल स्रवै है ऐसा शरीर जलका स्नानतैं कैसै शुद्ध मानिये ? जैसैं मल करि बनाया घड़ा अर मलकरि भरया अर समस्त तरफ मलहीकूं व्है सो जल करिकै धोवनेतैं कैसैं शुद्ध होय ? इस लोकमें जो वस्तु तथा भूम्यादिक क्षेत्र अशुचि अपवित्र कहिये हैं ते समस्त इस शरीरके संगतैं ही अपवित्र होय हैं। कोऊ चाम पड़नेतैं कोऊ केश पडनेतैं कोऊ उच्छिष्ट (ऑंठि) पड़नेतैं तथा रुधिर मांस हाड वसा (चरबी) राध मल मूत्र थूक लार कफ नासि-कामल इनका स्पर्श होनेतैं ही तथा स्नानके जलके छींटेनिके, कुरलेनिके स्पर्शतैं ही अपवित्र (अशुचि) देखिये हैं सुनिये हैं यातैं अच्छीतरह विचारो तो देहका संग बिना कोऊ अशुचि है ही नाहीं। ऐसा देह जलके स्नानतैं कैसै शुद्ध होय अर जो जलके स्नानादिकतैं शुद्ध होय गया तो फिर कोऊकै स्नानका छांटा लगि जायगा तो अपवित्र हुआ ही मानैगा। तथा गंगा पुष्करादिकमें हजारबार स्नान कुरला करि फिर कोऊ वस्तु ऊपर कुरला करैगा तो महा अपवित्रता मानैगा। जल करि तो देहके ऊपरि मैल लाग्या होय तथा वस्त्रादिक मलिन होय तो धोवनेतैं उज्वल होय है अर देहकूं उज्वल पवित्र नाहीं करै है। जैसैं—

कोयलाकूं ज्यों धोवो त्यों कालिमा ही निकलै है। जैसे ज्यों ज्यों देहकूं धोइये त्यों त्यों महा मलिनता प्रगट होवै है। स्नानतैं पवित्र होना मानना सो तीव्रमिथ्यात्व है। अर और हू विचारो जगतमे जल बराबर कोऊ अपवित्र ही नाहीं है जामें निरन्तर मींडका, काछवा, सर्प, ऊंदरा, विसमरा, मांखी मछिरादि अनेक जीव नित्य मरै हैं अर जासें चर्म हाड़ समस्त गलि जाय हैं अर अनेक त्रसनिका घात जामें होय है ऐसा महानिंद्य अपवित्र जल तिसके स्पर्श होनेतैं कैसैं पवित्र होय? अर गंगादिक नदी-नमें कोट्यां मनुष्यनिके मल मूत्र रुधिर मांस कर्दम तथा मनुष्यनिके तिर्यंचनिके मृतक कलेवर धुल रहे तिस गंगाका जल कैसें पवित्र करै? जलका सूतक कदै ही मिटै नाहीं यातैं बाहिर लाग्या मैल दूर हो जाय यातैं मनकी ग्लानि मिट जाय अर यातैं पवित्र होना तथा स्नानमें धर्म मानना सो तो मिथ्यादर्शन है जो गंगाका जलतैं ही पवित्र हो जाय वा स्नानकरि धर्म होजाय वा स्नानकरि मुक्ति होय जाय तो कीर धीवरनिके पवित्रता ठहरे वा मुक्ति होय। अन्य दान पूजादिक समस्त निष्फल हुआ। मिथ्यात्वका प्रभावतैं सब विपरीत श्रद्धानी होय रहे हैं। जे अष्ट प्रकार लौकिक शुचि कही हैं ते व्यवहार आचार कुलाचारके उज्वल करनेकूं तो समर्थ हैं परन्तु देहकूं पवित्र नाहीं करैं हैं। ए तो मनमें ग्लानि आप मानि राखी है सो संकल्पतैं दूरि करले है जो मैं स्नान कर लिया है। सो ही श्रीराजवार्तिकजीमें अशुचिभावनामें कह्या है।

शुचिपना है सो दोय प्रकार है—एक लौकिक, एक लोकोत्तर

ताहि अलौकिक हू कहिये है। तहां जिसके कर्ममल-कलंक दूर भया ऐसा आत्माका अपने स्वभावविषैं स्थित रहना सो लोकोत्तर शुचिपना है अर तिसका साधन सम्यग्दर्शनादिक हैं, अर सम्यग्दर्शनादिकका धारक साधु है अर तिनका आधार निर्वाण-भूम्यादिक हू सम्यग्दर्शनादिकका उपाय है तातैं शुचिनामके योग्य है। अर लौकिक शौचपना है सो अष्टप्रकार है—कालशौच १, अग्निशौच २, भस्मशौच ३, मृत्तिकाशौच ४, गोमयशौच ५, जलशौच ६, पवनशौच ७, ज्ञानशौच ८ ए आठ शौच शरीरके पवित्र करनेकूं समर्थ नाहीं है लौकिकजनोंके व्यवहार छोड़ें बड़ा अनर्थ होय जाय, हीन आचारकी ग्लानि जाती रहै, तो समस्त एक होय जांय, तदि परमार्थ हू नष्ट होय जाय, यातैं अनादिकालतैं बाह्य-शुचिताकी मानता देखि मनकी ग्लानि मेट लेहैं। जातैं केती वस्तु तो जगतमें कालव्यतीत भये शुद्ध मानिये हैं जैसैं रजस्वला स्त्री तीन रात्रि गये शुद्ध मानिये हैं परन्तु शरीर तो कोऊ काल हू शुद्ध नाहीं होय है। बहुरि केतेक उच्छिष्ट धातुके पात्र भस्मकरि माँजनेतैं शुद्ध मानिये हैं परन्तु शरीर तो भस्मकरि शुद्ध नाहीं होय है। बहुरि केतेक शूद्रादिक स्पर्श किये हुए धातुमय पात्र अग्निके संस्कारकरि शुद्ध मानिये हैं परन्तु शरीर तो अग्निका संसर्ग करेहू शुद्ध नाहीं होय है। बहुरि मलमूत्रादिकका स्पर्श मृत्तिकातैं धोय शुद्ध मानिये हैं परन्तु शरीर तो मृत्तिकातैं शुद्ध नाहीं होय है। बहुरि गोमयकरि भूम्यादिककूं लीप शुद्ध मानें हैं परन्तु गोमयतैं शरीर तो शुद्ध नाहीं होय है। बहुरि कर्दमा-दिक लगनेतैं तथा अस्पृश्यका स्पर्श होनेतैं जलकरि धोवनेतैं तथा

जलकरि स्नान करनेतैं शौच मानिये है परन्तु शरीर तो स्नानतैं शुद्ध नाहीं होय है स्नान किए पीछैं हू चन्दन पुष्पादिक पवित्र वस्तु हू शरीरके स्पर्शमात्रतैं मलीन होय जाय है। बहुरि केतेक भूमि पाषाण कपाट काष्ठादिक पवनकरिही शुद्ध मानिये है परन्तु शरीर तो पवनकरि शुचि नाहीं होय है। बहुरि केतेक वस्तु अपने ज्ञानमें जाका अशुद्धताका संकल्प नाहीं होनेतैं शुद्ध मानिये है परन्तु शरीरमें तो शुद्धपनाका संकल्प हू नाहीं उपजै है तातैं शरीर तो अष्ट प्रकारका लौकिक शौचकरि शुद्ध नाहीं होय है लौकिकशौच परिणामनिकी ग्लानि मेटै है। व्यवहारमे उज्वलता जाति कुलकी उच्चता जनावै है परन्तु शरीरकूं तो शुचि नाहीं करै है। देह तो सर्वप्रकार अशुचि ही है। यामें जो आत्मा परका धन अर परकी स्त्रीमें अभिलाषरहित होय अर जीवमात्रका विराधनारहित होजाय तो हाड़मांसका मलीन देह हू देवनकरि पूज्य महापवित्र होय जाय। इस देहकूं पवित्र करनेका और कारण ही नाहीं है सो ही श्रीपद्मनन्दी नाम दिगम्बर वीतराग मुनि कह्या है सो जानहु। जिसकी निकटतातैं सुगन्ध पुष्पमाला चन्दनादि पवित्र द्रव्य हू अस्पर्श्यताकूं प्राप्त होय हैं अर विष्टा मूत्रादिककरि भरया रुधिर रस हाड चामादिककरि रच्या अर महासूगला अर महादुर्गंध, महामलीन समस्त अशुचिका रहनेंका एक संकेतगृह ऐसा मनुष्यका शरीर जलकरि स्नान करनेंतैं कैसैं शुद्ध होय। आत्मा तो अपने स्वभावतैं ही अत्यन्त पवित्र है अर अमूर्तिक है ताकूं जल पहुँचै ही नाहीं ऐसे पवित्रमें स्नान वृथा है अर यो काय है सो अशुचि ही है

सो स्नानकरि कदाचित् शुचिताकूं प्राप्त नाहीं होय यातैं स्नानके दोऊ प्रकारकरि विफलता भई। अर जे फिर हू स्नान करैं हैं तिनके पृथ्वीकाय जलकायादिक अर अनेक त्रसंनिका घात होनेतैं पापबन्धके अर्थि अर रागभावके अर्थि ही है।

भावार्थ—गृहस्थके स्नान विना सरै नाहीं परन्तु अज्ञानी गृहस्थ स्नानमें धर्म मानै है अर स्नानतैं पवित्रता मानै है ऐसी मिथ्याबुद्धि लग रही है सो याका स्वरूपकूं समझै तो याकूं धर्म तो नाहीं मानैं अर यातैं पवित्रपना नाहीं मानैं। यद्यपि गृहस्थके स्नान विना व्यवहार समस्त दूषित होय जाय अर व्यवहार दूषित होय जाय तदि परमार्थकी शुद्धता नाहीं कर सकै परन्तु याकूं राग वधावनेंतैं अर हिंसा होनेतैं पापरूप तो श्रद्धान करै। बहुरि और हू शिक्षा जाननी,—चित्तकैविषैं पूर्वकालका कोटिनभवकरि संचय किया कर्मरूप रज ताका सम्बन्ध करि उपज्या जो मिथ्यात्वादिक मल ताका नाश करनेवाला जो आपापरका भेद जाननेंरूप विवेक सो ही सत्पुरुषनिकै मुख्य स्नान है। सत्पुरुषनिकै तो मिथ्यात्वमलका नाश करनेवाला एक विवेक ही स्नान है अर अन्य जो जलकरि स्नान है सो तो जीवनिका समूहका घात करनेंतैं पापका करनेवाला है यातैं धर्म नाहीं होय है। ताहीकारणतैं स्वभावहीतैं अशुचि जो काय तिसविषै पवित्रता नाहीं है। बहुरि कहैं हैं भो ज्ञानीजन हो ! आपकी शुद्धताके अर्थि परमात्मा नामा तीर्थमें सदा काल स्नान करो। वृथा खेदकरि व्याकुल भये गंगादिक तीर्थनप्रति क्यों दौड़ो हो ? कैसाक है परमात्मानामा तीर्थ ? सम्यग्ज्ञानरूप ही जामें निर्मल जल

है अर दैदीप्यमान सम्यग्दर्शनरूपं जामें लहरि है अर अवि-
नाशी अनन्तसुख करि शीतल है अर समस्त पापनिके नाश
करनेवाला है ऐसा परमात्मस्वरूप तीर्थमें लीन होहू। बहुरि
जगतके पापिष्ठ मिथ्यादृष्टिजननिनै निर्मल तत्त्वनिका निश्च-
यरूप द्रह नाहीं देख्या है अर कठै हू ज्ञानरूप रत्नाकर समुद्र हू
नाहीं देख्या। अर समता नामा अतिशुद्ध नदी हू नाहीं देखी,
तिसकारण करि पापके हरनेवाले सत्य तीर्थनिकूं छांड़ि करि
मूर्खलोक हैं ते तीर्थ जिनकूं कहै हैं ते संसारके तारनेवाले नाहीं
ऐसे गंगादिक नदीनिमें डूबकरि हर्षित होय हैं।

भावार्थ—जिनमूर्खनिनैं तत्वनिका निश्चयरूप द्रहकूं नाहीं
देख्या अर ज्ञानरूप समुद्र नाहीं देख्या अर समता नाम नदी
नाहीं देखी ते गंगादिक तीर्थाभासनिमें दौड़ता फिरे हैं जो तत्त्व-
निका निश्चयरूप द्रहकूं देखता अर ज्ञानरूप समुद्रकूं देखता
अर समतानामा नदीकूं देखता तो इनमे गरक होय मिथ्यात्व-
कषायरूप मलकरि रहित होय आपकूं उज्वल करलेता। बहुरि
इस भुवनमें ऐसा कोऊ तीर्थ नाहीं है तथा ऐसा जल हू नाहीं
तथा और हू कोऊ द्रव्य नाहीं है जिसकरि यो समस्त अशुचि
मनुष्यका शरीर साक्षात् शुद्ध होजाय अर यह शरीर कैसाक
है—आधि व्याधि जरा मरणादिक करि निरन्तर व्याप्त अर
निरन्तर तापकरनेवाला ऐसा है जातैं सत्पुरुषनिके याका नाम
हू सहने योग्य नाहीं है। बहुरि समस्त तीर्थनिके जलतैं नित्य
स्नान करिये अर चन्दनकपूरादिकका विलेपन करिये तो हू यह
शुद्ध नाहीं होय, सुगन्ध नाहीं होय, रक्षा करते हू विनाश के

मार्गमें ही तिष्ठै है। जो नदीमें स्नानतैं ही शुद्ध होजाय तो कोट्यां मच्छी मच्छ काछिवा कीर धीवरादिक शुद्ध होजांय तातैं यह लोकमूढ़ता त्यागनें योग्य है।

अब इहाँ इतना विशेष और जानना जो स्नान करनेतैं पवित्र नाहीं होय अर धर्म हू नाहीं होय परन्तु गृहस्थाचारमें मुनीश्वरनिकी ज्यों स्नानका त्याग योग्य नाहीं। क्योंकि जो पापिष्ठ जीवनिसूं स्पर्श होजाय अर स्नान नाहीं करै तो अपना मनमें पापकी ग्लानि जाती रहै। तदि तिनकी संगति स्पर्श खान, पान, यथेच्छ करनें लगि जाय तब व्यवहारधर्मका लोप होजाय यातैं जिन धर्मीनिका आचार हैं ते व्यवहारके विरोधी नाहीं। जो अतिपापतैं आजीविकाके करनेवाला चांडाल कसाई चमार शिकारी भील धीवरादिक अतिपापिष्ठ तथा मुसलमान म्लेच्छनिकी शरीर ऊपर छाया पड़ते हू महामलीनता मानिये है तो इनका स्पर्श होनेंतैं स्नान कैसैं नाहीं करै? स्नान हू करै अर परमात्माका स्मरण हू करै ? अर याकै नजीक बैठनेतैं बुद्धि मलीन होय है अर जो मुसलमान वेश्यादिकनिसूं कान लगाय मुखके सन्मुख अपना मुख करि वचनालाप करै हैं तिनकी बुद्धि उत्तम धर्मादिक कार्यतै विमुख होय विपरीत प्रवर्त्तन करै है तथा जीवनिके घातक कूकरा मार्जारादिक पशु अर पक्षी इत्यादिक दुष्ट तिर्यंचनिका भोजनके स्थाननिमें आगमन होजाय तथा भोजनका स्पर्शन होजाय तो त्याग करना उचित है तो इनका स्पर्श न होतें स्नान विना भोजन स्वाध्यायादिक करनेमें हीनाचारपना होय है, पापतैं ग्लानि जाती रहै, कुलका भेद

नाहीं ठहरै। अर स्त्रीकरि सहित संगम करै तहां अनेक जीवनिकी हिंसा अर महा अशुचि अङ्गनिका संघट्टन अर रुधिर वीर्यादिकनिका बाह्य स्पर्शनादिक अर महानिंद्य रागका उपजना है याका त्याग नाहीं बन सकै तो इस पापकी ग्लानि करि आपको अशुद्धि मानि स्नान तो करै जो मैं निंद्यकर्म किया है तातैं बाह्यशुद्धिता वास्तै स्नान किये विना पुस्तकनिका तथा जिनमन्दिरके उपकरणनिका उत्तम वस्तुका कैसैं स्पर्शन करूं। यद्यपि देहमें रुधिर मांस हाड चाम केश मल मूत्र भरे हैं परन्तु रुधिर राध चाम हाड मांस मल मूत्रादिकनिका बाह्यस्पर्श होजाय तो अवश्य धोवना उचित हैं जातैं केश चामादिक शरीरतैं दूर हुआ पाछै स्पर्शनेंयोग्य नाहीं है। अर इनका हस्तादिककरि स्पर्श होजाय तो शीघ्र ही हस्त धोवना उचित है। इनकी ग्लानि नाहीं करै, तो नीच चमार चाण्डाल कसायीनितैं एकता होनेतैं आचरण भेद नाहीं रहै तदि समस्त जाति व्यवहारके लोप होनैंतै उत्तम कुलका अर नीच कुलका आचार समान होजाय तदि व्यवहार आचारके विगड़नेंतैं धर्मका मार्ग भ्रष्ट होजाय। निंद्यकर्म करनेकी लज्जा छूटि जाय तदि कुलके मार्ग विगाड़नेंतैं महापापका वन्ध होय है। परमार्थशौच तो व्यवहारकी शौचता करि ही शुद्धि होय है। जाका भोजनमें, पानमें, स्पर्शनमें, संगतिमें, प्रवृत्तिमें मलीनता होजाय तदि परमार्थ धर्म मलीन हो ही जाय जिनधर्मी हैं सो चांडाल भील म्लेच्छ मुसलमानादिककी शरीरकी छायाहीतैं मलीनता मानैं हैं अर धोबी कलाल लुहार खाती सुनार भड़भूजा इत्यादिकनिका स्पर्शनकूं हिंसाकर्म करनेंतैं दूर ही छाड़िये हैं। मुनीश्वर तो नीच जातिके मनुष्यका स्पर्श होतैं दण्ड

स्नान करैं अर तिस दिन उपवास करैं। अर नाहीं जाननेंतैं नीच कुलके गृहनिमें प्रवेश होजाय तो भोजनका अन्तराय करैहैं। अर मदिरा मांस अर शरीरतैं चार अंगुल वहता रुधिर राधि अर पंचेन्द्रिय जीव मृतकका कलेवर भोजन करते देखैं तो भोजनका अन्तराय करैं हैं। तो जिनधर्मी गृहस्थ हाड कौड़ी चाम केश ऊन इनके स्पर्शनतैं भोजन कैसैं नाहीं छाँड़ैं याहीतैं गृहस्थ हैं सो हस्त-पाद प्रक्षालनकरि शुद्धभूमिमें शुद्ध भोजन करैं है। अधम जातिका स्पर्श्या भोजन नाहीं करैं। बहुरि जिनेन्द्रका पूजन वास्तैं स्नान करना योग्य ही है, क्योंकि स्नानकरि देवका स्पर्शन पूजन करना यह बड़ा विनय है। यद्यपि स्नानतैं शुद्धता नाहीं, तो हू, देवके उपकरणनिकूं स्नानकरि स्पर्शना, धोया हुआ द्रव्य चढ़ावना सो देवविनय ही है। विनय है सो ही आराधना है। जातैं जिनमंदिरकै उपकरणका हू विनय करिये है तो जिनेंद्रके आगमकी वाणीका, पूजनके द्रव्यका हू स्नानकरि स्पर्शना, हस्त धोय लगावना, मन्दिरमें हस्त पाद प्रक्षालनकरि प्रवेश करना सो हू विनय ही है। यद्यपि पापमलकी शुद्धता करना प्रधान है तो हू भगवान जिनेंद्रका आगममें अष्टप्रकार लौकिकशुद्धि कही है; लौकिकशौचके विना परमार्थधर्मतैं भ्रष्ट होजाय है। मुनीश्वरका देह रत्नयत्रका प्रभावतैं महापवित्र है तो हू बाह्यशौचके निमित्त कमण्डल राखैं हैं, हस्तपाद धोय स्वाध्याय करैं हैं, अत्यन्त मन्द जलतैं पादप्रक्षालन कराय भोजन करै हैं, तातैं व्यवहार आचारकूं नाहीं छांड़ैं हैं। यो भगवान जिनेन्द्रका धर्म अनेकान्तरूप है अर निश्चयव्यवहारका विरोधरहित ही धर्म है। सर्वथा एकांतरूप

जिनेंद्रधर्म नाहीं है । लौकिकशुचितारहित होय सो धर्मकी निन्दा करावै, कुलकी निन्दा करावै तदि अपना आत्मा मलीन होय ही है। बहुरि मैथुनसेवन किया होय अर मृतककूं दग्ध करि आया होय अर केश चौर कराया होय अर चांडाल म्लेच्छादिकनिका स्पर्श भया होय, मृतक पंचेन्द्रीका स्पर्श भया होय, रजस्वलादि अशुचिका स्पर्श भया होय इत्यादि और कारण होय, तहां अवश्य स्नान करना अर अन्य कारणनिमें जहां मल मूत्र हाड चामादिकका जिस अंगसौं स्पर्श भया होय तिसकूं धोवना शीघ्र ही उचित है। अष्टप्रकार शौच लौकिकमें अनादिका प्रवर्तै है। यातैं आगमकी आज्ञा मानना अपना हित है। बहुरि जगतमें प्रगट देखिये है कर्णके मलतैं नेत्र मलकूं, अर यातैं नासिका मलकूं, यातैं कफ लालादिक मुखके मलकूं, यातै मूत्रकूं, यातैं विष्टाकूं, अधिक २ अशुचि मानिये है अर जो समस्त मलकूं समानही मानिये तो समस्त आचार उपद्रित होय विपरीत होय जाय। यद्यपि द्रव्यार्थिकनयतैं समस्त एक पुद्गल जाति हैं तथापि बहुत भेद हैं। यद्यपि हाड, मांस, रुधिर, मल, मूत्रादिक समस्त पृथ्वीरूप जलादिरूप होजाय है अर पृथ्वी जलादिकनिका मांस रुधिर मलादिकरूप होजाय है तथापि पर्यायनिमें बड़ा भेद है। द्रव्यके अर पर्यायके सर्वथा एकता माननेंतैं समस्त व्यवहार परमार्थका लोप होय तातैं द्रव्यके पर्यायके कथंचित् एकपना कथंचित् अनेकपना मानना ही श्रेष्ठ है।

बहुरि बालूके पिंड करनेमें तथा पर्वततैं पडनेमे, अग्निमे दग्ध होनेंमें, हिमालय गलनेमें, पंचाग्नि तपनेमें धर्म मानै हैं सो

लोकमूढता है। तथा ग्रहणमें सूतक मानना, स्नान करना चांडा-लादिककूं दान देना, संक्रांति मानि दान देना, कुवा पूजना, पीपल पूजना, गायकूं पूजना, रुपया मोहरकूं पूजना, लक्ष्मीकूं पूजना, मृतक पितरकूं पूजना, छींक पूजना, मृतकनिके तृप्ति करनेकूं तर्पण करना, श्राद्ध करना, देवतानिका रतजगा करना, गङ्गाजलकूं शुद्ध मानना, तिर्यंचनिके रूपकूं देव मानना, कुवा बावड़ी वापिका तलाव खुदावनेमें धर्म मानना, बाग लगावनेमें धर्म मानना, मृत्युञ्जय आदिके जप करावनेतैं अपनी मृत्युका टलजाना मानना, ग्रहांका दान देनेतैं अपने दुःख दूर होना मानना, सो समस्त लोकमूढता है। बहुत कहनेंकरि कहा जो योग्य अयोग्य, सत्य असत्य, हित अहितका, आराध्य अनारा-ध्यका विचाररहित लौकिक जनकी प्रवृत्ति देख जैसैं अज्ञानी अनादिके मिथ्यादृष्टि प्रवर्तैं तैसी प्रवृत्तिकूं सत्य मानना, विचाररहित लौकिकजननिकी प्रवृत्ति देख प्रवर्तन करना सो लोकमूढता है। अर केतेक जिनधर्मी कहाय करके हू आत्मज्ञान-कररहित परमागमकी आज्ञाकूं नाहीं जानते भेषधारीनिके कल्पे हुए अनेक क्रियाकांड तथा तीर्थंकरादिकनिका तर्पण कराना, अपना पिता, पितामहका तर्पण कराना तथा यज्ञादि-कनिके अर्थि होम यज्ञादिकनिमें अपना कल्याण होना मानैं हैं। शकलीकरणादिक विधान कराना सो लोकमूढता है। तथा केतेक स्नान करि रसोई करनेमें तथा स्नानकरि जीमनेमें तथा आला वस्त्र पहरि जीमनेमें अपनी पवित्रता शुद्धता मानै हैं परम धर्म मानै हैं अर अभक्ष्यभक्षण अर हिंसादिकका विचार

नाहीं करै हैं सो समस्त मिथ्यात्वके उदयतैं लोकमूढ़ता है।

अब-देवमूढ़ता कहनेकूं सूत्र कहैं हैं,—

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसाः।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते॥ २३ ॥

अर्थ—अपने वांछित होय ताकूं वर कहिये वरकी वांछा करके आशावान् हुवा संता जो रागद्वेष करि मलीन देवताकूं सेवन करै सो देवतामूढ कहिये है॥ २३॥

संसारी जीव है ते इस लोकमें राज्यसंपदा स्त्री पुत्र आभरण वस्त्र वाहन धन ऐश्वर्यनिकी वांछा सहित निरन्तर वर्तें है। इनकी प्राप्तिके अर्थि रागी, द्वेषी, मोही देवनिका सेवन करै सो देवमूढता है। जातैं राज्यसुखसंपदादिक तो सातावेदनीयका उदयतैं होय है सो सातावेदनीयकर्मकूं कोऊ देनेकूं समर्थ है नाहीं, तथा लाभ है सो लाभांतरायका क्षयोपशमतैं होय है अर भोग सामग्री उपभोग सामग्रीका प्राप्त होना सो भोगोपभोग नाम अन्तरायकर्मका क्षयोपशमतैं होय है अर अपने भावनिकरि बांधे कर्मनिकूं कोऊ देव देवता देनेकूं तथा हरनेकूं समर्थ है नाहीं। बहुरि कुलकी वृद्धिके अर्थि कुलदेवीकूं पूजिये है अर पूजते पूजते हू कुलका विध्वंस देखिये हैं अर लक्ष्मीके अर्थी लक्ष्मीदेवीकूं तथा रुपया मोहरनिकूं पूजते हू दरिद्र होते देखिये हैं। तथा शीतलाका स्तवन पूजन करतें हू सन्तानका मरण होते देखिये हैं। पितरनिकूं मानते हू रोगादिक वधै हैं तथा व्यन्तर क्षेत्रपालादिकनिकूं अपना सहायी मानै है सो मिथ्या-

त्वका उदयका प्रभाव है। बहुरि केतेक कहैं हैं जो चक्रेश्वरी पद्मावती देवी ये शस्त्रधारण किये जिनशासनकी रक्षक हैं तथा सेवकनिकी रक्षा करनेवाली एक-एक तीर्थंकरनिकी एक एक देवी है। एक एक यक्ष है इनका आराधन करने, पूज़नेतैं धर्मकी रक्षा होय है ये धर्मात्माकी रक्षा करैं हैं तातैं इन देवीनिका और यक्ष-निका स्तवन करना, पूजन करना योग्य है। देवी समस्त कार्यके साधनेवाली तीर्थंकरनिकी भक्त हैं। इसविना धर्मकी रक्षा कौन करै, याही तैं मन्दिरनिके मध्य पद्मावतीका रूप जाके चार भुजा तथा वत्तीस भुजा अर नाना आयुधनकरि युक्त अर तिनके मस्तक ऊपर पार्श्वनाथस्वामीका प्रतिबिंब अर ऊपर अनेक फण-निका धारक सर्पका रूपकरि बहुत अनुरागकरि पूजैं हैं सो सब परमागमतैं जानि निर्णय करो। मूढलोकनिका कहिवो योग्य नाहीं। प्रथम तो भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी इन तीनप्रकारके देवनिमें मिथ्यादृष्टि ही उपजै है। सम्यग्दृष्टिका भवनत्रिकदेवनि में उत्पाद ही नाहीं अर स्त्रीपना पावै ही नाहीं सो पद्मावती चक्रेश्वरी तो भवनवासिनी अर स्त्रीपर्यायमें अर क्षेत्रपालादिक यक्ष ये व्यन्तर इनमें सम्यग्दृष्टिका उत्पाद कैसैं होय ? इनमें तो नियमतैं मिथ्यादृष्टि ही उपजै हैं ऐसा हजारांवार परमागम कहै हैं। बहुरि जो इनके जिनधर्मसूं प्रीति है तो जिनधर्मके धारीनतैं अपनी पूजा वन्दना नाहीं चाहैं जैनी होय सो आपकूं अव्रती जानता सम्यग्दृष्टिसे वन्दना पूजा कैसैं करावै ? साधर्मीनिका उपकार विना कहे ही करै। बहुरि भगवानका प्रतिविम्ब सो अपने मस्तक ऊपरि है अर भगवानके भक्तनितैं अपनी

पूजा करावै ऐसा अविनय धर्मात्मा होय कैसैं करै ? बहुरि अनेक आयुध धारण करि अपनी वीतराग धर्ममें प्रवृत्तिकूं बिगाड़ै हैं। अर अपना असमर्थपना प्रगट दिखावै हैं तथा जिन शासनके रक्षक एक एक यक्ष यक्षणी ही कैसैं कहो हो ? भगवानके शासनके तौ सौधर्म इन्द्रकूं आदि लेय असंख्यात देव देवी समस्त सेवक हैं अर जिनका हृदयमें सत्यार्थ धर्मतैं पूर्वकृत अशुभकर्म निर्जर गया होय ताकै समस्त पुद्गलराशि अचेतन है सो हू देवतारूप होय उपकार करैं हैं देव मनुष्य उपकार करैं सो कहा अश्चर्य है। अर जैन शासनमें हू ऐसी केई कथा हैं जो शीलवान तथा ध्यानी तपस्वीनिके धर्मके प्रसादतैं देवनिके आसन कम्पायमान भये, अर देव जाय उपसर्ग टाले अर नाना रत्ननि करि पूजा करी, ऐसी कथा तो शासनमें बहुत हैं अर ऐसी तो कहूँ कथा भी नाहीं जो धर्मात्मा पुरुष देवनिकूं पूजै अर पद्मावती चक्रेश्वरी की भी केई कथा है जो शीलवन्ती व्रतवंतिनीकी देव-देवियोंने पूजा करी अर शीलवन्ती, व्रतवन्ती तो जाय कोऊ देव-देवीकी पूजा करी नाहीं लिखी है। तथा कार्तिकेय स्वामी कहैं हैं:—

> ण य को वि देदि लच्छी ण को वि जीवस्स कुणइ उवयारं।
> उवयारं अवयारं कम्मं पि सुहासुहं कुणदि ॥ ३१९ ॥
> भत्तीए पुज्जमाणो विंतरदेवो वि देदि जदि लच्छी।
> तो किं धम्मं कीरदि एवं चिंतेहि सद्दिट्ठी ॥ ३२० ॥

अर्थ—इस जीवकूं कोऊ लक्ष्मी नाहीं देवै है अर जीवका

कोऊ उपकार अपकार हू नाहीं करै है जो जगतमें उपकार अप-
कार करता देखिये है सो अपना किया शुभ-अशुभकर्म करि
करै है बहुरि जो भक्तिकरि पूजे व्यंतरदेव ही लक्ष्मी देवैं, तो
दान पूजा, शील, संयम, ध्यान, अध्ययन, तप रूप समस्त धर्म
काहेकूं करिये ? बहुरि जो भक्ति करि पूजे वन्दे कुदेव ही संसा-
रके कार्यसिद्ध करैंगे तो कर्म कछु बात ही नाहीं ठहरें ? व्यंतर
ही समस्त सुखका दायक रहै धर्मका आचरण निष्फल रह्या ।

भावार्थ—जगतविषैं इस जीवका जो देव, दानव, देवी,
मनुष्य, स्वामी, माता, पिता, बांधवमित्र, स्त्री, पुत्र तथा तिर्यंच
तथा औषधादिक जो उपकार तथा अपकार करै हैं सो समस्त अपने
किये पुण्यकर्म पापकर्म तिनके उदयके आधीन करै हैं । ये तो समस्त
बाह्यनिमित्ति मात्र हैं । देखिये हैं–भला करया चाहै, उपकार किया
चाहै है अर अपकार होय जाय है अर अपकार किया चाहै है
अर उपकार होजाय है । यातैं प्रधान कारण पुण्यपापरूप कर्म है
बहुरि शास्त्रनिमें कह्या है चांडालके अहिंसाव्रतका प्रभावतैं देवता
सिंहासनादि रचे अर नीलीका शीलके प्रभावतै देवता सहायी भये
अर सीताके शीलका प्रभावतैं अग्निकुण्ड जलरूप होय गया अर
सेठ सुदर्शनका देव आय उपसर्ग टाल्या अर और हू केतेकनिके
सहायी देवता भये, उपसर्ग टाले अर देवांका आसन कम्पायमान
भये अर देव आय सहायी भये ऐसा हजारां कथा प्रसिद्ध हैं ।
अर भगवान आदीश्वरकै छह महीना अंतराय भोजनका भया
तदि कोऊ देव आय काहूकूं आहार देनेंकी विधि नाहीं जनाई

पहली तो गर्भमें आनेके छहमास पहली इन्द्रादिक समस्त देव भगवानकी सेवामें तथा स्वर्गलोकतैं आहार, वस्त्र, वाहनादिक लावनेमें सावधान भये हाजिर रहते थे । ते सब देव कैसैं भूल गये । तथा भरतादिक सौ पुत्रनिकूं अर ब्राह्मी सुन्दरी पुत्रीनिकूं मुनि श्रावकका समस्त धर्म पढ़ाया ते हू विचार नाहीं किया जो भगवान् हू मुनि होय आहार के अर्थि चर्या करैं हैं सो अन्तराय कर्मका मन्द हुआ विना कौन सहायी होय ? तथा युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव ये महा वीतरागी होय वनमें ध्यान करते थे तिनकूं दुष्ट वैरी आय आभरण अग्निमें लाल करि पहराय दीये अर जिनका चाम मांसादिक भस्म होते हू कोऊ भी देव सहायी नाहीं भया तथा सुकुमाल महामुनि तिनकूं तीन दिन पर्यंत श्यालिनी अपने बच्चानिसहित भक्षण करतो किया तहां कोऊ देव सहायी नाहीं भये । अर जाकी माताका इतना ममत्व था जो शोक रुदनादिक सन्तापहीमें लगी रही अर पुत्र कहां गया ऐसी खबर भी नाहीं मंगाई । तथा पांचसै मुनिनिकूं घानीमें पेल दिया, तहाँ कोऊ देव सहायी नाहीं भया । तथा पद्म नाम बलभद्र अर कृष्ण नाम नारायण जिनकी पूर्वै हजारां देव सेवा करैं थे जब हीन कर्म उदय आया अर पुण्य क्षीण भया तदि कोऊ देव पानी प्यायवे वाला एक मनुष्य हू नाहीं रह्या तथा जो सुदर्शनचक्रसूं नाहीं मरथा अर भीलका एक बाणतैं प्राणरहित होय गया ऐसैं अनेक ध्यानी, तपस्वी, व्रती, संयमी घोर उपसर्ग भोगे तिनका तो देव सहायी कोऊ नाहीं भये अर हरेकनिके सहायी भये तातैं

ऐसा निश्चय है जो अशुभकर्मका उपशम हुआ विना अर शुभ कर्मका उदय विना कोऊ देवादिक सहायी नाहीं होय है। अपना देह ही वैरी हो जाय है तथा खरदूषण का पुत्र शंबुकुमार महापुरुषार्थकरि द्वादशवर्षपर्यंत बाँसका बीडामें सूर्यहास खड्ग सिद्ध किया अर लक्ष्मण सहज ही लिया अर उसही खड्गसूं खरदूषणका पुत्र शंबुकुमारका मस्तक छेद्या गया। अपना हितके अर्थि साधन करी विद्या आपहीका घात किया तातैं पूर्वकर्मका उदयकरि अनेक उपकार, अपकार प्रवर्तैं हैं। कोऊ देवादिक आराधन किये हुए धन आजीविका, स्त्रीपुत्रादिक देनेमें समर्थ नाहीं हैं। बहुरि यहां प्रत्यक्ष ही देखो नगरका राजा समस्त देव देवी,पीर, पैगम्बर,स्वामी, फकीर समस्त मतका भेषी अर समस्त देव पुराणके पाठी नित्य यज्ञ, होम, पाठ करनेवाले ब्राह्मणनिकों बहुत आजीविका देवैं हैं अर बड़ा सत्कार अर लक्षां रुपयाका दान देहैं। अर बड़ा पूजा बलिदान सबकै पहुँचै है तो हू संयोग वियोग, हानि, वृद्धि, जीत-हारके टालनेकूं कोऊ समर्थ नाहीं है। तातैं ऐसा निश्चय जानहु जो श्रद्धान नाहीं करकैं भी अनेक देव देवीनिकूं आराधै हैं, पूजैं है सो सब देवमूढता है। बहुरि जो मन्त्रसाधन, विद्याराधन, देव आराधन समस्त पाप-पुण्यके अनुकूल फलैं हैं तातै जो सुखका अर्थी हैं ते दया, क्षमा, सन्तोष, निर्वांछकता, मन्दकषायता वीतरागताकरि एक धर्महीका आराधन करो अन्य प्रकार वांछा करि पापबन्ध मत करो।

अर जो देवनिका समागममें ही प्रीति करो हो तो उत्तम सम्यग्दृष्टि सौधर्म इन्द्र तथा शची इन्द्राणी तथा लौकांतिकदेव-

निका संगममें बुद्धि करो। अन्य अधम देवनिका सेवन करि कहा साध्य है ? बहुरि मिथ्याबुद्धिकरि स्थापन करै हैं और नित्य पूजन करै हैं तदि प्रथम तो क्षेत्रपालका पूजन करैं हैं अर क्षेत्रपालका पूजन किया पाछैं जिनेन्द्रका पूजन करै हैं अर ऐसी कहैं हैं जैसैं पहली द्वारपालका सन्मान करके पीछैं राजाका सन्मान करना द्वारपाल विना राजासौं कौन मिलावै तैसैं क्षेत्र-पाल विना भगवान्का मिलाप कौन करावै ? जिन मूढनिके ऐसा विचार नाहीं जो भगवान् तो मोक्षमें हैं भगवान् परमात्मा का स्वरूपकूं यो मिथ्यादृष्टि अज्ञानी कैसैं जानेगा अर कैसैं मिलावैगा ? अर विघ्नकूं कैसैं विनाशैगा ? आपका विघ्न ही नाश करनेकूं समर्थ नाहीं सो विचाररहित मिथ्यादृष्टि लोक क्षेत्रपालका महाविपरीत रूप बनाय वीतरागके मन्दिरमें प्रथम स्थापन करै हैं जाका हस्तमें मनुष्यका कटा मूंड अर गदा खड्ग अर कूकरा वाहनकरि सहित स्थापन करि तैल गुड़का भक्षणतैं क्षेत्रपाल प्रसन्न होय है ऐसैं लोकनिकूं बहकाय लूटै हैं अर इनका पहिली दर्शन पूजन-स्तवन करै हैं सो मिथ्यादर्शन अर कुज्ञान का प्रभाव जानहु। बहुरि पार्श्वजिनेन्द्रकी प्रतिमाके मस्तक ऊपरि फण बिना बनावैं ही नाहीं अर भगवान पार्श्व अरिहन्त के समवसरणमें धरणेन्द्रका फण मस्तक ऊपर कैसैं संभवै है धरणेन्द्र तो भगवान् के तप के अवसरमें फणामण्डप किया था सो फेर फणामण्डप का प्रयोजन नाहीं अर पार्श्वजिनेन्द्र अर्हन्त भये अर इन्द्रकी आज्ञातैं कुबेर समोसरण रच्यो तहां भगवान् फणसहित नाहीं विराजे हुते चारनिकायके देव मनुष्य

तिर्यंच धर्मश्रवण स्तवन वन्दना करते ही तिष्ठैं यातैं स्थापनाविषैं अर्हंतकी प्रतिबिंबनिके फण कैसैं संभवै ? वीतरागमुद्रा तो ऐसैं सम्भवै नाहीं; परन्तु कालके प्रभावतैं धरणेन्द्रकी प्रभावना प्रगट करनेकूं लोक विपरीत कल्पना करनें लगि गये सो कौन दूर करि सकै। जैसैं पाषाणमय भगवान्‌का प्रतिबिंब महा अङ्गोपांग सुन्दर ताके कर्णनिकूं मस्तककी रक्षाके अर्थि लम्बा करि स्कन्धसौं जोड़ देहैं, तिनकौं देखि समस्त धातुके प्रतिबिंबनके भी कर्ण जोड़ देहैं सो देखादेखी चल गई। तैसे ही अर्हन्त प्रतिबिंबनके ऊपरि फणका आकार करते लोकनिकूं देखि तत्त्वकूं समझे बिना फण करनेंकी प्रवृत्ति चल गई सो फणके कर देनेंतैं प्रतिमा तो अपूज्य होय नाहीं, क्योंकि चार प्रकारके समस्त ही देव सर्व तरफतैं सदैव ही भगवान्‌का सेवन करै हैं। अर जो फणामण्डप करनेंतैं ही धरणेन्द्रकूं पूज्य मानैं सो देवमूढ़ता है। ऐसैं अनेक प्रकारकरि देवमूढ़ता है तथा गणेश हनुमान योनि लिंग चतुर्मुख षट्‌मुखका रूप देवत्वरहित प्रगट असम्भव तिर्यंचरूपकूं देव मानना, बड़ पीपलादि वृक्षनिकूं, नदीकूं, जलकूं, पवनकूं, अन्नकूं देव मानना सो समस्त देवमूढ़ता है बहुत कहा लिखिये।

अब आगे गुरुमूढ़ता का वर्णन करनेकूं सूत्र कहै हैं,—

सग्रन्थारम्भहिंसानां संसारावर्तवर्तिनां।
पाखण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाखण्डिमोहनम् ॥२४॥

अर्थ—परिग्रह आरम्भ अर हिंसाकरि जे सहित संसाररूप भंवरनिमें प्रवर्तन करते ऐसे पाखण्डीनिकी जो प्रधानता उनके वचन में आदर करि प्रवर्तन करना सो पाखण्डमूढ़ता है ॥२४॥

भावार्थ—जिनेन्द्रधर्मका श्रद्धान ज्ञानकरि रहित होय जो नाना प्रकार भेष धारण करिकै आपकूं ऊंचा मानि जगतके जीवनितैं पूजा वन्दना सत्कार चाहता जो परिग्रह राखैं हैं अर अनेक आरम्भ करैं हैं हिंसाके कार्यनिमें प्रवर्तन करैं हैं इन्द्रियनिके विषयनिका रागी संसारी असंयमी अज्ञानीनितैं गोष्ठी करता अभिमानी होय आपकूं आचार्य पूज्य धर्मात्मा कहावता रागी द्वेषी हुआ प्रवर्तैं है अर युद्धशास्त्र शृंगारके शास्त्र हिंसाके कारण आरम्भके शास्त्र रागके बधावनेवाले शास्त्रनिकूं आप महन्त भये उपदेश करै हैं ते पाखण्डी हैं जिनके नाना प्रकारके रसनि करि सहित भोजन में तत्परता याहीतैं कामादिककी कथा में लीन होय रहे अर परिग्रहके बंधावनें के अर्थि दुर्ध्यानी हो रहे हैं बहुरि जे मुनि साधु आचार्य महन्तपूज्य नाम कहावैं अर लोकनितैं नमस्कार कराया चाहें अर विकथा करनेंमें, विषयनिमें, मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र जप होम, मारण, उच्चाटन, वशीकरणादिक निंद्य आचरण करै हैं ते पाखण्डी है। तिन पाखण्डीनिका वचनकूं प्रमाण करना अर सत्कार करना धर्मकार्यमें प्रधान माननासो पाखण्डमूढ़ता है।

अब सम्यक्त्वकूं नष्ट करने वाले अष्ट मद हैं तिनके नाम कहनेकूं सूत्र कहै हैं,—

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥२५॥

अर्थ—नष्ट भये हैं मद जिनके ऐसे गणधर देव हैं ते ऐसैं स्मय कहिये मद ताहि कहै हैं जो ज्ञाननै पूजानै कुलनै जातिनै बलनै ऋद्धिनै तपनै शरीरके रूपादिक इन अष्टकूं आश्रयकरि जो मानीपना सो स्मय कहिये हैं ॥२५॥

भावार्थ—ज्ञानका मद १, पूजाका मद २, कुलका मद ३, जातिका मद ४, बलका मद ५, ऋद्धिका मद ६, तपका मद ७, शरीरका मद ८, सम्यग्यदृष्टिकै नाहीं होय है। जिनकै एक हू मद होय सो सम्यक्त्वी कैसैं होय ? सम्यग्दृष्टिकै सत्यार्थ चिंतवन है सो विचारै है—हे आत्मन् ! जो तू इन्द्रियनि करि उपज्या ज्ञान पाया है सो याका गर्व कैसैं करै है ? यह ज्ञान तो ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमके आधीन है विनाशीक है इन्द्रियनिके आधीन है, वातपित्तकफादिकके आधीन है याकै विनशने का प्रमाण मत जानो। याका गर्व कहा करो हो इन्द्रयांकूं नष्ट होते ही ज्ञान हू नष्ट हो जाय है तथा वातपित्तादिक की घटत बधत होते क्षणमात्रमें ज्ञान विपरीत हो जाय बावला हो जाय। अर इन्द्रियजनित ज्ञान पर्यायका लार ही विनसैगा अर कई बार एकेंद्रिय भया तहां चार इन्द्रिय ही नहीं पाई एकेंद्रियनिमें जडरूप पाषाण धूल पृथ्वीरूप होय असंख्यात काल अज्ञानी भया अर केई वार विकलत्रय में हित अहित की शिक्षारहित भया। तथा केई वार कूकर शूकर व्याघ्र सर्पादिकविषै विपरीत ज्ञानी होय भ्रम्या। अर निगोदमें अक्षरके अनन्तवें भाग ज्ञान रहित भया। अर व्यंतरादिक अधम देवनिमें हू मिथ्यात्वके प्रभावतैं आपापरकूं नाहीं जानता नष्ट होय एकेन्द्रियमें उपजि अनन्तकाल परिभ्रमण किया अर मनुष्यनिमें हू कोऊ विरले मनुष्यनिके ज्ञानावरणके क्षयोपशमकी अधिकतातैं तीक्ष्ण ज्ञान होय जाय तो कोई मनुष्य तो नीच कर्मनि में प्रवीण होय अनेक जलके जीव तथा थलके जीव तथा आकाशचारी जीवनिके मारनेमें पकड़नेमें बांधनेमें अनेक

यन्त्र पींजरा जाल फांसी बनवाने में प्रवीण होय हैं केई नाना प्रकारके खड्क बन्दूक तोप वाण जहर विष आदिक विद्यामें प्रवीणता पाय अपना चातुर्यका मद करि उन्मत्त भये ग्रामके देशके विध्वंस करनेमें प्रवीण होय हैं। केई सिंह व्याघ्र वराहादिक जीवनकी शिकारमें प्रवीण होय हैं। केई ज्ञान पाय अनेक जीवनिके धन हरनेमें लूटनेमें मार्गमें गमन करतेनिका धन हरनेमें प्राण हरनेमें प्रवीण होय हैं। केई ज्ञानकी तीक्ष्णता पाय भोले प्राणिनका तिरस्कार करनेमें तथा झूठेनिकूं सांचे कर देनेमें अर सांचेनिकूं झूठे कर देनेमें धन अर प्राण दोऊनिके हरने में प्रवीण होय हैं। केतेक अपने ज्ञानकी तीक्ष्णता करिकैं अन्य मनुष्यनिकी चुगली करनेमें लुटाय देनेमें धन धरती आजीविकादिक विनष्ट करा देनेमें राजदिकनिकरि दण्ड करा देनेमें मरण कराय देनेमें प्रवीण होय हैं। केतेक मनुष्यनिके काष्ठ पाषाण धातु रत्ननि के अनेक वस्तु बनवानेमें केतेकनिके चित्र कर्मादिक अनेक आभरण वस्त्र महलादिक अनेक रचना बनाय देनेमें प्रवीणता पाय गर्वके वश भये नष्ट होय हैं। अर केतेक मनुष्य ज्ञानकी प्रवलता पाय अनेक शृंगारशास्त्र युद्धशास्त्र वैद्यक शास्त्रादिक वनाय राजानिकूं रिझावैं हैं। अनेक छन्द अलंकार विद्या एकान्तरूप न्यायविद्या वेदपुराण क्रियाकाण्डादिककी प्ररूपणा करि गर्विष्ठ भये आत्मज्ञानरहित होय संसार परिभ्रमण करै हैं। अर केई वीतराग धर्मकूं पाय करकै हू मिथ्यात्व का तीव्र उदयतैं सत्यार्थज्ञानश्रद्धान कूं नाहीं प्राप्त होय अपना अभिमान वचन पक्ष पुष्ट करनेकूं सूत्रविरुद्ध मार्गकूं प्रवर्तन कराय आपकूं कृतार्थ मानै हैं। ऐसैं ज्ञानकी

अधिकता पाय करके हू मिथ्यात्वके प्रभावतैं अधिक-अधिक बन्ध करि नष्ट ही भया। अर तातैं अब वीतरागी सम्यग्ज्ञानी गुरुनिका उपदेश पाय ज्ञानका गर्व मत करो। भो आत्मन्! तेरा स्वभाव तो सकल लोकालोकका जाननेवाला केवलज्ञानरूप है। अब कर्मके क्षयोपशमतैं उपज्या इन्द्रियांके आधीन शास्त्रनिका किंचित्ज्ञान ताका कहा गर्व करो हो? जैसैं कोऊ प्रबल अपना वैरी मंडलेश्वर राजाकू बांध बन्दीखाने मेलि किंचित् कुत्सित भोजन देय नाना त्रास देता राखै, अर किसी कालमें कोऊ किंचित् मिष्ट भोजन हू देवै तो तिस भोजनकूं पाय मंडलेश्वर राजा कैसैं गर्व करै? तैसैं तुम्हारा अनन्तज्ञान स्वरूप केवलज्ञानकूं इन कर्मनिनै लूट देहरूप बन्दीगृहमें पराधीन करि इन्द्रियद्वारै किंचित् ज्ञान दिया ताकूं पाय कहा गर्व करो हो, यो ज्ञान विनाशीक पराधीन है पर्यायकी लार तो अवश्य नष्ट होयहीगा। अर इस पर्यायमें हू रोगतैं वृद्धपनातैं इन्द्रियनिकी विकलतातैं दुष्टनिकी संगतितै कषाय विषयनिकी अधिकतातैं क्षणमात्रमें विनाश होनेका भरोसा नाहीं तातैं विनाशीक ज्ञान पाय मद करोगे तो समस्त गुण नष्ट होय ज्ञानरहित एकेन्द्रियादिकनिमें जाय उपजोगे। अर इस कालमें तुम कोऊ कविता छन्द चरचा समझिकैं तथा नवीन काव्य श्लोक शास्त्र छन्द युक्ति वनाया करिके तथा जिनमतके सिद्धान्तनिका किंचित् ज्ञान पाय मदकूं प्राप्त होय रहे हो सो मदकूं प्राप्त होना योग्य नाहीं पूर्वकालमें भये ज्ञानी वीतरागीनिके रचे ग्रन्थनिके वाक्यानिकूं देखहु, जो अकलंकदेवकरि रची लघुत्रयी बृहत्त्रयी चूलिका ये सात ग्रंथ तिनिमें प्रवेशके अर्थि माणिक्यनन्दी नामा मुनीश्वरां परीक्षामुख

रच्या तिसकी बड़ी टीका प्रमेयकमलमार्तंड बारह हजार प्रभाचंद्रजी रची, अर लघुत्रयी ऊपरि न्यायकुमुदचंद्रोदय सोलह हजार श्लोकनिमें प्रभाचन्द्रजी रच्या तथा तत्त्वार्थसूत्रनिकी भाष्य तो चौरासी हजार श्लोकनिमें रची सो इस अवसरमें प्रसिद्ध नाहीं है तो हू तिसका मंगलाचरण जो देवागमनामा स्तोत्रके ऊपरि विद्यानन्दीस्वामी आप्तमीमांसानामा अष्टसहस्त्री रची तथा अकलंकदेवजी राजवार्तिक रच्या तथा-विद्यानन्दस्वामी अठारह हजार श्लोकनिमें श्लोकवार्तिकजी रच्या तथा आप्तपरीक्षा रची तिनिका निर्बाध वचनके प्रभावकूं देखते बड़े बड़े वादिनिके गर्व गल जांय तथा नाटकत्रय सारत्रय इत्यादिक अनेकांतरूप निर्बाधयुक्ति वचनकूं जानि कर कैसैं ज्ञानका मद करो हो। कदाचित् श्रुतज्ञानावरणका क्षयोपशमतैं किंचित् ज्ञान पाया है तो बड़ा दुर्लभ लाभ याका जानि आत्माकूं विषयनितैं तथा अभिमानादिक कषायनितैं छुड़ाय परम समता धारण करि संसारपरिभ्रमणका अभावमे यत्न करो। ज्ञानका मदकरि आत्माकूं अनन्तसंसारी मत करहु। ऐसैं ज्ञानके मदका अभावका उपदेश किया ॥ १ ॥

अब दूजा पूज्यपनाका मद ऐश्वर्यका मद सम्यग्दृष्टि नाहीं करै है जातैं यो राज्य ऐश्वर्य आत्माका स्वभाव नाहीं, कर्मका किया है विनाशीक है पराधीन है दुर्गतिका कारण है मेरा ऐश्वर्य तो अनन्त चतुष्टयमय अक्षय अविनाशी अखण्ड सुखमय है तथा अनन्तज्ञानदर्शनमय है, अनन्त शक्तिरूप है। तातैं ये कर्मकृत महाउपाधिरूप आत्माकूं क्लेशितकरि दुर्गति पहुँचानेवाले स्वरूपको भुलावनेवाले ऐश्वर्य आत्माका स्वरूप नाहीं। कलहका मूल्य वैरका कारण क्षणभंगुर परमात्मस्वरूपकूं भुलावनेवाले महादाह-

के उपजानेवाले दुःखस्वरूप हैं अनेक जीवनिके घातक हैं। महा-आरम्भ महापरिग्रहमें अंधकरि नरक पहुँचाने वाले हैं। इस ऐश्वर्य करि मैं केते दिन पूज्य रहूँगा। क्षणमें विध्वंस होय रंक होजाऊंगा। जगतमें धनके लोभी तथा अज्ञानी लोक मोकूं ऊंचा मानै हैं सत्कार करैं हैं सो राज्यसंपदादिकनिका मेरे कै दिनका स्वामीपना है? मृत्युका दिन नजीक आवै है मुझ सारिखे अनन्तानन्त जीव संपदाकूं अपनी मानते नष्ट हो गये परमाणुमात्र हू परद्रव्य मेरा नाहीं है अन्य द्रव्य अन्यका कैसे होय? इस पर्यायमें कर्मकृत परका संयोग रूप ऐश्वर्य है सो दान सन्मान शील संयम परजीवनिका उपकारकरि प्रशंसा योग्य है। ऐश्वर्य पाय गर्वरहित वांछारहित समतासहित विनयवंतपना ही शुभगतिका कारण है। अन्यप्रकार मिथ्यादर्शनजनित मिथ्याभावजीवकूं आपा भुलाय ऐश्वर्यमें उलझाय नरक पहुँचावै है ऐसैं दृढ़ श्रद्धान करता सम्यग्दृष्टि पूज्यपनका मद ऐश्वर्यका मद नाहीं करै। अर अन्य जीवनिकूं अशुभके उदयवशतैं दारिद्रकरि पीड़ित अशुभ सामग्री सहित देखि अवज्ञा तिरस्कार नाहीं करै है करुणा ही करै है॥२॥

अब सम्यग्दृष्टिके कुलका मद नाहीं होय ऐसा दिखावै हैं, जगतमें पिताके वंशकूं कुल कहै हैं। सम्यग्दृष्टि विचारै है मेरा आत्मा कोऊ करि उपजाया नाहीं हैं तातैं ज्ञानस्वरूप जो मैं; ताकै कुल ही नाहीं है ज्ञाता दृष्टा स्वभाव ही मेरा कुल है अर जो अनादिकालका कर्मकरि पराधीन मैं इस पर्यायमें जो उत्तम कुल पाया तो इसका गर्व करना महा अनर्थ है। पूर्व भवनिमें मैं अनंतवार नारकी भया अनन्तवार सिंह व्याघ्र सर्पनिके उपज्या अनन्तवार सूकर

गीदड़, गधा, ऊंट, मीढा, भैंसा इत्यादिकनिके कुलमें उपज्या। अनेक वार म्लेच्छनिके भीलनिके चांडाल चमारनिके धीवरनिके कसायी· निके कुलमें उपज्या। अर अनेकवार नाई, धोबी, तेली, खाती, लुहार, भडभूजा, चारन, भाट, डूम, भांडनिके कुलमें उपज्या हूँ अर अनेक बार दरिद्रीनिके कुलमें उपज्या हूँ। कदाचित् कोऊ शुभ कर्मका उदयतें ब्राह्मण क्षत्री वैश्यनिके कुलमें आय उपज्या तो अब कर्मका किया कुलमें आय गर्व करना सो बड़ा अज्ञान है। इस कुलमें मेरा केता दिन बास? अर अनादिसूं इस कुल जातिमें मेरा वास था नाहीं, नवीन उपज्याहूं अर विनशिकरि अन्यकुलमें पुण्यपापके आधीन उपजनो होयगा। तातैं उत्तम कुल पावनेका फल तो ये है जो मोक्षमार्गका साधक रत्नत्रयमें प्रवर्तन करना तथा अधम आचरणका त्याग करना। बहुरि ऐसा विचार करो जो मैं पुण्यका प्रभावकरि उत्तम कुल पाया है सो मोकूं नीच कुलके मनुष्य ज्यों अभक्ष्य भक्षण करना योग्य नाहीं। तथा कलह विसंवाद मारण ताडन गाली भण्डवचन बोलना योग्य नाहीं तथा जुवाकी क्रीडा वेश्यासेवन परधनहरणादिक करना योग्य नाहीं, तथा निंद्यकर्मकरि आजीविका करना अयोग्य है। तथा हास्यवचन असत्यवचन छलकपटकरना योग्य नाहीं। अर उत्तम कुलकूं पायकरिकै हू जो निंद्यकर्म करूंगा तो इस लोकमें धिक्कार योग्य होय दुर्गतिका पात्र होऊँगा। ऐसैं कुलका मद सम्यग्दृष्टि नाहीं करै हैं॥ २॥

बहुरि माताकी पक्ष जाति है सो सम्यग्दृष्टि जीव जातिका गर्व नाहीं करै है। जातैं अनेकवार नीच जातिमें उपज्या बहुरि

एकबार उच्च जातिमें उपज्या। अनन्तवार नीच जातिमें अर एक बार उच्च जातिमें उपज्या ऐसैं नीच जाति अनंतवार पाई अर उच्च जातिहू अनन्त बार पाई है। अब उच्च जातिके पायेका कहा-गर्व करो हो। अनेकबार निगोदमें उपज्या तथा कूकरी सूकरी चांडाली भीलनी चमारी दासी वेश्यानिके गर्वमें अनेकबार जन्म-धारण किया। अब नीच जातिमें उपज्या पुरुषका तिरस्कार तो कैसैं करो हौ, अर उच्चजातिकी माताके जन्म लेय मदोन्मत्त कैसैं भये हो ? या जाति तो पुण्यपापकर्मका फल है। सो रस देय निर्जरैगा, जाति कुलमें ठहरना कै दिनका है। तातैं जातिकुलको विनाशीक अर कर्मके आधीन जानि उत्तम शील पालनेमें क्षमा धारणमें स्वाध्यायमें परोपकारमें दानमें विनयमें प्रवर्तनकरि जाति-का उच्चपणा सफल करो। जातिका मदकरि संसारमें नष्ट मत होहु।

अब बलका मद हू सम्यग्दृष्टिकै नाहीं होय है—सम्यग्दृष्टि विचारै है—मैं आत्मा अनन्त बलका धारक हूं सो कर्मरूप मेरा प्रबल वैरी मेरा बलकूं नष्टकरि बलरहित एकेन्द्रिय विकलत्रयादिक-में समस्त बल आच्छादनकरि मेरी बलरहित ऐसी दशा करी जो जगतकी ठोकरांतैं कुचल्या गया चींथ्या गया। अब कोऊ वीर्या-न्तरायनामक मर्मका किंचित् क्षयोपशमतैं मनुष्य शरीरमें आहारके आश्रयतैं किंचित् बलका उघाड़ हुआ है अब जो इस देहके आधार पराधीन बलतैं जो मैं तपश्चरणकरि कर्मनिका नाश करूं तो बल पावना सफल है। तथा इस बलके लाभतैं मैं व्रत उपवास शील संयम स्वाध्याय कायोत्सर्ग करूं तथा कर्मके प्रबल उदय होतैं आये हुए उपसर्ग परीसहनितैं चलायमान नाहीं होऊं। रोगदारिद्रादिक

कर्मनिके प्रहारतै कायर नाहीं होऊं, दीनताकूं प्राप्त नाहीं होऊं तो मेरा बल पावना सफल है। तथा दीन दरिद्री असमर्थनिके दुर्वचन श्रवण करके हू क्षमा ग्रहण करूं तो मेरी आत्माकी विशुद्धताका प्रभावतैं दुर्जय कर्मनिकूं मारि क्रम क्रम करि अनन्तवीर्यकूं प्राप्त होय अविनाशी पद पाऊं। अर जो बलवान होय निर्बलनिका घात करूं अर असमर्थनिकी धन धरती स्त्रीनिकूं हरण करूं तथा अपमान तिरस्कार करूं तो सिंह व्याघ्र सर्पादिक दुष्ट तिर्यंचनिकी ज्यों परजीवनिके घातके अर्थ ही मेरे बल पावना रह्या, ताका फल दीर्घकाल नरकनिके दुःख तिर्यंचनिके दुःख भोग निगोदमें अनंतानन्त काल परिभ्रमण करूंगा। तातैं बलका मद समान मेरी आत्माका घातक अन्य नाहीं है ॥४॥

बहुरि ऋद्धि जो धन सम्पदा पावनेका ज्ञानीके गर्व नाहीं होय है सम्यग्दृष्टि तो धनादिकके परिग्रहको महाभार माने है। ऐसा दिन कदि आवेगा जो समस्त परिग्रहका भारकूं छांडिकरि मैं आत्मीक धनकी संभाल करूं। यो धन परिग्रहको भार महा बन्धन है अर राग द्वेष भय संताप शोक क्लेश वैर हानिका कारण है, मद उपजावनेवाला है, महा आरम्भादिका कारण है, दुःख रूप दुर्गतिका बीज है। परन्तु करिये कहा? जैसैं कफमें पड़ी मक्षिका आपकूं छुड़ावनेकूं समर्थ नाहीं अर कर्दमके समूहमें फंस्या वृद्ध अशक्त बलद निकलनेकूं समर्थ नाहीं अर कर्दमके द्रहमें पड्या हस्ती आपकूं निकासनेकूं समर्थ नाहीं होय है तैसैं मैं हू इस धन कुटुम्बादिकके फन्दनिसूं निकस्या चाहूं हूं तो हू आसक्तपनातैं तथा रागादिकका प्रबल उदयतैं तथा निर्बल होनेरी

कठिनताके देखनेतैं कम्पायमान हूँ ऐसैं अपमान भयादिकका करनेवाला परिग्रहतैं निकसनेका इच्छुक सम्यग्दृष्टि पराधीन विनाशीक दुःखरूप सम्पदाका गर्व नाहीं करै। याका संगमकी बड़ी लज्जा है जो मैं मेरी स्वाधीन अविनाशी आत्मीक लक्ष्मीकूं छांड़ि ज्ञानी होय करके भी इस खाक समान लक्ष्मीकूं नाहीं छांडू हूँ इस समान मेरी निर्लज्जता और कहा होयगी और हीनता कहा होयगी ॥६॥

अब सम्यग्दृष्टिके तपका मद नाहीं होय है मद तो तपका नाश करनेवाला है अर जे तपके प्रभावकरि अष्टकर्मरूप वैरीनिकूं नष्ट करि परमात्मापनाकूं प्राप्त भये ते धन्य हैं। मैं संसारी आसक्त हुआ इन्द्रियनिकूं भी विषयनितैं रोकनेकूं समर्थ नाहीं, कामका विजय किया नाहीं, निद्रा, आलस्य, प्रमादकूं हू जीता नाहीं। इच्छा रोकनेमे समर्थ नाहीं। पर्यायमें लालसा घटी नाहीं। जीवनकी वांछा मिटी नाहीं। मरनेका भय दूर हुआ नाहीं, स्तवनमें, निन्दामें, लाभमें, अलाभमे, समभाव हुआ नाहीं, तितनें हमारे काहेका तप? तप तो वह हैजातैं कर्म वैरीनिके उदयकूं जीत शुद्धात्मदशामें लीन होय जाय। धन्य हैं जिनके वीतरागता प्रगट हुई है। ऐसा विचार करि संयुक्त सम्यग्दृष्टिकै तपका मद कैसैं होय? ॥७॥

बहुरि सम्यग्दृष्टिकै शरीरके रूपका गर्व नाहीं है। जातैं सम्यग्दृष्टि तो अपना रूपकूं ज्ञानमय देखै है। जिसमें समस्त वस्तुकूं यथावत् अवलोकन करिये और यो चाममय शरीरको रूप हमारो रूप नाहीं है। यो देहका रूप क्षण क्षणमें विनाशीक है। एक दिन आहार पान नाहीं करै तो नष्टविरूप दीखै है। इस देहका रूप समय समय

विनाशीक है अर जरा आजाय तदि महा सूगला भयङ्कर दीखने लगि जाय है अर रोग तथा दरिद्रता आजाय तदि कोऊके देखने योग्य स्पर्शन योग्य नाहीं रहै। इस रूपका गर्व कौन ज्ञानी करै? एक क्षणमें अंध हो जाय एक क्षणमें काणा, कूबडा, लूला, टूटा, वक्रमुख, वक्रग्रीव, लम्ब—उदरादिक विड्रूप होजाय। इहां रूपका गर्व करना बड़ा अनर्थ है। सुन्दर रूप पाय शीलकूं मलीन मत करो। दरिद्री दुःखी रोगी अंगहीन कुरूप मलीन देखि तिनका तिरस्कार मत करो, ग्लानि मत करो, संसारमें महा कुरूप मनुष्य तिर्यंचनिमें महासूगला भयङ्कररूप अनेकवार पाया है तातैं रूप का गर्व मत करो ॥८॥ ऐसैं सम्यग्दर्शनका नाश करने वाला अष्टमदनिका स्वप्नमें भी जैसैं संसर्ग नाहीं होय तैसैं निरन्तर करना योग्य है।

अव जो पुरुष मदोन्मत्त होय अन्य धर्मात्माजनका तिरस्कार करै है तिसके दोषका उपजना दिखावता सन्ता सूत्र कहै हैं—

स्मयेन योऽन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं न धर्मो धार्मिकैर्विना ॥२६॥

अर्थ—गर्वरूप है अभिप्राय जाका ऐसा जो कोऊ पुरुष गर्व-करि धर्मके धारक अन्य धर्मात्मा पुरुषनिनै तिरस्कार करै है सो आपका धर्मका तिरस्कार करै है जातैं धर्मात्मा पुरुष विना धर्म नाहीं पाइये है। तातैं जो धन ऐश्वर्य रूपादिकका मद करिकैं धर्मात्माकूं तिरस्कार करै सो आपका धर्महीका तिरस्कार किया। क्योंकि धर्म तो कोऊ पुरुषके आधार है पुरुष विना है नाहीं ॥२६॥

भावार्थ—संसारमें धन ऐश्वर्य आज्ञाका वडा मद है मदकरि

गर्विष्ट होय जाय तदि देवगुरुधर्मका हू विनय भूलै है। ऐसा विचार करै है जो मन्दिर कहा वस्तु है, मैं अन्य नवीन बनाय लूंगा, वा हमारा ही बनाया है अर जो ये तपस्वी त्यागी हैं सो हू हमारे ही आधीन भोजन वस्त्रकरि जीवै हैं अर. यो धर्म हू धन खरचनेतैं ही होय है धन खरच्यांसूं ही ठाकुरजीकी पूजा प्रभावना होय है ऐसैं अवज्ञा करै है। तथा अनेक पापाचरण करतो हू कोऊ अभिमानके वश होय दान पूजा प्रभावनामें पांच रुपया लगाय आपकूं धन्य मानै है तथा धन आज्ञा ऐश्वर्यका मदकरि अन्ध होय ऐसा मानै है जो जगतमैं धन ही बड़ा है जो धनवानके घर बड़े-बड़े ज्ञानी शास्त्रनिके पारगामी काव्य श्लोकनिके बनावनेवाले नित्य आवै हैं बड़े-बड़े ज्ञानी शास्त्रनिके अर्थि धनवाननिकूं घरमें आप श्रवण कराता फिरै है। तथा अनेक कला चतुराईवाला धनवानके घर नित्य आवै हैं। तथा पूजन करनेवाला प्रभावना तथा भजन करनेवाला अनेक धनवानका आश्रय लेय धनवानकूं श्रवण करावता फिरै है तथा उपवास व्रत बेला तेला करनेवाला त्यागी तपस्वी धनवाननिके ही घर भोजन कूं आवै हैं तथा मन्त्र जापादिक हू धनवन्त पुरुषनिके भले होने कूं करै हैं। तातैं समस्त धर्म और समस्त गुण हमारे धनके आधीन है ऐसैं धन ऐश्वर्यकरि अपना आत्माकूं ऊंचा मानता कृतकृत्य भये धर्मात्माननिकी अवज्ञा करै हैं जातैं आत्मज्ञानी परमार्थी परम संतोषीनिकूं तो देखै नाहीं, जिनको चक्रीकी सम्पदा अर इन्द्रलोककी सम्पदा हू दुःखरूप दीखै है वे पुरुष धनवन्तनिका समागम स्वप्नहूमें नाहीं चाहै हैं। अर जगतके अल्पपुण्य-

वाले निर्धन लोक गृहकुटुम्बके पालनेकी आशा करि संतप्त भये अपना अभिमान छांड धनवानके घर आये दयावानके घर आये दयावान उपकारी जानिकरिकै तथा धर्मसूं प्रीति अर पावनेका फल लेनेवाला जानि धनवानके द्वारै आवै हैं परन्तु धनका मद-करि अन्ध होय ताकै तो दान नाहीं होय है उपकार नाहीं करै है दयारहित निर्दयी होय है। केवल हमारा मान मत छीजो, मत बिगाड़ो ऐसैं मानता मरण करि वहुत ममता कृपणताका प्रभाव-करि नरक तिर्यंचगतिमें वहुतकाल परिभ्रमण करै हैं। बहुरि जे धन सम्पदा पाय करिके मदरहित हैं तिनके ऐसा विचार है जो या धनसम्पदा हमारा रूप नाहीं हमारी नाहीं, कोऊ पूर्वकृत पुण्य फला है सो विनाशीक है अब इस सम्पदाकरि किसीका उपकार करूं, दरिद्री लोगनिका संताप दूर करूं, करुणाकरि दुःखित जीवनिका उपकार करूं, तथा जिनधर्मके श्रद्धानी ज्ञानी तिनका दारिद्रादिक संताप मेटि निराकुल करूं। समस्त जन धनवानकी आशा करै हैं मैं दरिद्री होता तो मोतै कौन उपकार चाहता, तातैं मेरे शभकर्म फल्या है तो आश्रितनिका भरण पोषण करूं बालक वृद्ध रोगी अनाथ विधवा अशक्तनिका उपकार करिही मेरा धन पावना सफल है तथा ऐसा कार्यमें लगाऊं जातैं जिनधर्मकी परिपाटी वहुतकाल प्रवर्तै, ज्ञानाभ्यास की परम्परा चली जाय, नित्य-पूजन ध्यान अध्ययन तप शील करि संसारके उद्धार करनेवाला कार्यका प्रवर्तन करै, ये धन पाएका फल है लाभ है जो पर उप-कारमें धन नाहीं लागैगा तो अवश्य विनाश होसी ही। किसीकी लार सम्पदा परलोक गई नाहीं। दान विना केवल पाप दुर्ध्यान

कराय यह सम्पदा संसारमें डबोय देगी। इस सम्पदा पाइवेका तो दान करना ही फल है। कोटयां मनुष्य पूर्वे दान नाहीं दिया ते घर घर द्वारै अन्न मांगता फिरै है उदर भर भोजन नाहीं मिलै है। शरीर ऊपरी कपड़ा नाहीं मिलै है। दरिद्री दीन हुआ परकी उच्छिष्टादिकनिमें आशा करता फिरै है सो दानरहितताका तथा कृपणताका फल है। मनुष्यनिका पशुवनिका दासपना करता हू उदर नाहीं भर सकै है दान विना मोकूं आगामी कालमें सम्पदा नाहीं प्राप्त होयगी, दानमें धर्मके स्थाननिमें जो लगाऊंगा तो पावना सफल है मरण हुआ परलोक साथि जायगी नाहीं जहां धरी है तहां ही धरी रहैगी तातैं कोऊ जीवनिके उपकारमे खरच होय तो सुफल है वाही सम्पदा हमारी है ऐसा विचार सहित सम्यग्दृष्टि है सो परोपकारके कार्यमें लगावनेमें उद्यमी रहै है। यद्यपि धर्मात्मा पुरुषनिके तो या संपदा ग्रहण करने योग्य ही नाहीं मोहकरि अंध करनेवाली है, आत्माकूं भुलावने वाली है यामें सम्यग्दृष्टि अपनापन ही नाहीं करै तथापि चारित्र मोहके उदयतैं राग नाहीं घटै तो परजीवनिके उपकारमें तो अवश्य लगावना बहुत कष्टतैं उपजाई ताकूं उत्तम कार्यमें लगावना छांडि करि मरजानेमें अपना कहा भला होयगा? या विचारि जे पाप-रहित जन हैं ते निर्धन रोगी दुःखित जननिकूं देखि अवज्ञा नाहीं करैं हैं धन देय दुःख मेटे हैं। धर्ममें प्रवर्त्तावनेवाले शुभ कार्यमें खरचि करावनेवालेनिकूं देखि बड़ा आनन्द मानैं हैं धर्म साधन करनेवालेनिके शामिल होय धनके भोगनेमें आनंद मानै हैं ते संपदा पावनेका फल लिया है अर आगैं परलोकमें देवनिकी सम्पदा

चक्रीनिकी सम्पदाकूं दानी ही प्राप्त होय हैं।

अर आगैं जे संपदामें रागी हैं तिनकू, संपदाका स्वरूप दिखावनेकूं सूत्र कहैं हैं—

यदि पापनिरोधोऽन्यसंपदा किं प्रयोजनम्।
अथ पापास्त्रवोऽस्त्यन्यसंपदा किं प्रयोजनम्॥ २७॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टि विचारै है जो ज्ञानावरणादि, अशुभ पापप्रकृतिनिका आस्रव होना मेरे रुक गया तो इसतैं अन्य संपदाकरि मेरे कहा प्रयोजन है? अर जो हमारे पापका आस्रव होय है अर संपदा आवै है तो इस संपदाकरि कहा प्रयोजन है॥ २७॥

भावार्थ—इस जीवके जो त्यागरूप संयमरूप प्रवृत्तिकरि पाप का आस्रव होना रुक गया तो अन्य जो इन्द्रियनिके विषयनिकी संपदा राज्य ऐश्वर्य संपदा नाहीं भई तो इस संपदातैं कहा प्रयोजन है। आस्रव रुकनेतैं तो निर्वाणसंपदा अहमिंद्रलोककी स्वर्गलोककी संपदा प्राप्त होय है। या खाक धूलिसमान क्लेशकी भरी क्षणभंगुर संपदाकरि कहा प्रयोजन है अर जो इस जीवके त्यागरूप संयमरूप प्रवृत्तिकरि पापका आस्रव नाहीं है सो निर्वंध नाम संपदा बड़ी विभूति महालक्ष्मी है अर जो अन्याय अनीति कपट छल चोरी इत्यादिककरि मेरे पापका आस्रव निरन्तर होय है अर धन सम्पदा प्राप्त होगई तो इस करि कहा प्रयोजन है। शीघ्र ही मरणकरि अन्तर्मुहूर्तमें नरकका नारकी जाय उपजैगा। तातैं सम्यग्दृष्टिके तो पाप कर्मके आस्रवका आवनेका बड़ा भय है अर पापका आस्रव रुक जानेकूं ही महासम्पदाका लाभ मानै है। अर इस संसारकी सम्पदाकूं तो पराधीन दुःखकी देनेवाली जानि यामें लालसा नाहीं करै है अर कदाचित् लाभांतराय भोगांतराय

कर्मका क्षयोपशमतैं प्राप्त होय ताकूं पराधीन विनाशीक बन्ध करनेवाली जानि इस सम्पदामें लिप्त नाहीं होय है। वर्तमानकी किंचित् वेदनाकूं मेटनेंवाली मानि उदासीन भया कड़वी औषधि ज्यों ग्रहण करै है सम्पदाकूं अपना हित जानि वांछा नाहीं करै है।

अब छह अनायतनका ऐसा स्वरूप जानना—कुदेव कुगुरु कुशास्त्र अर कुदेवका श्रद्धान वा सेवन करनेवाला अर कुगुरुकी सेवा करनेवाला अर कुशास्त्रका पढ़नेवाला ऐसैं छहप्रकार ये धर्मके आयतन कहिये स्थान नाहीं। इनतैं कदाचित्त अपना भला होना नाहीं यातैं छहूँ अनायतन हैं। इनका संक्षेप स्वरूप ऐसा जानना—जामें सर्वज्ञपना नाहीं वीतरागपना नाहीं जाकूं कामी क्रोधी तथा चोरनिका अर जारनिका शिरोमणि कहिये तथा जाकूं भोजनका इच्छुक मांसका भक्षक क्रोधी लोभी अपनी पूजा करावनेका इच्छुक जीवनिका संहारकरनेवाला अपने भक्तनिका उपकारक अभक्तनिका विनाशक कहै जिनको बहुत मूढ़लोग देवबुद्धि करि पूजें हैं अर देवपनाका आयतन नाहीं उसमें देवबुद्धि करना मिथ्या है। वे देवपनाका आयतन नाहीं है। बहुरि जो व्रतसंयमरहित अनेक पाखण्ड भेषका धारक तिनिमें व्रत त्याग विद्याध्ययनादिक परिग्रहत्याग देखि करकै तथा मन्त्रजन्त्रतन्त्रविद्या ज्योतिष वैद्यक तथा शकुनविद्या तथा इन्द्रजालादिक विद्यानिकरि अनेक मूढ़ लोगनिके मान्य पूज्य देख करि पाखण्डी जिन आज्ञाबाह्य भेषीनिमें पूज्य गुरुपना नाहीं जानना। बहुरि खोटे मिथ्याशास्त्र हिंसाके पोषक तिनिमें आत्महित नाहीं सो शास्त्र सम्यग्ज्ञानका आयतन नाहीं है। अर कुदेव कुगुरु कुशास्त्रनिके सेवन करनेवाले

इनकी उपासनातैं अपना कल्याण माननेवालेनिकूं सम्यग्दृष्टि प्रशंसा नाहीं करै है। ऐसैं सम्यग्दर्शनके घात करनेवाले तीन मूढ़ता, अष्ट मद, अष्ट शङ्कादिक दोष, छह अनायतन इन पचीस दोषनिका परिहार करि व्यवहार सम्यग्दर्शनके धारणतैं निश्चय सम्यग्दर्शनकूं प्राप्त होहू। अर जाकै पचीस दोषरहित आत्माका श्रद्धानभाव है ताहीकै निश्चय सम्यग्दर्शन होनेका नियम है। जाकै बाह्यदोष ही दूर नाहीं होय ताकै अन्तरङ्ग हू सम्यग्दर्शन शुद्ध नाहीं होय है।

अब सम्यक्त्वके भेद अर उत्पत्ति कैसैं होय है सो कहै हैं;—

सम्यक्त्व तीन प्रकार है-उपशमसम्यक्त्व १, क्षयोपशमसम्यक्त्व २, क्षायिकसम्यक्त्व ३। संसारी जीवके अनादिकालतैं अष्टकर्मनिका बन्धन है तिनमें मोहनीयकर्मका भेद जो दर्शनमोहनी ताका तीन भेद है। मिथ्यात्व१ सम्यङ्मिथ्यात्व२ सम्यक्त्वप्रकृतिमिथ्यात्व ३ अर चारित्रमोहनीका भेद जो अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ ऐसैं सात प्रकृति सम्यक्त्वका घात करनेवाली हैं। इन सप्त प्रकृतिनिका उपशमतैं उपशमसम्यक्त्व होय है। अर इन सप्त प्रकृतिनिका क्षयतै क्षायिकसम्यक्त्व होय है। इन ही सप्त प्रकृतिनिका क्षयोपशमतैं क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होय है याहीकूं वेदकसम्यक्त्व हू कहिये है। तहां अनादिमिथ्यादृष्टि जीवकैं पहला उपशमसम्यक्त्व ही होय है अर मिथ्यादृष्टिकै मिथ्यात्व छूटि सम्यक्त्व होय ताकूं प्रथमोपशमसम्यक्त्व कहिये है। अर जो उपशम श्रेणीकी आदिमें क्षयोपशमसम्यक्त्वतैं उपशमसम्यक्त्व होय सो द्वितीयोपशमसम्यक्त्व है। अब मिथ्यादृष्टिकैं

मिथ्यात्वगुणस्थानतैं उपशमसम्यक्त्व कैसैं होय ताकूं श्रीलब्धि-सारजीके अनुसार किंचित् लिखिये है,—

सम्यग्दर्शन उपजै है सो चारों गतिहीमें अनादिमिथ्यादृष्टि वा सादिमिथ्यादृष्टिकै उपजै है परन्तु संज्ञीकै ही उपजै है असंज्ञीकै नाहीं उपजै। पर्याप्तकै ही उपजै अपर्याप्तकै नाहीं उपजै। मन्द कषायीहीकै उपजै तीव्रकषायीकै नाहीं उपजै भव्यहीकै उपजै अभ-व्यकै नाहीं उपजै, गुण दोषनका विचार सहित साकारोपयोग ज्ञानोपयोगयुक्तहीकै उपजै दर्शनोपयोगीकै नाहीं उपजै, जागृतअ-वस्थाहीमें उपजै निद्राकरि अचेतकै नाहीं उपजै, सम्मूर्छनकै नाहीं उपजै अर पांचमी करणलब्धिमें उत्कृष्ट जो अनिवृत्तिकरण तिसका अन्त समयमें प्रथमोपशमसम्यक्त्व प्रगट होय है। अब पंचलब्धि के नाम ऐसे हैं—क्षयोपशमलब्धि १ विशुद्धिलब्धि २ देशनालब्धि ३ प्रायोग्यलब्धि ४ करणलब्धि ५ इन पांच लब्धि विना सम्यक्त्व नाहीं उपजै। तिनमें चार लब्धि तो कदाचित संसारी भव्य तथा अभव्यकै भी होय जाय हैं परन्तु करणलब्धि तो जाकै सम्यक्त्व तथा चारित्रकूं अवश्य प्राप्त होना होय तिसहीकै होय है। अब क्षयोपशलब्धिकूं आगममें ऐसें कहैं हैं—जिस कालमें ऐसा योग आ मिलै जो अष्ट कर्मनिमें ज्ञानावरणादिक समस्त अप्रशस्त प्रकृतीनकी शक्ति जो अनुभाग सो समय प्रति अनन्तगुणा घटता अनुक्रमकरि उदय आवै तिसकालमें क्षयोपशमलब्धि होय है। जातैं उत्कृष्ट अनुभागका अनन्तवां भाग परिणाम जे देशघातिस्प-र्द्धक तिनका उदय होते हू उत्कृष्ट अनुभागका अनन्त बहुभाग मात्र जे सर्वघातिस्पर्द्धक तिनकी सत्तामें अवस्थिति सो उपशम

ऐसा संयोगकी प्राप्ति जिस कालमें होय सो क्षयोपशमलब्धि जाननी। प्रथम भई जो क्षयोपशमलब्धि तिसकै प्रभावतै उपज्या जो जीवकै सातावेदनीय आदि शुभ प्रकृतिके बन्धकूं कारण धर्मानुरागरूप शुभ परिणामनिकी प्राप्ति होय सो विशुद्धिलब्धि है। सो ठीक ही है जातैं अशुभकर्मनिका रस देय घटि जाय तदि जीवकै संक्लेशपरिणामकी हानि होजाय तदि विशुद्धपरिणामनिकी वृद्धि होनी युक्त ही है। ऐसैं दूजी विशुद्धिलब्धि कही। अब देशनालब्धिका ऐसा स्वरूप जानना,—छहद्रव्य नवपदार्थनिके उपदेश करनेवाला आचार्यादिकनिका लाभ अर तिनिका उपदेश की प्राप्ति अर तिनकरि उपदेश्या पदार्थनिका धारण करनेकी प्राप्ति सो देशनालब्धि है। नरकादिकनिमे उपदेशदाता जहां नाहीं है तहां पूर्व जन्ममें धारया जो तत्त्वार्थ तिसके संस्कारका बलतैं सम्यग्दर्शन होय है।

अब चौथी प्रायोग्यलब्धिका स्वरूप आगममें जैसा है सो कहै हैं,—ए कही जे तीन लब्धिकरि संयुक्त जे जीव समय समय विशुद्धताकी वृद्धिकरि आयुकर्म विना सात कर्मनिकी अन्तःकोटाकोटिसागरमात्र स्थिति अवशेष राखै तिसकालविषै जो पूर्वैं स्थिति थी ताको एक कांडक घात करि छेदि, तिस कांडकके द्रव्यको अवशेष रही स्थिति विषै निक्षेपण करै हैं अर घातिकर्मनिका जो अनुभाग कहिये रस सो तो दारु अर लतारूप अवशेष रहै है। अर शैलास्थिरूप नाहीं रहै है अर अघातियानिका अनुभाग निंब कांजीर रूप रहै। विष अर हलाहलरूप नाहीं रहै है। पूर्वै जो अनुभाग था ताकै अनन्तवा भाग रहै बहु-

भाग/मात्र अनुभागकूं छेदि अवशेष रह्या अनुभागविषै प्राप्ति करै है। तिंस कार्य करनेकी योग्यताकी प्राप्ति सो प्रायोग्यलब्धि है सो भव्यके वा अभव्यकै भी समान होय है। बहुरि संक्लेश-परिणामी संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्तकै जो संभवै ऐसा उत्कृष्ट स्थिति-बन्ध अर उत्कृष्टस्थिति अनुभाग प्रदेशका सत्व होतैं जीवकै प्रथमोपशमसम्यक्त्व नाहीं ग्रहण होय है अर विशुद्ध क्षपकश्रेणी विषै संभवता ऐसा जघन्यस्थिति बन्ध अर जघन्यस्थितिअनुभाग-प्रदेशका सत्त्व होते हू प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी प्राप्ति नाहीं होय है। प्रथमोपशमसम्यक्त्वके सम्मुख भया जो मिथ्यादृष्टि जीव सो विशुद्धताकी वृद्धिकरि वधता संता प्रायोग्यलब्धिका प्रथम समयतैं लगाय पूर्वस्थितिके संख्यातवें भागमात्र अंतःकोटाकोटि-सागरप्रमाण आयु विना सातकर्मनिका स्थितिबन्ध करै है। तिस अतःकोटाकोटिसागरस्थितिबन्धतैं पल्यका संख्यातवां भागमात्र घटता स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त पर्यंत समानतालिये करै है। बहुरि तातैं पल्यका संख्यातवाँ भागमात्र घटता स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त समानतालिये करै। ऐसैं क्रमतैं संख्यात स्थितिबंधापसरणनि करि पृथक्त्व सौ सागर घटे पहला प्रकृति बंधापसरणस्थान होय। बहुरि इसही क्रमतैं तिसतै हू पृथक्त्व सौ सागर घटै दूजा प्रकृतिबंधापसरणस्थान होय। ऐसैं ही क्रमतैं इतना स्थितिबंध घटे एक एक स्थान होय ऐसैं प्रकृति बंधापसरणके चौंतीस स्थान होय हैं। यहाँ पृथक्त्व नाम सात-आठ का है तातैं यहां पृथक्त्वसौसागर कहनेतैं सातसै वा आठसै सागर जानना। अब यहां कैसी कैसी प्रकृतीनिका बन्धमेंतैं व्युच्छेद होय है

यहांतै लगाय प्रथमोपशमसम्यक्त्वपर्यंत बंध नाहीं होय ऐसै बंधापसरण हैं (?) तिन चौंतीस बन्धापसरणका वर्णन किए कथनी बहुत होजाय जो विशेष जान्या चाहै सो श्रीलब्धिसार-ग्रन्थतैं जानहु। अर और हू विशेष प्रायोग्यलब्धिमे जानना।

अब पंचमी करणलब्धि सो भव्यहीकै होय अभव्यकै नाहीं होय है। अधःकरण १, अपूर्वकरण २, अनिवृत्तिकरण ३, ऐसैं तीन करण हैं। इहां करण नाम कषायनिकी मंदतातै विशुद्धरूप आत्मपरिणामनिका है। तिनमें अल्प अंतर्मुहूर्तप्रमाण काल तो अनिवृत्तिकरणका है यातैं संख्यातगुणा अपूर्वकरणका काल है। यातैं संख्यातगुणा अधःप्रवृत्तिकरणका काल है। सो हू अंत-र्मुहूर्तप्रमाण ही है। जातैं इस अंतर्मुहूर्तके असंख्यात भेद हैं। इस अधःप्रवृत्तिकरणकालके विषैं अतीत अनागत वर्तमान त्रिका-लवर्ती नानाजीवसंबधी इस करणके विशुद्धतारूप परिणाम असं-ख्यातलोकप्रमाण हैं, ते परिणाम अधःप्रवृत्तिकरणके जेते समय हैं तितनेमें समान वृद्धि लियें समय समय वृद्धि लिए है। जातैं इस करणके नीचले समयके परिणामनिकी संख्या अर विशुद्धता ऊपरले समयवर्ती किसी जीवके परिणामनितैं मिलै है। तातैं याका नाम अधःप्रवृत्तिकरण नाम है। याके परिणामनिकी संख्या विशुद्धताके लौकिक दृष्टांत अलौकिक संदृष्टि गोमट्टसारमें तथा लब्धिसारमें हैं तहांतैं विशेष जानना। इहां एता बड़ा विस्तार कैसैं लिखा जाय ग्रन्थ बहुत बड़ा होजाय। बहुरि अधःप्रवृत्ति-करणके परिणामनिका प्रभावतैं चार आवश्यक होय हैं एक तो समय समय प्रति अनन्तगुणी विशुद्धताकी वृद्धि होय है। दूजा

स्थितिबन्धापसरण होय है पूर्वैं जेता प्रमाण लिये कर्मनिका स्थिति-बन्ध होता था तिसतैं घटाय घटाय स्थितिबन्ध करै है। बहुरि सातावेदनीयकूं आदि देकर प्रशस्तकर्मप्रकृतिनिका समय समय अनन्तगुणा बंधता गुड खांड सकरा अमृत समान चतुःस्थानलियें अनुभागबन्ध होय है। बहुरि असातावेदनीयादि अप्रशस्तकर्म-प्रकृतिनिका अनन्तगुणा घटता निंब कांजीर समान द्विस्थानलियें अनुभागबन्ध होय है। विष हलाहलरूप नाहीं होय है। ऐसैं अधः-प्रवृत्तिकरणके परिणामतैं चार आवश्यक होय हैं। अधःप्रवृत्ति-करणका अन्तर्मुहूर्तकाल व्यतीत भयें दूजा अपूर्वकरण होय है। अधःकरणके परिणामतैं अपूर्वकरणके परिणाम असंख्यात लोक-गुणें है सो नानाजीवनिकी अपेक्षा हैं। एक जीवकी अपेक्षा एक समयमें एकही परिणाम होय है। एक जीवकी अपेक्षा तो जेते अपूर्वकरणके अन्तर्मुहूर्तकालके समय हैं तेते परिणाम हैं ऐसे ही अधःकरणके भी एक जीवके एक समयमें एक परिणाम ही होय हैं। नाना जीवनिकी अपेक्षा एक समयकै योग्य असंख्यात परि-णाम हैं ते अपूर्वकरणके परिणामभी समय समय सदृश चय करि वर्द्धमान है। इस अपूर्वकरणके परिणाम हैं ते नीचले समय संबंधी परिणामनितैं समान नाहीं हैं। प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धतातैं द्वितीय समयकी जघन्य विशुद्धता हू अनन्तगुणी है ऐसैं परि-णामनिका अपूर्वपणा है तातैं दूसरा करणकूं अपूर्वकरण कह्या है। अपूर्वकरणका प्रथम समयतैं लगाय अनन्तसमयपर्यन्त अपने जघन्यतैं अपना उत्कृष्ट अर पूर्वसमयका उत्कृष्टतैं उत्तर समयका जघन्य क्रमतैं परिणाम अनंतगुणी विशुद्धतालिये सर्पकी चालवत्

जानने। इहां अनुकृष्टि नाहीं है। अपूर्वकरणके पहले समयतैं लगाय यावत् सम्यक्त्वमोहनी मिश्रमोहनीका पूर्ण काल जो जिस-कालमें गुण संक्रमण करि मिथ्यात्वको सम्यक्त्वमोहनी मिश्र-मोहनीरूप परिणमावै है तिसकालका अन्तसमयपर्यन्त गुणश्रेणी १, गुणसंक्रमण २, स्थितिखण्डन ३, अनुभागखण्डन ४, ये चार आवश्यक होय है। बहुरि स्थितिबन्धापसरण है सो अधःकरणका प्रथम समयतैं लगाय तिस गुणसंक्रमण पूर्ण होनेका कालपर्यन्त होय है। यद्यपि प्रायोग्यलब्धितैं ही स्थितिबन्धापसरण होय है तथापि प्रायोग्यलब्धिके सम्यक्त्व होनेका अनवस्थितिपना है नियम नाहीं तातैं ग्रहण नाहीं किया। बहुरि स्थितिबन्धापसरणका काल अर स्थितिकाण्डकाण्डोत्करणका काल ए दोऊ समान अंत-र्मुहूर्तमात्र हैं। तहां पूर्वैं बांध्या था ऐसा सत्तामें कर्मपरमाणुरूप द्रव्य तामेंसूं काढ़ि जो द्रव्य गुणश्रेणीमें दिया ताका गुणश्रेणीका कालमें समय समय प्रति असंख्यात गुणा अनुक्रम लिये पंक्तिबंध जो निर्जराका होना सो गुणश्रेणीनिर्जरा है ॥ १ ॥ बहुरि समय समय प्रति गुणकारका अनुक्रमतैं विवक्षित प्रकृतिके परमाणु पलट करि अन्यप्रकृतिरूप होय परिणमे सो गुणसंक्रमण है॥ २॥ बहुरि पूर्वैं बांधी थी ते सत्तामें तिष्ठती कर्मप्रकृतीनिकी स्थितिका घटावना सो स्थितिखण्डन है ॥ ३ ॥ बहुरि पूर्वैं बांधा था ऐसा सत्तामें तिष्ठता अशुभ प्रकृतीनिका अनुभागका घटावना सो अनु-भागखण्डन कहिये ॥ ४॥ ऐसैं चार कार्य अपूर्वकरणविषै अवश्य होय हैं। अपूर्वकरणके प्रथमसमयसम्बन्धी प्रशस्त अप्रशस्त प्रकृतीनिका जो अनुभागसत्व है तातैं ताके अन्त्यसमयविषै प्रशस्त-

प्रकृतीनिका अनन्तगुणा वधता अर अप्रशस्तप्रकृतीनिका अनन्त-गुणा घटता अनुभागसत्व होय है। इहां समय समय प्रति अनंत-गुणी विशुद्धता होनेतैं प्रशस्तप्रकृतीनिका अनन्तगुणा अर अनुभागकांडककाम हातमकरि अप्रशस्तप्रकृतीनिका अनन्तवें भाग अनुभाग अन्तसमयविषैं सम्भवै है। इन स्थितिखण्डादि होनेंके विधानका कथन बहुत विस्ताररूप लब्धिसारतैं जानना। इहां संक्षेप-मात्र प्रकरणके वशतैं जनाया है। ऐसैं अपूर्वकरणविषै कहे जे स्थितिखण्डादि कार्य विशेषतैं तीसरा अनिवृत्तिकरण विषै भी जानना। विशेष इतना इहां समान-समयवर्ती नाना जीवनिके सदृशपरिणाम ही हैं। जातैं जितने अनिवृत्तिकरणके अन्तर्मुहूर्तके समय हैं तितने ही अनिवृत्तिकरणके परिणाम है तातैं समय २ प्रति एक २ ही परिणाम है अर इहां जो स्थितिखण्ड, अनुभाग-खण्डादिकका प्रारम्भ और ही प्रमाणलियें होय है। जातैं अपूर्व-करणसंबन्धी है स्थितिखण्डादिक जिनका ताकैं अन्तसमयविषैंही समाप्तपना भया। इहां अन्तरकरणादिविधि है सो लब्धिसार-जीतैं जाननी।

इहां प्रयोजन ऐसा है जो अनिवृत्तिकरणका अन्तसमयविषै दर्शनमोहनीय अर अनन्तानुबन्धीचतुष्क इनके प्रकृतिस्थिति प्रदेश अनुभागनिका समस्तपनें उदय होनेकी अयोग्यतारूप उपशम होनेतैं तत्त्वार्थनिका श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शनकूं पाय औपशमिक-सम्यग्दृष्टि होय है। तहां प्रथम समयविषैं द्वितीय स्थितिविषै तिष्ठ-ता मिथ्यात्वके द्रव्यको स्थितिकांडक अनुभागकांडक घात विना गुणसंक्रमणका भाग देय मिथ्यात्व सम्यङ्मिथ्यात्व सम्यक्त्व

मोहनीरूपकरि मिथ्यात्वके द्रव्यकूं तीन प्रकार करै है। भावार्थ-अनादिकालका दर्शनमोहनी एकरूप था तिसका द्रव्य करणनिके प्रभावतैं तीनप्रकार शक्तिरूप न्यारे२ होय तिष्ठै है। ऐसै मिथ्या-दृष्टिके सम्यक्त्व होनेंका कारण पंचलब्धिनिका संक्षेपतैं स्वरूप जनाया, इस उपशमसम्यक्त्वका जघन्य तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त ही काल है। अन्तर्मुहूर्त पूर्ण भये पाछैं नियमतैं तीन दर्शनमोहनी प्रकृतीनिमें एकका उदय होय है। तहां जो सम्यक्त्वमोहनीका उदय होय तो उपशमसम्यक्त्व छूटि जीवकै वेदकसम्यक्त्व होय है सो सम्यक्त्वमोहनीका उदयतैं वेदकसम्यग्दृष्टि चल मल अगाढरूप तत्त्वकूं श्रद्धान करै है सम्यक्त्वमोहनीका उदयतै श्रद्धानविषै चलपना होय है तथा मल जो अतिचारसहित होय है वा शिथिल श्रद्धान रहै। इस वेदक सम्यक्त्वकूं ही क्षयोपशमसम्यक्त्व कहिये है जातैं दर्शमोहनीके सर्वघातिस्पर्द्धकनिका उदयका अभाव सो ही यहां क्षय है। अर देशघातिस्पर्द्धकरूप सम्यक्त्वप्रकृतिके उदय होतैं बहुरि तिस सम्यक्त्वमोहनीहीके वर्तमानसमय सबंधी ते ऊपरिके निषेक उदयकूं नाहीं प्राप्त भये, तिनसम्बन्धी स्पर्द्धकनिका सत्तामें अवस्थितिरूप है लक्षण जाका ऐसा उपशम होतैं क्षयोपशमसम्यक्त्व होय है इसहीकूं समयक्त्व-प्रकृति के उदयका वेदन जो अनुभवन तातैं वेदक सम्यक्त्व कहियेहै। बहुरि जो इस उपशमसम्यक्त्वका अन्तर्मुहूर्तकालवीतैं पीछैं जो सम्यङ्मिथ्यात्वका उदय होय तो मिश्रगुणस्थानी हो जाय, ताकै तत्व अतत्व दोऊनका मिल्या हुआ श्रद्धान होय है। अर जो मिथ्यात्वका उदय हो जाय तो मिथ्यादृष्टि विपरीत

श्रद्धानी होय। जैसैं ज्वरकरि पीडित पुरुषकूं मिष्टभोजन नाहीं रुचै, तैसैं ताकूं अनेकान्तरूप वस्तुका सत्यार्थस्वरूपतत्त्व नाहीं रुचै। तथा रत्नत्रयरूप मोक्षका मार्ग नाहीं रुचै। तथा दशलक्षणरूप स्वपरकी दयारूप धर्म नाहीं रुचै, अर जो उपशमसम्यक्त्वका अतर्मुहूर्तकालमें ते जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली अवशेष रहैं, जो अनंतानुबन्धी क्रोधमानमायालोभमेंतैं कोऊ उदय होय जाय तो सम्यक्त्वतैं छूटि सासादननाम गुणस्थान पाय जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली सासादन नाम पाय नियमतैं मिथ्यादृष्टि होय है। ऐसैं उपशमसम्यक्त्वका अंतर्मुहूर्तकाल पूर्ण भये पाछैं चार मार्ग हैं। जो सम्यक्त्वमोहनीका उदय होय जाय तो क्षयोपशम सम्यक्त्वी होय। अर मिश्रप्रकृतिका उदय होय तो मिश्रगुणस्थानी होय अर मिथ्यात्वका उदय होय तो नियमतैं मिथ्यात्वी होय, अनंन्तानुबन्धी चारकषायमेंतैं कोऊ एक का उदय होय तो सासादनगुणस्थानो नाम पाय पाछैं मिथ्यादृष्टि होय है। अब क्षायिकसम्यक्त्व होनेका संक्षेप कहै हैं-दर्शनमोहके क्षयतैं क्षायिक सम्यक्त्व होय है, अर दर्शनमोहका क्षपावनेका आरम्भ करै सो कर्मभूमिका मनुष्य ही करै भोगभूमिका मनुष्य नाहीं करै, समस्त देव नारकी अर तिर्यंचनिकै क्षायिकसम्यक्त्व आरंभ नाहीं होय है अर कर्मभूमिका मनुष्य आरम्भ करै सोहू तीर्थंकर वा अन्यकेवली श्रुतकेवलीके पादमूलके नजीक तिष्ठता होय सोही दर्शनमोहकी क्षपणाका आरम्भ करै है। जातैं केवली श्रुतकेवलीकी निकटता बिना ऐसी विशुद्धता नाहीं होय है। यहां अधःकरणका प्रथमसमयसौं लगाय जेते

मिथ्यात्वका अर मिश्रमोहनीका द्रव्यकूं सम्यक्त्वप्रकृतिरूप होय संक्रमण करै तावत् अन्तर्मुहूर्तकालपर्यंत दर्शनमोहनीकी क्षपणाका आरंभ कहिये है तिस आरंभकालके अनंतरवर्ती समयतै लगाय क्षायिकसम्यक्त्वके ग्रहणके प्रथम समयमें पहिले निष्ठापक होय है। सो जहां प्रारम्भ किया था कर्मभूमिका मनुष्य वैही निष्ठापक होय तथा सौधर्मादिक कल्प वा कल्पातीत अहमिंद्रनिविषै वा भोगभूमिके मनुष्यतिर्यंचनिविषैं वा घम्मानाम नरकपृथ्वी विषै भी निष्ठापक होय है। जातैं पूर्वैं बांधी है आयु जानैं ऐसा कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टि मरकरि च्यारों गतिनिविषैं उपजै है। तहां क्षपणाकूं पूर्ण करै है। अब अनंतानुबन्धी क्रोधमानमायालोभ अर मिथ्यात्व सम्यङ्मिथ्यात्व सम्यक्त्व इन तीनकी कैसैं क्षपणा करै है सो कहै हैं। कोऊ मनुष्य वेदक सम्यग्दृष्टि असंयत वा देशसंयत वा प्रमत्त वा अप्रमत्त इस चार गुणस्थाननिमैतैं कोऊ एक गुणस्थानमें तिष्ठता पूर्वैं तीनकरणकी विधि करकैं अनंतानुबन्धी क्रोधमानमायालोभके उदयावलीमें तिष्ठते निषेकनिकूं छांडि अर उदयावली वाह्य तिष्ठते समस्त निषेकनिकूं विसंयोजन करता अनिवृत्तिकरणके अन्तके समयविषै समस्त अनंतानुबन्धीके द्रव्यकूं द्वादश कषाय अर नव नोकषायरूप परिणमन करावै है सो अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन है। यहां हू विसंयोजनमें गुणश्रेणी अर स्थितिकांडघातादिक वहुत विधि हैं। अनंतानुबन्धीका विसंयोजन किये पीछे अन्तर्मुहूर्तकाल विश्रामकरि अन्य क्रिया नाहीं करि ता पाछै वहुरि तीन करणकरि अनवृत्तिकरणका कालविषैं मिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वमोहनीको क्रमतैं

नष्ट करै है। सो इन करणनिके सामर्थ्यतैं जो जो कर्मनिकी स्थिति अनुभागनिका घात होनेका विधान है सो लब्धिसारतैं जानहु। ऐसे सप्तप्रकृतिनका नाशकरि क्षायिक सम्यक्त्वी होय है। ऐसैं तीनप्रकार सम्यक्त्व होनेका विधान संक्षेपतैं वर्णन किया। अब सम्यग्दृष्टिके अन्य हू अष्ट गुण प्रकट होय है तिनकरि आपकै वा अन्यकै सम्यक्त्व जाना जाय है। संवेग १, निर्वेद २, आत्मनिन्दा ३, गर्हा ४, उपशम ५, भक्ति ६, वात्सल्य ७, अनुकंपा ८ ये आठ जाकै होय उसकै सम्यग्दर्शन होय है। संवेग कहिये धर्ममें अनुराग ताकै होय ही जातैं संसारी मिथ्यादृष्टिका अनुराग तो देहसूं लगि रह्या है। जो मेरा देह उज्वल रहै बलवान् रहै पुष्ट रहै तथा देहसूं ममता करि अभक्ष्य भक्षणकरि आनन्द मानैं है। अन्यायके विषै शृंगारादिक करि देहहीकूं भूषित करै है पापीनिका सम्बन्धमे आनन्द मानै है तथा विकथा मे राग करै है तथा स्त्रीपुत्रधनसम्पदामें नगर देशराज्यऐश्वर्यतैं अनुराग करै है। सम्यग्दृष्टिके देहादिकनिमें आत्मबुद्धि नाहीं तातै दशलक्षणधर्ममें अनुराग करै है अर सम्यग्दृष्टिका अनुराग तो धर्मात्मा पुरुषनिमे धर्मकी कथामें धर्मके आयतनमे होय है। ऐसा संवेगगुण है सो सम्यग्दृष्टिके होय ही है॥ १॥ बहुरि सम्यग्दृष्टि के पंचपरिवर्तनरूप संसारतैं अर कृतघ्नदेहतैं अर दुर्गतिके ले जानेवाले भोगनितैं विरक्तपना नियमतैं होय ही सो दूजा गुण निर्वेद प्रगट होय है॥ २॥ बहुरि अपना प्रमादीपना करि तथा असंयमभावकरि तथा सांसारिक पापमें प्रवृत्तिकरि निरन्तर परिणाममें निंद्यपनाका चिंतवन जो ऐसा दुर्लभ मनुष्यपनाकी एक

क्षण भी धर्मका आश्रय विना जाय है सो बड़ा अनर्थ है। ऐसैं अपने परिणामनिकरि अपना दोष सहित प्रवर्तनिकूं विचारि अपने मनमें अपनी निन्दा करना सो तीजा आत्मनिंदानाम गुण है ॥ ३ ॥ बहुरि जो अपने गुरु होंय तथा बहुज्ञानी साधर्मी होय तिनके निकट विनय सहित अपने निंद्य दोषादिक प्रकट करना सो चौथा सम्यग्दृष्टिका गर्हानाम गुण है ॥४॥ बहुरि जो क्रोधमानमायालोभकी सम्यग्दृष्टिके मन्दता होय ही है। राग द्वेष काम उन्माद वैरादिक सम्यग्दृष्टिकै अपना घातक जानि मन्द होय ही है सो ही उपशमगुण है ॥ ५ ॥ बहुरि सम्यग्दृष्टिके पंच-परमेष्ठी में तथा जिनवाणीमें जिनेन्द्रके प्रतिबिंबमें दशलक्षण धर्म में धर्मके धारक धर्मात्मानिमें तपस्वीनिमें अनेक गुण स्मरणकरि गुणनिमें अनुराग करना सो सम्यग्दृष्टिके भक्तिनाम छठा गुण होय ही है ॥ ६ ॥ बहुरि सम्यग्दृष्टिके धर्मात्मामें प्रीति होय ही जैसैं दरिद्रीनिके धनकूं देखि प्रीति आनन्द प्राप्त होय तैसैं धर्मात्माकूं सम्यग्दृष्टिकूं वा सम्यग्ज्ञानीके धर्मके व्याख्यानकूं श्रवण करि वा देखने करि सम्यग्दृष्टिकै अत्यन्त आनंद प्रगट होना सो वात्सल्यनामा सप्तमगुण है ॥ ७ ॥ बहुरि सम्यग्दृष्टिकै षट्-काय के जीवनिकी दया प्रगट होय ही है, परजीवनिके दुःख देख अपना परिणाम कंपायमान होजाय, जातैं आपमें दुःख आया ताके दुःख मेटजाने प्रति परिणामका होना सो सम्यग्दृष्टिकै अनुकंपागुण प्रगट होय है ॥ ८ ॥ ऐसैं और हू अपरिमाणगुण सम्यग्दृष्टिकै स्वयमेव प्रगट होय हैं जातैं जिनकै सत्यार्थ श्रद्धान ज्ञान प्रगट होगया तिनकै समस्त बाह्य अभ्यन्तर गुण ही होय

परिणामै हैं।

अब जो जीव सम्यग्दर्शनसंयुक्त है ताहीकै महान्पना है ऐसा कहनेकूं सूत्र कहै हैं:—

सम्यग्दर्शनसंपन्नमपि मातङ्गदेहजं।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसं॥ २८॥

अर्थ— सम्यग्दर्शनकरि संयुक्त चांडालके देहतैं उपज्या जो चांडाल ताहि हू देवा कहिये गणधरदेव जे हैं ते देव कहै हैं। जैसैं भस्मकरि दबा जो अङ्गार ताकै अभ्यन्तर तेज है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनकरि सहित चांडाल है ताकूं हू भगवान् गणधरदेव है ते देव कहै हैं। जातैं यो हाड मांस मय देह चांडालतैं उपज्या तातै देह चांडाल है। परन्तु सम्यग्दर्शन जाकै हुआ ऐसा आत्मा तो दिव्य गुणनिकरि दिपै है तातैं मनुष्य शरीरकूं भी उत्तमगुणका प्रभावकरि देव कह्या है। जैसै भस्मकरि आच्छादित अङ्गारा अभ्यन्तर झकझकाट करता तेजकूं धारण करै है तैसै सम्यग्दृष्टि हू मलीन देहके अभ्यन्तर गुणनिकरि दिपै है तातैं स्वामी श्रीसमन्तभद्रजी कहै हैं, जो सम्यग्दृष्टिकी महिमा हमारी रुचिकरि नाहीं कहै हैं भगवानका द्वादशांगरूप आगममें गणधरदेव सम्यग्दृष्टि चांडाल कूं हू देव कहै हैं। जातैं यह देह तो महामलीन मलमूत्रका भरया हाडमांसचाममय जाके नवद्वारनितैं निरन्तर दुर्गंध मल झरै हैं ऐसा अपवित्र मलीन हू साधुनिका देह है सो रत्नत्रयका प्रभावकरि इन्द्रादिक देवनिके दर्शन करनेयोग्य, स्तवन करनेयोग्य, नमस्कार करनेयोग्य होय है। गुण विना चामडाका कफमलमूत्रका भरया मलीनकूं कौन वन्दना करै, पूजै, अवलोकन करै। यातैं सम्यग्दर्शन

होते वन्दने पूजने योग्य है ।

अब धर्म अधर्मका फल प्रगट करता सूत्र कहै हैं,—

श्वापि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्विषात् ।
कापि नाम भवेदन्या संपद्धर्माच्छरीरिणां ॥२९॥

अर्थ—धर्मके प्रभावतैं श्वान जो कूकरो सोहू स्वर्गलोकमें देव जाय उपजै है । अर पापके प्रभावतैं स्वर्गलोकका महान् ऋद्धिधारी देव हू पृथ्वी में कूकरो आय उपजै है । अर प्राणीनिकै धर्मका प्रभावतैं और हू वचनद्वारै नाहीं कही जाय ऐसी अहिमिंद्रनिकी सम्पदा तथा अविनाशी मुक्तिसम्पदा प्राप्त होय है ।

भावार्थ—मिथ्यात्वका प्रभावतैं दूजा स्वर्गपर्यंतका देव एकेन्द्रियनिमे आय उपजै है अनन्तानन्तकाल त्रसस्थावरनिमें परिभ्रमण करता फिरै है । अर बारमा स्वर्गपर्यन्तका देव मिथ्यात्वके प्रभावतै पञ्चेन्द्री तिर्यञ्चनिमें आय प्राप्त होय है । तातैं मिथ्यात्वभाव महाअनर्थकारी जानि सम्यक्त्वहीमें यत्न करना योग्य है ।

अब कुदेवादिक सम्यग्दृष्टिके वन्दनेयोग्य नाहीं है ऐसा दिखावता सूत्र कहै हैं,—

भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिङ्गिनां ।
प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः ॥३०॥

अर्थ—शुद्ध सम्यग्दृष्टि हैं ते भयतैं, आशातैं, स्नेहतैं, लोभतैं कुदेवनिकूं, कुआगमकूं, कुलिंगीनिकूं प्रणाम नाहीं करै, विनय नाहीं करै, जे काम, क्रोध, भय, इच्छा, क्षुधा, तृषा, राग, द्वेष, मद, मोह, निद्रा, हर्ष, विषाद, जन्म मरणादि दोषनिकरि संयुक्त हैं ते समस्त कुदेव हैं । तिनकी व्यक्ति जगतमे पंचमकालके प्रभावतैं

प्रगट वहुत है। एक सर्वज्ञ वीतराग विना समस्त कुदेव हैं। अर हिंसाके पोषक रागीद्वेषी मोहीनिकरि प्रकाश्या पूर्वापरदोषसहित विषय कषाय आरम्भकूं पुष्ट करनेवाले, प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाण-करि दूषित ऐसे शास्त्र कुआगम हैं अर जो हिंसादि पञ्चपापनिका त्यागी, आरम्भपरिग्रहरहित, देहके सम्बन्धमें निर्ममत्व, उत्तमक्ष-मादि दशधर्मके धारी दोष टारि अजाचीक वृत्तिसहित दीनतारहित निर्जन स्थानमें वसतो, ध्यान अध्ययनमें निरन्तर प्रवर्त्ततो पांच इन्द्रियनिके विषयांका त्यागी षटकायका जीवांका विराधना का त्यागी एक वार मौनतैं परका दिया रस नीरस आपके निमित्त नाहीं किया ऐसा भोजन रत्नत्रयका सहकारी कायकी रक्षाके निमित्त ग्रहण करता ऐसा नग्न मुनिराजका लिंग (भेष) तथा एक वस्त्रका धारक तथा कोपीनधारक क्षुल्लकका लिंग (भेप) तथा तीजा अर्जि-काका लिंग (भेष) एक वस्त्र का धारक; इन तीन लिंग विना जो अन्य अनेकलिंग धारण करैं हैं ते समस्त कुलिंगी हैं एक मुनिका लिंग तथा कौपीनधारक क्षुल्लक तथा एक वस्त्रकी धारनहारी अर्जिका इन तीन भेष सिवाय समस्त भेषीनकूं सम्यग्दृष्टि विनय नमस्कार नाहीं करै है। ऐसे कुदेव कुशास्त्र कुलिंगीनकूं भय आशा स्नेह लोभतै सम्यग्दृष्टि नमस्कार नाहीं करै।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि है सो कुदेव कूं भयतैं नमस्कार नाहीं करै। जो यो देव है याकूं राजादिक हजारां मनुष्य पूजैं हैं जो याकूं बन्दना नाहीं करूंगा तो यो देव रोषकरि मेरा बिगाड़ करैगा सम्पदा हरैगा। तथा स्त्रीपुत्रादिकको घात करैगा। तथा

कदाचित् याका द्वेषतैं मेरे रोग विद्यमान है, दुःख विद्यमान है तथा द्वेषकरि अब मेरे हानि करैगा, रोगकरैगा। तथा इस क्षेत्रमें समस्त लोक पूजै हैं तथा हमारे कुलमें बड़ा पिता तथा पिताका पिता माता भाई बन्धु पूजते आवै हैं अब मैं इसकी वन्दना पूजा उठा दूंगा अर कदाचित् मेरा घर अनेक पुत्रपौत्रादिक लक्ष्मीकरि भरया है जो किसीका मरण वा धनहानि तथा रोगादिक होजाय, तो मोकूं दूषण आवै, अर मेरे बड़ा दुःख खड़ा हो जाय तो बड़ा अनर्थ है, अर सारा लोक हू ऐसैं कहै है यो देवता आगैं नाहीं माननेवालेनिकूं अन्धा कर दिया था। याकी पूजा बोलारी संस्कारतैं अनेकनिके रोग दूरि करि दिये। तथा या जगन्नाथ स्वामी है याकी पुरीमें नाई धोबी मीणा खटीक चमार परस्पर शामिल होय औंठ (उच्छिष्ट) भक्षण करै हैं याकी अवज्ञा करैं ताकै कोढ निकाल देहै ऐसा भय दिखावैं, तथा अन्धेनिकूं आँखें दी हैं, सम्पदा दी है याकी निन्दाकरि सम्पदा भ्रष्ट होगई थी तथा आगैं यह शनीश्चर देव रोषकरि विक्रमादित्य राजानै चोरंग्यो करा दियो छो, ऐसैं अनेक देवी भैरों क्षेत्रपाल हनुमान गणेश दुर्गा चण्डी सूर्यादिक ग्रह योगिनी यक्ष इत्यादिकनिका भय मानि सम्यग्दृष्टि इनकूं नमस्कार विनयादिक नाहीं करै। बहुरि कुल पुत्र सम्पदा आजीविका राज्य धन ये देवता देगा ऐसी आशा करि हू वन्दना नाहीं करै। तथा हमारे माहिं इन देवताका स्नेह है हमारे तो दुःख आजाय तदि हमारा रक्षक तो देवता ही है ऐसा स्नेहतैं हू वन्दना नाहीं करै। बहुरि लोभतैं हू कुदेवनिका सत्कार वंदना नाहीं करै जो मैं तो जिन दिनतैं आरा-

धना यो देवताकी करूं हूँ तिस दिनतैं मेरे लाभ है, उच्चता है ऐसैं लाभका कारण संकल्पकरि कुदेवनिका आराधन नाहीं करै । तथा राजाका भयतै पिता माताका भयतैं कुटुम्बका भयतै तथा लोक-लाजतै कुदेवनिकूं वंदना नाहीं करै । ऐसैं ही जो शास्त्र राग द्वेष हिंसाका पुष्ट करनेवाला तथा शृंगारकथा युद्धकथा स्त्री कथादिक विकथाका प्ररूपक एकांतरूप वस्तुकूं कहै यज्ञ होम मंत्र यंत्र तंत्र वशीकरण मारण उच्चाटनादिक तथा महाहिंसाके आरंभके कहने-वाले तथा कुदेव कुधर्मकी आराधना करानेवाले, संसारमें उलझा-वनेवाले शास्त्रनिकूं सम्यग्दृष्टि वंदना सत्कार नाहीं करै है । तिस-के कथनकूं, रचनाकूं प्रशंसा नाहीं करै, संसारमें उलझावनेवाला शास्त्रका व्याख्यानादिकर प्रकाश नाहीं करै । भय अर आशा स्नेह लोभतैं खोटा आगमका प्रकाश नाहीं करैं । जो मैं मेरा बाप दादा आदिक करि मेरे इन शास्त्रनिकरि बहुत द्रव्यका उपार्जन हुआ है तथा इस शास्त्रतैं मैं हू बहुत धन उपार्जन करूं तथा मेरी प्रतिष्ठा बधाऊं तथा जगतके मान्य होजाऊँ तथा सबके ऊपरि होय राजादिकनै अपने सेवक करूं ऐसा लोभतै कुशास्त्रनिका सेवन सम्यग्दृष्टि नाहीं करै तथा जो शास्त्रसेवन नाहीं करूंगा तो मेरी आजीविका नष्ट हो जायगी तथा समस्त लोकनिमें मेरी मान्यता पूज्यता घट जायगी ऐसा भयतै कुशास्त्रसेवन नाहीं करै । तथा इस शास्त्रके बाँचने पढ़नेमें बड़ा रस है मन रंजायमान हो जाय है बड़ी रसीली कथा है तथा लोकनिनै रंजायमान करनेवाला है ऐसा स्नेह करि हू कुशास्त्रनिका आराधन सम्यग्दृष्टि नाहीं करै है । बहुरि कोऊ आशा करकै हू सम्यग्दृष्टि कुशास्त्रनिका सेवन नाहीं

करै है। जो इसतैं देवता वश हो जायगा वा विद्या सिद्ध हो जायगी। इत्यादिक इस लोकसम्बन्धी आशा करकै हू कुशास्त्रनिकी प्रशंसा वंदना नाहीं करै है। बहुरि सम्यग्दृष्टि है सो कुलिंगीनिकूं हू भय आशा स्नेह लोभतैं प्रणाम वन्दना प्रशंसा नाहीं करै है। जो ये तपस्वी है वा विद्यावान है तथा राजमान्य है लोकमान्य है तथा इसमें दृष्टि मुष्टि मारण उच्चाटनादि अनेक शक्ति है मेरा विगाड़ मत कदाचित् करद्यो ऐसा भयतैं प्रणामादि नाहीं करै। तथा यो करामाती है वा विद्यावान है यातैं कोऊ विद्या सीखनी है तथा यो राज्यमान्य है यातैं हमारा कार्य लेना है ऐसा लाभतैं हू पाखंडीनिकूं वंदना नमस्कार सम्यग्दृष्टि नाहीं करै। तथा यो वेषभारी मोकूं रसायण देनी करी है तथा एक औषधि यासूं वाकिफ करनी वा सीखनी है तथा व्याकरणविद्या तथा न्याय तथा ज्योतिषविद्या मोकूं सीखनी है। यातैं याका सेवन है इत्यादिक आशा लोभ करि पाखंडी विषय आरम्भी परिग्रहधारीकूं सम्यग्दृष्टि नमस्कार नाहीं करै, ताकी प्रशंसा नाहीं करै, ताकूं सत्यवादी नाहीं कहै, धर्मरूप जानै नाहीं।

अब यहां कोऊ कहै जो कोऊ बलवान जबरीतैं नमावै तथा आप नाहीं नमैं तो बड़ा उपद्रव करै तदि कहा करै? ताका उत्तर कहै हैं—

जो परकी जबरीतैं नमस्कार किये श्रद्धान नाहीं विगड़ै है जातैं देवतादिकनिके भयतैं तथा आशातैं, स्नेहतैं, लोभतैं जो नमस्कार करै तदि श्रद्धान विगड़ै अर जबरीतैं दुष्ट म्लेच्छादिक व्रतीके मुखमें अभक्ष्य दे देवै तो व्रत नाहीं

बिगड़ैगा तथा अन्यमतीनके ग्रन्थनिमें तथा वाक्यनिमें कुदेवनिकूं नमस्कार लिखा है । तथा कुदेवनिकी स्तुति लिखी है तो उनके वांचनें मात्रतैं तो कुदेवनिकूं नमस्कार स्तुति नाहीं हो जायगी, सम्यग्दर्शन तो आत्माका भाव है अपने भावनितैं जो कुदेवादिकनिमें वंदना योग्य अर आपकूं वंदनेवाला मानि नमस्कार स्तवन वन्दना करै कुछ इनतैं अपना भला होना जानै तिसके सम्यक्त्वका अभाव है। बहुरि इस कालमें म्लेच्छ मुसल्मान राजा भए जब वे कुछ पूछैं अर आप कुछ उनसूं कह्या चाहै तदि हाथ जोड़ ही अर्ज करी जाय इसमें अपना श्रद्धान ज्ञान नाहीं नष्ट होय है चारित्रधारी त्यागी साधुजन होय सो हाथ हू नाहीं जोड़ै अर अपनी देह खंड २ करै तोहू धर्मकार्यविना वचन नाहीं कहै, अर त्यागीनतैं दुष्ट मनुष्य म्लेच्छ राजादिक महापापी हू प्रणाम नाहीं चाहै हैं। तातैं संयमी तो राजाकूं चक्रीकूं माताकूं पिताकूं विद्यागुरुकूं कदाचित् ही नमस्कार नाहीं करै है ये द्विजन्मा हैं अर अव्रतसम्यग्दृष्टि हू अपना वशतैं कुदेव कुगुरु कुधर्मकूं नमस्कार नाहीं करै । अन्य व्यवहारीनिकूं यथायोग्य विनय सत्कारादि करै हैं। अर परकी जबरीतैं देश त्यागै आजीविका त्यागै धन त्याग जाय परन्तु कुधर्मका सेवन कुदेवादिकको आराधना नाहीं करै है।

अब रत्नत्रयमें हू सम्यग्दर्शनके श्रेष्ठपना दिखावनेकूं सूत्र कहै हैं—

दर्शनं ज्ञानचारित्रात् साधिमानमुपाश्नुते ।
दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्षते ॥३१॥

अर्थ—ज्ञान और चारित्रतैं सम्यग्दर्शन जो है ताहि अतिशय करकैं साधिमान कहिये सर्वोत्कृष्ट है ऐसा जानि सेवन करै है। तिस ही कारणतैं मोक्षके मार्गविषै सम्यग्दर्शनकूं कर्णधार कहिए है। जैसैं समुद्रके विषै जहाजकूं खेवटिया पार करै है तैसैं अपार ऐसा संसार समुद्रविषै रत्नत्रयरूप जहाजको पार करनेमें सम्यग्दर्शन खेवटिया है।

भावार्थ—रत्नत्रयमें सम्यग्दर्शन ही अति उत्कृष्ट है।

अब सम्यग्दर्शनके उत्कृष्टपनाका हेतु कहनेकूँ सूत्र कहै हैं—

विद्यावृत्तस्य संभूतिस्थितिवृद्धिफलोदयाः।
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरोरिव ॥ ३२ ॥

अर्थ—विद्या कहिए ज्ञान अर व्रत कहिए चारित्र इनकी उत्पत्ति अर स्थिति अर वृद्धि अर फलका उदय यह सम्यक्त्व नाहीं होत संते नाहीं होय है। जैसैं बीजका अभाव होतैं वृक्षकी उत्पत्ति स्थिति वृद्धि फलका उदय नाहीं होय है।

भावार्थ—बीज ही नाहीं तदि वृक्ष कैसैं उपजैगा अर वृक्ष ही नाहीं उपज्या तदि स्थिति कौनकी होय अर वृद्धि कौनकी होय अर फलका उदय कैसैं होय? जातैं सम्यग्दर्शन नाहीं होय तदि ज्ञान चारित्र हू नाहीं होय, सम्यक्त्व विना ज्ञान है सो कुज्ञान है अर चारित्र है सो कुचारित्र है। जब सम्यक्त्व बिना ज्ञानचारित्रकी उत्पत्ति ही नाहीं तदि स्थिति कहांतैं होय अर ज्ञानचारित्रकी वृद्धि कैसैं होय अर ज्ञानचारित्रका फल जो सर्वज्ञ परमात्मारूप होना कैसैं होय? तातैं सम्यक्त्व विना सत्यश्रद्धान ज्ञानचारित्र कदाचित

हो नाहीं होय । सो ही भगवान् गुणभद्राचार्य महाराजनैं आत्मानुशासनमें कह्या है—

आर्या-समबोधवृत्तपसां पाषाणस्येव गौरवं पुंसः
पूज्यं महामणेरिव तदेव सम्यक्त्वसंयुक्तं ॥ १ ॥

अर्थ—सम कहिये कषायनिकी मंदता अर बोध कहिये अनेकशास्त्रनिका प्रबल ज्ञान होना अर व्रत कहिये त्रयोदशप्रकार दुर्द्धरचारित्रका पालना अर कायरनितैं नाहीं बणि सकै ऐसा बारा प्रकारका घोर तप ये चारों ही पुरुषकै बड़े भारी हैं परन्तु पुरुषकै इनका बड़ा भारीपणा पाषाणका भारीपणाके तुल्य है अर एही समभाव ज्ञान चारित्र तप जो सम्यक्त्व संयुक्त होय तो महामणि चिन्तामणि ज्यों पूज्य हो जांय।

भावार्थ—जगतमें अनेक पाषाण हू है अर मणि हू हैं। मणि भी पाषाण ही है अर झाभड़ा पत्थर हू पाषाण ही है परन्तु कांतिकरि बड़ा भेद है, पाषाण २ समान नाहीं। जो झाम्ड़ा पत्थर तीन मण हू ले जाय तो एक पैसा मिलै अर मणि जो पद्मरागमणि तथा वज्रमणि रत्यां मासा हू हाथ लगि जाय तो लख्यां धन उपजै है। अपने पुत्र पौत्रादिकताईका दरिद्र नष्ट हो जाय है। तैसैं सम्यक्त्वसहित अल्प हू समभाव अल्प हू ज्ञान अल्प हू चारित्र अल्प हू तप भाव इस जीवकूं कल्पवासी इंद्रादिकनिमें उपजाय जन्ममरणके दुःखरहित परमात्मा कर देहै। अर सम्यक्त्व विना बहुत हू समभाव तथा बहुत हू ग्यारा अंगपर्यंत

ज्ञानका अभ्यास, बहुत हू उज्वल चारित्र;, घोररूप हू तप किया हुआ सो कषायनि की मंदता होय तो भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषीनिमें तथा अल्पऋद्धिधारी कल्पवासीनिमें उपजाय फिर चतुर्गति संसारमें भ्रमण करावै है। तातैं सम्यक्त्वसहित ही सम बोध चारित्र तप धारण जीवका कल्याण है।

अब कोऊ आशंका करै जो सम्यक्त्व नाहीं होय अर चारित्र तप ग्रहण करै ऐसा मुनि है। सो, आरम्भादिकमें लीन ऐसा गृहस्थतैं तो उत्तम होयगा तिसकूं उत्तर करता सूत्र कहै हैं—

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान् ।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥ ३३ ॥

अर्थ—जाके दर्शनमोह नाहीं ऐसा गृहस्थ है सो मोक्षमार्गमे तिष्ठै है अर मोहवान ऐसा अनगार कहिये गृहरहित मुनि सो मोक्षमार्गी नाहीं है। याहीतैं मोहवान जो मुनि तातैं दर्शनमोहरहित गृहस्थ है सो श्रेयान् कहिये सर्वोत्कृष्ट है।

भावार्थ—जाकै मोह जो मिथ्यात्व सो नाहीं ऐसा अव्रतसम्यग्दृष्टि हू मोक्षमार्गी है। जाकै सात आठ भव देव मनुष्यनिके ग्रहण होय करि नियमतैं मोक्ष हो जायगा अर जाकै मिथ्यात्व है अर मुनिके व्रतधारी साधु भया तो हू मरि करि भवनत्रिकादिकमें उपजि संसारहीमें परिभ्रमण करैगा, सो श्री कुन्दकुन्दस्वामी दर्शनपाहुडमें कह्या है—

दंसणभट्ठा भट्ठा दंसणभट्ठस्स णत्थि णिव्वाणं ।
सिज्झंति चरियभट्ठा दंसणभट्ठा ण सिज्झंति ॥ ३ ॥

सम्मत्तरयणभट्टा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं ।
आराहणाविरहिया भमंति तत्थेव तत्थेव ॥ ४ ॥
सम्मत्तविरहिया णं सुट्ठुविउग्गं तवं चरंता णं ।
ण लहंति बोहिलाहं अवि वाससहस्सकोडीहिं ॥ ५ ॥
जे दंसणेसु भट्टा णाणे भट्टा चरित्तभट्टा य ।
एदे भट्टविभट्टा सेसंपि जणं विणासंति ॥ ८ ॥

जह मूलम्मि विणट्ठे दुमस्स परिवार णत्थि परिवढ्ढी ।
तह जिणदंसणभट्टा मूलविणट्ठा ण सिज्झंति ॥ १० ॥

जे दंसणेसु भट्टा पाए पाडंति दंसणधराणं ।
ते होंति लुल्लमूया बोही पुण दुल्लहा होदि ॥ १२ ॥
जे वि पडंति च तेसिं जाणंता लज्जगारव भयेण ।
तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोअमाणाणं ॥ १३ ॥

जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमियभूदं ।
जरमरणवाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं ॥ १७ ॥

एक्कं जिणस्स रूवं बीयं उक्कस्स सावयाणं तु ।
अवरट्ठियाण तइयं चउत्थं पुण लिंगदंसणं णत्थि ॥ १८ ॥
जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइ तं च सद्दहणं ।
केवलजिणेहिं भणियं सद्दहमाणस्स सम्मत्तं ॥ २२ ॥

ण वि देहो वंदिज्जइ ण वि कुलो ण वि य जाइसंजुत्तो ।
को वंदमि गुणहीणो ण हु सवणो णेय सावओ होइ ॥ २७ ॥

अर्थ—जो सम्यग्दर्शनकरि भ्रष्ट हैं ते भ्रष्ट हैं, क्योंकि सम्यग्दशनतैं भ्रष्ट है तिनके अनन्तकालहूमें निर्वाण नाहीं होय है।

अर जिनकै सम्यग्दर्शन नाहीं छूट्या अर चारित्रतैं भ्रष्ट भए तो तीजे भवमें निर्वाण पाया जाय है अर सम्यक्त्व छूटि जाय तो अनन्तभवमे हू संसार भ्रमण नाहीं छूटै है ।।१।। जे सम्यक्त्वरत्न करि भ्रष्ट हैं ते वहुत प्रकार शास्त्रनिकूं जानतेहू च्यार आराधना-रहित भये संसारहीमे भ्रमण करै है ।।२।। जे सम्यक्त्वरत्नकरि रहित हैं ते हजार कोटिवर्ष आछी तरह उग्रतपकूं आचरण करता हू रत्नत्रयका लाभकूं नाहीं पावै हैं ।। ३ ।। जे सम्यग्दर्शन-रहित हैं ते ज्ञानके विषै हू विपरीतज्ञानी भए भ्रष्ट ही हैं अर जाका आचरण हू भ्रष्ट है ते तो भ्रष्टनितै हू भ्रष्ट हैं। जे इनकी संगति करै है तिनकूं हू धर्मरहित कर विनाश करै है ।।४।। जैसै जिस वृक्षका मूल कहिये जड़ ताका नाश भया तिसके डाहला पत्र पुष्प फलादिक परिवारकी वृद्धि नाहीं होय है तैसें सम्यग्दर्शन करि भ्रष्ट हैं ते मूल भ्रष्ट हैं तिनके ज्ञानचारित्रादिककी कैसै सिद्धि होय ? ।।५।। जे सम्यग्दर्शन भ्रष्ट हैं अर सम्यग्दर्शनके धारकनिकूं अपने पगनिमें पडावनेकूं चाहे हैं ते परलोकमे चरण-रहित लूला अर वचनरहित गूंगा होय हैं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनतैं रहित होय सम्यग्दृष्टीनितैं वन्दना नमस्कार करावै हैं तथा करावा चाहे हैं ते वहुत काल एकेन्द्रिय होय हैं ।।६।। अर जे पुरुप लज्जा करकैं तथा गौरव जो अपना वडापणा करके भय करकैं मिथ्यादृष्टिनिके चरणनिमें वन्दना करैं हैं तिनके हू पाप जो मिथ्यात्व ताका अनुमोदनातैं रत्नत्रयकी प्राप्ति दुर्लभ है ।।७।। सम्यग्दृष्टिकै थो जिनेन्द्रका वचन ही अमृत-रूप औपधि है अर विपयनिका सुखरूप आमाशयका विरेचन

करनेवाला है अर जरामरणरूप वेदनाके क्षय करनेका कारण है अर समस्त संसारके दुःखनिका क्षयका कारण है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टिके ऐसा निश्चय है जो जन्ममरणादिक समस्त दुःखरूप रोगकूं दूर करनेवाला अमृतरूप तो जिनेन्द्रका वचन ही है इस विना इस अनादिकालका विषयनिकी चाहरूप दाहका नाशकरनेवाला आमाशयकूं काढि ज्ञान सुखादि अंगनिकूं अमृतवत् पुष्ट करनेवाला अन्य उपाय है ही नाहीं ॥ ८ ॥ एक लिङ्ग तो जिनेन्द्रका धारण किया नग्नस्वरूप समस्त वस्त्रशस्त्रादि-रहित है अर दूजा उत्कृष्ट श्रावकका एक कोपीन तथा खण्डवस्त्र सहित है, तीजा आर्यिकाका है, चौथा लिंग (भेष) जिनमतमें नाहीं, जो है सो जिनधर्मबाह्य है बन्दने योग्य नाहीं ॥ ९ ॥ जिनेन्द्रकी जो आज्ञा है तिसको पालनेका सामर्थ्य होय सो तो आप आचरण करै अर जाका करनेकी सामर्थ्य नाहीं होय तो ताका श्रद्धान ही करता, जीवकै केवली जिन सम्यक्त्व कहा है ॥१०॥ सम्यग्दृष्टिकै रत्नत्रयरहित देह वन्दनीक नाहीं है। जाति संयुक्त कुल हू वन्दने योग्य नाहीं है। जातैं सम्यग्दर्शनादिक गुण रहित श्रावक हू वन्दनीक नाहीं अर मुनि हू वन्दनीक नाहीं। रत्नत्रयके प्रभावतैं देह वन्दनीक हो जाय है, कुल जात्यादिक हू बन्दनीक होय हैं।

अब इस जीवका सर्वोत्कृष्ट उपकार करनेवाला अर अप-कार करनेवाला कौन है? सो कहनेकूं सूत्र कहै हैं:—

न सम्यक्त्वसमं किंचित्त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि ।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम् ॥३४॥

अर्थ—इन प्राणीनिके सम्यग्दर्शन समान तीन कालमें अर तीन जगतमें अन्य कोऊ कल्याण है नाहीं अर मिथ्यात्व समान तीन कालमें, तीन जगतमें अन्य कोऊ अकल्याण है नाहीं।

भावार्थ—अनन्तकाल तो व्यतीत हो गया अर वर्तमानकाल एक समय अर अनन्तकाल आगैं आसी ऐसे तीन कालमें अर अधो भवनलोक अर असंख्यात द्वीप, सागरपर्यंत मध्यलोक अर स्वर्गादिक ऊर्द्धलोक इन तीन लोकमें सम्यक्त्व समान अन्य कोऊ सर्वोत्कृष्ट उपकार करनेवाला जीवनिका है नाहीं, हुआ नाहीं, होसी नाहीं। जो उपकार इस जीवका सम्यक्त्व करै है ऐसा उपकार तीन लोकमें भये ऐसे इन्द्र, अहमिन्द्र, भुवनेन्द्र चक्री, नारायण, बलभद्र, तीर्थंकरादिक समस्त चेतन अर मणि-मन्त्र औषधादिक समस्त अचेतन द्रव्य कोऊ सम्यक्त्व समान उपकार नाहीं करै, अर इस जीवका सर्वोत्कृष्ट अपकार जैसा मिथ्यात्व करै है तैसा अपकार करनेवाला तीन लोकमें तीनकालमे कोऊ चेतनद्रव्य अचेतनद्रव्य है नाहीं, हुआ नाहीं, होसी नाहीं। तातैं मिथ्यात्वका त्यागहीमे परम यत्न करो। समस्त संसारका दुःखकूं मेटनेवाला आत्मकल्याणका परमहद एक सम्यक्त्व है तातैं इसका उपार्जनमें ही उद्यम करो।

अब सम्यग्दर्शनका प्रभाव वर्णन करने कूं सूत्र कहै हैं—

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि।
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः॥ ३५॥

अर्थ— जो जीव सम्यग्दर्शनकरि शुद्ध हैं ते व्रतरहित हू

नारकीपणा, तिर्यंचपणा, नपुन्सकपणा, स्त्रीपणाकूं नाहीं प्राप्त होय हैं। अर नीचकुलमें जन्म अर विकृत कहिये आंधा, काणा, बहरा, टूंटा, लूला गूंगा, कूबडा, बावन्या, हीनअंग, अधिकअंग मांजरा विटरूप नाहीं होय तथा अल्प-आयुका धारक अर दरिद्रीपना कूं नाहीं प्राप्त होय है। बहुरि व्रतरहित अव्रत सम्यग्दृष्टिकै एक तौ इकतालीस कर्मप्रकृतिका बन्ध होय नाहीं ऐसा नियम है। मिथ्यात्व १ हुंडकसंस्थान २ नपुन्सकवेद ३ असृपाटिकसंहनन ४ एकेंद्री ५ स्थावर ६ आताप ७ सूक्ष्मपना ८ अपर्याप्ति ९ वेंद्री १० त्रीन्द्री ११ चतुरिंद्री १२ साधारण १३ नरकगति १४ नरकगत्यनुपूर्वी १५ नरकआयु १६ ए षोडशप्रकार प्रकृति तो मिथ्यात्व भावतैं ही बंधै हैं अर अनन्तानुवन्धीके प्रभावतैं बन्धकूं प्राप्त होंय ऐसी पचीस प्रकृति और हैं अनन्तानुबन्धी क्रोध १, मान २, माया ३ लोभ ४ स्त्यानगृद्धि ५ निद्रा-निद्रा ६ प्रचला-प्रचला ७ दुर्भग ८ दुःस्वर ९ अनादेय १० न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान ११ स्वातिसंस्थान १२ कुब्जकसंस्थान १३ वामनसंस्थान १४ वज्रनाराचसंहनन १५ नाराचसंहनन १६ अर्द्धनाराचसंहनन १७ कीलितसंहनन १८ अप्रशस्तविहाय गति १९ स्त्रीपना २० नीचगोत्र २१ तिर्यग्गति २२ तिर्यग्गत्यानुपूर्वी २३ तिर्यंचआयु २४ उद्योत २५ इसप्रकार इकतालीस कर्मकी प्रकृति मिथ्यादृष्टि ही बन्ध करै है अर सम्यग्दृष्टिकै मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धीका अभाव भया तातैं अव्रतसम्यग्दृष्टिके इकतालीसप्रकृतिका नवीन बन्ध ही नाहीं होय है और जो सम्यक्त्व ग्रहण नाहीं हुआ तदि मिथ्यात्व अवस्था में बन्ध करी ते प्रकृति सम्यक्त्वके प्रभावतैं नष्ट होजाय है परंतु

आयु बन्ध किया सो नाहीं छूटै तो हू सम्यक्त्वका ऐसा प्रभाव है जो पूर्वें सप्तमनरककी आयु बांधी होय अर पाछै सम्यक्त्व हो जाय तो प्रथम नरक ही जाय द्वितीयादिकनिमें नाहीं जाय और जो तिर्यंचमें निगोदकी एकेंद्रियकी आयु बांधी होय तो सम्यक्त्वका प्रभावतैं उत्तम भोगभूमिको पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच ही होय एकेन्द्रियादिक कर्मभूमिको जीव नाही होय और जो पूर्वें लब्धिअपर्याप्त मनुष्यकी आयु बाँधी होय तो सम्यक्त्वके प्रभावतैं उत्तम भोगभूमिको मनुष्य होय है। अर व्यन्तरादिकनिमें नीच-देवका आयु बन्ध न किया होय तो कल्पवासी महर्द्धिक देव ही होय है अन्य भवनत्रिक देवनिमें तथा चारदेवनिकी स्त्रीनिमें समस्त मनुष्यणी तिर्यंचणीनिमे नाहीं उपजै है ऐसा सम्यक्त्वका प्रभाव है। नीचकुलमें, दरिद्रीनिमें, अल्प-आयुका धारक नाहीं होय है।

अब सम्यग्दर्शनका प्रभावतैं कैसा मनुष्य होय सो कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

ओजस्तेजोविद्यावीर्ययशोवृद्धिविजयविभवसनाथाः ।
महाकुला महार्था मानवतिलका भवन्ति दर्शनपूताः ॥ ३६ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शनकरि पवित्र पुरुष हैं ते मनुष्यनिका तिलक कहिये समस्त मनुष्यनिका मण्डन करनेवाला वा समस्त मनुष्यनिके मस्तक ऊपरि धारण करने योग्य ऐसा मनुष्यनिका तिलक होय हैं। कैसेक होय हैं ओजः कहिये पराक्रम अर तेजः कहिये प्रताप अर विद्या कहिये समस्त लोकमें अतिशयरूप ज्ञान अर अतिशय-

रूप वीर्य कहिये शक्ति अर उज्वल यश और वृद्धि कहिये दिनदिन प्रति गुणनिकी अर सुखकी वृद्धि, विजय कहिये समस्त प्रकारकरि जीतनेरूप अर अतिशयकारी विभव ऐसैं ओज, तेज, विद्या, वीर्य, यश, विजय, विभव इन समस्त गुणनिका स्वामी होय है। बहुरि महानकुलका स्वामी होय है अर महानधर्म महाअर्थ महाकाम महामोक्षरूप चार पुरुषार्थका स्वामी होय है। सम्यग्दर्शनके धारणतैं ऐसै अप्रमाणप्रभावके धारक मनुष्य होय हैं।

अब सम्यक्त्वके प्रभावतैं देवनिका विभव प्राप्त होय है ताकूं कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

अष्टगुणपुष्टितुष्टा दृष्टिविशिष्टाः प्रकृष्टशोभाजुष्टाः।
अमराप्सरसां परिषदि चिरं रमन्ते जिनेन्द्रभक्ताः स्वर्गे॥३७॥

अर्थ—जिनेन्द्रके भक्त ऐसे सम्यग्दृष्टि जे हैं ते देवनिमें अप्सरानिकी सभाविषै चिरकालपर्यन्त रमै है। कैसे भये संते रमै है? अणिमा महिमा लघिमा गरिमा प्राप्ति प्राकाम्य ईशित्व वशित्वादि जो अष्ट गुण तिनकी पुष्टता जो अन्य असंख्यात देवनिमे नाहीं पाइये ऐसी अधिकता करि संतोषित भये तथा सर्व देवनितैं उत्कृष्ट ऐसी कांति तेज यश तिनकर युक्त ऐसे हुए स्वर्ग लोकमें तिष्ठै हैं।

भावार्थ—अव्रतसम्यग्दृष्टि स्वर्गलोकमें देव होय हैं सो हीणपुन्नी नाहीं होय। इन्द्रतुल्य विभव कांति ज्ञान सुख ऐश्वर्यका धारक महर्द्धिक होय सामानिक वा त्रायस्त्रिंशत् वा लोकपालादिकनिमें उपजै हैं अन्य असंख्यात देवनिकै ऐसी अणिमादिक ऋद्धि तथा देहकी कांति आभरण विमान विक्रिया नाहीं होय ऐसा उत्कृष्ट विभव पाय असंख्यातकालपर्यन्त कोट्यां अप्सरानिकी सभामें

रमें हैं।

अब स्वर्गका सागरांपर्यन्त इन्द्रियनितैं उपजै सुख भोग मनुष्यलोकमें आय कैसा होय सो कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

नवनिधिसप्तद्वयरत्नाधीशाः सर्वभूमिपतयश्चक्रं ।
वर्तयितुं प्रभवन्ति स्पष्टदृशः क्षत्रमौलिशेखरचरणाः ॥ ३८ ॥

अर्थ—जिनके उज्ज्वल सम्यग्दर्शन है ते स्वर्गलोकमें आयु पूर्ण करकै मनुष्यलोकमें आय अर नवनिधि चौदहरत्ननिका स्वामी समस्त भरतक्षेत्रके बत्तीस हजार देशनिका पति अर बत्तीस हजार मुकटवन्ध राजानिकै मस्तक ऊपरि मुकटरूप है चरण जिनका ऐसा चक्रकूं प्रवर्तन करनेकूं समर्थ चक्रवर्ती होय हैं।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि स्वर्गतैं मनुष्यभवमे आय नवनिधि चौदह रत्ननिका स्वामी समस्त राजानिका मस्तक उपरि आज्ञा प्रवर्तन करता पट्खण्ड पृथ्वीका पति अर्थात् चक्रवर्ती होय है।

अव सम्यक्त्वका प्रभावतैं तीर्थङ्कर होय हैं ऐसैं सूत्र कहै हैं—

अमरासुरनरपतिभिर्यमधरपतिभिश्च नूतपादाम्भोजाः ।
दृष्ट्या सुनिश्चितार्था वृषचक्रधरा भवन्ति लोकशरण्याः ॥३९॥

अर्थ—जे पुरुप सम्यग्दर्शनकरि सम्यक् निर्णय किये हैं पदार्थ जिनने ते अमरपति असुरपति नरपति अर संयमीनिका पति गण-धर तिनकरि वन्दनीक हैं चरणकमल जिनका अर लोकनिके शरणमें उत्कृष्ट ऐसे धर्मचक्रके धारक तीर्थङ्कर उपजैं हैं।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि तीर्थङ्कर होय अनेक जीवनिकै संसार

दुःखके छेदन करनेवाला धर्मचक्रकूं प्रवर्तन करावै है जिनकूं इन्द्र असुरेन्द्र गणधरादिक नित्य वन्दना करैं हैं। जीवनकूं परम शरण हैं—

अब सम्यग्दृष्टिके ही निर्वाण होय है ऐसा सूत्र कहै हैं—

शिवमजरमरुजमक्षयमव्याबाधं विशोकभयशङ्कं ।
काष्ठागतसुखविद्याविभवं विमलं भजन्ति दर्शनशरणाः॥४०॥

अर्थ—जिनके सम्यग्दर्शन ही शरण है ते पुरुष शिव जो निराकुलता लक्षण मोक्ष ताहि अनुभवै हैं। कैसाक है शिव जामें जरा नाहीं अनन्तानंतकालहूमें आत्मा जहां जीर्ण नाहीं होय है अर अरुज कहिये जामें रोग पीडा व्याधि नाहीं है अर अक्षय कहिये जामेंअनन्त चतुष्टय स्वरूपका नाश नाहीं है। अर जहां कोऊ वार बाधा नाहीं है अर नष्ट हुआ है शोक भय शङ्का जातैं ऐसा शोकभयशंकारहित है। बहुरि परम हद्दकूं प्राप्त भया है सुखका अर ज्ञानका विभव जामें ऐसा है अर द्रव्यकर्म तो ज्ञानावरणादिक अर भावकर्म रागद्वेषादिक अर नोकर्म शरीरादिक इसप्रकार कर्ममलका अभावतैं विमल है ऐसा अद्वितीय स्वरूप मोक्षकूं सम्यग्दृष्टि ही अनुभवै है। ऐसैं सम्यक्त्वका प्रभाव वर्णन किया।

अब दर्शनाधिकारको समाप्त करता दर्शनकी महिमाकूं उपसंहार करता सूत्र कहैं हैं—

देवेन्द्रचक्रमहिमानममेयमानं,
राजेन्द्रचक्रमवनीन्द्रशिरोऽर्चनीयं ।

धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकं;
लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः ॥४१॥

अर्थ—जिन जो परमात्मा तिसका स्वरूपमे है भक्ति कहिये अनुराग जाकै ऐसा सम्यग्दृष्टि भव्य है सो इस मनुष्यभवतैं चय करि स्वर्गलोकमें अप्रमाण हैं ऋद्धि शक्ति सुख विभवका प्रभाव जामें ऐसा देवेंन्द्रनिका समूहकी महिमा पायकरि पाछे पृथिवीमे आय अर बत्तीस हजार राजानिका मस्तककरि पूजनीय ऐसा राजेन्द्र जो चक्रवर्ती ताका चक्रकूं पाय करके फिर अहिमिन्द्र-लोकका महिमाकूं पाय नीचे किया है समस्त लोक जानैं ऐसा भगवान् तीर्थङ्करनिका धमचक्र ताहि प्राप्त होय करि निर्वाणकूं प्राप्त होय है। सम्यग्दर्शनका धारी इस अनुक्रमकरि निर्वाणकूं प्राप्त होय है। ऐसैं दर्शनमोहनीका अभावतैं सत्यार्थश्रद्धान सत्यार्थ ज्ञान प्रगट होय है अर अनन्तानुबन्धीके अभावतैं स्वरूपाचरण चारित्र सम्यग्दृष्टिके प्रगट होय है यद्यपि अप्रत्यख्यानावरणके उदयतैं देशचारित्र नाहीं भया है अर प्रत्यख्यानावरणका उदयतैं सकलचारित्र नाहीं प्रगट भया है तो हू सम्यग्दृष्टिके देहादिक पर-द्रव्य तथा राग द्वेषादिक कर्मजनित परभाव इनमें दृढ़ भेदविज्ञान ऐसा भया है जो अपना ज्ञानदर्शनरूप ज्ञानस्वभावहीमें आत्मबुद्धि धारनेंतै अर पर्यायमें आत्मबुद्धि स्वप्नमे हू नाहीं होनेसे ऐसा चिंतवन करै है—हे आत्मन्! तू भगवानका परमागमका शरण हुए करकै ज्ञानदृष्टितै अवलोकन कर अष्टप्रकारके स्पर्श पंच-प्रकारका रस दोयप्रकार गंध पंचप्रकार वर्ण ये तुम्हारा रूप नाहीं है पुद्गलका है, ये क्रोध मान माय लोभ तुम्हारा स्वरूप नाहीं है

कर्मका उदयजनित ज्ञानदृष्टितैं विकार है तथा हर्ष विषाद मद मोह शोक भय ग्लानि कामादिक कर्मजनित विकार हैं ते तुम्हारे स्वरूप तैं भिन्न है बहुरि नरक तिर्यंच मनुष्य देव ये चार गति आत्माका रूप नाहीं कर्मका उदयजनित है विनाशीक है। देव मनुष्यादिक तुम्हारा रूप नाहीं सम्यग्ज्ञानी के ऐसा चिंतवन होय है जो मैं गोरा नाहीं, मैं श्याम नाहीं, मै राजा नाहीं, मैं रङ्क नाहीं, मैं बलवान नाहीं, मैं निर्बल नाहीं, मैं स्वामी नाहीं, मैं सेवक नाहीं, मैं रूपवान नाहीं, मैं कुरूप नाहीं, मैं पुण्यवान नाहीं, मैं पापी नाहीं, मैं धनवान नाहीं मै निर्धन नाहीं, मैं ब्राह्मण नाहीं। मैं क्षत्रिय नाहीं, मैं वैश्य नाहीं, मैं शूद्र नाहीं, मैं स्त्री नाहीं, मैं पुरुष नाहीं, मैं नपुन्सक नाहीं, मैं स्थूल नाहीं, मैं कृश नाहीं, मैं नीच जात नाहीं, मैं ऊंच जात नाहीं, मैं कुलवान नाहीं, मैं अकुलीन नाहीं, मैं पंडित नाहीं, मैं मूर्ख नाहीं, मैं दाता नाही, मैं जाचक नांही, मैं गुरु नांही, मैं शिष्य नांही, मैं देह नांही, मैं इन्द्रिय नांही, मैं मन नांही; ये समस्त कर्मका उदयजनित पुद्गलका विचार है मेरा स्वरूप तो ज्ञाता दृष्टा है ये रूप आत्माका नांही पुद्गलका है। मुनिपना क्षुल्लकपना हू पुद्गलका भेष है। ये लोक हमारा नांही, यो देश यो ग्राम यो नगर समस्त परद्रव्य हैं। कर्म उपजाय दिया कौन २ क्षेत्रमें, अपना संकल्प करूं, सम्यग्दृष्टिके ऐसा दृढ़ विचार होय है अर मिथ्यादृष्टि परकृत पर्यायमे आपा मानै है। मिथ्यादृष्टिका आपा जातमें कुलमें देहमे धनमें राज्यमें ऐश्वर्यमें महल मकान नगर कुटुम्बनिमें है। याकी लार हमारी घटी, हमारी वढ़ी, हमारा सर्वस्व पूरा हुआ, मैं नीचा हुआ, मैं ऊंचा हुआ, मैं

मरा, मैं जिया, हमारा तिरस्कार हुआ, हमारा सर्वस्व गया इत्यादिक परवस्तुमें अपना संकल्प करि महा आर्त्तध्यान रौद्रध्यान करि दुर्गतिको पाय संसार परिभ्रमण करै है। वहुरि मिथ्यादृष्टि जीव किंचित्त जिनधर्मसै अधिकार पाय अर नवीन नवीन अपना परिणाममें युक्ति वनाय लोकनिकै भ्रम उपजाय आप पांच आदम्यामे महान् ज्ञानीपनाका अभिमानकरि सूत्रविरुद्ध अनेक कथनी करै है। कृतघ्न भया जिनसूत्रनिकी हू निंदा करै है। वहुज्ञानीनिकी निंदा करै है। दुष्ट अभिप्रायी पांच आदम्यामें मान्यता वा पक्षपात ग्रहण करि निजाधार रहित हुआ हठग्राही आप थापी एकांती, स्याद्वादरूप भगवानकी वाणीतैं पराङ्मुख हुआकलह विसंवाद परकी निन्दाहीकूं धर्म मानता तिष्ठै है। तथा केतेक मिथ्यादृष्टि किंचित् मात्र वाह्य त्याग ग्रहण करकैं तथा स्नानकरि भोजन करते तथा अन्य देवादिकी वंदनाका त्यागकूं कृत्यकृत्य मानता जगतके जीवनकी निंदा करि आपकूं प्रशंसा योग्य मानै है, अर अन्यायतैं आजीविका अर हिंसादिकके आरंभमें निपुण होय अन्य धर्मीनिके छिद्र हेरते फिरै है। तथा निर्दोष पुरुषनिके दोष विख्यात करि मदमें छके फिरै है आपकूं ऊंचा मानै है अन्यकूं अज्ञानी भ्रष्ट मानै है पापिष्ट आपकी प्रशंसा कराय फूलो फूलो फिरै है अपना स्वरूपकी शुद्धताकूं नाहीं देखता नाना चेष्टा करै है भोले जीवनिकूं मिथ्या उपदेश देय एकांतके हठकूं ग्रहण करावे है। अर कुगुरु कुदेवनिकूं नमस्कारके त्याग करनेतैं अर अन्य देवनिकी निंदा करके अर सभामे वैठ मिथ्या भेषधारीनिकी निंदा करकै आपही कूं सम्यग्दृष्टि मानै है। तथा लोग हमकूं दृढ श्रद्धानी

धर्मात्मा मानेंगे ऐसा अनंतानुबन्धीमानके उदयतैं परकी निन्दा करनेतै ही आपकूं उच्च जानतैं जगतकूं अधर्मी मानै है जातै कुदेव कुगुरुकूं नमस्कार तो समस्त तिर्यंच भी नाहीं करै हैं अर समस्त देवता हू नाहीं पूजैं है। नमस्कार पूजा नाहीं करनेतै ही सम्यग्दृष्टि होय तो समस्त नारकी मनुष्य तिर्यंचादिक सम्यग्दृष्टि होय जांय, सो नाहीं। बहुरि जगतके समस्त मिथ्यादृष्टि मनुष्य देवादिकनिकी निंदा करनेतैं ही सम्यक्त्व नाहीं होयगा। जगत-की निंदा करनेवाला अर पापीनतै वैर करनेवाला तो कुगतिहीका पात्र होयगा। जातैं मिथ्याभाव तो जीवनिके अनादिका है सम्य-ग्दृष्टि तो इनकी हू करुणा करै अर समस्तमें साम्यभाव ही करै है। यातैं सम्यग्दर्शन तो आपा-परका सत्य श्रद्धान ज्ञान विनय सहित स्याद्वादरूप परमागमके सेवनतैंही होयगा।

इति श्रीस्वामीसमन्तभद्राचार्यविरचित रत्नकरंडश्रावकाचारके
सूत्रनिकी देशभाषामयवचनिकाविषैं सम्यग्दर्शनका
स्वरूपवर्णन नामवाला प्रथम अधिकार
समाप्त भया ॥ १ ॥

अब सम्यग्ज्ञानरूप धर्मकूं प्रकट करनेकूं सूत्र कहैं है—

(आर्या छन्द ।)

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात् ।
निस्सन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥४२॥

अर्थ—आगमके जाननेवाले श्रीगणधर देव तथा श्रुतकेवली हैते ताकूं ज्ञान कहै है जो वस्तुका स्वरूपकूं परिपूर्ण जानैं न्यून नाहीं जानै, अर वस्तुका स्वरूप जैसा है तातै अधिक नाहीं जानै अर जैसा वस्तुका सत्यार्थस्वरूप है तैसाही जानै अर विपरीतपनाकरि रहित जानै अर संशयरहित जानै ताहि भगवान् ज्ञान कहै हैं। इहां सम्यग्ज्ञानका स्वरूप कह्या है, सो जो वस्तुका स्वरूपकूं न्यून जानै सो मिथ्याज्ञान है। जैसें आत्माका स्वभाव तौ अनन्त ज्ञान स्वरूप है अर आत्माकूं इन्द्रियजनित मतिज्ञानमात्र ही जानैं सो न्यूनस्वरूप जाननैतैं मिथ्याज्ञान भया। अर वस्तुके स्वरूपकूं अधिक जानै सो हू मिथ्याज्ञान है। जैसें आत्माका स्वभाव तो ज्ञान दर्शन सुख सत्ता अमूर्तीक है तातै ज्ञान दर्शन सुख सत्ता अमूर्त भी जानना अर पुद्गलके गुण रूप स्पर्श गंध वर्ण रस मूर्तीक हू जानना सो अधिक जाननेंतै मिथ्याज्ञान है अर सीपकूं सुपेद अर चिलकता देख वामे रूपाका ज्ञान होना सो विपरीतज्ञान हू मिथ्याज्ञान है। अर यह सीप है कि रूपो है ऐसें दोऊमे संशयरूप एकका निश्चयरहित जानना सो संशयज्ञान है सो हू मिथ्याज्ञान है अर जो वस्तुका जैसा स्वरूप है तैसें जानना सो सम्यग्ज्ञान है अथवा जैसें सोलाकूं पांचगुणा करिये तो अस्सी होय ताकूं अठहत्तर जानै सो न्यून ज्ञान भया अर अस्सीका बियासी जानिये सो अधिकका जानना भया अर अस्सी होय ताकूं सोलह जानना वा पांच जानना सो विपरीतज्ञान भया अर सोलहकूं पांचगुणा किये अस्सी भये कि अठहत्तर भये ऐसा संदेहरूप ज्ञान सो संशयज्ञान है। ऐसें न्यून जानना तथा अधिक जानना तथा विप-

रीत तथा संशयरूपजानना ऐसैं चारप्रकारका मिथ्याज्ञान है अर जो वस्तुका स्वरूपकू' न्यून नाहीं जानैं अधिक नाहीं जानैं विपरीत नाहीं जानैं संशयरूप नाहीं जानै ऐसा वस्तुका स्वरूप है तैसा संशयरहित जानैं ताहि सम्यग्ज्ञान कहिये है।

अब सम्यग्ज्ञान है सो प्रथमानुयोगकूं जानै है ऐसा सूत्र कहै है।

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यं
बोधिसमाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥४३॥

अर्थ—सम्यग्ज्ञान है सो प्रथमानुयोगनै जानै है, कैसाक है अर्थ प्रथमानुयोग—जे धर्म अर्थ काम मोक्ष रूप चार पुरुषार्थ तिनका है कथन जामें बहुरि चरित कहिये एक पुरुषके आश्रय है कथा जामें, बहुरि त्रिषष्ठिशलाका पुरुषनिकी कथनीका सम्बन्धका प्ररूपक यातैं पुराण है। बहुरि बोधिसमाधिको निधान है सो सम्यग्दर्शनादिक नाहीं प्राप्त भये तिनकी प्राप्ति होना सो बोधि है अर प्राप्ति भये जे सम्यग्दर्शनादिकनिकी जो परिपूर्णता सो समाधि है। सो यो प्रथमानुयोग रत्नत्रयकी प्राप्तिको अर परिपूर्णताको निधान है उत्पत्तिको स्थान अर पुण्य होनेका कारण है तातैं पुण्य है। ऐसा प्रथमानुयोगकूं सम्यग्ज्ञान ही जानै है।

भावार्थ—जामें धर्मका कथन अर धर्मका फलरूप कहे जे धन संपदा रूप अर्थ काम जो पंच इन्द्रियनिका विषय अर संसारतैं छूटनेरूप मोक्ष ताका कथन है अर एक पुरुषके आचरणका है कथन जामें, ऐसा चरित्ररूप है। अर त्रिशष्ठिशलाका पुरुषनिका

है वर्णन. जामें तातैं पुराणरूप है। अर वक्ता श्रोतानिके पुण्यके उपजावनेका कारण है तातैं पुण्यरूप है। अर चार आराधनाकी प्राप्ति होनेका, अर चार आराधनाकी पूर्णता करनेका निधान है ऐसा प्रथमानुयोगकूं सम्यग्ज्ञान ही जानै है।

अब करणानुयोगका जाननेवाला हू सम्यग्ज्ञान है ऐसा सूत्र कहै हैं—

लोकालोकविभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च।
आदर्शमिव तथामतिरवैति करणानुयोगं च ॥४४॥

अर्थ—तैसैं ही मति कहिये सम्यग्ज्ञान जो है सो करणानुयोग जो है ताही जानै है। कैसाक है करणानुयोग लोक अर अलोकके विभागको अर उत्सर्पिणीके छह काल अर अवसर्पिणीके षट्काल-के परिवर्तन कहिये पलटनेका अर चार गतिनिके परिभ्रमणका आदर्शमिव कहिये दर्पणवत् दिखावनेवाला है।

भावार्थ—जामें षट्द्रव्यका समुदायरूप तो लोक अर केवल आकाश द्रव्य ही सो अलोक अपने गुणपर्यायनिसहित प्रतिबिंबि-त होय रहे हैं। अर छहूकालके निमित्ततैं जैसे जीवपुद्गलनिकी परणति है ते प्रतिबिंबरूप होय जामें झलकै हैं अर जामें चार गतिनिका स्वरूप प्रगट दिपै है सो दर्पण समान करणानुयोग है। तिनै यथावत् सम्यग्ज्ञान ही जानै है।

अब चरणानुयोगका स्वरूप कहनेकूँ सूत्र कहै हैं—

गृहमेध्यनगाराणां चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षाङ्गम्।
चरणानुयोगसमयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति ॥४५॥

अर्थ—गृहमें आसक्त है बुद्धि जिनकी ऐसे गृहस्थी अर गृहतैं विरक्त होय गृहका त्यागी ऐसा अनगार कहिये यति तिनके चारित्र जो सम्यक् आचरण ताकी उत्पत्ति अर वृद्धि अर रक्षा इनका अंग कहिये कारण ऐसा चरणानुयोग सिद्धांत ताहि सम्यग्ज्ञान ही जानै है।

भावार्थ—मुनिका अर गृहस्थका जो निर्दोष आचरण ताकी उत्पत्तिका अर दिन दिन वृद्धि होनेका अर धारण किया तिनकी रक्षाका कारण चरणानुयोगरूप ज्ञान ही है।

अब द्रव्यानुयोगका स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

जीवाजीवसुतत्त्वे पुण्यापुण्ये च बन्धमोक्षौ च।
द्रव्यानुयोगदीपः श्रुतविद्यालोकमातनुते ॥ ४६ ॥

अर्थ—यो द्रव्यानुयोग नाम दीपक है सो जीव अर अजीव ये दोय जे निबाध तत्त्व तिननैं अर पुण्य-पापनै अर बन्ध मोक्ष जे है तिननै भावश्रुतज्ञानरूप प्रकाश होय तैसै विस्तारैहै।

भावार्थ—द्रव्यानुयोग नामा दीपक ऐसा है जो बाधारहित जीव-अजीवका स्वरूपकूं अर पुण्यपापकूं अर कर्मके बन्धकूं अर कर्मतैं छूट जानेकूँ आत्मामें उद्योत हो जाय, तैसै विस्तार करि दिखावै है। ऐसै चार अनुयोगरूप श्रुतज्ञानका स्वरूप वर्णन किया। ज्ञानके वीस भेद अर अंग तथा पूर्णरूप वर्णन किये ग्रन्थ बहुत हो जाय।

इति श्रीस्वामीसमन्तभद्राचार्यविरचित रत्नकरण्डश्रावकाचारके मूलसूत्रनिकी देशभाषामय वचनिका विषै सम्यग्ज्ञान स्वरूप वर्णन करनेवाला द्वितीय अधिकार समाप्त भया ॥ २ ॥

अब सम्यक्चारित्रनामा तृतीय अधिकारकूं वर्णन करते चारित्रस्वरूप धर्मके कहनेकूं सूत्र कहै है—

मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः ।
रागद्वेषनिवृत्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥४७॥

अर्थ—दर्शनमोहरूप तिमिरको दूर होते संते सम्यग्दर्शनका लाभतें प्राप्त भया है सम्यग्ज्ञान जाकै ऐसा साधु जो निकटभव्य है सो रागद्वेषका अभावके अर्थि चारित्र है ताहि अङ्गीकार करै है।

भावार्थ—इस संसारी जीवकै अनादिकालका दर्शनमोहनीयका उदयरूप तिमिरकरि ज्ञाननेत्र ढकि रह्या है तिस मोह-तिमिरतैं अपना अर परका भेदविज्ञानरहित हुआ चारों गतिनिमे पर्यायही कूं आपा जानता अनन्तकालतैं भ्रमण करै है। कोऊ जीवकै करणलब्ध्यादिक सामग्रीतैं दर्शनमोहका उपशमतैं तथा क्षयतैं तथा क्षयोपशमतैं सम्यग्दर्शन होय है तदि मिथ्यात्वका अभावतैं ज्ञान हू सम्यक्पनाकूं प्राप्त होय है तदि कोऊ सम्यग्ज्ञानी राग-द्वेषका अभावके अर्थि चारित्र अंगीकार करै।

अब रागद्वेषका अभावतैं ही हिंसादिकका अभाव होनेका नियमके अर्थि सूत्र कहै हैं—

रागद्वेषनिवृत्तिर्हिंसादिनिवर्तना कृता भवति ।
अनपेक्षितार्थवृत्तिः कः पुरुषः सेवते नृपतीन् ॥४८॥

अर्थ—रागद्वेषका अभावतैं हिंसादिक पञ्च पापनिकी निवृत्ति कहिये अभाव परिपूर्ण होय है। पञ्च पापनिका अभाव सोही

चारित्र है। अभिलाषरूप नाहीं है प्रयोजनकी प्राप्ति जाकै ऐसा कौन पुरुष राजनिनै सेवन करै ?

भावार्थ—जाकै अर्थ जो प्रयोजन तथा धनादिक फलके प्राप्त होनेकी अभिलाषा नाहीं ऐसा कौन पुरुष राजानिनै सेवन करै ? नाहीं करै। राजानिकी महाकष्टरूप सेवा तो जाकै भोगनिकी चाह तथा धनकी तथा अभिमानादिककी अभिलाषा होय सो करै जाकै कुछ अपेक्षा चाहना नाहीं सो राजाका सेवन नाहीं करै। जाकै रागद्वेषका अभाव भया सो पुरुष हिंसादिक पंच पापनिमें प्रवृत्ति नाहीं करै।

अब चारित्रका लक्षण रागद्वेषका अभाव कह्या सो इसका विशेष कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

हिंसानृतचौर्येभ्यो मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च।

पापप्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम् ॥४६॥

अर्थ—हिंसा अनृत चौर्य मैथुनसेवन परिग्रह ये पाप आवने के प्रनाला हैं इनतैं जो विरक्त होना सो सम्यग्ज्ञानीके चारित्र है।

भावार्थ—निश्चय चारित्र तो बहिरङ्ग समस्त प्रवृत्तितैं छूटै परमवीतरागताके प्रभावतैं परमसाम्यभावकूं प्राप्त होय अपना ज्ञायकभावरूप स्वभावमें चर्या सो स्वरूपाचरण नामा सम्यक्-चारित्र है तौ हू पापनितैं विरक्त होय अंतरंग बहिरंग प्रवृत्तिकी उज्वलतास्वरूप व्यवहारचारित्र विना निश्चयस्वरूप चारित्रकूं प्राप्त नाहीं होय है। तातैं हिंसादिक पंच पापनिका त्याग करना ही श्रेष्ठ है। पंचपापका त्याग करना ही चारित्र है।

अब इस चारित्रकै दोय प्रकारका कहनेकूं सूत्र कहै है—

सकलं विकलं चरणं तत्सकलं सर्वसंगविरतानां
अनगाराणां विकलं सागाराणां ससंगानां ॥५०॥

अर्थ—सो चारित्र समस्त अंतरंग परिग्रहतै विरक्त जे अनगार कहिये गृह मठादि नियत स्थानरहित वनखण्डादिकमे परम दयालु हुआ निरालम्ब विचरै ऐसे ज्ञानी मुनीश्वरनिकै सकल चारित्र है अर जे स्त्रीपुत्रधनधान्यादिक परिग्रहसहित घरमे तिष्ठै ते जिन वचनके श्रद्धानी न्यायमार्गकूं नाहीं उल्लंघन करिकैं पापतैं भयभीत ऐसे ज्ञानी ग्रहस्थीनिकै विकलचारित्र है।

भावार्थ—गृहकुटुम्बादिकके त्यागी अपने शरीरमे निर्ममत्व साधूनिकै सकलचारित्र होय है। गृहकुटुम्बधनादिकसहित गृहस्थीनिके विकलचारित्र होय है।

अब—गृहस्थीनिकै विकलचारित्र कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

गृहिणां त्रेधा तिष्ठत्यणुगुणशिक्षाव्रतात्मकं चरणं।
पञ्चत्रिचतुर्भेदं त्रयं यथासंख्यमाख्यातं ॥ ५१ ॥

अर्थ—गृहस्थनिकै चारित्र है सो अणुव्रत गुणव्रत शिक्षाव्रतस्वरूप तीनप्रकारकरि तिष्ठै हैं सो यो तीन प्रकार चारित्र है सो यथासंख्य पांच भेदरूप तीन भेदरूप च्यार भेदरूप परमागममें कह्या है।

भावार्थ—जो गृहवास छोड़नेकूं समर्थ नाहीं ऐसा सम्यग्दृष्टि गृहमे तिष्टता ही पंच प्रकार अणुव्रत तीन प्रकार गुणव्रत च्यार प्रकार शिक्षाव्रत धारणकरि चारित्रकूं पालै है।

अब पंच प्रकार अणुव्रत कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

प्राणातिपातवितथव्याहारस्तेयकाममूर्छाभ्यः ।
स्थूलेभ्यः पापेभ्यो व्युपरमणमणुव्रतं भवति ॥५२॥

अर्थ—प्राणनिका जो अतिपात कहिये वियोग करणा सो प्राणातिपात कहिये हिंसा अर वितथ असत्य ऐसा व्यवहार कहिये वचन कहना सो वितथव्याहार कहिये असत्य वचन अर स्तेय कहिये चोरी और काम कहिये मैथुन अर मूर्छा कहिये परिग्रह ये पांच पाप है। इन स्थूलपापनितैं विरक्त होना सो अणुव्रत है।

भावार्थ—मारनेका संकल्प करकैं जो त्रसकी हिंसाका त्याग सो स्थूलहिंसाका त्याग है। बहुरि जिस वचन कर अन्य प्राणी का घात हो जाय तथा धर्म बिगड़ जाय अन्यका अपवाद हो जाय कलह संक्लेश भयादिक प्रकट हो जाय ऐसा वचनका क्रोध अभिमान लोभके वश होय कहनेका त्याग कर सो स्थूल असत्य का त्याग है। अर विना दिया अन्यके धनका लोभके वशतैं छलकरि ग्रहण करनेका त्याग सो स्थूल चोरीका त्याग है। बहुरि अपनी विवाही स्त्री बिना समस्त अन्यस्त्रीनिमें कामकी अभिलाषा का त्याग सो स्थूल कामत्याग है। बहुरि दशप्रकार परिग्रह परिमाण करि अधिक परिग्रहका त्याग सो स्थूल परिग्रहका त्याग है। ऐसैं पाप आवनेके प्रनाले ये पांच हिंसादिक तिनका त्याग सो ही पंच अणुव्रत है।

अब अहिंसा अणुव्रतका स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

संकल्पात्कृतकारितमननाद्योगत्रस्य चरसत्वान् ।
न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः ॥५३॥

अर्थ—जो गृहस्थ मनवचनकायके कृत-कारित-अनुमोदनारूप संकल्पतैं चरप्राणी द्वीन्द्रियायिक त्रसप्राणीनिका घात नाहीं करै ताहि निपुण जे गणधरदेव हैं ते स्थूलहिंसातैं विरक्त कहै हैं। इहां ऐसा जानना जो गृहस्थ सम्यग्दर्शनसंयुक्त दयावान हिंसातैं भयभीत होय त्यागके सम्मुख हुआ तो गृहस्थके एकेन्द्रिय जे पृथिवीकायादिक तिनकी हिंसाका त्याग तो वन सकै नाहीं, गृहका त्यागी योगीश्वरनिकै ही त्रसस्थावर दोऊनका हिंसाका त्याग वनैं अर प्रत्याख्यानावरणादिक कषायका उदयतैं गृहतैं ममता छूटी नाहीं, तिस गृहस्थके त्रसजीवनका संकल्पीहिंसाके त्यागतैं भगवान अहिंसा-अणुव्रत कह्या है। संकल्पीहिंसाका त्याग ऐसे जानना—दयावान गृहस्थ अपने परिणामनिकर मारनेरूप संकल्पतैं तो त्रसजीवका घात करै नाहीं, करावै नाहीं, घात करतेका मन-वचनकायतैं प्रशंसा करै नाहीं ऐसा परिणाम रहे। अर जो कोऊ दुष्ट वैर ईर्षादिककरि आपकूं मारया चाहै तथा आजीविका धनादिक हरया चाहै तिसका भी घात करनेकूं नाहीं चाहै तथा कोऊ आपकूं वहुत धन देकर मरावै तो कीड़ीमात्रकूं मारनेका संकल्प करि कदाचित् नाहीं मारै। तथा एक जीव मारनेतैं अपना रोग आपदा दूर होय तो जीवनकै लोभतैं त्रसजीवकूं नाहीं मारै। हिंसातैं अत्यन्त भयभीत है तो हू गृहस्थके आरम्भमें त्रस जीवनिका घात हुआ विना रहै नाहीं, याहीतैं गृहस्थके मारनेका संकल्पकरि त्रसकी हिंसाका त्याग है अर आरम्भी हिंसाका

त्याग करनेकूं समर्थ नाहीं है केवल आरम्भमें यत्नाचारसहित दयाधर्मकूं नाहीं भूलता प्रवर्तै है; क्योंकि गृहस्थके आरम्भ बिना निर्वाह नाहीं। केते आरम्भ नित्य होय है, चूल्हा बालना चाकी पीसना, ओंखलीमें कूटना, बुहारी देना, जलका आरम्भ करना, उपार्जन करना यह छह पापके कर्म तो नित्य ही हैं बहुरि केतेक और हू नित्य भी कदाचित् अन्य कारणतैं हू आरम्भ बहुत हैं अपने पुत्र पुत्रीका विवाह करना मकान बनाना लीपना धोवना झाड़ना होय ही। रात्रि गमनादि आरम्भ करना धातुका पाषाणका काष्ठका आरम्भ करना शय्या बिछावना उठाना पाव पसारना समेटना जातिकूं जिमावना दीपकादिक जोवना इत्यादिक पापही से कार्य हैं। तथा गाड़ी रथ ऊपरि चढ़ि चलाना हस्थी घोड़ा ऊँट बलद इत्यादिक ऊपरि चढ़ि चलाना गाय भैंस इत्यादिक राखना तिनमें त्रस जीवका घात होय ही तथा जिनमन्दिर करावना दान-का देना, पूजन करना इनमें हू आरम्भ है तो कैसे त्रसहिंसाका त्याग होय ? ताका उत्तर कहै हैं, जो आपका परिणाम तो जीव मारने का है नाहीं अर जीव मारने वास्ते आरम्भ करै नाहीं इस कार्य करनेमे जीव मर जाय तो भला है ऐसा राग हू नाहीं, आप तो जीव विराधनातैं भयभीत हुआ गृहचारीका कार्य करनेको आरम्भ करै है। जीव मारनेके वास्ते नाहीं करै है। अपने परि-णाममें तो मेलता धरता उठता बैठता लेता देता जीवनिकी रक्षा करने ही का संकल्प करै है, मारने का संकल्प नाहीं करै, तिसके पापबन्ध कैसैं होय ? जीव अपने आयुकर्मके आधीन उपजैं अर मरै है अपने हाथ नाहीं आप तो जेता आरम्भ करै तितना दया

रूप हुआ यत्नाचारतै करै यत्नाचारीके भगवानका परमागममें हिंसा होते हू वन्ध होना नाहीं कह्या है। समस्त लोक जीवनिकरि भरया है जीवनिके मरने जीवनिके आधीन अपना उपयोग विना हिंसा अहिंसा नाहीं है। अपने परिणामकै आधीन हिंसा अर अहिंसा है। जातैं सिद्धान्त में ऐसा कह्या है जो मुनिराज चारहस्त-प्रमाण आगेको सोधता गमन करै है अर जो पगको उठाय धरवो होय तहां जीव उछलकरि आय पड़ै अर जीव मर जाय तो मुनीश्वरनिके किंचित् हू बन्ध नाहीं होय है; क्योंकि साधुके परि-णामनिमें तो ईर्यासमिति पालना चित्त विषै तिष्ठै था तातैं बन्ध नाहीं। आहार प्रासुक जानि देखि सोधि करिये है अर सूक्ष्म जीव आय पड़े तो कौन जानैं ? भगवान् केवलज्ञानी ही जानें। आप प्रमादी होय यत्नतैं देखै सोधे बिना भोजन करै तो दोषतैं लिपै। याहीतै श्रावक प्रमाद छांडि वड़ी सावधानीतै प्रवर्तन करता दोषकूं कैसैं प्राप्त होय ? चूल्हाकूं दिनमें सोधि बुहारि ईंधन झड़काय यत्नतैं अग्नि जलावै है ऐसे ही चाकी ओखली भी सोधि झाड़ि, अन्नकूं सोधि पोसण खोटणका आरम्भ करै है वीधा अन्नकूं नाहीं ग्रहण करै है। अर वुहारि हू दिवसमे देखि कोमल कूंची मूंज इत्यादिकतैं जीव विराधनाका भय पहित हुआ देवै है कजोडा बुहारै हैं तथा जलकूं दोहरा दृढ़ वस्त्रतैं छानि जतनपूर्वक वरतै है तथा द्रव्यका उपार्जन हू अपना कुलके योग्य सामर्थ्य सहा-यादिकके योग्य जैसैं यश अर धर्म नीति नाहीं विगड़ै तैसैं यत्नतैं असि मसि कृषी विद्या वाणिज्य शिल्प इन षट् कर्मनिकरि करै है; क्योंकि श्रावकका व्रत तो चारों वर्णोंमें होय है आपके उज्वल

हिंसारहित कर्मसूं आजीविका होती हो तो निंद्य कर्मकरि, संक्लेश कर्मकरि लोभादिकके वश होय पापरूप आजीविका करै नाहीं अर आपकूं अन्य आजीविकाका उपाय नाहीं दीखै तो घटायकरि पापतैं भयभीत हुआ न्यायतैं करै। क्षत्रियकुलका शस्त्रधारक होय तो दीन अनाथकी रक्षा करता दीन दुःखित निर्बलको घात नाहीं करै, शस्त्ररहितकूं नाहीं मारै, गिर पड्या ऊपरि घात नाहीं करै पीठ देय भाग जाय दीनता भाषै तिन ऊपरि घात नाहीं करै है अर धनके लूटनेको घात नाहीं करै अभिमानतैं वैरतै घात नाहीं करै अपने ऊपर घात करता आवै ताकूं तथा दीननिकूं मारनेकूं आवै तिनकूं शस्त्रतैं रोकै जो शस्त्रतै जीविका करता होय सो केवल स्वामिधर्मतैं तथा अनाथनिका स्वामीपना आपके होय सो शस्त्रधारण करै। जाके शस्त्रसंबन्धी सेवा नाहीं अर प्रजाका स्वामीपना नाहीं ताकै वृथा शस्त्र-धारण नाहीं होय है। अर स्याहीतैं आमद खरच लिखनेकी जीविका होय तो मायाचारादिक दोष रहित स्वामीके कार्यकूं यथावत सही लिखता जीविका करै। और माली जाट इत्यादिक कुलमें अन्य जीविकाका नाहीं होय तो कृषि जो खेती करि आजीविका करता हू दयाधर्मको छांडै नाहीं. जो खेत पहली बहता आया होय तिसकूं परिमाण करि अधिक का त्यागी हुआ खेती करै है अधिक तृष्णा नाहीं करै यामे हू बहुत घटाय आपाकूं निन्दता खेती करै है। बहुत जल सींचै है तो हू आप अनछाण्या जल एक चल्लू मात्र हू नाहीं पीवै है कोऊ आय बहुत धन भी देवै अर कहै तुम यहाँ धान्यके बहुत वृक्ष छेदो हो हमतैं एक मोहर लेय हमारे एक वृक्षकी एक डाहली

काट लावो तो लोभके वशि होय कदाचित् नाहीं छेदै है तथा खेती में बहुत जीव मरै हैं तो भी इसके जीव मारनेका अभिप्राय नाहीं केवल आजीविकाका अभिप्राय है कोऊ सौ मोहर देवै तो लोभके वशि होय अपना संकल्पतै एक कीडी हू मारै नाहीं ऐसी व्रतमें दृढ़ता है। अर उत्तम कुलवाला खेती करै नाहीं। बहुरि विद्याकरि आजीविका करै ऐसा ब्राह्मणादिक श्रावक है सो मिथ्यात्वभावका पुष्ट करनेवाला तथा हिंसाकी प्रधानता लिये रागद्वेषका बधावने वाला शास्त्रनिकूं त्याग करि उज्वलविद्या पढावै सो ही दया है। बहुरि श्रावक है सो बहुत हिंसाके खोटे वाणिज्य त्याग न्यायपूर्वक तीव्र लोभकूं त्याग आपकी निन्दा करता सन्तोष सहित घटाय प्रमाणीक सांचसूं व्यौहार करै दयाधर्मकूं नाहीं भूलता समस्त जीवनिकूं आप समान जानता वाणिज्य करै है। बहुरि शिल्प-कर्म करनेवाला शूद्र हू श्रावकका व्रत ग्रहण करै है सो बहुत निं-द्यकर्मनिकूं तो टालै ही अर टालनेकूं समर्थ नाहीं तीमें बहुत हिंसा टालि दयारूप प्रवर्तै है संकल्पतैं याकूं मारना या जाणि घात नाहीं करै। अर मन्दिर बनवाना पूजन करना दान देना इन कार्यनिमें तो निरन्तर बड़ा यत्नाचारतैं, केवल दयाधर्मके निमित्त ही प्रवर्तन करै है।

हिंसाका भाव काहेतैं होय जातैं पुरुषार्थसिद्ध्युपाय नामा ग्रंथमें श्रीअमृतचन्द्रस्वामी ऐसैं कह्या है—

यत्खलु कषाययोगात्प्राणानां द्रव्यभावरूपाणां।
व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा॥४३॥

अर्थ—जे कषायके संयोगतैं द्रव्यप्राण जे इन्द्रिय कायादिक अर भावप्राण जे ज्ञानदर्शनादिक तिनके वियोग करवो सो निश्चित हिंसा होय।

भावार्थ—जो कषायके वशि होय परके द्रव्यप्राण भावप्राणनिको वियोग करवो सो निश्चितहिंसा होय है। कषायरहिततकै प्राणीका मरणमात्रतैं हिंसा नाहीं होय है आप परजीवकै मारनेकी कषायसहित होय ताकै हिंसा होय है।

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः॥ ४४॥

अर्थ—जो रागद्वेषादिको आत्माके नाहीं प्रगट होवो सो अहिंसा है अर आत्माके परिणाममें रागद्वेषादिकनिकी उत्पत्ति होय सो ही हिंसा है। जिनेन्द्रभगवानके आगमका संक्षेप तो इस प्रकार है—बाह्य प्राणीनिकी हिंसा होहु वा मत होहु जो परिणाम रागद्वेषादि कषायसहित होय सो ही अपना ज्ञानदर्शनादिरूप भावप्राणनिका घात है सो ही आत्महिंसा है जाकै आत्महिंसा है ताकै परकी हिंसा भी होय ही है।

युक्ताचरणस्य सतो रागाद्यावेशमन्तरेणापि।
न हि भवति जातु हिंसा प्राणव्यपरोपणादेव॥ ४५॥

अर्थ—योग्य आचरण करता सत्पुरुषके रागद्वेषादि कषाय विना प्राणनिका घाततैं ही हिंसा कदाचित् नाहीं होय है।

भावार्थ—यत्नतैं दयासहित प्रवर्तन करता पुरुषकै जीव-

घात होतैं हू हिंसाकृत बन्ध नाहीं होय है।

व्युत्थानावस्थायां रागादीनां वशप्रवृत्तायां।
म्रियतां जीवो मा वा धावत्यग्रे ध्रुवं हिंसा ॥४६॥

अर्थ—रागद्वेषादिकनिके आधीन प्रवृत्ते जे गमन आगमन उठना बैठना धरना मेलना ऐसे आरम्भ तिनमें जीवनिका मरण होहू वा मत होहू हिंसा तो निश्चयतैं आगै दौड़ती है। यत्ना-चाररहित होय आरम्भ करै है ताकै जीव अपने आयुके आधीन मरण करो वा मत करो आप तो अपने परिणामतैं निर्दय भया ताकैं हिंसाकृत बन्ध आगैं आगै दौड़ै है।

यस्मात्सकषायः सन् हन्त्यात्मा प्रथममात्मनात्मानं।
पश्चाज्जायेत न वा हिंसा प्राण्यन्तराणां तु ॥४७॥

अर्थ—जातैं आत्मा कषायसहित हुवो संतो प्रथम ही आप करिकै आपनै हतै है पाछैं अन्य प्राणीनिकी हिंसा उत्पन्न होय वा नहीं होय जिस काल कषायसहित आत्मा भया तिस ही कालमें अपना ज्ञानानन्द वीतरागस्वरूपका घात तो अवश्य करि हो चुका।

हिंसायामविरमणं हिंसापरिणमनमपि भवति हिंसा।
तस्मात्प्रमत्तयोगे प्राणव्यपरोपणं नित्यं ॥ ४७ ॥

अर्थ—जातैं हिंसाके विषै विरक्त होय त्याग नाहीं करना सो भी हिंसा है अर हिंसामें प्रवर्तन है सो हू हिंसा है तातैं प्रमत्तयोग होतैं प्राणनिका घात नित्य है।

भावार्थ—अपना अर परका घात होनेकी सावधानीरहित प्रवर्तते जे मनवचनकायके योग सो प्रमत्तयोग है जहां प्रमत्तयोग है तहां सासतीहिंसा है जो कोऊ हिंसा तो नाहीं करै परन्तु हिंसातैं विरक्त होय हिंसाका त्याग नाहीं करै सो सूते विलाव समान सदाकाल हिंसक ही है अर हिंसामें प्रवर्तन करै है सो हू हिंसक ही है। भावनितै तो दोऊ हिंसक हैं बाह्यनिमित्त हिंसाका मिलो वा मति मिलो।

सूक्ष्मापि न खलु हिंसा परवस्तुनिबन्धना भवति पुंसः।
हिंसायतननिवृत्तिः परिणामविशुद्धये तदपि कार्या ॥४६॥

अर्थ—अन्यवस्तु है कारण जाकूं ऐसी तो सूक्ष्म हू हिंसा नाहीं है जातैं पुरुषकै जो हिंसा होय है सो तो अपना परिणाममें हिंसा करनेका भाव होतै हिंसा होय है। इहां कोऊ पूछै जो परद्रव्यके निमित्ततै सूक्ष्महिंसा नाहीं होय है तो बाह्यवस्तुका त्याग व्रत संयम किसवास्तै करिये हैं? ताका उत्तर करै है—यद्यपि हिंसकपरिणाम होय तदि ही जीव कै हिंसा होय परन्तु हिंसा होनेके स्थाननिमें प्रवर्तेगा ताकै हिंसाके परिणाम कैसै नाहीं होयगा? तातैं परिणामकी विशुद्धताके अर्थि जहां हिंसा होय ऐसे खानपान ग्रहण आसन वचन चितवनादिक त्याग करने योग्य हैं।

निश्चयमबुद्ध्यमानो यो निश्चयतस्तमेव संश्रयते।
नाशयति करणचरणं स बहिःकरणालसो बालः ॥ ५० ॥

अर्थ—जो जीव निश्चयनयका विषय रागादि कषायरहित शुद्धात्मा रूपकूँ तो जाण्या नाहीं अर मेरा भाव कषायरहित है मेरे समस्त प्रवृत्तिमें हिंसा नाहीं ऐसा वृथा निश्चय करता निरर्गल यथेच्छ प्रवर्तै है सो अज्ञानी बाह्य आचरणमें प्रवृत्ति छांड प्रमादी हुआ करणचरणरूप चारित्रका नाश करै है।

भावार्थ—जाका परिणाम रागद्वेषरहित भया ते अयोग्य भोजन पान धन परिग्रह आरम्भादिकमें कैसै प्रवर्तन करैगा जो हिंसासूं विरक्त है सो हिंसा होनेके कारण दूरहीतैं छांडैगा।

अथ और हू पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहै हैं, कोऊ तो हिंसा नाहीं करकै अर हिंसाके फलका भोगनेवाला होय है जैसै आयुध बनावनेवाले लुहार सिकलीगर हिंसा नाहीं करकैं हू तन्दुलमच्छकी ज्यों हिंसाके फलकूं प्राप्त होय है। अर कोऊ दयावान होय यत्नाचारतैं जिनमंदिर बनवाने वाला बाह्यहिंसा होते हू हिंसा के फलकूं नाहीं प्राप्त होय है। कोऊ पुरुष हिंसा तो अल्प करी परन्तु तीव्र रागद्वेषरूप भावनितैं करने करि उदयकालमें महाफलकूं प्राप्त होय है बहुरि केई अनेक पुरुष मिलि करकें एक हिंसा करी परन्तु उस हिंसा करनेमे कोऊ तो तीव्र रागवाला सो तीव्रफलकूं प्राप्त होय है मंदकषायवाला मंदफलकूं प्राप्त होय है मध्यमकषायवाला मध्यमफलकूं प्राप्त होय है। तथा कोऊ पुरुषकै हिंसा तो पाछैं काल पाय बनैगी परन्तु हिंसाके परिणाम करनेतैं हिंसाका फल पहले ही उदय होय गया है। अर कोऊकै हिंसा करनां करता फलै है जैसे कोऊ

पुरुष अन्य कोऊकू मारण करै तिस कालमें ही उसका प्रहारतैं आपहू मारया जाय है। कोऊकै पूर्वैं करी पाछै फलै है। कोऊ हिंसा का आरम्भ तो किया अर पाछै बन सकी नाहीं सो हू फलै है जैसै कोऊका घात करनेका उपाय किया तो बणि सक्या नाहीं अर पाछै वै जानि आपका घात किया ही। बहुरि हिंसा तो एक करै अर हिंसाका फल अनेक पुरुष भोगैं जैसैं चोर तथा हत्याराकू मारै वा सूली चढ़ावै तो एक चांडाल अर देखनेवाले अनेक तमासगीर पापबंधकरि फल भोगवै हैं। अर संग्राममें हिंसा करनेवाला तो बहुत योद्धा होय हैं अर फल भोगनेवाला एक राजा होय है तातैं करै एक अर भोगै अनेक है अर करै अनेक भोगै एक है। बहुरि कोऊके तो हिंसा करी हुई हिंसाहीका फल देहै अर अन्यकै सो ही हिंसा अहिंसाका फल देहै जैसैं कोऊ पुरुष किसी जीवकी रक्षा करनेकू यत्न करै छा यत्न करते हू उसका मरण हो गया तो वाकै रक्षाका अभिप्रायतै अहिंसाहीका फल होयगा अर कोऊका परिणाम तो किसीके मारनेका था आपदाकू प्राप्त करने को था अर उसका पुण्यका उदयतैं आपदा हू नाहीं भई अर मरण हू नाहीं भया अनेक लाभ भया तो मारनेके अर्थीकों तो पापही का बंध होय है। अर कोऊका परिणाम किसीकू दुःख देनेका नाहीं था सुख देनेका वा रक्षा करनेका था अर उसके दुःख हो गया वा मरण होगया तो सुख देनेका परिणामकरि वाकै पुण्यबंध ही होयगा इसप्रकार कर अनेक भंगनिकरि गहन यो जिनेन्द्रका मार्ग है यामें एकांती मिथ्यादृष्टिनका पार होना अतिकष्टतै हू नाहीं होय। अनेकांतके प्रभावतै नयसमुहके जाननेवाला गुरु ही शरण है। यो

जिनेन्द्रभगवानको नयचक्र तीक्ष्णधाराकूं धारण करता एकांत दुष्टआग्रह सहित मिथ्यादृष्टिनिका मिथ्यायुक्तिनिका हजारां खण्ड करने वाला है। यातैं भो ज्ञानीजन हो ! भगवान वीतरागकी आज्ञातै प्रथम ही हिंसा होने योग्य जे जीवनिके स्थान इंद्रिय-कायादिक जीवनिके कुलकोड तिनकूं जानो। बहुरि हिंसा करने-वाला भाव ताकूं जानो। बहुरि हिंसाका स्वरूप कहा है ताकूं जानो। बहुरि हिंसाका फलकूं जानो ऐसैं हिंस्य हिंसक हिंसा हिंसाका फल इनचारकूं यत्नतैं जानि करके पाछै देशकाल सहाय अपना परिणाम अर निर्वाह होना जानि अपनी शक्तिकूं नाहीं छिपाय गृहस्थपणामें हू अपने पदके योग्य हिंसाका त्याग ही करो तथा त्रसजीवनिकी संकल्पी हिंसाका त्याग करो अर समस्त आरम्भमें दयावान हुआ यत्नाचारतैं प्रवर्तन करो अर पंचस्थावर-निका आरम्भमे घटायकरि दयावान होय प्रवर्तो।

ऐसै अहिंसा अणुव्रतका स्वरूप कह्या अब अहिंसाव्रतका पंच अतीचार जनावनेकूं सूत्र कहै हैं—

छेदनबंधनपीडनमतिभारारोपणं व्यतीचाराः।
आहारवारणापि च स्थूलवधाद्व्युपरतेः पंच ॥ ५४॥

अर्थ—ये स्थूलहिंसाका त्याग नामकव्रतके पंच अतीचार हैं ते गृहस्थके त्यागने योग्य है। छेदन कहिये अन्य मनुष्यतिर्यंचनिके कर्ण नासिका ओष्ठादिक अंगनिका छेदना सो छेदन नामक अती-चार है ॥ १ ॥ अर मनुष्यनिकूं बंधनादिककरि बांधना तथा बंदीगृहमें रोकना तथा तिर्यंचनिकूं दृढबंधनकरि बांधना पक्षीनिकूं

पींजरेमें रोकना इत्यादिक बंधन नामा अतीचार है ॥ २ ॥ अर मनुष्यतिर्यंचनिकूं लात धमूका लाठी चाबुक आदिका घातकरि ताडना करना सो पीडन नामा अतीचार है ॥ ३ ॥ बहुरि मनुष्य-तिर्यंच गाडा गाडी इत्यादिक ऊपरि बहुत बोझका लादना सो अतिभारारोपण नामा अतीचार है ॥ ४ ॥ अर मनुष्यतिर्यंचनिको खावने पीवनेको रोकना सो अन्नपानका निराकरण नामा अती-चार है ॥ ५ ॥ ये पांच अतीचार स्थूलहिंसाका त्यागीकूं त्यागने योग्य है ।

अब सत्य नामक अणुव्रतके कहनेकूं सूत्र कहै है—

स्थूलमलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदे ।
यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावादवैरमणं ॥ ५५ ॥

अर्थ—जो स्थूल असत्य नाहीं बोलै अर परकूं असत्य नाहीं बुलावै अर जिस वचनतैं आपकै अन्यकै आपदा आवै ऐसा सत्य हू नांहीं कहै ताहि सत्पुरुष स्थूलझूठका त्याग कहै हैं ।

भावार्थ—सत्य अणुव्रतका धारक होय सो क्रोधमानमाया-लोभके वशीभूत होय ऐसा वचन नाहीं कहै जाकरि अन्यका घात होजाय अन्यका अपवाद होजाय अन्यकै कलङ्क चढ़ि जाय सो वचन निंद्य है । जिस वचनतैं मिथ्याश्रद्धान होजाय तथा धर्मसूं छूटिजाय, व्रत संयम त्यागतैं शिथिल होजाय, श्रद्धान विगडिजाय सो वचन नाहीं कहै तथा कलह विसंवाद पैदा होजाय, विषयानु-रागबधि जाय, महाआरम्भमें प्रवृत्ति होजाय, अन्यके आर्त्तध्यान

प्रगट होजाय कामवेदना प्रगट होजाय परके लाभमें अन्तराय होजाय, परकी जीविका विगडि जाय अपना परका अपयश होजाय ऐसा निन्धवचन योग्य नाहीं तथा ऐसा सत्य वचन हू नाहीं कहै जाकरि आपको अन्यको विगाड होजाय आपदा आजाय अनर्थ पैदा होजाय दुःख पैदा होजाय मर्म छेद्याजाय, राजका दण्ड होजाय धनकी हानि होजाय ऐसा सत्यवचन हू झूठ ही है । बहुरि गालीके वचन भण्डवचन नीचकुलवालेनिके बोलनेके वचन तथा मर्मछेदके वचन परके अपमानके वचन, परके तिरस्कारके वचन, अहंकारके वचनकूं कदाचित् नाहीं कहै । जिनसूत्रके अनुकूल तथा आपका परका हितरूप अर बहुत प्रलाप रहित प्रमाणीक संतोपका उपजानेवाला, धर्मका उद्योत करनेवाला वचन कहै जातै न्यायरूप आजीविका सधै अनीतिरहित होय ऐसे वचनको कहता गृहस्थके स्थूल असत्यका त्यागरूप द्वितीय अणुव्रत होय है ।

अब सत्याणुव्रतके पंच अतीचार कहनेकूं सूत्र कहै है—

परिवादरहोभ्याख्या पैशून्यं कूटलेखकरणं च ।
न्यासापहारितापि च व्यतिक्रमाः पंच सत्यस्य ॥ ५६ ॥

अर्थ—इहां परिवाद तो मिथ्याउपदेश है जो स्वर्गमोक्षका कारण जो चरित्र तिस चारित्रकूं अन्यथा उपदेश करना सो परिवाद नामा अतीचार है ॥ १ ॥ अर कोऊ आपकूं छानी वात कही होय सो किसीकूं कह देना विख्यात करि देना तथा कोऊ स्त्रीपुरुषादिकनिका एकान्तमें गुह्य चेष्टा देख करिकैं तथा गुह्यवचन श्रवण करि किसीकूं प्रगट करना सो रहोभ्याख्यान नामा अतीचार

है ॥ २ ॥ बहुरि अन्यका छिद्र जानि विगाडि करानेके अर्थि कोऊकूं छिपकरि कह देना चुगली करना सो पैशून्यनामा अतीचार है ॥ ३ ॥ बहुरि अन्यके बिना कह्या तथा विना आचरण किया झूठा लिख देना जो इसने ऐसा कह्या है ऐसा आचरण किया है सो कूटलेखकरण नामा अतीचार है ॥ ४ ॥ बहुरि कोऊ आपको धन सौंपि गया तथा वस्त्र आभरणादिक मेलि गया फिर संख्या भूलि अल्प मांगने आया ताकूं कहै तुम्हारा है सो ही लेजावो सो न्यासापहारिता अतीचार है ॥ ५ ॥ऐसै स्थूल असत्यका त्याग-नामा अणुव्रतके पॉच अतीचार त्यागने योग्य हैं। इहां ऐसा विशेष जानना जो अनादितैं अनंतकाल तो यो जीव निगोदमें ही वास किया फिर कदाचित् निगोदमेंतैं निकसि करिकैं फिर पंच स्था-वरनिमें असंख्यातकाल परिभ्रमणकरि बहुरि निगोदमें अनंतकाल बारम्बार अनन्तानन्त परिवर्तन एकेन्द्रियमें किये तहां तो वचन पाया नाहीं जिह्वा इन्द्रिय ही नाहीं भई बहुरि द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय असैनी सैनी पंचेन्द्रियमे उपज्या तहां जिह्वा पाइ तो अक्षरात्मक कहने सुननेरूप वचन नाहीं पाया। कदाचित् अनंता-नतकालमें मनुष्य-जन्ममें वचन बोलनेकी शक्ति पाई तो नीच कुलनिमें अयोग्य वचन हिंसाके वचन, असत्य वचन, परकै अर आपकै संताप करनेवाला वचन बोलि महापापबन्ध करि दुर्गतिका पात्र भया अपने वचन करि अपना घातक भया। कदाचित् कोऊ पूर्वपुण्यके उदयकरि मनुष्यजन्म पाया है तो यामें वचन बोलनेमें बड़ा यत्न करो। भोजनपान करना, कामसेवन करना, नेत्रनितैं देखना, काननितैं श्रवण करना तो शूकर कूकर गधा कागलाकै भी

होय है क्योंकि आंख नाक कान जीभ कामेन्द्रिय ये तो समस्त ढोरनिके भी होय हैं। इस मनुष्यजन्ममें तो एक वचन ही सार है करामाति है जो इस वचनकूं विगाड्या सो अपना समस्त जन्म विगाड्या। वचनतै ही जानिये है यो पण्डित है यो मूर्ख है यो धर्मात्मा है यो पापी है यो राजा है वा राजाका मन्त्री है यो रङ्क है यो कुलीन है यो अकुलीन है यो हीणाचारी है यो उत्तमाचारी है यो संतोषी है यो तीव्रलोभी है यो धर्मवासनासहित है यो धर्मवासनारहित है यो मिथ्यादृष्टि है यो सम्यग्दृष्टि है, यो संस्कृती है यो संस्कृतिरहित है, यो उत्तम संगतिको राजसभामे रह्यो हुवो है यो ग्राम्यजन गंवारनिमें रह्यो है, यो लौकिकचतुर है यो लौकिकमूढ़ है यो हस्तकलासहित है यो कलाविज्ञानरहित है यो उद्यमी पुरुषार्थी है यो आलसी प्रमादी है, यो शूर है यो कायर है, यो दातार है यो कृपण है, यो दयावान है यो निर्दय है, यो दीन याचक है यो महन्त है, यो क्रोधी है यो क्षमावान है यो मदोद्धत है यो मदरहित है, यो विनयवान है यो कपटी है यो निष्कपट है यो सरल है यो वक्र है इत्यादिक आत्माके गुणदोषादिक समस्त वचनद्वारै ही प्रगट होय हैं, यातैं मनुष्य-जन्म पावना सफल किया चाहो तो एक वचनहीकी उज्वलता करो। इस वचन हीतैं सत्यार्थ उपदेशकरि भगवान अरहन्त त्रैलोक्यकरि वंदनीक होय जगतको मोक्षमार्गमें प्रवर्तन कराया है वचनहीतैं अनेक जीवनिका मिथ्यात्वरागादिक मल दूरिकरि अजर अमर अविनाशी पद दिया है। पंचपरमेष्टीमें भी वचनकृत उपकारके प्रभावतैं प्रथम अरिहन्तनकूं ही नमस्कार किया है। ज्ञानीवीतरागके

वचनकरि स्वर्ग नरकादिक तीन लोक प्रत्यक्षकी ज्यौं दीखैं हैं। वचनहीकी सत्यताके प्रभावकरि पंचमकालमें धर्मप्रवर्तै है। अर उज्वल-वचन, विनयका वचन, प्रियवचनरूप पुद्गलनि करि समस्त लोग भर्‌या है मोल नाहीं लागै तथा किसीकूं जीकारो देनेमें अपना अङ्गमें दुःख नाहीं उपजै है जीभ तालू कण्ठ नाहीं भिदै है यातै समस्त प्राणिनिकै सुख उपजावै ऐसा प्रियवचन ही कहो अर असत्यवचनके प्रभावकरि ही मिथ्यादेवनिकी आराधना तथा यज्ञादिक हिंसाके प्ररूपक वेदादिक ग्रंथनिमें मांसभक्षणादिक कुकर्मनिमें प्रवृत्ति हू असत्य वचनतैं ही भई है तथा खोटे शास्त्रनिकी रचना नाना प्रकारके मिथ्यात्वरूप मत नरक तिर्यंचनिमे परिभ्रमण करानेवाला समस्त दुष्ट आचार इस असत्य वचनके प्रभावकरि ही प्रवृतैं हैं अर अयोग्यवचनतै ही घर घरमे कलह विसंवाद, परस्पर वैर, परस्पर ताड़न मारन प्राणापहार क्रोधभय संतापभय अपमानादिक देखिये है अर अप्रतीति अविश्वास खेद का कारण एक असत्य वचनहीकूं जानो। अर असत्य का प्रभाव करि परलोकमें नरकतिर्यंचगतिकूं प्राप्त होय अरु कुमानुषनिमें तथा नीच चांडाल चमार भील कषायी इत्यादि कुलमे हू असत्य ही उपजावै तथा अनेक भवनिमें दरिद्री रोगी गूंगो बहरो हीण दीन असत्यका प्रभावतैं होयहै तातै समस्त दुःखका मूल एक असत्यवचन है सो शीघ्र ही त्याग करि एक सत्यवचन प्रियवचन हीमें प्रवृत्ति करो, तातैं तुम्हारा वचन समस्तके आदरने योग्य अनेक देव मनुष्यनिके ऊपरि आज्ञा करने योग्य होय तथा समस्तश्रुतका पारिगामी श्रुतकेवलीपना गणधरपना सत्यहीका

प्रभावतैं प्राप्त होय है यातैं असत्यका त्याग ही जीवका कल्याण है।

बहुरि पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहै हैं—

हेतौ प्रमत्तयोगे निर्दिष्टे सकलवितथवचनानां।
हेयानुष्ठानादेरनुवदनं भवति नासत्यं ॥१००॥
भोगोपभोगसाधनमात्रं सावद्यमक्षमा मोक्तुं।
येतेपिऽशेषमनृतं समस्तमपि नित्यमेव मुञ्चन्तु ॥१०१॥

अर्थ—समस्त असत्य वचनको कारण प्रमत्तयोग भगवान कह्यो है कषायके आधीन होय जो वचन कहै है सो असत्य है यातैं कषायविना देना मेलना धरना त्यागना ग्रहण करना इत्यादिकका कहना सो असत्य नाहीं है अर जे गृहस्थ अपना भोग उपभोगका साधनमात्र सदोष वचन त्यागनेकूं समर्थ नाहीं हैं तो गृहस्थ अन्य निरर्थक पापवन्ध करने वाला समस्त असत्य वचनकूं तो त्याग अवश्य ही करो।

भावार्थ—अपना भोगउपभोगका साधनमात्र सदोष वचनका त्याग नाहीं होय सकै तो ताका त्याग करने में बड़ा उद्यम राखणा अर वृथा बहु आरम्भ बहुपरिग्रहका कारण दुर्ध्यानका कारण अन्यके आपकै संतापका कारण ऐसा सदोष निंद्यवचनका तो त्याग अवश्य करना ही श्रेष्ठ है ऐसैं स्थूल असत्यका त्याग नामा दूजा अणुव्रतकूं कह्या है।

अब स्थूलचोरीका त्याग नामा तीजा अणुव्रतकूं कहै हैं—

निहितं वा पतितंवा सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टं ।
न हरति यन्न च दत्ते तदकृशचौर्यादुपारमणं ॥५७॥

अर्थ—जो किसी पुरुषका जमीनमें गड्या हुआ धन होय वा कोऊ स्थानमें महल मन्दिर गृहादिकमें स्थापना किया हुआ धन होय अथवा आपकूं अमानत सौंपि गया होय वा अपने मकानमें तथा परके स्थानमें आपकूं नाहीं जनाया धर गया होय अथवा ग्राममें नगरमें वनमें बागमे पटकि गया होय अथवा आपको सौंपि भूलि गया होय वा हिसाब लेखामें चूकि गया होय वा आपके स्थानमें भूलिकरि पटकि गया होय अथवा लेने देनेमें गिनतीमें विस्मरण हुआ पैसा रुपया मोहर आभरण वस्त्रादिक बहुत वा अल्प द्रव्य बिना दिया नाहीं ग्रहण करै अर परका द्रव्य उठाय किसीकूं देवे भी नाहीं सो स्थूल चोरीका त्यागरूप अणुव्रत है ।

अर कार्तिकेयस्वामी ऐसै कह्या है—

जो बहुमुल्लं वत्थुं अप्पमुल्लेण णेय गिण्हेदि ।
वीसरियं पि ण गिण्हेदि लाहे थूवेहि तूसेदि । ६३५॥

अर्थ—जाके स्थूल चोरीका त्याग होय सो बहुत मोलकी वस्तु अल्पमोलमें नाहीं ग्रहण करै जैसैं कोऊ पुरुष आपको वस्तुको चौकसि करि बेचै तो सवारुपयामें बिक जाय अर आपकूं आय सौंपी जो इसकी कीमत होय सो आप देवो तो तहां सवारुपयाकी वस्तुकूं प्रगट जानता लोभके वशि हो एक रुपयामे हू नाहीं लेवै । अन्यकी भूली हुई वस्तु ग्रहण नाहीं करै तथा ऐसा परिणाम

नाहीं करै जो कोऊ निर्धन तथा अज्ञानीकी वस्तु हमारे थोड़े मोल में आजाय तो भला है अर अल्प लाभहीमें बहुत संतोष राखै।

भावार्थ—बनजके व्यवहारमें तथा सेवामें लाभ थोरा होय तो सन्तोष ही करै अधिकमें लालसा नाहीं करै तिसकै स्थूल-चोरीका त्याग जानना।

अब अचौर्य नामा अणुव्रतके पंच अतीचार कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृशसन्मिश्राः ।
हीनाधिकविनिमानं पंचास्तेये व्यतीपाताः ॥ ५७ ॥

अर्थ—अचौर्य नामा अणुव्रतके ये पंच अतीचार हैं आप तो चोरी नाहीं करै परन्तु अन्यकूं प्रेरणा करै तथा चोरी करनेका प्रयोग (उपाय) बतावै सो चोरप्रयोग नामा अतीचार है ॥ १ ॥ अर चोरका ल्याया धनको ग्रहण करणा सो चौरार्थादान नामा दूसरा अतीचार है ॥ २ ॥ अर उचित न्यायतैं छांड़ि अन्यरीतितैं ग्रहण करना अथवा राजाकी आज्ञासूं जाका निषेध होय तिस कायका करना विलोप नामा अतीचार है ॥ ३ ॥ अर बहुत मोल की वस्तुमें अल्पमोलकी वस्तु मिलाय चला देना सो सदृशसन्मिश्र नामा अतीचार है जैसै घृतमें तेल मिलाय देणा शुद्धसुवर्णमें कृत्रि-मसुवर्ण मिलाय देना सो सदृशसन्मिश्र है ॥ ४ ॥ बहुरि देनेके बांट ताखडी घाटि परिमाण राखना लेनेकूं बधती राखना सो हीनाधिकमानोन्मान नामा अतीचार है ॥ ५ ॥ ऐसैं स्थूल चोरीका

स्याग नामा अणुव्रतके पंच अतीचार त्यागने योग्य हैं। इस चोरी समान जगतमें अपराध नाहीं है समस्त उच्चता कुलकर्म धर्मविनाश करनेवाली समस्त प्रतीति बड़ापनाका विध्वंस करनेवाली है अर चोरीका धन हू वेश्यासेवनमें परस्त्रीमें व्यसननिमें अभक्ष्यमें खरच होय है वा अन्य किसीमें रह जाय है सन्तोष नाहीं आवै है क्लेशित होय रहे है अर प्रगट होय तो राजा तीव्र दण्ड देहै समस्त लोक मारे है हस्तनासिकाका छेदन सर्वस्वहरणादिक दण्ड यहाँ ही प्राप्त होय है परलोकमें नरकादिक कुयोनिनमें परिभ्रमण होय है।

अब स्थूल ब्रह्मचर्य नामा अणुव्रतका स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

न च परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्।
सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसंतोषनामापि ॥ ५९ ॥

अर्थः—जो पापका भयतैं परकी स्त्रीप्रति आप नाहीं प्राप्त होय अर परकी स्त्री प्रति अन्य पुरुषनिनै गमन नाहीं करावै सो स्वदारसंतोषनामधारक परस्त्रीका त्याग नामा चौथा अणुव्रत है।

भावार्थ—जो अपने जाति कुलकी साखतैं विवाही स्त्री तिसविषै सन्तोष धारण करके तिसतैं अन्य समस्त स्त्रीमात्रमें राग भावका त्यागी होय परस्त्री तथा वेश्या दासी तथा कुलटा तथा कन्या इत्यादिक स्त्रीनिमें विरागताको प्राप्त होय स्त्रीनिसूं रागभाव करि संगम, वचनालाप, अवलोकन, स्पर्शनका त्याग करै ताकूं परस्त्रीका त्यागी कहिये तथा स्वदारसन्तोषी हू कहिये है।

अब स्वदारसन्तोषव्रतके पंच अतीचार कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

अन्यविवाहाकरणानङ्गक्रीडाविटत्वविपुलतृषः।
इत्वरिकागमनं चास्मरस्य पंच व्यतीचाराः॥ ६० ॥

अर्थ—ये अस्मर जो स्थूल ब्रह्मचर्य ताके पंच अतीचार हैं ते त्यागने योग्य है। अपने पुत्र पुत्री विना अन्यके पुत्रपुत्रीनिका विवाहकूं आ समन्तात् कहिये आप रागी होय करवो सो अन्य विवाहाकरण नाम अतीचार है ॥ १ ॥ अर कामके अङ्ग छांड़ि अन्य अङ्गनितैं कीडा करिवो सो अनङ्गक्रीडा नाम अतीचार है ॥ २ ॥ बहुरि भण्डिमारूप पुरुषकूं स्त्रीका रूप स्वांगादिक बताय मनवचनकायकी प्रवृत्ति सो विटत्व नाम अतीचार है ॥३॥ बहुरि कामकी अतितृष्णा कामकी तीव्रता सो अतितृष्णा नाम अतीचार है ॥४॥ बहुरि इत्वरिका जे व्यभिचारिणी स्त्री तिनके घर जावना व्यभिचारिणीकूं आपके घर बुलावना देन लेन रखना परस्पर वार्ता करना रूप शृंगार देखना सो इत्वरिकागमन नाम अतीचार है ॥५॥ ये स्थूल ब्रह्मचर्यव्रतके पांच अतीचार त्यागने योग्य हैं। जो देवनिकरि पूज्य यो ब्रह्मचर्यव्रत ताकी रक्षा किया चाहै सो अपनी विवाही स्त्री विना अन्य माता भगिनी पुत्री पुत्रवधूके नजीक हू एकान्तस्थानमें नाहीं रहै अन्य स्त्रीका मुख नेत्रादिककूं अपना नेत्र जोड़ नाहीं देखै। शीलवन्तपुरुषनिका नेत्र अन्य स्त्रीकूं देखत प्रमाण मुद्रित होय जाय है।

अब परिग्रहपरिमाण नामा अणुव्रत कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

धनधान्यादिग्रन्थं परिमाय ततोऽधिकेषु निःस्पृहता।
परिमितपरिग्रहः स्यादिच्छापरिमाणनामापि ॥ ६१ ॥

अर्थ—अपने परिणामनिमें जेतामें सन्तोष आजाय तितना धन धान्य द्विपद चतुष्पद गृह क्षेत्र वस्त्र आभरणादि परिग्रहका परिमाण करके अधिक परिग्रहमें निर्वाञ्छकपनो सो परिमितपरि-

ग्रह नाम व्रत है याहीकूं इच्छापरिमाण नाम कहिये है। बहुरि कोऊकै वर्त्तमानमें परिग्रह अल्प है अर वांछा अधिक करि बहुत धनमें परिमाण करि मर्याद करै है सो हू धर्मबुद्धि है व्रती है परन्तु अन्यायतैं लेवाका त्याग दृढ़ राखै जैसैं, कोऊकै परिग्रह तो सौ रुपया का है परिमाण हजारका करै जो हजार सिवाय नाहीं ग्रहण करूं यो भी व्रत है परन्तु हजार अन्यायतैं नाहीं ग्रहण करूंगा ऐसा दृढ़ नियम करै जातैं परिग्रहका परिमाण बिना निरन्तर परिणाम अनेक वस्तुनिमे परिभ्रमण करै है। समस्त पापनिका मूल कारण परिग्रह है समस्त दुर्ध्यान याहीतैं होय है जातैं भगवान् मूर्छाकूं परिग्रह कह्या है। बाह्यपरिग्रह अन्य वस्त्रमात्र तथा रहनेकूं कुटीमात्र नाहीं होतै हू परवस्तुमें ममता (वांछा) करिसहित है सो परिग्रह ही है। परमागममें अन्तरङ्गपरिग्रह चौदह प्रकार कह्या है—मिथ्यात्व १ वेद २ राग ३ द्वेष ४ क्रोध ५ मान ६ माया ७ लोभ ८ हास्य ९ रति १० अरति ११ शोक १२ भय १३ जुगुप्सा १४। तहां मिथ्यात्व तो देहादिक परद्रव्यनिमें अनादिकालतैं ममतारूप परिणाम है यह देह है सो मै हूं जाति मैं हूं कुल मैं हूं इत्यादिक परपुद्गलनिमें आत्मबुद्धि अनादितैं लाग रही है सो मिथ्यात्व है तथा रागद्वेषभाव क्रोधादिकभाव मोहकर्मकरि किए भावनिमें आत्मपनाको संकल्प सो मिथ्यात्व परिग्रह है। तथा कामतैं उपज्या विकारमें लीन हो जाना तथा राग द्वेष क्रोध मान माया लोभ हास्यादिक छह नोकषायनिमें आपा धारना सो अतरंग परिग्रह है जाकै अंतरंगपरिग्रहका अभाव है ताकै बाह्यपरिग्रहमें ममता नाहीं होय है समस्त अनीति परिग्रहकी ममतासूं करै है।

परिग्रहकी वांछातैं हिंसा करै, भूठ बोलै ही,चोरी करै ही, कुशील-सेवन करै ही, परिग्रहके वास्ते मर जाय, अन्यकूं मारै,महा क्रोध करै, परिग्रहका प्रभावतैं महाअभिमान करै परिग्रहके वास्ते अनेक मायाचार करै परिग्रहकी ममतातैं महालोभ करै। वहुत आरम्भ बहुत कषायको मूल परिग्रह ही है समस्त पापनितैं छूट्या चाहै सो परिग्रहतैं विरक्त होय है।

सो ही कार्तिकेयस्वामी कह्या है—

को ण वसो इत्थिजणे कस्स ण मयणेण खंडियं माणं
को इंदिएहिं ण जियो को ण कसाएहि संतत्तो ॥२८१॥
सो ण वसो इत्थिजणे सो ण जियो इन्दि एहिं मोहेण।
जो ण य गिरहदि गंथं अब्भंतरबाहिरं सव्वं ॥२८२॥
जो लोहं णिहणित्ता संतो सरणायणेण संतुट्ठो।
णिहणदि तिएणा दुट्ठा मरणांतो विणस्सरं सव्वं ॥३३९
जो परिमाणं कुव्वदि धणधाणसुवएणखित्तमाईणं।
उवओगं जाणित्ता अणुव्वयं पंचमं तस्स ॥३४०॥

अर्थ—इस जगतमें स्त्रीनिके वश कौन नाहीं है अर कामवि-कारने कौनका मान खंडन नाहीं किया अर इन्द्रियनिकरि कौन नाहीं जीत्या गया अर कषायनिकरि तप्तायमान कौन नाहीं है ? समस्त संसारी जीव हैं ते स्त्रीनिके वश होय रहे हैं अर कामवि-कार समस्त संसारीनिका अभिमान खंडन करै है अर समस्त संसारी इन्द्रियनिके वश पराधीन होय रहे हैं अर चार प्रकार

कषायनिकरि समस्त प्राणी दग्ध होय रहे हैं जो पुरुष अभ्यंतर अर बाह्य समस्त परिग्रहकूं ग्रहण नाहीं करै है सो ही स्त्रीनिके वश नाहीं,सो ही इन्द्रियनिके आधीन नाहीं,तिसहीकूं मोह नाहीं जीतै, सो ही कामकरि नाहीं खण्डन होय है, सो ही कषायकरि दग्ध नाहीं होय है। जो पुरुष लोभको नष्टकरि संतोषरूप रसायणकरि आनन्दित हुआ समस्त धन संपदादिकनिनै विनाशीक मानि दुष्टा तृष्णाकूं आगामी वांछाकूं छांड़करि धन धान्य सुवर्ण क्षेत्र स्थानादिकनिको अपना अभिप्राय जानि परिणाम करै है जो इतना परिग्रहसूं मेरा निर्वाह करना अधिकमें मेरा प्रवृत्ति करने का त्याग है ऐसे पापरूप जानि वांछा छांड़ै ताकै परिग्रहपरिमाण नामा अणुव्रत होय है। बहुरि परमागममें परिग्रहका लक्षण मूर्छा कह्या है जीवकै जो परपदार्थनिमें ममताबुद्धि सो ही मूर्छा है जातैं परवस्तुमें ऐसा अपना मानकरि राग है जो आत्माका मरण जीवन हित अहित योग्य अयोग्यके विचारमें अचेत होय रह्या है मोहकी उदीरणातैं म्हारो म्हारो ऐसो परद्रव्यमें परिणाम सो ही मूर्छा है। मूर्छा हीकूं भगवान परिग्रह कह्या है याहीतैं बाह्यपरिग्रह अल्प होहु वा मति होहु समस्त परिग्रहरहित है तो हू मूर्छावान परिग्रही है सो ही कहै है—

बाहिरगंथविहीणा दलिद्दमणुआ सहावदो हुंति ।
अब्भंतरगंथं पुण ण सक्कदे को वि छंडेदुं ॥३८७॥

अर्थ—बाह्य परिग्रह रहित तो दरिद्री मनुष्य स्वभावहीते होय है सो देखिये ही है हजारां लाखां मनुष्य ऐसे हैं जिनकूं जन्मलिये पीछे पीतल तांबा कांसाका पात्र मिल्या ही नाहीं जे जन्मतैं घृत

भक्षण किया नाहीं, मोदकादिक खाया नाहीं, पाग अंगरखी जामा कदे पहरया ही नाहीं, स्त्री विवाही ही नाहीं, कदे उदर भर भोजन मिल्या नाहीं, सुवर्णादिक देख्या नाहि, समस्त जन्ममें दोय चार दिनके खावने योग्य अन्नमात्रका हू संग्रह हुआ नाहीं, अन्य सुवर्णरूपादिकनिका तो दर्शन ही नाहीं, पैसा रुपया एक भी जिनकूं कदे प्राप्त हुआ नाहीं, रहनेकूं कुटीमात्र हू अपनी भई नाहीं ऐसें अनेक मनुष्य देखिये है परन्तु अभ्यन्तर ममता छोड़नेकू कोऊ समर्थ नाहीं तातैं मूर्छा ही परिग्रह है। यहाँ कोऊ पूछै जो मूर्छा ही परिग्रह है तो वाह्य धनधान्यवस्त्रादिक वाह्यवस्तुका संगमके परिग्रहपना नाहीं ठहरया ताकूं उत्तर करै है—ये वाह्यपरिग्रह अंतरंगपरिग्रहके निमित्त हैं इन वाह्यपरिग्रहका देखना, श्रवण करना, चिंतवन करना शीघ्र ही परिग्रहमे लालसा उपजावै है, ममता उपजावै है, अचेत करै है तातैं वहिरङ्गपरिग्रह मूर्छाका कारण त्यागने योग्य है अर अंतरङ्ग वहिरङ्ग दोऊ प्रकार परिग्रह के ग्रहणकूं भगवान हिंसा कही है अर दोय प्रकारका परिग्रहका त्याग सो अहिंसा है ऐसैं परमागमके जाननेवाले कहै हैं। जातैं मिथ्यात्वकषायादिक अंतरंगपरिग्रह तो हिंसाहीके दूजे पर्यायनाम हैं अर वाह्यपरिग्रहमें मूर्छा सो ही हिंसा है। वहुरि ये कृष्णादिक लेश्याके अशुभपरिणाम हू परिग्रहमे रागकरि ही होय हैं क्योंकि परिणामनिकी शुद्धता मंदकषायकरि होय है कषायनिकी मंदता होय सो परिग्रहके अभावतैं होय अर महान आरम्भ भी परिग्रह का अधिकतातैं ही होय है ऐसैं जानि समस्त परिग्रह छांडनेका

राग नाहीं घटया तो परिग्रहमें उपयोग माफिक परिणाम करिकै तो रहो। अर जो परिग्रह तो अल्प है अर अधिककी वांछा बनि रही है सो इस वांछातैं प्राप्त नाहीं होयगा लाभ तो अंतरायकर्मका क्षयोपशमतैं होयगा वांछातै तो और पाप कर्मका बंध ही होयगा तातै पापका कारण परिग्रहकी ममता छांड़ि जेता प्राप्त भया तितनामें संतोष धारण करि ही रहो। यहां ऐसा विशेष जानना, यद्यपि समस्त परिग्रह त्यागने योग्य है परन्तु जो गृहस्थपनामें रहि धर्मसेवन करया चाहै सो अपने पुण्यके अनुकूल परिग्रह राखै ही जो परिग्रह गृहस्थके नाहीं होय तो काल दुकालमें,रोगमें वियोगमें,व्याहमे मरणमें परिणाम ठिकाने रहै नाहीं, परिणाम बिगड़ि जाय। तातैं गृहस्थधर्मकी रक्षावास्तै परिग्रह संचय करै ही अर आजीविकाको उपाय न्यायमार्गतै करै ही क्योंकि साधु तो परिग्रह अल्प हू राखे तो दोऊ लोक तैं भ्रष्ट होजाय अर गृहस्थ परिग्रह नाहीं राखै तो भ्रष्ट होजाय जातै गृहस्थाचारमें रहै तो ताकै अल्प तथा बहुत परिग्रह बिना परिणाममें समता नाहीं रहै अर आजीविका नाहीं होय तो निराधारका परिणाम धर्मसेवनमें ठहर सकै नाहीं, परिणाममें तीव्र आर्ति मिटै नाहीं, भोजनपान मिलने योग्य आजीविका बिना स्वाध्यायमें, पूजनमे, शुभ भावनामें परिणाम ठहरि सके नाहीं, आकुलता करि संक्लेश बधतो जाय सन्तोष रहै नाहीं। जातैं रोग आवतै, वृद्धपना आवतैं, वियोग होतै अन्न वस्त्रका आधार विना अपना परिणाम कोऊ देशमें कोऊ कालमें थिरता पावै नाहीं, देहकी रक्षा आजीविका विना नाहीं, देह बिना अणुव्रत शील संयम काहेतैं होय? यातै अपना पुण्यकी

अनुकूलता अर उद्यम, सामर्थ्य, सहाय साधनादिक देशकालके योग्य विचारि न्यायमार्गतैं आजीविका करि धर्म सेवन करौ। अहिंसातै, सत्यप्रवृत्तितैं अदत्त परके धनका त्यागकरि आपकूं जगतकै लोकनिकै विश्वास आवनेयोग्य पात्र बनो। तथा विद्या, कला चातुर्य करि आजीविका होने योग्य आपकूं करौ। पाछैं लाभांतरायका क्षयोपशम प्रमाण लाभ-अलाभ अल्पलाभ होय ताहीमें सन्तोष करो। अर कुटुम्बका पोषण, देहका पोषण पुण्य के उदयतै लाभ भया तिस परिमाण करौ। ऋणवान मत होहू ऋण हुआ पाछैं समस्त धीरज, प्रतीतिका अभाव हो जायगा, दीनता प्रगट हो जायगी, एक बार अपनी प्रतीति बिगडै पाछैं आजीविका होना कठिन है बहुरि आजीविकाकै अनुकूल खरच राखो पुण्यवाननिकूं देख अधिक खरच करोगे तौ जस अर धर्म अर नीति तीनों नष्ट हो जायंगे अर अन्य पुण्यवानोंका खरच देख बराबरी करोगे तो दरिद्री होय दोऊ लोकतैं भ्रष्ट हो जावोगे अर या जानो हो जो हमारी बड़ी आवरू है पूर्वैं हमारे बड़ा२ कार्य भया है अब कैसै घटावैं जो घटावैं तो हमारा समस्त बड़ापना बिगड़ि जाय ऐसी बुद्धि मति करो पुण्य अस्त होजाय तब बड़ापना कैसैं रहेगा अब बड़ापना तो सांच, सन्तोष धारणकरि शीलकरि विनयकरि दीनता रहितपनाकरि इन्द्रियनिके विषयनिकी चाह घटावनेकरि है। तातैं दोऊ लोकमें उज्वलता होय पुण्यको उदय आजाय तदि जीवकूं स्वर्गलोकका महर्द्धिक देव बना दे, चक्रवर्त्ती करदे, अर पापका उदय आवै तदि नरकका नारकी तथा एकेन्द्रिय बनादे, तथा भार वहनेवाला रोगी, दरिद्री मनुष्य करदे

तिर्यंच करदे, इसही भवमें राजा होय रङ्क होजाय, कौनसा बड़ापनाकूं देखो। अर अपने धन तो अल्प अर अभिमानी होय बहुत धन खरच करोगे तो दरिद्री अर ऋणवान दीन होय समस्ततैं नीचे हो जावोगे निंद्यताकूं प्राप्त होय आर्तध्यानतैं दुर्गतिकै पात्र हो जावोगे तातैं आजीविका होय तातैं अल्प खरच करो यो ही प्रवीणपणो है, पण्डितपणो है जो आमदनीतैं अल्प खरच करै सो ही कुलवानपणो है, सोई उत्तम धर्म है। क्योंकि आमदनीतैं खरच बधावोगे तो अपनी ही बुद्धितैं दरिद्री होय मूर्खता दिखावोगे अर ऋणवान हो जावोगे तदि उत्तम कुल योग्य आदर-सत्कार आचरण समस्त नष्ट हो जायगा अर मलीनता प्रगट होजायगी अर पूजन स्वाध्याय शुभ भावनामें बुद्धि निर्धन हुआ पीछैं, ऋणवान हुआ पीछैं नाहीं तिष्ठैगी। तातैं आजीविकातैं अल्प खरच करना ही गृहस्थकी परम नीति है। अर अभिमानी होय अधिक खरच करताकैं अन्यका बिना दिया धन ऊपरि चित्त चलि जाय है अनेक असत्य कपटादिक पापमें प्रवृत्ति होय संतोष धर्म नष्ट हो जाय है। कोऊ या कहै जो आजीविका तो पूर्वकर्मके आधीन है धर्म-सेवन अपने आधीन है ताकूं कहिये है जो—यहाँ आजीविका पुण्यके आधीन ही है परन्तु धर्मग्रहण होजाना हू पुण्यकर्मका सहाय बिना नाहीं होय है। धर्मग्रहणकी योग्यतामें हू एती सामग्री मिले होय हैं उत्तमकुलमें जन्म पावना, जातैं चाण्डाल, चमार, भील शूद्रादिकके कुलमें धर्मका लाभ कैसैं होय? बहुरि सुदेशमें उपजना, इन्द्रियांकी पूर्णता पावना, रोगरहित देह पावना, शुभ सङ्गति पावना, आजीविकाकी स्थिरता पावना,

सम्यक्धर्मका उपदेश पावना, इत्यादिक पुण्यका उदय-जनित वाह्यसामग्री पाये विना धर्मग्रहण वा धर्मका सेवन नाहीं होय है। तातैं जाकें पूर्वपुण्यका उदयतै आजीविकाकी स्थिरता होय ताकै धर्मसेवनिमें योग्यता होय है। वहुरि जाके इन्द्रियनिकी पूर्णता, नीरोगता होजाय अर न्याय-अन्यायका विवेक तथा धर्म-अधर्म योग्य-अयोग्यका विवेक होय तथा प्रियवचन विनय, अन्यके धन अर अन्यकी स्त्रीसूं पराङ्मुखता अर आलस्य प्रमादरहितता, धीरता, कालदेशके योग्य वचन होय ताकै अजीविकाका लाभ अर धर्मका लाभ हो जाय। गुणवानकै, निर्लोभीकै, आलस्यरहित उद्यमीकै, विनयवानकै जीविका दुर्लभ नाहीं है। आप जीविका योग्य पात्र वनजाय तो जीविका कदाचित् दूर नाहीं लाभांतराय कर्मका क्षयोपशम प्रमाण आजीविका थोड़ी वा वहुत नियमतै वन ही जाय तिसमे सन्तोष करि अधिकमें वांछाका त्याग करि परिग्रहपरिमाणव्रत धारण करो। अर पुण्यका उदयके आधीन आजीविका प्राप्त होजाय तो अनीतिमे प्रवृत्ति करि आजीविकाकूं नष्ट मत करो आजीविका नष्ट होजायगी तो धर्म अर जस नष्ट होजायगा अर अपने भावनिकरि जो नीति धर्म नाहीं छांड़ोगे न्यायमार्ग चलोगे फिर हू असाताका उदयतैं, अग्नितैं, जलतैं, चोरनितैं, राजाके उपद्रवतैं आजीविका विगड़ि जाय तथा धन विगड़ जायगा तो धर्म नाहीं विगड़ैगा यश नाहीं विगड़ैगा। जगतमें अप्रतीतिका पात्र नाहीं होवोगा, अर प्रवल लाभान्तराय का उदयतैं न्यायरूप उद्यम करते हू जा लाभ नाहीं होय तो समता ही ग्रहण करो। जो आयुकर्म वाकी है तो भोजनादिककी विधि कर्म

मिलाय देगो कम बलवान है। वनमे, पहाड़में जलमें, नगरमें, अन्तरायका क्षयोपशम प्रमाण सबकूं मिलै है। कोऊका पुण्य तो ऐसा है जो बहुत लोकनिकूं भोजनादिक देय आप भोजन करै है अर कोऊके अन्तरायका ऐसा उदय है जो अपना उदर हू नाहीं भरै है। कोऊकूं आधा उदर भरने लायक मिलै है। कोऊकूं एक दिन मिलै, एक दिन नाहीं मिलै। कोऊकूं दिनके आंतरे तीन दिनके आंतरै नीरस भोजन मिलै तो हू धर्मात्मा समताकूं नाहीं छाड़ैं। जो पूर्वैं तिर्यचनिके भवमें कदे उदर भर भोजन मिल्या नाहीं तथा क्षुधा-तृषाके मारे अनेक बार मरे है तातैं अब धैर्य धारण करि जैसैं हमारे धर्म नाहीं छूटै तैसैं यत्न करना जिनका परिणाममें ऐसा गाढ़ प्रगट होय- तो स्वर्गलोकमें महर्द्धिक देव होय है। बहुरि कोऊ या कहे जो आप तो गाढ़ पकड़ि समता राखै परन्तु कुटुम्ब जाकी गैलि होय तो कहा करै? तो ऐसे कुटुम्बकूं कहै भो कुटुम्बके जन हो! जो आपा पूर्वजन्ममे दान दिया नाहीं, व्रत पाल्या नाहीं, अभक्ष्य भक्षण किये, अन्यायतैं परका धन ग्रहण किया तिस पापके उदय करि ऐसे दरिद्री भये जो उदरकूं भोजन अर वस्त्र भी नाहीं सो अपना किया पापका फल है जो अब अन्य पुण्यवाननिके आभरण भोजनादिक देखि क्लेशित होओगे तो केवल आगांनै हू तिर्यंच गतिके घोर दुःखनिका कारण पापकर्म तथा कोटनि भवपर्यन्त दरिद्रादिकके कारण पापबन्ध करोगे परकी सम्पदा आपकै नाहीं आवैगी। क्लेश दुर्ध्यान तृष्णादि कियेतैं दुःख नाहीं मिटेगा अर दुःख बधैगा अर जो अल्प मिल्यामें संतोष करि निर्वाञ्छक

होओगे तो वर्तमानमें तो दु:ख ही नाहीं व्यापैगा अर समस्त पापकर्मकी निर्जरा ऐसी होयगी जो घोर तपश्चरणतैं हू नाहीं होय अरअल्प भोजन वस्त्रादिक मिलै अर परिणाममें आकुलतारहित समतासूं रहै तो बड़ा तप है। अर कर्म मुझे थांकै सामिल उपजायो सो अब मैं दैव पुरुषार्थ दोऊनिके अनुकूल द्रव्य उपार्जनमें उद्यम करूं हूं परन्तु लाभांतरायका क्षयोपशम प्रमाण न्यायमार्गतैं प्राप्त हो जायगा सो तुम्हारे निकट लाऊं हूं। अब यामेंसूं हमारे विभागका बांटा होय सो हमकूं द्यो अर तुम्हारा होय सो तुम विभाग करि भोजनादिक करो परन्तु अब हम भगवानका उपदेश्या दुर्लभ धर्म ग्रहण किया है सो अब तुम्हारे वास्तै अनीति कपट घोर पापकरि धन नाहीं ग्रहण करेंगे न्यायनीतितै जैसें धर्म नाहीं बिगड़ै तैसें उद्यम करि उपार्जन करेगे। तुम भी जैसें हमारा धर्म बिगडि जाय तैसें प्रवर्तन मत करो। अपना अपना पुण्य पापका फल भोगो। आकुलता छांड़ि जेता मिलै तितनामे संतोष धारि सुखतैं रहो ऐसा जाकै निश्चय है ताके परिग्रहपरिमाण नामा स्थूल व्रत होय है। और जो कुटम्बका पोषणके अर्थि पाप-क्रियामें प्रवर्तै है, असत्य चोरी कपट हिंसा इत्यादिक पापनिमे प्रवर्तै हैं तिनके घोर पापका वन्ध होय पापतैं दुर्गतिका पात्र होय हैं। तातैं अल्प जीतव्यमे व्रत शील संयममें दृढ़ता करो। केतेक लोक कहै हैं जो धन तो पापहीतैं आवै है पाप विना धन आवै नाहीं त्यागी व्रती हुआ धन कैसें आवै ? ताकू कहिये है—ऐसी तो तुम्हारी भ्रान्ति है जो पाप विना धन आवै नाहीं ऐसा कहना अयुक्त है। जो पापहीतैं धन आवै तो इस जगतमें लाखां भील

चांडाल चोर चुगुल, मनुष्यनिकूं मारनेवाले, ग्राम दग्ध करनेवाले मार्ग लूटनेवाले समस्त ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र समस्त जाति समस्त कुल पापीनि करि भरया है समस्त पुरुष स्त्री बालकादि हिंसाके करनेकूं, असत्य बोलनेकूं, चोरी करनेकूं तैयार हैं परन्तु जो पूर्वजन्ममें कुपात्र दान दिया है कुतपकरि खोटा पुण्य बांध्या है तिनकै कुमार्गतैं धन आवै है, पुण्यहीन तो मारया जाय पूर्व-पुण्य विना पापतै ही तो नाहीं आवै है अर जो पुण्य बांध्या ते यहां चोरी चुगली करयां बिना ही सम्पदाकूं प्राप्त होय है। राजा के घर जन्म ले है तातैं कोटधनके धणीनिकै घर जन्म ले है। बहुत कहा कहिये समस्त पुण्यका फल है। खोटे पुण्यकी लक्ष्मी भोगि नरक तिर्यंचमें जाय डूबै है।

अब परिग्रहपरिमाण व्रतके पंच अतीचार वर्णन करनेकूं सूत्र कहै हैं—

अतिवाहनातिसंग्रहविस्मयलोभातिभारवहनानि।
परिमितपरिग्रहस्य च विक्षेपाः पंच लक्ष्यन्ते ॥६२॥

अर्थ—परिमितपरिग्रह नामा व्रतके ये पंच अतीचार जानिये हैं जो घोड़ा ऊंट बैल इत्यादिक तिर्यंचनिकूं तथा दासी दास सेवकादिकनिकूं अतिलोभके वशतैं मर्यादारहित अतिदूरका मंजल करावै बहुत चलावै सो अतिवाहन नामा अतीचार है ॥१॥ बहुरि अपने गृहमें प्रयोजनरहित हू बहुत वस्तुनिका संग्रह करै भोजन-वस्त्रपात्र इत्यादिक थोरेका प्रयोजन होय अर बहुतका संग्रह करै तथा धान्यादिक अर वस्त्रादिक तथा औषधादिक तथा काष्ठ पाषाण धातु इत्यादिकनिका संग्रहमें बहुत परिणाम रहै सो अति-

संग्रह नामा दूजा अतीचार है ॥ २ ॥ बहुरि अन्यके बहुत संपदा बहुत परिग्रह तथा अनेक देशांतरनिकी वस्तु वा कदे नाहीं देखे ऐसे वस्तुका देखनेकरि श्रवणकरि आश्चर्य करना सो विस्मय नामा तीजा अतीचार है ॥३॥ बहुरि कोऊ वनिजमें तथा सेवामें तथा कला हुनरतैं आपके अन्तरायके क्षयोपशम परिमाण लाभ होय तो हू तृप्त नाहीं होना सन्तोष नाहीं आवना सो अतिलोभ नामा चौथा अतीचार है ॥ ४ ॥ बहुरि तिर्यंचनि ऊपरि लोभके वशतैं अधिक भार लादि चलावना सो अति भारवाहन नामा पांचमा अतीचार है ॥ ५ ॥ जो गृहस्थ परिग्रह परिमाण करै सो इन पांच अतीचारका हू परित्याग करै।

ऐसैं गृहस्थनिके धारण करानेयोग्य पंच अणुव्रत कह करिके अब अणुव्रतनिके फल कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

पञ्चाणुव्रतनिधयो निरतिक्रमणाः फलन्ति सुरलोकं ।
यत्रावधिरष्टगुणा दिव्यशरीरं च लभ्यन्ते ॥ ६३ ॥

अर्थ—अतीचारनिकरि रहित ये पूर्वोक्त पंच अणुव्रतरूप निधि हैं सो देवलोकरूप फलकूं फलै हैं जिस देवलोकमें अवधिज्ञान अर अणिमा महिमा लघिमा गरिमा प्राप्ति प्राकाम्य ईशित्व वशित्व ये अष्ट महागुण है अर धातु उपधातुरहित दिव्यशरीर पाइये है।

भावार्थ—अणुव्रतनिके धारण करनेवाला मरकरि स्वर्गलोकमें महान् अणिमादिक ऋद्धिका धारक देव ही होय अन्य पर्याय नांही पावै ऐसा नियम है। स्वर्गमें धातु उपधातुरहित, रोग वृद्धत्वादिकरहित दिव्यशरीरकूं प्राप्त होय असंख्यात वर्षपर्यन्त

सुखसम्पदामें लीन हुआ तिष्ठै है।

अब जे पंच अणुव्रतनिकूं धारण करि इस लोकमें विख्यात महिमाकूं प्राप्त भये तिनके नाम प्रकट करनेकूं सूत्र कहै हैं—

मातङ्गो धनदेवश्च वारिषेणस्ततः परः।
नीली जयश्च संप्राप्ताः पूजातिशयमुत्तमं ॥ ६४ ॥

अर्थ—अहिंसा नामा अणुव्रतकरि मातंग जो चांडाल अर सत्य अणुव्रतकरि धनदेव नामा वणिकपुत्र अर अचौर्यव्रत करि वारिषेण नामा राजपुत्र अर ब्रह्मचर्यव्रतकरि नीली नामा श्रेष्ठीकी पुत्री अर परिग्रह परिमाणकरि जयकुमार ये व्रतके माहात्म्य करि उत्तम पूजाके अतिशयकूं प्राप्त भये इस ही भवमें देवनिकरि पूज्य भये। यद्यपि इन व्रतनिके प्रभावतैं अनेक भव्य इस लोकमें महिमा पाय देवलोकमे गये तथापि आगमप्रसिद्ध इनकी ही कथा है।

अब पंच पापनिके प्रभावतैं जे इस लोकमें घोर क्लेश पाय दुर्गति गये तिनका नाम कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

धनश्रीसत्यघोषौ च तापसारक्षकावपि।
उपाख्येयास्तथा श्मश्रुनवनीतो यथाक्रमम् ॥ ६५ ॥

अर्थ—हिंसा करि तो धनश्री,असत्यकरि सत्यघोष, चोरीकरि तापसी, कुशीलकरि कोतवाल, परिग्रहकरि श्मश्रुनवनीत ये इस लोकमें राजनितैं तीव्र दण्ड पाय दुर्गतिकूं प्राप्त भये इनका यथाक्रम दृष्टान्त जानना।

अब अष्ट मूलगुणनिकूं कहै हैं—

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपञ्चकं।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥ ६६ ॥

अर्थ—श्रमणोत्तम जे गणधर तथा श्रुतकेवली हैं ते गृहस्थ के मद्यमांसमधुके त्याग सहित जे पंच अणुव्रत ताहि अष्ट-मूलगुण कहै हैं।

भावार्थ—जीव मारनेके संकल्पकरि त्रस जीवनिके मारनेका त्याग (१) अन्यके अर आपके क्लेश उपजावनेवाला अर सांचा श्रद्धान ज्ञान आचरणका घात करनेवाला वचनका त्याग (२) विना दिया धरया गड्या भूल्या परके धनके ग्रहण करनेका त्याग (३) अपना कुलके योग्य विवाही स्त्री विना अन्य समस्त स्त्रीनिमें रागका त्याग (४) न्यायकरि उपजाया परिग्रहके मांहि परिमाण-करि अधिक परिग्रहका त्याग (५) ये पांच तो अणुव्रत अर जिसतैं परिणाम मोहित होय अर अपना हित अहितकी साव-धानी बिगड़ि जाय सो मद्य है ताका त्याग (६) अर द्वींद्रियादिक जीवनिके देहतैं उपज्या मांसका त्याग (७) अर मक्षिकानिकरि संचय किया मधु छत्तातैं उपज्या मधुका त्याग (८) इन अष्टका त्याग सो अष्टमूलगुण हैं। जातैं गृहस्थके पंच पाप अर तीन मकारका त्यागमें दृढ़ता होजाय तदि समस्त गुणरूप महलकी नींव लगि गई। अनादिकालतैं संसारमें परिभ्रमणका कारण मिथ्यात्व अन्याय अर अभक्ष्य था तिनका अभाव हुआ तब अनेक गुण ग्रहणका पात्र भया तातैं ये अष्ट त्याग हैं ते ही मूलगुण हैं। बहुरि अन्य ग्रन्थनिमें पंच उदुंबरफल अर तीन मकारका त्यागतैं अष्टमूलगुण कहै हैं इहां उदुम्बर (१) कटू-मर (२) पीलू (३) पीपलका गोल (४) बड़का बड़वाल्या (५) ये पांच उदुम्बर फल कहिये हैं इनमें बहुत त्रस जीवनिकं

प्रगट देखिये हैं तातैं इन फलनिका भक्षण मांस के समान है और हू केतेक फल जिनमें काल पाय त्रस मरि जांय तिनका भक्षण में हू रागभावकी अधिकतातै महाहिंसा होय है जाकै ऐसा परिणाम होय जो याकूं मैं सुकाय खाऊंगा तिसकैं अभक्ष्यमें तीव्र अनुराग तैं बहुत बन्ध होय हैं। मदिरा है सो मनकूं मोहित करै है अचेत करै है अर मन मोहित होय जाय सो धर्मकूं विस्मरण होजाय अर धर्म भूलि जाय सो पुरुष निःशंक हिंसाकूं आचरण करै है ऐसा विशेष जानना। जो—मनकूं उन्मत्त करै स्वरूपकी सावधानी भुलाय विषयांमें आसक्तता उपजावै रसना इन्द्रिय अर उपस्थ इन्द्रियके विषयमें अतिराग उपजावै सो ही मद्य है यातैं भङ्ग पीवना तथा अमल (अफीम) पोस्त आदिक नशाकी वस्तु तथा इनके संयोगतैं उपजे पाक माजूम इन समस्त मदकारी वस्तुके भक्षण करनेतै धर्मबुद्धिका नाश होय है अर अभक्ष्य भक्षण में रक्त होजाय बुद्धिकी उज्वलता परमार्थका विचार नष्ट होजाय हैं तातैं जिनेन्द्रकी आज्ञाकूं धारण करया चाहै तो अवश्य अमलकारी वस्तुका भक्षणका त्याग करै है। बहुरि भांगमे त्रस जीव बहुत उपजै हैं अर मदिरामे तो अपरिमाण त्रस जीवनिकी उत्पत्ति है महा दुर्गंध है। उत्तमकुलके पुरुष मदिराकी धारा दूरतैं हू भोजन करते देख लें तो भोजनका शीघ्र त्याग करैं अर स्पर्शनतैं वस्त्र सहित स्नान करैं। मदिराकरि उन्मत्त होय सो माताकूं पुत्रीकूं स्त्रीरूप आचरण करै है अर अपनी स्त्रीकूं मातापुत्रीरूप आचरण करै है। भय ग्लानि क्रोध काम लोभ हास्य रति अरति शोक ये समस्त दोष हिंसाहीतैं हैं ते समस्त मद्यपायीकै होय हैं

तातैं धर्मका अर्थी मद्यपानका दूरहीतैं त्याग करै।

- बहुरि द्विइंद्रियादिक प्राणीनिके घात करतेमे मांस उपजै है अर जाकी आकृति महाघृणा उपजावै है मांसका स्पर्शन अर दुर्गंध अर नाम ही परिणाममें महाग्लानि उपजावै है जे धर्मरहित नरकादिकके जानेवाले महा निर्दय परिणामी होय ते मांस भक्षण करै हैं अर जो स्वयमेव मरे हुए वलद भैंसा अजा मृगादिकनिका मांस है ताके आश्रय अनन्त तो बादर निगोदिया जीव अर असंख्यात त्रसजीव तिनका घात होय है बहुरि कच्चा मांसमें अर अग्निकरि पक्या मांसमें अर जिस काल नीचैं अग्नि लाग करि सीझै है तिस काल पकता हुआ मांसमें हू अनत जीव निरन्तर उपजै हैं तैसी ही जातिका समय-समय उपजै हैं तातैं कच्चा मांस, पक्या हुआ मांस, वा पकता हुआ मांस, सूका हुआ मांसकूं जो जो खाय हैं तथा मांसकी डलीको स्पर्शन करै है ते मनुष्य निरन्तर संचय किया ऐसा बहुत जीवनिका घात करै हैं। बहुरि चांडालनिकी उच्छिष्ट कषायीनिकी म्लेच्छनिकी कूकरनि उच्छिष्ट तो मांस होय ही है मांस भक्षीनिके दया नाहीं आचार नाहीं जातिकुलधर्म दया क्षमादिक समस्त गुणनिकरि भ्रष्ट हैं। दुर्गतिगामी महापापी महानिर्दयीनिनैं मांस भक्षणकूं शास्त्रनिमें धर्म कह्या है। मांसकरि देवता तथा पितरनिकूं तृप्त होना कहैं देवतानिकूं मांसभक्षी कहैं श्राद्धनिमें ब्राह्मणनिकूं मांसपिंड भक्षण कराय देवनिकापितरनिका तृप्त होना कहै हैं सो ये समस्त मिथ्यादर्शनका प्रभाव है।

बहुरि मधु समान कोऊ अधम नाहीं मक्षिकानिका वमन भील चाण्डालनिकी उच्छिष्ट अनन्तजीवनिका स्थान है बहुत मक्षिकानिकूं मारि भील चांडाल ल्यावैं वा स्वयमेव मरै हैं तिनमें हू असं-

ख्यात त्रसजीवनिकी उत्पत्ति है याकूं पवित्र मानना पंचामृतनिमें कहना याकूं शुद्ध कहना इस समान विपरीत और नाहीं। शहद का एक कणमात्र हू जो औषधादिकनिके अर्थि ग्रहण करै हैं रोग के दूर करनेकूं भक्षण करै हैं सो नरकनिके घोर दुःख भोगि असंख्यात वा अनन्त जन्मनिमें अनेक रोगनिका पात्र होय है। मधु मद्य मांस नवनीत (मगवल) ये चार महाविकृति भगवानके परमागममें कहे हैं जो जिनधर्म ग्रहण करै सो मद्य माखन मांस मधु इन चार विकृतिनिका प्रथम ही परित्याग करै। इन चारनिकूं भगवान् महाविकृति कही है इनका परिहार विना धर्मका उपदेश का पात्र ही नाहीं होय है। धर्म है सो अहिंसारूप है ऐसैं जिनेन्द्रन की आज्ञा वारम्वार श्रवण करतेहू जो स्थावरनिकी हिंसाकूं छांडनेकूं असमर्थ हैं ते त्रस जीवनिकी हिंसाकूं तो शीघ्र ही छोडो। हिंसाका त्याग नव प्रकार करि है मनकरि हिंसा करै नाहीं अन्यकरि हिंसा करावै नाहीं, अन्य हिंसा करै ताकूं सराहै नाहीं ऐसैं ही वचनकरि हिंसा करै नाहीं, करावै नाहीं, करतेकूं प्रशंसा करै नाहीं। ऐसैं ही कायकरि हिंसा करै नाहीं, परकूं हिंसा करनेकूं प्रेरणा करै नाहीं, करनेवालेकूं प्रशंसा करै नाहीं। ऐसैं मनवचन-कायद्वारै कृतकारितअनुमोदनाकरि हिंसाकूं छांडै है तिसके औत्स-र्गिक त्याग कहिये उत्कृष्ट त्याग है। अर नव भङ्ग विना जो त्याग सो अपवादिकत्याग कहिये सो अनेक प्रकार है। या अहिंसाधर्म मोक्षको कारण अर समस्त संसारके परिभ्रमणका दुःखरूप रोगके मेटनेकूं अमृत समान पाय करके अज्ञानी मिथ्यादृष्टिनिका अयोग्य आचरण देखि अपने परिणाममें आकुल मत होहु। संसारमें कर्म

के प्रेरे अनेक प्रकारके जीव हैं। कई हिंसक हैं कई अभक्ष्य भक्षण करनेवाले हैं कई क्रोधी लोभी मानी मायावी महाआरम्भी महा-परिग्रही हैं अन्यायमार्गी हैं। तिनकी अनीति देखि अपने परिणाम मत बिगाडो कर्मके प्रेरे जीव आपा भूल रहे है आप तो साम्यभाव ही ग्रहण करो। कोऊ या कहै भगवानका धर्म सूक्ष्म हैं धर्मके अर्थि हिंसा होनेमें दोष नाहीं ऐसैं धर्ममूढ़ होय करिकै प्राणीनिकी हिंसा नाहीं करिये। वहुरि जो देवके निमित्त गुरुके कार्य करनेके निमित्त करी हुई हिंसा हू शभ नाहीं है हिंसा तो पाप ही है। धर्म तो दयारूप है। जो देव गुरुके कार्य करनेके निमित्त हिंसाका आरम्भ ही धर्म होय तो हिंसारहित धर्म है ऐसा जिनेन्द्रका वाक्य असत्य हो जाय यातैं हिंसाकूं धर्म॰ कदाचित् श्रद्धान मत करो। कोऊ कहै धर्म तो देवतानितैं होय है, देवतानिके निमित्त समस्त देना योग्य है ऐसी विपरीत बुद्धिकरि प्राणीनिकी हिंसा करना योग्य नाहीं। वहुरि केतेक कहै हैं देवी कहिये कात्यायनी चंडिका भवानी दुर्गा पार्वती इत्यादिक नाम करिके प्रसिद्ध हैं ताके वकरा तथा भैंसा मारि चढ़ाइये या भवानी इनतैं ही प्रसन्न है सो मिथ्यादृष्टिनिके वाक्यतैं चलायमान नाहीं होना। एक तो यह विचार करो जो देवी जीवनिका मांसकूं भोगना चाहै हैं तो आप अनेक भुजानिमें शस्त्रधारण करि भौंह वक्र करि खड़ी हैं आप ही जीवनिकूं मारि करि भक्षण क्यों नाहीं करै है ? अपने भक्तनितैं दीन अनाथ जीवनिकूं भयभीतनिकूं क्यों मरावै है ? आप ही सिंह व्याघ्रादिक ज्यों सिंहादिकानै मारि क्यों नाहीं भक्षण करै है ? और आप देवता होय करि ह

कागला कूकरा भील चांडालकी ज्यों मांस भक्षणमें रत हैं क्षुधातुर हैं, दुःखी हैं ताकै काहेका देवपना ? जो आप ही दुःखी आसक्त सो भक्तनिकूं कैसें सुखी करैगा ? महादुर्गन्ध तिर्यञ्चनिके दुर्गन्धमय घृणा देनेवाला मांसका इच्छक महापापीनिके देवपना नाहीं होय है। पापीनिनै झूठे शास्त्र वनाय आपके मांस भक्षण करनेकूं अर मूढलोकनिकूं देवीनिका प्रसादके संकल्पतै मांस भक्षणमें प्रवृत्ति कराय जगतके जीवनिकूं अपनी इन्द्रियनिके पुष्ट करनेकूं नरकमें डवोवै हैं। जिनेन्द्रके परमागममें तो भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, कल्पवासी चार प्रकारके देवनिकै कवलाहार नाहीं है मानसीक आहार कह्या है। कोऊ कालमें इच्छा उपजते प्रमाण अपने कण्ठ हीमें अमृत झरै है तिसकरि लेशमात्र क्षुधावेदना रहै नाहीं। तिनकै दिव्य वैक्रियिक देह सात धातु उपधातुरहित महादिव्यरूप सुगन्ध शरीर है। देवनिकैं मांस भक्षण कहना महाविपरीत बुद्धि है। जो देवता मांसभक्षी है तो कागला कूकरा गीध स्यालतैं हू देवता नीच ठहरया तातैं देवताके अर्थि हिंसा करना योग्य नाहीं अर कोऊ मांसभक्षी गुरुके अर्थि मांसका दान मत करो। जो पापी मांसादिक अभक्ष्य भक्षण करै मदिरा पीवै वह पापी काहेका गुरु ? वो तो मांसादिक भक्षण कराय नरक पोहचावनेका गुरु है। ताके स्पर्शनेतैं देखनेतैं घोरपाप का वन्ध होय है। बहुरि कोऊ कहै अन्नादिकके भक्षणमें तो बहुत जीवनिका घात है तातै एक जीवकूँ मारि भक्षण करना श्रेष्ठ है ऐसा विचार करि बडा प्राणीकूं मारि खावना योग्य नाहीं जातैं एकेन्द्रिय प्रत्येक वनस्पति पृथ्वी, जल, अग्नि पवन समस्त त्रैलोक

मे भरे हुए समस्त विकलत्रय अर समस्त देव मनुष्य तिर्यंच इन समस्तनिकूं इकट्ठा करि गिणिये तो समस्त असंख्यात परिमाण हैं अर मनुष्य तिर्यंचनिके मांसका एक कणामें एते वादर निगोदिया जीव हैं जो त्रैलोक्यके एकेन्द्री वेन्द्री तेइन्द्री चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय समस्त मनुष्य तिर्यंच देव नारकीनितैं अनन्तगुणा भगवान् सर्वज्ञ देखि परमागममें कह्या है तातै अन्न जलादिक असंख्यात वरस भक्षण करै तिसमे जो एकेन्द्रीकी हिंसा होय तातै अनन्तगुणे जीवनिकी हिंसा सूईकी अणीमात्र मांसके भक्षण करनेमें है। बहुरि एकेन्द्रीकी हिंसा अर त्रसहिंसा बराबर नाहीं है दुःखमें हू वडा अन्तर है। ज्ञानमें वडा अन्तर है। एकेन्द्रीका शरीर रस रुधिर हाड मांस चामादिक धातुकरिरहित है अर मांस भक्षणमें तीव्र परिणाम तीव्र निर्दयपना है तैसा अन्नके भक्षणमे नाहीं है। जैसे अपनी स्त्रीकूं स्पर्श करनेमें अर अपनी पुत्रीके माताके स्पर्श करनेमें परिणाम कैसैं समान होय, वड़ा अन्तर है तातैं बहुत कहनेकरि कहा त्रसजीवका घातकरना घोरपाप जानना।

बहुरि ऐसी आशंका हू मत करो जो यह सिंह व्याघ्र सर्पादिक बहुत प्राणीनिका घातक हैं इनकूं मारे बहुत जीवनिकी रक्षा होयगी ऐसी मिथ्याबुद्धिकरि हिंसक जीवनिकी हिंसा हू मत करो। जातैं कौन कौन हिंसककूं मारोगे? चिड़ी कागला सूवा मैना तीतर इत्यादिक समस्त पक्षी हिंसक हैं तथा कीडा कीडी लट मकडी माखी सर्प बीछू इत्यादिक तथा ऊंदरा कूतरा बिलाव स्याल सिंह अनेक तिर्यंच मनुष्यादिक समस्त जीव पापकर्मके सन्तापतैं हिंसक ही हैं। तुम कौन कौनकी हिंसा करोगे? और तुम्हारे

हिंसक जीवनिके मारनेका विचार भया तब तुम समस्त हिंसकनि के घातकरनेवाले महाहिंसक भये। तुम्हारे समान पापी कौन रह्या तातैं हिंसक जीवनिकी हिंसाके परिणाम कदाचित् मत करो। हिंसक कौननै किया? पूर्वै उपजाये अपने कर्मके आधीन समस्त जीव उपजै है पापका सन्तान अनन्तकालतैं चल्या आया है कौन दूरि करि सकै। पापी जीव कौननै किया पुण्यवान कोननै किया? समस्त कर्मकी विचित्रता है। कालके प्रभावतैं पापी जीवनिको पापके फल देनेकूं अनेक पापी जीव उपजै हैं कौन दूरि करनेकूं समर्थ है तातैं दयावान होय समस्त जीवनिकी करुणा ही करो। बहुरि ऐसा विचार ही मत करो जो यो बहुत जीवैगा तो पापका बन्ध करैगा जो इस पापरूप पर्यायतैं छूटि जाय तो याकै बहुत पापका बन्ध नाहीं होय ऐसी करुणा करकै हू पापी जीवनिकूं मत मारो जातैं तुम तो समस्तकी दया ही करो। बहुरि ये जीव बहुत दुःख करि पीडित है जो मरण करि जाय तो शीघ्र ही दुःखसौं छूटि जाय सो ऐसा मिथ्या विचार हू मत करो जातैं मरण करि जो जायगा तो वर्त्तमानकी पर्याय ही छूटैगी असाता कर्म नाहीं छूटैगा जो यहांतैं छूटि अन्य पर्याय तिर्यंच नरक मनुष्यादिक पावैगा तहां बहुतगुणा रोग दरिद्र प्राप्त होयगा बहुत काल दुःख भोगैगा बहुत कहने करि कहा है जो कदाचित् सूर्यका उदय पश्चिम दिशामें हो जाय अग्नि शीतल हो जाय, चन्द्रमाकी किरण उष्ण हो जाय अर सूर्यका आताप शीतल हो जाय और समस्त पृथ्वी जगतके ऊपरि हो जाय अर पाषाणमय भारी गोला जलतैं तिर जाय अर अग्निमें कमल उपजि जाय अर सूर्यकू अस्त होतैं

दिनका प्रारम्भ हो जाय,सर्पका मुखमें अमृत हो जाय,कलहतैं यश हो जाय, अजीर्णतैं रोग नष्ट हो जाय, कालकूट जहरके भक्षणतैं जीवना वधि जाय,विवादतै प्रीति वधि जाय तो हू हिंसातैं तो धर्म नाहीं उपजैगा जगतमें एते नाहीं होने योग्य कार्य हो जांय तो हो- हू परन्तु हिंसाके परिणामतैं तो कोऊ देश कोऊ कालमें धर्म नाहीं हुआ, नाहीं होय है अर नाहीं होयगा।अव यहां कोऊ आशंका करै जो गृहस्थ जिन मन्दिर करावै है उपकरण करावै है जिन पूजा करै है इनमें हू आरम्भ ही है अर आरम्भ है तहां हिंसा होय ही तातै जिन मन्दिरादिक वनवानेमें धर्म कैसैं सम्भवै है ? ताकूं उत्तर कहिये है जो गृहस्थ आरम्भादिकका त्यागी है अर जाका परिणाम वीतरागतारूप होय धनका उपार्जनादिकसूं विरक्त होयगा ताकूं मन्दिरादिक वनवाना योग्य नाहीं अर जाका राग धर्न परिग्रहसूं आरम्भसूं घट्या नाहीं अभिमान घट्या नाहीं अपनी जाति कुलादिकमें ऊंचे होनेके अर्थिअभिमानतैं विख्यातता अर्थि अपने भोगनिके अर्थि हवेली महल चित्रशालादिक वनावै है, वाग वनावै है, अनेक अपने विहार करनेके स्थान वनावै है संन्तानादिकाके विवाहादिकमें बहुत धन लगावै है जाति कुल नगर निवासिनिकूं जिमावै है तिनिकूं कोऊ धर्मात्मा शिक्षा करै है जो तुम्हारा राग आरम्भादिकतैं नाहीं घट्या तो ये केवल पापवन्धके कारण अभिमानादिक पुष्ट करने वाले पापके आरम्भ- निकूं त्यागकरि जिनमन्दिर वनवानेका आरम्भ करो जिसके प्रभा वतैं तुम्हारा अशुभराग घटि जाय अर आगेकूं तुम्हारे परिणाम वीतरागके सम्मुख होजाय अर अहिंसाधर्मका प्रवर्तन वधि जाय

अनेक जीव स्वाध्यायकरि शास्त्र श्रवणकरि वीतरागका दर्शन भावना पापाचारका रोकना, शील संयम ध्यानकी वृद्धि करना इत्यादिक उत्तम कार्य करि धर्मकी वृद्धि करैं। जिनमन्दिर है सो अहिंसाधर्मका आयतन है जिनमन्दिरका निमित्तासूं अनेक जीवपापाचार-छांडि जिनमंदिरमें आवै तदि जिनधर्मके शास्त्रश्रवण करैं तदि-अपना अर परद्रव्यनिका भेदविज्ञान उपजै तदि मिथ्यादेव मिथ्या-गुरु मिथ्याधमकी उपासना छांडि सर्वज्ञ वीतरागके धर्ममे प्रवर्तन करैं तदि हिंसादिक पापनितैं सप्तव्यसनतैं अन्यायतैं अभक्ष्यतैं विरक्त होय वीतरागके ध्यानमें, पूजनमें, कायोत्सर्गमे, सामायिकमें, संयममें उपवास शील संयम दान व्रत प्रभावनामे लीन होंय मोक्षमार्गमे प्रवर्तन करैं तातै ऐसा निश्चय जानहु जिनमन्दिरका निमित्त विना मोक्षमार्ग नाहीं प्रवर्तै तातें जा पुरुषनै जिनमन्दिर कराया सो वहुत जीवनिका उपकार किया। वहुरि आपका हू बड़ा उपकार है आप करावनेवालेका परिणाम सुलटे मार्गमें लगिजाय हैं जो मैं जिनेन्द्र वीतरागका मंदिर कराया है अब जो मैं अन्याय मार्ग चलूंगा तो जगतमें निंद्य हो जाऊँगा। मैं अभक्ष्य भक्षण कैसैं करूं झूठ कैसैं बोलूं, व्यसननिमें प्रवृत्ति कैसैं करूं, कलह करना गालीदेना लोकनिंद्यकर्म करना ये अयोग्य दुराचार तो लोकलाजतैं ही अति दूर जाता रहै है अर परिणाम ऐसा होजाय जो मन्दिरमें मैं मन्दिर करानेवाला ही प्रवर्तन नाहीं करूंगा तो और कौन प्रवर्तैगा ऐसा विचार करि अभिषेकमें, जिनपूजनमें शास्त्रश्रवणमें जापमें व्रतमें जागरण भजनमें प्रवर्तन लगिजाय तदि आपके धर्ममें अतिप्रीति बधि जाय शास्त्रके वाचनेवालेनितैं शास्त्र-

श्रवण करनेवालेनितैं धर्ममे प्रीति करनेवाले साधर्मीनिसूं सिद्धांत की चर्चा कथनी करनेवालेनिमें अनुराग बधता चल्या जाय पढ़नेवालेनिसू अतिहर्ष बधै। बहुरि आज मन्दिरमे पूजन कौन कौन किया दर्शनमें कौन कौन आवै है यहाँ व्याख्यानमें कौन २ बैठे हैं आज उपवासवाले केतेक हैं अबकै बेला तेला कौन कौन किया प्रोषधोपवासवाले केतेक हैं जागरणमें केतेक लोग लुगाई प्रवर्तै है भजन गान बहुत सुन्दर भये ऐसैं धर्मकी प्रवृत्ति देखि बहुत आनन्द बधै समस्त साधर्मीनिमें वात्सल्यता दिन २ बधै अर हजारां लोग लुगाईनिमे प्रभाव जैसै २ प्रगट होय तैसै २ धर्मानुराग बधता चल्या जाय। बहुरि गृहचारका नुकता व्योहार विवाह करना, वस्त्र बनावना, आभरण बनावना, अपने रहनेका जायगामें मकान बनावना, चित्राम करावना सुवर्ण लगावना इत्यादि रागके बधावनेवाले पाप कार्यनिमे तो प्रीति घटि जाय है जो इनकरि कहा प्रयोजन है कौनकूं दिखावना है पापका कारण है निंद्य है ऐसा विराग आजाय है लज्जा आजाय जो पाप कार्यकूं कहा दिखाऊं ? जो एता धन मन्दिरमें लगाऊं तो बहुत जीवनिकै बहुत कालपर्यंत धर्ममें अनुराग बधै ऐसा विचार जो धन लगावै सो मन्दिरके उपकरणनिमें सिंहासन छत्र चामर भामण्डल घण्टा ठोणा कलश तथा थाल रकाबी झारी धूपदहनादिक समवशरणादि अनेक उपकरण सुवर्ण रूपाके कांसेके पीतलके उपकरणनिमें धन लगाय आपकै धर्मात्माजननिकै धर्ममें अनुराग बधावै तथा गदेला चांदनी पडदा सायवान इत्यादिकनिकरि साधर्मी धर्मसेवन करनेवालेनिका बडा वैयावृत्त होय है तथा विवाहादिकमें लगाया धनतैं

ऐसी कीर्ति उपजना प्रकट नाहीं होय जैसा मन्दिर करानेवालेका बहुत कालपर्यन्त कीर्ति (यश) प्रकट होजाय अपने देशके समस्त लोक पूजन प्रभावना दर्शन धर्मश्रवण करि महान पुण्य उपार्जन करैं है।

यहां कोऊ कहै मन्दिर करावना उपकरण कराय जिन-मन्दिरमें मेलना अपना अर अन्यका उपकार तो करैं हैं परन्तु मन्दिर करावनेमें छहकायके जीवनिकी हिंसा तो धर्मके घात करनेवाली होय ही है।

ऐसैं कहनेवालेकूं उत्तर करिए है--यामें हिंसा नाहीं होय है हिंसा तो अपना जीवघात करनेका परिणाम होयगा तदि होयगी। मन्दिर करानेवालेके हिंसा करनेका परिणाम नाहीं है अहिंसा-धर्ममें प्रवृत्ति करनेका परिणाम है जैसे मुनीश्वरनिकूं यत्नाचातैं आहार देता गृहस्थके हिंसा नाहीं तथा जैसैं साधुनिकी बन्दनाके अर्थि वा धर्मश्रवणके अर्थि गमन करता गृहस्थके हिंसा नाहीं होय है तथा जैसैं नित्य विहार करता ईर्यापथ सोधि गमन करता मुनीश्वरनिके हिंसा नाहीं है तथा मुनीश्वर नित्य उपदेश करै हैं गमन करै हैं शयन करै हैं उठे हैं बैठे हैं आहार करै है निहार करै हैं वन्दना करैं कायोत्सर्ग करै हैं तीर्थ वंदना गुरुवंदनाकूं जाय हैं तिन कार्यनिमें हिंसक परिणाम विना जीवकी विराधना होते हू हिंसा नाहीं है जीवनि करि तो समस्त धरती आकाश समस्त वस्तु भरया है परन्तु कषायके वशि होय दयाभाव रहित होय प्रवर्तन करैगा तिसकै जीव मरो वा मत, हिंसा ही है। जातैं अपना परिणाममें दया नाहीं। हिंसा भाव अर अहिंसाभाव तो जीवके

परिणाम है बाह्यमें जीवका घात अघातके आधीन नाहीं सो पूर्वे बहुत वर्णन किया है। अब यहां मन्दिर बनावनेवालेका परिणाम विचारो जाकूं हवेली बनावनेमें बाग बनावनेमें कुआ बावड़ी बनावनेमें महाहिंसा दीखै है अर जिसकै लाभ घट्या है धनसूं ममता टूटी है पापतैं भयभीत भया है सो मन्दिर करावै है। पहले गृहस्थकै व्यापारनिमें तो प्रवर्तनि करैं था तदि दयाधर्मकूं याद हू नाहीं करैं था अब सब काममें धर्महीसूं परिणाम जोड़ै है जो यत्नसूं करो यो मन्दिरको काम है जल दोहरा नातणासूं छान छान लगावै है। कली चूना तगार दो दिन सिवाय नाहीं राखै दो दिनमें उठावनेमें यत्न करै है अर उठावना मेलना धरना इनमें अपना परिणाम तो यही राखै है जो यत्नसूं करो विराधनाकूं टालो। इत्यादिक कार्यनिमें हिंसाका परिणाम तो नाहीं करै है अपना परिणाम तो धर्मके आयतन बनावनेका है जो धर्मका स्थान बनि जायगा तो यामें अखण्ड अहिंसाधर्म प्रवर्तैगा अर यो मन्दिर है सो महान धर्मको आयतन है गृहसम्बन्धी बहुत हिंसा आरम्भ घटाय परिणामनिमें दयारूप प्रवर्तनमें यत्न किया है मन्दिरमें पग धरतां प्रमाण ईर्यापथ सोधि चालो यो मन्दिर है मत विराधना हो जाओ। मन्दिरमें प्रवेश किये पीछें जैनीनिकै इतने त्याग तो विना करै ही है—भोजनका त्याग जलपानका त्याग विकथाका त्याग गालीका त्याग शयनका त्याग पवनलेनेका त्याग वनज करनेका त्याग इत्यादिक पापवन्धके कारण समस्त दुराचारका त्याग होय है तातैं जिनमन्दिर तो समस्त प्रकार अहिंसा धर्महीका प्रवर्तक जानना जामें आरम्भ

विषय कषायनिका त्याग करनेकी ही महिमा है ।

ऐसै मांसादिकका त्यागरूप मूलगुण कहि अब तीन प्रकार गुणव्रत कहनेकूं सूत्र कहै है—

दिग्व्रतमनर्थदण्डव्रतं च भोगोपभोगपरिमाणं ।
अनुबृंहणाद्गुणानामाख्यान्ति गुणव्रतान्यार्याः ॥६७॥

अर्थ—आर्य जे भगवान गणधरदेव है ते दिग्व्रत अनर्थदंडव्रत भोगोपभोगपरिमाण ये तीन व्रत है ते तिन अणुव्रतनिकूं गुणकार रूप बधावनेतैं गुणव्रत कहै हैं। दश दिशानिमें गमन करनेकी मर्यादा करना सो दिग्व्रत है ॥१॥ अर जिनतैं कुछ कार्य तो सधै नाहीं अर जिनतै सासतो पाप होय बिना प्रयोजन दण्ड भुगतना पड़ै सो अनर्थदण्ड है, अनर्थदण्डनिका त्याग सो अनर्थदण्डविरति नाम का गुणव्रत है ॥२॥ अर एक बार भोगनेमें आवै सो भोग अर बारम्बार भोगनेमें आवै सो उपभोग कहिये है, भोग उपभोगनिका परिमाण करना सो भोगोपभोगपरिमाणव्रत है ॥३॥

अब दिग्व्रत नाम गुणव्रतका स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

दिग्वलयं परिगणितं कृत्वातोऽहं बहिर्न यास्यामि ।
इति संकल्पो दिग्व्रतमामृत्यणुपापविनिवृत्त्यै ॥६८॥

अर्थ—दश दिशानिका समूहमें परिमाण करिकैं अर परिमाण करी तातै बाहर में नाहीं गमन करूंगा अणुमात्र हू पापतै निवृत्ति के अर्थि, इसप्रकार मरणपर्यंत संकल्प करना सो दिग्व्रत नाम गुणव्रत है ।

भावार्थ—गृहस्थ है सो अपना प्रयोजन जानै जो हमारे इस दिशामें एता क्षेत्रतैं अधिक बनज ब्योहारका प्रयोजन नाहीं तथा

इस दिशामें एता क्षेत्र सिवाय मोकूं व्यौहार नाहीं करना लोभ-नाशके अर्थि अहिंसाधर्मकी वृद्धिके अर्थि ऐसा विचार करि मरण-पर्यंत दश दिशानिमें मर्यादा करि बाहर जावनेका कोऊको बुलावनेका भेजनेका वस्तु मंगावनेका त्याग करि लोभकूं जीतना सो दिग्व्रत नाम गुणव्रत है।

अब दश दिशानिकी मर्यादा कौन परिमाणतैं करिये याकैं सूत्र कहै हैं—

मकराकरसरिदटवीगिरिजनपदयोजनानि मर्यादाः।
प्राहुर्दिशां दशानां प्रतिसंहारे प्रसिद्धानि ॥६९॥

अर्थ—दश दिशानिकी मर्यादारूप संकोचविषै प्रसिद्ध विख्यात मर्यादा परमागमविषै समुद्र नदी पर्वत वन देश योजन कहे हैं। मरणपर्यंत मर्यादावाह्यक्षेत्रमे गमनागमनादि नाहीं करै समुद्रादिक लोकविख्यात चिन्हतैं मर्यादा करै।

अब दश दिशाकी मर्यादा धारण करनेवालेकै कहा होय सो कहै हैं—

अवधेर्बहिरणुपापं प्रतिविरतेर्दिग्व्रतानि धारयताम्।
पञ्चमहाव्रतपरिणतिमणुव्रतानि प्रपद्यन्ते ॥७०॥

अर्थ—दिग्व्रतनिनै धारण करते गृहस्थनिकै मर्यादा बाहर अणुमात्र हू पापप्रवृत्तिकी विरक्ततातैं अणुव्रत हैं ते ही पंच महाव्रतनिकी परणतिकूं प्राप्त होय है।

भावार्थ—जो गृहस्थ दश दिशानिकी मर्यादा करिकैं रहै हैं ताकै मर्यादामांहि तो अणुव्रत रह्या अर मर्यादावाहर समस्त त्रसस्थावरनिकी हिंसादिक पंच पापनिके त्यागतैं अणुव्रत ही महाव्रतपनाकी परणतिकूं प्राप्त होय हैं।

अब या कहै हैं जो सम्बर कियो तितना क्षेत्र बाहर अणुव्रत हैं ते महाव्रतकी परिणतिकूं प्राप्त होना ही कैसैं कहो हो ? मर्यादा बाहर साक्षात् महाव्रती कहो, ताकूं उत्तर करनेरूप सूत्र कहै हैं—

प्रत्याख्यानतनुत्वान्मन्दतराश्चरणमोहपरिणामाः ।
सत्त्वेन दुरवधारा महाव्रताय प्रकल्प्यन्ते ॥७१॥

अर्थ—अणुव्रती गृहस्थकै सकलसंयमका विरोधी जो प्रत्याख्यानावरणका उदयका मन्दपनातैं मन्दतर चारित्र मोहका परिणाम सत्त्वेन दुरवधारा कहिये अस्तिपनाकरि महाकष्टकरिकै हू धारण नाहीं किया जाय तातैं महाव्रतके अर्थि कलपना करिये है।

भावार्थ—जाकै चारित्रमोहकर्मकै मन्दउदयका परिणाम संज्वलनकषायरूप होय ताकै तिसकालमें महाव्रत होय हैं अर गृहस्थ देशव्रतीकै प्रत्याख्यानावरण उदय विद्यमान है तातैं संज्वलन कषायका मन्दउदयरूप परिणामकष्टतैं हू होना दुर्लभ है तातैं समस्त पापनिका त्याग होते हू महाव्रत नाहीं होय है। महाव्रतकी कल्पना ही करिये है। महाव्रत तो प्रत्याख्यानावरण कषायका उदयका अभाव तैं होय है।

अब महाव्रत कैसै होय सो कहै हैं—

पञ्चानां पापानां हिंसादीनां मनोवचःकायैः ।
कृतकारितानुमोदैस्त्यागस्तु महाव्रतं महतां ॥७२॥

अर्थ—हिंसादि पंच पापनिका मनवचनकायकरि कृतकारित-अनुमोदनाकरि त्याग सो महन्त पुरुषनिके महाव्रत होय हैं।

अब दिग्व्रतके पंच अतीचार कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपाताः क्षेत्रवृद्धिरवधीनां ।
विस्मरणं दिग्विरतेरत्याशाः पञ्च मन्यन्ते ॥७३॥

अर्थ—दिशानिकी मर्यादा करी तिनमें अज्ञानतैं वा प्रमादतैं

पर्वतादिक ऊपरि चढावना सो ऊर्द्ध्वातिपात अतीचार है। कूप बावडी इत्यादिकनिमें नीचैं उतरवो सो अधः अतिक्रम है। तिर्यक् गुफादिकनिमें प्रवेश करना सो तिर्यग्व्यतिक्रम है। बहुरि क्षेत्र बधाय लेना सो क्षेत्रवृद्धि अतीचार है। त्याग किया तिसका विस्मरण हो जाना सो विस्मरण नाम अतीचार है। ये दिग्व्रतके पंच अतीचार हैं।

अब अनर्थदण्डत्यागव्रत कहनेकूं अष्ट सूत्र कहै हैं—

अभ्यन्तरं दिगवधेरपार्थकेभ्यः सपापयोगेभ्यः।
विरमणमनर्थदण्डव्रतं विदुर्व्रतधराग्रण्यः ॥७४॥

अर्थ—आप जो दिशानिकी मर्यादा करी ताके मांहि वृथा जे मनवचनकायके योगनिकी प्रवृत्ति तिनतैं विरक्त होना ताहि व्रतधरनिमें अग्रणी जे भगवान ते अनर्थदण्डव्रत कहै हैं—

भावार्थ—मर्यादा करि लीनी तहां हू ऐसा कर्म करै जातैं अपना प्रयोजन हू नाहीं सधै अर वृथा पापका बन्ध होय दण्ड भुगवना पड़ै सो अनर्थदण्ड है सो अनर्थदण्ड त्यागने योग्य है जातैं जिसके करनेतैं अपना विषयभोग हू नाहीं सधै कुछ लाभ हू नाहीं होय यश हू नाहीं होय धर्म हू नाहीं होय अर पापका बन्ध निरन्तर होय जाका फल कडवा दुर्गतिनिमें भोगना पड़ै सो अनर्थदण्ड त्यागने ही योग्य है।

अब अनर्थदण्ड पांच प्रकार है तिनकूं कहै हैं—

पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः पंच।
प्राहुः प्रमादचर्यामनर्थदण्डानदण्डधराः ॥७५॥

अर्थ—पापका उपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति, प्रमादचर्या ए पंच अनर्थदण्ड है तिननै अदण्डधर जे गणधर देव हैं ते कहैं हैं।

भावार्थ—अशुभ मन वचन कायके योग तिनकूं दण्ड कहिये है, जातै समस्त जीवनिकूं अपने अपने अशुभ मनवचनकायके योग ही दुर्गतिनिमें नानाप्रकार दंड दे हैं तातै अशुभ मनवचनकायकूं दंड कहिये, ताकूं अदंडधर जे अशुभ योगनिकूं नाहीं धारैं ऐसे गणधरदेव है ते पांच प्रकार अनर्थदंड कह्या है। पापका उपदेश देना सो पापोपदेश ॥ १ ॥, हिंसाके उपकरणनिका दान सो हिंसादान ॥ २ ॥, खोटा ध्यान सो अपध्यान ॥३॥, खोटा श्रवण करना सो दुःश्रुति ॥ ४ ॥, प्रमादरूप चर्या करणा सो प्रमादचर्या ॥ ५ ॥ ऐसें पंच प्रकार अनर्थदंड हैं।

पापोपदेश नाम अनर्थदंड कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

तिर्य्यक्क्लेशवणिज्याहिंसारम्भप्रलम्भनादीनाम् ।
प्रसवः कथाप्रसंगः स्मर्तव्यः पाप उपदेशः ॥ ७६ ॥

अर्थ—जे तिर्यचनिके क्लेश उपजनेकी तथा बनज कहिये बेचनेकी खरीदनेकी अर हिंसाकी अर आरम्भ की अर प्रलंभ कहिये कपप ठगपनाकी इत्यादिक पाप उपजनेकी कथामें बारम्बार प्रवृत्तिरूप उपदेश करनेतैं पापोपदेश नामा अनर्थदंड है।

भावार्थ—तिर्यंचनिकूं मारनेका, डाहनेका, दृढ़ बांधनेका मर्मस्थानमें पीड़ा करनेका, बहुत बोझ लादनेका, वाधी करनेका नाशिका फोड़नेका, तिर्यचनिको पकडनेका पिंजरेनिमें रोकनेका जो उप-

देश सो तिर्यक्क्लेश नाम पापोपदेश है, तथा अनेक वस्तुनिमें पाप उपजानेवाला वनजका उपदेश तथा जिनतैं छहकायके जीवनिकी हिंसा होय ऐसा उपदेश सो हिंसोपदेश है, अर बाग बनावना जायगा वनावना विवाह करना इत्यादि पापके आरम्भका उपदेश सो आरम्भोपदेश, अर कपट छल करनेका उपदेश सो प्रलंभनोपदेश है, अनेक प्रकार पापरूप उपदेशकी कथा करना, पापमें प्रेरणा करना, सो पापोपदेश नाम अनर्थदण्ड है।

अब हिंसादान नामा दूजा अनर्थदंड कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

परशुकृपाणखनित्रज्वलनायुधशृङ्गिशृङ्खलादीनां ।
वधहेतूनां दानं हिंसादानं ब्रुवन्ति बुधाः ॥ ७७ ॥

अर्थ—हिंसाका कारण जे फरसी खड्ग कुदाल अग्नि आयुध विष वेडी साँकल इत्यादिकनिका दान ताहि ज्ञानी हैं ते हिंसादान नाम अनर्थदण्ड कहै हैं। जिनतैं हिंसा ही उपजै ऐसी वस्तुका अन्यकूं देना फावड़ा कुदाल खुरपा कुशि हथोड़ा तरवार छुरी कटारी तमंचा भाला बाण धनुष बन्दूक तोप दारू गोला गोली, चाबुक, दांतला, दतीला, वेड़ी, सांकल, जहर, अग्नि इत्यादिक वस्तुकूं दान करना, मांगी देना, वेचना, भाड़ै देना सो समस्त हिंसादान नाम अनर्थदण्ड है

अब अपध्यान नामा अनर्थदंडकूं सूत्र कहै हैं—

वधबन्धच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः ।
आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः ॥ ७८ ॥

अर्थ—जो वैरतैं वा अपने विषय साधनेके रागतैं परकी स्त्री

पुत्रादिकनिका वन्धन मारण वा छेदनादिका चिंतवन ताहि जिनशासनविषै प्रवीण हैं ते अपध्याननामा अनर्थदण्ड कहै हैं ।

भावार्थ—जाकै रागद्वेषतैं ऐसा परिणाममें चिंतवन रहै जो याका पुत्र मर जाय, याकी स्त्री मरजाय, याकै दण्ड हो जाय, याका हस्त नाक कर्ण छेद्या जाय, याका धन लुट जाय, याकी आजीविका नष्ट हो जाय, याकी इन्द्रियां नष्ट हो जाय, याका लोकमें अपवाद होजाय, यो स्थानभ्रष्ट हो जांय, बुद्धि भ्रष्ट होजाय ऐसा चिंतवन वारंवार करै ऐसैं अन्यके दुःख आपदा चाहना अपने कुछ लाभादिक होय नाहीं आपका चिंतवनतैं कुछ होय नाहीं अपने वृथा महापापका वंध होय अन्यका बुरा भला आपका पापपुण्यके अनुकूल होय है वृथा दुर्ध्यान करै ताकै अपध्यान नामा अनर्थदंड कहिये है।

अव दुःश्रुति नामा अनर्थदंड कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

आरंभसंगसाहसमिथ्यात्वद्वेषरागदमदमनैः ।
चेतःकलुषयतां श्रुतिवरधीनां दुःश्रुतिर्भवति ॥७९॥

अर्थ—आरम्भ कहिये असि मसि कृषि विद्या वाणिज्य शिल्प अर संग कहिये धन धान्यादिक परिग्रह अर साहस कहिये आश्चर्यकारी वीरकर्मादिक अर मिथ्यात्व कहिये ब्रह्माद्वैत ज्ञानाद्वैत क्षणिक याज्ञिकादिक विरुद्ध अर्थका प्रतिपादक शास्त्र अरु राग कहिये आसक्तता, द्वेष कहिये वैर, अष्ट मद अर कामवेदना कृत विकार इनकरि चित्तकूं कलुषित करने वाले ऐसे अवधि जे शास्त्र तिनको जो श्रवण सो दुःश्रुति नामा अनर्थदण्ड है।

भावार्थ—जो मिथ्यात्व राग द्वेषका उपजानेवाला पदार्थनिका विपर्यय स्वरूप ग्रहण करानेवाला शास्त्रका, विकथाका, शृंगार वीर हास्यका प्ररूपक तथा मारण उच्चाटन वशीकरण कामका उत्पादक शास्त्रनिका श्रवण करना तथा जांगलिक सर्पनिका भूतनिका रसकर्म इन्द्रजाल रसायण मायाचारादिके प्ररूपक यज्ञादिक हिंसाके प्ररूपक दुष्टशास्त्र दुष्टकथा दुष्टराग दुष्टचेष्टा दुष्टक्रिया दुष्ट कर्मनिका श्रवण करना सो दु:श्रुतिनामा अनर्थदण्ड है।

अब प्रमादचर्या नाम अनर्थदण्डकूं कहै हैं—

क्षितिसलिलदहनपवनारम्भं विफलं वनस्पतिच्छेदं।
सरणं सारणमपि च प्रमादचर्यां प्रभाषन्ते ॥८०॥

अर्थ—पृथ्वी खोदनेका, पाषाणादिक फोड़ने का आरम्भ, जलपटकनेका सींचनेका छिड़कनेका जल विलोवनेका अवगाह करनेका आरम्भ, विना प्रयोजन अग्नि बधावनेका वालनेका बुझावनेका दाबनेका आरम्भ, पवन घालनेका पवनके यंत्र रोकने का अग्निमें धमनेका वृथा आरम्भ, तथा प्रयोजन विना वनस्पतिका छेदना तथा विना प्रयोजन गमनकरना, विना प्रयोजन गमन करावना ते समस्त प्रमादचर्या नामा अनर्थदण्ड कह्या है। यहां ऐसा विशेष जानना, गृहस्थके गृहाचारमें अनेक पापहीके आचरण हैं जो गृहाचारीके पापतैं निराला नाहीं हुआ जाय तो जिनसूं कुछ प्रयोजन तुम्हारा सिद्ध नाहीं होय ऐसैं विना प्रयोजन पापबन्धका कारण जिनका फल दुर्गतिनिमे असंख्यातकाल अनंतकाल दु:ख भोगो ऐसे निंद्यकर्म तो छोड़ो जो उत्तम कुलमे जिनेन्द्रको उपदेश उत्तमधर्म अतिदुर्लभ पायो है तो विना प्रयोजनके

पाप बंधतै भयभीत होना योग्य है पशुकी ज्यों जन्म वृथा मत व्यतीत करो आपका घरका पापतैं नाहीं छूट्या जाय तो अन्यकूं ऐसा पापका उपदेश मत करो, गृह जायगा बणावनेमें महाहिंसा होय है, यातैं गृह बनावनेका, जायगा धवल करावनेका जायगाकी मरम्मत करावनेका बागबगीचा बनावनेका रोडीखुदावनेका गली खुदावनेका, कुआ बावड़ी बनवानेका, तालाब खुदवानेका, जल-निकासनेका तालावकी पाल बंधावनेका तालाबकी पाल फुड़ावनेका नदीकी पाल बंधावनेका, बना हुआ मकान गृह ढहावनेका, बाग बगीचा ढहावनेका, वृक्ष कटावनेका, बनकटी करावने, कोयला बनावनेका, घास खुदावनेका, दाहलगावनेका, मिथ्या देवनिका मकान बनावनेका, मिथ्या देवतानिका मन्दिर तथा मूर्तिका बिगा-ड़नेका, खेती करनेका, सुन्दर मकानकूं मलीन करनेका कदाचित् उपदेश मत करो। तथा तिर्यंचनिकै दुःख होनेका, मारनेका, दृढ़ बाँधनेका, बाधी करनेका, डाह देनेका, नाशिका फोड़नेका उपदेश मत करो। मनुष्य तिर्यंचनिके भोजनपानके रोकनेका, बंदीगृहमें धरनेका, संताननितैं वियोग करनेका पक्षीनिकूं पिंजरानिमें धरने का, सर्प बीछू सिंह व्याघ्र मूसा न्योला कूकरा इत्यादिक हिंसक जीवनिके मारनेका, जूंवा लीखाँ मारनेका, उटकण खटमल मार-नेका, खाट तावड़ै देनेका, छिड़काव करावनेका, जीवनिके पकड़ने मारनेके यंत्र जाल बनावनेका उपदेश मत करो। खोटेपापरूप शास्त्र पढ़नेका जिन शास्त्रनिमें शृंगार मायाचारादिकको अधि-कता मिथ्या श्रद्धान करावनेवाले जिन ग्रंथनिमें मारणक्रिया विष बनावनेकी क्रिया मारण उच्चाटन वशीकरण मंत्र तंत्रादिक तथा

ईंद्रजालादिक अनेक कपटनिका उपदेश तथा रसनिका दग्ध करना रसायण करना इत्यादि पापके शास्त्र वीररसके शास्त्र हिंसा-प्रधान क्रियाके शास्त्र मत पढ़ो अन्यकूं उपदेश मत करो तथा अभक्ष्य भक्षण करनेका रात्रिभोजन करनेका झूठ बोलनेका चुगली करनेका चोरी करनेका खोटी साख भरनेका व्यभिचार करावनेका व्यवहारादिक महाआरम्भ करनेका रोशनी प्रज्वलित करनेका दारूके (बारूदके) छुड़ावनेका तथा बाग बगीचा देखनेकूं प्रेरणा करनेका उपदेश मत करो।

तथा इस देशतैं दूसरे देशमें व्यौपार बहुत है वहां जावो ऐसा उपदेश मत करो। तथा परिणामनिमे दुर्ध्यानके कारण ऐसा मेला ख्याल कौतुक व्यभिचारादिक कर्म मनुष्यतिर्यंचनिकी राडि-कलहादिक देखनेका उपदेश मत करो। तथा युद्धादिक करनेका गाली देनेका परकी आजीविका बिगाड़ि देनेका उपदेश मत करो। तथा खोटे गीत गान नृत्य वादित्र कलह विसंवाद श्रवण करनेका उपदेश मत करो। तथा इस देशमें दासी दास सुलभ हैं इनकूं अमुक देशमें लेजाय बेचै तो बहुत लाभ होय ऐसा उपदेश क्लेश-वणिज्या है तथा गाय भैंस अश्वादिक अमुक देशतैं ग्रहण करि अन्य देशमे बेचै तो वहुत धनका लाभ होय सो तिर्यक्वाणिज्या है तथा चिड़ीमार शिकारीनिकूं शाकुनीनिकूं ऐसैं कहै जो अमुक देशमें मृग सूकर पक्षी इत्यादिक जीव वहुत हैं ऐसा कहना सो वधकोपदेश है तथा खेती करनेवालेनिकूं पृथ्वीके आरम्भका जल अग्नि पवन वनस्पति छेदनादिकका उपदेश देना सो आरंभो-पदेश है ये समस्त पापोपदेश त्यागने योग्य हैं तथा हुक्का जरदा

तमाखू भांग अमल छौंतरादिक पीवनेका सूंघनेका खावनेका उपदेश महापापका कारण है सो मत करो जातैं हुक्का जर्दा तो उत्तम कुलके योग्य ही नाहीं जिसतैं जाति कुल भ्रष्ट हो जाय धुवांका अर जलका संयोगतैं बहुत जीव हुक्काके जलमें उपजैं अर जल महादुर्गन्ध होजाय अर जहां पड़ै तहां छहकायके जीवनिकी विराधना ही करै अर चूना ईंट पकावनेका उपदेश मत करो। बहुरि बहुत पापके वनिजका उपदेश मत करो। गाय भैंस बलद ऊंट गाडा गाडीनिका राखनेका उपदेश मत करो। कोऊ दातार मनुष्य तिर्यंचनिकूं भोजन वस्त्र धनादिक देता होय ताके अंतराय मत करो। कुपात्र दानका उपदेश मत करो देतेमें विघ्न मत करो। व्रत भङ्ग करनेका उपदेश मत करो इत्यादि। बहुत कहा कहिये अपने धर्म अर्थ कामना कुछ भी सिद्ध होय नाहीं केवल आपके पापहीका बंध होय ऐसा पापरूप उपदेश मतकरो। बहुरि जिनतैं हिंसा बहुत होय ऐसे उपकरण किसीकूं मत द्यो, मांगे मत द्यो भाड़े मत द्यो, प्रीतिकरि मत द्यो, मोलकरि मत द्यो, जिनके देनेमें किंचित् लाभ हू होय तो हू महापापके कारण जानि देना योग्य नाहीं जिनकूं हस्तमें लेते ही दुष्ट परिणाम होजाय घातहीका विचार रहै ऐसे खड्ग छूरी भाला बाण धनुष बन्दूक कटारी इत्यादिक आयुध देना योग्य नाहीं। बहुरि भूमि खोदनेके कारण जिनकरि गलीनिमें रोडीनिमें खेतनिमें बड़े बड़े जीव सर्प विच्छू गिंडोला लट कीड़ा मूसा इत्यादिक जीव कटि जांय, छिद जांय कोटनि जीवनिकी हिंसा होजाय ऐसा फावडा कुदाल कुस खुरपा हल मुद्गर हथोड़ा किसीकूं मत द्यो। तथा अनेक त्रसस्थावर-

निकूं चीरनेवाला मारनेवाला परसी कुल्हाड़ा वसोला करौंत दातला दतीला किसीकूं मत द्यो। तथा तिर्यंच मनुष्यनिके मारनेके कारण लाठी घोंटा चाबुक चामडा लोढा किसीको मत द्यो वहुरि अग्नि विष वेड़ी सांकल पिंजरा जाल जीव पकड़नेका यन्त्र किसीको मत द्यो। मार्जार कूकरा इत्यादिक हिंसक जीवनिकूं अपनाकरि मत पालो। सूआ तीतर बुलबुल कूकडा मैना कबूतर बाज इत्यादिक पक्षीनिकूं पींजरामें रखना पालना मत करो वहुरि केतेक वहुत पापके उपकरण घरमें हू मत राखो. घरमें रहै देखते हू हिंसाके उपकरण परिणाम ही बिगाड़ै हैं। वहुरि निन्द्य वनिज हू महापापके कारण जिनमें किंचित् लाभ होय तो हू पापसूं भयभीत होय त्याग करो लोहा नील मैण लवण लकड़ा साजी सण मावण लाख चमड़ा ऊन केश कसूंभा गुड़ खांड अन्न चावल सिंहाडा शस्त्र दारू गोला सीसा लहसन कांदा आदो जमीकन्द तथा घृत तैल आम नीबू इत्यादिक वनस्पतिकाय भांग तमाखू जर्दा तिल खल काकडा पिंजरा फांसो गांजा चरस दासी दास घोड़ा ऊंट बलध भैंसा गाडागाडी ईंट इनके बेचनेमें खरीदनेमें संचयमें महा हिंसा होय है यातैं त्याग करो। समस्तका त्याग नाहीं बन सकै तो यामें महापाप जानि कोऊ अन्नादिकमें अल्प संग्रह, अल्प प्रमाण राखि अन्य समस्तका तो त्याग करो। वहुरि केतीक खोटी आजीविका महापापबन्धकारि दुर्गति लेजाय ते परिहार करो। कन्दियाली करनेकी कोटवालका पियादापनाकी वनराई करानेकी, गाडा गाडी ऊंट वलध भाडै देनेकी, ऊंट वलध गाडा गाडी भाडै करानेका दलाल यो नहीं देखै है जो बाका कांधा गल गया है कि नाहि वा

गल गई है कि पीठ गल गई है कि पग दूखैं कि याका अंगमें कीड़ा पड़ि रह्या है कि वृद्ध है कि रोगी है ऐसा विचार भाडाकी दलालीवालाकै नाहीं है चातुर्मासमें भी बहुत बोझ लदाय दे अर भाडाकी आजीविका अर भाडाकी दोऊ महापाप है अर दलाली लोभके वश होय वृद्ध पुरुषका व्याह सगाई मत करावो। राजका हासिल मत चुरावो।

तथा अन्य अपराधीकी चुगली खानेकी, झूठी साखि भरनेकी गवाही होजानेकी, वैद्यपनाकी आजीविका मत करो, जंत्र मंत्र भूत भूतणी डाकनिके इलाज करनेकी रसायणादिक धूर्त्ताईतैं दिखाय ठग लेनेकी आजीविका मत करो। यह दुर्गतिको ले जानेवाली है तथा काठ बेचनेवाला मदिरा करनेवाला कलाल कषायी धोबी चमार, ईंट चूना पकानेवाला, नीलगर जुआरी, घसियारा, घास खोदने वाला इनकूं व्याज पर धन मत दो। मांसभक्षिनिकूं वेश्यानिकूं निंद्यपापकी आजीविका करनेवालेनिकूं व्याज पर रुपया मत दो, अपना मकान भाड़े मत दो। बहुरि अशुभ परिणामके धारक अन्य-मार्गी मांसभक्षी, मद्यपायी, वेश्यामें आसक्त, परस्त्री लम्पटी, अधमनितैं मित्रता प्रीति करने का हू त्याग करो। परके दोष ग्रहण मत करो। अन्यकी लक्ष्मी में बांछा मत करो अन्यकी लक्ष्मीकूं देखि आश्चर्य मत करो अपना दीनपना मत चिन्तवन करो अन्यकी स्त्रीके देखनेमें अभिलाषा मत करो। अन्य मनुष्य तिर्यंचनिकी कलह मत देखो। अन्यके पुत्रका स्त्रीका वियोगकी बांछा मत करो। परका अपमान अपयश अपमान सुनि हर्षित मत होहू। अन्यके लाभ देख विषाद मत करो।

अन्यके रस सहित भोजन आभरणादिक देखि अपने परिणाममें दुःखित मत होहू । आपकै दारिद्र वियोग रोग होते आर्तपरिणाम-करि क्लेशित मत होहू धनवानिसूं ईर्षा मति करो। बहुरि कोऊ सिंघ व्याघ्र सर्पादिकनिकी शिकार चिंतवन मत करो। कोऊका संग्राममें जय पराजय मत चाहो। परकी स्त्रीका संशर्ग वचनालाप करनेमें वेश्यादिकनिका हावभाव नृत्यका विलास देखनमें अभि-लाषा मत करो। गाली भंडवचन लिये गीत मत सुनो। खोटे राग सांग कौतूहल परिणाम मलिन करनेका कारण श्रवण, देखना दूरहीतै छांडो। दारिद्र आवते हू नीच प्रवृत्तिकरि आजीविका मत करो किसीतैं याचना मत करो, दीनता मत भाखो, निर्धनपणाकूं होते हू प्रवृत्ति विकाररूप मत करो। नीचकुलवालेनिके करनेयोग्य वस्त्र रंगना धोवना इत्यादिक निंद्यकर्म करनेका परिहार करो। बहुरि जिनालय आदिक धर्मके स्थाननिमें स्त्रीनिकी कथा राजकथा चोरकथा देशकथा महाहापापवन्ध करने वाली कथा कदाचित् मत करो। बहुरि लेन देन व्याह सगाईका झगड़ा तथा न्याय पंचायती जिन मन्दिरमें वैठि जाति कुलका विसंवाद कदाचित् मत करो। मन्दिरमें वैठि करोगे तो धर्मस्थानकी मर्यादा तोड़नेतैं नरक निगोद-का कारण घोरकर्मका वन्ध होयगा तातैं धर्मायतनमे पापका वधावने वाला कर्म दूरहीतैं त्याग करो। बहुरि जिन मन्दिरमें भोजनपान ताम्बूल गन्ध पुष्प विषयादिक तथा शयन उच्चासन वनिज सगाई झगड़ा गालीके वचन हास्यके वचन अविनयके वचन आरम्भके वचनादिकमे कदाचित प्रवर्तन मत करो। बहुरि मिथ्या श्रुतका श्रवण मत करो जिनके श्रवणतैं विषयनि में राग वधै, हास्य

कौतुक उपजै काम जाग्रत होजाय, भोजनके नाना स्वादनिमें चित्त चलि जाय ऐसी कथनी श्रवण मत करो। तथा स्त्री पुरुषनिके पाप रूप चरित्रकी कथा तथा भूतप्रेतनिकी असत्य कथा तथा हिंसाकी प्रधानताके धारक वेद स्मृत्यादिकी कथा तथा कपोलकल्पित अनेक कहानी तथा फारसी किताबनिका लिख्या तिनकूं किस्सा कहै हैं ते महा दुर्ध्यान करने वाले श्रवण मत करो तथा भारत, रामायणादिकनिकी कल्पित कथा कदाचित् श्रवण मत करो। बहुरि कषायनिके उत्पन्न करने वाले क्रोधीनिके वचन अभिमानीके मदके भरे वचन मायाचारीनिके कुटिल वचन लोभिनिके लालसा उपजावनेवाले वचन, मद्यमांस अभक्ष्यके स्वादकी प्रशंसा करने-वालेनिके वचन मद्य अमल भांग तमाखू हुक्कानिकी प्रशंसा करने-वालेनिके वचन श्रवण मत करो। बहुरि धर्मके अभाव करनेवाले परलोकादिकके अभाव कहनेवाले नास्तिकनिके वाक्य पापबन्धके कारण मत श्रवण करो। बहुरि वृथा आरम्भ विसंवादकूं छोड़ो तथा माटी कजोड़ी कर्दम कांटा ठीकरा मल मूत्र कफ उच्छिष्ट जल अग्नि दीपक इत्यादिक भूमिकूं देखे बिना मत पटको तथा शीघ्र-तासूं पाषाण काष्ठ आसन शय्या पल्यंक धातुका पात्र चरवा चरी तबला परात चौकी पाटा वस्त्रादिकनिकूं जमीन ऊपरि घींसकरि रगड़करि प्रमादतै मत सरकाओ यामें बहुत जीवनिकी हिंसा होय है यत्नाचारका अभाव है तातैं देखि यत्नतैं उठावो मेलो। बहुरि बिना प्रयोजन भूमिका कुचरना वृक्षकी डाहलीनिका मोडना हरित तृणा-दिककूं छेदना, मर्दन करना, वृक्षनिके पत्र पुष्पादिकनिकूं चीरना तोड़ना वृथा जल पटकना इत्यादिक पापतै भयभीत होय मत करो

बहुत कहा कहिये गृहाचारमे जेता वस्तु पात्र अन्न जलादिक हैं तिनकूं देखकरि धरो जैसे धर्म नाहीं बिगड़ै है उजाड बिगाड नाहीं होय तैसैं करो। प्रमाद छांडि भोजनपान औषधि पकवानादिक नेत्रनितैं देखि सोधि भक्षण करो। शीघ्रतासूं प्रमादी होय बिना सोध्या भोजन मत करो, गमनमें आगमनमे उठनेमें देखे-विना सोधे विना प्रवर्त्तन मत करो। जातैं दया पलै अर अपना शरीरकै बाधा नाहीं होय, हानि नाहीं होय तथा प्रमादी होय हित-अहित का विचार किये विनासुपात्र कुपात्रका विचार-विना किसीकूं वार्ता मत कहो कहनेमे गुणदोषका विचार करि कहो। अर कोई आपकूं पूछे तो शीघ्रतासे उत्तर मत द्यो याही कहो मैं समझ करि विचार करि आपकूं जवाब देस्यों पाछै अवकाश पाय धर्मअर्थ-कामसूं अविरुद्ध विचार विनयसहित उत्तर करो शीघ्रतातैं उत्तर देनेमे उसकालमें क्रोधमानमायालोभके वशतैं वचन निकसनेका ठिकाना नाहीं कषायके उदयतैं योग्य अयोग्य कहनेका विचार नाहीं रहै है, अन्यका वाक्य हू परिपूर्ण श्रवण करि लेवे तथा कहनेका समस्त अभिप्राय जाननेमे आजाय तदि उत्तर करना योग्य है तातैं प्रमाद जो असावधानतातैं वचन मत कहो एकान्त-रूप हठग्राही पक्षपाती मत होहु धर्म बिगड़ जायगा। तातैं दोऊ लोकके हितके अर्थी हो तो प्रमादचर्या नामा अनर्थदण्ड छोड़ो ऐसैं पञ्च प्रकार अनर्थदण्डनिकूं समझ करि त्याग करै ताकैं अनर्थदण्ड त्याग नामा व्रत होय है।

बहुरि अनर्थदण्डनिमें महा अनर्थकारी द्यूतक्रीड़ा है जुवा समस्त व्यसननिमें प्रधान है, समस्त पापनिका संकेत-स्थान है

महान् आपदाका कारण है समस्त अनीतिनिमें महा अनीति है याका परिणाम ही महादुष्ट है जो अपना समस्त घर सम्पदा जूवामें संकल्प करिकै हू अन्यका धन लिया चाहै है जुवारीके एता वड़ा लोभ है जो कोऊ प्रकार परका धन मेरे आजाय ऐसैं रात्रि दिन चिंतवन करता रहै है मेरा धन जाय तो जावो अपयश होहु मरण होहु दरिद्रता होहु कोऊप्रकार परका धनमैं जीतल्यूं तदि मेरा जीवतव्य सफल है लोभकषायकी तीव्रता सो ही महाहिंसा है। जुवारीका महानिर्दयी परिणाम होय है परका घात ही चिंतवन करै है। जो जुवामें धन हारि जाय तो चोरी करै धनवास्तै मनुष्यनिकूं मारै ही जुवारीनिके परस्पर महाक्लेश होय ही मारामारी होय ही मायाचारी होय ही जिनसूं महाप्रीति होय तिनसूं भी महाकपट अनेक छल करि धन ग्रहण करया ही चाहै जुवा कपटका तो स्थान ही है हजारां छल रचै है अपनी स्त्रीने जुवामें संकल्प कर दे पुत्र पुत्रीनै कर दे, स्त्रीनै हारजाय पुत्रीनै हारजाय, जुवारीनै देदे है जुवारी दरिद्री व्यसनीकूं पुत्री परणाय देहै जुवामें अपना मकान रहनेका बेच देहै दावपर लगाय देहै तथा पुत्रकूं बेच देहै, लक्ष धनका धनी एक क्षणमें समस्त धन हार दरिद्री हो जाय है तदि महाआर्तध्यान रौद्रध्यानतैं मरि दुर्गतिमें भ्रमण करै है अर धन जीत ल्यावै तो मद उपजै है कुमार्गमें ही जाका धन खर्च होय है महा रौद्रध्यानके प्रभावतैं मरि महा कुयोनि पाय भ्रमण करै है जुवारी मद्पान भङ्गपानादि करै है वेश्यामें आसक्त होय जाय है सुमार्गमें धन लगै नाहीं जुवारीतैं न्यायरूप अन्य आजीविका नाहीं करी जाय है, जुवारीकी प्रतीति जाती रहै है याकूं कोऊ

धन नाहीं दीजै है जुवारीके सत्य वचन कदाचित् नाहीं होय है। जुवारीकै शुभपरिणाम होय नाहीं, अपना पूर्वोपार्जित कर्मका दिया न्यायका धनमें संतोष कदाचित् आवै नाहीं। एकांतमें एकाकीकूं मारि धन खोस लेजाय है, अपना घना नातादार भाई होय ताकूं एकान्तमें मारि आभरणादि ले ही जाय है। जुवारी-की प्रतीति मूरख होय सो हू नाहीं करै है, परधनकी अति तीव्र तृष्णाकरि कुदेवनिकी बोलारी बोलै है, मिथ्याधर्म सेवन करै है सन्तोष शील निराकुलताकूं जलांजली दे है, अति लोभके परि-णामतैं विपरीप बुद्धि हो जाय है। परमार्थ जामें नाहीं है। धर्म को श्रद्धान स्वप्नमें हू नाहीं होय है। समस्त पापनिका मूल जुवाकूं जानि दूरहीतैं त्याग करो। जुवारीकी बुद्धि कोट उपाय-करि हू विपरीतता नाहीं छांड़ै है, परलोकमे दुर्गति ही पाय है। जुवारी तो तीव्रलोभकरि अपना आत्माकूं घात्या है।

बहुरि केतेक अज्ञानी जुवामें हार जीत धनकी तो नाहीं करै परन्तु मनुष्य जन्मकूं वृथा व्यतीत करनेका इच्छुक धन संकल्प कर तो जुवा नाहीं करै हैं अर क्रीड़ाके निमित्त चौपड़ शतरंज गंजफा इत्यादिक अनेक अविद्या करै हैं तिनके हारमे अर जीतमे रागद्वेषकी बड़ी तीव्रता है हर्ष विषाद बहुत होय है कपट बहुत करै है पिता पुत्र हू परस्पर विसम्वाद कलह करै ही हैं परिणाममें जीत हारमें तीव्रतानै प्राप्त होय हैं। या ऐसी अविद्या है जो इस क्रीड़ामे रचै हैं ताका इस लोकसम्बन्धी सेवावनिज लिखना इत्या-दिक समस्त कार्य विगडि जाय तो हू छाड़ नाहीं सकै है जाकै द्यूत-क्रीड़ा है ताकै अन्य उद्यमांका अभाव होय है। दरिद्रता नजीक

आवै है। हीन नीच मलिन जातिके बरोबर बैठ द्यूतक्रीड़ा करै हैं यो नाहीं देखै हैं यो म्लेच्छ है नाई कलाल धोबी समस्त द्यूतक्रीड़ामें सामिल प्रत्यक्ष देखिये हैं जिनकी महादुर्गंध आवै है वस्त्रनिमेंतैं जूवां झड़ झड़ पड़ै हैं तिनके बरोबर बैठ रमिये है। अन्य अधर्मनिका स्थानमें आप जाय बैठे हैं, मार्गमें खेलते देखकर खड़ा रह जाय बैठनेकूं स्थान नाहीं होय तो आप खड़ा-खड़ा ही देखै है ऐसा व्यसन है खावना पीवना देन लेन सब छांडि खड़ा हुआ देखै है मनियार नीलगर कमनीगर बिसायती समस्त मांसभक्षी नीच कर्मीनिके सामिल ख्याल खेलै देखै है। बहुत कहा कहिये अपना सर्व कार्य विगडि जाय तथा माता पितादिकका मरण हो जाय तो हू इस ख्यालमेंतैं उठ्या नाहीं जाय है ऐसा तीव्र परिणामतैं नरक तिर्यंच बंध होय ही। जामे धन कछु नाहीं आवै बड़ा विसम्वाद होय तिस क्रीड़ामें तीव्र राचनेतैं धनकी हारजीतवालेतैं तीव्र पापका बंध करै है। जाके धनकी हारजीत होय सो तो अल्पकाल राचै है याका परिणाम समस्त कालमें राचै है इस व्यसनमें लागै है ताकूं धर्मका नाम नाहीं सुहावै है, ताकै बुद्धि विपरीत होय पापक्रियामे, अन्यायमें, असत्यमें, विकथा ही में राचै है। देखहु यह मनुष्य जन्म अर उत्तमकुल अर नीरोगशरीर उत्तमधर्म ए अनन्तकालमें नाहीं पाया सो संयोग मिलि गया याका एक घड़ी कोड धनमें नाहीं मिलै ऐसा अवसर सिद्धांतनिका स्वाध्याय जीवादिक द्रव्यनिकी चर्चा, अनित्यादिक द्वादश भावना, षोडशकारण भावना, पञ्च परमगुरुका नमस्कार जाप स्मरणादिककरि सफल करनेका था तानैं चौपड़, गञ्जफा, शतरञ्ज ये महा अविद्या

में राचि समस्त धर्मतैं धर्मके मार्गतैं पराङ्मुख होय महापाप उपजाय मरजाना यो फल ग्रहण करि तिर्यंच नरकादिकमें जाय उपजै है। बहुरि ऐसा जानना भगवानका परमागममें तो सप्त व्यसनका त्याग जाकै होयगा सो ही जिनधर्मग्रहण करनेका पात्र होयगा जाकै ए व्यसन ग्रहण हो जाय तिसकी बुद्धि ही विपरीत होजाय है, पापकार्यनिमें प्रवीण होजाय है, अनीतिमें तत्पर होजाय है। इस लोकका कार्य तो न्यायमार्गतैं अपने कुलके योग्य षट्कर्मकरि आजीविका करना अर खानपानादिक शरीरका संस्कार तथा न्यायरूप लेना, देना, धरना, जाना, आना प्रयोजनरूप करना अर परलोकके अर्थि धर्मकार्यमें प्रवर्तन करना यही गृहस्थके दोय करने योग्य कार्य हैं इन दोय कार्य विना जो प्रवृत्ति सो ही व्यसन हैं। ते सप्त व्यसन हैं द्यूतक्रीड़ा (१) मांसभक्षण (२) मद्यपान (३) वेश्यासेवन (४)शिकारकरना (५) चोरीकरना (६) पर स्त्री-सेवन करना (७) ये महाघोरपापबन्धके कारण सप्त व्यसन हैं। इन व्यसननिमें उलझना सहज है छूटकरि सुलझना बड़ा कठिन है। इन व्यसननितैं पापबन्ध ही ऐसा होय है जो बुद्धि ही विपर्ययमें होजाय है, निकस नाहीं सकै है। यहां द्यूत व्यसन वर्णन किया याहीमें होड लगावना है। अब दस-बीस बरसतैं अफीमके फाटकाको व्यौपार हू तीव्रतृष्णाकरि युक्त पुरुषके संतोषका विगाड़नेवाला प्रवर्त्या सो हू जुवा ही में गर्भित जानना। बहुरि मांस मद्य शिकार जैनीनिके कुलमें है ही नाहीं ये लगे पीछैं महाव्यसन हैं परन्तु आगै अभक्ष्यनिमें कहेंगे

तथा बींध्या अन्नादिकनिका समस्त भोजन अर चमड़ाका स्पर्श्या समस्त जल, घृत, तेल, रसादिक, रात्रि भोजन इत्यादिक समस्त अभक्ष्य मांसके दोष समान जानि त्यागै ही। बहुरि भांग, तमाखू, जर्दा, अफीम, हुक्का ये समस्त पराधीन करनेतैं अर ज्ञानके नष्ट करनेतै परमार्थरूप बुद्धिकूं नष्ट करनेतैं मदिरा समान ही हैं यातैं त्याग ही करना। बहुरि अन्य जीवनिकी दया नाहीं करके आजीविका विगाड़ देना, धन लुटाय देना तीव्रदण्ड कराय देना सो समस्त शिकार ही है अन्यका मान-भङ्ग कराय देना, स्थान छुडाय देना सो समस्त शिकारतैं अधिक-अधिक है सो त्याग ही करना बहुरि वेश्या-सेवन किया जाका समस्त आचार भोजनपान भ्रष्ट है वेश्याकूं चांडाल, भील, म्लेच्छ, मुसलमान इत्यादिक समस्त सेवन करै हैं जो वेश्या मांस मद्यका खानपान नित्य ही करै है धनहीतैं जाके प्रीति है ऐसी वेश्याकी मुखकी लाल पीवै है जातिकुल आचार समस्त भ्रष्ट है तातैं त्याग ही श्रेष्ठ है, वेश्याका संगम किया तिसके चोरी जूवा मद्यपानादिक समस्त व्यसन होय हैं। समस्त धनकी हानि होय है, धर्मतै पराङ्मुखता होजाय है बुद्धि विपरीत होजाय है मायाचारमें झूठमे छलमें तत्परता होजाय है निंद्यकर्मको ग्लानि जाती रहै है लज्जा नष्ट होजाय है वेश्याका देखनेमें हाव, विलास, विभ्रमादिक देखने चिंतवन करनेतैं अति-रागी होय कुलमर्यादा समस्त भंग करै है वेश्यामें आसक्त हुआ पुरुष कफविषै पड़ी मक्षिकाकी ज्यों आपकूं नाहीं छुड़ाय सकै है महा अनीत है। बहुरि चोरपनाका महा व्यसन है। चोर आप भी निरन्तर भयरूप रहै है अर चोरका अन्य जीवनिकै बड़ा भय

रहै है, माता कै भी चोरपुत्रका भय रहै है। चोर इस लोकमें आपकी समस्त प्रतिष्ठा बिगाड़ि महाकलङ्कित होय है। राजासूं तीव्रदंड पावै है हस्तनाशिकादिक छेद्या जाय है। चोरका परिणाम संतोषरूप कदाचित् नाहीं होय है। चोरके योग्य, अयोग्य करने योग्यका विचार ही नाहीं रहै है। याहीतै धर्मध्यान स्वाध्याय धर्म-कथातैं पराङ्मुख रहै है। अर जिनशास्त्रनिका श्रवण पठन करता हू अन्यके धन ऊपर चित्त चलावे है सो ठग है, जगतके ठगनेकूं शास्त्ररूप शस्त्र ग्रहण किया है तिसके धर्मकी श्रद्धा कदाचित् नाहीं जानना, जाके जिनधर्मकी प्रधानता होय है ताकै चारित्रमोहका उदयतैं त्याग व्रत संयम नाहीं होय तो हू अन्यायके धनमें तो वांछा नाहीं चालै है चोरीतैं दोऊ लोक भ्रष्ट होना जानि विना दिया परका धनमें वांछा मत करो। बहुरि पर-स्त्री की वांछा नाम व्यसन समस्त अनर्थनिमें प्रधान है परस्त्रीलम्पटकै इसलोक परलोकमें जो घोरपाप, आपदा, अकीर्ति, अपयश, मरण, रोग, अपवाद धनहानि, राजदण्ड, जगतका वैर, दुर्गतिगमन, मारन, ताड़न, वन्दीगृहमे बन्धनादिक होय हैं तिनकूं वचनद्वारे कौन कहनेकूं समर्थ है? ऐसें सप्तव्यसन दूरतैं ही त्यागो इनके त्यागनेमें कुछ हानि नाहीं है। जानै सप्तव्यसन त्याग किया सो आपका समस्त दुःख अकीर्ति नरकादिक कुगति समस्त आपदाका निराकरण किया।

अब अनर्थदण्डव्रतके पंच अतीचार कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

कंदर्पं कौत्कुच्यं मौखर्यमतिप्रसाधनं पञ्च।
असमीक्ष्य चाधिकरणं व्यतीतयोऽनर्थदण्डकृद्विरतेः। ८१॥

अर्थ—चारित्र मोहनीयकर्मका उदयतैं रागभावकी अधिकता तै हास्य तैं मिल्या हुआ भण्डवचन बोलना सो कंदर्प नाम अतीचार है(१), बहुरि तीव्ररागका उदयतैं हास्यरूप भण्डवचनकरि सहित जो कायकी खोटी चेष्टा शरीर की निंद्यक्रिया करना सो कौत्कुच्य है (२), अर विनाप्रयोजन बहुत साररहित बकवाद सो मौखर्य कहिये है (३), अर प्रयोजन रहित अधिकताकरि मनवचनकायको प्रवर्तावना सो असमीक्ष्याधिकरण कहिये है। रागद्वेषकरनेवाला काव्य श्लोक कवित्त छन्द गीतनिका चितवन सो मन असमीक्ष्याधिकरण कहिये है। बहुरि पापकथाकरि अन्य के मनवचनकायकूं विगाड़नेवाली खोटी कथा कहना सो वचन असमीक्ष्याधिकरण है। बहुरि प्रयोजन बिना गमन करना उठना बैठना, दौड़ना, पटकना, फेकना तथा पत्र फल पुष्पादिकनिका छेदन, भेदन, विदारण, क्षेपणादिक करना तथा अग्नि विष क्षारादिकका देना सो काय असमीक्ष्याधिकरण नामका अतीचार है (४), जेता भोग-उपभोगकरि प्रयोजन सधै तातैं अधिक बिना प्रयोजनका अतिसंग्रह करै सो अतिप्रसाधन नाम अतीचार है (५) ऐसैं अनर्थदण्डव्रतके पांच अतीचार कहे ते त्यागने योग्य हैं

अब भोगोपभोगपरिमाणव्रत अष्ट सूत्रनिकरि कहै हैं—

अक्षार्थानां परिसंख्यानं भोगोपभोगपरिमाणम् ।
अर्थवतामप्यवधौ रागरतीनां तनूकृतये ॥८२॥

अर्थ—प्रयोजनवान हू पंचइन्द्रियनिके विषयनिका जो राग भाव करिकै आसक्तताकौं घटावनेके अर्थि जो परिमाण करना

सो भोगोपभोगपरिमाण नामा व्रत है।

भावार्थ—संसारी जीवनिकैं इन्द्रियनिके विषयनिमें अतिराग वर्तै है रागतैं व्रत संयम दया क्षमादिक समस्त गुणनितैं पराङ्मुख होय रह्या है यातैं अणुव्रतका धारक गृहस्थ है सो हिंसा असत्य चोरी परस्त्रीसेवन अपरिमाणपरिग्रहतैं उपजी जो अन्यायके विषयनिमें प्रीति तिसका त्याग करकैं तो व्रती भया अब न्यायके विषयनिकूं हू तीव्ररागके कारण जानि जाकै अति अरुचि भई होय सो रागकी आसक्तता घटावनेके अर्थि अपने प्रयोजनवान हू इन्द्रियनिके विषयनिमें परिमाण करै सो भोगोपभोगपरिमाण नामा गुणव्रत है। व्रतीनिकूं इन्द्रियनिके विषयनिमें निरर्गल प्रवृत्ति रोकि भोगोपभोगका परिमाण करना महान संवर का कारण है। अब भोग तो कहा होय है अर उपभोग कहा तिनका लक्षण कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

भुक्त्वा परिहातव्यो भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः।
उपभोगोऽशनवसनप्रभृतिः पंचेन्द्रियो विषयः ॥८३॥

अर्थ—जो एकबार भोगकरिकै फिर त्यागने योग्य होय सो भोग है बहुरि भोग करकैं फिर भोगने योग्य होय सो उपभोग है। भोग तो भोजनादिक पंच इन्द्रियनिके विषय हैं अर उपभोग वस्त्रादिक पंच इन्द्रियनिके विषय हैं।

भावार्थ—जो एक बार ही भोगनेमें आवैं फिर भोगनेमें नाहीं आवै ते भोग हैं। अर जो वारवार भोगनेके अर्थि आवैं ते उपभोग हैं जैसैं भोजन नानारूप एक बार ही भोगनेमें आवै तथा कर्पूर चन्दनादिकका विलेपन तथा पुष्प माला, अतर, फुलेल

तथा मेला कौतुक इन्द्रजालादिक स्तवनके गीतके शब्दादिक एक बार ही भोगनेमें आवै हैं ते पंच इन्द्रियनिके विषयभोग कहावै हैं। अर जैसे वस्त्र आभरण स्त्री सिंहासन-पर्यंक, महल बाग वादित्र चित्राम इत्यादिक बारम्बार भोगनेमें आवैं ते उपभोग है। भोगोपभोग दोऊनिका परिमाण-करै ताकैं व्रत होय है

अब जे परिमाण करने योग्य नाहीं यावज्जीव त्याग करने योग्य हैं तिनके कहनेकूं सूत्र कहै है—

त्रसहतिपरिहरणार्थं क्षौद्रं पिशितं प्रमादपरिहृतये ।
मद्यं च वर्जनीयं जिनचरणौ शरणमुपयातैः ॥८४॥

अर्थ—जिनेन्द्रभगवानके चरणनिका शरणकूं प्राप्त भये ऐसे सम्यग्दृष्टि हैं तिननै त्रसनिकी हिंसाका परित्यागके अर्थि क्षौद्र जो मधु अर पिशित कहिये मांस वर्जन करने योग्य है अर प्रमाद जो हितअहितमें असावधानी ताका वर्जनके अर्थि मद्यका त्याग करना योग्य है।

भावार्थ—जे पुरुष जिनेद्रके चरणनि की आज्ञाके श्रद्धानी है ते त्रसजीवनिकी हिंसाका त्यागके अर्थि मधु अर मांसका त्याग ही करैं अर प्रमाद जो अचेतपना ताका त्यागके अर्थि मदिराका त्याग करै ही। जाकै मधुमांसमद्यका त्याग नाहीं सो जिन-आज्ञातैं पराङ्मुख हैं, जैनी नाहीं है।

बहुरि त्यागने योग्यनिकूं कहै है—

अल्पफलबहुविघातान्मूलकमार्द्राणि शृङ्गवेराणि ।
नवनीतनिम्बकुसुमं कैतकमित्येवमवहेयम् ॥८५॥

यदनिष्टं तद्व्रतयेद्यच्चानुपसेव्यमेतदपि जह्यात् ।
अभिसंधिकृता विरतिर्विषयाद्योग्याद् व्रतं भवति । ८६॥

अर्थ—जिनके सेवनतैं फल जो अपना प्रयोजन सो तो अल्प सिद्ध होय अर जिनके भक्षणतैं घात अनन्त जीवनिका होय ऐसे मूल कन्द आदो शृंगवेर इत्यादिक कन्द मूल अर नवनीत जो माखन निंबका फूल केवड़ा केतकीका फूल इत्यादिक जे अनन्त काय ते त्यागने योग्य है। एक देहमें अनन्त जीव ते अनन्तकाय हैं जो आपके अनिष्ट होय ताका व्रत करना त्याग करना अर जो सेवन योग्य नाहीं तो अनुपसेव्यनिका त्याग ही करना योग्य है। यद्यपि अनिष्ट अनुपसेव्यके सेवनका प्रयोजन नाहीं है तो हू अपने अभिप्रायकरि योग्य विषयका हू त्याग सो व्रत है जातैं जाका फल तो एक जिह्वाका आस्वादनमात्र अर जाका एक बालमात्र कणाहूमें अनन्तानन्त वादरनिगोदजीवनिका घात होय ऐसे कन्दमूलादिक अर निंबका पुष्प अर केतकी केवडा का पुष्प त्यागने योग्य है तथा अन्यहू पुष्प प्रत्यक्ष त्रसजीवनिकरि भरे हैं ते जिनधर्मीनिके त्यागने योग्य हैं। वहुरि जो वस्तु शुद्ध हू है अर भक्षण करनेतैं अपना देहमे वेदना उपजावै उदरशूलादिक उपजावनेवाला वात पित्त कफादिक दोष तथा रुधिर विकार उदरविकारादिकक्रूं उत्पन्न करनेवाला भोजनादिक तथा अन्य हू दुःखके कारण इन्द्रियविषयनिका सेवन मत करो। जातै जो अति तीव्ररागी इन्द्रियनिका लम्पटी होयगा सो ही अनिष्ट सेवन करैगा। जो अपना मरण हो जाना तथा तीव्रवेदना भोगना ऐसैं तीव्र दुःख हू कूं नाहीं गिणता भक्षण करै है ताकैं जिव्हाकी तीव्र विकलतातैं महापापका

बन्ध होय है। अनेक मनुष्य भोजनके आस्वादनमें अनुराग करिकै अनिष्ट भोजनतैं रोग बधाय आर्तध्यानकरि दुर्गतिकूं जायं है तातैं अनिष्टका त्याग ही श्रेष्ठ है। बहुरि केते ही वस्तु अपने कूलकूं तथा व्यवहारकूं धर्मकूं मलीन करनेवाले है ते सेवने योग्य नाहीं ते अनुपसेव्य हैं। शंख, हस्तीका दांत, केश, मृगमद गोलोचन इत्यादिकका स्पर्श्या हुआ भोजन जल सेवन योग्य नाहीं तथा ऊँटनीका तथा गधीका दुग्ध और गायका मूत्र तथा मल मूत्र कफ लाल उच्छिष्ट भोजन ये सेवने योग्य नाहीं तथा म्लेच्छ भील अस्पर्श्यशूद्रनिका स्पर्शन किया हुआ भोजन तथा अशुद्धभूमिमें पड्या चर्मका स्पर्श्या मार्जार श्वानादिक करि तथा मांसभक्षी मद्यपायीनिकरि बनाया हुआ स्पर्शन किया हुआ समस्त भोजन लोकनिंद्य भोजन अनुपसेव्य है। जिनधर्मीनिके भक्षण करने योग्य नाहीं। बुद्धिकूं विपरीत करै है। मार्गतैं भ्रष्ट करने वाला धर्मतैं भ्रष्ट करनेवाला है। इहां ऐसा विशेष जानना, श्रीराजवार्तिकमें हू पंचप्रकार भोग संख्या कही है तहां त्रसका घात जामें होय ॥१॥ प्रमाद उपजावनेवाला होय ॥२॥ बहुबध कहिये जामें अनन्त जीवनिका घात होय ॥३॥ अनिष्ट होय ॥४॥ अनुपसेव्य होय ॥५॥ ये पांचप्रकार त्यागने योग्य हैं यावज्जीवन त्यागने योग्य है। अर जिसका यावज्जीव त्याग करनेकूं समर्थ नाहीं तो वाका त्याग कालकी मर्यादाकरि करना। यहॉ केतेक वस्तुनिमें तो प्रगट त्रसनिका घात है अर केतेक वस्तुनिमें अनन्त जीवनिके संघट्ट इकट्ठे होय घात होय है बीधा अन्न है तामें ईली घुन प्रगट हजारां फिरै है बीधे अन्न खानेवालेकै अप्रमाण त्रसनिका

घात होय है जो गृहस्थ धान्यका संग्रह राखै है ताकै नित्य बीधा अन्नके भक्षणतैं महापाप प्रवर्तैं है याहीतै पापतैं भयभीत जैनी होय सो अबीधा अन्न खरीदै और दोय महीनाका खरचप्रमाण राखै दोय महीना भक्षण करि चुकै तदि और अबीधा अन्न देखि ग्रहण करै थोड़ा संग्रहमे अच्छीतरह सोधनेमे आजाय थोडाका जावता यत्नाचारतैं बनिसकै बीधता देखै तदि बदलाय मगावै अन्य पांच जायगा अबीधा देखि लावै बहुत धान्य होय तो दय सकै नाहीं फटकि सकै नाहीं, बदल्या जाय नाहीं, बहुत बीधा होजाय अर खावना पडै तदि नित्य छांणि-छांणि ईली लट घुणनिकूं पात्र भर अर मार्गमे पटकै तहाँ मनुष्यनिके तथा पशुनिके पगतलैं खुद-जांय मरजांय पशु चरजांय। बहुरि धान्यमें जीव पडने लगैं है तदि दिन प्रति दूना, चौगुना, सौगुना, हजारगुना छोटा बडा बधता चल्या जाय है अर समस्त घरके मकाननिमें अर रसोईमें परींडा ऊपर, दीवारपर, चाकीपर फैलते खानपानकी वस्तुनिमें जमीनमें छतनिमें लाखां कोट्यां जीव विचरने लगजांय हैं। तातैं लोभके वशतैं, प्रमादके वशतैं, अभिमानके वशतैं वहुत संग्रह मत करो बहुरि मूंग मोठ उड़द तथा अन्य हू फलादिक जिनकै ऊपरि सुफेद फूली प्रगट होजाय तामें त्रसजीव जानि भक्षण मत करो। बहुरि वर्षाकालके चार महिनेमें केतीक वस्तुका संग्रह मत राखो। नगर शहरमें वसनेका सुख तो ये ही है कि जिस अवसरमें चाहैं तिस अवसरमे दस पांच दो चार दिनके खरचमे आवै तितनी दश पांच जायगामें आछी निर्दोष दीखै सो खरीदो। वर्षाऋतुमें गुडमें, शक्करमें, खांडमें वहुत चींटी लट मुलमुली पड़ै हैं तथा सूंठ अज-

बार्याण इलायची डोडा सुपारी बहुत बीधै है दाख पिस्ता चारोली छिवारा खोपरा इत्यादिकनिमें परिमाणरहित लट कीडा इल्यां बहुत हजारां लाखां उत्पन्न होय है। पुरवाई पवनका संयोगतैं ही गुडादिकमें परिमाणरहित जीव उपजै है तथा मर्यादारहित वह लाडू पेडा घेवर बरफी इत्यादिकमे बहुत जीव प्रगट लट उपजै हैं। बहुरि हलदी धणां जीरा मिरच अमचूरको थोडी इनमें वर्षा-ऋतुमे बहुत त्रसजीव उपजै है तातै अल्प संग्रह करो नित्य देख सोधि प्रवर्तो यो यत्नाचार ही धर्म है। चून शीत ऋतुमें सात दिनका, ग्रीष्मऋतुमें पांच दिनका वर्षाऋतुमें तीन दिनका सिवाय भक्षण मत करो, चूनका संग्रह मत करो। चूनमें बहुत लट पैदा होजाय है दाल चावल इत्यादिक जब रांधो तदि दोय तीन बार सोधि रांधो। बहुरि प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमें ऐसा लिख्या है श्लोकार्द्ध—"सर्वाशनं च न ग्राह्यं दिनद्वययुतं नरैः" अर्थ—समस्त भोजन दोय दिनकर युक्त नाहीं भक्षण करना। यातैं एकरात्रि गयां सिवाय दूजी रात्रि व्यतीत होजाय सो भक्षण योग्य नाहीं यामें जलका संसर्गयुक्त पक्वान्नादिक हू आगये। बहुरि पुवा मोलपुवा सीरो इत्यादिक तथा बड़ा कचोरी रात्रवास्याको रस चलि जाय है। जातैं यामें जलका संसर्ग बहुत रहै है। बहुरि रोटी खिचड़ी तरकारी लोंजी रात्रिवासी तो भक्षण ही नाहीं करना अर स्वादसों चलि जाय तो उस दिनमें भी भक्षण नाहीं करना। बहुरि रात्रिका बनाया समस्त भोजन भक्षण नाहीं करना। बहुरि दही पहला दिनका जमाया दूजा दिन पर्यंत खावो अधिक नाहीं। बहुरि दोय दालका अन्नकूं दही छाछके सामिल भक्षण मत करो जो

मिलायकर खावोगे तो यामे विदलका दोष लगेगा जीभ नीचे कण्ठमे उतरते ही संमूर्छन-जीव उपजै है याकूं विदल कहिए है। बहुरि दुग्ध दूह्यां पाछै छानि दोय घडी पहली तप्त करो पाछै सम्मूर्च्छन त्रसनिकी उत्पत्ति होय है। घृत हू छाछमेसूं निकस्या पाछैं शीघ्र ही तपाय छानि भक्षण करना योग्य है ताया छान्यां विना मत भक्षण करो। बहुरि घृत तेल जल इत्यादिक रस चाम का पात्रमें घाल्या हुआ भक्षण योग्य नाहीं यामें असंख्यात त्रस जीव उपजै हैं। सींघडा (कुप्पा) बनै है ते मांसकूं गाडि पाछैं कूटि माटीके सांचे ऊपरि बनावै है इनका स्पर्श्या घृत तेल जल मांसके समान है। इनकी प्रवृत्ति मुसलमानांका राज्य हुआ तदि मुसलमानां चलाई है। जो चामका विना स्पर्श्या घृतादि नाहीं मिलै तो रूक्ष भोजन करो अर फागुन पीछैं तिलनिमें तथा सिंघाडेनिमे बहुत त्रसजीव उपजै है यातैं फागुन पीछैं तेल अथवा सिंघाड़ा कदाचित् मत भक्षण करो। बहुरि जलकूं गाढो दोहरा कपडासूं छाणिकरि पीवो अन्यकूं छाणिकरि प्यावो छाणिकरि ही पशूनिकूं हू प्यावो अणछाण्यां जलतैं स्नान भोजन वस्त्रधोवन इत्यादि कोई भी क्रिया मत करो जलमें यत्नाचार कियातैं दया-वानपनाकी हद्द बनी रहै है। पात्रका मुखतैं तिगुना लांबा दोहरा वस्त्र नवीन होय तातैं छाणा अजवाण्या (बिलछन) अन्य पात्रमें करि जलके स्थानमें पहुँचावो जलमें यत्नाचारकी याही मर्यादा है छाण्या पाछैं दोय घडीकी मर्यादा है फिर काम पड़ै तो फिर छाण करि वर्तो। तप्तजल दोय पहर वर्तो, बहुत उकलतो तप्त कियां हुवो आठ पहर वर्तो पाछैं निकाम है। बहुरि गेहूं यवादिकूं

अनिको घात जानि सर्वथा भक्षण मति करो जैसै— बोर लटांको प्रत्यक्ष स्थान है, भिंडीनिमे बहुत लट उपजैं है, बैंगण तरबूज कोहला पेठा जामुन आड़ू बड़वाला गोल अंजीर कठूमर ऊमर-फल पीलू आलू जामफल टींडू अज्ञातफल सूक्ष्म फल बीजाफल चलितरस तथा साराफल तथा पत्र शाक कन्दमूल आदो शृंगवेर सलगम प्याज लहसन गाजर किशोरिया इत्यादिक तथा कचनार महुआ क्षीरवृक्षका फल खिरनीकूं आदि लेय नीमका फल इत्यादिक अनेक फल है केवडा केतकी इत्यादिक फूल हैं तिनका तो प्रगट दोष आगमतैं वा प्रत्यक्षतै है ही परन्तु परमागमतै वन-स्पतीका ऐसा स्वरूप जानना--वनस्पती दोय प्रकार है एक प्रत्येक दूजी साधारण । प्रत्येक तो एक देहमें एक जीव है अर देह एक जामें जीव अनन्तानन्त सो साधारण वनस्पती हैं यातैं साधारण भक्षण करै तामे अनन्तानन्त जीवनिका घात जानि त्याग करना योग्य है। अब साधारण प्रत्येककी पहचानके ऐसे लक्षण जानने जिस वनस्पतीमें लीक प्रगट नाहीं भई होय, रेखसी नाहीं दीखी होय, कली प्रगट नाहीं भई होय अर जामें पैली प्रगट नाहीं भई होय अर जाका तोडता ही समभङ्ग हो जाय वा कांटे फूटे नाहीं तथा जाके माहीं तांतूं तूतड़ो प्रगट नाहीं भयो होय सो साधारण वनस्पती है यामें एक अणुमात्रमें अनन्तानन्त जीव है अर जिस वनस्पतीमें धार तथा कला तथा रेखा तथा पैली प्रगट दीखै सो साधारण नाहीं प्रत्येक वनस्पती है तथा जाकूं तोडिये डेढा वांका टूटै सूधा शस्त्रसे बनाया जैसा साफ बरोबर नाहीं टूटै तथा जाकै माहीं तार तूतड़ा प्रगट हो गया होय सो प्रत्येक वनपती है

परन्तु कोऊ वनस्पती पहली साधारण होय वाही एक अन्तर्मुहूर्तमें प्रत्येक हो जाय है कोऊ साधारण ही वनी रहै पान फूल बीज डाहली कूंपल इत्यादिक समस्त साधारण प्रत्येककी याही पिछाण जानना। पत्रमें समभंगादिक होय तो पत्र साधारण है अन्य समस्त वृक्ष साधारण नाहीं। बीज कूंपल समभंग सहित होय रेखादिक प्रगट नाहीं होय तेते बीज कूंपल साधारण है अन्य साधारण नाहीं ऐसैं इस वनस्पतीमें कोऊ साधारण मिल जाय काऊ प्रत्येक हो जाय इत्यादिक दोषरूप तथा वनस्पतिमें अनेक त्रसजीवनिका संसर्ग उत्पत्ति जानि जे जिनेंद्रधर्म धारण करि पापनितैं भयतीत हैं ते समस्त ही हरित-कायका त्याग करो जिह्वा इन्द्रियकूं वश करो अर जिनका समस्त हरितकायके त्याग करनेका सामर्थ्य नाहीं है ते कंदमूलादिक अनंतकायका तो यावज्जीव त्याग करो। अर जे पंच उदंबरादिक प्रगट त्रस जीवनिकरि भरया है ऐसा फल पुष्प शाक पत्रादि-कनिकूं छोडि करिकैं त्रसघातकरिरहित होवै ऐसी तरकारी फलादिक दश बीसकूं अपने परिणामनिके योग्य जानि नियम करो। इन सिवाय अट्ठाईस लाख कोड़ कुल वनस्पतीकाय है तिनका तो त्यागकरि भार उतारो। हरितकाय प्रमाणीकका नियम करै ताकै कोऱ्यां अभक्ष्य टलै है तिसमें पत्रजात भक्षण योग्य नाहीं। त्रसकी उत्पत्ति टालि अन्य वहुत घटाय नियम करो विना घटाया निरर्गल रह्यां असंयमीपना होय आस्रव होय है तातैं हरितकायका भक्षणमें नियम व्रत करना योग्य है। वहुरि जिस भोजन उपरि ऊलण आजाय ऊपर फूल सा नीला हरा लाल आजाय सो भोजन

मत करो यामें अनन्तजीवनिका घात है यातै जिसके ऊपर फूली आजाय सो दूरतैं ही त्यागो। बहुरि मोहके कारण प्रमादके उपजावनेवाले ज्ञानकूं विगाड़ने वाले जिह्वाइन्द्रिय अर उपस्थइन्द्रियकूं विकल करनेवाली ऐसी भांग तमाखू छोंतरा अमल हुक्का जरदा इत्यादिक अभक्ष्यनिका खावना पीवना जिनधर्मीनिकै त्यागने योग्य है। ये अमल पराधीन करै हैं इनमें अफीमका भक्षण करनेवालेकूं एक घड़ी अफीम नाहीं होय तो जमीनमें बेहोश होय पड़ि जाय है वेदनाका आर्त्तपरिणामतै पशु ज्यों पग जमीमें पड्या पड्या रगड़ै है निर्लज्ज हुआ याचनाकरै है नेत्रनितैं नीर पड़ै है और अफीम मिलि जाय तदि अमलमें आया भूला हुआ ऊंगवो करै है, जिह्वा इन्द्रियकी लोलुपता बधि जाय है स्वाध्याय धर्मश्रवण व्रत संयम उपवासादिकनिकूं दूरहीतैं त्यागै है बुद्धि धर्मतैं पराङ्मुख होजाय है, उत्तम आचार नष्ट होजा यहै। बहुरि हुक्काकी महामलीनता दुर्गंध तमाखू और धुवांका योगतैं पानीमें जीवेनिकी उत्पत्ति होय है जहां हुक्काका जल पड़े तहां छहकायके जीवनिका घात होय है। अर याकी दुर्गंधतैं उत्तम आचारके धारक नजीक बैठ नाहीं सकै हैं अर बारम्बार घरघरमें अग्नि हेरतो फिरै है घरमें राखको ठीकरो धर्योही रहै है नीचकुलवाले नीचजननिके पीवने योग्य है। हुक्का पीवनेवालेकूं गाडीवान घोडाका चाकर मीणा गूजर मुसलान इत्यादिकनिकी संगति रुचै है उत्तम कुलवालेनिके योग्य नाहीं है अर हुक्का नाहीं मिलै तो नाई धोबी गूजर मीणा तेली तमोली मुसलमाननिकी चिलम याचना करि पीवै है अर नाहीं पीवै तो बड़ा रोग पैदा होजाय

उदरमें आफरो चढ़ि जाय नीहार बन्द होजाय महान दुःख गले बाँध्या है तातैं व्रत संयम उपवास स्वाध्यायादिक समस्त उत्तम कार्यनिकूं तिलांजलि देहै। बहुरि जरदा महा अशुचि द्रव्य है याकूं मुखमें राखि मलमूत्र मोचन करै है रास्तामें मार्गमें मलमूत्रादिक ऊपरि पगरखी पहरे जरदा खाय है मांसभक्षी मद्यपायीनिका तथा नीच जातिका घरका पानी मिल्या कत्था चूना खाय है नीच जाति अपना हस्तादिक विना धोये अंग खुजावते जरदा मसल देहै उच्छिष्टकी ग्लानि नाहीं करै है समस्त शय्या आसन खूणा बारी जाली समस्त जायगां उच्छिष्टसूं लिप्त करिदेय है पशु हू रस्ते चालता सोता मुख नाहीं चलावै है याकै पशुतैं हू अधिक विकलता है। मुखमें महादुर्गंध रहै है जरदाका पीका जहाँ पडै तहां माछी माछर डांस मकडी कीडा कीडी बड़ा बड़ा त्रस ही मरि जाय तहां पंचस्थावरनिका घात होय ही। व्रत संयम उपवास स्वाध्याय जाप्य शुभ भावनाका नाश होय है जरदा खानेवालेनिकी बुद्धि आत्माके हितमें प्रवर्तन नाहीं करै है संयमके योग्य नाहीं होय है तामे दया क्षमा शील संतोप इंद्रियविजय परिणाम कदाचित् नाहीं प्रवर्तैं हैं अनेक पापाचार कपट छलमे बुद्धि प्रवीण होजाय है। अनेक व्यसननिनमें प्रवृत्ति होजाय है जरदा खानेवाले के मांगनेकी लाज नाहीं रहै। समस्त नीच जातिसूं भी मांगि करि खाय है। मद्य मांस खानेवाले जिसकाल मद्य पीवै हुक्का पीवै है उसका हस्ततैं दीया जरदा बीडी मांगि मांगि खाय है जरदा खानेवाले बहुत मनुष्यनिकूं नीकेकरि देखिए है एककै हू परमार्थ मे बुद्धि-परलोक शुद्ध करनेकी बुद्धि नाहीं होय है इस जरदेके

प्रभावकरि हीनआचारकी वृद्धि होय तदि परमार्थतैं बुद्धि भ्रष्ट होय लौकिकजनमें व्यभिचारमें लोभमें प्रवल होय है सांचा धर्म याकै नाहीं होय है ऐसा आपका परिणाममें आप अनुभव करो। अर परका जरदा खानेका स्वरूप प्रत्यक्ष देखि जरदा खानेका त्याग करो। अर जरदा एक दिन हू नाहीं खाय तो परिणाममें उपाधि उदरमें व्याधि अनेक रोगव्याधि उपजावै है तातैं जरदा खाना महारोगकूं महाव्याधिकूं सूगलापनाकूं अङ्गीकार करना है। वहुरि भांग पीवना हू अपना बडापना शोभितपना नष्ट कर देहै भंगेराका दरजा घटिजाय है, भंगेराके जिह्वा इन्द्रियकी लंपटता वधि जाय है। विकलीपना होइ जाय है प्रमादी हुआ ऐश करना वहुत निद्रा लेना बहुत घृत खांडका भोजन करना चाहै है। पाचोंइन्द्रियां विषयांकी लंपटतानै प्राप्त होजाय हैं ज्ञान शिथिल होजाय है वैसी होजाय है भांग पीवनेवालेके मीठा भोजनमे ऐसी लंपटता होजाय है जो मीठा मिलै कृतकृत्य होजाय है आत्मज्ञान धर्मका ज्ञान कदाचित् नाहीं होय है वाह्य आचरण भ्रष्ट होय ही है अर भांगमे हजारां त्रसजीव चालता दौडता उपजै है वर्षाऋतु में भांगमे अपरिमाण त्रसजीव, उपजै हैं भंगेरा भांग सोधै नाहीं घोटिकरि पीजाय है। ऐसैं हू अफीम खाना जरदा खाना हुक्का पीवना भांग पीवना अर और हू छोंतरा पीवना तमाखू सूंघना ये देहके तो महारोग ही है अमल करनेवालेकी आकृति बिगड़ि जाय है धर्म बिगड़ि जाय आचार बिगड़ि जाय ऐसा नियम है। ये नसा सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रका हू महाघातक है ये अमल अनर्थदंडनिमे हू हैं अर व्यसननिमें हू हैं यातैं मनुष्य जन्म अर जिनधर्म

उत्तम कुलादिक पायाकूं सफल किया चाहो हो तो अमल नसा करनेका त्याग ही करो।

बहुरि रात्रिके अवसरमें भोजन करना त्यागने योग्य ही है रात्रिभोजन करै ताकै यत्नाचार तो रहै ही नाहीं अर जीवनिकी हिंसा होय ही। रात्रिविषै कीडी मांछर मांखी मकडी कसारी अनेक जीव आय पडै हैं अर दीपक जोय भोजन करै तो दीपकके संयोगतैं दूरदूरके जीव दीपक कने शीघ्र आय भोजनमें पडै हैं। अर रात्रिभोजन जिनधर्मी होय करै तो आगांने मार्ग-भ्रष्ट होजाय अर रात्रिमें चूल्हा चाकी परींडाका आरम्भ करना मेलना धोवना मांजना ये घोरकर्म प्रगट होजांय तदि महान हिंसा अर महान दुःख प्रगट होजाय तदि घोर आरम्भीके जिनधर्मका लेश हू नाहीं रहै है। वहुरि कोऊ कहै जो आरम्भ तो नाहीं करै सीधा भोजन लाडू पेडा पूडी पूवा बरफी दुग्धादिक भक्षण करनेमें रात्रि आरम्भ नाहीं भया ताकूं ऐसा समझना जो दिवसकूं छांड रात्रि भोजन करै ताकै तीव्ररागरूप महान हिंसा होय है जैसैं अन्नके ग्रासका अनुराग अर मांसके ग्रासका अनुराग समान नाहीं होय है तैसैं रात्रि भोजनका अनुराग है सो दिनके भोजनका अनुरागके समान नाहीं है। दिवसमे ही भोजन बहुत है रात्रिदिवस दोऊनिमें भोजन करै ताके ढोर समान संवररहित प्रवृत्ति रही तथा रात्रिभोजन करनेवालेके व्रत तप नाहीं होय है। ऐसा विशेष जानना औ अनादिकालतैं विदेहनिमें एकबार वा दोयबार ही भोजन है रात्रि में कदाचित् हू भोजन नाहीं जो रात्रि भोजन करै तो चूल्हा पानी बुहारी जलादिकका समस्त आरम्भ रात्रिमें होजाय तदि भोजन

करनेमें, तरकारी बनावनेमें तथा पुरुषनिके भोजन करनेमें, स्त्रीनिके कुटुम्ब सेवकादिकनिके भोजन करनेमें, धोयवेमें, बुहारिवेमें, मांजनेमें दोय पहर रात्रि व्यतीत हो जाय है अनेक जीवनिका संहार होजाय समस्त यत्नाचारका अभाव होय जाय अर कीडा कीडी ईली कसारी मकडी इत्यादिक वड़े वड़े जीवनिका भोजनमें पतन तथा ईंधनमें चूल्हामें तरकारीमें जलमें पात्रनिमें पतन होय है अर दीपकादिक तथा चूल्हाका निमित्तकरि माखी माछर डांस पतङ्गादिक अनेक जीवनिका नितप्रति होम होजाय अर दिनमें भी आरम्भ अर रात्रिमें हू घोर आरम्भ करि समस्त कुटुम्बजननिके महादुःख पैदा होजाय। रात्रिमें घोर धन्धातैं समता नाहीं आसके तामें धर्मसेवन तथा शास्त्रका पठन श्रवण तत्वार्थकी चर्चा सामायिक जाप्य शुभध्यानका तो अवसर ही रात्रिभोजन करनेवाले के नाहीं रहै है यातैं जिनेन्द्रधर्मके धारक रात्रिभोजन कदाचित् हू नाहीं करै हैं ऐसी सनातनरीति अब ताईं चली आवै है अर जिनधर्मी रात्रिभोजन नाहीं करै हैं ऐसैं कोट्या मनुष्यनिमें प्रसिद्धता अर उज्वलता अर प्रभावना अर उच्चता अर भोजनकी शुद्धताकूं विगाड कोऊ विषयनिकरि प्रमादी अन्ध भया रात्रिमें दुग्ध कलाकन्द पेडा खाय है तथा औषधि जलादिक पीवे है सो अपने उत्तम आचार धर्मनै अर कुल मर्यादानै अर जैनीपनानै जलांजलि देय सन्मार्गतैं भ्रष्ट हुआ उन्मार्गी है, उनका मार्ग तो बाह्य अभ्यन्तर भ्रष्ट है अर आगानै अधर्मकी परिपाटी चलावै है। बहुरि रात्रिका किया भोजन दिनमें हू भक्षण करना योग्य नाहीं है। बहुरि मिथ्याधर्मके धारकनिकै मांसभक्षीनिकै संग बैठि भोजन मत करो।

नीचजातिकेसूं मित्रता मति करो, देवताके चढ्या भोजन मत भक्षण करो। दांतका चूडा, रोमका वस्त्र, कामली पहिर भोजन बनावैं तो भक्षण योग्य नाहीं मांसभक्षीनिके घरमे भोजन नाहीं करना नीचजातिके घरमे भोजन नाहीं करना। बहुरि अत्तारनिका अर्क तथा माजूम तथा शरबत अन्य हू समस्त वस्तु भक्षण करना योग्य नाहीं। अत्तारके विलायतका वण्यां म्लेच्छनिके जलकर बनाया उच्छिष्ट अर्कनिकी भरी हुई बोतलां आवै हैं अर समस्त वस्तु अज्ञात है अर अर्कादिकनिमें अनेक जलचर थलचर नभचर पंचेन्द्रियादिक जीवनिके मांसके कई अर्क हैं अर बहुत जातिकी मदिरा बनाय अर्क संज्ञा करैं हैं बहुत जीवनिके अण्डानिका रसकी बोतलां भरी हैं अर मधु जो शहद सो समस्त सरबत मुरब्बा माजूम जवारसादिकनिमें है अर अनेक जीवनिका अनेक अङ्ग इन्द्रियां जिह्वा कलेजा इत्यादिक शुष्क हुआ मांसनिकूं अत्तार वेचैं है यहांके समस्त उत्तमकुलनिकी बुद्धि भ्रष्ट करनेकूं मुसलमान लोकां अपनी उच्छिष्ट भक्षण करवानेकूं समस्त हिंदूस्तानके लोकनिकूं भ्रष्ट करनेकूं अत्तारनिकी दुकानां करवाई हैं करोड कषायीनिकी दुकान समान एक अत्तारकी दुकान है। यहां इस देशमे राजालोग हिन्दूधर्मकी रक्षावास्ते अठारासै बाईसका संवत तांई तो अत्तारका वसना, दुकान करना नाहीं होने दिया फिर कालके निमित्ततैं पापकी प्रवृत्ति फैली ही अब उत्तम कुलवाले हू इनका अर्कादिक खावने लगे हैं सो मुसलमाननिका झूंठन और मांस मदिरादिक भक्षण करने लगे तदि ब्राह्मणपना महाजनपना वैश्यपना कहां रह्या सब कुल भ्रष्ट भये अर अभक्ष्य भक्षण करने

सैतें सत्यार्थधर्मतें रहित लोकनिकी बुद्धि होगई है अर अत्तारनि-की औषधिहीतें रोग मिटै है ऐसा नियम नाहीं। अत्तारनिका अर्क पीवा करि धर्मभ्रष्ट होय बहुत लोक मरते देखिये हैं जिनके दुर्गतिका बन्ध होगया है तिनके ही इनकी भ्रष्ट औषधिसे आराम होय है। जैसें राजा अरविन्दके दाहज्वरका अनेक इलाज किया तो हू दाहज्वर शांत नाहीं भया अर पाछैं अपना महलकी छाति ऊपर लड़ते गिलमरानिका शरीरतें रुधिरका बूंद अपने शरीर ऊपरि पडा तातैं शीतलता भई तदि पापी पुत्रनिसूं कही मोकूं रुधिरकी बावडी भरायद्यो जो मैं वामे क्रीडा करि आतापरहित हो हूं तब पुत्र पापतै भयभीत होय लाखका रङ्गकी बावडी भराई तदि राजा बावडीकूं देखि बड़ा आनन्द मानि बावडीमें गर्क होय अर कपटके लोहीकी बावडी जानि पुत्र ऊपर क्रोधित होय पुत्रकूं मारनेकूं छुरी लेय दौड्या सो मार्गमें पडि अपना हाथकी छुरीतें आप मरि नरक जाय पहुँच्या। ऐसै ही जिनकी दुर्गति होनी है तिनकै अत्तारनिकी औषधिसूं आराम होय है तदि उनके पापरूप अत्तारी वस्तुनिमे प्रवृत्ति होय है यातैं प्राणनिका नाश होते हू छह महीनेके बालकहूकूं अत्तारकी औषधि देना योग्य नाहीं। धर्म विगड्यां पाछैं यो जिनधर्म अनन्तकालमें हू नाहीं मिलेगा तातैं जैनधर्मके धारकनिकूं हजारां खण्ड होजाय तो हू अभक्ष्यभक्षण नाहीं करना बहुरि बजारकी दुकाननिका चून कदाचित् मति भक्षण करो बेचनेवालेनिकै समस्त चमारी खटीकनी और मुसल-मानिनी धोबिन इत्यादिक तो पीसै हैं मुसलमान धोबी बलाईनिके राजाका तबेला तोपखानानितैं चून मिलै सो बजारवाले मोल लेय

होवै हैं अर महीनाका छह महीनाका पीस्याको प्रमाण नाहीं हजारां सुलसुल्यां पडि जाय हैं। घणा जणा वीधो नाज लेय मोदी लोग पिसावै हैं अर मुसलमान म्लेच्छ समस्त उसहीमें हस्त घालि तुला ले जाय हैं मुसलमानांकै नुकता विवाहमें काम नाहीं आवै सो आधा ओसणि आधो फेर जाय है बहुरि सराय का दुकानदारांका पीतलका कांसीका लोहेका पात्र भोजन करनेकूं लेना योग्य नाहीं समस्त मांस भक्षी दुराचारीनिकूं भी वे ही पात्र दे हैं तातैं अपना आचारकी उज्वलता चाहै हैं सो तीन-चार, पात्र अपने निकट राखि विदेशमें गमन करैं हैं अर जहां जाय तहां दमड़ी बधती देय चून तयार कराय भक्षण करै चूनकी नाहीं विधि मिलै तो खिचड़ी तथा घूघरी रांधि खाय। बहुरि बजारकी मिठाई लाडू बरफी घेवरादिक मत भक्षण करो। इनका चूनका घृतका कालका कुछ परिमाण नाहीं है। लोभी निंद्यकर्मीनिकै आचार नाहीं होय है बहुरि मैदाका खमीरा वाडिकरि सडावै हैं खट्टा पड़ते ही जामें अनन्तानन्त जीव पड़ै हैं। पाछैं कढाईमें पकै है भुनै हैं सो जलेवी करैं हैं सावूनी करै हैं सो भक्षण करने योग्य नाहीं तथा दहीमें खांड बूरा मिलाय बहुत काल पर्यंत मति राखो दोय मुहूर्त्ततांई खाना योग्य है अपना मित्र भाई पुत्रादिकके सामिल एक पात्रमें भोजन करना योग्य नाहीं। मनुष्य कूकरा बिलाई इत्यादिकनिका उच्छिष्ट भोजन त्यागना योग्य है तथा गाय भैंस गधा इत्यादिक तिर्यंचनिका उच्छिष्ट जलादिकमें स्नान मति करो पान तो कदाचित् हू मत करो तथा अन्नका खांडका लाप-सीका बनाया मनुष्य तिर्यंचनिका आकार-ताकूं मत भक्षण करो

तथा देवी दिहाडी व्यन्तरादिकनिकी पूजाके वास्तै संकल्प किया भोजन त्यागने योग्य है तथा मांसभक्षीनिका भाजनमें भोजन मत भक्षण करो। भाजन मांसभक्षीको मांग्या मत द्यो। नाईका भाजनका जलसों छौर मत करावो रजस्वलाका स्पर्शन किया पात्र भोजन योग्य नाहीं। बहुरि अनुपसेव्य जानि विकाररूप वस्त्र आभरण मत पहरो जो उत्तम कुलके योग्य नाहीं ऐसा नीच कुलनिके पहरनेके वैश्या तथा विटपुरुषनिके पहरनेके तथा म्लेच्छ मुसलमाननिके पहरनेके तथा स्वामी योगी फकीर भांडनिके पहरनेके वस्त्र आभरण परिणाम बिगाड़ै हैं अपने तथा परके विकार उपजानेवाला तथा अपना पदस्थके योग्य लोकतैं अविरुद्ध ऐसा आभरण वस्त्र भेष धारना योग्य है बहुरि कहनेकरि कहा संक्षेपतैं जानना जो समस्त संसार परिभ्रमणके कारण पंचइन्द्रियनिका विषयनिमें लालसा है तिन इन्द्रियनिमें हू जिह्वाइन्द्रिय अर उपस्थ इंद्रिय दोय इंद्रियनिकी लालसा इसलोक परलोक दोऊंनिकूं विगाड़ देनेवाली है इन दोय इन्द्रियनिके विषयकी लोलुपता जिनके अधिक है ते मनुष्यजन्ममें हू पशुके समान हैं। पशुयोनिमें हू इन दोऊ इंद्रियांका विषयकी चाहकरि परस्पर लडि लडि मरजाय हैं अर मनुष्यजन्ममें हू कलह करना मारना मरना निर्लज्ज होना उच्छिष्ट खावना दीनता भाषणा पुण्यदान लेना अभक्ष्य भक्षण करना इत्यादिक समस्त नीचकर्मनिमें प्रवृत्ति रसनाइन्द्रियके विषयनिकी लालसातैं ही होय है। अर देखहु भोगभूमिके अर देवलोकके नानाप्रकारके भोगनितैं हू तृप्तता नाहीं भई अब ये किंचित् जिह्वाका स्पर्शमात्रका स्वाद अति अल्पकालमें है भोजन

गिल्यां पाछैं नाहीं अर पहली नाहीं ऐसा तृष्णाका बधावनेवाला आहारमें लुब्धताका त्याग करि समस्त इन्द्रियांको विजय करि रस -नीरसकी- कर्म -जैसी विधि मिलाई तिसमें सन्तोष धरि अभक्ष्यनिका त्याग करि देहका धारणमात्रके अर्थि भोजन करै है सो समस्त पापरहित होय देवलोकका पात्र होय है। अब यहां ऐसा जानना जो भोगोपभोग परिणाम करै सो अपना परणामनिकी दृढ़ता देखै जो मेरे एता राग घट्या है एता हाल नाहीं घट्या- है अर सामर्थ्य देखै जो ऐसा योग्य बनैगा तो मेरा देहका तथा परिणामका इसकूं निर्वाह करनेका सामर्थ है कि नाहीं है ऐसा विचार करि व्रत धारण करना अर देशकी रीति निर्वाह योग्य देखनी अर कालकूं अवसरकूं देखना अवस्था देखना अपना कोऊ सहायी है कि त्यागव्रतके विगाड़नेवाला है ऐसा हू विचार करना शरीरका रोगरहितपना (नीरोगपना) देखना भोजनादिक मिलनेका, नाहीं मिलनेका संयोग देखना तथा भोजनादिक मेरे आधीन है कि पराधीन है ऐसे त्यागव्रततैं हमारे तथा स्त्री पुत्र स्वामी इत्यादिकनिके परिणाममें संक्लेश होयगा कि संक्लेश नाहीं होयगा अपना स्वाधीनपना पराधीनपना जानि जैसे परिणामनिकी उज्वलता सहित व्रतका निर्वाह होय तैसै नियमरूप त्याग करो तथा यम कहिये यावज्जीव त्याग करो। केतेक तो यावज्जीव ही त्यागने योग्य हैं—जामें प्रगट त्रसनिका घात होय तथा अनंत जीवनिका घात होय अपने कुलमें सेवने योग्य नाहीं होय तथा मद करनेवाला होय तथा मांस मद्य माखन मदिरा अचार महाविकृति अर रात्रिविषै भोजन द्यूतक्रीड़ादिक

सप्तव्यसन, बिना दिया परधनका ग्रहण अर त्रसहिंसा अर स्थूल असत्य, अन्यायका परिग्रह, बिना छान्या जल, अनर्थदण्ड ये तो यावज्जीव ही त्यागने योग्य हैं। इनमें नियम कहा करिये ये तो महा अनीति है इनके त्याग करनेमे शरीर ऊपरि कुछ क्लेश भार दुःख नाहीं आवै, अपयश नाहीं होय है इनका त्यागमे धन चाहिये नाहीं, बल चाहिये नाहीं, स्वामीका तथा स्त्रीका पुत्र कुटुम्बादिकनिका सहाय चाहिये नाहीं किसीकूं पूछनेका वाकिफ करनेका हू काम नाहीं अपने परिणामके ही आधीन है कोऊप्रकार इनका त्यागमें शीत उष्ण क्षुधा तृषादिककी बाधा पीड़ा भोगना पड़े नाहीं स्वाधीन है परिणामनिमे देहमें सुख करनेवाला है यातैं दुर्लभ सामग्री भोगोपभोगका परिमाण करना श्रेष्ठ है। बहुरि कदाचित् प्रबलकर्मके उदयतैं यो मनुष्य कुदेशमें पराधीनतामें जाय पड़ै तथा प्रबलरोगतैं पराधीन होजाय तथा प्रबल जराके आवनेतैं उठने बैठने चालनेकी सामर्थ्य घटि जाय तथा कोऊ स्त्री पुत्रादिक सहायो नाहीं होय तथा नेत्रनिकरि अंध होजाय बधिर होजाय तथा लम्बा रोग आजाय तथा बन्दीखानामें दुष्ट म्लेछादिक अपना भोजन जलादिक बिगाडि दें तथा जबरीतैं समस्तके सामिल बैठाय खान पान करावें ऐसा ऐसा उपद्रव आजाय तो तहां अन्तरंगमे तो व्रतसंयमकूं छांडै नाहीं बाहिर श्रीपञ्चनमोकार मन्त्रको ध्यान करि ही शुद्ध है क्योंकि बाह्य देहादिक पवित्र होहु वा अपवित्र होहु मलमूत्र रुधिरादिककरि लिप्त होहु समस्त कुत्सित ग्लानियोग्य अवस्थाकूं प्राप्त हुआ जो पुरुष परमात्माकूं स्मरण करै है सो बाह्य हू पवित्र है अर अभ्य-

न्तर हू जातैं देह तो सप्तधातुमय मलमूत्रादिकी भरी हुई अर रोगनिका स्थान है एक क्षणमें समस्त शरीरमें कोढ झरने लगि जाय है हजारां फोडा फुनसी गूमडी लोहू राध स्रवणे लगि जाय मलमूत्र अशुद्धिपूर्वक स्रवणे लगि जाय है ऐसा अवसरमें बाह्य व्यवहार शुद्धता कैसैं होय अर निर्धन एकाकीका सहायक कौन होय ? तहां धर्मात्मा पुरुष अशुभकर्मका उदयमें ग्लानि त्याग करके धीरता धारण करि आर्त्तपरिणाम करि संक्लेश नाहीं करै है अशुभकर्म के उदयकूं निर्जरा मानता अन्तरङ्ग वीतरागताकरि संसार देह भोगनिका स्वरूप चिन्तवन करता वारह भावना भावता कर्मके उदयतैं अपना आत्मस्वरूपकूं भिन्न ज्ञाता दृष्टा शुद्ध चिन्तवन करता वीतरागताकरि ही राग द्वेष हर्ष विषाद ग्लानि भय लोभ ममतारूप आत्माके मलकूं धोय आपकूं शुद्ध मानै है ताकै समस्त शुद्धता होय है।

अब भोगोपभोगपरिमाण व्रतकै दोय प्रकारता कहनेकूं सूत्र कहै हैं

नियमो यमश्च विहितौ द्वेधा भोगोपभोगसंहारात्
नियमः परिमितकालो यावज्जीवं यमो ध्रियते ॥८७॥

अर्थ—भगवान हैं सो भोग अर उपभोगका घटावनेतैं नियम अर यम ऐसैं दोय प्रकार भोगोपभोग परिमाण व्रत कह्या है। तिनमें कालका परिमाणकरि त्याग करना सो नियम कह्या है अर इस देहमें जीवन है तितने तक तो त्याग करि रहना सो यम कह्या है।

भावार्थ—जो एकवार भोगनेमें आवैं ऐसे आहारादिक तो

भोग हैं अर जे वारम्बार भोगनेमें आवैं ऐसे वस्त्र आभरणादिक हैं ते उपभोग हैं। तिन भोग उपभोगनिका परिमाण यम नियम करि दोय प्रकार है तिनमें जिस भोग उपभोगका एक मुहुर्त्त तथा दोय मुहूर्त्त तथा पहर तथा दोय पहर, एक दिवस, दोय दिवस पांच दिन पन्द्रह दिन एक मास दोय मास चार मास छह मास एक वर्ष दोय वर्ष इत्यादिक कालकी मर्यादा करि त्याग करै सो नियम नामका परिमाण है। जातै जो आपके उपयोगी होय शुद्ध होय ताका त्यागमें तो कालकी मर्यादाकरि ही नियमरूप त्याग करना अर जो आपके प्रयोजनरूप हू नाहीं होय तथा परिणामनिकूं विगाडने वाला होय अथवा सदोष होय ताकूं यावज्जीव त्याग करि यमनामा परिमाण करना योग्य है इस भोगोपभोग परिमाणतै अनेक पापके आस्रव रुक जाय हैं। इन्द्रियां वशीभूत हो जाय हैं राग अतिमन्द हो जाय है, व्यवहार शुद्ध हो जाय है। मन वश हो जाय व्यवहार परमार्थ दोऊ उज्ज्वल हो जाय तातैं भोगोपभोग परिमाण व्रत ही आत्मा का हित है विरुद्ध भोग तो त्यागिये ही और अविरुद्ध भोग होय तिनमें हू अपनी शक्ति परिमाण देश काल देखि दिवस रात्रिके कालकी मर्यादा करो तामें हू फिर दोय घड़ीकी चार घड़ीकी मर्यादा करि रहना यातैं कर्मनिकी बड़ी निर्जरा हैं।

अब और हू भोगोपभोगनिमें परिमाण करनेकूं सूत्र कहै हैं—

भोजनवाहनशयनस्नानपवित्राङ्गरागकुसुमेषु ।

ताम्बूलवसनभूषण—मन्मथसंगीतगीतेषु ॥८८॥

अर्थ—भोगोपभोग परिमाणनाम व्रतमें नित्य हू नियम करै

आजका दिनमें एक बार भोजन करूंगा वा दोय वार भोजन करूंगा वा तीन चार वार इत्यादिक भोजन करनेका परिमाण करै अथवा आजका दिनमें एती जातिका अन्न तथा एते रस, एते व्यञ्जन भक्षण करूंगा अधिक प्रकार भक्षण नाहीं करुंगा ऐसैं भोजनका नियम करै। वहुरि वाहन जे हस्ती घोड़ा ऊंट वलध पालकी रथ बहली नाव जहाज इत्यादिक वाहन ऊपरि चढनेका नियम करै। वहुरि पलंग खाट इत्यादिकविषै शयनका नियम करै जो आजमैं पलंगादिकमें शयन करूंगा वा भूमिमें ही शयन करूंगा। वहुरि आज एक वार स्नान करूंगा वा दोय वार स्नान करूंगा वा स्नान नाहीं करूंगा इत्यादिक नियम करै। वहुरि पवित्र जो अङ्गराग कहिये चन्दन केसर कर्पूरादिकके विलेपन करना वा नाहीं करना इनमें नियम करै वहुरि पुष्प तथा पुष्पनिकी माला आभरणादिक धारण करनेमें नियम करै। वहुरि तांवूल इलायची सुपारी लवंगादिक भक्षण करूंगा वा नाहीं करूंगा ऐसा नियम करै। वहुरि वस्त्रनिका नियम करै जो आज एते वस्त्र पहरूंगा अधिक नाहीं पहरूंगा ऐसैं वस्त्रनिमें नियम करै। वहुरि आज एते ही आभरण पहरूंगा अधिक नाहीं ऐसैं आभरण पहरनेमें नियम करै। वहुरि काम सेवनेका नियम करै। वहुरि नृत्य देखनेका नियम करै वहुरि गीत गावनेका वा अन्य वेश्या कलावन्तादिकनैं गवावनेका नियम करै। वहुरि और हू हरितकायके भक्षणमें नियम करै। वहुरि षट्रसके भक्षणमें जल पीवनेमें नियम करै। वहुरि सिंहासन कुर्सी चौकी इत्यादिक आसनमैं वैठनेका नियम करै। इत्यादिक अपने योग्य हू भोगउपभोगनिमें नित्य नियम करै ।

ताकै भोजनपानादिक करनेतैं हू निरन्तर संवर होय है।

अब नियमके अर्थि कालकी मर्यादा कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

अद्य दिवा रजनी वा पक्षो मासस्तथर्तु रयनं वा।
इति कालपरिच्छित्या प्रत्याख्यानं भवेन्नियमः ॥८६॥

अर्थः—अद्य कहिये एक घड़ी मुहूर्त प्रहर अर दिवा कहिये दिवस तथा रात्रि पक्ष तथा एक मास तथा दोय मासका ऋतु अर अयन कहिये छह मास इत्यादिक कालका परिमाण करि त्याग करना सो नियम है। ऐसै भोगोपभोगका परिमाण वर्णन किया।

अब भोगोपभोगपरिमाण व्रतके पंच अतीचार कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

विषयविषतोऽनुपेक्षानुस्मृतिरतिलौल्यमतितृषानुभवौ।
भोगोपभोगपरिमाव्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥६०॥

अर्थः—ये भोगोपभोग व्रतके पांच अतीचार त्यागने योग्य है। विषय हैं ते संताप बधावै है अर विषयांका निमित्ततैं मरण होय है यातै ये पंचइंद्रियनिके विषय विष हैं इनमें परिणामका राग नाहीं घटना सो अनुपेक्षा नाम अतीचार है॥ १॥ बहुरि जे विषय पूर्वकालमें भोगे थे तिनकूं बारम्बार याद करया करै सो अनुस्मृति नाम अतीचार है॥ २॥ बहुरि विषय भोगै तिस काल में अतिगृद्धितातै अति आसक्त हुआ भोगै सो अतिलौल्य नाम अतीचार है॥ ३॥ बहुरि विषयनिकूं आगामी कालमें भोगनेकी अति तृष्णा लगी रहै सो अतितृष्णा नाम अतीचार है॥ ४॥ बहुरि विषयनिकूं नाहीं भोगै तिस कालमें भी जानै भोगूं ही हूँ

ऐसा परिणाम सो अनुभव नाम अतीचार है ॥ ५ ॥ ऐसै भोगोपभोगपरिमाण व्रतके पांच अतीचार छांडि व्रतकूं शुद्ध करना।

इति श्री स्वामीसमंतभद्राचार्यविरचित, रत्नकरंडश्रावकाचारके मूल सूत्रनिकी देशभाषामय वचनिकाविषै तृतीय अधिकार समाप्त भया ॥ ३ ॥

अब च्यार शिक्षाव्रतनिके स्वरूपका निरूपण करनेकूं सूत्र कहै हैं—

देशावकाशिकं वा सामयिकं प्रोषधोपवासो वा।
वैय्यावृत्यं शिक्षाव्रतानि चत्वारि शिष्टानि ॥ ९१ ॥

अर्थः—देशावकाशिक (१) सामायिक (२) प्रोषधोपवास (३) वैयावृत्य (४) ऐसैं चार शिक्षाव्रत कहै हैं।

भावार्थः—ए चार व्रत हैं ते गृहस्थपनामें मुनिपनाकी शिक्षा करै हैं।

अब देशावकाशिक व्रतके कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

देशावकाशिकं स्यात्कालपरिच्छेदनेन देशस्य।
प्रत्यहमणुव्रतानां प्रतिसंहारो विशालस्य ॥ ९२ ॥

अर्थः—अणुव्रतनिके धारक पुरुषनिकै दिन दिन प्रति विस्तीर्ण देशकूं कालकी मर्यादा करि घटावना सो देशावकाशिक नाम शिक्षाव्रत है।

भावार्थः—जो पूर्वकालमें दश दिशानिमें जावना मंगावना भेजना वुलावना इत्यादिकनिकी मर्यादा यावज्जीव दिग्व्रतमें करी

थी सो तो बहुत थी तामेंतैं अब रोजीना क्षेत्रकूं घटाय कालकी मर्यादा करि व्रत करै सो देशावकाशिक व्रत है जैसैं पूर्व दिशामें दोयसै कोसका परिमाण यावज्जीव किया सो तो दिग्व्रत है फिर यामेंतैं रोजीना मर्यादा रूपकरि राखै जो आज चार कोस होका म्हारै परिमाण है वा इस नगर का ही परिमाण है वा आज अपने घर बाहिर नाहीं जाऊंगा सो देशावकाशिक व्रत है।

अब देशावकाशिक व्रतमें क्षेत्रकी मर्यादा प्रगट करै हैं—

गृहहारिग्रामाणां क्षेत्रनदीदावयोजनानां च ।
देशावकाशिकस्य स्मरंति सीम्नां तपोवृद्धाः ॥९३॥

अर्थ—तपोवृद्ध जे गणधर देव हैं ते देशावकाशिक व्रत करनेकूं सीमा मर्यादा कहै हैं गृहकूं, कटककूं, ग्रामकूं, क्षेत्रकूं नदीकू, वनकूं योजनकूं देशावकाशिक व्रतमें मर्यादा करै है। इनकूं उल्लंघनका हमारे इतने काल त्याग है।

अब देशावकाशिकमें कालकी मर्यादा कहै हैं—

संवत्सरमृतुमयनं मासचतुर्मासपक्षमृक्षं च ।
देशावकाशिकस्य प्राहुः कालावधिं प्राज्ञाः ॥९४॥

अर्थ—प्रवीणपुरुष हैं ते एक वर्ष, छह महीना, दोय मास, चार मास, एकपक्ष, एक नक्षत्र इस प्रकार देशावकाशिक व्रत के कालकी मर्याया कहै हैं। अब देशावकाशिकका प्रभाव दिखावैं हैं।

सीमान्तानां परतः स्थूलेतरपंचपापसंत्यागात् ।
देशावकाशिकेन च महाव्रतानि प्रसाध्यंते ॥९५॥

अर्थ—रोजीना जेता क्षेत्रका परिमाण किया ताके बारैं स्थूल

अर सूक्ष्म जे पंच पाप तिनका त्यागतैं देशावकाशिक व्रत करके महाव्रतनिकूं सिद्ध करिये हैं।

भावार्थ—मर्यादा करी तीं बारै समस्त पंच पापनिका त्यागतैं महाव्रत तुल्य भया। अब देशावकाशिक व्रतके पंच अतीचार कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

प्रेषणशब्दानयनं रूपाभिव्यक्तिपुद्गलक्षेपौ।
देशावकाशिकस्य व्यपदिश्यन्तेऽत्ययाः पञ्च॥९६॥

अर्थ—आपके जेता क्षेत्र की मर्यादा थी तिस बाहर प्रयोजनके अर्थि अपना सेवककूं वा मित्र पुत्रादिककूं कहै तुम जाओ तथा या काम करदो ऐसैं कहना सो प्रेषण नाम अतीचार है॥ १ ॥ बहुरि मर्यादाबाह्य क्षेत्रमें तिष्ठेनितैं वचनालाप करना तथा अन्य शब्दकी समस्या करि समझाय देना सो शब्द नाम अतीचार है ॥ २ ॥ बहुरि मर्यादाबाह्य क्षेत्रमें कोऊकूं बुलावना वा वस्त्रादिक वांछित वस्तुकूं शब्द कहि मगावना सो आनयन नाम अतीचार है ॥ ३ ॥ बाह्य क्षेत्रमें तिष्ठेनिकूं समस्या वास्ते अपना रूप दिखावना सो रूपाभिव्यक्ति नाम अतीचार है ॥ ४ ॥ बहुरि मर्यादाके क्षेत्रके बाह्य क्षेत्रमें वस्त्रादिक तथा कंकरी पाषाण काष्ठखंड आदिक फेंकि आपाकूं जितावना सो पुद्गलक्षेप नाम अतीचार है ॥ ५ ॥ ऐसैं देशावकाशिक व्रतके पंच अतीचार त्यागने योग्य हैं। ऐसें देशावकाशिक व्रत कह करि अब सामायिक स्वरूप कहैं हैं—

आसमयमुक्तिमुक्तं पञ्चाघानामशेषभावेन।
सर्वत्र च सामयिकाः सामयिकं नाम शंसन्ति॥९७॥

अर्थ—सामायिक कहिये परम साम्यभावकूं प्राप्त भये ऐसे गणधर देव हैं ते सामायिक नाम करि ताकी प्रगट प्रशंसा करै हैं जो सर्वत्र कहिये मर्यादा करी तिस क्षेत्रमे अर मर्यादाबाह्य क्षेत्रमे हू समस्त मनवचनकाय कृतकारित अनुमोदनाकरि कालकी मर्यादारूप जो समस्त पंचपापनिका त्याग सो सामायिक है।

भावार्थ—समस्त पंचपापनिका कालकी मर्यादाकरि समस्तपनाकरि त्याग सो सामायिक है। अब सामायिकमें पंचपापनिका त्याग करि कैसैं तिष्टै सो कहै है—

मूर्धरुहमुष्टिवासोबन्धं पर्यंकबन्धनं चापि ।
स्थानमुपवेशनं वा समयं जानन्ति समयज्ञाः ॥९८॥

अर्थ—समयज्ञ जे परमागमके जाननेवाले है ते मूर्द्धरुह जे केश तिनका बंधन अर मुष्टिबंधन अर वस्त्रबंधन अर पर्यंकासनबंधन-हू जैसैं होय तैसैं स्थान कहिये खड़ा तथा उपवेशन कहिये बैठा समय कहिये रागद्वेषादि रहित शुद्धात्मा सो है ताहि जानता रहै।

भावार्थ—सामायिक करनेवाला कालकी मर्यादा परिमाण समस्त प्रकार पापनिका त्याग करि खडा होय करि तथा पर्यंकासन कर बैठै। अर पर्यंकासनमे अपना वाम हस्ततल ऊपरि दक्षिण हस्ततलकूं स्थापन करै। अर अपना मस्तकका केश वा वस्त्र हलता होय तो परिणामके विक्षेप करै यातै मस्तकके चोटी इत्यादिकके केश होंय तिनकूं बांधिले अर वस्त्र हूं विखरि रह्या होय ताकूं हू गांठ देय बांधि करि सामायिक खडा हुआ करै वा बैठा हुआ करै। अब सामायिकके योग्य स्थानकूं कहै हैं—

एकांते सामयिकं निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषु च ।
चैत्यालयेषु वापि च परिचेतव्यं प्रसन्नधिया ॥६६॥

अर्थ—जिस स्थानमें चित्तकूं विक्षेप करनेके कारण नाहीं होय अर बहुत असंयमीनका आवना जावना नाहीं होय अर अनेक लोकनिकरि वाद विवादादिकका कोलाहल नाहीं होय स्त्रीनिका नपुंसकनिका आगमन प्रचार नाहीं होय अर जहां गीत नृत्य वादित्रादिकनिका प्रचार नजीक नाहीं होय अर तिर्यंचनिका अर पक्षीनिका संचार नाहीं होय और जहां बहुत शीतकी तथा उष्णताकी, प्रचंड पवनकी वर्षाकी बाधा नाहीं होय तथा डांस, माछर, मक्षिका, कीडा, कीडी, जवा, मधुमक्षिका, टांट्या, सर्प, बीछू, कनसला इत्यादिक जीवनकृत बाधा नाहीं होय ऐसा विक्षेपरहित स्थान एकान्त होय वा वन होय जीर्ण बागके मकान होय वा गृह होय वा चैत्यालय होय वा धर्मात्मा-जननिका प्रोषधोपवास करनेका स्थान होय ऐसा एकान्त विक्षेप-रहित वन होहु वा जीर्ण बाग तथा सूना गृहादिक चैत्यालयादिक में प्रसन्नचित्त हुआ सामायिकमें परिचय करो ।

अब सामायिककी और हू सामग्री कहिये है—

व्यापारवैमनस्याद्विनिवृत्त्यामन्तरात्मविनिवृत्त्या ।
सामयिकं बध्नीयादुपवासे चैकभुक्ते वा ॥१००॥
सामयिकं प्रतिदिवसं यथावदप्यनलसेन चेतव्यं ।
व्रतपञ्चकपरिपूरणकारणमवधानयुक्तेन ॥ १०१ ॥

अर्थ—कायकी चेष्टारूप व्यापार तामें विरक्तपनातें बाह्य

आरंभादिकतैं छूटि अर अन्तरात्मा जो मन ताकूं विकलपरहित करिकैं अर उपवासके दिनविषै अथवा एकभुक्तिके दिनविषैं सामायिकरूप तिष्ठै तथा आलस्यरहित पुरुष दिवस २ प्रति नित्य रोजीना यथावत् सामायिक जो है ताहि एकाग्रचित्तकरि युक्त हुआ परिचय करने योग्य है, वृद्धि करने योग्य है। कैसाक है सामायिक अहिंसादिक पञ्चव्रतनिकी परिपूर्णताका कारण है।

भावार्थ—सामायिक करनेमें उद्यमी श्रावक है सो समस्त आरम्भादिक कायकी क्रियाकूं त्याग करि अर मनका विकल्प छांडि सामायिक करै तिनमें कोऊ तो पर्वका निमित्त पाय उपवास जिस दिन करै तिसही दिनमें सामायिक करै कोऊ एक ठाणाके दिन सामायिक करै कोऊ नित्यप्रति सामायिक करै कोऊ एक दिवसकी आदि अन्तमें दोय बार नित्यप्रति सामायिक करै सो पूर्वाह्न मध्याह्न अपराह्न तीनकालविषै दोय दोय घड़ीका नियम करि साम्यभावकी आराधना करै सो एक स्थानमें निश्चल पर्यं-कासन तथा कायोत्सर्ग नाम निश्चल आसन धरि अंगउपांगनिका चलायमानपना छांडि काष्ठपाषाणकरि गढ़्या प्रतिबिंबतुल्य अचल होय दशदिशानिकूं नाहीं अवलोकन करता अपने अङ्गउपांगनि-कूं नाहीं देखता किसीतैं वार्ता नाहीं करता समस्त पञ्च इन्द्रियन के विषयनितैं मनकूं रोकि समस्त अचेतन द्रव्यनिमें राग द्वेष हर्ष विषाद वैर स्नेहादिकनिकूं छांडि सामायिकमें तिष्ठै है सामा-यिकमें तिष्ठता समस्त जीवनिमें मैत्री धारण करता परम क्षमा धारण करै है मैं सर्व जीवनमें क्षमा धारण करूं हूँ कोई जीव मेरा वैरी नाहीं है मेरा उपार्जन किया मेरा कर्म ही वैरी है मैं अजान

भावतैं क्रोधी अभिमानी, लोभी होय करकै विपरीत-परिणामी हुआ जाकी प्रवृत्तिसूं मेरा अभिमानादि पुष्ट नाहीं भया तिसकूं ही वैरी मान्या कोऊ मेरा स्तवन वड़ाई नाहीं करी, मेरे कर्तव्यकी प्रशंसा नाहीं करी ताकूं वैरी समझ्या मेरा आदर सत्कार उठना स्थान देना इत्यादिकमे मन्द प्रवर्त्या ताकूं वैरी जान्या तथा कोऊ मेरा दोष छो ताकूं जनाया ताकूं वैरी जान्या तथा कोऊ मेरे आधीन नाहीं प्रवर्तन किया तथा मोकूं कुछ भोजन वस्त्र धनादिक नाहीं दिया ताकूं वैरी मान्या सो ये समस्त मेरी कषायतैं उपजी दुर्बुद्धितैं अन्य जीवनिमें वैर बुद्धि ताहि छांडि क्षमा अंगीकार करूं हूँ अर अन्य समस्त जीव हैं ते हू मेरा अज्ञानभाव विषयकषायांके आधीन जानि मेरे ऊपरि क्षमा करो मोकूं माफ करो ऐसैं वैर विरोधकी बुद्धिकूं छांडि मैं समस्तमें समभाव धारि सामायिक अंगीकार करूं हूं जेते दोय घटिका परिमाणमें मनकरि वचनकरि कायकरि समस्त पच इन्द्रियनिका विषयनिकूं समस्त आरम्भ परिग्रहकूं त्यागकरि भगवान पंचपरमेष्ठीका स्मरण करता तिष्ठूं हूं ऐसैं सामायिकका अवसरमें प्रतिज्ञाकरि पंच नमस्कारके अक्षरनिका ध्यान करता तथा पंच परमेष्ठीके गुणनिकूं स्मरण करता तथा जिनेन्द्रका प्रतिविंवकूं चिंतवन करता सामायिकमें तिष्ठै तथा अपणा आत्माका ज्ञाता दृष्टा स्वभावकूं रागद्वेष तैं भिन्न अनुभव करता तिष्टै तथा चार मंगल पद, चार उत्तम पद चार शरण पदनिकूं चिंतवन करता तिष्टै तथा द्वादशभावना षोडशकारणभावना चिंतवन करै अर चतुर्विंशति तीर्थंकरनिका स्तवनमें तथा एक तीर्थंकरकी स्तुति तथा पंच परम गुरुनिकै

स्तवनमें इनके अर्थमें एकाग्रचित्त धारण करि सामयिक करै तथा प्रतिक्रमण करनेकूं समस्त दिवसमें किये दोषनिकूं दिनका अंतमें चिंन्तवन करै अर समस्त रात्रिमे जे दोष किये तिनकूं प्रभात समय चिंतवन करै जो यो मनुष्य जन्म अर तामें भगवान सर्वज्ञ वीतरागका उपदेश्या धर्म अनन्तकालमें बहुत दुर्लभ प्राप्त भया है इस जन्मकी घडी हू धर्म विना व्यतीत मत होहू ऐसा विचार करै जो आजका दिनमे तथा रात्रिमें जिनदर्शन पूजन स्तवनमे केता काल व्यतीत किया अर स्वाध्याय सत्संगति तत्त्वार्थनिकी चर्चा तथा पंचपरमेष्ठिनिका जाप ध्यानमें तथा पात्रदानमे केता काल व्यतीत किया अर बहुत आरम्भ में अर इन्द्रियनिके विषयनिमे अर व्यवहारादिक विकथामें अर प्रमादमे, निद्रामें काम सेवनमें भोजनपानादिकमे आरम्भदिकनिमे केता काल व्यतीत किया तथा मेरा मनवचनकायकी प्रवृत्ति तथा रागादिक संसारके कार्यनिमे अधिक भई कि परमार्थमें अधिक भई ऐसैं समस्त दिवसका किया कर्तव्यकूं दिनका अन्तमें चिंतवन करै अर रात्रिका कियाकूं प्रभात समय चिंतवन करै जातैं जो पांच रुपयाकी पूंजी लेय बनिज करै है सो हू नित्य रोजाना अपना ठगावना कुमावना टोटा नफाकी संभाल करै है तो पूर्व पुण्यके प्रभावतै इस जन्म लाया जो उत्तममनुष्य जन्म वीतरागधर्म सत्सगति इंद्रियपरिपूर्णतादिक धन तिसमें व्यवहार करता ज्ञानी अपनी आत्माके हानि वृद्धि नाहीं संभालि करै कहा ? जो टोटा नफाकी संभाल नाहीं करै तो परलोकतैं ल्याया धर्मधनादिकनिकूं नष्ट करि घोर तिर्यंच गतिमे वा नारकीनिमें निगोदनिमें जाय नष्ट हो जाय

तातैं धर्मरूप धनका वधावनेका अर्थि एक दिनमें दोय वार तो संभाल करै ही अर जो कषायनिके वशतैं जो अपने मन वचन-कायकी दुष्ट प्रवृत्ति भई ताकूं वारम्वार निंदा करै हाय मैं दुष्ट चितवन किया तथा कायतैं दुष्ट क्रिया करी, हाय मैं वचनकी प्रवृत्ति वहुत निंदा करी यामें महा अशुभ कर्मवन्ध किया, धर्मकूं दूषित किया अपयश प्रगट किया, अव इस निंद्य कर्मकूं चितवन करते मेरे परिणाम पश्चात्तापकरि दग्ध होय है अहो ! मोहकर्म वड़ा वलवान है जो मैं मेरे दुष्ट परिणामनिकी दुष्टताको अर पाप के करने वाले अर दुर्गतिके ले जाने वाले हमारे निंद्य परिणामनिकूं नीकै मेरा घात करने वाले जानूँ हूँ अर प्रयोजन रहित जानूं हूं अर अपनी जीवितव्यकूं वहुत अल्प जानूं हूँ अर परलोकमें मेरे किये कर्मका फलकूं मैं ही अकेला ही भोगूंगा ऐसा अच्छी तरह वारम्वार परिणामामें निश्चय करूं हूँ चितऊ हूँ। चितवन करते करते हू मेरा परिणाम जो अन्य जीवनितैं वैर अर विषयनमें राग नाहीं घटै है सो यो प्रवल मोह कर्मकी महिमा है याहीतैं मोहकर्मका नाश करि त्रिजयकूं प्राप्त भये ऐसे पंच परमेष्टिनिकूं स्मरण करूं हूँ जो मोहकर्मके जीतनेवाले जिनेन्द्रका प्रभावकरि मेरे मोहकर्मतैं उपजे रागभाव द्वेषभाव कामादि विकारभाव तथा क्रोधभाव अभि-मान भाव मायाचारके भाव लोभभाव मेरा नाशकूं प्राप्त होहु जैसी वीतरागता जिनेन्द्र भगवान पाई तैसी मेरे भी होहु इस अभिप्रायतैं मैं कायतैं ममत्व छांड़ि पंचपरमेष्टीका ध्यानसहित कायोत्सर्ग करूं हूँ तथा अज्ञानभावतैं जो पूर्वकालमें पृथ्वीकायका खोदना कुचरना कूटना इत्यादिक करि घात किया होय तथा अव-

गाहनेकरि विलोवनकरि छिड़कनेकरि स्नानादिकवरि जलकायका जीवांकी विराधना करी तथा दाबना बुझावना कसेरना कूटना इत्यादिककरि अग्निकायके जीवनिकी विराधना करी तथा बीजणां इत्यादिककरि पवनकायका जीवांकी विराधना करी तथा जड़ कन्द मूल छाल कूपल पत्र फूल फल डाहला डाहली सींख तृण घास वेल गुल्म वृक्षादिकनिका तोडना छेदना बनारना उपाडना चबाना रांधना बांटना इत्यादिककरि वनस्पतिकायकी विराधना करी तिनतैं उत्पन्न भया पापकर्म तिनका नाश परमेष्ठीके जाप्यके प्रभावतैं मेरे होहू अर परमेष्ठीके ध्यानका प्रभावतैं अब मेरा परिणाम छह कायनिके जीवनिकी घाततैं पराङ्मुख होहू संयमभावकी प्राप्ति होहू। बहुरि जो मेरे गमनमें आगमनमें उठनेमें पसारनेमें संकोचनेमें भोजनमें पानीमें आरम्भमें उठावनेमें मेलनेमें तथा चाकी चूल्हा ओखली बुहारी जलका परींडा अर सेवा कृषि विद्या वाणिज्य लिखना शिल्पकर्म जीविकामें तथा गाड़ी घोड़ा इत्यादिक वाहननिमें प्रवर्तन करि जो मेरी यत्नाचाररहित प्रवृत्ति ताकरि जो द्विइन्द्रिय त्रिइन्द्रिय चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय जीवनिकी विराधना भई होय सो मिथ्या होहू। मैं बुरी करीये आरम्भादिक भला नाहीं संसारमें डुबोनेवाले हैं, नरक देनेवाले हैं इन आरम्भविषय कषायनिकरि हीं यो जीव एकेन्द्रियादिक तिर्यंचनिमें अनन्तानन्त काल क्षुधा तृषा मारन ताडन लादन बंधन बालन छेदन फाड़न चीरन चावन इत्यादिक घोर दुःख भोगता ते हिंसातैं उपजाया कर्म को नाशके अर्थि अर आगाने हिंसारूप परिणामका अभावके अर्थि मैं पंच नमस्कार पदका शरण ग्रहण करू हूं। बहुरि अज्ञान

भावतैं व प्रमादतैं जो मैं असत्य वचन कह्या तथा गाली दीनी तथा भण्डवचन कह्या तथा मर्मछेद करनेवाले कर्कश वचन व कठोर कह्या तथा किसीकूं चोरीका कलंक लगाया किसीकूं कुशीलका कलंक लगाया तथा धर्मात्मा ज्ञानी तपस्वी शीलवन्तनिकूं दोष लगाया तथा धर्मात्मानिकी निन्दा करी तथा सांचे देव-धर्मगुरुकी निन्दा करी तथा मिथ्याधर्मकी पोषणा करी हिंसाकी प्रवृत्तिका उपदेश किया तथा मिथ्याधर्मकी प्ररूपणा करी तथा स्त्रीनिकी कथा राजकथा भोजनकथा देशकथा इत्यादिक घोर पापनिमें मेरा वचन प्रवर्त्या ताका अब पश्चात्ताप करूं हूं। मैं घोर कर्मका बन्ध किया जाका फल नरकनिके दुःख तथा तिर्यंच-गतिनिके घोर दुःख अनन्तकाल भोगने हैं अर अनन्तकाल गूंगा बहिरा आंधा नीच जाति नीच कुलमें महा दारिद्रसहित उपजना है यातैं अब दुष्ट वचनके बोलनेकरि उपजाया पापकर्मका नाशके अर्थि अर अब आगाने मेरे दुष्ट वचनमें प्रवृत्ति कदाचित मत हो हू इस वास्ते मैं पंचनमस्कारपदका शरण ग्रहण करू हूं बहुरि अज्ञानभावतैं वा प्रमादतैं पूर्वकालमें जो मैं परका विना दिया धन गिरया पड्या भूल्या ग्रहण करनेमें परिणाम किया कपटछलतैं ठग्या तथा जबर होय परका धन राखि मेल्या, नाहीं दिया तो बहुत संक्लेश आपकै अर अन्यकै उपजाय दिया तातैं घोर पाप उपजाया ताका फल नरक तिर्यंचादि गतिनिमें परिभ्रमण अनन्तकालपर्यंत दरिद्रादिक घोर दुःख होना है यातैं चोरी करि उपजाया जो पापकर्म ताका नाशके अर्थि अर आगामी मेरा पराया धन विना दिया ग्रहण करनेमें परिणाम कदाचित [illegible]

होहू इस वास्ते मैं पंचनमस्कारपदका शरण ग्रहण करूं हूँ बहुरि परकी स्त्रीके रूप आभरण वस्त्र भाव विलासकूं राग भावतैं देखनेकी इच्छा करि तथा राग भावतैं देखी तथा संगमादिक किया तातै उपार्जन किया घोर पाप जाका फल अनन्तकालपर्यंत नरकगतिनिमें परिभ्रमण करि अनेक भवनमें हजारां रोगका पावना तथा दरिद्रादि दुःख भोगना तथा बहुत कालपर्यंत कामरूप अग्निकरि दग्ध भया असंख्यात भवनिमें कामवेदनाकरि पीडित हुआ लडि लडि मर जाना है तातैं परस्त्रीकी वांछाकरि उपजाया पापकर्मका नाशके अर्थि अर आगामी कालमें मेरा अन्यकी स्त्रीमें अनुराग कदाचित् मत होहू इस वास्ते मैं पंचपरमगुरुनिका पंचनमस्कारमन्त्रका ध्यान करूं हूँ। बहुरि मैं अज्ञानी परिग्रहमें बड़ी ममता करि शरीरादिक पुद्गलकूं मेरा मानि यामें ही आपा जान्या तथा रागादिकभाव मोहकर्मके उदयतैं भया तिनिकूं अपना भाव मानि परद्रव्यनिमें बड़ी आसक्तता करी धनधान्य कुटुम्बादिककी वृद्धिकूं अपनी वृद्धि मानी इनकी हानिकूं अपनी हानि मानी अर अब हू जायगा हाट आजीविका स्त्री पुत्र धन धान्य आभरण वस्त्रादिक हजार वस्तुरूप परिग्रहमें हमारा हमारा ऐसी बुद्धिमें विपरीतता लग रही है जो आपका ज्ञान परका ज्ञान पाप-पुण्यका ज्ञान परलोकका ज्ञान नष्ट होय रह्या है कण्ठगत प्राण हो जाय तो हू ममता नाहीं घटै है अर जगत्में प्रत्यक्ष देखै है जो किसीकी लार परिग्रह गया नाहीं मेरी लार जायगा नाहीं तो हू दिन प्रति वधाया चाहै है यामे मरण करूं तहां पर्यंत किंचित् मत घट जावो इस प्रकार ही निरन्तर चिंत-

वन रहे हैं इस परिग्रहरूप दावाग्निकूं संतोषरूप जलकरि नाहीं बुझाया चाहै है समस्त पापनिका मूल एक परिग्रहमें मूर्छा है मैं अज्ञानी याहीका आरम्भमें, याहीमें ममता धारण करनेकरि अनन्तकालमें दुर्लभ ऐसा मनुष्य जन्म जिनधर्म पाया ताहि बिगाड़ि अनन्तभवनिमें नरक तिर्यंच गतिनिसे दुःखकूं अङ्गीकार किया ताका मेरे बड़ा पश्चात्ताप है अब ऐसे घोर पापकर्मके नाश करने का उपाय भगवान पंचपरमेष्ठीका शरण बिना कोऊ दूजा है नाहीं अर आगामी कालहूमें परिग्रहमें विरक्तताका करानेवाला भगवान पंचपरमेष्ठी बिना कोऊ है नाहीं यातैं मूर्छाका नाशके अर्थि परम सन्तोष उपजनेके अर्थि परिग्रहका त्यागके अर्थि पंचनमस्कारका ध्यानपूर्वक कायोत्सर्ग करूं हूं।

अब सामायिक में तिष्ठता गृहस्थ कैसा है सो कहै हैं—

सामयिके सारम्भाः परिग्रहा नैव संति सर्वेऽपि।
चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावम् ॥१०२॥

अर्थ—गृहस्थ जे हैं तिनके सामायिकके अवसरविषै आरम्भकरि सहित समस्त ही परिग्रह नाहीं हैं यातैं सामायिक करता गृहस्थ जो है सो वस्त्रसहित मुनिकी ज्यों यतिका भावकूं प्राप्त होय है।

भावार्थ—सामायिकके अवसरमें समस्त आरम्भ अर समस्त परिग्रह नाहीं है परन्तु गृहस्थ है यातैं वस्त्र पहरै है तातैं वस्त्र बिना अन्यप्रकार तो मुनितुल्य ही है मुनिकै नग्नपना होय है याकै वस्त्रधारण है एता ही अन्तर है तातैं मुनि नाहीं कह्या जाय

हैं। बहुरि जो उपसर्ग परीषह आजाय तो मुनीश्वरनिकी ज्यों धीरता धारण करि सकै कायर नाहीं होय ऐसें सूत्र कहै है—

शीतोष्णदंशमशकपरिषहमुपसर्गमपि च मौनधराः।
सामयिकं प्रतिपन्ना अधिकुर्वीरन्नचलयोगाः॥ १०३॥

अर्थ—सामायिककूं धारण करता गृहस्थ मौनकूं धारण करै है अर मनवचनकायकूं नाहीं चलायमान करता शीत उष्ण दंश शकादि परीषह अर चेतन अचेतनकृत उपसर्गनिकूं सहै हैं।

भावार्थ—सामायिक करनेके अवसरमे जो शीतका उष्णताका वर्षाका पवनका डास मांछर दुष्टनिके दुर्वचन रोगपीडादिका परीषह आ जाय तथा दुष्ट वैरीकरि किया तथा सिंह व्याघ्र सर्पादिक तथा अग्निजलादिकजनित उपसर्ग आजाय तो वड़ा धैर्य धारणकरि मनवचनकायकूं साम्यभावतै नाहीं चलायमान करता मौनसहित समस्तकूं सहै है।

अब सामायिक करता संसारका स्वरूपकूं अर मोक्षके स्वरूपकूं ऐसै चिंतवन करै है—

अशरणमशुभमनित्यं दुःखमनात्मानमावसामि भवम्।
मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति ध्यायन्तु सामयिके॥ १०४॥

अर्थ—सामायिक धारता गृहस्थ संसारकूं ऐसे चिंतवन करै यो चतुर्गतिमें परिभ्रमणरूप संसार अशरण है यामें अनन्तानंत जन्म मरण करते अनंतकाल व्यतीत भयो अर समस्त पर्यायनिमें क्षुधा तृषा रोग वियोग मारन ताडन भोगवें कहूं शरण नाहीं जो कोऊ कालमे कोऊ क्षेत्रमें कोऊ रक्षा करनेवाला नाहीं तातैं

संसार अशरण है। वहुरि अशुभकर्मके बन्धनकरि दुःखका देनेवाला अशुभदेहरूप पिंजरामें फस्या हुआ अशुभ कषायनिरूप अशुभभावनिमें लीन हुआ निरन्तर अशुभका ही बन्ध करता अशुभ ही कूं भोगै है यातै यो संसार अशुभ है। वहुरि इस संसारमें जीव अनन्तानन्तकाल परिभ्रमण करते करते कदाचित् सुक्षेत्रमें वास उत्तमकुल इन्द्रियपरिपूर्णता सुन्दररूप प्रबलबुद्धि जगतमे पूज्यता, मान्यता तथा राज्यसम्प्रदा, धनसम्पदा सुन्दर मित्रनिका सङ्गम, आज्ञाकारी महाप्रवीण सुपुत्र, मनोहर वल्लभाका संगम तथा पण्डितपना सूरपना वलवानपना आज्ञा ऐश्वर्यादिक मनोवांछित भोग, नीरोग शरीरादिक कर्मके उदयकरि पा जाय तो क्षणमात्रमें विजुलीवत्, इंद्रधनुषवत्, इन्द्रजालीका नगरवत् नियमतैं विलाय जाय हैं। फिर अनन्तानन्तकालमे हू नाहीं प्राप्त होय हैं तातैं संसार अनित्य है अर समस्तकालमें कर्मवन्धनसहित देहपिंजरमें फस्या अनन्तानन्त जन्ममरणादिकनिकरि सहित है अनन्तकालहूमें दुःखका अभाव नाहीं तातै संसार दुःख ही है। बहुरि संसारपरिभ्रमणरूप मेरा आत्मा नाहीं तातैं संसार अनात्मा है ऐसै सामायिकमें तिष्ठता गृहस्थ चिंतवन करै है अहो परिभ्रमणरूप संसार है सो अशरण है अनित्य है दुःखरूप है अर मेरा स्वरूप नाहीं ऐसा संसारमें मिथ्याज्ञानका प्रभावकरि मैं अनन्तकालतैं वास करूं हूं। अव मोक्ष जो संसारतैं छूटना है सो मेरा आत्माकूं शरण है फिर अनन्तानन्व कालमें हू संसारमें आवनेकरि रहित है। वहुरि शुभ है अनन्त कल्याणरूप है वहुरि नित्य है अविनाशी है वहुरि अनन्तानन्तस्वरूप है जामें अनन्त-

ज्ञानादि अर अनाकुलतारूप है अर मेरा आत्माका स्वरूप है पर रूप नाहीं ऐसैं सामायिकमें तिष्ठता गृहस्थ संसारका अर मोक्षका स्वरूप चिंतवन करै है। साम्यभाव सहित सामायिक दोय घड़ी मात्र हो जाय तो महान कर्मकी निर्जरा है सामायिककी महिमा कहनेकूं इन्द्र हू समर्थ नाहीं है सामायिकके प्रभावतै अभव्य हू ग्रैवेयिक पर्यंत उपजै है सामायिक समान धर्म न कोऊ हुयो न होसी यातैं सामायिक अङ्गीकार करना ही आत्माका हित है। अर जाकैं सामायिकादिकका पाठका ज्ञान नाहीं, आवै नाहीं ते पंचनमस्कारमात्र ही एकाग्रतातैं मनवचनकायकूं निश्चल करि समस्त आरम्भ कषायविषयनिका त्याग करि पंचनमस्कारमन्त्र का ध्यान करता दोय घटिका पूर्ण करो।

अब सामायिकके पञ्च अतीचार कहै हैं —

वाक्कायमानसानां दुःप्रणिधानान्यनादरास्मरणे ।
सामयिकस्यातिगमा व्यज्यन्ते पंच भावेन ॥१०५॥

अर्थ—ए पांच सामायिकका भावनिकरि अतीचार है सामायिक करते वचनकी संसार सम्बन्धी प्रवृत्ति करना सो वचन दुःप्रणिधान नाम अतीचार हैं ॥१॥ बहुरि शरीरकी संयम रहित चलायमानपनाकी चेष्टा सो कायदुःप्रणिधान नाम अतीचार है ॥२॥ बहुरि मनमें आर्तरौद्रादिक चिंतवन करै सो मनोदुःप्रणिधान नाम अतीचार है ॥३॥ बहुरि सामायिककूं उत्साहरहित निरादर तैं करै सो अनादर नाम अतीचार है ॥४॥ बहुरि सामायिक करता देव वंदनादिकके पाठ भूलि जाय वा कायोत्सर्गादिक भूलि जाय सो अस्मरण नाम अतीचार है ॥५॥ ऐसैं पंच अतीचार

सहित सामायिकका वर्णन किया।

अब प्रोषधोपवासकूं वर्णन करै हैं—

पर्वण्यष्टम्यां च ज्ञातव्यः प्रोषधोपवासस्तु।
चतुरभ्यवहार्याणां प्रत्याख्यानं सदिच्छाभिः ॥१०६॥

अर्थ—पर्वणि जो चतुर्दशी अर अष्टमीका दिवसरात्रिविषै चार प्रकारका आहारका जो सम्यक्‌इच्छा करि त्याग करना सो प्रोषधोपवास जानने योग्य है। एकमासविषैं दोय अष्टमी अर दोय चतुर्दशी ए अनादितैं पर्व ही हैं इन पर्वनिमें गृहस्थ व्रत-संयम सहित ही रहै जातैं धर्मात्मा संयमी हैं ते तो सदाकाल व्रती ही रहै हैं यातैं धर्ममें अनुरागका धारक गृहस्थ एक महीनामें चार दिन तो समस्त पापके आरम्भ अर इन्द्रियनिके विषयनिकूं नष्ट करि व्रतशीलसंयमसहित उपवास धारण करि चार प्रकारका आहारका त्याग करि संयम सहित तिष्ठै ताकै प्रोषधोपवास जानना। अब प्रोषधोपवासका विशेष कहैं हैं। सप्तमीके दिन वा त्रयोदशीके दिन मध्याह्नकाल पहली एक वार भोजन-पानादिक करि समस्त आरम्भ वणिज सेवा लेन-देनका त्याग करि देहादिकमें ममत्व त्यागि एकान्त वस्तिका तथा जिन-मन्दिरमें एकान्त स्थान वा चैत्यालय वा शून्य-गृह मठादिक वा प्रोष-धोपवास करनेका स्थानमें जाय समस्त विषय कषायनिका त्याग करि मनवचनकायकी प्रवृत्तिनिकूं रोकि धर्म-ध्यान करिकैं वा स्वाध्यायकरिकैं सप्तमी वा त्रयोदशीका अर्द्ध दिनकूं व्यतीत करै, पाछैं संध्याकाल संबंधी देववन्दनादिक करि रात्रिनै धर्म-कथा वा जिनेन्द्रका स्तवनादिक करि रात्रि व्यतीत करै वा धर्म-

ध्यान करता शोधित संथरामें अल्पकाल प्रमाद टालि रात्रि व्य-
तीत करै अष्टमी चतुर्दशीका प्रा:तकालमें सामायिकादिक बन्दना
करि तथा प्रासुक द्रव्यनितैं पूजनकरि शास्त्रका अभ्यासकरि
भावनाका चिंतवनिकरि धर्मध्यानसहित अष्टमी चतुर्दशीका दिन
अर समस्त रात्रिकूं व्यतीतकरि नवमी वा पूर्णिमाका प्रभात-
संबंधी कर्मक्रिया करि पूजनादि वन्दना करि उत्तम मध्यम जघन्य
पात्रमें कोऊ पात्रका लाभ होय ताकूं भोजन कराय आप पारनौ
करै। ऐसैं षोडश प्रहर धर्मसहित व्यतीत करै ताकैं उत्कृष्ट प्रोष-
धोपवास होय है। तथा कार्तिकेयस्वामी कह्या है जो अष्टमी
चतुर्दशीके दिन स्नान विलेपन आभूषण स्त्रीसंसर्ग पुष्प अतर
फुलेल धूपादिकनितैं त्याग जो ज्ञानी वीतरागतारूप आभरण करि
भूषित हुआ दोऊ पर्वनिमें सदाकाल उपवास करै वा एक वार
भोजन करै वा नीरस भोजन करै ताकै प्रोषधोपवास होय है
तथा अमितगतिश्रावकाचारमें पर्वीका दिनमें उपवास अनुप-
वास एक भुक्त ऐसैं तीन प्रकार कह्या है। तिनमें चार प्रकार
आहारका त्यागकूं उपवास कह्या अर एक वार जल ग्रहण करै
ताकूं अनुपवास कह्या अर एक वार अन्न-जल ग्रहण करना ताकूं
एकभुक्त ऐसी संज्ञा है परन्तु तात्पर्य ऐसा जानना जो अपनी
शक्तिकूं नाहीं छिपाय करिकै धर्ममें लीन भया उपवास करै तथा
आगैं प्रोषधप्रतिमा चतुर्थी कहसी तिसविषै तो षोडश प्रहरका
नियम जानना अर दूजी व्रतप्रतिमामें यथाशक्ति व्रत तप संयम
धारण करि पर्वामें धर्मध्यान सहित रहना।

अब उपवासमें और हू वर्णन करै हैं—

पंचाना पापानामलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणां ।
स्नानाञ्जननस्यानामुपवासे परिहृतिं कुर्यात् ॥१०७॥

अर्थ—उपवासके दिन हिंसादिक पञ्च पापनिका त्याग करि रहै अर अलंक्रिया कहिये आभरणादिक मण्डनका त्याग करै अर गृहकार्यका आरम्भ जीविकाका आरम्भ छांड़ै अर सुगंधि केशर कर्पूरादिक तथा अतर फुलेलादिक गंधके ग्रहणका त्याग करै अर पुष्पनिका ग्रहण करनेका त्याग करै बहुरि स्नान करनेका नेत्रमें अञ्जन आंजनेका अर नास लेनेका त्याग करै तथा और हू नृत्य वादित्रके बजावनेका देखनेका श्रवणका त्याग करै। तथा और हू पंच इन्द्रियनिके भोगका त्याग करै जातैं उपवास करि है सो इन्द्रियनिका मद मारनेकूं अर इन्द्रियनिका विषयांमें गमन है ताके रोकनेकूं अर कामके मारनेकूं प्रमाद आलस्यादिकनिके रोकनेकूं नष्ट करनेकूं आरम्भादिकतैं विरक्त होनेकूं परीषह सहनेमें सामर्थ्य होनेकूं धर्मके मार्गतैं नाहीं चिगनेकूं जिह्वा इन्द्रिय उपस्थइन्द्रियके दण्ड देनेकूं उपवास करिये है अर अपनी प्रशंसा वा लाभ वा परलोकमें राज्यसंपदादिक प्राप्त होनेकूं उपवास नाहीं करिये है। केवल विषयानुराग घटावनेकूं शांति वधावनेकूं उपवास करिये है जातैं इन्द्रियां खानपानादिकनैं नाना स्वादमें निरन्तर प्रवर्तें हैं उपवास करनेतैं रसादिकनिके भोजनमें लालसा नष्ट हो जाय, निद्राका विजय हो जाय, काम मारया जाय तातैं उपवासका बड़ा प्रभाव जानि उपवास करिये है।

अब उपवासका दिन कैसे व्यतीत करै सो कहै हैं—

धर्मामृतं सतृष्णः श्रवणाभ्यां पिवतु पाययेद्वान्यान् ।
ज्ञानध्यानपरो वा भवतूपवसन्नतन्द्रालुः ॥ १०८ ॥

अर्थ—उपवास करता गृहस्थ है सो निरालसी हुआ संता ज्ञानका अभ्यासमे अर धर्मध्यानमें तत्पर होहू अर अतितृष्णारूप हुआ धर्मरूप अमृतका पान कर्णइन्द्रियकरि करिहू । अर अन्य भव्य जीवनिकूं धर्मरूप अमृतका पान करावो ।

भावार्थ—उपवासके दिन धर्मकथा श्रवण करो तथा अन्य धर्मात्मानिकूं धर्मश्रवण करावो ज्ञानका अभ्यासकरि वा धर्मध्यानमें लीनता करि ही उपवासका अवसर व्यतीत करो आलस्य निद्राकरि व्यतीत मत करो । तथा आरम्भादिकमें विकथामें काल व्यतीत मत करो । उपवासका अर्थ कहै हैं—

चतुराहारविसर्जनमुपवासः प्रोषधः सकृद्भुक्तिः ।
स प्रोषधोपवासो यदुपोष्यारम्भमाचरति ॥ १०६ ॥

अर्थ—अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य ये चार प्रकारके आहार इनका त्याग सो उपवास है अर धारणाका दिन विषैं अर पारणा का दिनविषै एकवार भोजन करना सो प्रोषध कहिये है ऐसैं षोडश प्रहर भोजनादिक आरम्भ छांडि पाछै भोजनादिक आरंभ आचरण करै सो प्रोषधोपवास है ।

अब उपवासके पंच अतीचार कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

ग्रहणविसर्गास्तरणान्यदृष्टमृष्टान्यनादरास्मरणे ।
यत्प्रोषधोपवासे व्यतिलंघनपञ्चकं तदिदम् ॥११०॥

अर्थ—जो प्रोषधोपवासके पंच अतीचार हैं ते ऐसैं जानने, नेत्रनितैं देख्यां विना अर कोमल उपकरणतैं शुद्ध किये विना जो पूजाके तथा स्वाध्यायके उपकरण ग्रहण करना (१) बहुरि देख्यां सोध्यां विना उपकरणनिका मेलना अथवा शरीरके हस्व पादादिक पसारना (२) बहुरि देख्यां सोध्यां विना आस्तरण जो शयन करनेका उपकरण बिछावना बैठना (३) ऐसैं ए तीन अतीचार हैं। बहुरि उपवासमें अनादर करना उत्साह रहित करना सो अनादर नाम अतीचार है (४) बहुरि उपवासके दिन क्रिया पाठ करनेकूं भूल जाना सो अस्मरण नाम अतीचार है (५) ऐसै उपवासके पंच अतीचार कहे ते टालने योग्य हैं।

अब वैयावृत्य नामा शिक्षाव्रत कहनेकूं सूत्र कहैं हैं इस व्रतकूं अतिथिसंविभाग नाम हू कहिये है—

दानं वैयावृत्यं धर्माय तपोधनाय गुणनिधये ।
अनपेक्षितोपचारोपक्रियमगृहाय विभवेन ॥ १११ ॥

अर्थ—यहां परमागममें दानहीकूं वैयावृत्य कहिये है जातैं तप ही धन है अर्थात् जो इच्छानिरोधादिक तपहीकूं अपना अविनाशी धन जानै है जातैं तप विना समस्त कर्मकलंकमलरहित आत्माका शुद्ध स्वभावरूप अविनाशी धन नाहीं पाइये तातैं रागादिक कषायमलका दग्ध करनेवाला ऐसा तपरूप धन ग्रहण किया अर जो संसारमें नष्ट करनेवाला जड अचेतन विनाशीक सुवर्णादिका त्याग किया ऐसा जो तपकी निधि जो परम वीतरागी दिगम्बर यतिनकूं आप दाताके अर पात्रके धर्मप्रवृत्तिके अर्थि जो दान देना सो वीतरागी यतीनकी वैयावृत्य है, कैसे हैं दिगम्बर यती सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान

सम्यक्चारित्र इत्यादिक गुणनिका निधान है बहुरि कैसे हैं यातै नाहीं है अन्तरङ्ग बहिरङ्ग परिग्रह जिनके ऐसे मठ मकान उपासरा आश्रमादिकरहित एकाकी अथवा गुरुजनाकी चरणाकी लार कदे वनमें, कदे पर्वतनिकी निर्जन गुफानिमे, कदे घोर वनमें, नदीनके तटनिमें नियम रहित है नित्य विहार जिनका, असंयमीनिका गृहस्थनिका संगमरहित आत्माकी विशुद्धता जो परम वीतरागताकूं साधता अर लौकिकजनकृत पूजा स्तवन प्रशंसादिककूं नाहीं चाहता परलोकमें देवलोकादिकनिके भोगनिकूं तथा इन्द्रपनाका अहिमिंद्रपनाका ऐश्वर्यकूं रागरूप अंगारेनिकरि तप्त महान् आताप उपजावनेवाली तृष्णाके वधावनेवाले जानि परम अतीन्द्रिय आकुलतारहित आत्मीक सुखकूं सुख जानता देहादिकमें ममत्वरहित आत्मकार्य साधै है। ऐसे साधुजनका वैयावृत्यका लाभ अनन्तकालमें दुर्लभ है। कैसे हैं साधु यद्यपि इस देहतै अत्यन्त निर्ममत्व हैं तो हू देहकूं रत्नत्रयका सहकारी कारण जानि रस नीरस कड़ा नरम आहार देय रत्नत्रयका साधनकरि धर्मके अर्थि इस कृतघ्नदेहकी रक्षा करै हैं जो अकालमें देह नष्ट होय जायगा तो मरकरि देवादिक पर्यायमें असंयमी जाय उपजूंगा तहां असंख्यातकालपर्यन्त असंयमी हुआ कर्मका बन्ध करूंगा तातैं जो आहारादिकका त्याग करि इस मनुष्यपनाका देहकूं मारया तो कर्ममय कार्माण देह नाहीं मरैगा इस देहकूं मारया तो नवीन और देह धारण करूंगा तातै इन समस्त शरीरके उत्पन्न करनेका बीज जो कर्ममय कार्माणदेह है याके मारनेमें यत्न करूं। यातैं कषायनिकूं जीतता विषयनिका निग्रह करता छियालीस दोष टालि

बत्तीस अन्तरायरहित चौदहमलका परिहार करिकै आपके निमित्त नाहीं किया ऐसा शुद्ध आहारकी योग्यता मिल जाय तो अर्द्ध उदर तो भोजनतैं भरै चतुर्थभाग जलतैं भरै चतुर्थभाग ध्यान अध्ययन कायोत्सर्गादिकमें सुखतैं प्रवृत्तिके अर्थि खाली राखै है। न्योत्या बुलाया जाय नाहीं, याचना करै नाहीं, हस्तादिककी समस्या करै नाहीं ऐसे साधुनकूं जो आहारादिकका दान सो वैश्यावृत्य है। कैसाक है दान अनपेक्षितोपचारोपक्रिय जो प्रत्युपकार कहिये हमारा हू कुछ उपकार करैगा वा उपक्रिय कहिये हमकूं प्रसन्न होय विद्या मन्त्र औषधादिक देगा तथा मुनीश्वरनिके अर्थि देनेतैं मेरी नगरमें दातापनाकरि मान्यता हो जायगी वा राज्यमान्य हो जाऊंगा, वा मेरे घरमें अटूट धन होजायेगा तातैं आगैं पंचाश्चर्य भये हैं मेरे हू लाभ होयगा ऐसा विकल्प अर वांछा नाहीं करता केवल रत्नत्रयका धारकनिकी भक्तिकरि आपकूं कृतार्थ मानि अपना मनवचनकायकूं तथा गृहचारा पायाकूं कृतार्थ मानता दान करै है आनन्दसहित आपनेकूं कृतकृत्य मानै है सो वैयावृत्य है। वैयावृत्यका अन्य हू स्वरूप कहै है—

व्यापत्तिव्यपनोदः पदयोः संवाहनं च गुणरागात्।
वैयावृत्यं यावानुपग्रहोऽन्योपि संयमिनां ॥ ११२ ॥

अर्थ—संयमीनके जो व्यापत्ति व्यपनोद कहिये नाना प्रकारकी जे आपदा ताहि दूर करना अर संयमीनका चरणमर्दनादिक करना और हू जो संयमीनका गुणमें अनुराग करि यावन्मात्र उपकार करना सो वैयावृत्य है।

भावार्थ—साधुनिके ऊपरि कोऊ देव मनुष्य तिर्यञ्च वा अचेतनकरि किया उपसर्ग आया होय तो अपनी शक्तिप्रमाण उपसर्ग दूर करै तथा चोर भील दुष्टादिक मार्गमें खेदित किया होय अर परिणाम क्लेशित होय गया होय तिनकूं धैर्य धारण करावना तथा मार्गकरि खेदित भया होय ताका पादमर्दनादिक करना रोगी होय ताका संयम मलीन नाहीं होय तैसै यत्नाचारतै आसन शय्या वस्तिकाका सोधना यत्नारपूर्वक उठावना, बैठावना, शयन करावना, मलमूत्रादिक कराय देना जो अबुद्धिपूर्वक मलमूत्रादिक अयोग्य स्थानमें वा वस्तिकामें भया होय तो यत्नतै अविरुद्ध स्थानमें क्षेपना तथा कफ नाशिका मलादिककूं पूंछना उठाय अविरुद्ध स्थानमें क्षेपणा, आहार औषधादिक संयमीके योग्य होय तिनकूं अवसरमे देय वेदना दूर करना तथा कालके योग्य बाधारहित वस्तुका देना, वेदना करि चलायमान चित्त होगया होय तौ उपदेश देय चित्तकूं थांभना, धर्मकथा करना, अनुकूल प्रवर्तना गुणनिका स्तवन करना ऐसै संयमीनिका गुणनिमे अनुराग करि जेता उपकार करना सो समस्त वैयावृत्य है।

अब वैयावृत्यमे प्रधान आहारदान है ताकूं कहिये हैं—

नवपुण्यैः प्रतिपत्तिः सप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन ।
अपसूनारम्भाणामार्याणामिष्यते दानम् ॥११३॥

अर्थ—सप्त गुणनिकरि सहित जो दातार है सो सून अर आरम्भ करि रहित जे आर्य कहिये सम्यग्दर्शनके धारक मुनि तिनकूं नवपुण्य परिणामनिकरि जो प्रतिपत्ति कहिये गौरव

आदर करि अंगीकार करना ताहि दान कहिये है।

भावार्थ—दान करना सो तीन प्रकारके पात्रनिकूं करना तिनमें जो चाकी चूल्हा ओखली बुहारी परींडा ये तो पंच सून अर द्रव्यका उपार्जनकूं आदि लेय समस्त आरम्भ अर पंच सून करि रहित तो उत्तम पात्र दिगम्बर साधु है। व्रतनिका धारक श्रावक मध्यमपात्र है अर व्रतकरि रहित अर सम्यक्त्वकरि सहित जघन्य पात्र हैं तिनमें उत्तमपात्रादिकनिकूं दानका देनेवाले दातार के सप्त गुण है। दान देय इस लोकसम्बन्धी विख्यातता लोकमान्यता राजमान्यता धनधान्यादिककी वृद्धि यशाकीर्तनादि इस लोकसम्बन्धी फल न चाहिये ॥ १ ॥ बहुरि दातार क्रोधकषायकूं नाहीं प्राप्त होय जो बहुत लेनेवाले हैं कौन कौनकूं देवैं ऐसा क्रोध नाहीं करि मुनि श्रावकादिकनिकूं दान देना ॥२॥ बहुरि कपटकरि सहित दान नाहीं करै कहना और, दिखावना और, करना और, लोकनिकूं भक्ति दिखावमाही संक्लेशित होना ऐसा कपटकरि रहित दान करै ॥३॥ अन्य दातारतैं इर्ष्यारहित होय दान करै जो इसने कहा दिया है मैं ऐसा दान करूं जो मेरा दानतैं इसका यश घटि जाय ऐसैं ईर्ष्याभावकरि दान नाहीं करै ॥४॥ अर दान देय विषादकरैं नाहीं जो कहा करूं मैं समस्तमें उच्चता राखूं हूं अर नाहीं दूं तो मेरी उच्चता घटिजाय ऐसैं विषादी हुआ नाहीं देवै॥५॥बहुरि पात्रका संगम मिल जाय या निर्विघ्न दान होजाय तिसका अपूर्व निधि पायेकासा आनन्द मानना सो मुदितभाव जानना ॥६॥ दान देनेका मद अहंकार नाहीं करना सो निरहंकारता नाम गुण है

॥ ७ ॥ ऐसैं पात्र-दान करता दातार सप्तगुण सहित होय है। बहुरि पात्रकूं दान देवै सो मुनि श्रावकका जैसा पद होय तिस परिमाण नवधा भक्तिकरि देवै, नव प्रकार भक्तिके नाम—संग्रह ॥ १ ॥ उच्चस्थान ॥ २ ॥ पादोदक ॥ ३ ॥ अर्चन ॥ ४ ॥ प्रणाम ॥ ५ ॥ मन:शुद्धि ॥ ६ ॥ वचनशुद्धि ॥ ७ ॥ कायशुद्धि ॥ ८ ॥ एषणाशुद्धि ॥ ९ ॥ तिनमें मुनीश्वरनिकूं तथा क्षुल्लककूं तो तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ याका अर्थ खडा रहो खडा रहो खडा रहो ऐसैं तीन वार कहना जामें अति पूज्यपनातै अति अनुराग जाका चित्तमें होयगा सो ही तीन बार आदरपूर्वक कहैगा अन्य हू श्रावकादिक योग्यपात्र घर आवें तो आइये पधारिये विराजिये इत्यादिक आदरके वचनका कहना सो संग्रह वा प्रतिग्रह है ॥ १ ॥ बहुरि उच्चस्थान देना ॥ २ ॥ अर प्रासुक प्रमाणीक जलसूं चरण धोवना ॥ ३ ॥ जैसा अवसर जैसा पात्र ताकै योग्य पूजन स्तवन पूज्यपनाके वचन कहना ॥ ४ ॥ अर मुनि वा श्रावकाकी योग्यता प्रमाण नमस्कार आदि करना ॥ ५ ॥ मनकी शुद्धता करनी ॥ ६ ॥ वचनकी शुद्धता करनी—अयोग्य वचन नाहीं बोलना ॥ ७ ॥ कायशुद्धि यत्नाचार सहित चलना उठना इत्यादिक ॥८॥ अर भोजन शुद्धि पात्रके योग्य होय सो देना यो एषणा शुद्धि है ॥ ९ ॥ ऐसैं जिन-सूत्रके अनुसार पात्रके योग्य देशकालके योग्य आहार देना। जातैं पात्रके गुणनिमें हर्ष अनुराग विना देना निष्फल है अर जाकूं धर्म प्रिय होयगा ताकै धर्मात्मामें अनुराग होयहीगा ऐसा नियम है। अर मुनीश्वरनिके जिनधर्मीकी नवधाभक्तिहीतैं परीक्षा होय है जाकै नवधाभक्ति नाहीं ताका हृदयमें

धर्म हू नाहीं धर्मरहितके मुनीश्वर भोजन हू नाहीं करै है। अन्य हू धर्मात्मा पात्र गृहस्थादिक हैं ते हू आदर विना लोभी होय धर्म का निरादर कराय दान वृत्तितै भोजनादिक कदाचित् नाहीं ग्रहण करै है जैनीपना ही दीनतारहित परम संतोष धारण करना है। अर दातार है सो ऐसा आहार औषधि शास्त्र वस्तिका वस्त्रादिक द्रव्यका दान करै जातैं रागद्वेष बधै नाहीं, मद बधै नाहीं, जातैं मोह काम आलस्य चिंता असंयम भय दुःख अभिमानका करने- वाला द्रव्यकूं देना योग्य नाहीं। जिस द्रव्यके देनेतै स्वाध्याय ध्यान तप संतोषकी वृद्धि होय सो द्रव्य देने योग्य है। जातैं पात्र का दुःख मिटि जाय, रोग नष्ट होजाय परिणामका संक्लेश नष्ट होजाय ऐसा द्रव्य देना योग्य है। इहां अन्य विशेष जानना, दानविषैं पांचप्रकार जानना—दाता ॥ १ ॥ देय ॥ २ ॥ पात्र ॥३॥ विधि ॥४॥ फल ॥ ५ ॥ दाता तो कैसाक होय सप्त गुणका धारक होय धर्ममें तत्पर पात्रनिके गुणनिके सेवनमें लीन भया पात्रकूं अंगीकार करै प्रमादरहित ज्ञानसहित शांतपरिणामी हुआ पात्र की भक्तिमें प्रवर्तै सो भक्तिकगुण दातारका है ॥१॥ देनेमें अति आसक्त हुआ पात्रका लाभकूं परम निधान लाभ मानै सो दाता- रका तुष्टि गुण है ॥ २ ॥ साधुनिकूं दान होजाना इसलोक पर- लोकमें परम कल्याण है ऐसा परिणाममें गाढ सो दातारका श्रद्धा नाम गुण है ॥ ३ ॥ जो द्रव्य क्षेत्र काल भावकूं सम्यक् विचार योग्य वस्तुका दान करै सो दातारका विज्ञान गुण है ॥ ४ ॥ दानकूं देय दानका प्रभावतैं संसारसंबंधी धन राज्य ऐश्वर्य विद्या मंत्र यश कीर्तनादि फलकूं नाहीं चाहै सो दातारका अलोलुप

गुण है ॥ ५ ॥ जाकै अल्प हू वित्त होय तो हू दान देनेमें बड़ा उद्यम होय जाका दानकूं देखि धनाढ्य पुरुषनिके हू आश्चर्य उपजै सो दातारका सात्विकगुण है ॥६॥ कलुषताका महान कारण हू आजाय तो हू किसीके अर्थि रोष नाहीं करै सो दाताका क्षमा गुण है ॥७॥ और हू मुनि तथा श्रावक तथा अव्रत सम्यग्दृष्टि ये तीन प्रकारके पात्र तिनके अर्थि देनेवाले उत्तम दातारके अनेक गुण है। विनयवान होय विनयरहितका दान निष्फल है जातै कुछ देनेकूं नाहीं होय तो विनय करना ही महादान है। सत्कार करना प्रिय वचन बोलना स्थान देना गुण स्तवन करना यो ही बड़ो दान है धर्ममें प्रीति होय दानका अनुक्रमका ज्ञाता होय दानका कालकूं जाननेवाला होय जिनसूत्रका जाननेवाला होय भोगनिकी वांछा रहित होय समस्त जीवनिका दयालु होय रागद्वेषकी मंदता जाकैं होय सार असारका जाननेवाला होय समदर्शी होय, इन्द्रियनिकूं जीतनेवाला होय, आया परीषहतैं कायरतारहित होय अदेखसका भावरहित होय, स्वमत परमतका ज्ञाता होय प्रियवचनसहित होय, व्रतीनिका पवित्र गुणकरि जाका चित्त व्याप्त होय लोकव्यवहार अर परमार्थ दोऊनिका जाननेवाला होय सम्यक्त्वादि गुणसहित होय, अहंकारादि मदरहित होय, वैयावृत्यमें उद्यमी होय ऐसा उत्तम दातार प्रशंसायोग्य है। बहुरि जाका हृदयमे निरंतर ऐसो विचार रहै कि जो द्रव्य व्रतीनिकी सेवामें लागै तथा साधर्मी जननिका उपकारमें श्रावक जननिके आपदा दुःख निवारनमें धर्मके बधावनेमें धर्ममार्गके चलावनेमें लगैगा सो धन मेरा है। अन्य संसारके कार्यनिमे विषय भोगनिमें कुटुम्बके विषय

कषाय साधनेमें जो धन खर्चं होय सो केवल बंधके करनेवाला संसारसमुद्रमें डवोनेवाला है, ये कुटुम्बके धन खायहैं तेतो दाया-दार हैं धन वटावनेवाले हैं, जवरीतैं धन लूटनेवाले हैं, राग द्वेष क्रोधादि कषाय उपजाय व्रत संयमका घात करनेवाले हैं अर मोकूं पापमें प्रेरणा करनेवाले है अर मेरे हू इनका संयोगतैं ऐसा अज्ञा-नरूप अंधकार छाया है जातैं धर्म अधर्म, न्याय अन्याय, यश अपयश कछु नाहीं दीखै है। स्त्री पुत्रादिकके विषय साधनेकूं अन्य निर्बल तथा भोले अज्ञानी जीवनिका धनके ठगनेमें लूट लेनेमें परिणाम उद्यमी होय जाय हैं। इस कुटुम्बकूं धन वस्त्र आभरण भोजनादिककरि तृप्ति करनेके अर्थि झूठमें चोरीमें निरं-तर परिणाम लग्या रहै है यातैं अब भगवान वीतरागका धर्मकूं पाय कुटुम्बके अर्थि धनका उपार्जनके अर्थि अन्यायमें अनीतिमें तो नाहीं प्रवर्तन करना जो न्यायमार्गतैं धनका उपार्जन होइगा तिसमेंतैं मेरा कुटुम्बका अर धर्मके अर्थि दानका विभाग करि जीवनका दिन व्यतीत करूंगा। धन यौवन जीतव्य क्षणभंगुर हैं अवश्य जायगा, मरण अचानक आयगा धनसंपदा कुटुम्बादि कोऊ लार नाहीं जायगा। मेरा दान शील तप भावनाकरि उपजाया पुण्य एक परलोकमें मेरा सहायी होय लार जायगा जो इहां समस्त सामग्री मिली हैं सो पूर्व जन्ममें जैसा दान दिया तैसो फली हैं अब दानके देनेमें धर्मात्मानिकी सेवामें दुःखित बुभु-क्षितनिके उपकारमें प्रवर्तूंगा तो परलोकमें समस्त सुखकूं प्राप्त हूंगा मोक्षमार्गकी सम्यग्ज्ञानादिक सामग्रीकूं प्राप्त हूंगा भोजन तो दानपूर्वक भक्षण करै ताका भोजन करना सफल है अपना

उदर भरना तो पशूके हू है जाके गृहमें पात्रदान है ताका गृहाचार सफल है दान विना पशनिके हू रहने योग्य बिल होय ही है। पक्षीनिकै घूंसला होय ही हैं। समुद्रमें जल हू बहुत अर रत्न हू बहुत परन्तु जल तो महाक्षार अर रत्न मगर मच्छादिकन करि व्याप्त दोऊ उपकार विना निष्फल हैं। तैसैं धनवान कृपण का धन परके उपकार रहित है सो निष्फल है। जो गृहस्थ धन पाय साधर्मीनिका उपकारमें दीन अनाथनिके सत्कारमें नाहीं खरच किया सो यो धन याको नाहीं यो धन तो किसी अन्य पुण्यवानको है यो तो रखवालो भयो चौकसी करै है। धनका स्वामी तो अन्य ही पुण्यवान् है जो दान भोगमें लगावेगा जाके घरमें पात्र आजाय अर देनेको सामग्री होय फिर नाहीं दिया जाय ताकै हस्तमें चिन्तामणिरत्न नष्ट भया जानहू। जो धन कूं पाय दानमें नाहीं प्रवर्तै है सो मूढ़ अपने आत्माकूं ठगे है। धनकूं दानमें लगावै है सो धनका स्वामी है जाका परिणाम दान का देनेमें, पात्रके हेरनेमें निरन्तर प्रवर्तै है तिनके दानका संयोग नाहीं होय तो हू निरन्तर दान ही है। जो द्रव्यकूं अल्प होते वा बहुत होते हू पात्रकूं पाय अतिभक्तितः देवै है सो दातार है। भक्तिरहितके दातापना नाहीं होय है।

बहुरि अवसर टालि अकालमें दान देहै तिनकै अकालमें बोया बीजकी ज्यों निष्फल होय है अर जो अपात्रमें दान देहै ताको दान खारडी भूमिमे बोया बीजकी ज्यों निरर्थक है। अथवा दुष्टकूं दिया दान सर्पकूं पाया दुग्ध मिश्रीकी ज्यों दातारने संसार के घोर दुःख मरण आताप देनेकूं विष समान परिणमै है बहुरि

अपना भाग्यप्रमाण जेता धन मिलै तितनामें दानका विभागमें परिणाम करै ऐसा नाहीं विचारै जो मेरे पास अधिक धन होय तो अधिक दान करूं ऐसै दान वास्ते अभिमानी होय धनकी वांछा मत करो। जेता आपके लाभान्तरायका क्षयोपशमसूं लाभ भया तेतामें संतोप करि अधिक की वांछा नाहीं करना सो ही वड़ा दान है। आपकूं जो न्यायपूर्वक द्रव्य प्राप्त भया तिसमे जाका निरन्तर ऐसा परिणाम रहै जो मेरा धनमैंतै कोऊके अर्थि आजाय तो कमावना मेरा सफल है अपने गृहके खरचमे लेनेमे देनेमें कोई मोतैं कुछ कमायले तो ये ही हमारे वड़ा लाभ है ऐसा परिणाम दातारका रहै है अर जो दान देय सो हर्षितचित्त होय देवै, जो देवै भी अर क्रोधकरि देवै अपमानकरि देवै तिरस्कारके वचन कहि देवै रोषकरि देवै दूषण लगाय देवै तिस दातारके इस लोकमें तो कलह अर अपयश होय है, परलोकमे अशुभकर्मका फलतैं दारिद्र अपमानादिक अनेक भवनिमें प्राप्त होय है। अब देने योग्य नाहीं ऐसे खोटे दान कुदान ही हैं तिनकूं देना योग्य नाहीं भूमिदान देना योग्य नाहीं जामे हल फावडा खुरपादिकनि-करि भूमि विदारन करिये अर महान् हिंसा प्रवर्तै महा आरम्भ पंचेन्द्रियादिक सर्प मूषा सूर हिरणादिक वड़े वड़े जीवनिकूं धान्यादिक फलके वाधक जान मारिये हैं भूमिकी ममताकरि भाई भाई परस्पर मारि मर जांय तीव्ररागको कारण ऐसा भूमिदानतैं महाघोरपापका वन्ध जानो,वहुरि महाहिंसाका कारण तातैं अनेक हिंसा होय ऐसा लोहका दान महाकुदान जानि छांडना। वहुरि स्वर्णदान त्यागना जाकरि पात्रका नाश होजाय मार्या जाय

नाकाल भय उपजावें संयमका नाश करै तथा इस धनतैं राग द्वेष काम क्रोध लोभ भय मद आरम्भादिकी प्रचुर उत्पत्ति होय आत्मस्वरूपका विस्मरण हो जाय तातैं वीतराग धर्मका इच्छुक स्वर्णदानकूं पाप समझि त्यागना। बहुरि कोट्यां त्रसजीवनिकी उत्पत्तिका कारण ऐसा तिलदान त्यागने योग्य हैं। बहुरि चाकी चून्हा छाजला बुहारी मूसल फावडा दतीला अन्न तेल दीपक गुडादि रस इत्यादिक महापाप सामग्रीका भर्या महा आरम्भ मोहका उपजावने वाला गृहका दानकूं धर्म मानि मिथ्याधर्मी दे हैं सो कुदान है बहुरि जिस गौकूं बांधनेमे हरित तृणादिक चरने में तथा जीया (जवा) बुग (वग) उपजनेमें मलमें मूत्रमें असंख्यात जीव उपजैं सींगनतैं मारने तैं खुर पूंछादिकनि तैं जीवघात करने वाला गौका कुदान सो दान है। बहुरि संसारके वधावनेवाला महा वंधन करने वाला जो कन्याका दान सो कुदान है। इहां कहो जो कन्यादान तो गृहस्थकूं दिये विना कैसैं रह्या जाय सो ठीक है गृहस्थ है सो अपनी कन्याका विवाह योग्य कुल में उपज्या जो जिन-धर्मी व्यवहारचातुर्यादिक वरके गुण देखि कन्या देवे है परन्तु कन्यादानकूं धर्म तो श्रद्धान नाहीं करै जिन-धर्मी तो कन्यादानकूं पाप ही श्रद्धान करै है जैसैं गृहचारका आरम्भादिक अनेक पापका कारण है तैसैं कन्यादान हू पापका कारण है परन्तु विषयनिका दण्ड है सो अङ्गीकार किया ही सरै। अन्यमत वाले तो कन्यादान देनेका बहुत बडा फल कहै हैं लक्षयज्ञ कियाका फल कहै है कोटि ब्राह्मणकूं भोजन करावने तैं कोटि गऊनिका दान देने तै हू अधिक फल कहै हैं अन्यकी कन्याका

विवाह कराय देनेका हू वड़ा धर्म कहै है सो जिनधर्ममें तो याकूं संसारपरिभ्रमणका कारण कुदान कहै हैं। बहुरि और हू संसार समुद्रमें डबोवने वाले मिथ्यादृष्टि लोभी विषयनिका लंपटनिकरि कह्या कुदान त्यागने योग्य है। स्वर्णकी गाय बनाय देवैं हैं तिल की गाय, घृत की गाय, रूपाकी गाय बनाय देवैं हैं अर लेनेवाला घृतकी गायकूं लापसीकी गायकूं तिलकी गायकूं खाय है स्वर्ण रूपाकीकूं कटावै है, गलावै है। अर गायकी पूंछमें तेतीसकोटि देवता अर अडसठ तीरथ कहै है तथा दासी दासका दान देहैं रथदान दे है तथा संक्रांति मानि ग्रहण मानि व्यतीपातादि मानि दान देवैं है ते समस्त मिथ्यात्वका प्रभाव है। बहुरि मृतककूं तृप्ति करने के अर्थि ब्राह्मणादिकनिकूं भोजन करावै हैं देखहु ब्राह्मणनिके जीमनेतैं मृतककूं कैसे पहुँचेगा दान तो पुत्र देवै अर पिता पापतैं छूटै, बहुत कालका मर्‍या हुआका हाड गंगामें क्षेपणेतैं मृतकका मोक्ष होय। गयामे जाय श्राद्ध करनेतै इकवीस पीढीका उद्धार कहै हैं गयामें पिंड देनेतैं दश पीढी पहली दश पाछली एक आप ऐसैं इकवीस पीढी संसार में कुगतिमें पड़ी हुई निकस बैकुण्ठ वास करै है, अगाऊ वेटा पोतानिका सन्तान चाहै जेता पाप करो गया श्राद्ध इकवीस पीढीमें कोऊ एक हू पिंडदान दिया तो सबकी मुक्ति होय जायगी तातैं कोऊ पापको भय मत करो। बहुरि जे श्राद्धमें ब्राह्मणनिकूं मांसपिंड जिमावै है मांसकरि देवतानिकूं तृप्ति करै हैं देवता दुर्गा भवानी जीवनिका राक्षसनिका तिर्यंचनिका रुधिर पीवनेतैं बहुत तृप्ति होती मानै हैं देवीनिकै वकरा भैंसा काटि वलिदान करै हैं।

पापी खोटा शास्त्र बनाय अपने मांसभक्षणके अर्थि महाघोर कर्म करि नरकके मार्गकूं आप जाय हैं अन्यकूं नरक पहूँचावै हैं सो जिह्वाइन्द्रीका लोलुपी लोभी कौन घोरकर्म नाहीं करै ? वे पापी मनुष्यपना में ल्याली स्याल कागला कूकरा व्याघ्रकासा आचरण करै हैं जिनका ऐसे घोरपापके शास्त्र तिनके धर्ममें अर म्लेच्छ धर्ममें कुछ फरक नाहीं । ये अक्षरम्लेच्छनिके हैं वेदके अक्षरनितैं लोकनिके अज्ञान उपजाय शिकारमें धर्म जनाया । जलचर थलचर नभचर जीवनिके मारनेमें धर्म बताया जगतकूं भ्रष्ट किया है अर करै हैं । अर जाका देवता तो मुंडमाला अर मांसभक्षक रुधिर पीवनेमें अतिलीन है तिनके सेवकनिके पापकी कहा कथा । तिन कुपात्रनिकूं दान देना सो महा दुःखका करनेवाला कुदान है। ऐसैं कुदानके बहुत भेद हैं कुदानके देनेतैं अर कुदानके लेनेतैं नरकतिर्यंचनिमें बहुत जन्ममरणकरि निगोदमें एकेन्द्रिय विकलत्रयमें अनन्तकालपर्यंत असंख्यात परावर्तन करै है । या जानि कुदान मत करो कुपात्रदान मत करो।

अब यहां पहले सूत्रके अनूकूल दानका फल कहै हैं—

गृहकर्मणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानां ।
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि ॥११४॥

अर्थ—गृहरहित ऐसे अतिथि जे मुनि तिनकी जो प्रतिपूजा कहिये दान सन्मानादिक उपासना है सो गृहस्थके षट्कर्मकरि उपार्जन किया जो पापकर्मरूप मल ताहि शुद्ध करै है । जैसैं शरीर ऊपरि लग्या रुधिररूप मल तिनै जल धोवै है ।

भावार्थ—गृहस्थके नित्य ही आरम्भादिककरि निरन्तर पापका उपार्जन होय है तिस पापकूं धोवनेकूं एक मुनीश्वरादिकनिकूं दिया दान ही समर्थ है जैसे रुधिर लग्या होय सो रुधिरतैं नाहीं धुवै है जलकरि धुवैहै तैसैं गृहाचारके आरम्भतै उपज्या पाप मल है सो गृहके त्यागी साधूनिके अर्थि दान देनेकरि धुवै है।

अब दानका और हू कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा ।
भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु ॥११५॥

अर्थ—तपके निधान जे साम्यभावके धारक द्वाविंशति परीषहनिके सहनेवाले अपने देह पंचइन्द्रियनिके विषयनिमें निर्ममत्व ऐसे उत्तम पात्र जो मुनि तिनके अर्थि नमस्कार प्रणति करनेतैं उच्चगोत्र जो स्वर्गलोकमें जन्म तथा स्वर्गतै आय तीर्थंकरपना मे जन्म वा चक्रीपनामें जन्मरूप उच्चगोत्रकूं तथा सिद्धनिकी सर्वोत्कृष्ट उच्चताकूं प्राप्त होय है। अर उत्तमपात्रके दान देनेतैं भोगभूमिके भोग वा देवलोकके भोग भोगि राज्यादिकनिके भोग पाय अहमिंद्र लोकके भोग पाय तीर्थंकर चक्रीपना पाय निर्वाणके अनन्त सुखका भोगकूं पावै हैं। बहुरि साधुनिकी उपासना जो सेवन ताकरि त्रैलोक्यमें पूज्य केवली होय है, बहुरि साधुनिकी भक्ति करनेतै सुन्दररूप ताहि प्राप्त होय हैं। बहुरि साधुनिका स्तवन करनेतैं त्रैलोक्य-व्यापिनिकीर्ति इन्द्रादिकनिकरि स्तवन कीर्तनकूं प्राप्त होय हैं।

और हू दानके प्रभाव कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

क्षितिगतमिव वटबीजं पात्रगतं दानमल्पमपि काले ।
फलति च्छायाविभवं बहुफलमिष्टं शरीरभृताम् ।११६।

अर्थ—अवसरविषै सत्पात्रविषैं गया अल्प हू दान सुन्दर पृथ्वीमे प्राप्त भया बडका बीजकी ज्यों प्राणीनिके छाया जो माहात्म्य ऐश्वर्य अर विभव जे भोगोपभोगकी संपदारूप वांछित बहुत फलकूं फलै है जातैं पात्रदानका अचिंत्य फल है पात्रदानके प्रभावतैं सम्यक्त्व ग्रहण हो जाय है। बहुरि सम्यक्त्वरहित मिथ्यादृष्टि हू पात्रदानके प्रभावतैं उत्तम भोगभूमिविषैं जाय उपजै है कैसाक है भोगभूमि जहां तीन पल्यकी आयु तीन कोशका ऊँचा शरीर अद्भुतरूप समचतुरस्र संस्थान महाबल पराक्रमयुक्त मनुष्य होय है स्त्री पुरुषनिका युगल उपजै है तीन दिन गये कदाचित् किंचित् आहारकी इच्छा उपजै सो बदरीफल प्रमाण आहार करनेकरि क्षुधाकी वेदनारहित होय है। दश जातिके कल्पवृक्षनितैं उपजे वांछित भोगनिकूं भोगै है। जहां शीत उष्णताकी वेदना नाहीं है जहां वर्षाका ताडनाका उपजना नाहीं दिन-रात्रिका भेद नाहीं सदा उद्योतरूप अन्धकाररहित काल वर्तै है, शीतल मन्द सुगन्ध पवन निरंतर विचरै है, जिसभूमिमें रज पाषाण तृण कंटक कर्दमादि नाहीं होय है, स्फटिकमणि समान भूमिका है यावत् जीव रोग नाहीं शोक नाहीं, जरा नाहीं, क्लेश नाहीं जहां सेवक नाहीं, स्वामी नाहीं, स्वपर चक्रका भय नाहीं षट्कर्मकरि जीवनोपाय करना नाहीं। दश प्रकारके कल्पवृक्ष है। तूर्याङ्ग ॥१॥ पात्रांग ॥ २ ॥ भूषणांग ॥ ३ ॥ पानांग ॥ ४ ॥ आहारांग ॥ ५ ॥ पुष्पांग ॥ ६ ॥ ज्योतिरंग ॥ ७ ॥ गृहांग ॥ ८ ॥ वस्त्रांग ॥ ९ ॥

दीपांग ॥१०॥ तूर्याङ्ग जातिका कल्पवृक्ष तो वांसुरी, मृदंग इत्यादिक करणइन्द्रियनिकूं तृप्त करनेवाला वादित्र देहैं ॥१ ॥ पात्रांग जातिका वृक्ष रत्नसुवर्णमय अनेक प्रकारके आनन्दकारी कलश दर्पण झारी आसन पर्यंकादि समस्त जातिके पात्र देहैं ॥ २ ॥ भूषणांगजातिके अनेक आभूषण- अनेक प्रकारके क्षण-क्षणमें पहरने योग्य हार मुकुट कुण्डल मुद्रिकादि अङ्गकूं भूषित करनेवाले वा महलकूं द्वारकूं तथा शय्या आसन भूमिकूं भूषित करनेवाले अनेक आभूषण देहैं ॥ ३ ॥ पानांगजातिके वृक्ष नाना प्रकार पीवनेका योग्य शीतल सुगन्ध पान लिये खड़े हैं ॥४॥ आहारांगजातिके कल्पवृक्ष अनेक स्वादरूप अनेक प्रकारके आहार धारै है परन्तु क्षुधाकी पीडा ही नाहीं तदि रोग विना इलाज औषधि कौन अङ्गीकार करै भोगभूमिमे उपजनेवालेके क्षुधा नाहीं तीन दिन गये बदरीफल मात्र भोजन करै हैं ॥५॥ पुष्पांगजातिके वृक्ष नानाजाति के महा कोमल सुगंध पुष्पमाला आभरणादिक अनेक-पुष्पधारै हैं ॥६॥ ज्योतिरङ्ग जातिके कल्पवृक्षनिकी ज्योतिकरि सूर्य चन्द्रमा नजर ही नाहीं आवै हैं सूर्यके उद्योततैं बहुतगुणा उद्योत धारण करै हैं तातैं रात्रि दिनका भेद नाहीं है ॥७॥ गृहांगजातिके कल्पवृक्ष अनेक महल चौरासी खणनिपर्यंत विस्तीर्ण रत्ननिकरि चित्र विचित्र देहैं ॥८॥ वस्त्रांगजातिके कल्पवृक्ष नानाप्रकारके वांछित पहरने योग्य वस्त्र तथा शय्या आसन बिछायत आदि समस्त वस्त्र देहैं ॥९॥ बहुरि दीपांगजातिके अन्धकार विना ही दीपमालिकाकी शोभाकूं विस्तारै हैं ॥१०॥ बहुरि भोगभूमिमें स्त्रीपुरुषनिका युगल मरण समयमें पुरुषकूं छींक अर स्त्रीकूं जम्भाई आवै है तिस

समयमें सन्तान युगल उत्पन्न होय है सन्तानकूं तो माता पिता नाहीं दीखै अर मातापिताकूं सन्तान नाहीं दीखै तातैं इनकेवियोग का दुःख नाहीं है अर मरण किये पाछैं इनका देह शरद कालका मेघपलटवत् विलाय जाय है। बहुरि युगलिया उत्पन्नहुआ पाछैं सप्त दिन तो अपना अंगुष्ठ चाटै हैं। अर पाछै सप्त दिनमें सूधा औंधा पलटना होय पाछै सप्त दिनमें अस्थिर गमन करैं है पाछै सप्त दिनमें परिपूर्ण यौवनवान होय है। बहुरि सप्त दिनमें समस्त दर्शन ग्रहण चातुर्य कला ग्रहण करै हैं। ऐसैं गुणचास दिनमें परिपूर्ण होय अनेक पृथक् विक्रिया अपृथकविक्रियासहित नानाप्रकारके महल मन्दिर वनविहार करते क्षणक्षणमें अनेक कोटि नवीन नवीन विषय तिनकी सामग्री भोगते अनेक क्रीड़ा रागरङ्गादिक अनेक सुखरूप क्रीड़ा चेष्टाकरि तीन पल्य पूर्ण करि मरण समयमें छींक जंभाई मात्रतै प्राण त्यागै। सम्यग्दृष्टि होय मरे तो सौधर्म ईशान स्वर्गमें जाय है अर मिथ्यादृष्टि मरणिकरि भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषि देवनिमें उपजै है कषायके प्रभावतै देवलोकबिना अन्य गति नाहीं पावै है बहुरि सम्यग्दृष्टि होय तथा श्रावकके व्रतका धारक होय जो पात्र दान करै सो षोडशम स्वर्ग-पर्यंत महर्द्धिक देव ही उपजै है। आगममें पात्र तीन प्रकार हैं अर्थात् उत्तमपात्र, मध्यमपात्र और जघन्यपात्र तिनमें उत्तम-पात्र तो महाव्रतनिके धारक अट्ठाईस मूलगुण तथा उत्तरगुणनिके धारक देहमें निर्ममत्व वीतराग साधु है। मध्यम पात्र ग्यारहभेद-रूप श्रावक सम्यग्दृष्टि व्रतनिकरि सहित है तथा स्त्री पर्यायमें व्रतनिकी हदकूं धारण करती तिनके एक वस्त्रतैं अन्य समस्त

परिग्रहरहित परके घर एकवार याचनारहित मौनतैं भिक्षा भोजनकरि आर्यिकानिका संगमें धर्मध्यानसहित महातपश्चरण करतो तिष्ठै ऐसी आर्यिका मध्यम पात्र हैं तथा अणुव्रत अर सम्यक्दर्शनसहित श्राविका मध्यमपात्र हैं अर व्रतरहित जिनेन्द्रवचनके श्रद्धानी सम्यग्दर्शनसहित पुरुष तथा सम्यग्दर्शनसहित व्रतरहित स्त्री जघन्यपात्र है। इन तीन प्रकारका पात्रनिमें चार दान देना तथा सत्कार करना स्थानदान करना आदर करना, तथा यथायोग्य स्तवन पूजा प्रशंसादिकके वचन बोलना उठि खड़ा होना, उच्च मानना सो समस्त दान है।

अब चार प्रकार दान कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्च दानेन।
वैयावृत्त्यं ब्रुवते चतुरात्मत्वेन चतुरस्राः॥ ११७॥

अर्थ—चतुरस्र जे प्रवीण ज्ञानी हैं ते आहार दान औषधि दान उपकरणदान अर आवासदान इन चार प्रकारके दानकरके वैयाव्रतकूं चार स्वरूप करि कहै हैं। आहारदान औषधिदान उपकरणदान आवासदान। या प्रकार गृहस्थकै चारप्रकार दान कह्या जातैं अभयदानकी प्रधानता तो छहकायके जीवनिकी कृत कारितअनुमोदनाकरि विराधनाका त्यागी दिगम्बर मुनीश्वरनिके है अर श्रावकनिकै हू त्रस जीवनका संकल्पी हिंसाका त्यागतैं अभयदान है ही परन्तु अभयदानकी मुख्यतातो आरम्भका त्यागतैं विषयनितैं अत्यन्त पराङ्मुखतातैं होय है तातैं जेते गृहाचारतैं सम्पदातैं तथा न्यायरूप विषयनितैं परिणाम नाहीं निराला होय तितने आहारादिक चार प्रकारका दान करि पापका नाश

करहु, सम्पदा आयु काय अत्यन्त अस्थिर है। गृहचारी तो दान-करि ही पूज्य है। आहारादिक दान विना गृहस्थपना पाप-आरम्भके भारकरि पाषाणकी नाव समान केवल संसारसमुद्रमें डुबोवने वाला है। बहुरि ज्ञानी गृहस्थ चिंतवन करै है जो यो धन मैं उपार्जन किया तथा पितादिकनिका धरया हमारे विना खेद प्राप्त होगया तथा राज्य ऐश्वर्य देश नगर आभरण वस्त्र स्त्री सेवकनका समूह समस्त जो विना खेद प्राप्त होगया सो समस्त पूर्व जन्ममें दान दिया दुःखितनिको पालनपोषण किया ताका फल है। तथा परके धनमें स्वप्नमें हू चित्त नाहीं चलाया, परम संतोष धारण करि विषयनिसूं विरक्त होय निर्वांछकता धारण करी ताका फल है। तथा दीन दुःखित रोगी असमर्थ बाल वृद्धनिकी दया धारण करि उपकार किया ताका फल यह सम्पदा है सो दोय दिन याका संयोग है परलोक लार जायगी नाहीं, जमीनमें गड़ी रहैगी तथा अन्य देशान्तरमें धरी रहैगी तथा अन्यमें रह जायगी वा स्त्री पुत्र कुटुम्ब दायेदार मालिक बनैंगे तथा राजा लूट लेगा तथा अचानक मरि दुर्गति चल्या जाऊंगा यो धन सैकड़ां दुर्ध्यानतैं महापापके आरम्भतैं देश देशनिमें परिभ्रमण करि बड़ा कष्टतैं उपार्जन किया था प्राणनिसूं हू अधिक याकी रक्षा करी अब इस धनका फल छोडकरि मरि जाना ऐसा विचारना तो योग्य नाहीं जगतमें देखो जो लाख धन होय भोगनेमें तो आवै नाहीं जातैं भोगनेमें तो आधा सेर अन्न आवै है अर तृष्णा ऐसी बधै है जो अब धन बधाऊं। अहो अन्यकै तो पचास लाख धन होगया मेरे

पांच लाख ही है। अब कैसैं वधाऊं कौन आरम्भ करूं कौन उपाय करूं कौन राजानिकूं रिझाऊं तथा कौन वनिज करूं तथा कौनसूं मित्रता करूं जाके बुद्धितैं मेरे धन उपार्जन होजाय तथा कौनसा सेवककूं अङ्गीकार करूं जो मेरा अल्प धन खाय अर मोकूं बहुत धन उपार्जन करदे ऐसैं हजारां दुर्ध्यान करतो संसारी जीव समस्त सम्पदा राज्य-ऐश्वर्य छांडि महामूर्छातैं अतिरौद्र परिणामतैं मरि घोर नरकका घोर दुःख भोगै है। संसारमें अनन्त दुःखरूप परिभ्रमण करता क्षुधा तृषा रोग दारिद्रकूं भोगता अनन्तकाल असंख्यातकाल व्यतीत करै है। अब इस घोर कालमें कोऊ किंचित् मोहनिद्राके उपशम ते जिनेन्द्रभगवानके वचनतैं कोऊ अति विरले पुरुष सचेत होय अपना हितकूं चिंतवन करते चार प्रकारके दानमें प्रवर्तन करै हैं। दानमें आहार दान प्रधान है इस जीवका जीवन आहारतैं है कोटि सुवर्णका दान आहारदान समान नाहीं है। आहारहीतैं देह रहै है। देहतैं रत्नत्रय धर्म पलै है। रत्नत्रयधर्मतैं निर्वाण होय है निर्वाणमें अनंत सुख है। त्यागी निर्वांछक साधुनिका उपकार तो एक आहारदानतैं ही है। आहार विना कोऊ तिलतुष मात्र वस्तु हू नाहीं अङ्गीकार करै, आहार विना देह रहै नाहीं, आहार विना अनेक रोग उपजै हैं। आहार विना ज्ञानाभ्यास नाहीं होय। आहार विना व्रत संयम तप एक हू नाहीं पलै। आहार विना सामायिक, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, ध्यान एकहू नाहीं होय आहार विना परमागम को उपदेश नाहीं होय, आहार विना उपदेशग्रहण करनेकूं समर्थ नाहीं होय, आहार विना कांति विनसि जाय, मति

विनसि जाय, कीर्ति कांति शांति नीति गति रति उक्ति शक्ति द्युति प्रीति प्रतीति नाशकूं प्राप्त होय है। आहार विना समभाव इंद्रियदमन जीवदया मुनि श्रावकका धर्म विनयमें प्रवृत्ति, न्यायमें प्रवृत्ति, तपमें प्रवृत्ति, यशमे प्रवृत्ति समस्त विनाशनै प्राप्त होयजाय आहार विना वचनकी प्रवीणता नष्ट हो जाय है, आहार विना शरीरका वर्ण विगडि जाय, शरीरमें मुखमें दुर्गंधता हो जाय। शरीर जीर्ण हो जाय, समस्त चेष्टा नष्ट हो जाय। आहार नाहीं मिलै तो अपने प्यारे पुत्रकूं, पुत्रीकूं, स्त्रीकूं बेच देइ। आहार विना नेत्रनितैं देखनेकूं समर्थ नाहीं होय, कर्णनितैं श्रवण करनेकूं नासिकातैं गन्ध ग्रहण करनेकूं, स्पर्शन इन्द्रियतै स्पर्शन करनेकूं समर्थ नाहीं होय। आहार विना समस्त चेष्टा रहित मृतक-समान होय। आहार बिना मरण हो जाय, आहार विना चिंता शोक भय क्लेश समस्त संताप प्रकट होय हैं। दीनता होजाय संसारी लोक अपमान करें, ऐसै घोर दुःख दुर्ध्यानकूं दूर करने-वाला जो आहारदान दिया सो समस्त व्रत संयममे प्रवृत्ति कराई, समस्त रोगादिक दूर किया, यातैं आहारदान समान कोऊ उपकार नाहीं है।

बहुरि रोगका नाश करनेवाला प्रासुक औषधिका दान श्रेष्ठ है। रोगकरि व्रत संयम बिगडि जाय, स्वाध्याय ध्यानादिक समस्त धर्मकार्यका लोप हो जाय है। रोगीकै सामायिकादिक आवश्यक नाहीं बनि सकै है। रोगकरि आर्त्तध्यान निरंतर होय है, मरण विगड़ि जाय है, रोगीके संक्लेश दिन प्रतिदिन बधै है। अपघात-करया चाहै है रोगी पराधीन हो जाय है। मन इन्द्रियां चलायमान हो जाय हैं। उठना बैठना सोवना चालना बहुत

कठिन हो जाय है। स्वासकी लार वेदना बधै है। क्षणमात्र जक (चैन) नाहीं लेने देहै। बहुत कहा कहिये रोगीकूं खावना पीवना बोलना चालना देना सोवना उठना बैठना समस्त कार्य जहर पीवने समान बाधाकारी होय हैं यातैं प्रासुकऔषधिदानकरि रोग मेटने समान कोऊ उपकार नाहीं। रोग मिटै आहारादिक किया जाय, समस्त तप व्रत संयम ध्यान स्वाध्याय कायोत्सर्गादि रोग-रहित होय तदि करि सकै है।

बहुरि ज्ञानदान समान जगतमें उपकार नाहीं। ज्ञान बिना मनुष्य जन्ममें हू पशु समान है ज्ञानाभ्यास बिना आपका परका ज्ञान नाहीं होय। ज्ञान बिना इसलोक परलोकका जानना कैसैं होय ज्ञान बिना धर्मका स्वरूप, पापका स्वरूप, करनेयोग्य नाहीं-करनेयोग्यका विचार नाहीं होय है। ज्ञान बिना देव कुदेवका गुरु कुगुरुका, धर्म कुधर्मका जानना नाहीं होय है। ज्ञान बिना मोक्षमार्ग ही नाहीं, ज्ञान बिना मोक्ष नाहीं, ज्ञानरहित मनुष्यमें अर पशुमें भेद नाहीं इन्द्रियनिका विषय पोषना कामसेवन करना तो तिर्यंचनिकै भी होय है जातैं मनुष्य जन्म तो ज्ञानहीतैं पूज्य है। तातैं ज्ञान दान दिया सो पुरुष समस्त दान दिया। परमोप-कार तो ज्ञानदान ही है।

बहुरि वस्तिकादान जो स्थानका दान जामें शीत उष्ण वर्षा पवनादिक बाधारहित ध्यान स्वाध्याय की सिद्धताको कारण ऐसा स्थानका दान श्रेष्ठ है। यहां ऐसा जानना उत्तम-पात्र जे परम दिगम्बर महामुनि तिनका समागम तो कोऊ महाभाग पुरुषकै कदा-चित् होय है जैसैं जगत पाषाणनिकरि बहुत भरथा है। परंतु चिंता-मणिरत्नका समागम होना अति दुर्लभ है। तैसैं वीतराग साधुका

समागम दुर्लभ है। फिर आहारदान होना अति ही दुर्लभ है।
अर आहारहू आपके निमित्त नाहीं किया अर सोलह उद्गम दोष, षोडश उत्पादन, दश एषणा दोष ऐसैं बियालीस दोष अर प्रमाण १ संयोजन १ धूम १ अंगार १ ऐसैं छयालीस दोष बत्तीस अंतराय चौदह मलनिकूं टालि एकबार भोजन करै सो अर्द्ध उदर तो भोजनसूं भरै अर चतुर्थभाग जलकरि पूर्ण करै अर उदरका चतुर्थभाग खाली राखै। सो हू एक उपवासके पारने, कदै दोय उपवासके पारने कदाचित् तीन उपवास भये, कदाचित् पक्षोपवास मासोपवासादिकके पारने अजाचीक वृत्तिकरि नवधा भक्तिकरि दिया हुआ भोजन कोऊ पुण्यवानके घर होय है अर अजाचीक वृत्तिकूं धारते मौनसहित मुनीश्वरनिकूं औषधिदानहू का देना दुर्लभ है। कोऊ गृहस्थ आपके निमित्त प्रासुक औषधि करी होय अर अचानक मुनीश्वरनिका समागम हो जाय अर शरीरकी चेष्टासूं रोगकूं बिना कह्या जानि योग्य औषधि होय तो देवै तातैं साधुनिकूं औषधिदानहू दुर्लभ है। शास्त्रदान हू योग्य-पुस्तक इच्छा होय तो पढ़ै तितनै ग्रहण करै पाछैं वनमें तथा वनके चैत्यालयमें मेलि चल्या जाय है। बहुरि मुनीश्वरनिके अर्थि वस्तिका दानहू दुर्लभ है जातैं दिगम्बर मुनि एक स्थानमें रहैं नाहीं कदै पर्वतनिकी गुफामें कदै भयङ्कर वनमें कदै नदीनिके पुलनिमें ध्यान अध्ययन करते तिष्ठैं हैं। कदाचित् कोऊ वस्तिकामें एक दिन ग्राम के बाह्य अर पांच दिन नगरके बाह्य अर वर्षाऋतुमें चार महीना एक स्थानमें रहैं। अर कदाचित् कोऊ साधुके समाधिमरणका अवसर आ जाय तो मास दोय मास एकस्थान रहै। अन्य

प्रकार जैनका दिगम्बर एक स्थानमे रहै नाहीं । अर एक रात्रि दोय रात्रि हू कोऊ कदाचित् निर्दोष प्रासुक वस्तिकामे रहै सो वास्तिका कैसी होय आपके निमित्त करी नाहीं होय । आपके निमित्त भुवारी नाहीं होय मुनि आयां पाछैं धोलै नाहीं उजालदान खोलै नाहीं वारणा मुद्या होय तो वारणा खोलै नाहीं भाड़ा देइ लेवै नाहीं । वदलके अपना वस्तिका देय परकी लेवै नाहीं, याचना करि लीनि नाहीं होय, राजाका भय दिखाय लीनी नाहीं होय । इत्यादिक छियालीस दोष रहित वस्तिका होय तथा जीर्ण वनमें तथा ऊजड ग्रामका मकान होय जहां असंयमीनका आर (आना) जार (जाना) नाहीं होय । स्त्री नपुन्सक तिर्यंचनिका आगम नाहीं होय, जीव विराधनारहित होय, अंधकारादि नाहीं होय तहां साधुजन एकरात्रि दोयरात्रि कदाचित् वसैं । अनेक देशनिमें विहार करैं तिनकूं वस्तिकादान होना वहुत दुर्लभ है यातै उत्तम पात्रकूं दान होना अति दुर्लभ है अर इस पंचमकालमें वीतरागी भावलिंगी साधु ही कोई विरला देशान्तर में तिष्ठै है तिनका पावना होय नाहीं, पात्रका लाभ होना चतुर्थकाल में ही वड़े भाग्यतै होय था । परन्तु इस क्षेत्रमे पात्र तो वहुत थे अव इस दुःषमकालमें यथावत् धर्मके धारक पात्र कहीं देखनेमेंही नाहीं आवैं । धर्मरहित अज्ञानी लोभी वहुत विचरैहै सो अपात्र हैं । इस कालमे धर्म पायकरिकैं गृहस्थ जिनधर्मके धारक श्रद्धानी कोई कहीं कहीं पाइए हैं । जे वीतराग धर्मकूं श्रवण करि कुधर्मकी आराधनाका दूरहीतैं त्याग करि नित्य ही अहिंसाधर्मके धरनेवाले जिनवचनामृत पान करनेवाले शीलवान संतोषी तपस्वी ही पात्र हैं

अन्य भेषधारी बहुत विचरै हैं। जिनके मुनि श्रावकके धर्मका सत्य सम्यग्दर्शनादिकको ज्ञान ही नाहीं ते कैसैं पात्रपना पावैं। मिथ्यादर्शनके भाव करि आत्मज्ञानरहित लोभी भये जगतमें धनादिकनिका मिष्ट आहारदान का इच्छुक भये बहुत विचरै हैं ते अपात्र है। तातैं पात्रदान होना अतिदुर्लभ है।

यहां ऐसा विशेष जानना सो इस कलिकालमें भावलिंगी मुनीश्वर तथा अर्जिका तथा क्षुल्लकका समागम तो है ही नाहीं। अर जो कदाचित् चिंतामणिरत्नकी ज्यों किसी महाभाग्य पुरुषकूं उनका दानका समागम मिले तो आध सेर अन्नका भोजनमात्र उनके अर्थि देनेमें आवै अर जो क्षुल्लक अर अर्जिकाके कदाचित् वस्त्र जीर्ण होजांय तो अर्जिका तो एक श्वेत वस्त्र ही ग्रहण करि पुराना वस्त्र वहां छांडि जाय अर क्षुल्लक एक कोपीन एक श्वेत ओछा वस्त्र जातैं समस्त अंग नाहीं ढकै ऐसा थोड़े मोलका ग्रहण करि पुराना वस्त्र वहां ही छांडि जाय है अन्य तिल तुषमात्र हू ग्रहण करै नाहीं। ऐसैं पात्रनिके दानमें तो कुछ द्रव्यको खर्च नाहीं विना न्योता विना बुलाया कदाचित् अचानक आ जाय तो गृहस्थ अपने निमित्त किया रूक्ष सचिक्कण भोजन तिसमें दानका विभाग करिये है धनाढ्य पुरुष धनकूं कौन कार्यमें लगाय सफल करै। जो भोगनिमें लगाइये तो भोग तो तृष्णाके बधावने वाले इन्द्रियनिकूं विकल करने वाले महापापमें प्रवर्तन कराय नरकादिक कुगतिकूं प्राप्त करै हैं, जीवका हित अहितका जाननेकूं लुप्त करै हैं अर मोहवश होय पुत्रादिकनिकूं समर्पण करिये है सो पुत्रादिक तो ममताके बधावने वाले विना दिये हू सर्वस्व लेवेंगे।

पापाचार करि दुर्ध्यानतैं सम्पदामें ममता धारणकरि धर्मका विध्वंस करि संपदा वधाई ताका अर्धविभाग तो धर्मके अर्थि दयाके पात्रनिमें दानकर अपना हित करो। संपदा छांडि परलोक जाओगे तहां पुत्र पौत्रादिकको देखनकूं कैसैं आवोगे कुटुम्बका सम्बन्ध तो तुम्हारा यह चामडामय मुख नासिका नेत्रादिकतैं है। सो इनकी भस्म होजासी तथा मृत्तिकामें मिल जासी कुटुम्ब तुमकूं अन्य पर्यायमें देखने आवै नाहीं। तुम कुटुम्बकूं देखने आवो नाहीं क्योंकि जिन नेत्र कर्णादिकनितैं कुटुम्बकूं जानो हो तिन नेत्रादिकनिकी तो राख उडजायगी तदि कुटुम्बकूं कैसैं जानोगे अर पुत्रादिक कुटुम्बका सम्बन्ध तुम्हारे शरीरका चामतैं है। तुम्हारे आत्माकूं जानैं नाही अर तुम्हारे अर तुम्हारा चामडाकी राख उड जायगी तदि कुटुम्बके तुमसूं कहां सम्बन्ध करैंगे तातैं भो ज्ञानीजन हो जावन अल्प है पुत्रादिकनिका सम्बन्ध हू अल्प काल है कोऊ संसारमें शरण नाहीं है एक धर्म ही शरण है अर यो धन हैं सो हू तुम्हारा नाहीं है कोऊ पुण्यका प्रभावकरि दोय दिन इसका स्वामीपना अंगीकार करि छांडि मर जावोगे। यो धन लार जायगा नाहीं, पुत्रका ममत्वतैं महा दुराचार करि धन संचय करो हो सो धनका ममत्व अर पुत्रादिकनिके ममत्वतैं संसारमें आपा भूलि नरक जाय पहुँचोगे अर अनेक पर्यायनिमें दीन दरिद्री भये विचरोगे। अर प्रत्यक्ष देखो हो हजारां मनुष्य अन्न अन्न करते मर जाय हैं दरिद्री रंक भये घर घरके बारनें फिरै हैं दीनता करै हैं जिनकी ओर कोऊ देखै हू नाहीं, कोऊ उनकी श्रवण करै नाहीं सो समस्त प्रभाव पूर्वजन्मान्तरमें धनमूं तीव्र

ममता बांधि कृपण होय धन संचय किया ताका फल है अर तुम्हारे विभव संपदा रत्न स्वर्ण रूपादिक हैं तथा नाना रसनि करि सहित भोजन अर शीलवंती रूपवंती रागरसकरि-भरी स्त्रीनिका समागम अर आज्ञाकारी प्रवीण सुपुत्र अर हितमें सावधान कार्यसाधक चतुर सेवक अर महान विस्तीर्ण महल मन्दिरनिमें निवास इत्यादिक जे सामग्री पाई हैं ते कोई पूर्वजन्ममें दान दिया ताका फल है। दानके प्रभावतैं भोगभूमिमें जन्म अर स्वर्गके विमाननिके स्वामीपना होय है तहां असंख्यात कालपर्यंत सुख भोगिये है सो यहांका तुच्छकाल क्लेश-सहित महामलीन देहादिक कहा वस्तु है ऐसी संपदा हू तुम्हारे थिर नाहीं रहैगी अर तुम्हारे ऐसा विचार है जो या लक्ष्मी हमारी है हमारा कुलमें चली आवै है हम बुद्धिरहित नाहीं हैं जो हमारी विनसि जाय जे बुद्धिहीन चूक करि चालै हैं तिनकी संपदा विनसै है ऐसा तुम्हारा भ्रम है सो मिथ्यादर्शनके उदयकरि बड़ा भ्रम है अर अनन्तानुबन्धी कषायतैं अभिमान है सो थोरे दिननिमें नरकके नारकी बनाय देगा तातैं हे आत्मन्! जो जिनेन्द्रदेवके वचननका श्रद्धान है अर धर्मसूं प्रीति है अर दुःखीलोकनिकूं देख दया आवै है तो चित्तमें सम्यक् चिंतवन करो जो मैं मूढात्मा धनसूं ममता करि पूवला धन था ताकी तो बड़ा यत्नतैं रक्षा करी अर नवीन भी बहुत धन उपार्जन किया धनके उपार्जनके निमित्त क्षुधा तृषा शीत उष्णादिक भोगे अर अनेक आरम्भ बनिज राजसेवा विदेशगमन समुद्रप्रवेश इत्यादिक किये अधर्मी म्लेच्छादिकनिके परिणामकूं राजीकरनेकूं निंद्यकर्म किये जीतीं प्रकार धनउपार्जन किया तो अब मरण॰

अचानक आवेगा धन रह्या नाहीं करैगा तातैं अब मोकूं अन्यायतै अनीतितैं तथा पापके वनिजतैं अर पापीनिकी पापरूप सेवातै तो धन उपार्जन करनेका शीघ्र ही त्याग करना चाहिये अर न्यायतै उपार्जन किया धन तिसमें मर्यादा करि रहना अर जिनका धन भुलाय चुकाय राख्या तिस धनकूं उलटा देय क्षमा करावना वहुरि जो द्रव्य है तिसमे पुत्रादिकनिका विभागका धन तो पुत्रादिकके अर्थि न्यारा करना अर दानके अर्थि निराला धन राख करके परका उपकारके अर्थि, धर्मकी प्रवृत्तिके अर्थि दान करना अर जो नवीन धन उपार्जन होय तिसमें हू चतुर्थ भाग तथा छठा भाग तथा अष्टम भाग तथा, जघन्य दशमभाग तो पुण्यदानधर्मके कार्यमे धनवानकूं वा निर्धनकूं समस्तकूं ही दानादिकका विभाग करना योग्य है। जाके उदर पूर्ण भी नाहीं होय आधा चौथाई भोजनादिक मिलै ताकूं हू दानधर्मका विभाग उत्कृष्ट चतुर्थभाग, जघन्य दशम भाग, मध्यम छट्ठो भाग अष्टम भाग न्यारो कर दुःखित वुभुक्षित, जिनपूजनादिकका विभाग करना श्रेष्ठ है। दान विना गृह है सो श्मसान है, पुरुष है सो मृतक है अर कुटुम्ब हैं ते इस पुरुषका धर्मरूप मांस चूंथि चूंथि खाय हैं। अर गृहस्थ धनवान है जैनीनकी अनेक प्रकार पालना करै है जे धर्मसं शिथिल होंय ते हू धनाढ्य पुरुपनिका आदर देने करि, मिष्ट वचन वोलनेकरि धर्ममें दृढ़ हो जाय हैं। केतेक काम चाकरी करावने लायक होंय तो उनतैं काम हू लेना अर उनका भरण पोषण करना, केतेक कुमाय पैदा कर लेने योग्य होंय तिनकूं पूंजीका

सहारा देय धन हू वन्या रखावै है अर ताकूं पांच रुपयाकी पैदासि कराय देय केतेकनिकूं वनिज व्योहारमें अपने सामिलकरि निर्वाह करदे केतेनकी धीज प्रतीत करायकै पैदाकै योग्य करदे केते-कनिकूं कहिकरि रोजगार लगाय दे केतेकनिकूं दलाली वगैरह लगाय रोजगार कराय दे क्योंकि पुण्यवान-आश्रय-बिना-पकड्या मनुष्यका खड़ा होना दुर्लभ है आप धर्मात्मा होय सो अपना धन विगडवाका भय नाहीं करै है जो मेरा धन साधर्मिनिके कार्य में आवै सो धन मेरा है अर जो धन साधर्मिनिके कार्यमें नाहीं आया सो मेरा नाहीं, बहुरि केतेक पुरुष पहली धनाढ्य थे, प्रति-ष्ठावान थे तिनके कर्मके उदयकरि धन नष्ट हो गया, आजीविका नष्ट हो गई और खानपानका ठिकाना रह्या नाहीं, घरमें स्त्रीबाल-कादिकनिकी वड़ी त्रास ऐसै पुरुषनितैं मिहनत मजूरी होय नाहीं ओछा काम किया जाय नाहीं, बड़ा आदमी जान कोऊ अंगीकार करै नाहीं, धन आभरण वस्त्र पात्र समस्त बेच खाये अब कौनसौं कहैं कौन उपाय करै ऐसे प्रतिष्ठावान पुरुषकूं आजीविका लगाय देना, चिगतेनिकूं दुःखसमुद्रमें तैं हस्तावलंबन देय काढना, धर्ममें न्यायमें लगाय थोरा बहुत सहारा देय खडा करदेना, जेती योग्यता होय तिस माफिक धीरज करनी, अन्य दूजाके कने रखदेना, रोटीका निर्वाह हो जाय तैसैं करना धर्मतैं जोड देना यो बडा उपकार है। केतेक स्त्री पुत्रादिरहित होय तिनकूं धर्मके कार्य में लगाय खानपानका दुःख मेटि देना, केते वृद्ध हो गये उद्यम करनेकूं समर्थ नाहीं होंय, केतेक जिनधर्मी धर्ममें सावधान हैं तो हू इन्द्रियां थक गईं, रोग सहित देह हो गया सहाय विना समता

रहै नाहीं तिनकी स्थितिकरण धनवानही सूं बनै । केतेक पुत्रादिक रहित है तिनकूं धर्मका आश्रय ग्रहण करावना केती श्राविका विधवा होगईं तिनके भोजनवस्त्रका ठिकाना नाहीं तिनमें करुणाबुद्धितैं भोजन वस्त्रादिकका साधन कराय धर्ममें लगाय देना धनाढ्य पुरुषनिका सहाय पाय, केतेक पुरुष स्त्री कुधर्मका त्याग करि दृढ़ श्रद्धान करै हैं, केतेक अणुव्रतादिक ग्रहण करै हैं केई श्रद्धानादि सहित सचित्तका त्यागी, केई परवीमें उपवास, केई दिनसमें ब्रह्मचारी केई अपनी स्त्रीका त्यागी केई आरम्भका त्यागी केई परिग्रह त्यागी केई पापकी अनुमोदनाका त्यागी, केई उद्दिष्ट आहारका त्यागी ऐसैं ग्यारहस्थान श्रावकके धारण करनेतैं दानके पात्र होय हैं ते हू धनाढ्य पुरुषनिका सहायतैं धर्ममें प्रवर्तते देख अनेक पुरुष धर्मकी प्रवृत्तिमें लगि जाय हैं। बहुरि धनाढ्य पुरुष है सो विद्या पढ़नेके स्थान बनाय दे पढ़ावने वालेनिकूं जीविका देय व्याकरणविद्या, काव्यविद्या, गणितविद्या, तर्कविद्या इत्यादिक अनेकविद्या पढ़ावनेकी पाठशाला स्थापन करदे तो जैनीनिमैं सैंकड़ां विद्याका पढवामें लगि जाय बरसां बरस दस बीस पढि करि तैयार हुआ करैं तो धर्मकी सन्तान चल्यो जाय । केई बुद्धिकरि अधिक होंय तिनकूं आजीविकादिका सहायी होय निराकुल करदे तो धर्मकी प्रवृत्ति चली जाय तथा अनेक ग्रंथनिकूं लिखावना पढ़नेवालेनिकूं पुस्तक देना, ग्रंथके सोधनेमें सोधनेवालेनिकूं निराकुल करदेना ज्ञानके अभ्यास करनेवालेनिसूं प्रीतिकरना अपने आत्माकूं ज्ञानके अभ्यासमें लगावना, अपने सन्तानकूं तथा कुटुम्बीनिकूं ज्ञानके अभ्यासमें लगावना, जैसे तैसे लोकनिकी

शास्त्रके अभ्यासमें रुचि करावनी। ये शास्त्र धर्मके बीज हैं जो शास्त्रनिका ज्ञान होय जाय तो सैकडां दुराचार नष्ट हो जांय सम्यग्ज्ञान ही व्यवहार परमार्थ दोऊनिकूं उज्वल करदे है तातैं शास्त्र पढावने समान दान नाहीं है। तथा रोग मेटने वाली प्रासुक केतेक औषधि बनाय करि रोगीनिकूं देना जे निर्धन मनुष्य हैं तिनकूं औषधि तैयार मिल जाय तो बड़ा उपकार है तथा कोऊ निर्धन नाहीं होय तिनका भी औपधिकरि बड़ा उपकार है निर्धन दु:खित जननिकूं औषधिदान देने समान उपकार नाहीं है केतेक निर्धननिकूं औषधि मिलैं नाहीं, करनेवाला नाहीं, बिना सहाय औषधि बन सकै नाहीं औषधि तैयार मिलै ताका बहुत कोटि धन का लाभ है रोग मेटने बराबर कोऊ दान नाहीं बड़ा अभय दान है।

बहुरि धर्मात्मा जननिके अर्थि रहनेके अर्थि, धर्म साधन करनेके धर्मशाला वस्तिकादिक अपनी शक्ति-सारू मोल ले देना, अपना घरका स्थान होय तहां राखि देना जातैं रहनेके स्थान बिना धर्म सेवनादिकमें परिणाम थिर नाहीं रहै है। बहुरि जिनधर्मी परदेशी दु:खित आ जाय तो महीना दो महीनाको भोजनादिकके सहायमें प्रवर्तना कोऊ परदेशीके पासि मार्गमें खरची अपने स्थान पहुँचनेकी नाहीं होय तथा मार्गमें लुटिगया होय, चोर ले गया होय जैनी जानि आपकनै आया होय ताकूं अपने गृह पहुंचे तैसें दानादिक करि पहुँचावना अर परदेशी रोगी होय आया होय ताकूं स्थान बता-वना औषधादिकरि रोगरहित करना बारम्बार धर्मोपदेश देय समता देना, बारम्बार पूछना, वैयावृत्य करना। बहुरि निर्धन-

मनुष्यनितैं नाहीं बनसकै ऐसा औषधिका दान निरन्तर करना। परिणाम चल गया होय रोगकरि वियोगके दुःखकरि दारिद्रकरि धैर्य छूट गया होय तिनकूं धर्मोपदेश करि धीरज धारण करावना बहुरि अपने आत्माकूं निरन्तर ज्ञानदान देना, आप ज्ञानवान होय तो नित्य अनेक जीवनिकूं धर्मोपदेश देना तथा कोऊ शास्त्र के अर्थके जानने वाले पुरुषकी प्राप्ति होय तो ताकूं कल्पवृक्षका लाभ तुल्य बड़ा हर्षसहित आजीविकादिककी थिरता कर देना, बहुत विनय आदरतैं राखि धर्मका ग्रहण आप करना, धर्मकी वृद्धिके निमित्त ज्ञानीनिका सन्मानादिकरि धर्मके उपदेशकी तत्व-निके स्वरूपकी चर्चाकी, गुणस्थान, मार्गणा-स्थानादिककी चर्चाकी प्रवृत्ति कराय धर्मकी प्रभावना, सम्यग्ज्ञानकी चर्चाकी प्रवृत्ति करावना। जहां धर्मकी प्रवृत्ति मन्द हो गई होय तिन ग्रामनिमें शास्त्र लिखाय भाषा वचनिका योग्य शास्त्र भेजना, ज्ञानदान समस्त मन्दकषायी भद्रपरिणामीनिकूं करना चाहिये। बहुरि सम्पदा पाय दान सन्मानतैं प्रिय वचनतैं अपने मित्रनिकूं कुटु-म्बकूं आनन्दित करना, संपदाका समागम अर जीवन क्षणभंगुर है इस धनतैं अर देहतैं तथा वचनतैं अन्य जीवनिका उपकार करना ही श्रेष्ठ है। प्रिय वचन बोलने का बड़ा दान है। वैरीनितैं अपना वैर छांडना प्रियवचनतैं अपराध क्षमा करावना बड़ा दान है अपना धन धरती देय करकैं हू संतोषित करना वैर धोवना अभिमान त्यागना कुटुम्बी निर्धन होय तिनकूं शक्ति प्रमाण दान-सम्मान करना अपनी बहिन बेटी निर्धन होय तो बारम्बार भोजन पान वस्त्र आभरणादिककरि बारम्बार सम्मान दान करना दया-

वान होय ते अन्यकूं दुःखित जान सन्मानतै दुःख मेटे हैं-सो जिनका आपमें उजर पहुंचै अर अपना अंग समान भूवा बहण बेटी जमाई इनका संताप कैसैं सहै कोऊकरि अपना उजाड़ विगाड़ होगया होय-तो कटुक वचन नाही कहना, इनको या कहना जो भाई तैं परिणाममें कुछ सन्ताप मत करो गृहचारीमें हानि वृद्धि लाभ अलाभ तो कर्मके अनुकूल है अर समस्त सामग्री विनासीक है तुम तो हमारे अनेक कार्य सुधारे हो तथा हमारे भले करनेकूं करो हो कर्मके अनुसार कोऊ विगड़ै भी है ऐसै प्रियवचनकरि सन्तोषित ही करै। बहुरि निरंतर ऐसा परिणाम ही राखै जो मेरा धनतै किसी जीवका उपकार होय तो अच्छा है अन्य पुरुष अपने हितमें प्रवर्तन करो वा अपने अहितमें प्रवर्तन करो आप तो उपकार करनेमे ही प्रवर्तन करै। बहुरि कोऊ बन्दीखानामें पड्या होय कोऊ झगड़ा फस्या होय तो अपने घरके पांच रुपया देयकर छुड़ावना कोऊ चूकि अपना धन चोरया होय तो प्रियवचनादिकतैं समताभावतैं सुलझाय लेना निर्धन होय तासूं लेनेको इरादो वा झगड़ो नाहीं करना कोऊ चोर खाया ताका फजीता अपवाद नाहीं करना आपके आश्रित होय तिनका पालन-पोषण करना विधवा होय, अनाथ होय, रोगवियोगादिक दुःख करि सन्तापित होय तिनका दुःख सन्ताप दूर करनेमें सावधानी करना बालक होय बालविधवा होय तिनका बहुत प्रकार सम्हालि तैं प्रतिपालन करना अपनेतै जे वैर राखै उपकार करेका हू अपकार मानै तिनका हू गुण-ग्रहण करना अर दान सम्मान करना। अवसर पाय अपने मित्र बांधवादिकनिका सम्मान नाहीं किया तो

धन ऐश्वर्य पाय केवल अपयशकी कालिमा ही ग्रहण करी। बहुरि अपने पुत्र कुटुम्बादिककी पालन तो सूरडी कूकरी हू करै है अव- सर पाय अपने बिगाड़ करनेवाले धन आजीविका हरनेवाले वैरीनिकाहू दान सन्मान उपकार करि वैरका अभाव करना दुर्लभ है। मनुष्यजन्म धन सम्पदा यौवन ऐश्वर्य क्षणभंगुर है अनेक का धन जीवन नष्ट होगया जिनका नाम अर स्थान हू नाहीं रह्या सोई कार्तिकेयस्वामी कह्या है—अतिशय करके आभरण वस्त्र स्नान सुगन्ध विलेपन नाना प्रकारके भोजन पानादिक करि अत्यंत पालन पोषण किया हुआ हू देह एक क्षणमात्रमें जलका भरया काचा घड़ाकी ज्यों विनशैं है। जो लक्ष्मी चक्रवर्तीनिकूं आदि लेय महापुण्यवाननिमें नाहीं रमी सो लक्ष्मी अन्य पुण्यरहित जननिमें कैसैं प्रीति बांधि रहैगी या लक्ष्मी कुलवाननिमें नाहीं रमै है कोऊ जानै मेरा कुल ऊंचा है मेरे लक्ष्मी रहवी आई है ऐसा नाहीं जानना कुलवानमें भी रहै वा नाहीं रहै नीच कुलवाले मे जाय रहै है धीरमे रमै वा नाहीं रमै पण्डित प्रवीणके रहै वा नाहीं रहै मूर्खनिके हू होय है शूरवीरनिके वा कायरनिकै माहि रमै वा न रमै पूज्यपुरुषनिमें तथा सुन्दर रूपवालेनिमें वा सज्ज- ननिमें वा महापराक्रमीनिमें वा धर्मात्मामें या लक्ष्मी रमै है ऐसा नियम जान सो नाहीं है।

भावार्थ—संसारी अज्ञानी भ्रमतैं ऐसा जानै है जो मैं तो कुलवान हूं मोकूं छांडि लक्ष्मी कैसैं जायगी तथा मैं धीर हूं धीरजवानके लक्ष्मी स्थिर रहै है चलायमानके विनसै है तथा मैं महापण्डित प्रवीण हूं मैं बड़ा प्रवीणतातैं यथार्थ है मूर्ख भ्रमाव

चूकि करि चाले ताकी लक्ष्मी नष्ट होय है तथा मैं शूरवीर हूँ अन्य की लक्ष्मीकी रक्षा करू हूँ मेरी कैसैं विनसै, कायरकै विनसै है तथा मैं पूज्य हूं समस्त की लक्ष्मी पूज्यमे रही चाहिये कोऊ नीचकी विनसै हैं तथा मैं धर्मात्मा हूं नित्य ही दानपूजाशीलादिकमें प्रवर्तू हूं मेरी कैसैं नष्ट होय, कोऊ पापीके सम्पदा विनसै है तथा मैं सुन्दर रूपवान हूं हमारी मूरत ऊपर ही लक्ष्मीको वास दीखै है कोऊ कुरूपकै विनसै। तथा मैं सुजन हूँ, सबका प्रिय हूं मेरे लक्ष्मी कैसे विनसै ? दुष्ट होय सबका अप्रिय होय ताकै विनसै, तथा मैं महापराक्रमी हूँ, उद्यमी हूं, मै प्रतिदिन नवीन उपार्जन करू हूं मेरी लक्ष्मी कैसै विनसै आलसी होय उद्यमरहित होय ताकै विनसै है ऐसा समझना मिथ्या भ्रम है या लक्ष्मी तो पूर्वले किये पुण्यकी दासी है पुण्यपरमाणु नष्ट होते ही विनसै है जैसैं पचास हाथके महलमें दीपक बुझते ही अन्धकार होजाय कौन रोके तथा जैसैं जीव निकसते ही समस्त इन्द्रियां चेष्टारहित हो जांय तथा जैसै तेल पूर्ण होते ही दीपक नष्ट हो जाय तैसैं पुण्य अस्त होते ही समस्त लक्ष्मी कांति बुद्धि प्रीति प्रतीति एक क्षणमें नष्ट होजाय है, प्रथम तो या लक्ष्मी न्यायके भोगनिमें लगाओ अर परिणामनिमें दयाभाव विचारि दुःखित बुभुक्षितनिकूं दान करो या लक्ष्मी जैसें जलमें तरंग क्षणमात्रमें विलाय जाय तैसै कोई दोय दिन लक्ष्मीका संयोग है पाछैं नियम सूं वियोग होयगा जो पुरुष या लक्ष्मीकूं निरन्तर संचय ही करै है न तो भोगै है अर न पात्रकूं दान देवै सो अपने आत्मा

कूं ठगै है अचानक मरि अन्तरमुहूर्तमें नारकी जाय उपजैगा मनुष्यजन्मकूं निष्फल किया। जे पुरुष लक्ष्मीका संचय करके अतिदूर गाडै हैं विनसनेके भयतै-पृथ्वीमें वहुत ऊंडी गाडै हैं सो पुरुष तिस लक्ष्मीकूं पाषाण समान करै है जैसै जमीनमें अनेक पाषाण है तैसैं धन भी धरया रहेगा आपके दान भोगके अर्थि नाहीं तदि दरिद्री तुल्य रह्या। वहुरि जो पुरुष लक्ष्मीकूं निरन्तर संचय करै है अर दान नाहीं करै अर भोगे हू नाहीं तिस पुरुषके अपनी हू लक्ष्मी प्रकी समान है। जैसैं पडोसीकी लक्ष्मी तथा नगरनिवासीनिकी लक्ष्मी देखनेमें आवै है अपने भोगनेमें आवै नाहीं, देनेमे आवै नाहीं। वहुरि जो पुरुष लक्ष्मीमें अति आसक्त भया प्रीतिरूप भया अपना आत्माकूं खावनेमें पीवनेमे औषधादिकनिमें वस्त्र पहरनेमें अपने रहनेकी जायगामें और हू भोगोपभोगनिमे नित्य ही क्लेश भोगै है पण धनके खरच होनेका वड़ा दुःख दीखै है तातैं कष्टतैं आप दिन व्यतीत करै है सो मूढ राजानिका वा अपने दाइयादार पुत्र स्त्री भ्रातादिकनिका कार्य साधै है आप तो धनकी ममताकरि दुर्गतिमें जाय उपजैगा अर धन राजा ले जायगा अथवा पुत्र कुटुम्बादिक लेवैंगे, आप तो पापी धन-उपार्जन करके हू केवल इस लोकमें क्लेशका पात्र ही रह्या। जो मूढ वहुत प्रकार अपनी बुद्धि करकैं लक्ष्मीकूं वधावै है अर वधाता २ तृप्त नाहीं होय है अर लक्ष्मी वधावनेकूं अनेक आरम्भ करै है पाप होनेतैं नाहीं डरै है रात्रिमें अर दिनमें धनके उपजाने के विकल्प करते २ वहुत रात्रि व्यतीत भए निद्रा ले है अर दिनमें प्रातःकालहीतैं द्रव्यके उपार्जनके विकल्प करै है, व्यवसायमें भोजन

हू नाहीं करै है अनेक लेन देन बनिज व्यवहार बकवाद करते २ कठिन क्षुधाकी प्रेरणातैं भोजन करै है अर रात्रिविषै कागद पत्र लेखा हिसाब जवाब सवालकी बड़ी चिंतामें मग्न भए तीन प्रहर रात्रि व्यतीत भए सोवै हैं सो मूढ़ केवल लक्ष्मीरूप तरुणीका दासपणा करिकै संकट भोगि दुर्गति गमन करै है। अर जो इस वर्द्धमान लक्ष्मीकूं निरन्तर धर्मकार्यके अर्थि देहै सो पंडित प्रवीण पुरुषनिकरि स्तुति करने योग्य है अर तिसहीका लक्ष्मी पावना सफल है। ऐसै जान करि जे धर्मसंयुक्त दारिद्रकरि पीडित ऐसे मनुष्यनिनै स्त्रीनिनै निरन्तर अपेक्षारहित ख्याति लाभ पूजाकूं नाहीं चाहता तथा उनतै कुछ अपना उपकार नाहीं चाहता आदर प्रीति हर्षसहित दान देवै है तिनका जीवना सफल है। जातै धन यौवन जीवन तो प्रत्यक्ष जलमें बुदबुदाकी ज्यों अथिर देखिये हैं अर दानका फल स्वर्गकी लक्ष्मीका, भोगभूमिकी लक्ष्मीका असंख्यातकालपर्यंत भोग-संपदा देनेवाला है, ऐसा जानि निरन्तर दान हीमें प्रवर्त्तन करो।

इहां ऐसा विशेष और हू जानना जो पूर्वजन्ममें सुपात्रदान दिया है सम्यक्तप किया है ते पुरुष तो इस दुःषमकालमे भरत क्षेत्रमें नाहीं उपजै है जातै इस दुःषमकालमे यहां सम्यग्दृष्टिका उपजना है ही नाहीं जे सम्यग्दृष्टि देवगति नरकगतितै आवै ते विदेहक्षेत्रमें ही पुण्यवान मनुष्य होय है अर मनुष्य तिर्यंच गतिका सम्यग्दृष्टि मरके स्वर्गलोकमे उपजै है जातैं इस क्षेत्रमें सम्यग्दृष्टि आय नाहीं उपजै है यहां कोऊ पुण्याधिकारीके काललब्ध्यादि सामग्रीतै सम्यक्त्व नवीन उपजै है अर पूर्वजन्ममे जिन

धर्म पालकरि पुण्य उपजाया सो हू यहां नाहीं उपजै है याहीतै जिनधर्ममे राजा उपजते रह गये अर और हू बहुत धनाढ्य पुरुष हू जैनीनिके कुलमे नाहीं उपजै हैं और जो जैनीनिके कुलमें धनाढ्य उपजै तो ते जिनधर्मरहित होय हैं कोऊ पुण्याधिकारीने अठै सत्तसंगति मिल जाय वा जिनसिद्धांत श्रवण मिलै तद नवीन बीजतै जिनधर्ममें सावधान हो जाय है। बहुरि इस कालमे जैनी भी धनाढय होय अर धर्मकूं समझै त्याग आखडीमें सावधान होय तो हू दानमे धन नाहीं खरच्या जाय है लाखां धन छांडि मर जाय है परन्तु आधा चौथाई धन हू दान धर्ममें नाहीं लगाया जाय है। इस कलिकालके धनाढय पुरुषनिकी कैसी रीति वा परिणाम होय है सो कहिये है—परिणाम करि क्रोध वधै है अपने पुरुषार्थका वडा अभिमान बधै है वात्सल्यता मूलतै जाती रहे है अन्यका किया कार्यकूं सराहै नाहीं, समस्तकी सकल बुद्धि घाटि दीखै दया रहै नाहीं अन्य पुरुषका वचनादि करि अपमान तिरस्कार करता शंकै नाहीं, अन्य पुरुष धर्मनीति लिए वचन कहै तिनकूं कुयुक्तितै खण्डन किया चाहै धर्मात्मा पुरुष विनयसहित संभाषण करै तो मनमे वड़ी शंका उपजै जो मोतैं कदाचित कुछ याचना करैगा निर्वांछक साधर्मीनिका भी भय ही रहै जो मोकूं कदाचित् धन खरचनेका उपदेश देगा, अभिमान दिन दिन प्रति बधै स्वभाव ऊपरि तेजी बधै, जो अपना कार्य होय ताकूं बहुत शीघ्रतासूं चाहै सेवकादिकका कष्ट दुःखकू नाहीं देखै अपना प्रयोजन साध्या चाहै परका प्रयोजन तथा दुःख क्लेशकूं तुच्छ जानै संपदा बधै ताकी लार खरच बधै खरचकी लारि दुःखबधै, दिन

दिन खरच घटावेका ही परिणाम रहै अपने भोगोपभोगकी वस्तु लेनेमें ऐसा परिणाम रहै जो अर्ध-दामनिमें आजाय कुछ घाटि लेजाय मोकूं बड़ा आदमी समझि बहुत मोलकी वस्तु थोड़े दाम-निमें दे जाय, कोऊ निर्धन तथा लूटका माल अति अल्प मोलमें आजाय ताका बड़ा हर्ष मानै, संचय करते करते तृप्ति नाहीं होय कोऊ आपकूं ठगाई जाय तासूं प्रीति करै धनवान दिखै ताकूं आप ठगावै, धनवान् पापी भी होय तासूं प्रीति करै, धनवान अधर्मी भी होय ताकी बुद्धिकूं बड़ी मानै, धनवानानै अपनी उदारता दिखावै निर्धनके निकट अपना अनेक दुःख रोवै दुःखी देख तिसको अपना बहुत दुःख सुनावै, अन्यकी वा निर्धनकी आबरू ओछी जानै, धनरहितकूं अपना वस्तु धीजतां बड़ी अप्रतीति करै, धन-रहितकूं चोर दगाबाज समझै, आप पैला सर्वस्व खा जाय तो हू आपकूं सांचा जानै अपनी बडाई करै, अपने कर्तव्यकी प्रशंसा करै, अन्यके उत्तम कार्यनिमें हू खोट प्रगट करै, आपकूं निःस्पृह निर्वांछक समझै, जगतके अन्य जीवनिके तृष्णा समझै आपकूं अजर अमर समझै, परकूं अनित्यपना समझै अन्य जीवनिकूं अति लोभी समझै आपकूं न्यायमार्गी समझै आपकूं प्रभु समझै धन रहितनिकूं रंक समझै, आरम्भपरिग्रह बधावता धापै नाहीं तृष्णा अति बधै, मरणपर्यंत संतोष नाहीं धारे अपयशका कार्य करेअर आपकूं यशस्वी समझै कपटी छलीकूं धन ठिगा देवै बहुत धूर्त कपटी छलीकूं अपना कार्य साधने वाला पुरुषार्थी प्रवीण समझै सत्यवादी मर्यादासहित प्रवृत्तिका धारी निरपेक्ष होय तिनकूं बुद्धिहीन समझै जहां अपना अभिमान बधै कषाय पुष्ट-होय

आपका नाम होता जानै तहां जायगामे मन्दिरमें वागवगीचनिमे विवाहमे यात्रामें भाडानिमें वहुत धन खर्च करै मन्दिरादिकनिमें भी अपनी उच्चता होनेकूं पंचनिमें अभिमान जहां वधै तहां धन खरचि करै जीर्णमन्दिरादिकनिमें नाहीं देवै निर्धन भूखेनिके पालनमे पीस्यो (पैसा) एक नाहीं देवै, दुर्बल दीन अनाथ वृद्ध रोगी विधवा इनका पालनिमे धन कदाचित नाहीं खरच करै, निर्धन दुःखितकूं नष्ट हुआ समझै आपहू अच्छा भोजन न करै जो कुटुम्बादिकका विभाग करना पड़ैगा। ऐसा अभिमान धारै है जे घणे ही धर्मात्मा तपस्वी पंडित हमारे घर आवै हैं अर अनेक आवेंगे समस्त देशी विदेशी गुणवान जैनीनिकूं वड़ा ठिकाना हमारा घर ही है अर हम ही दातार है और कहां ठिकाना है अर केतेक अपने घरके कार्य सुधारने वाले वा धर्म कार्यमे नियुक्त हैं तिनकी भी धनका मदकरि वड़ी अवज्ञा करै है इनकी हम पालना करै हैं हमारेतै छूटे इनकूं कहां ठिकाना है। ऐसे पंचमकालके धनवाननिकं ऊपरि मोहकी वड़ी अंधेरी पड़ रही है, पूर्व जन्ममे जिनधर्मरहित कुतपस्या करी है, कुपात्रकूं दान दिया है इस वीजतैं धन संपदा पाई है सो धनसंपदा छांडि धनकी मूर्छातैं मरि, कषायनिकी मंदता तीव्रताके प्रभाव माफिक सर्पादिक तिर्यंचनिमें वृक्षादिकनिमे मधुमक्षिकादिकनिमें उपजि नरकादिकनिमें वहुतकाल परिभ्रमण करैंगे या धनकी मूर्छा इस लोकमे हू वैरको तथा अपयशको कारण है कृपणका सकल जन अपवाद करै हैं कृपणका परिणाम निरन्तर क्लेशित रहै है दुर्ध्यानी रहै। अर दानके मार्गमे लगाया धन अपना धन जानहू पात्रदानमें गया धन मरणके समयमें परिणाम-

निकी उज्वलता-कराय अंतर्मुहूर्त में स्वर्गकी संपदाकूं प्राप्त करै है। यहां उत्तम पात्र तो निर्ग्रंथ वीतरागी समस्त मूलगुण उत्तरगुणके धारक दशलक्षण धर्मके धारक बाईस परिषहके सहनेवाले साधु हैं।

दर्शनादिक उद्दिष्टआहारका त्यागीपर्यंत ग्यारह स्थान श्रावक के हैं ते मध्यम पात्र हैं बहुरि जिनके व्रत तो नाहीं अर जिनेन्द्रके प्ररूपे तत्त्वके श्रद्धानी जन्ममरणादिरूप संसार परिभ्रमणतैं भयवान चार प्रकारके संघके हित होनेमें बांछा सहित संसारदेह भोगनिमें विरक्तबुद्धि जिनशासनका उद्योतक अपनी निंदा गर्हा करता स्वपरतत्त्वका विचारमें चतुर, जिनकथित तत्त्वमें धर्ममे दृढ़ताका धारक, धर्म अधर्मके फलमें अनुराग सहित, सकल जीवनिकी दयाकरि व्याप्तचित्त मन्दकषायी परमेष्ठीका भक्त इत्यादिक समस्त सम्यक्त्वके गुणनका धारक सो जघन्य पात्र है। ऐसे तीन प्रकार के पात्रनिमें यथायोग्य आहार औषधि शास्त्रवस्तिकादिक स्थान, वस्त्र, जीविका, जीवनेकी स्थिरताके कारण विनय सहित दिये हुए भावनिके अनुकूल उत्तम मध्यम जघन्य भोगभूमिमें दातारकूं उत्पन्न करै है अर सम्यग्दृष्टिकूं सौधर्मादिक स्वर्गमें महर्द्धिक देवनिमें उत्पन्न करै हैं। अब कुपात्रके ऐसे लक्षण जानना जिनके मिथ्याधर्मकी दृढ़ वासना हृदयमें तिष्ठै है, अरघोर तपके धारक अर समस्त जीवनिकी दया करनेमें उद्यमी, असत्यवचन कठोरवचनसूं पराङ्मुख समस्त प्रियवचन कहै धनमें स्त्रीमें कुटुम्बमे निःस्पृह रहै, मिथ्याधर्मका निरन्तर सेवन करनेवाला जपतप शील संयम नियममें जिनके दृढ़ता सहित प्रीति हो मन्दःकषायी परिग्रह रहित कषायविषयनिका त्यागी एकान्त बागवनादिकमें वसनेवाले

आरंभरहित परीषह सहनेवाले संक्लेशरहित संतोषसहित रसनी-रसके भक्षणमें समभावके धारक क्षमाके धारक आत्मज्ञानरहित बाह्यक्रियाकाण्डतैं मोक्ष मानने वाले ऐसे कुपात्र हैं। तथा केई जिनधर्मके पक्ष ग्रहण करने वाले हू एकान्ती हठग्राही अपनी वुद्धि हीतैं अपने आपकूं धर्मात्मा मान रहै हैं सो केई तो जिनेंन्द्र का पूजन आराधन गान भजनहीसूं आपकूं कृतकृत्य मानि बाह्य पूजन स्तवनादिकमें तत्पर हैं अन्य ज्ञानाभ्यास व्रतादिकमें शिथिल रहै हैं। केतेक जलादिकतै धोवना सोधना अन्नादिककूं धोवना, स्नान कर जीमना, अपना हस्ततै वनाया भोजन करना वस्त्रादिकनिका धोवना धोया हुआ स्थानमें जीमना इत्यादिक क्रिया करके ही आपके धर्म मानैं हैं, केई देखि सोधि चालना सोवना वैठना जलकूं वड़ा यत्नाचारतै छानना याही तैं आपकूं कृतकृत्य मानै हैं अन्यकूं-क्रियारहितकूं निंद्य जानै हैं केई उप-वासादिक व्रत रसपरित्यागादिकरि आपकूं ऊंचा मानैं हैं। केई दुःखित वुभुक्षितका दान हीकूं धर्म जानैं हैं। केई भद्रपरिणामी समस्त धर्महीकूं समान जानता विचाररहितपनाहीमें लीन हैं। केई परमेश्वरका नाम मात्रहीकूं धर्म जानि विकथा निन्दादिरहित तिष्ठै हैं। केतेक अन्य जीवनिका उपकार करि समस्त विनय करने कूं धर्म मानैं हैं केतेक अपनी इन्द्रियनिकूं दण्ड देते रूखा सूखा एक वार भोजन कर मौनावलम्बी भये अपनी आयुकूं जैठै तैठै तिष्ठते व्यतीत करै हैं केतेक नाना भेषके धारक मन्दकषायी परि-ग्रहरहित विषयरहित तिष्ठै हैं। केतेक कोऊ एक वार हस्तमें भोजन धर दे सो भक्षण कर याचनारहित विचरै हैं इत्यादिक

अनेक एकांती परमागमका शरणरहित आत्मज्ञानरहित मिथ्या- दृष्टी कुपात्र हैं इनको दान देना अनेकप्रकार फलै है जैसा पात्र जैसा दातार, जैसा भाव, जैसा द्रव्य, जैसी विधिसूं दिया तैसा फलै है केई तो असंख्यात द्वीपनिमें दानके प्रभावतैं पंचेंद्रिय तिर्यंचनिके युगलनिमें उपजैं हैं जहां च्यार च्यार अंगुल प्रमाण महामिष्ट सुगंध तृण भक्षण है महान् अमृत समान जल पीवैं हैं परस्पर वैर विरोधरहित तिष्ठै हैं जहां शीतकी बाधा नाहीं उष्णता की तावडा पवन वर्षादिककी बाधारहित एक पल्यपर्यंत आयु भोगै हैं जहां विकलत्रयनिकी बाधारहित अनेकप्रकार स्थलचर नभचर तिर्यंच होय यथेच्छ विहार करते सुखतैं भोग भोगते जुगल ही लार उपजैं लार ही मरकरि व्यन्तर भवनवासी ज्यो- तिषी देवनिमें उपजै हैं तथा केई कुपात्रदानके प्रभावतैं उत्तरकुरु देवकुरु भोगभूमिमें तिर्यंच उपजैं तीनपल्यपर्यंत सुख भोग देवनि में उपजैं हैं केई कुपात्रदानके प्रभावतै हरिक्षेत्र रम्यकक्षेत्रनिमें दोय पल्यकी आयुके धारक, केई हिमवतक्षेत्रमें हैरण्यवतक्षेत्रनिमें एक पल्यकी आयुकूं धारण करि तिर्यंच युगलनिमें उपजि, मरि देव- लोक जाय हैं। केई कुपात्रदानके प्रभावतैं अन्तरद्वीप छिनवै है तिनमें मनुष्य-युगल उपजैं हैं। इहां अन्तर द्वीपनिमें मनुष्य उपजैं हैं तिनका स्वरूप ऐसा है—समुद्रकी पूर्व दिशामें चार द्वीप है तिनमें पूर्वदिशाके द्वीपमें मनुष्य एक पगवाले उपजै हैं, दक्षिण दिशामें पूंछ वाले मनुष्य हैं पच्छिम दिशामें सींगवाले मनुष्य हैं उत्तर दिशामें वचनरहित गूंगे मनुष्य उपजैं हैं समुद्रकी चार विदिशाके चार द्वीपनिमें अनुक्रमतैं सांकलकेसे कर्णवाले तथा

शष्कुलीकर्ण मनुष्य उपजैं हैं एक कर्णकूं ओढ़ले एककूं बिछायले ऐसे लम्बकर्ण उपजै हैं। बहुरि लम्बे कानवाले लम्बकर्ण मनुष्य अर सुआकेसे कर्ण वाले मनुष्य ए समुद्रकी विदिशामें उपजैं हैं। बहुरि सिंहकासा मुख (१) घोड़ाका सा मुख (२) कूकराकासा मुख (३) सूकरकासा मुख (४) भैंसाका सा मुख (५) व्याघ्रकासा मुख (६) घूघूकासा मुख (७) वानरका सा मुख (८) मच्छकासा मुख (९) कालमुख (१०) मीढाकासा मुख (११) गौकासा मुख (१२) मेघकासा मुख (१३) विजलीकासा मुख (१४) दर्पणका सा मुख (१५ हस्तीकासा मुख (१६) यह सोलह दिशा विदिशानिके अन्तरालमें तथा पर्वतनिके अन्तकी सूधिमें द्वीप हैं तिनमें मनुष्य ऐसे मुखवाले उपजै है। ऐसे ऐसे लवण समुद्रके एक तटमे चौवीस अन्तरद्वीप हैं। दोऊ तटके अड़तालीस अर अड़तालीस ही कालोदधि समुद्रके ऐसे छियानवे अन्तरद्वीपनिमें कुभोगभूमि है तिनमे कुपात्रदानतैं मनुष्य युगल उपजैं हैं तिनमें एक टांग वाले हैं ते गुफानिमे वसे हैं अर अत्यन्त मीठी मृत्तिका भक्षण करै हैं इनतैं अन्य जे इसप्रकारके मनुष्य हैं ते वृक्षनिके नीचें वसैं हैं अर कल्पवृक्षनिके दिये नानाप्रकारके फल भक्षण करै हैं।

अब कुभोगभूमिके मनुष्यनिमें उपजनेके कारण परिणामनिकूं तीन गाथानिमें त्रिलोकसारजीमें कहा सो कहै हैं—

> जिणलिंगे मायावी जोइसमंतोवजीविधणकंखा।
> अइगउरसण्णजुदा करंति जे परविवाहं पि ॥९२२॥
> दंसणविराहिया जे दोसं णालोचयंति गणगा।
> पंचग्गितवा मिच्छा मोणं परिहरिय भुंजंति ॥९२३

दुब्भावअसुइसूदगपुप्फवईजाइसंकरादीहिं ।
कयदाणावि कुपत्ते जीवा कुणरेसु जायंते ॥ ६२४ ॥

अर्थ—जो जिनेन्द्रका निर्ग्रंथ लिंग धारण करके अनेक परीषह सहते हू मायाचारके परिणाम धारैं है तथा केतेक जिनलिंग धारण करि हू ज्योतिषविद्या मंत्रविद्या वैद्यविद्या लोकनिमें भोजनादिकरि जीवै है लोकनिकूं ज्योतिष वैद्यक मन्त्रशास्त्रादि करि आपमें भक्त करै हैं तथा जिनेन्द्रका लिंग अर तपश्चरण करि धनकी वांछा करै है तथा जिनलिंग धारण करि ऋद्धिका गर्वकरि युक्त हैं हम जगतमें पूज्य हैं तथा अपना यश जगतमें विख्यातें हैं ताका गर्वकरि युक्त है तथा अपने साताका उदयजनित सुखकरि गर्वकूं धारै है तथा जिनलिंग धारण करि आहारकी वांछा धारै हैं तथा अशुभका उदयको भय धारै हैं तथा मैथुनकी वांछा करै हैं परिग्रह शिष्यादिककी वांछा करै है तथा जिनलिंग धारि परके विवाहमे प्रवृत्ति करै है ते कुतपके प्रभावतैं कुमानुषनिमें उपजैं हैं बहुरि जे जिनलिंग धारण करि सम्यग्दर्शनकी विराधना करै हैं, जे जिनलिंग धारण करके हू अपने दोषनिकी आलोचना गुरुनिसूं नाहीं करै है तथा जिनलिंग धारण करके हू अन्यके दोष कहै हैं, बहुरि जे मिथ्यादृष्टि पञ्चाग्नि तपकरि कायक्लेश करै हैं, जे मौन छांडि भोजन करैं हैं तथा जे दुष्ट भावनिकरि दान देहै तथा जे अशुचिपणाकरि दान देवै हैं तथा सूतकादि सहित होय दान देवै हैं तथा रजस्वला स्त्रीका संसर्ग करि दान देवै हैं तथा जातिसंकारादिकनिकरि दान देवैं हैं

तथा कुपात्रनिमें दान करें हैं ते कुमानुषनिमें उपजै हैं ते कुमानुषहू समस्त क्लेशरहित एक पल्पपर्यंत स्त्री पुरुषका युगल साथि ही उपजै अर मरें है। दानके तपके प्रभावतैं सदा काल सुखमें मग्न काल पूर्ण करि मन्द कषायके प्रभावतै भवनत्रकनिमें जाय उपजैं हैं। बहुरि केई कुपात्रनिकूं दान देय बहुत भोगनि सहित म्लेच्छ उपजैं है, केई कुपात्रदानके प्रभावतैं नीचकुलनिमें बहुत धनके धनी मांसभक्षी मद्यपायी वेश्यामें आसक्त निरोग शरीर होय हैं। केई कुपात्रदानके प्रभावतैं राजानिके दासी दास हस्ती घोडा श्वान वानर इत्यादिकनिमें सुन्दर भोजन वस्त्र आभरणादिक प्रचुर भोग उपभोग सामग्री भोगि मरणकरि दुर्गति चले जांय हैं, जातैं कुपात्र हू अनेकजातिके अर दातारके भाव हू अनेक जातिके हैं अर दानकी सामाग्री हू अनेक जातिकी हैं तातै दानका फल हू अनेक जातिका है।

बहुरि दयादान ऐसा जानना जो वुभुक्षित होय, दरिद्री होय अन्धा होय, लूला होय, पांगला होय रोगीहोय, अशक्त होय वृद्ध होय बालक होय, विधवा होय, बावराहोय, अनाथ होय, विदेशी होय अपने यूथतैं सङ्गतैं विछुडि आया होय तथा बंदीगृहमें रुक्या होय, बन्ध्या होय, दुष्टनिका आतापतैं भागि आया होय लुट आया होय जाका कुटुम्ब मर गया होय, भयवान होय ऐसा पुरुष होहू वा स्त्री होहू तथा बालक होहू वा कन्या तथा तिर्यंच होहू इनकी क्षुधा तृषा शीत उष्ण रोग तथा वियोगादि-कनिकरि दुःखित जानि करुणाभावतैं भोजनवस्त्रादिक दान देना सो करुणादानमें हू उनका ज्ञानि कुल आचरणादिक जानि यथायोग्य दान करना। जो कमधर्मादि भ्रष्ट

करने वाले है उनकूं तो भोजन अन्न औषधि मात्र ही देना अर निंद्य आचरण वाले नाहीं इनका दुःख दूर करनेयोग्य रुपया पैसा हू देना स्थान हू देना ये दुःखित उपदेश योग्य हू हैं इनकूं भोजन वस्त्र औषधि स्थान उपदेश हू देना तथा जे स्थान देने योग्य नाहीं इनकौं दुःखी देखि रोटी अन्नमात्र देय चलावना वैयावृत्य करने योग्य तिनका वैयावृत्य करनां ज्ञानदान हू देना जातैं करुणादान पात्र कुपात्र अपात्रका विचाररहित केवल दयामात्र ही करि देना है तो हू देशकाल परिणाम जाति कुलादि विचार यत्नसहित दान करो। मांसभक्षी मद्यपायीकूं रुपया पैसा नाहीं देना बहुत दुःखोमें करुणा उपजै तो अन्नमात्र देना याका फल यशकीर्तनादि की वांछा नाहीं करना। बहुरि दानके देने योग्य नाहीं ते अपात्र हैं। अब अपात्रनिके लक्षण कहै है जे धर्मरहित होंय, हिंसाके आरम्भमे आसक्त होंय, महालोभी परिग्रह बधाया ही चाहैं धन का धनी होय करकै हू याचना करिवो करै यज्ञादिकके करनेवाले वेदोक्त हिंसाधर्ममें रक्त रहैं चंडी भवानीके सेवक होंय, बकरा भैसानिका घात करावने वाले तथा कुदानके लेने वाले मद्य पीवने मे भंगपान करनेमें वेश्यासेवनेमें लीन जिनधर्मके द्रोही शिकारादि करनेमें धर्म कहनेवाले, परधन परकी स्त्रीके रागी अपनी प्रशंसा करनेवाले, व्रती नाम कहाय व्रतभंगकरि पंच पापनिमें आसक्तता युक्त, बहुतआरम्भी बहुपरिग्रही तीव्रकषायी असत्यमें लीन, खोटे शास्त्रके उपदेश देनेवाले तथा जिन शास्त्रमें खोटे मिलाय मिथ्या प्ररूपणा करनेवाले व्यसनी पाखण्डी अभक्ष्य-भक्षक अर व्रत-शीलसंयम तपतैं पराङ्मुख विषयनिके लोलुपी जिह्वाइन्द्रियके

वशीभूत भये मिष्ट भोजनके लंपटी ये सब अपात्र हैं जातैं इनमें पात्रपना तो रत्नत्रय धर्मके अभावतैं नाहीं अर कुधर्म जे मिथ्या-धर्म सेवने वाले-भी परके उपकारी दयावानपना, क्षमा सन्तोष सत्यशील त्यागादिक पूजा जाप्य नाम स्मरणादि मिथ्याधर्म भी जिनमें पाइये नाहीं तातैं कुपात्र हू नाहीं अर गरीब दीन दरिद्र दुःखित हू नाहीं तातै दयादानके पात्र हू नाहीं। केवल लोभी मदोन्मत्त विषयांका लम्पटी हैं धर्मके इच्छुक हू नाहीं। तथा केई जैनी नाम करके हू जिन धर्मका भेष हू-केवल जिह्वा इन्द्रियका विषयरूप नाना प्रकारके भोजन जीमनेकूं धार्‌या है तथा धन पैदा करनेकूं भेष धार्‌या है, अभिमानी होय अपनी पूजा उच्चता धनका लाभके इच्छुक होय तप व्रत पठन वाचनादि अंगीकार करै हैं ते अपात्र है,- दानके योग्य नाहीं। इनको दान देना कैसाक है पाषाणमें बीज बोवने समान है तथा कटुक तूंबीमें दुग्ध धारण तुल्य है तथा गहनवनमें चोरके हस्तमें अपना धन सौंपने तुल्य है तथा अपने जीवनिके अर्थि विषभक्षण समान है तथा रोग दूरि करनेकूं अपथ्यभोजन समान है तथा सर्पकूं दुग्धपान करावने समान दुःखकी उत्पत्तिका बीज है तातैं अन्ध-कूपमें अपना धनकूं पटकि देना परन्तु अपात्रकूं दान मत करो अपात्रका दान है सो अपने घरमें विषके वृक्षकूं पुष्ट करना है अपात्रका संगम दावाग्निवत् दूरहीतैं त्याग करो। जैसैं विषवृक्ष की वासना ही मूर्छित करै है तैसैं अपात्रकी वासना हू सम्यग्-ज्ञानतैं भ्रष्ट करै है ऐसा दानका वर्णनमें पात्र कुपात्र वर्णन किया है।

अब चार प्रकार सुपात्रदान देय जे प्रसिद्ध हूआ तिनके

आगमपाठतैं नाम कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

श्रीषेणवृषभसेने कौण्डेशः शूकरश्च दृष्टांताः ।
वैयावृत्यस्यैते चतुर्विकल्पस्य मन्तव्याः ॥ ११८ ॥

अर्थ—चार प्रकारके वैयावृत्यका चार दृष्टांत जानने योग्य हैं आहारदानका फलतैं श्रीषेण राजा प्रसिद्ध हुआ और औषधिदानका फलतैं वृषभसेना श्रेष्ठीकी पुत्री प्रसिद्ध भई अर शास्त्रदानके फलतैं कोंडेश नामा ग्वाल शास्त्रदान देय अन्यभवमें केवली भयो अर वस्तिकाके दानतैं सूअर मरि स्वर्गलोकमें महर्द्धिक देव हुवो दानका अचिंत्य प्रभाव है इस लोकमें हू दानी समस्तमें उच्च होय जाय है। अब यहां ऐसा और हू जानना जो दान देय दानका फल विषयभोग मेरे होयगा ऐसै विषयनिकी वांछा कदाचित् मत करो। जे दानका फलतैं इन्द्रियनि के भोग चाहै है ते चिंतामणि देय काचखंडकूं ग्रहण करै हैं तथा अमृत छांडि विष पीवै हैं तथा सूत्रके अर्थि मणिमयहारकूं तोडै हैं तथा ईंधनके अर्थि कल्पवृक्षकूं छेदै हैं तथा लोहेके अर्थि नावकूं तोडै है तथा अपने कंठमें अतिभारी पाषाण बांधि 'अगोध' जलमें प्रवेश करै हैं। कैसेक हैं इन्द्रियनिके विषय अग्निकी ज्यों दाह उपजावै हैं कालकूट जहरकी ज्यूं अचेत करै हैं मारै है, पंचपापनिमें प्रवर्तावनेवाले हैं, तृष्णा उपजावनेवाले है नरकमें प्राप्त करनेवाले हैं, महावैरके कारण हैं ज्वररोगकी ज्यों सन्ताप मूर्छा प्रलाप दुःख भय, शोक-भ्रम उपजावनेवाले है विषयनिका चिंतवन ही जीवकूं अचेत करै है सेवन किये तो अनेक भवनिमें मारै ही यातैं निर्वांछक होय दानधर्ममें

प्रवर्तन करो। आपकूं लाभांतरायका क्षयोपशमतैं जो प्राप्त भया तामें संतोष करि आगामी वांछा मत करो पावभर धान हू मिलै तामें भी दानका विभाग करो दान निमित्त धनकी वांछा मत करो वांछाका अभाव सो ही परम दान है, सो ही परमतप है ऐसैं वैयावृत्यकूं ही अतिथि- संविभाग व्रत कहिये। ऐसैं दानका वर्णन तो किया।

अब वैयावृत्यहीमें जिनेन्द्रका पूजन है यातै जिनेन्द्र पूजनका उपदेश करनेकूं सूत्र कहै हैं—

देवाधिदेवचरणे परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणं ।
कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यम् ॥११६॥

अर्थ—देव जे इन्द्रादिक तिनका अधिदेव कहिये स्वामी जो अरहन्तदेव ताका चरणनिके समीप जो परिचरण कहिये पूजन सो आदरतैं नित्य ही करै। कैसाक है पूजन समस्त दुःखनिका नाश करनेवाला है वांछितकूं परिपूर्ण करनेवाला है अर कामकूं दग्ध करनेवाला है।

भावार्थ—गृहस्थके नित्यही जिनेन्द्रका पूजन समान सर्वोत्तम कार्य अन्य नाहीं है तातैं प्रथम ही नित्य जिनेन्द्रका पूजन करना इहां ऐसा संबंध जनना जो किंचितमात्र अशुभकर्मका क्षयोपशमतैं मनुष्य तिर्यंचनिका ज्यों सप्तधातुमय देह जिनके नाहीं तथा आहारादिके अधीन क्षुधा तृषादिक वेदना का मेटना नाहीं स्वयमेव कण्ठमेतैं अमृत झरै है तिसकरि क्षुधा तृषा वेदना करि जिनके बाधा नाहीं अर जरा आवै नाहीं रोग आवै नाहीं इत्यादिक कर्मकृत किंचित् बाधाके अभावतैं च्यारगतिमे देवनिको उत्तम कहै हैं

अर जिनमें ज्ञानावरण वीर्यांतरायादिक कर्मका अधिक क्षयोपशम होनेतै अन्य देवनिमें नाहीं पाइये ऐसी ज्ञान वीर्यादिक शक्तिकी अधिकतातै देवनिके स्वामी इन्द्र भये, जे इन्द्र समस्त असंख्यात देवनिकरि वंद्य है। अर जो समस्त ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय अन्तराय आत्माकी शक्तिके घातक समस्त कर्मका नाश करि जिनेन्द्र भए ते समस्त इन्द्रादिककरि वन्दनीक भए। ते देवाधिदेव हैं देवाधिदेवका चरणनिका पूजन है सो समस्त दुःखका नाश करने वाला है अर इन्द्रियनिके विषयनिकी कामनाका नाश कर मोक्ष होनेरूप सुखकी कामनाकूं पूर्ण करनेवाला है तातैं अन्य आराधना छांडि जिनेन्द्रका आराधन करो। बहुत काल संसारी रागी द्वेषी मोही जीवनिकी आराधन सेवन करि घोर कर्मका बंधकरि संसारमे परिभ्रमण किया। वीतराग सर्वज्ञकूं आराधन करता तो कर्मके बंधका नाश करि स्वाधीन मोक्षरूप आत्माकूं प्राप्त होता तातैं संसारके समस्त दुःखका नाश करने वाला जिनेन्द्रका पूजन ही करो। इहां कोऊ आशङ्का करै भगवान अरहन्त तो आयु पूर्णकरि लोकके अग्रभागमें मोक्षस्थानमें हैं धातु पाषाणके स्थानरूप प्रतिबिंबनिमें आवै नाहीं तथा अपना पूजन स्तवन चाहै नाहीं अपना अनंतज्ञान अनंतसुखमें लीन तिष्ठै है अपना पूजन स्तवन तो अभिमान कषाय करि संतापित अपनी बड़ाईका इच्छुक अपना अपना स्तवन करि संतुष्ट होय ऐसा संसारी रागद्वेष सहित होय सो चाहै भगवान परमेष्ठी वीतराग अनंतचतुष्टयरूपमे लीन तिनके पूजाकी चाह नाहीं धातु पाषाणका प्रतिबिंबमे आवै नाहीं किसी का उपकार करै नाहीं, किसीका अपकार हू करै नाहीं, पजन

स्तवनादि करै तासूं प्रीति करै नाहीं, निंदा करै तामें द्वेष करै नाहीं, फिर किस प्रयोजनके अर्थि पूजन स्तवन करिये है ? ताकूं उत्तर कहै हैं।

जो भगवान वीतराग तो पूजन स्तवन चाहैं नाहीं परन्तु गृहस्थका परिणाम शुद्ध आत्मस्वरूपकी भावनामें तो ठहरै नाहीं साम्यभावरूप रहै नाहीं निरालंबित ठहरै नाहीं, तदि परमात्म-भावनाका अवलंबनि करि वीतराग स्वरूपका ध्यानके अर्थि शुद्ध आत्माका अवलंबनके निमित्त विषय कषाय आरम्भका अवलम्बन छांडि साक्षात् परमात्मस्वरूपका धातु पाषाणमें प्रतिबिंबनिमें संकल्पकरि परमात्माका ध्यान स्तवन पूजन करै है तिस अवसरमें विषयकषायदिक संकल्पके अभावतैं दुर्ध्यानके छूटनेतैं अपने परिणामकी विशुद्धताका प्रभावतैं अशुभकर्मनिका रस सूक जाय अशुभकर्मनिकी स्थिति घटि जाय, अनुभाग घटि जाय सो ही पापकर्मका अभाव हैं अर परिणामनिकी विशुद्धताका प्रभाव करि शुभ प्रकृतिनिमें रस बधि जाय है तिन शुभ आयु बिना समस्त कर्मनिकी प्रकृतिकी स्थिति घटि जाय है याहीतैं वीतरागका स्तवन पूजन ध्यानके प्रभावतैं पापकर्मका नाश होय है सातिशय पुण्यकर्मका उपार्जन होय है, और हू निश्चय करि पुण्यपापका बन्धका कारण तो अपना भाव ही है बाह्य जैसा अवलंबन करै तैसा अपना भाव होय है यद्यपि भगवान अरहन्त धातुपाषाणके प्रतिबिंबमें आवै नाहीं अर भगवान वीतराग किसीका उपकार अपकार करै नाहीं तथापि वीतरागका ध्यान पूजन नाम स्मरण शुभ परिणाम करनेकूं रागद्वेषके नाश करनेकूं याके समान है नाहीं दृढ़

उपकार जीवका होय है जैसै काष्ठपाषाण चित्रामके स्त्रीनिके रूप राग कूं कारण है तथा अचेतन सुवर्ण मणि माणिक्य रूपा महल वन बाग ग्राम पाषाण कर्दम स्मशानादिका देखना श्रवण करना राग द्वेष उपजावै है तथा शुभ अशुभ वचन राग रुदन सुगंध दुर्गंध ये समस्त अचेतन पुद्गल द्रव्य हैं इनका श्रवण अवलोकन चितवन अनुभव करि रागद्वेष होय है तैसैं जिनेन्द्रकी परमशांतमुद्रा ज्ञानीनिके वीतरागता होनेकूं सहकारी कारण है प्रेरक नाहीं अर भव्य जीवनिके वीतरागतातै अन्य कुछ चाहना नाहीं है अर जिनेन्द्रके चरणनिके पूजनेमें जो जल चन्दनादि अष्ट द्रव्य चढ़ाईये है सो कुछ भगवान भक्षण करै वा पूजन बिना अपूज्य रहैंगे वा वासना लेवै है ऐसा अभिप्रायतैं चढावना नाहीं है भगवानके दर्शनका अति आनन्दतैं जलचंदनादिकरूप अर्घ उतारण करना है। जैसैं राजानिकी भेंट करना, नजरकरना, उतारना, निछरावलि करनी अक्षतपुष्पादिक क्षेपुना, मोतीनिके थाल वार (फेर) के उतारन करै हैं तथा सुवर्णकी महोर रुपयांका थाल उतार करि लुटावै है रत्ननिके थाल भर निछरावलि करि क्षेपै हैं पुष्प अक्षतादिक उतारन करै हैं ते राजानिकी भक्ति अर आनन्द प्रकट करना है, राजानिकूं दान नाहीं, राजानिके अर्थि नाहीं है, निछरावलि राजानिके निकट करी हुई अर्थी जन याचक जन ग्रहण करै है। तैसैं भगवान अरहंतनिके अग्रभागविषै अष्टद्रव्यनिका अर्घ चढावना जानना।

अब पूजनके योग्य नव देवता है। उक्तं च गोमट्टसारे गाथा--

अरहंतसिद्धसाहूतिदयं जिणधम्मवयणपडिमाहू ।

जिणणिलया इंदिराए णवदेवा दिंतु मे बोहिं ॥ १ ॥

अर्थ—अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु, जिनधर्म, जिनवचन, जिनप्रतिमा, जिनमंदिर इस प्रकार ये नव देव हैं ते मोकूं रत्नत्रयकी पूर्णता देवो सो जहां अरहंतनिका प्रतिबिंब है तहां नव रूप गर्भित जानना जातैं आचार्य उपाध्याय साधु तो अरहंतकी पूर्व अवस्था है अर सिद्ध है सो पूर्वैं अरहंत होय करके ही सिद्ध भया है अरहंतनकी वाणी सो जिनवचन है अर वाणीकरि प्रकाश किया अर्थ सो जिनधर्म है अर अरहंतका स्वरूप जहां तिष्ठै सो जिनालय है ऐसे नवदेवतारूप भगवान अरहंतके प्रतिबिंबका पूजन नित्यही करना योग्य है। अरिहंतके प्रतिबिंब अधोलोकमें भवनवासीनिके चमर वैरोचनादिक इन्द्र अर असंख्यात भवनवासी देवनिकरि पूजिये है अर मध्यलोकमें चक्रवर्ती नारायण बलभद्रादिक अनेक धर्मात्मानि कर पूजिये है अर व्यंतरलोकमें व्यंतरेंद्रादिक देवनि करि पूजिये है अर ज्योतिर्लोकमें चंद्रसूर्यादिक असंख्यात ज्योतिषी देवन करि पूजिये है स्वर्गलोकमें सौधर्म इन्द्रादिक असंख्यात कल्पवासी देवनिकरि पूजिये है ऐसैं त्रैलोक्यके भव्यनि करि वंद्य पूज्य अरहंतका तदाकार प्रतिबिंब है सो सदाकाल भव्यजीवनिकूं पूजना योग्य है। अब पूजा दोय प्रकार है एक द्रव्यपूजा एक भावपूजा तहां जो अरहंत प्रतिबिंबका वचनद्वारैं स्तवन करना नमस्कार करना तीनप्रदक्षिणा देना अञ्जुलि मस्तक चढावना, जल चंदनादि अष्ट द्रव्य चढावना सो द्रव्यपूजा है अर अरहंतके गुणनिमें एकाग्रचित्त होय अन्य समस्त विकल्प छांडि गुणनिमें अनुरागी होना तथा अरहंतप्रतिबिंबका ध्यान

करना सो भावपूजा है अथवा अरहंतप्रतिबिंबका पूजनके अर्थि शुद्धभूमिमें प्रमाणीकजलतैं स्नान करि उज्वल वस्त्र पहरि महाविनयसंयुक्त अंजुलि जोडि भक्तिसहित उज्वल निर्दोष जलकरि अरहंतके प्रतिबिंबका अभिषेक करना सो पूजन है यद्यपि भगवानके अभिषेकका प्रयोजन नाहीं तथापि पूजकके ऐसा भक्तिरूप उत्साह का भाव है जो अरहंतकूं साक्षात् स्पर्श ही करूं हूं अभिषेक ही करूं हूँ ऐसी भक्तिकी महिमा है। बहुरि उत्तम जलकूं झारीमें धारण करि अरहंतप्रतिबिंबका अग्रभागविषै ऐसा ध्यान करे जो हे जन्म जरा मरणकूं जीतने वाले जिनेन्द्र ! मै जन्मजरामरणके नाशके अर्थि जलकी तीनधार आपका चरणारविन्दकी अग्रभूमिविषै क्षेपण करूं हूँ हे जिनेन्द्र ! हे जन्मजरामरणरहित आपका चरणांका शरण ही जन्मजरामरणरहित होनेकूं कारण है बहुरि हे संसारपरिभ्रमणका आतापरहित मैं अपने संसारपरिभ्रमणरूप आताप नष्ट करनेकूं चंदन कर्पूरादिकद्रव्यकूं आपका चरणनिका अग्रभागविषैं चढाऊं हूं। हे अविनाशी पदके धारक जिनेन्द्र मैं हू अक्षयपदकी प्राप्तिके अर्थि अक्षतनिकूं आपका अग्रस्थानमें क्षेपण करू हूं। हे कामवाणके विध्वंसक जिनेन्द्र मैं हू कामका विध्वंसके अर्थि पुष्पनिकूं आपका अग्रस्थानमें क्षेपण करूं। हे क्षुधारोगरहित जिनेन्द्र मैं हू क्षुधारोगका नाशके अर्थि नैवेद्यकूं आपका अग्रस्थानविषै स्थापन करूं हूं। हे मोहअंधकाररहित जिनेन्द्र ! मैं हू मोहअंधकार दूरि करनेकूं आपका अग्रस्थानविषै दीपक करूं हूँ। हे अष्टकर्मके दाहक जिनेन्द्र मैं हू अष्टकर्मके नाशके अर्थि आपका अग्रभागस्थानविषैं धूप स्थापना करूं हूँ। हे मोक्षस्वरूप

जिनेन्द्र मैं हू मोक्षरूपफलके अर्थि आपका अग्रस्थानविषै फलनिकूं स्थापन करूं हूँ। ऐसै अपने देश कालकी योग्यता प्रमाण एकद्रव्यतैं हू पूजन है दोयद्रव्यतै तथा तीन च्यार पांच छह सात अष्टद्रव्यनितै हू पूजन करि भावनिकूं परमेष्ठीके ध्यानमें युक्त करै है स्तवन पढै है महापुण्य उपार्जन करै है पापकी निर्जरा करै है।

इहां ऐसा विशेष और जानना जो जिनेन्द्र के पूजन समस्त च्यारप्रकारके देव तो कल्पवृक्षनितै उपजे गन्ध पुष्प फलादि सामग्री करि पूजन करै हैं अर सौधर्म इन्द्रादिक सम्यग्दृष्टि देव हैं ते तो जिनेन्द्रकी भक्ति पूजन स्तवन करके ही अपनी देवपर्यायकूं सफल मानैं अर मनुष्यनिमें चक्रवर्ती नारायण बलभद्रादिक राजेंद्र हैं ते मोतीनिके अक्षत रत्ननिके पुष्प फल दीपकादिक तथा अमृतपिंडादिकरि जिनेन्द्रका पूजन स्तवन नृत्य गानादिककरि महापुण्य उपार्जन करै है। अर अन्य मनुष्यनिमें हू जिनके पुण्य के उदयतैं सम्यक् उपदेशके ग्रहणतैं जिनेन्द्रके आराधनमे भक्ति उत्पन्न होय ते समस्त जातिकुलके धारक यथायोग्य पूजन करैं है। समस्त ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र अपना अपना सामर्थ्य अपना-अपना ज्ञान कुल बुद्धि सम्पदा संगति देशकालके योग्य अनेक स्त्री-पुरुष नपुंसक धनाढय निर्धन सरोग नीरोग जिनेन्द्रका आराधन करैं है। केई ग्रामनिवासी हैं, केई नगरनिवासी हैं केई वननिवासी हैं केई अति छोटे ग्राममें वसनेवाले हैं तिनमें केई तो अतिउज्वल अष्टप्रकारसामग्री बनाय पूजनके पाठ पढिकरि पूजन करैं हैं केई कोरा सूका जव, गेहूँ, चना, मक्का, बाजरा, उड़द, मूंग, मोठ इत्यादिक धान्यकी मूठी ल्याय जिनेन्द्रको चढावै हैं केई

रोटी चढ़ावे हैं, केई रावड़ी चढ़ावै है, केई अपनी वाडीतैं पुष्प ल्याय चढ़ावैं है केई नानाप्रकारके हरित फल चढ़ावैं हैं, केई जल चढ़ावै है। केई दाल भात अनेक व्यञ्जन चढ़ावैं हैं, केई नाना मेवा चढ़ावै है, केई मोतीनिके अक्षत माणिकनिके दीपक सुवर्ण रूपानिके तथा पंचप्रकार रत्ननिकरि जड़े पुष्प फलादि चढ़ावैं हैं केई दुग्ध केई दही केई घृत चढ़ावै है, केई नानाप्रकारके घेवर, लाडू, पेड़ा, बरफी, पूड़ी, पूवा, इत्यादिक चढ़ावैं हैं, केई वंदना मात्रही करै हैं, केई स्तवन केई गीत नृत्य वादित्र ही करैं हैं, केई अस्पर्श्यशूद्रादिक मन्दिरके बाह्य ही रहि मन्दिरके शिखरकी तथा शिखरनिमें जिनेन्द्रके प्रतिबिंबका ही दर्शन बन्दना करै हैं। ऐसैं जैसा ज्ञान जैसी सङ्गति जैसी सामर्थ्य जैसी धन सम्पदा जैसी शक्ति तिस प्रमाण देशकालके योग्य जिनेन्द्रका आराधक अनेक मनुष्य हैं ते वीतरागका दर्शन स्तवन पूजन बन्दनाकरि भावनि के अनुकूल उत्तम मध्यम जघन्य पुण्यका उपार्जन करै हैं यो जिनेन्द्रका धर्म जाति कुलके अधीन नाहीं, धनसम्पदाके अधीन नाहीं वाह्यक्रियाके अधीन नाहीं है। अपने परिणामनिकी विशुद्धताके अनुकूल फलै है। कोऊ धनाढ्यपुरुष अभिमानी होय यश का इच्छुक होय मोतीनिके अक्षत माणिकानिके दीपक रत्नसुवर्ण के पुष्पनिकरि पूजन करै है अनेक वादित्र नृत्यगान करि बड़ी प्रभावना करै है तो हू अल्प पुण्य उपार्जन करै वा अल्प हू नाहीं करै केवल कर्मका बन्ध ही करै है कषायनिके अनुकूल बन्ध होय है। केई अपने भावनि की विशुद्धतातैं अति भक्तिरूप हुआ कोऊ एक जल फलादिक करि वा अन्नमात्र करि वा स्तवनमात्रकरि

महापुण्य उपार्जन करै है तथा अनेक भवनिके संचय किये पाप-कर्मकी निर्जरा करै हैं, धनकरि पुण्य मोल नाहीं आवै है। जे निर्वांछक हैं मन्दकषायी, ख्याति लाभ पूजादिकक़ूं नाहीं वांछा करता केवल परमेष्ठीका गुणांमें अनुरागी हैं तिनके जिनपूजन अतिशयरूप फलकूं फलै है। अब इहां जिनपूजन सचित्त द्रव्यनितैं हू अर अचित्तद्रव्यनि तैं हू आगममें कह्या है जे सचित्तके दोषतै भयभीत हैं यत्नाचारी हैं ते तो प्रासुक जल गन्ध अक्षतकूं चन्दन कुंकुमादिकतैं लिप्त करि सुगंध रङ्गीनमें पुष्पनिका संकल्पकरि पुष्पनितैं पूजैं हैं तथा आगम में कहे सुवर्णके पुष्प वा रूपाके पुष्प तथा रत्नजटित सुवर्णके पुष्प तथा लवंगादिक अनेक मनोहर पुष्पनिकरि पूजन करै हैं अरु प्रासुक ही वहु आरम्भादिकरहित प्रमाणीक नैवेद्यकरि पूजन करै हैं वहुरि रत्ननिके दीपक वा सुवर्णरूपामय दीपकनि करि पूजन करै हैं तथा सचिक्कणद्रव्यनिके केसरके रङ्गादितैं दीप का संकल्पकरि पूजन करै हैं तथा चन्दनअगरादिककूं चढ़ावैं हैं तथा वादाम जायफल पूंगीफलादिक अवधि शुद्ध प्रासुक फलनितैं पूजन करै हैं ऐसैं तो अचित्त द्रव्यनिकरि पूजन करै हैं

वहुरि जे सचित्त द्रव्यनितैं पूजन करै हैं ते जल गन्ध अक्ष-तदि उज्वल द्रव्यनिकरि पूजन करै हैं अर चमेली चंपक कमल सोनजाई इत्यादिक सचित्त पुष्पनितैं पूजन करै हैं, घृतका दीपक तथा कपूरादिक दीपकनिकरि आरती उतारै हैं अर सचित्त आम्र केला दाडिमादिक फलकरि पूजन करै हैं धूपायनिमें धूपदहन करै हैं ऐसैं सचित्त द्रव्यनिकरि हू पूजन करिये है। दोऊप्रकार आगम

की आज्ञा प्रमाण सनातनमार्ग है अपने भावनिके अधीन पुण्य-बन्धके कारण है। यहां ऐसा विशेष जानना जो इस दुःषम-कालमें विकलत्रय जीवनिकी उत्पत्ति बहुत है अर पुष्पनिमें बेंद्री तेंद्री चौद्री पंचेंद्री त्रसजीव प्रगट नेत्रनिके गोचर दौड़ते देखिये है पुष्पनिकूं पात्रमें झडकाय देखिये तो हजारां जीव फिरते दौड़ते नजर आवै है अर पुष्पनिमे त्रसजीव तो बहुत ही हैं अर बादर निगोदजीव अनन्त है अर चैत्रमासमें तथा वर्षाऋतुमें त्रस-जीव बहुत उपजै है तातैं ज्ञानी धर्मबुद्धि हैं ते तो समस्त कार्य यत्नाचारतै करो। जैसै जीवनिकी विराधना न होय तैसैं करो। बहुरि फूलनिके धोवनेमें दौडते त्रसजीवनिकी बड़ी हिंसा है यातैं हिंसा तो बहुत है अर परिणामनिकी विशुद्धता अल्प है यातै पक्षपात छांडि जिनेन्द्रका प्ररूप्या अहिंसाधर्म ग्रहण करि जेता कार्य करो तेता यत्नाचाररूप जीवविराधना टालि करो इस कलि-कालमे भगवानका प्ररूप्या नयविभाग तो समझै नाहीं अर शास्त्रनिमें प्ररूपण किया तिस कथनीकूं नयविभागतै जानै नाहीं अर अपनी कल्पनाहीतैं पक्ष ग्रहण करि यथेष्ट प्रवर्तैं है। बहुरि केतेक पक्षपाती भादवामें दिवसमें तो पूजन नाहीं करै रात्रि मे पूजन करै है बहुत दीपक जोवैं नैवेद्य चढ़ावै हैं बहुत पुष्पनि का पुंज चढ़ावै हैं तिनमे लाखां मच्छर डांस मक्षिकाका छत्ता पड़ै है दीपकके पात्रनिमें अपरिमाण मच्छर डांस मक्षिका अर हरे पीत श्याम लालरङ्गके कोट्यां त्रसजीव अनेकरंगके छोटी अवगाहनाके धारक सामग्री करनेमें चढ़ावनेके थालनिमें वस्त्रनि में दीपकनिके निमित्त दूर-दूरतै आय पड़ि पड़ि मरैं है

प्रत्यक्ष देखे हैं, अपने मुखमें नासिकामें नेत्रनिमें कर्णनिमें धसै हू उड़ावै हैं मारै हैं तो हू अपनी पक्ष छांड़ै नाहीं, दिवस छांडि रात्रिमें ही पूजन करै है। रात्रिमें तो आरम्भ छांड़ि यत्नाचारसहित रहनेकी आज्ञा है धर्मका स्वरूप तो बाह्य जीव-दया अर अन्तरङ्गमें रागद्वेषमोहका विजयरूप है। जहाँ जीव-हिंसा तहां धर्म नाहीं अर जहां अभिमानके वश होय एकान्तपक्ष का ग्रहण करि अपना पक्ष पुष्ट करनेकूं हिंसाका भय नाहीं करै है तहां धर्म नाहीं बहुरि केतेक एकांती मंडल मांडि आठदिन दशदिन राखैं है। तिन सामग्रीनिमें प्रत्यक्ष नेत्रनिके गोचर लट कीडा विचरै है। फलादिक गलि चलितरस होय हैं। तथा नैवेद्यादिकनिकी गन्धतैं कीडा कीडीनिके नाला खुल जाय है। प्रभावनाके अर्थि अनेक मनुष्य आवै तिन करि खूंदि मरि जाय हैं ऐसै प्रत्यक्ष देखते हू अपनी पक्षका अभिमानकी अंधेरी करि नाहीं देखै है। रात्री की बासी सामग्री रखना महान् हिंसाका कारण है। बहुरि अनेक पुराणनिमें अर अनेक श्रावकाचारनि में अरहन्तकी प्रतिमाका अष्ट द्रव्यनिकरि पूजन करनेका ही उपदेश है। अर कहूँ अरहन्त प्रतिबिंबका स्तवन वन्दनाका कहूं अभिषेकका वर्णन है। अर प्रतिबिंब तदाकार होते किसी ग्रन्थमें हू स्थापनाका वर्णन नाहीं अर अब इस कलिकालमें प्रतिमा विराजमान होते हू स्थापनाही कूं प्रधान कहैं हैं।

इस जयपुरमे संवत् १८५० अठारहसैपचासका सालमें अपना मनकी कल्पनातैं कोई नव स्थापनाकी प्रवृत्ति रची है तिनमें अरहंत १ सिद्ध २ आचार्य ३ उपाध्याय ४ साधु ५ जिनवाणी ६ दशलक्षण

धर्म ७ षोडश कारण ८ रत्नत्रय ९ ऐसैं नवप्रकार स्थापना करै हैं अर ऐसैं कहै है जो सप्तव्यसनका त्याग अन्यायका त्याग अभक्ष्य का त्याग जाकै होय सो स्थापनासंयुक्त पूजन करै, अन्याय अभक्ष्यका त्याग जाकै नाहीं होय सो स्थापना मत करो। स्थापनसहित पूजन तो सप्तव्यसनका अन्याय अभक्ष्यका त्याग करनेवाला ही करै जाके त्याग नाहीं सो स्थापना कर्‌यां विना पूजन करलो स्थापना नाहीं करना। अर स्त्रीनिकूं रंगीन कपड़ा पहरि स्थापना विना पूजन करना कहै हैं। ऐसैं कहनेवालेनिकै साक्षात् जिनेन्द्रका प्रतिबिंब मानना नाहीं रह्या अर तदाकार चांवलाकी स्थापना हीका विनय करना रह्या प्रतिबिंबका विनय करना मुख्य नाहीं रह्या प्रतिमाका पूजन वंदना स्तवन तो चाहै सो ही करो अर पीततंदुलां में स्थापना करना तो उत्तम होय व्यसन अभक्ष्यादिक पापरहित होइ तिसहीकै योग्य है। ऐसैं पीतअक्षतनिमें स्थापना सो तो मुख्य विनय रह्या अर प्रतिमामें पूजनादिक गौण रह्या अर पक्षपाती कहै हैं जिस तीर्थंकरको प्रतिमा होय तिनकै आगै तिन ही की पूजा स्तुति करनी अन्य तीर्थंकरकी स्तुति पूजा नाहीं करनी अर अन्य तीर्थंकरकी पूजा करनी होय तो स्थापना तंदुलादिकतैं करके अन्यका पूजन स्तवन करना ऐसा पक्ष करै है।

तिनकूं इस प्रकार तो विचार किया चाहिये जे समन्तभद्र स्वामी शिवकोटिराजाके प्रत्यक्ष देखते स्वयंभू स्तवन कियो तदि चंद्रप्रभ स्वामीकी प्रतिमा प्रगट भई तब चन्द्रप्रभके सन्मुख अन्य षोडशतीर्थंकरनिका स्तवन कैसे किया? बहुरि एक प्रतिमाके निकट एक हीका स्तवन पढ़ना योग्य होय तो स्वयंभूस्तोत्रका

पढ़ना ही नाहीं संभवै आदिजिनेन्द्रकी प्रतिमा विना भक्तामरस्तोत्र पढ़ना नाहीं बनैगा, पार्श्वजिनकी प्रतिमा बिना कल्याणमंदिर पढ़ना नाहीं वनैगा पंचपममेष्ठीकी प्रतिमा विना वा स्थापना विना पंच नमस्कार कैसैं पढ्या जायगा, कायोत्सर्ग जाप्यादिक नाहीं वनेगा वा पंचपरमेष्ठीकी प्रतिमा विना नाम लेना जाप्य करना सामायिक करना नाहीं संभवैगा तथा अन्यदेशमैं नाहीं-जान्या मन्दिरमें पहली प्रतिमाका निश्चय-विना स्तुति पढ़ना नाहीं संभवेगा तथा रात्रिका अवसर होय छोटी अवगाहनाकी प्रतिमा होय तहां पहली चिन्हका निश्चय करै पाछैं स्तवनमैं प्रवर्त्या जायगा तथा जिस मन्दिरमें अनेक प्रतिमा होंय तदि जाको स्तवन करै तिसके सम्मुख दृष्टि समस्या हस्त जोड़ वीनती करना संभवै अन्य प्रतिमाके सम्मुख नाहीं संभवै वहुरि जिस मन्दिरमें अनेक प्रतिबिंव होंय तहां जो एकका स्तवन वंदना किया तदि दूजेका निरादर भया। दूजेका स्तवन किया तदि तीजे चौथे पांचमादिक का भावनिमें निरादर भया तदि भक्ति नष्ट भई। अर जो कहोगे वहुत प्रतिमा होंय तहां चौवीसका स्तवन करेंगे तो जहां जो वीस ही तथा वाईस तेईस' ही होंय तो पहली एकके चिन्हका आछी तरह निर्णयकरि तितना ही का स्तवन किया जायगा अन्य तीर्थकरनिका स्तवन निकास्या जायगा अर जहां छोटे स्वरूप होंय दूरि विराजमान होंय तथा दृष्टिमन्द होंय तहां पांच आदम्याने पूछि स्तवन वंदना करना वनैगा ऐसे एकांती मनोक्त कल्पना करनेवालेके अनेक दोष आवैं हैं।

वहुरि जो स्थापनाके पक्षपाती स्थापन विना प्रतिमाका पूजन

नाहीं करैं तो स्तवन वन्दना करनेकी योग्यता हू प्रतिमाकै नाहीं रही। बहुरि जो पीततन्दुलनिकी अतदाकार स्थापना ही पूज्य है तो तिन पक्षपातीनिके धातुपाषाणका तदाकार प्रतिबिंब स्थापन करना निरर्थक है तथा अकृत्रिम चैत्यालयके प्रतिबिंब अनादिनिधन स्थापन है तिनमें हू पूज्यपना नाहीं रह्या। बहुरि एक प्रतिमाके आगे एकका पूजन होय अन्य तेईसका पूजन करै सो पीतअक्षतनिकी स्थापन करके करै तदि तेईस प्रतिमाका संकल्प पीतअक्षतनिमें भया तदि जयमाल स्तवन पूजनमें अपनी दृष्टि पीतअक्षतनिमें ही रखनी एक प्रतिमामें चौबीसका भाव अयोग्य ठहरै, तेईस प्रतिमास्थापनके पुष्प रहैं। जो पूजन ही स्थापना विना नाहीं तदि घरमें, वनमे, विदेशमें अरहन्तनिका स्तवन वन्दना हू नाहीं सम्भवै एकांती आगमज्ञानरहित पक्षपाती हैं तिनके कहनेका ठिकाना नाहीं, पापका भय नाहीं। बहुरि पूजन चौवीसका करै शान्तिमें सोलमा तीर्थंकरका स्तवन करै। तातैं अनेकान्तका शरण पाय आगमकी आज्ञा विना पक्षका एकांत ठीक नाहीं है।

ऐसा विशेष जानना—एक तीर्थंकरकै हू निरुक्ति द्वारै चौवीस नाम संभवै हैं। तथा एक हजार आठ नाम करि एक तीर्थंकरका सौधर्म इन्द्र स्तवन किया है तथा एक तीर्थंकरके गुणनिके द्वारै असंख्यात नाम अनन्तकालतैं अनंत तीर्थंकरनिके हो गये है अर माता पिताके हू ए ही नाम अर शरीर की अवगाहना अर वर्णादिक ए हू अनंतकालमें अनंत हो गये। तातैं हू एक तीर्थंकरमें एकका भी संकल्प अर चौवीसका भी

संकल्प संभवै है। अर इस कालमें अन्यमतीनकी अनेक स्थापना हो गई तातैं इसकालमें तदाकार स्थापनाकी ही मुख्यता है जो अदतदाकार स्थापनाकी प्रधानता हो जाय तो चाहै जीहीमें वा अन्यमतीनकी प्रतिमामें हू अरहन्तकी स्थापनाका संकल्प करने लगि जांय तो मार्ग भ्रष्ट हो जाय। अर प्रतिमाके चिन्ह हैं सो इन्द्र जन्माभिषेक करि मेरुसूं ल्यायो तदि ध्वजामें जो चिह्न स्थापन किया था सो ही प्रतिमाके चरणचौकीमें नामादिक व्यवहारके अर्थि है अर एक अरहन्त परमात्मा स्वरूपकरि एकरूप है अर नामादिककरि अनेक स्वरूप है। सत्यार्थ ज्ञानस्वभाव तथा रत्नत्रयरूपकरि वीतराग भावकरि पंचपरमेष्ठीरूप एक ही प्रतिमा जाननी तातैं परमागमकी आज्ञा विना वृथा विकल्प करना शङ्का उपजावनी ठीक नाहीं जिनसूत्रकी आज्ञा हू सो प्रमाण है। बहुरि व्यवहारमें पूजनके पंच अंगनिकी प्रवृत्ति देखिये है आह्वनन ॥१॥ स्थापना ॥२॥ संनिधिकरण ॥३॥ पूजन ॥४॥ विसर्जन ॥५॥ सो भावनिके जोड वास्तैं आह्वाननादिकनिमे पुष्प क्षेपण करिये है। पुष्पनिकूं प्रतिमा नाहीं जानै है। ए तो आह्वाननादिकनिका संकल्पतैं पुष्पांजलि क्षेपण है। पूजनमें पाठ रच्या होय तो स्थापना करले नाहीं होय तो नाहीं करै। अनेकांतिनिके सर्वथा पक्ष नाहीं भगवान परमात्मा तो सिद्धलोकमें हैं एक प्रदेश भी स्थानतैं चलै नाहीं परन्तु तदाकार प्रतिबिंबसूं ध्यान जोडनेके अर्थि साक्षात् अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधुरूपका प्रतिमामें निश्चय करि प्रतिबिंबमें ध्यान पूजन स्तवन करना बहुरि केतेक पक्षपाती कहै हैं जो भगवान्का प्रतिबिंब विना

सभाके श्रावक लोकनिमें हजूरी पद तथा स्तोत्र मत पढो। भगवान्परमेष्टीका ध्यान स्तवन तो सदाकाल परमेष्ठीकूं ध्यान-गोचरि करि पढना स्तवन करना योग्य है जो प्रतिमाका सम्मुख तो विना स्तुतिका हजूरी पद पढनेकूं निषेध है तिनके पञ्चनम-स्कार पढना स्तवन पढना सामायिक वन्दनाका पढना प्रतिमाका सन्मुख विना नाहीं संभवैगा। शास्त्रका व्याख्यानमें नमस्कारके श्लोक पढनेका निषेध हो जायगा। तातैं अज्ञानीका कहनेतैं अध्यात्ममें कदाचित् पराङ्मुख होना योग्य नाहीं।

यहां प्रकरण पाय अकृत्रिम चैत्यालयनिका स्वरूप ध्यानकी शुद्धताके अर्थि श्रीत्रिलोकसारके अनुसार किंचित् लिखिये है। अधोलोकमें सात करोड बहत्तर लाख भवनवासीके भवन हैं तिनमें केतेक भवन असख्यात योजनके विस्ताररूप हैं। केतेक संख्यात योजनके विस्ताररूप हैं तिन एक-एक भवनमें असंख्यात भवनवासी देवनिकरि वन्दनीक एक-एक जिन मन्दिर है ऐसैं सात कोड वहित्तर लाख ही जिन मन्दिर हैं। अर मध्यलोकमें पंचमेरुनिमें अस्सी जिन मन्दिर हैं, गजदन्तनि ऊपरि बीस हैं अर कुलाचलनिमें तीस। विजयार्द्धनिपरि एकसौ सत्तर, देवकुरु उत्तरकुरुमे दश, वक्षारगिरिनिमें अस्सी। मानुषोत्तरऊपरि चार, इष्वाकार ऊपरि चार, कुंडलगिरि ऊपरि चार, रुचिकगिरि ऊपरि चार, नन्दीश्वर द्वीपमें बावन ऐसे मध्यलोकमें चारसे अठावन हैं। ऊर्ध्वलोकमे स्वर्गनिमे अहमिंद्रलोकमे चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेईस है। अर व्यंतरनिके असंख्यात जिनमंदिर हैं अर ज्योतिर्लोकमे असंख्यात जिन मन्दिर हैं। ऐसैं संख्यारूप

जिनमन्दिर तो आठ कोडि छप्पन लाख सत्तानवे हजार चारसै इक्यासी हैं। अर व्यंतरज्योतिषिनके असंख्यात जिनमन्दिर हैं। अब जिनालयनिका स्वरूप कहिये है—जिनालय तीन प्रकार हैं उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य। तिनमें उत्कृष्ट जिनमन्दिरकी लम्बाई सौ योजनकी है, चौड़ाई पचास योजन है, ऊंचाई पचहत्तर योजनकी है। अर मध्यम जिनमन्दिर पचास योजन लम्बे, पचास योजन चौड़े, साढासैंतीस योजन ऊंचे हैं अर जघन्य जिनमंदिर पचास योजन लम्बा, साढ़ाबारा योजन चौड़ा, पौणाउगणीस योजन ऊंचा है अर समस्तकी नींव जमीनमे आधा २ योजनकी है बहुरि इन जिनमन्दिरनिके तीन तीन द्वार हैं तिनमें सन्मुख द्वार तो एक-एक है और पसवाडे दोऊनिके दोय-दोय द्वार हैं तिनमें सन्मुख द्वारका परिमाण ऐसा जानना उत्कृष्ट जिनमंदिरनिके द्वारकी ऊंचाई सोलह योजनकी है, चौड़ाई आठ योजनकी है। मध्यम मन्दिरनिका द्वारकी ऊंचाई आठ योजनकी अर चौड़ाई चार योजनकी है, जघन्य जिनमन्दिरनिका द्वारकी ऊंचाई चार योजन की अर चौडाई दोय योजनकी है। बहुरि पसवाडेनिके दोय दोय छोटे द्वारनिका परिमाण ऐसा जानना, उत्कृष्ट जिन मन्दिरका छोटा द्वारकी ऊंचाई चार योजनकी है अर मध्यम जिनमन्दिरका छोटा द्वारकी ऊंचाई चार योजनकी है अर चौड़ाई दोय योजनकी है अर जघन्य जिनमन्दिरनिके छोटे द्वार दोय योजन ऊंचे और एक योजन चौड़े हैं। इहां भद्रशालवन नंदवनन नंदीश्वरद्वीपमें अर स्वर्ग के विमानमें उत्कृष्ट परिमाण सहित जिनालय हैं अर सौमनसवन में रुचक पर्वतमें कुण्डलगिरिऊपरि वक्षारगिरनिऊपरि इष्वाका

ऊपरि मानुषोत्तरऊपरि कुलाचलनिऊपरि-मध्यमप्रमाण लिये जिन मंदिर हैं अर पांडुक वनके जिनालयनिका जघन्य प्रमाण है। बहुरि विजयार्द्ध पर्वतनके उपरि अर जंबूशाल्मलि वृक्षनिविषै जिनमंदिरनिकी लम्बाई एक कोसकी है अवशेष जे भवनवासिनके भवननिमें तथा व्यंतरनिके, ज्योतिषीदेवनिके जिनालय है ते यथा-योग्य लम्बाई जिनेन्द्र भगवान देखी है तैसे-तैसे प्रमाण लिये है। अब जिनमंदिरनिका वाह्य परिकर सात गाथानिमें कह्या है। समस्त जिनभवनके चार तरफ चार चार द्वारनिकरियुक्त मणि-मयी तीन कोट है। अर द्वारनि होय जानेकी गली-गली एक एक मानस्तम्भ हैं अर नव-नव स्तूप हैं अर तीन-तीन कोटका अंतराल के माहीं पहला दूजा कोटके बीच वन है दूसरा तीसरा कोटके बीच ध्वजा है। तीजा कोट अर चैत्यालयके बीच चैत्यभूमि है। तिन जिनभवननिविषैं एक सौ आठ गर्भगृह है। तिन जिनभवन-निके मध्य रत्ननिके स्तंभनिकरियुक्त सुवर्णमय दोय योजन चौड़ा आठ योजन लम्बा चार योजन ऊँचा देवच्छन्द कहिये मंडप गुम्मज छतिसहित है तिषविषै एकसौ आठ गर्भगृह हैं तिन गर्भ-गृहनिविषै आदि जिनेन्द्रके देह परिमाण उच्चतायुक्त एक सौ आठ जिन प्रतिमा रत्नमय हैं कैसेक हैं जिन प्रतिमा भिन्न भिन्न सिंहा-सन छत्रत्रयादि प्रतिहार्यनिकरि सहित हैं। अति नील मस्तक-विषैं जिनके केश हैं ते केशनिके आकार रत्ननिके पुद्गलपरिणमें है केश नाहीं है। बहुरि वज्र जो हीरा तिनमयी दन्तनिके आकार संयुक्त हैं अर विद्रुम जो मूंगा तिस समान रक्त जिनके ओष्ठ हैं।

अर नवीन कूंपल समान शोभायुक्त रक्त हस्तपादतल हैं श्रीराज-वार्तिकमें प्रतिमाका वर्णनमें लोहिताक्ष मणिकरि व्याप्त अङ्क स्फटिकमणिमय हैं नयन जिनके अर अरिष्ट मणिमय हैं श्याम नेत्रनकी तारका जिनकी अर अंजन मूल मणिमय वाफणी अर भृकुटीकी लता जिनके नीलमणिमय केशनिकरि युक्त ऐसी जिन प्रतिमा है दश तालप्रमाण लक्षणादिकरि भरी हैं। यहां तालका परिमाण वारह अंगुलका है प्रथम जिनेन्द्र ज्यों। जानो कि देखें ही है मानो बोलै ही है। बहुरि एक गर्भगृहविषैं बराबर पंक्ति करि खड़े नागकुमारनिके वा यक्षनिके बत्तीस युगल चमर हस्त-निमें लिये हैं।

भावार्थ—एक एक गर्भगृहमे एक एक जिनप्रतिमाके दोऊ तरफ समस्त आभरणकरि भूषित अर श्वेतनिर्मलरत्नमय चमर हस्तमें धारण करते नागकुमार वा यक्ष चौंसठ चमर ढारै हैं। ऐसैं एकसौ आठ प्रतिमानिके जुदे २ प्रातिहार्य एक एक जिना-लयमें हैं बहुरि तिन जिनप्रतिमाके दोऊ पसवाडेन विषैं श्रीदेवी अर सरस्वतीदेवी अर सर्वाह्न यक्ष अर सनत्कुमार यक्ष इनके रूपआकार तिष्ठैं हैं बहुरि अष्ट प्रकारके मंगल द्रव्य जिनप्रतिमाके निकट शोभैं है। झारी ॥१॥ कलश ॥२॥ दर्पण ॥३॥ बीजणा ॥४॥ ध्वजा ॥ ५ ॥ चमर ॥ ६ ॥ छत्र ॥ ७। ठोना ॥ ८ ॥ ए आठ मंगलद्रव्य हैं ते एक मंगलद्रव्य एक सौ आठ प्रमाण एक एक प्रतिमाके शोभैं हैं। अब गर्भगृहके बाह्यकी रचनाकूं ऐसैं जानो—मणिजटित सुवर्णमय पुष्पनिकरि शोभित बना जो देवच्छन्द तींका अग्रभागके मध्य रूपामयी अर सुवर्णमयी

बत्तीस हजार कलस है बहुरि महाद्वार जो बड़ा द्वार ताके दोऊ पार्श्वनिविषै चौईस हजार धूपके घडे है। बहुरि तिस महाद्वारके बाहिर दोऊ तरफ आठ हजार मणिमई माला हैं। तिन मणिमई मालानिके वीच चौईस हजार सुवर्णमय माला हैं। बहुरि तिस महाद्वार के आगैं सन्मुख मुखमंडप है तिस मुखमंडपविषैं सोलह हजार कलश हैं अर सोलह हजार सुवर्णमय माला हैं तिस मुखमंडपविषै सोलह हजार धूपघट हैं तिस मुखमंडपका मध्यविषै ही महान् मिष्ट झणझणा शब्द करती मोती अर मणिनिकर निपजी किंकणी जे छोटी घंटी तिनकरि सहित नाना-प्रकारके घण्टनिके समूह अनेक रचना करियुक्त शोभैं है। अब जिनमन्दिरके छोटे द्वारादिकका स्वरूप कहै हैं। जिनमन्दिरका दक्षिण उत्तरके पसवाडेनिका मध्यमें प्राप्त जे छोटे द्वार तिसविषै कह्या विधानतै समस्त रचना आधी आधी जानना। मणिमाला चार हजार हैं धूपघट बारह हजार हैं सुवर्णमाला बारह हजार हैं तिन छोटे द्वारनिके आगै मुखमंडप हैं तिसमें सुवर्णके घट आठ हजार हैं अर सुवर्णमय माला आठ हजार है आठ हजार धूपघट हैं और मुखमंडपनिमें क्षुद्रघटिका अनेक रचना है बहुरि तिस मन्दिर का पृष्ठभागविषै मणिमाला तो आठ हजार है। अर सुवर्णमाला चौईस हजार है। माला है ते भीतिके चौगिरद लूंबती जाननी अब मुखमंडपनिका विस्तारादिका स्वरूप पंद्रह गाथानिमें कह्या है सो कहिये हैं,—इस मन्दिर के आगैं मुखमंडप है सो जिन मंदिरके समान सौ योजन लंबा पचास योजन चौडा सोलह योजन ऊंचा है। अर तिस मुखमंडपके आगै चौकोर

प्रदक्षिणामंडप है सो प्रदक्षिणमंडप सौयोजन चौडा लंबा है। सोलह योजनतैं अधिक ऊंचा है तिस प्रदक्षिणमंडपके आगै अस्सी योजन चौडा लंबा अर दोय योजन ऊंचा सुवर्णमय पीठ है। पीठ नाम चौंतरा का जानना। तिस पीठ का मध्यविषैं चौकोर चौंसठ योजन चौडा लंबा अर सोलह योजन ऊंचा स्थानमंडप है स्थानमंडप नाम सभामंडपका है।

बहुरि इस स्थानमंडपके आगैं चालीस योजन ऊंचा २ स्तूपनिका मणिमय पीठ है सो पीठ चार द्वारनिकरि संयुक्त बारह अबुज वेदीनकरि युक्त है। बहुरि तिस पीठके मध्य तीन कटनीकर युक्त चौसठ योजन चौडा लंबा ऊंचा बहुत रत्नमय जिनबिंबनकरि सहित स्तूप है। तीन कटनीलिये जो रत्नराशि ताका नाम स्तूप है। तिस ऊपरि जिनबिंब विराजैं हैं सो ऐसैं ही नव स्तूप हैं। तिन का ऐसा क्रम करि स्वरूप है तिस स्तूपके आगैं एक हजार योजन चौडा लंबा गिरदविषैं बारह वेदीनिकरि संयुक्त सुवर्णमय पीठ है तिस पीठ ऊपरि चार योजन लंबा अर एक योजन चौडा है स्कंध कहिये पेड़ जिनका अर बहुत मणिमय गिरदविषैं तीन कोटिनिकरि संयुक्त अर बारह योजन लंबी है चार महा शाखा जिनके अर छोटी शाखा अनेक हैं जाके अर बारह योजन चौड़ा है शिखर कहिये ऊपरला भाग जिनका, अर नानाप्रकार पान फूल फल संयुक्त है, बहुरि एक लाख चालीस हजार एकसौबीस वृक्षनिका परिवारसंयुक्त सिद्धार्थ अर चैत्य नामा दोय वृक्ष हैं। तिन वृक्षनिका मूलविषै जो पीठ है ताके ऊपरि तिष्ठते चार दिशानिविषैं चार सिद्धनिकी प्रतिमा तो सिद्धार्थवृक्षका मूलविषैं है

अर चैत्यवृक्षका मूलविषै पीठ है ताके ऊपरि चार अर्हंतप्रतिमा विराजमान हैं। बहुरि इन वृक्षनि की पीठ के आगै पीठ हैं ताविषै नाना प्रकार वर्णनकरि युक्त महाध्वजा तिष्ठै है। सोलह योजन ऊंचे एक कोस चौडे ऐसें ध्वजानके सुवर्णमय स्तंभ है। तिन स्तंभनिका अग्रभागविषै मनुष्यनिके नेत्र अर मनकूं रमणीक ऐसे नाना प्रकारके ध्वजा वस्त्ररूप रत्ननिकरि परिणये हैं अर तीन छत्र सोभै है। इहां ध्वजानिके वस्त्र नाहीं हैं। वस्त्रकासा आकार कोमलता नाना रंग ललितता लिये रत्नरूप पुद्गल परिणये हैं तातैं वस्त्र भी रत्नमय जानने। तिस ध्वजापीठके आगैं जिन-मन्दिर है ताकी चारों दिशानविषै नानाप्रकार पुष्पनिकरि युक्त सौ योजन लंबे पचास योजन चौडे दशयोजन ऊंचे मणिसुवर्ण-मय वेदीनकरि संयुक्त चार हृद कहिये द्रह है ताके आगैं जो मार्ग-रूप वीथी है गली है ताके दोऊ पार्श्वनविषै पचास योजन ऊंचे पचास योजन चौड़े देवनिके क्रीड़ा करनेके रत्नमय दोय मन्दिर है। बहुरि ताकै तोरण हैं सो मणिमय स्तंभनिका अग्रभा-गविषै स्थित हैं। दोय स्तंभनिके बीच भींतिरहित मरगोलकासा आकार ताका नाम तोरण है सो तोरण मोतीनके जाल अर घंटा-समूहकरि युक्त है। मोतीनके जाल अर घंटासमूह तोरणनिकै लूंबैं हैं बहुरि सो तोरण पचास योजन ऊंचा पचीस योजन चौड़ा है ते तोरण जिनबिंबनिके समूहकरि रमणीक हैं। जिनबिंबनिका आकार तोरणनिमें तिष्ठै है तिस तोरणके आगै स्फटिकमय जो प्रथम कोट ताके अभ्यन्तर कोट के द्वारका दोऊ पार्श्वनिविषैं सौ योजन ऊंचे पचास योजन चौडे रत्ननिकरि रचे दोय मंदिर हैं

ऐसैं कोटत्रयत वर्णन किया। पूर्वद्वारविषै मंडपादिकका जो परिमाण कहा तातै दक्षिणद्वार उत्तरद्वारविषै आधा २ परिमाण जानना। अन्य वर्णन तीन तरफ समान जानना।

बहुरि ते चैत्यालय सामायिकादि क्रिया करने का स्थान वंदना-मंडप अर स्नान करनेके स्थान अभिषेक-मंडप अर नृत्य करनेका स्थान नर्तन-मण्डप अर सङ्गीत साधन करनेके स्थान सङ्गीतमण्डप अर अवलोकन करनेके अवलोकन मण्डप तिनकरि संयुक्त बहुरि क्रीड़ा करनेके स्थान क्रीडनगृह शास्त्रादिक अभ्यास करनेके स्थान गुणनगृह तिनकरि अर विस्तीर्ण उत्कृष्ट पट्ट चित्रामादि दिखावनेके स्थान पट्टशालादि तिनकरि संयुक्त हैं। अब द्वितीय कोट अर बाह्यकोटके बीच अंतराल ताका स्वरूप कहै हैं। सिंह, गज, वृषभ, गरुड़, मयूर, चन्द्रमा, सूर्य, हंस, कमल, चक्र इन दशनिका आकारकरि संयुक्त ध्वजा है ते जुदी जुदी एकसौ आठ आठ हैं। ऐसैं एकहजारअस्सी एक दिशामे हैं। ऐसै चार दिशानिकै चार हजार तीन सौ बीस मुख्यध्वजा है। बहुरि एकएक मुखध्वजाविषै एकसौ आठ क्षुल्लक छोटी ध्वजा हैं। आगैं दूसरा अर तीसरा कोटके बीच जो अंतराल ताकैविषै अशोक अर सप्तच्छद अर चम्पक अर आम्रमई चार वन हैं। बहुरि यहां सुवर्णमय फूलनिकरि शोभित मरकतमणिमय नानाप्रकार पत्रनिकरि पूर्ण ऐसे कल्पवृक्ष हैं तिनके वैडूर्यमणिमय फल हैं अर मूंगामय डालीकरि युक्त हैं। ऐसैं कल्पवृक्ष भोजनांगआदि भेद लिये दश प्रकार हैं बहुरि तिन च्यारो वननिविषै चैत्यवृक्ष च्यारि हैं। ते वृक्ष तीन पीठि

ऊपरि हैं तीनकोटिकरि युक्त है, रत्नमय शाखापत्रपुष्पफलकरि युक्त चार वननिके वीच है तिन चार चैत्यवृक्षनिके मूलमें दिशान में पल्यंकासन सिंहासन छत्रप्रातिहार्यादियुक्त चार जिनेंन्द्रको प्रतिमा हैं। बहुरि नन्दादि सोलह वावड़ी तीन कटनीनिकरि संयुक्त शोभै है। बहुरि वनकी भूमिमें द्वारनितैं आवनेका मार्ग रूप जो वीथी तिनका मध्यविषै तीनकोट संयुक्त तीन पीठनि ऊपरि धर्मका विभवसंयुक्त मस्तकविषै च्यारिदिशानिमें च्यार जिनप्रतिमाकूं धारण करते मानस्तम्भ है। श्री राजवार्तिकमें कह्या है—जिनालयकी महिमा वर्णन करनेकूं हजार जिह्वाकरि हू समर्थ नाहीं होय है अर सहस्राक्ष जो हजारनेत्रधारक हजारनेत्रनिकूं विस्तारकरि निरन्तर देखे तो हू तृप्तिताकूं नाहीं प्राप्त होय है ऐसैं अप्रमाणमहिमाके धारक अकृत्रिमजिनालयका वर्णन त्रिलोकसारनामग्रंथतैं अपने शुभ ध्यानकी सिद्धिके अर्थि वर्णन किया। ऐसैं जिन पूजनका कथन किया।

अब जिन पूजनका फलमें तो प्रसिद्ध अनेक भये हैं। तथापि पूर्वाचार्यनिकरि प्रसिद्ध फल कहनेकूं सूत्र कहैं है—

अर्हच्चरणसपर्यामहानुभावं महात्मनामवदत्।
भेकः प्रमोदमत्तः कुसुमेनैकेन राजगृहे ॥ १२० ॥

अर्थ—राजगृहनाम नगरके विषै जिनेंन्द्रके पूजनेका हर्षकरि मत्त कहिये अपना सामर्थ्यकूं नाहीं जानतो जो मींडको सो अरहंतके चरणनिकी पूजाका महाप्रभाव महान् पुरुष जे भव्यजीव तिनकूं प्रकट करतोहुओ दिखावतोहुओ याकी कथा ऐसी जाननी

मगधदेशमे राजगृहनगर तिसविषै राजाश्रेणिक राज्य

करै तिस ही नगरके विषै एक नागदत्तनाम श्रेष्ठी ताके भवदत्ता नामा स्त्री सो श्रेष्ठी आर्तपरिणामतैं मर्‌या। मरिकरि आपकी गृह की बावडीमें मींडको उपजतो हुओ। एक दिन भवदत्तानाम सेठानी वावड़ी ऊपरि गई तदि ताने देखि मींडकाके पूर्वजन्मको स्मरण हुओ तदि पूर्वलो स्नेहको यादकरि शब्द करतो उछलि२ सेठानीके वस्त्रांऊपरि चढ़ै। तदि सेठानी वारम्वार वाकों दूरि फेंकि दियो तो हू वारम्वार सेठानीका वस्त्रनि परि आवै तदि सेठानी मींडकानैं दूरि करि अपने घर गई। एक दिन सुव्रतनाम अवधिज्ञानी मुनिकूं पूछी भो स्वामिन्! मैं गृहवापिकामें जाऊं तदि एक मींडको शब्द करतो २ वारम्वार हमारे अङ्गपरि आवै इसका सम्बन्ध कही तदि मुनीश्वर कहो थारो भर्ता नागदत्त आर्त परिणामतैं मरि मींढको हुओ वाकै जातिस्मरण हुओ सो पूर्व जन्मका स्नेहकरि थारे निकट आवै है। तदि सेठानी मींडका कूं अपना भर्ताको जीव जानिकरि अपने गृहमें ले जाय बहुत सन्मानतैं राख्यो एक दिन राजा श्रेणिक भगवान वीर जिनेन्द्रका समवसरण वैभार पर्वत ऊपरि आयो जानि राजा वन्दनाके अर्थि नगरमें आनन्द भेरी दिवाई। तदि नगरके भव्यजीव भगवानकी वन्दनाके अर्थि नाना प्रकारके उज्वलवस्त्र आभरण पहरि पूजन-सामग्री हस्तनिमें लेय जय-जय शब्द करते हर्षतैं नृत्यगानवादि-त्रादि शब्द सहित चाले सो समस्त नगरमें आनन्द हर्ष व्याप्त होय गयो। तदि मींडको लोकनिका पूजनजनित आनन्दका शब्द श्रवण करि आपके पूजन करनेका बड़ा उत्साह प्रगट भया तदि एक पुष्पकूं मुखमें लेय आनन्दसहित उछलतो हुओ वीरजिनेन्द्र

पूजनके के अर्थि चाल्यो अतिभक्तितैं ऐसा विचार नाहीं भया जो विपुलाचल पर्वतऊपरि बीस हजार पैडोनिसहित समवशरण तो कहां अर मैं असमर्थ मींडको कहां कैसे पहुँचूंगा अतिभक्तितैं ऐसा विचार नाहीं रह्या। अब जिन पूजूं ऐसें उत्साहसहित मार्गमें गमन करतो राजाका हस्तीका पग नीचे मरि सौधर्मस्वर्गविषै महान ऋद्धिको धारक देव हुआ तदि अवधिज्ञानतैं पूजनके भावतैं अपना देवपनामें उत्पाद जानि मींडकाको चिह्न धारणकरि तत्काल वीरजिनेन्द्रका समवसरणमें पूजनके अर्थि जाय समस्त जीवनिकूं पूजनको प्रभाव प्रगट दिखायो। जो तिर्यंच मींडक पूजनताईं पहुंच्यो हू नाहीं केवल पूजनके भाव करकै ही स्वर्ग लोकमें महर्द्धिक देव भयो। जिनेन्द्रका पूजनका अचिंत्य प्रभाव है यातैं गृहचारमें बड़ा शरण समस्तपरिणामकी विशुद्धता करने वाला एक नित्य पूजन करना ही है। जिन पूजन निर्धन हू करि सके धनाढ्य हू करि सकै जेता आपका सामर्थ्य होय तिसप्रमाण पूजन सामग्री बनि सकै है बहुरि पूजन करना करावना करतेकूं भला जानना सो समस्त पूजन ही है तथा स्तवन वन्दना हू पूजन, एक द्रव्यतैं हू पूजन जैसैं अरहन्तके गुणनिमें भक्तिकी उज्वलता होय तैसा फल है बहुरि जिनमन्दिरमे छत्रचमरसहित सिंहासन कलश घण्टा इत्यादिक सुवर्णमय रूपामय पीतलमय कांसी ताम्रमय अनेक सुन्दर उपकरणनिकरि जेता अपना सामर्थ्य होय तिस प्रमाण जिनमन्दिरको भूषितकरि वैयावृत्य करै। बहुरि जीर्णमन्दिरनिकी मरम्मत उद्धार करना तथा धनाढ्य पुरुष हैं तिनको जिन बिंबनिकी प्रतिष्ठा करवाना कलश चढावना ये

समस्त अरहन्तकी वैयावृत्ति हैं।

बहुरि जिन मन्दिरनिकी टहल करना कोमल पीछीसूं यत्नाचारतैं भुवारना अभिषेक पूजना बिछावना गाननृत्यवादित्रादिकनिकरि अरहन्तके गुण गावणा सो समस्त अर्हद्‌वैयावृत्ति है। मनसे वचनसे कायसे धनसे विद्यासे कलासे जैसे अरहन्तके गुणनिमें अनुराग बधै तैसे करना, धन पावनेका, देह पावनेका इन्द्रियपावनेका बलपावनेका ज्ञानपावनेका सफलपणा जिनमन्दिर की टहल वैयावृत्तिकरके ही है, जिनमन्दिरकी वैयावृत्ति सम्यक्त्वकी प्राप्ति करै है तथा सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति करै है, मिथ्याज्ञान मिथ्याश्रद्धानका अभाव करै। स्वाध्याय संयम तप व्रत शीलादिगुण जिनमन्दिरका सेवनतैं ही होय। नरकतिर्यंचादिगतिनमें परिभ्रमणका अभाव होय जिनमन्दिर समान कोऊ उपकार करनेवाला जगतमे दूजा नाहीं। जिन मन्दिरका निमित्ततैं शास्त्र श्रवण पठन करि अनेक श्रोतानिका उपकार होय वक्ताका उपकार होय है। जिनमन्दिरके निमित्ततैं केई जीव कायोत्सर्ग करै हैं। केई जाप्य जपै है केई रात्रिमें जागरण करै है केई अनेक प्रकार पूजनकरि प्रभावना करै हैं। केई स्तवन करै है। केई तत्त्वार्थनिकी चर्चा करै हैं। केई प्रोषधोपवास तथा बेला तेला पंचउपवासादिकरि बडी निर्जरा करै हैं। केई स्वाध्याय करै हैं। केई वीतरागभावना करै है केई नाना प्रकार उपकरणनि करि प्रभावना करैं हैं। जिनमंदिरके निमित्ततै पाप पुण्य देवकुदेव धर्मकुधर्म गुरुकुगुरुका जानना होय। भक्ष्यअभक्ष्य कार्यअकार्य त्यागने योग्य ग्रहणकरनेयोग्यका ज्ञान हू जिन मन्दिरमें प्रवृत्तिकरि ही होय है। त्याग व्रत शील

संयम भावनाका स्वरूप जानना तथा आचरण करना समस्त जिनमंदिरके प्रभावतैं होय है। जिनमंदिर बराबर कोऊ उपकारी नाहीं है। जिनमंदिर अशरणनिकूं शरण है। ऐसें परोपकार करनेवाला जिनमन्दिरकूं जानि याका वैयावृत्य करो। ऐसै वैयावृत्यमें जिनपूजाका वैयावृत्य कह्या।

अब वैयावृत्यके पंच अतिचार कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

हरितपिधाननिधाने ह्यनादरास्मरणमत्सरत्वानि।
वैयावृत्त्यस्यैते व्यतिक्रमाः पंच कथ्यन्ते ॥१२१॥

अर्थ—वैयावृत्त्य जो दान ताके ये पांच अतीचार त्यागने योग्य हैं। हरितपिधान, हरितनिधान, अनादर, अस्मरण, मत्सरत्व जो व्रतीनिकूं देने योग्य आहारपान औषधि है ताकूं हरित जो कमलका पत्र वा पातल पान इत्यादि सचित्तकरि ढक्या हुवा देना सो हरितपिधान नाम अतीचार है ॥ १ ॥ बहुरि हरित जो वनस्पतिके पत्रादिक ऊपरि धरया हुआ भोजन देना सो हरितनिधान नाम अतीचार है ॥ २ ॥ बहुरि दानकूं अनादरतैं अविनयतैं प्रियवचनादि रहित देना सो अनादरनाम अतीचार है ॥ ३ ॥ बहुरि पात्रकूं भोजनादिक देनेके अर्थि स्थापनकरि अन्यकार्यमें लगि भूलि जाना तथा देनेयोग्य द्रव्यकूं तथा विधिकूं भूलि जाना सो अस्मरण नाम अतीचार है ॥ ४ ॥ बहुरि अन्य दातारतैं ईर्षाकरि देना सो मत्सरत्व नाम दोष है ॥ ५ ॥ ऐसे दान जो वैयावृत्त्य ताके पंच अतीचार टालि महाविनयतै शुद्ध दान करो ॥ १२१ ॥

इति श्रीस्वामिसमंतभद्राचार्यविरचित रत्नकरण्डश्रावकाचारविषै शिक्षाव्रतनिका वर्णन करि चतुर्थ अधिकार समाप्त भया ॥

अब श्रीपरमगुरुनिका प्रसादकरि परमागमकी आज्ञाप्रमाण भावनानामा महाधिकार लिखिए है। समस्त धर्मका मूल भावना है। भावनातैं ही परिणामनिकी उज्वलता होय है। भावनातैं मिथ्यादर्शनका अभाव होय है। भावनातैं व्रतनिमें दृढ़ परिणाम होय है। भावनातैं वीतरागताकी वृद्धि होय है। भावनातैं अशुभ-ध्यानका अभाव होय शुभध्यानकी वृद्धि होय है। भावनातैं आत्मा का अनुभव होय है। इत्यादिक हजारां गुणनिकूं उपजावनेवाली भावना जानि भावनाकूं एक क्षण हूं मति छांडो। अब प्रथम ही पंचव्रतनिकी पचीस भावना जानहू। अहिंसा अणुव्रत धारण करता पुरुष पांच भावना विस्मरण नाहीं होय है। मनके विषे अन्यायके विषयनिके भोगनेकी वांछाका अभावकरि दुष्टसंकल्प-निकूं छांडि अपनी उच्चताकूं नाहीं चाहता अन्यजीवनिके विघ्न इष्टवियोग, मानभंगादि तिरस्कार, धनकी हानि, रोगादिक नाहीं चाहना सो मनोगुप्ति है ॥ १ ॥ हास्यमे वचन बिवादके वचन, अभिमानके वचन नाहीं कहना तथा कलहके अपयशके कारण वचन नाहीं कहना सो वचनगुप्ति है ॥ २ ॥ बहुरि त्रसजीवनिकी विराधना टालिकरि हरिततृण कर्दमादिककूं छांडि देखि शोधि गमन करना तथा चढना उतरना उलंघना, बडा यत्नतैं अपना सामर्थ्यप्रमाण ऐसा करना जैसैं अपना हस्त पादादि अगउपांगनि में वेदना नाहीं उपजै अन्यजीवकै बाधा नाहीं होय तैसैं हलनच-लन धीरतातै करना सो ईर्यासमिति है ॥ ३ ॥ जो वस्तु अन्न पान वस्त्र आसन शय्या काष्ठ पाषाण मृत्तिकाके तथा पीतल कांसी लोह सुवर्ण रूपा इत्यादिकके वासन पात्र तथा घृतादि रस इत्या-

दिक गृहस्थके परिग्रह है तिनकूं यतनतै उठावना मेलना जैसें अन्य जीवनिका घात नाहीं होय अपने अङ्गमें पडने गिरने करि पीडा नाहीं उपजै उजाड-विगाड होनेतैं आपकैं अन्यकैं संक्लेश नाहीं उपजै तैसै धरना मेलना हिंसाका कारण तथा हानिका कारण जो घसीटना सो नाहीं करै ताकै आदाननिक्षेपणसमिति नाम भावना होय है ॥ ४ ॥ बहुरि गृहस्थ जो भोजनपान करै सो अभ्यंतर तो द्रव्य क्षेत्र काल भावकी योग्यता अयोग्यता विचार करै । योग्य देखि करै । अर बाह्य दिवसमे उद्योतमें नेत्रनतैं अवलोकन करि बारम्बार शोधि धीरपनातैं ग्रासादिककूं मुखमें देय भक्षण करै । गृद्धितातैं विना विचारयां विना शोध्यां भोजन नाहीं करै सो आलोकितपानभोजन नाम भावना है ॥ ५ ॥ ऐसै अहिंसाअणुव्रतकी पांच भावना कहीं । सो निरन्तर नाहीं भूलना ।

अब सत्य अणुव्रतकी पंचभावना कहिये-क्रोधत्याग, लोभत्याग, भीरुत्वत्याग, हास्यत्याग, अनुवीचीभाषण ये पांचभावना सत्यअणुव्रतकी हैं । जो सत्यअणुव्रत धारै क्रोध करनेका त्याग करै ऐसा विचारै जो क्रोधी होय वचन बोलै है ताकै सत्य कहना नाहीं बनै है यातैं क्रोध त्याग्या ही सत्य रहै । अर जो कर्मके उदयतैं गृहस्थ के कोऊ बाह्य विपरीत निमित्त मिलनेतैं क्रोध उपजि आवै तो ऐसा चिंतवन करै जो मेरे परिणाममें क्रोधजनित तातई उपजि आई है तातैं मोकूं अब मौनग्रहण ही करना अब वचन नाहीं बोलना । जो वचनकूं रोकूंगा तो कषाय विसंवाद नाहीं बधैगा । हमारा क्षमादिगुण हू नाहीं बिगडैगा । तातैं मेरे हृदयमें क्रोधजनित अग्निका उपशम नाहीं होय तितने वचनकी प्रवृत्ति नाहीं

करनी। ऐसा दृढ विचार करै ताके सत्यकी क्रोधत्यागभावना होय है ॥ १ ॥ लोभके निमित्ततैं सत्य वचन नाहीं प्रवर्तै है। तातैं अन्यायका लोभ छांडना सो लोभत्यागभावना है ॥ २ ॥ बहुरि भयके वश होय ताके सत्यवचन नाहीं होय तातैं भयका त्याग भये सत्य होय हैं ॥ ३ ॥ बहुरि हास्यमैं सत्य नाहीं कह्या जाय है। यातैं सत्यअणुव्रती हास्यकूं हू दूरहीतैं छांडै है ॥ ४ ॥ बहुरि जिनसूत्रसूं विरुद्धवचन नाहीं कहै। जिनसूत्रके अनुकूल वचन बोलना सो अनुवीचीभाषण नाम भावना है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो अपने सत्यअणुव्रत पालन किया चाहैगा सो क्रोधके कारणनिकूं रोकै है। जाके वास्ते अनेक असत्यमें प्रवर्तना होय ऐसा लोभकूं हू छांडि देगा अर जातैं धर्मविरुद्ध लोकविरुद्ध वचनमें प्रवृत्ति होजाय ऐसा धन बिगडनेका शरीर बिगडनेका भय नाहीं करेगा। अर जो अपना सत्यवादीपनाकी रक्षा किया चाहैगा सो अन्यका हास्य कदाचित् नाहीं करैगा। अर जिनसूत्रसूं विरुद्ध वचन कदाचित् नाहीं कहैगा।

अब अचौर्यअणुव्रतकी भावना पांच कहिये हैं। शून्यागार, विमोचितावास, परोपरोधाकरण, भैक्ष्यशुद्धि, सधर्माविसम्वाद ए पञ्च भावना अचौर्यव्रतकी हैं। यातैं अचौर्यअणुव्रतका धारक गृहस्थ हू पंच भावना निरन्तर भावता रहै। व्यसनी मनुष्य तथा दुष्ट मनुष्य तीव्रकषायी कलहका करनेवाला पुरुषनि-करि शून्यमकान होय वहां वसनेका भाव राखै। जातैं तीव्रक-षायी दुष्टनके नजीक वसने में परिणामकी शुद्धता नष्ट होजाय दुर्ध्यान प्रकट होजाय तातैं पापीनिकरि शून्य मकानमें वसना सो ही शून्यागार भावना है ॥ १ ॥

बहुरि जिस मकानमें अन्य दूजाका झगडा नाहीं होय तहां निराकुल वसना सो विमोचितावास है ॥ २ ॥ बहुरि अन्यके मकानमें आप जवरीतैं नाहीं थंभ बैठना सो परोपरोधाकरण भावना है ॥ ३ ॥ बहुरि अन्याय अभक्ष्यकूं त्यागि भोगांतरायका क्षयोपशमके अधीन मिल्या जो रसनीरसभोजन तामें समता धारि लालसारहित भोजन करना सो भैक्ष्यशुद्धि भावना है ॥४॥ साधर्मी पुरुषसे वादविसंवाद नाहीं करना सो सधर्माविसंवादभावना है ॥५॥ ऐसैं अचौर्याणुव्रतके धारकनिकूं पंचभावना भावने योग्य हैं।

अब ब्रह्मचर्यव्रतकी पंच भावना कहै है—स्त्रीरागकथा श्रवण-त्याग, स्त्रीनिके मनोहर अंग देखनेका त्याग, पूर्वकालमें भोग भोगे तिनका स्मरण करनेका त्याग, पुष्टरसका भोजन तथा इन्द्रियोंमें दर्प उपजावनेवाला भोजनका त्याग, अर अपने शरी-रके संस्कारका त्याग, ये पंच भावना ब्रह्मचर्यव्रतकी हैं। अन्यकी स्त्रीनिकी राग उपजावनेवाली कथा त्यागकी भावना करै ॥ १ ॥ तथा अन्यकी स्त्रीनिके स्तन, जघन, मुख, नेत्रादिक रूपकूं राग-भावतैं देखनेका त्याग करै ॥ २ ॥ बहुरि आपके अणुव्रत धारण हुआ तिस पहली अव्रती होय भोग भोगे थे तिन भोगनिकूं याद नाहीं करना सो तीजी भावना है ॥ ३ ॥ बहुरि इष्ट पुष्ट कामोद्दीपक करनेवाला भोजनका त्याग सो चौथी भावना है ॥४॥ बहुरि अपने शरीरकूं अंजन, मंजन, अतर, फुलेलादि कामके विकार करनेवाले आभरण वस्त्रादिका त्याग करनेकी भावना करना सो स्वशरीरसंस्कारत्याग नामा पंचमी भावना है ॥५॥ ऐसैं ब्रह्मचर्य नामा अणुव्रतके धारक गृहस्थकूं पंच भावना भावने

योग्य है।

अब परिग्रहत्यागकी पंच भावना कहै हैं,—जो परिग्रहपरिमाण नामाअणुव्रत धारण करै सो गृहस्थ बहुत पापबन्धके कारण अन्यायरूप अभक्ष्यनिका तो यावत् जीवन त्याग करै अर अन्तरायकर्मके क्षयोपशम-प्रमाण प्राप्त भये जे पंचेन्द्रियनिके विषय तिनमें संतोष धारण करि मनोज्ञविषयनिमें अतिराग नाहीं करै अर अति आसक्त नाहीं होय। अर अमनोज्ञ असुहावने मिलैं तिनमें द्वेष नाहीं करै, क्लेश नाहीं करै। अर अन्य जीवन के सुन्दर विषयभोग देखि लालसा नाहीं करना सो परिग्रहपरिमाणअणुव्रतकी पंच भावना हैं। बहुरि पंच पापनिका महा निंद्यपना है ताकी भावनाकूं हू भावना योग्य है। ये हिंसादिक पंच पाप है तिनतैं इसलोकमे महादुःखकरि अपना नाश है अर परलोकमें घोरदुःख अनेक भवनिमें जानि पापनितैं भयभीत होय दूरहीतै त्यागना। हिंसा करनेवाला निरंतर भयवान रहै है। अर जाकूं मारै ताकै अनेक भवनिपर्यंत वैरका संस्कार चल्या जाय है। जाकूं मारै ताका स्त्रीपुत्रपौत्रमित्रकुटुम्बी वैर लेवैं है। तिर्यंचनिऊपरि भी लाठी पत्थर शस्त्र चाबुक चलावै ताका वैर तिर्यंच हू नाहीं छांडै हैं। हाथी, घोडा, सर्प, ऊंट बहुत दिनपर्यंत वैर धारण करि बदला लेवैं है, मारै हैं। जगतमे निंद्य होय हैं पापी कहावै हैं। सर्वमे प्रतीत जाती रहै है। तथा जाकूं मारै वे आपकूं मार ले हैं। राजाका तीव्र दण्ड भोगै हैं। हस्तपाद नाक छेद्या जाय है। राजा सर्वस्व हरण करै है। महा अपयश गर्दभारोहणादिक तीव्र दंड भोगि नरकादि कुगतिनिमें बहुतकाल नाना ताडन, मारन, छेदन, भेदन, शलीरोहण, वैतरणीमें मज्जनादि असंख्यात

दुःख भोगि घोर तियच मनुष्यमे तीव्ररोग दारिद्र अपमानादिक भोगता असंख्यात अनन्तभव दुःखका पात्र होय है।

बहुरि जो अन्य जीवका घात तो नाहीं करै है अर अभिमान क्रोध करि अपने शरीरका बलकरि अन्य मनुष्यतिर्यँचनिकूं तथा बालककूं स्त्रीकूं लात धमूका चांटनितैं मारै है तथा लाठी चाबुक बेतनतैं मारै हैं, त्रास देवै है ते हू इस लोकमें राक्षसकी ज्यों भयंकर उद्वेग करनेवाला महाअपयश पाय दुर्गतिका पात्र होय है। बहुरि जो निर्दयपरिणामी होय करकै विकलत्रयादिकका कषायके वश होय घोर आरम्भादिक करि घात करै है तथा विना प्रयोजन वनस्पतिका छेदन तथा पृथ्वी जल अग्निकायके जीवनिकी अज्ञानभावतैं तथा प्रमादतै विराधना करै हैं ते इसलोकमे ही सन्निपात आमवात पक्षाघात संग्रहणी अतीसार वात पित्त कफ खांसी कोढ़ खाज पांव फोड़ा आदीठ वाला विष कक्कटकादि रोगनितैं घोरदुःख भोग नाना दुर्गतिनिमे रोग अर दारिद्र इष्टवियोगादिक घोर दुःखनिका पात्र होय है। यातैं हिंसातैं इस लोकमें घोरदुःखरूप फल जानि हिंसाका त्याग ही सर्वप्रकारकरि करना श्रेष्ठ है। बहुरि जो जीवनिकी दयाकरि युक्त होय समस्त जीवनिकूं अभयदान देहै। अपने परिणामनि तै जीवमात्रकी विराधना नाहीं चाहता यत्नाचाररूप प्रवर्तता प्रमाद छांडि अहिंसा धर्मकूं नाहीं भूलै है तिसकी महिमा इहां ही देव करै है, पूज्य होय है, समस्त पापनितैं रहित होय स्वर्गलोकमें महर्द्धिक देवपना पाय मनुष्यलोकमें विदेहादिक उत्तम क्षेत्रमें महाप्रभावका धारक होय निर्वाण गमन करै

अब असत्यवचनका स्वरूप केवल दोषरूप ही है सो प्रगट विचार करहू । असत्यवादीकी प्रतीत नाहीं रहै है । माता, पिता, पुत्र मित्र स्त्रीनिके हू याकी प्रतीति नाहीं विश्वास नाहीं आवै है तदि अन्यके याका श्रद्धान कैसे होय जातै जगतमें जेता व्यवहार है तेता वचनके द्वारै है । जो वचन विगाड्या सो अपना समस्त व्यवहार विगाड्या । धर्म अर्थ काम मोक्ष चार पुरुषार्थ वचनकरि प्रवर्तें हैं जाका वचन ही निंद्य भया ताका चारू पुरुषार्थ निंद्य होय है । असत्यवादी समस्तकै अप्रिय होय है । याकै मायाचार होयही असत्यकै अर कपटकै अविनाभावीपना है कुवचन बोलना चुगली करना अर विकथा आत्मप्रशंसा, परकी निंदा ये असत्यका परिवार है । असत्यवादी इसही लोकमे जिह्वाछेद सर्वस्वहरण तथा जिह्वाके रोगकरि नष्ट होना इत्यादिक घोरदुःखनिकूं प्राप्त होय है । अपवादकूं पावै है । परलोकमें नरकादिकनिमें परिभ्रमण, तिर्यंचगतिमे वचनरहितपना तथा गूंगा बहिरा अंधा दरिद्री रोगीपना पावै है । तथा मूर्खपना वचनकलारहितपना होय है । तथा जगतमें दीनताका विलाप करतो फिरै है तो हू कोऊ श्रवण ही नाहीं करै तातै असत्यवचनका त्याग ही श्रेष्ठ है अर सत्यके प्रभावतै देवलोकमें गमन, स्वर्गका महर्द्धिकपना होय है । समस्त जगतके आदरनै योग्य वचन होय तथा समस्त उत्तम शास्त्रनिका पारगामी होय । कविपना होय वाग्मीपना होय अनेक जीवनिका उपकार होय जाकी आज्ञा लाखांमनुष्य अंगीकार करैं ऐसा सत्यवचनका फल है । जो पूर्वजन्ममें वचनकी उज्ज्वलता धारी है ताका वचन श्रवण करनेका लाखां मनुष्य अभिलाप करैं हैं जो

हमसूं बोलै तो हम कृतार्थ हो जावें ये समस्त सत्यवचनका प्रभाव है।

अब चोरीके दोषनिकी भावना कहिए है। चोर मनुष्य समस्तके भय उपजावनेवाला होय है माता हू चोरी करनेवाले पुत्रका बडा भय करै है तथा हितूबांधवादिक कोऊ चोरका संसर्ग नाहीं चाहैं हैं याका संसर्गतैं कलंक चढि जायगा कोऊ राजाकी आपदा आजायगी। तथा हमारा कुछ ले जायगा। ऐसा भय नाहीं छांडे है। चोर समस्तमें नीचा होजाय है चोरकै काहूके मारनेकी दया नाहीं होय है असत्य कपट छल अनेक चोरनिके निश्चयतैं होय ही है चोर पापीनिमें महापापी है। चोरका कोऊ सहाई नाहीं होय है। पिता माता स्त्री पुत्रादिक समस्त कुटुम्ब चोरकी लार नाहीं लागे हैं। धीज प्रतीति सब जाती रहै है। कोऊ स्थानदान नाहीं देवै है। चोर जानि समस्त मारने लगि जाय हैं। राजानिकरि तीव्र मारन ताडन हस्तनासिका छेदन मारन दंड होय है। बंदीखानाकूं बहुत दीर्घकाल सेवन करि अपवाद पाय मरणकरि घोरनरककी वेदना भोगता असंख्यात अनंतकाल तिर्यंचनिमें भूख प्यास ताडन मारण लादन घसीटनादि असंख्यात भवनिमें पावै है। मनुष्य होय तो महानीच दरिद्री रोगी वियोगी घोर क्षुधा तृषा मारण बंधन चोरीके कलंकादि सहित निरादरका दुःख भोगता पैंड पैंडमें याचना करता घोर दुःख भोगनेका संतान चल्या जाय है। यातैं चोरीका दूरहीतै परिहार करो। अपने पुण्य पापके अनुकूल जे विषय मिले है तिनमें संतोष धारणकरि अन्यके धनमे स्वप्नहूमे वांछा मति करो। परका धन पुण्य विना आवनेका हू नाहीं। पूर्व जन्ममें

कुपात्र दान किया कुतप किया तातै परका धन हाथ लगि जाय तो हू कै दिन भोगैगा महासंक्लेशतैं अल्पआयु भोग दुर्गतिनमें जाय प्राप्त होयगा। यातैं चोरीकाहू दूरहीतै त्याग करना श्रे है। जिनके परधनमें इच्छा नाहीं है। अपना पुण्यपापके अनुकूल मिल्या तिसमे संतोष धारणकरि अन्यायका धनमे कदाचित् चित्त नाहीं चलावै हैं तिनका इसलोकमें हू यश है प्रतीत है समस्तमे आदर होय है। जाका परिणाम परधनमें नाहीं अपने उपार्जन कियाहीमें मंदरागी है तिनके एकहू क्लेश नाहीं आवै अशुभ कर्म का बंध नाहीं होय है समस्त जगत अपना धन दीजै है परलोकमें देवलोककी अपरिमाणविभूति असंख्यात कालपर्यंत भोगि मनुष्यनिमें राजाधिराज मंडलेश्वर चक्रवर्तीनिका विभव भोगि क्रमतैं निर्वाणकूं प्राप्त होय है। यातैं भगवानवीतरागका धर्म धारण करि अन्यायका धनका त्याग करि रहना ही श्रेष्ठ है।

अब कुशीलके दोषनिकी भावना चिंतवनकरि विरक्त हो जाना योग्य है। कुशीलपुरुष है सो कामका मदकरि उन्मत्त हुआ मदोन्मत्तहस्तीकी ज्यों विचरै है। स्त्रीनिके रागकरि ठिग्या हुआ दोऊ लोकका विचाररहित कार्यअकार्यकूं नाहीं जानै है। भक्ष्यअभक्ष्य योग्यअयोग्यका विचाररहित होय है। पापपुण्यकूं नाहीं देखै है। प्रत्यक्ष आपदा अपयश होता दीखै है तो हू कामकी अंधेरीतैं नाहीं देखै है। कामसारखी दूजी अन्धेरी त्रैलोकमें नाहीं है। कामकरि आच्छादित मनुष्यपर्यायमें हू पशुसमान है। पशुमें अर कामांधमे भेद नाहीं है। कामकरि अंध हुआ वनादिकमे तिर्यंच कटि २ मरि जाय है। मनुष्य जन्ममें हू मरिजाय है अर मार ले है। कामांध

के धर्म अधर्मका विचार नाहीं रहै है। लोकलाज मूलतै नष्ट हो जाय है। परस्त्री-लंपटनिकूं अनेक ओछे आदमी मार लेवैं हैं। राजादिकनिकरि लिंगच्छेदन सर्वस्वहरणादि दंडनिकूं प्राप्त होय हैं मरिकरि नरकादि दुर्गतिनमें परिभ्रमण करि तिर्यंचमनुष्यनिमें, घोर दुःख भोगता नीच चांडाल चमार धीवरनिमें महादरिद्री महाकुरूप कोढी अंगहीन आंधो लूलो पागलो कूबडो इत्यादि नीच मनुष्यनिमें उपजिकरि नरक बहुरि तिर्यंच बहुरि कुमानुष नपुसंकादि भवनिमें दुःख भोगै है। तातै कुशीलका त्याग ही श्रेष्ठ है। बहुरि शीलवंत पुरुष स्वर्गलोकमें कोट्यां अपछराने सेव्यमान हुआ असंख्यात कालपर्यंत भोग भोगता मनुष्यनिमें प्रधान मनुष्य होय अनुक्रमतै मोक्षका पात्र होय है।

अब परिग्रहकी ममताका दोष चिंतवनकरि परिग्रहतैं विरागी होना श्रेष्ठ है। परिग्रहकी ममताका समस्त पंचपापनिमें प्रवृत्ति करावे है। परिग्रहकरि तृप्तिता नाहीं आवै है। जैसे ईंधन करि अग्नि बधै है तैसें तृष्णारूप अग्निकरि निरंतर बधै है। अर परिग्रहके उपार्जनमें रक्षणमें अर नाशमें महान दुःखित होय है। परिग्रहकी ममताका धारक धर्म अधर्मका जीवनमरणका विचार-रहित होय है परिग्रहकी ममता हिंसा असत्य चोरी कुशील अभक्ष्य बहुआरम्भ कलह वैर ईर्षा भय शोक सन्ताप इत्यादिक हजारां दोषनिमें प्रवृत्ति करावै है। संसारमे जेता बन्धन अर पराधीनता अर कषाय अर दुःख है तितना परिग्रहतैं है अर परिग्रहका त्यागना है सो बड़ा भारका उतारना है। परिग्रहका त्यागी निर्ग्रंथ है। परिग्रहत्यागका फल स्वर्गमुक्ति है यातैं परिग्रहका

त्याग ही समस्त कल्याणका मूल है ऐसैं हिंसा असत्य चोरी-कुशील परिग्रहनिमें दोष है। तिनकी भावना भावनी।

बहुरि ये पंचपाप दुःख ही है ऐसी भावना राखना हिंसादिक दुःखका कारण है तातैं हिंसादिक पञ्च पाप हैं ते दुःख ही हैं। हिंसादिक दुःखका कारणनिमें कार्यका उपचार किया है तातैं पंचपापनिकूं दुःख ही कह्या है। जैसै वध बन्धन पीडन मोकूं अप्रिय है तैसे ही समस्त अन्य प्राणीनिकूं हू अप्रिय है जैसैं झूठ कटुक कठोर वचन मोकूं कोऊ कहै ताके श्रवणकरनेतैं हमारे अतितीव्र दुःख उपजै है तैसैं अन्य जीवनिके हू कटुक-वचन असत्यवचन दुःख उपजावै हैं जैसे मेरा इष्टद्रव्यकूं कोऊ चोर ले जाय तो मेरे महादुःख होय है तैसैं अन्यजीवनिके हू धन हरनेका दुःख होय है जैसे हमारी स्त्रीका कोऊ तिरस्कार करै तिसकरि हमारे तीव्र मानसीक पीडा होय है तैसैं अन्य जीवनिके हू अपनी माता बहण पुत्री स्त्रीके व्यभिचारकूं श्रवणकरि देखने करि अतिदुःख होय है। जैसै धनधान्य वस्त्रादिक नाहीं मिलनेतैं तथा प्राप्त हुआ ताकूं नष्ट होनेतैं वांछा रक्षा शोक भयकरि अपने दुःखितपना होय है तैसें परिग्रहकी वांछातैं तथा परिग्रहके नष्ट होनेतैं समस्तजीवनिकै दुःख होय है तातैं हिंसादिक पापनितैं विरक्त होना ही जीवका कल्याण है।

यहां कोऊ कहै कोमल अंगकी धारक स्त्रीनिके अङ्गके स्पर्शनतै रतिसुख उपजता देखिये है दुःखरूप कैसैं कह्या।

उत्तर—इन्द्रियनिका विषयनितैं उपज्या सुख नाहीं है भ्रांतितैं सुखरूप दीखै है पहली विषयनिकी चाहरूप महावेदना उपजै है वेदना उपजै तब ताके दूरि करनेकों चाहै, जैसै देहमें चाम मांस रुधिर हैं ते तब विकारतैं कन्दुपपणानैं प्राप्त हो

जांय जब खाजि उत्कटताकूं प्राप्त होय तब नखनितैं ठीकरीतैं पत्थरतै अपना शरीरकूं खुजावै है। गात्रकूं छेदने रगडनेतैं रुधिरकरि लिप्त हुआ हू अत्यन्त खुजायकरि दुःखहीकूं सुख मानै है तैसैं मैथुनका सेवनहारा हू मोहतैं दुःखहीकूं सुख मानै है तथा मनुष्य तिर्यंच असुर सुरेन्द्रादिक समस्त ही जीव अपने देहकी साथि उपजी इन्द्रियां तिनकरि उपज्या जो विषयनिकी चाह रूप आताप ताका दुःख सहनेकूं असमर्थ भया महानिंद्य विषयनिमें अति लालसा करि झंझापात लेवै है। अग्निकरि तप्तायमान लोहेका गोलाकी ज्यों इन्द्रियनिका ताप करि तप्तायमान जो आत्मा ताके विषयनिमें अतितृष्णातैं उपज्या अति दुःखरूप वेगके सहनेकूं असमर्थ भया विषयनिमें पड़ै है। जैसैं कोऊ पुरुष च्यारों तरफ अग्निकी ज्वालातैं बलता अग्निके आतापकूं नाहीं सहि सकता विष्ठाका भरया महा दुर्गंध अति ऊँडा खाडामें जाय पड़ै है तिस विष्ठामें मस्तकपर्यंत डूबि ताकूं ही तापरहित सुख मानि मरण करै है। तैसैं ही संसारी जीव स्पर्शन इन्द्रिय का विषयकी चाहरूप आतापके सहनेकूं असमर्थ हुवा स्त्रीनिका दुर्गन्धमलीन देहमें डूबि कामको आतापरहित सुख मानता अति तृष्णातैं उपज्या तीव्र दुःखकूं भोगता मरण करि संसारमें नष्ट हो जाय है।

तथा इस जीवकै ये इन्द्रियां तो आतापदुःख करनेवाली महाव्याधि हैं अर ये विषय है ते किंचित् काल दाहकी उपशमताका कारण विपरीत अपथ्य औषधि है। जिनकरि विषयनिकी चाहरूप दाह बधता चल्याजाय है घटै नाहीं है भ्रमतैं इलाज मानैहै जिनकै

इंद्रियां जीवतो तिष्ठै हैं तिनके स्वाभाविक ही दुःख है, दुःख नाहीं होय तो विषयनिमें उछलि उछलि कैसैं पड़ैं सो देखिये ही है कपट को हथिनीका शरीरका स्पर्शके अर्थि वनका हस्ती स्पर्शन इन्द्रियकी आतापकरि खाडामें पडि घोर बन्धनकूं भोगे है। बहुरि जलकी चंचल मछली रसना इन्द्रियके वसि होय धीवरकरि पसारया कांटामें फसकरि प्राणरहित होय है। घ्राण इन्द्रियका आतापका मारया भ्रमर है सो संकोचके सन्मुख कमलका गंधकूं ग्रहण करता कमलमें प्राणरहित होय है। नेत्रइंद्रियजनित सन्ताप कूं नाहीं सहि सकता पतङ्ग जीव रूपका लोभी दीपककी ज्वाला- में भस्म होय है। कर्ण इंद्रियजनित श्रवण करनेकी तृष्णाका आता- पकूं नाहीं सहनेकूं समर्थ ऐसा हिरण शिकारीकरि गाया रागमे अचेत होय मारया जाय है। ऐसैं दुर्निवार इंद्रियनिकी वेदनाके वश पड़े जीव ते निकट ही है मरण जिनमें ऐसे विषयनिविषै यतन करै हैं। इंद्रियजनित आतापतुल्य त्रैलोक्यमे आताप नाहीं है जैसैं इंद्रियनिका विषयनिकी चाहका आताप है तैसा आताप अग्निमे नाहीं है, शस्त्रका नाहीं है, विषका नाहीं है, इंद्रियनिका आताप सहनेकूं असमर्थ भये विषयनिके अर्थि अग्निमें बलैं हैं शस्त्रनिके सन्मुख होय मरै हैं, विषभक्षण करैं हैं धर्मकूं लोपैं हैं माता पिता गुरु उपाध्यायकूं विषयनिका रोकनेवाला जाणि मारि डारैं है। इस संसारमें इंद्रियनितैं केवल दुःख ही है जिनकैं इंद्रियरहित अतींद्रिय केवलज्ञान है तिनहीके निराकुलता लिये ज्ञानानंद सुख है यातैं जे इंद्रियांके अधीन हैं ताकैं स्वाभाविक दुःख ही है जो स्वाभाविक दुःख नाहीं होय तो विषयनिमें

प्रवृत्ति कैसैं करै जाकै शीतज्वर मिटि गया सो अग्नितैं तापना नाहीं चाहैगा जाकें दाहज्वर मिटि गया सो कांज्याका सींचना नाहीं चाहैगा जाके नेत्ररोग मिटि गया सो खपरचा अंजनादिक नेत्रनिमें डारया नाहीं चाहैगा जाकैं कर्णका शूल मिट गया सो कर्णमें बकराका मूत्रादिक नाहीं डारैगा, जाकैं व्रणघाव मिटि गया सो मल्लिम पट्टी नाहीं करैगा तैसे ही जाकै इन्द्रियजनित वेदना नाहीं ताके विषयनिमें प्रवृत्ति कदाचित् नाहीं होयगी क्षुधावेदना विना भोजन कौन करै तृषावेदना विना जल कौन पीवै गरमीकी बाधा विना शीतल पवन कौन चाहै, शीतकी बाधाविना रुईकरि भरचा वस्त्र तथा रोमका वस्त्र कौन ओढ़ै। तातैं ए समस्त विषय वेदनाके इलाजके हैं इन विषयनितैं किंचित् काल वेदना घटि जाय ताकूं अज्ञानी सुख मानैं हैं सो सुख वास्तवमें सुख नहीं हैं सुख तो यो है जहां वेदना नाहीं उपजै है। अनाकुलता लक्षण स्वाधीन अनन्त ज्ञान है सो ही सुख है अन्य नाहीं हैं ऐसैं निश्चय जानहु। ऐसैं हिंसादिकनिकूं दुःखरूप ही चिंतवन करनेकी भावना भायवो योग्य है।

अब श्रावककूं मैत्र्यादिक च्यारि भावना भावने योग्य हैं तिनकूं कहै हैं—एकेन्द्रियादिक समस्त प्राणीविषैं मैत्रीभावना भावै जो कोऊ प्राणीनिकै दुःखकी उत्पत्ति मति होहु ऐसा अभिलाष रखना सो मैत्री भावना है। अर जे सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र तप इत्यादिकनिकरि अधिक होंय तिनमें प्रमोद भावना करना। प्रमोद नाम हर्षका आनन्दका है सो गुणनिकरि अधिककूं देखि परिणाममें ऐसा हर्ष उपजै जैसे जन्म दारिद्री निधीनिकूं पाय हर्ष करै। गुणवन्तनिकूं देखतप्रमाण हर्षका

रोमांच होना तथा मुखकी प्रसन्नता करि नेत्रनिका प्रफुल्लित होना हृदयमें आह्लादन स्तुतिभाषण नामकीर्तनादि करि अंतर्गत भक्तिका प्रगट करना सो प्रमोद भावना है। बहुरि असातावेदनी-कर्मका उदयकरि रोगदारिद्रादिकरि पीडित जे क्लेश सहित प्राणी तथा इन्द्रियनिकरि विकल आंधा बहिरा लूला तथा अनाथ विदेशी तथा अति वृद्ध बाल तथा विधवा इत्यादिक दुःखित प्राणीनिके दुःख मेटनेका अभिप्राय सो कारुण्य भावना है। बहुरि जे धर्मरहित तीव्रकषायी हठग्राही उपदेश देनेके अयोग्य विपरीत-ज्ञानी, धर्मद्रोही, दुष्ट-अभिप्रायी, निर्दयी तिनविषै रागद्वेषका अभावरूप माध्यस्थ भावना करना।

भावार्थ—समस्त प्राणीनिके दुःखका अभाव चाहना सो मैत्री भावना है। बहुरि गुणनिकरि अधिक होंय तिन पुरुषनिकूं देखि करि, श्रवणकरि महान् हर्षका उपजावना सो प्रमोद भावना है। दुःखित देखि उपकार बुद्धिका उपजना सो प्रमोद भावना है। बहुरि हठग्राही निर्दयी अभिमानीनिमें रागद्वेषरहित रहना सो माध्यस्थ भावना है। ऐसैं धर्मके धारक श्रावकनिकूं मैत्र्यादि च्यारि भावना भावना योग्य है। बहुरि गृहस्थनिकूं जगतका स्वभाव अर कायका स्वभाव हू चिंतवन करना योग्य है जगतका स्वभाव चिंतवन करनेतैं संसार परिभ्रमणका भय उपजै है अर देहका स्व-रूप चिंतवन करनेतैं रागभावका अभाव होय है यो जगत कहिये लोक है सो अनादिनिधन है अर्द्धमृदंग ऊपरि एक मृदंग धरिये ऐसा ड्योढ मृदंगकासा आकार है, चौदह राजू ऊंचा है दक्षिण उत्तर सर्वत्र सात राजू चौड़ा है अर पूर्व-पश्चिम नीचें सात राजू है

ऊपरि क्रमतै घटता-वटता सात राजू ऊंचा जाय एक राजू चौडा रह्या है फेरि ऊपरि क्रमतैं वधता-वधता साढा तीन राजू ऊंचा गया तहां पांच राजू चौडा है फिर क्रमतैं घट्या है सो साढा तीन राजू ऊंचा गया लोकका अन्तमें एक राजू चौडा है ऐसे पूर्व पश्चिम क्रमतैं घटती वढती ऊंचाई जाननी। ऐसे आकारका धारक लोकका एक राजू चौडा एक राजू लम्बा एक राजू ऊंचा विभाग कल्पना करिये तो तीनसैतियालीस खण्ड होय हैं इस लोकरूप क्षेत्रमें अनन्तानंतकाल परिभ्रमण करते व्यतीत भयो सो ऐसा कोऊ पुद्गल नाहीं रह्या जो शरीरादिकरूप नाहीं धारण किया अर तीनसैतियालीस राजू प्रमाण क्षेत्रमें ऐसा कोऊ एक-प्रदेश हू वाकी नाहीं रह्या जहां अनन्तानन्तवार इस जीवने जन्म नाहीं धरया अर मरण नाही किया। अर उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, कालका बीस कोड़ाकोडी सागरमें ऐसा कोऊ एक कालका समय हू नाहीं रह्यो जिसमें यो जीव जन्ममरण नाहीं किया। अर नरक तिर्यंच मनुष्य देव इन चार गतिनिमें जघन्य आयुकूं लेय उत्कृष्ट आयुपर्यंत समयोत्तर ऐसा कोऊ पर्याय बाकी नाहीं रह्या जाकूं अनन्तवार नाहीं पाया। बहुरि ज्ञानावरणादिक समस्तकर्मनिकी मिथ्यादृष्टिके बन्ध होने योग्य जघन्यस्थिति तो अंतः कोटाकोटि सागर परिमाण है अर उत्कृष्ट स्थिति ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय अन्तराय इन चार कर्मनिका तीस कोटाकोटी सागरकी है अर मोहनीयकर्मकी उत्कृष्टस्थिति सत्तर कोटाकोटी सागर प्रमाण है अर नामकर्म अर गोत्रकर्मकी उत्कृष्टस्थिति बीस कोटाकोटी सागर प्रमाण है अर आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीससागरकी

है। सो जघन्य स्थितिकूं आदि लेय समयसमयकरि उत्कृष्टस्थिति वृद्धि पर्यंत जो कर्मनिकी स्थिति है तिन समस्त स्थितिनिके एक स्थानकूं असंख्यातलोक प्रमाण कषायनिके स्थान कारण हैं ते कषायनिके एक-एक स्थान अनन्तबार संसारी जीवकै भये हैं तातैं ऐसा परिभ्रमणरूप जगतमें जीव है ते नानाभेदरूप चतुर्गतिमें परिभ्रमण करता निरन्तर दुःख भोगे है। कोऊ जीव निश्चल नाहीं है जलका बुदबुदातुल्य जीवन अथिर है, अर भोगसंपदा मेघपटलवत् विनाशीक है, राज्य धन सम्पदा इन्द्रधनुषवत् क्षणभंगुर है। इस संसारमें प्राणी अनन्तानन्त परिवर्तन करैं हैं ऐसैं संसारका सत्यार्थस्वरूप चिंतवन करनेतैं संसारपरिभ्रमणतैं भय उपजै है।

बहुरि कायका चिंतवन करिये है यो मनुष्य शरीर है सो रोगरूपसर्पनिको बिल है अनित्य है दुःखका कारण है अपवित्र निःसार है कोटि यत्न करते करते हू विनसि जाय है यो शरीर धोवते धोवते मैलकूं निरन्तर उगलै है सुगंध अतरफुलेल लगाते लगाते दुर्गंध वमै है पोषतेपोषते बल नाहीं धारै है सुखतैं राखते राखते अपना नाहीं होय है, भूषित करते करते विडरूप दिन दिन होय है सुधारतां सुधारतां दिनदिन भयानकता धारै है सुख देतां देतां दुःखी हुआ जाय है मन्त्रतेमन्त्रते निरन्तर भयभीत रहै है दीक्षारूप होतां होतां हू साधुनिका मार्गकूं दूषित करै है शिक्षा देते २ गुणनिमें नाहीं रमै है दुःख भोगते २ हू कषायनिका उपशमभावकूं प्राप्त नाहीं होय है, रोकते रोकते हू पापहीमें प्रवर्तन करै है प्रेरणा करतेकरते हू धर्मकूं नाहीं धारण करै है मर्दन करते करते हू दिन दिन कठोर कर्कश होता जाय है रूक्ष करते-

करते आमकूं धारै है तैलादिक रमावते रमावते हू वासकूं प्राप्त होय है चंदनादिकतैं सींचते सींचते हू पित्तकरि जलै है। सोपाण करते करते हू कफकूं गलै है। पूंछतां पूंछतां कोढ़ादिक रोगतैं मिलै है चामडाकरि बंध्या है तो हू क्षीण होता चल्याजाय है रक्षा करते करते हू कालका मुखमें प्रवेश करै है। शरीरका ऐसा नश्व स्वभाव चिंतवन करनेतैं शरीरमें राग भाव नष्ट होय जाय है यातैं जगतका स्वभाव अर कायका स्वभाव संवेग जो संसारतैं भय अर वैराग्यके अर्थि चिंतवन करना श्रेष्ठ है। बहुरि षोडश कारण भावना हू श्रावकके भावने योग्य हैं षोडशकारण भावनाका फल तीर्थंकरपना है इसहीकरि तीर्थंकरप्रकृतिका बंध अव्रती सम्यग्दृष्टि हूकै होय अर देशव्रती श्रावकहूके होय अर प्रमत्तसंयत हूके होय है सर्वोत्कृष्ट पुण्यप्रकृति तीर्थंकरि प्रकृति है इसतैं अधिक पुण्य-प्रकृति त्रैलोक्यमें नाहीं है। अर उक्तं च गोमट्टसारे कर्मकांडे—

पढमुवसमये सम्मे सेसतिये अविरदादिचत्तारि।
तित्थयरबंधपारम्भया णरा केवलिदुगंते ॥ ९३ ॥

अर्थ—तीर्थंकरप्रकृतिके बन्धका आरम्भ कर्मभूमिका मनुष्य पुरुषलिंगधारीहीके होय है अन्य तीन गतिमें आरम्भ नाहीं होय अर केवली तथा श्रुतकेवीलीके चरणारविंदकै समीपही होय केवली श्रुतकेवलीका निकटविना तीर्थंकरप्रकृतिका बन्धके योग्य भाव-नाकी विशुद्धता नाहीं होय है अर तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध प्रथमो-पशमसम्यक्त्वमें होय तथा शेषत्रिक जो द्वितीयोपशम तथा क्षयो-पशम तथा क्षायिक इन चारसम्यक्त्वमें कोऊ एकमें होय है इस तीर्थंकरप्रकृतिबंधके कारण षोडशकारणभावना हैं ये भावना

समस्तपापका क्षय करनेवाली भावनिके मलकूं विध्वंस करनेवाली श्रवणपठनकरते संसारके वंध छेदनेवाली निरंतर भावने योग्य हैं

अव यहाँ षोडशभावनाकी षोडश जयमाला पढि महान पुण्य उपार्जन करिये है तिनहीका अर्थ कूं भावनिकी विशुद्धता अर अशुभभावनिका नाशके अर्थि लिखिए है।

अथ समुच्चयजयमालका अर्थ प्रथमही लिखिये है—हे संसार-समुद्रतैं तारनेवाला, कुमतिकूं निवारण करनेवाला, हे तीर्थंकर-त्वलब्धिकूं धारण करनेवाला, हे शिव जो निर्वाणका कारण, हे षोडशकारण ! मैं विहारेताई नमस्कारकरके तेरा स्तवन करूं हूँ अर मेरी शक्तिकूं प्रगट करूं हूं।

भावार्थ—षोडशकारण भावना जाकै होजाय सो नियमसूं तीर्थंकर होजाय संसारसमुद्रकूं तिरै ही ऐसा नियम है। वहुरि षोडशकारण भावना जाकै होय ताकै कुगति नाहीं होय केई तो विदेहक्षेत्रनिविषै गृहाचारमें षोडशकारण भावना केवलीके अथवा श्रुतकेवलीके निकट भाय उसी भवमें तपकल्याण ज्ञानकल्याण निर्वाणकल्याण देवनिकरि पाय निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं। अर केई पूर्वजन्ममें केवली श्रुतकेवलीके निकट भावना भाय सौधर्म-स्वर्गकूं आदि लेय सर्वार्थसिद्धि अहमिंद्रपर्यंत उपजि करि फिर तीर्थंकर होय निर्वाण पावै हैं। कोई पूर्वजन्ममें मिथ्यात्वके परि-णाममें नरकका आयु वन्ध किया फिर केवली श्रुतकेवलीका शर-ण पाय सम्यक्त्व ग्रहणकरि षोडशकारण भावना भाय नरक जाय नरकतैं निकसि तीर्थंकर होय निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं। पूर्वजन्ममें षोडशकारण भावना करि तीर्थंकरप्रकृति वांधै है ताकै पंच

कल्याणकी महिमा होय है अर जो विदेहनिमें गृहस्थपनामें तीर्थंकर प्रकृति बांधै सो उसही भवमें तप ज्ञान निर्वाण तीन कल्याणनिमे इन्द्रादिककरि पूजन पाय निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं। केई विदेहक्षेत्रनिमें मुनिके व्रत धरयां पाछैं केवलीके निकट षोडशकारण भावना भाय उसी भवमें तीर्थंकर होय ज्ञान, निर्वाण दोय कल्याणकी पूजाकूं प्राप्त होय हैं। तप कल्याण ताकै पहले ही भया तातैं नाहीं होय है। जाकै तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध होय जाय सो भवनत्रिक देवनिमें अन्य मनुष्य तिर्यंचनिमें भोगभूमिमें स्त्री नपुसंक एकेन्द्रिय विकल चतुष्कादि पर्यायनिमे नाहीं उपजै है अर तीसरी पृथ्वीतैं नीचे नाहीं उपजै है याहो तैं षोडशकारण भावना कुगतिका निवारण करने वाली है। बहुरि षोडशकारण भावना हुआ पाछैं तीजे भव निर्वाण होय ही तातैं शिवका कारण है अर तीर्थकरत्व ऋद्धि षोडशकारणतै ही उपजै है तातैं हे षोडशकारणभावना ! मैं तुम्हें नमस्कारकरि थारो स्तवन करूं हूँ।

हे भव्यजीवो ! इस दुर्लभ मनुष्यजन्ममे पचीस दोषरहित दर्शनविशुद्धता नाम भावना भावहु। सम्यग्दर्शनके नष्ट करनेवाले दोषनिकूं त्यागना सोही सम्यग्दर्शनकी उज्ज्वलता है। तीनमूढता, अष्टमद, छह अनायतन शंकादि अष्ट दोष ये सत्यार्थ श्रद्धानकूं मलीनकरनेवाले पचीस दोष हैं तिनका दूरहीतैं त्याग करो। बहुरि चारप्रकारका विनय जैसे भगवानका परमागम में कह्या तैसैं दर्शनविनय, ज्ञानविनय, चारित्रविनय, उपचार विनय ये चार प्रकार विनय जिन शासनका मूल भगवान् जिनेंद्र कह्या है। जहां चारप्रकार विनय नाहीं है तहां जिनेन्द्रधर्मकी

प्रवृत्ति ही नाहीं तातैं जिनशासनका मूल विनयरूप ही रहना योग्य है। बहुरि अतीचाररहित शीलकूं पालहू। शीलकूं मलीन नाहीं करना सो उज्वलशील मोक्षके मार्गमें बड़ा सहाई है जाके उज्वल-शील है ताके इन्द्रिय विषय कषाय परिग्रहादिक मोक्षमार्गमें विघ्न नाहीं कर सकै हैं। इस दुर्लभ मनुष्यजन्मविषै क्षण क्षणमें ज्ञानो-पयोगरूप ही रहो सम्यग्ज्ञान विना एकक्षण हू व्यतीत मत करो अन्य जे संकल्प विकल्प संसारमे डबोवनेवाले हैं दूरहीतैं परित्याग करो। बहुरि धर्मानुराग करि संसार देह भोगनितैं विरागतारूप संवेग भावना मनके मांहि चिंतवन करते रहो जातैं समस्तविष-यनिमें अनुरागका अभाव होय धर्ममें अर धर्मका फलमें अनुराग-रूप प्रवर्तन दृढ़ होय। बहुरि अंतरंगमें आत्माके घातक लोभादि-क चार कषायनिका अभाव करि अपनी शक्तिप्रमाण सुपात्रनिके रत्नत्रयगुणमे अनुराग करि आहारादिक चारप्रकारका दानमें प्रवृत्ति करो। बहुरि दोय प्रकार अंतरंग बहिरंग परिग्रहमें आस-क्तता छांडि समस्त विषयनिकी इच्छाका अभावकरि अतिशयकरि दुर्धर तपकूं शक्तिप्रमाण अंगीकार करो। बहुरि चित्तके विषै रागादिकदोषनिका निराकरणकरि परमवीतरागतारूप साधुसमाधि धारण करो। बहुरि संसारके दुःख आपदाका निराकरण करने-वाला वैय्यावृत्य दशप्रकार करहू। बहुरि अरहंतके गुणनिमें अनुरागरूप भक्तिकूं धारण करता अरहंतके नामादिकका ध्यान करि अरहंत-भक्तिकूं धारण करो बहुरि पंचप्रकार आचारकूं आप आचरण करावै अर दीक्षा शिक्षा देनेमें निपुण धर्मके स्तम्भ ऐसे आचार्यपरमेष्टीके गुणनमें अनुराग करना सो आचार्यभक्ति है।

बहुरि ज्ञानमें प्रवृत्ति करावनेवाले निरंतर सम्यग्ज्ञानका पठन-आप करै अन्यशिष्यनिकूं पढावनेमें उद्यमी, चारि अनुयोगविद्याके पारगामी वा अंगपूर्वादि श्रुतके धारक उपाध्याय परमेष्ठीमें जो बहुभक्ति धारण करना सो बहुश्रुतभक्ति नाम भावना है।

बहुरि जिनशासन का पुष्ट करने वाला अर संशयादिक अंधकार दूर करनेकूं सूर्यसमान जो भगवानका अनेकान्तरूप आगम ताके पठनमें, श्रवणमें, प्रवर्तनमे चिंतवन, भक्तिकरि प्रवर्तन करना सो प्रवचनभक्ति भावना भावहू, बहुरि अवश्य करनेयोग्य षट् आवश्यक हैं ते अशुभकर्मके आस्रवकूं रोकि महान निर्जरा करने वाले हैं अशरणनिकूं शरण हैं ऐसे आवश्यकनिकूं एकाग्रचित्तकरि धारहू इनकी भावना निरन्तर भावहू बहुरि जिन मार्गकी प्रभावनामें नित्य प्रवर्तन करो जिनमार्गकी प्रभावना धन्यपुरुषनिकरि प्रवर्तें है। अनेक पुरुषनिकी वीतरागधर्ममें प्रवृत्ति अर कुमार्गका अभाव प्रभावना करके ही होय है। बहुरि धर्ममें धर्मात्मा पुरुषनिमें तथा धर्मके आयतनमे, परमागमके अनेकान्तरूप वाक्यनिमें परमप्रीति करना सो वात्सल्य भावना है यो वात्सल्य अंग है सो समस्त अंगनमें प्रधान है दुर्द्धर मोह तथा मानका नाश करनेवाला है ऐसैं निर्वाणके सुखकी देनेवाली ये षोडशकारण भावनानिकूं जो भव्य स्थिरचित्तकरि भावै है चिंतन करै है जाके आत्मामें रचिजाय है सो समस्त जीवनिका हितरूप तीर्थंकरपनों पाय पंचमगति जो निर्वाण ताहि प्राप्त होय है। ऐसैं षोडशकारणकी समुच्चयरूप भावना समाप्त करी।

अब दर्शनविशुद्धि नाम प्रथम अंगकी भावना वर्णन करिये है

हे भव्यजीव हो! जो यो मनुष्यजन्म पाय याकूं सुफल किया चाहो हो तो सम्यग्दर्शनकी विशुद्धता करहू। यो सम्यग्दर्शन समस्त धर्मका मूल है सम्यक्त्व विना श्रावकधर्म हू नाहीं होय, मुनिधर्म हू नाहीं होय सम्यग्दर्शनविना ज्ञान है सो कुज्ञान है चारित्र कुचारित्र है, तप है सो कुतप है। सम्यग्दर्शन विना यो जीव अनन्तानन्तकाल परिभ्रमण किया है अब जो चतुर्गति संसारपरिभ्रमणसूं भयवान हो अर जन्मजरामरणतै छूट्या चाहो हो अर अनन्त अविनाशी सुखमय आत्माकूं इच्छो हो तो अन्य समस्त परद्रव्यनिमें अभिलाषा छांडि सम्यग्दर्शनहीकी उज्वलता करहू।

कैसीक है दर्शनविशुद्धता निर्वाणके सुखकी कारण है दुर्गतिका निराकरण करनेवाली है विनयसंपन्नतादिक पन्द्रहकारणनिका मूलकारण है, दर्शनविशुद्धता नाहीं होय तो अन्य पन्द्रहभावना नाहीं होय है यातैं संसारका दुःखरूप अंधकारके नाश करनेकूं सूर्यसमान है, भव्यनिकूं परम शरण है ऐसी दर्शनविशुद्धता नाम भावना भावहु। जैसै स्वपरद्रव्यका भेदज्ञान उज्ज्वल होय तैसैं यत्न करहू। यो जीव अनादिकालतैं मिथ्यात्वनाम कर्मके वशि होय आपका स्वरूपकी अर परकी पहिचान ही नाहीं करी जैसैं पर्यायकर्मके उदयतैं पर्याय पावै तैसी पर्यायकूं ही अपना स्वरूप जानता अपना सत्यार्थरूपका ज्ञानमें अंध हो आपके स्वरूपतैं भ्रष्ट हुआ चतुर्गतिमें भ्रमण करै है देवकुदेवकूं जानै नाहीं धर्मकुधर्मकूं जानै नाहीं सुगुरु कुगुरुकूं जानै नाहीं। बहरि पुण्यका पापका, इसलोकका परलोकका, त्यागनेयोग्य ग्रहणकरनेयोग्य,

भक्ष्यअभक्ष्यका, सत्संगका कुसंगका, शास्त्रका कुशास्त्रका विचार-रहित कर्मका उदयके रसमें एकरूप भया अपना हित अहितकूं नाहीं पहिचानता परद्रव्यनिमें लालसारूप होय सदाकाल क्लेशित होय रह्या है कोऊ अकस्मात् काललब्धिके प्रभावतैं उत्तमकुलादि-कर्में जिनेन्द्रधर्म पाया है यातैं वीतरागसर्वज्ञका अनेकांतरूप पर-मागमके प्रसादतैं प्रमाणनयनिक्षेपनितैं निर्णय करि परीक्षाका प्रधानी होय वीतरागी सम्यग्ज्ञानी गुरुनिके प्रसादतैं ऐसा निश्चय भया जो एक जाननेवाला ज्ञायकरूप अविनाशी, अखंड, चेतना लक्षण, देहादिक समस्तपरद्रव्यनितैं भिन्न मैं आत्मा हूँ देह जाति कुल रूप नाम इत्यादिक मौतैं अत्यन्त भिन्न हैं अर राग द्वेष काम क्रोध मद लोभादिक कर्मके उदयतैं उपजे मेरे ज्ञायकस्वभावमें विकार है जैसैं स्फटिकमणि तो आप स्वच्छ श्वेतस्वभाव है तिस में डाकके संसर्गतैं काला पीला हरया लाल अनेक रङ्गरूपके दीखै हैं तैसै मैं आत्मा स्वच्छ ज्ञायकभाव हूँ, निर्विकार टंकोत्कीर्ण हूँ मोहकर्मजनित राग द्वेषादिक यामें झलकैं हैं ते मेरे रूप नाहीं पर हैं ऐसैं तो अपने स्वरूपका निश्चय हुवा।

बहुरि सर्वज्ञ वीतराग परम हितोपदेशक अर क्षुधा तृषा जन्म जरा मरण रोग शोक भय विस्मय राग द्वेष निद्रा स्वेद मद मोह चिंता खेद अरति इन अष्टादशदोषनिका अत्यन्त अभाव जाकै भया अर अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन अनन्तवीर्य अनन्तसुख इत्या-दिक अनन्त आत्मीक अविनाशीगुण जाकै प्रगट भए सो ही आप्त हमारे वंदन स्तवन पूजन करने योग्य है! अन्य कामी क्रोधी लोभी मोही स्त्रीनिमें आसक्त शस्त्रादिक ग्रहण किये, कर्मके अधीन इन्द्रिय ज्ञानके धारक सर्वज्ञतारहित हैं सो मेरे वन्दन स्तवन पूजने योग्य

नाहीं। जो चोरनिमें शिरोमणि अर जारनिमें शिरोमणि है सो कैसें आराधने योग्य होय। बहुरि सर्वज्ञवीतरागका उपदेश्या अर प्रत्यक्ष अनुमानादिकरि जामें सर्वथा बाधा नाहीं आवै अर समस्त छहकायके जीवनिकी हिंसारहित धर्मका उपदेशक आत्माका उद्धारक अनेकांतरूप वस्तुकूं साक्षात् प्रगट करनेवाला ही आगम है सो पढ़ने पढ़ावने श्रवणकरने श्रद्धानकरने वंदने योग्य है। अर जे रागी द्वेषीनिकरि प्ररूपणकिये अर विषयानुराग अर कषायके बधावनेवारे जिनमे हिंसाके करनेका उपदेश है ऐसे प्रत्यक्ष अनुमानकरि बाधित एकांतरूप शास्त्र श्रवणपढनेयोग्य नाहीं वन्दनायोग्य नाहीं हैं। बहुरि विषयनिकी वांछाका अर कषायका अर आरम्भपरिग्रहका जाकै अत्यन्त अभाव भया, केवल आत्माकी उज्ज्वलता करनेमे उद्यमी, ध्यान स्वाध्यायमे अत्यन्त लीन, स्वाधीन कर्मबंधजनित दुःख सुखमें साम्यभावके धारक, जीवन मरण, लाभ अलाभ स्तवननिंदनेमें रागद्वेषरहित उपसर्गपरीषहनिके सहनेमें अकम्प धैर्यके धारक परमनिर्ग्रन्थ दिगम्बर गुरु ही वंदन स्तवन करनेयोग्य है अन्य आरम्भी कषायी विषयानुरागी कुगुरु कदाचित् स्तवन वन्दन करने योग्य नाहीं है। बहुरि जीवदया ही धर्म है हिंसा कदाचित् धर्म नाहीं जो कदाचित् सूर्यका उदय पश्चिमदिशामें होजाय अर अग्नि शीतल होजाय अर सर्पका मुखमे अमृत होजाय अर मेरु चलि जाय अर पृथ्वी उलटपलट होजाय तो हू हिंसामे तो धर्म कदाचित् नाहीं होय। ऐसा दृढश्रद्धान सम्यग्दृष्टिके होय है जाकै अपने आत्माके अनुभवनमे अर सर्वज्ञ वीतरागरूप आप्तके स्वरूपमें अर निर्ग्रंथ विषयकषायरहित गुरुमें अर अने-

कांतस्वरूप आगममें अर दयारूप धर्ममें शंकाका अभाव सो निःशंकित अंग है सम्यग्दृष्टि यामें कदाचित् शंका नाहीं करै है।

बहुरि सम्यग्दृष्टि है सो धर्मसेवनकरि विषयनिकी वांछा नाहीं करै है जातै सम्यग्दृष्टिकूं इन्द्र अहमिन्द्रलोकके विषै हू महान वेदनारूप विनाशीक पापका बीज दीखै है अर धर्मका फल अनन्त अविनाशी स्वाधीन सुखकरियुक्त मोक्ष दीखै है तातैं जैसें बहूमूल्य रत्न छांडि काचखण्डकूं जौहरी नाहीं ग्रहण करै है तैसैं जाकूं सांचा आत्मीक अविनाशी बाधारहित सुख दीख्या सो भूठा वाधासहित विषयनिका सुखमें कैसैं वांछा करै तातै सम्यग्दृष्टि वांछारहित ही होय है। अर जो अव्रती सम्यग्दृष्टिके वर्तमानकालमें आजीविकादिकनिमें तथा स्थानादिकपरिग्रहमें वेदनाके अभावमें जो वांछा होय है सो वर्तमानकालकी वेदना सहनेकी असामर्थ्यतैं वेदनाका इलाजमात्र चाहै है। जैसैं रोगी कडवी औषधितैं अति विरक्त होय है तो हू वेदनाका दुःख नाहीं सह्या जाय तातै कडवी औषधि वमन विरेचनादिकका कारण हू ग्रहण करै है, दुर्गंध तैलादिक हू लगावै है अन्तरङ्गमें औषधितैं अनुराग नाहीं है तैसैं सम्यग्दृष्टि निर्वांछक है तो हू वर्तमानके दुःख मेटनेकूं योग्य न्यायके विषयनिकी वांछा करै है। अर जिनकै प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानावरणकषायका अभाव भया ते अपना सौ खंड होय तो हू विषयवांछा नाहीं करै हैं यातैं सम्यग्दृष्टिके निःकांक्षित गुण होय ही है।

बहुरि सम्यग्दृष्टि अशुभ कर्मके उदयतैं प्राप्त भई अशुभ सामग्री तिसमें ग्लानि नाहीं करै, परिणाम नाहीं विगाडै है

मैं पूर्व जैसा कर्म बांध्या तैसा भोजन पान स्त्री पुत्र दरिद्र संपदा आपदाकूं प्राप्त भया हूँ तथा अन्य किसीकूं रोगी दरिद्री हीन नीच मलीन देखि परिणाम नाहीं विगाड़ै है, पापकी सामग्री जानि कलुषता नाहीं करै है तथा मलमूत्र कर्दमादि द्रव्यकूं देखि अर भयङ्कर श्मसान वनादि क्षेत्रकूं देखि, भयरूप दुःखदायी कालकूं देखि, दुष्टपना कडवापना इत्यादिक वस्तुका स्वभावकूं देखि अपना निर्विचिकित्सित अंग सम्यग्दृष्टिके होय ही है।

वहुरि खोटे शास्त्रनितैं तथा व्यन्तरादिक देवनिकृत विक्रियातैं तथा मणि मन्त्र औषधादिकनिके प्रभावतैं अनेक वस्तुनिके विपरीत स्वभाव देखि सत्यार्थ धर्मतैं चलायमान नाहीं होना सो सम्यग्दर्शनका अमूढ़दृष्टि गुण है सो सम्यग्दृष्टिके होय ही है।

वहुरि सम्यग्दृष्टि अन्य जीवनिके अज्ञानतैं अशक्ततातैं लगे हुए दोष देखि आच्छादन करै है जो संसारीजीव ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय कर्मके वशि होय अपना स्वभाव भूल रहे हैं कर्मके आधीन असत्य परधनहरण कुशीलादि पापनि में प्रवृत्ति करै है जे पापनितैं दूर वर्तैं हैं ते धन्य हैं। वहुरि कोऊ धर्मात्मा पुरुष (नामी पुरुष) पापके उदयतैं चूकि जाय ताकूं देखि ऐसा विचारै जो यो दोष प्रगट होसी तो अन्य धर्मात्मा अर जिन धर्मकी वडी निन्दा होसी या जानि दोष आच्छादन करै अर अपना गुण होय ताकी प्रशंसा का इच्छुक नाहीं होय है सो यो उपगूहनगुण सम्यक्त्वको है इन गुणनितैं पवित्र उज्ज्वल दर्शन विशुद्धता नाम भावना होय है।

वहुरि जो धर्मसहित पुरुषका परिणाम कदाचित् रोगकी

वेदनाकरि धर्मतैं चलि जाय तथा दारिद्रकरि चलि जाय तथा उपसर्ग परीसहनिकरि चलिजाय तथा असहायताकरि तथा आहारपानका निरोधकरि परिणाम धर्मतैं शिथिल हो जाय ताकूं उपदेशकरि धर्ममें स्थम्भन करै। भो ज्ञानी भो धर्मके धारक! तुम सचेत होहू कैसे कायरता धारणकरि धर्ममें सिथिल भए हो जो रोगकी वेदनातैं धर्मतैं चिगो हो, ज्ञानी होय कैसैं भूलो हो यो असातावेदनीकर्म अपना अवसर पाय उदयमें आय गया है अब जो कायर होय दीनताकरि रुदनविलापादि करते भोगोगे तो कर्म नाहीं छांड़ैगा कर्मके दया नाहीं होय है और धीरपनातै भोगोगे तो कर्म नाहीं छांड़ैगा कोऊ देवदानव मन्त्रतन्त्र औषधादिक तथा स्त्री, पुत्र, मित्र, बांधव सेवक सुभटादिक उदयमें आया कर्म हरनेकूं समर्थ है नाहीं यो तुम अच्छीतरह समझो हो अब इस वेदनामें कायर होय अपना धर्म अर यश अर परलोक इनकूं कैसैं विगाडौ हो अर इनकूं विगाड़ि स्वच्छंद चेष्टा विलापादि करनेतैं वेदना नाहीं घटै है ज्यों ज्यों कायर होवोगे त्यों त्यों वेदना दुःख बढैगा। तातैं अब साहस धारण करि परमधर्मका शरण ग्रहण करो। संसारमें नरकके तथा तिर्यंचनिके क्षुधा तृषा रोग सन्ताप ताडन मारण शीत उष्णादिक घोर दुःख असंख्यातकाल पर्यन्त अनेक वार अनन्तभव धारण करि भोगे ये तुम्हारै कहा दुःख है अल्पकालमैं निर्जरैगा अर रोग वेदना देहकूं मारैगा तुम्हारा चेतनस्वरूप आत्माकूं नाहीं मारैगा अर देहका मारना अवश्य होयगा जो देह धारण किया ताकै अवश्यंभावी मरण है सो अब सचेत होहू यो कर्मका जीतवाको अवसर है अब भगवान पंच

परमेष्ठीका शरण ग्रहणकरि अपना अजर अमर अखंड ज्ञान दृष्टा स्वरूपका ग्रहण करो ऐसा अवसर फेरि मिलना दुर्लभ इत्यादिक धर्मका उपदेश देय धर्ममें दृढ़ करना अर ~ नि॰ अशरणादि भावनाका ग्रहण शीघ्र करावना, त्याग प्र (छांडि दिये होंय तो फिर ग्रहण करावना तथा शरीरका मर्दन (करि दुःख दूरि करना अर कोऊ टहल करनेवाला नाहीं हे तो आप टहल करना अन्य साधर्मीनका मेल मिला देना ~ ह पान औषधादिकर स्थितिकरण करना तथा मलमूत्र कफादिक होय तो धोवना पूंछना इत्यादिक करि स्थिर करना तथा दारिद्रकरि चलायमान होय तिनका भोजनपानादिककरि आजीविकादिक लगाय देने करि, उपसर्ग परीषहादिक दूर करनेकरि सत्यार्थधर्ममें स्थापन करना सो स्थितिकरण अंग सम्यग्दृष्टिके होय है।

बहुरि वात्सल्यनामगुण सम्यग्दृष्टिके होय है संसारी जीवनिकी प्रीति तो अपने स्त्रीपुत्रदिकनिमें तथा इन्द्रियनिके विषयभोगनिमें धनके उपार्जनमें वहुत रहै है जाकै स्त्री पुत्र धन परिग्रह विषयादिकनिकूं संसारपरिभ्रमणके कारण जानि अतरंगमें विरागता धारण करि जाकी धर्मात्मामें रत्नत्रयके धारक मुनि अर्जिका श्रावक श्राविकामें वा धर्मके आयतननिमें अत्यन्त प्रीति होय ताकै सम्यग्दर्शनका वात्सल्यअंग होय है।

बहुरि जो अपने मनकरि वचनकरि कायकरि धनकरि दानकरि व्रतकरि तपकरि भक्तिकरि रत्नत्रयका भाव प्रगट करै सो मार्ग-प्रभावना अंग है। याका विशेष प्रभावना अंगकी भावनामें वर्णन करियेगा। ऐसै सम्यग्दर्शनके अष्टअंग धारण करनेतैं इन गुणनिका प्रतिपक्षी शंकाकांक्षादिक दोषनिका अभावकरि दर्शना-

विशुद्धता होय है। बहुरि लोकमूढता देवमूढता गुरुमूढताका परिणामनिकूं छांडि श्रद्धानकूं उज्वल करना।

अब लोकमूढताका स्वरूप ऐसा है जो मृतकनिका हाड नखादिक गंगामें पहुँचानेमें मुक्ति भई मानै है तथा गंगाजलकूं उत्तम मानना तथा गंगास्नानमे अन्य नदीके स्नानमें नदीकी लहर लेनेमें धर्म मानना तथा मृतक भर्ताके साथ जीवती स्त्री तथा दासी अग्निमें दग्ध होजाय ताकूं सतीमानि पूजना मरयाकूं पितर मानि पूजना पितरनिकूं पातडीमें स्थापन करि पहरना तथा सूर्य चन्द्र मंगलादिक ग्रहनिकूं सुवर्णरूपाका बनाय गलेमे पहरना तथा ग्रहनिका दोष दूरि करनेकूं दान देना संक्रांति व्यतिपात सोमोती अमावसी मानि दान करना सूर्यचन्द्रमाका ग्रहणका निमित्ततैं स्नान करना, डाभकूं शुद्ध मानना, हस्तीके दंतनिकूं शुद्ध मानना कूवा पूजना सूर्यचंद्रमाकूं अर्घ देना देहली पूजना मूशलकूं पूजना छींककूं पूजना, विनायक नामकरि गणेश पूजना, तथा दीपककी जोतिकूं पूजना तथा देवताकी बोलारी बोलना जडूला चोटी रखना देवताकी भेटके करारतैं अपना सन्तानादिककूं जीवित मानना सन्तानकूं देवताका दिया मानना तथा अपने लाभ वास्ते तथा कार्यसिद्धि वास्तै ऐसी वीनती करै जो मेरे एता लाभ होजाय तथा सन्तानका रोग मिटि जाय तथा सन्तान होजाय वा वैरी का नाश होजाय तो मैं आपके छत्र चढ़ाऊं इतना धन भेट करूं ऐसा करार करै है देवताकूं सौक (रिसवत) देय कार्यकी सिद्धि के वास्ते वांछै है। तथा रात-जगा करना कुलदेवकूं पूजना शीतलाकूं पूजना, लक्ष्मीकूं पूजना,सोना रूपाकूं पूजना पशुनिकूं

पूजना अन्नकूं जलकूं पूजना, शस्त्रकूं वृक्षकूं पूजना, अग्नि देव मानि पूजना सो लोकमूढता मिथ्यादर्शनका प्रभावतैं श्रद्धानके विपरीतपना है सो त्यागने योग्य है।

बहुरि देवकुदेवका विचाररहित होय कामी क्रोधी शस्त्रधारीहूमें ईश्वरपना की बुद्धि करना जो यह भगवान् परमेश्वर हैं समस्त रचना याकी है ये ही कर्त्ता हैं हर्त्ता हैं जो कुछ होय है सो ईश्वरको कियो होय है, समस्त आछी बुरी लोकनिसूं ईश्वर करावै है ईश्वरका किया बिना कछू ही नाहीं होय है, सब ईश्वर की इच्छाके आधीन है शुभकर्म ईश्वरकी प्रेरणा बिना नाहीं होय है इत्यादिक परिणाम मिथ्यादर्शनके उदयकरि होय सो देवमूढता है।

बहुरि पाखण्डी हीन-आचारके धारक तथा परिग्रही, लोभी विषयनिका लोलुपीनिकूं करामाती मानना, वाका वचन सिद्ध मानना तथा ये प्रसन्न हो जाय तो हमारा वांछित सिद्ध हो जाय ये तपस्वी हैं, पूज्य हैं, महापुरुष हैं, पुराण है इत्यादिक विपरीत श्रद्धान करै सो गुरुमूढता है तातैं जिनके परिणामनितैं इन तीन-मूढताका लेशमात्र हू नाहीं होय ताकै दर्शनकी विशुद्धता होय है। बहुरि छह अनायतनका त्याग करि दर्शनविशुद्धता होय है कुदेव कुगुरु कुशास्त्र अर इनके सेवन करने वाले ये धर्मके आयतन कहिये स्थान नाहीं तातैं ये अनआयतन हैं।

भावार्थ—जो रागी द्वेषी कामी क्रोधी लोभी शस्त्रादिक सहित मिथ्यात्वकरि सहित हैं तिनमें सम्यक् धर्म नाहीं पाईये तातैं कुदेव हैं ते अनायतन हैं। बहुरि पंचइन्द्रियनिके विषयनिके लोलुपी परिग्रहके धारी आरंभ करनेवाले ऐसे भेषधारी ते गुरु नाहीं, धर्महीन हैं तातैं अनायतन हैं। बहुरि हिंसाके आरंभकी प्रेरणा करने-

वाला रागद्वेषकामादिक दोषनिका बधावनेवाला सर्वथा एकान्तका प्ररूपक शास्त्र है ते कुशास्त्र धर्मरहित हैं तातैं अनायतन हैं बहुरि देवी दिहाडी क्षेत्रपालादिक देवकूं वंदने वाले अनायतन हैं। बहुरि कुगुरुनिके सेवक हैं भक्तितै धर्मतैं रहित हैं ते अनायात हैं बहुरि मिथ्याशास्त्रके पढ़नेवाले अर इनकी सेवाभक्ति करनेवाले एकांती धर्मका स्थान नाहीं तातैं अनायतन हैं ऐसे कुदेव कुगुरु कुशास्त्र अर इनकी सेवा भक्ति करनेवाले इन छहूनिमें सम्यक्-धर्म नाहीं है ऐसा दृढ़श्रद्धानकरि दर्शनविशुद्धता होय है।

बहुरि जातिमद कुलमद ऐश्वर्यमद रूपमद शासनका मद तपकामद बलकामद विज्ञानमद इन अष्ट मदनिका जाकै अत्यन्त अभाव होय है ताकै दर्शनविशुद्धता होय है सम्यग्दृष्टि के सांचा विचार ऐमा है हे आत्मन्! या उच्च जाति है सो तुम्हारा स्वभाव नाहीं यह तो कर्मकी परिणमनि है, परकृत है विनाशीक है, कर्मनिके अधीन है। संसारमें अनेक वार अनेक जाति पाई हैं माताकी पक्षकूं जाति कहिये है जीव अनेक बार चांडालीके तथा भीलनीके तथा म्लेच्छणीके चमारी के धोबनि के नायणिके डूमणिके नटनीके वेश्याके दासीके कलालीके धीवरी इत्यादि मनुष्यनिके गर्भमें उपज्या है तथा सूकरी कूकरी गर्द भी स्यालणी कागली इत्यादिक तिर्यंचनिके गर्भमें अनंतबार उपजि उपजि मरया है अनन्तबार नीचजाति पावै तब एकबार उच्चजाति पावै फिर अनंतबार नीचजाति पावै तब एकबार उच्चजाति पावै ऐसे उच्च जाति भी अनंतबार पाई तो हू संसारपरिभ्रमण ही किया अर ऐसैं ही पिताकी पक्षका कुल हू ऊंचा नीचा अनंतबार प्राप्त भया संसारमें जातिका, कुलका मद कैसैं करिये है स्वर्गका

महर्द्धिकदेव मरिकरि एकेन्द्रिय आय उपजै है तथा श्वानादिक निंद्य तिर्यंचनिमे उपजै है तथा उत्तम कुलका धारक होय सो चांडालमें जाय उपजै तातैं जातिकुलमें अहंकार करना मिथ्यादर्शन है। हे आत्मन् तुम्हारा जातिकुल तो सिद्धनिके समान है तुम आपा भूलि माताका रुधिर पिताका वीर्यतै उपजे जाति कुलमें मिथ्या आपा धरि फेर हू अनन्तकाल निगोदवास मति करो। वीतरागका उपदेश ग्रहण किया है तो इस देहकी जातिकूं हू संयम शील दया सत्यवचनादिकरि सफल करो जो मैं उत्तम जातिकुल पाय नीचकर्मीनिकेसे हिंसा असत्य परधनहरण कुशीलसेवन अभक्ष्य भक्षणादि अयोग्य आचरण कैसे करूं नाहीं करूं ऐसा अहंकार करना योग्य है सम्यग्दृष्टिके कर्मकृत पुद्गलपर्यायमें कदाचित आत्म बुद्धि नाहीं होय है। बहुरि ऐश्वर्य पाय ताका मद कैसे करिये यो ऐश्वर्य तौ आपा भुलाय बहु आरंभ रागद्वेषादिकमे प्रवृत्ति कराय चतुर्गतिमें परिभ्रमणका कारण है और निर्ग्रंथपना तीनलोकमें ध्यावने योग्य है पूज्य है अर यो ऐश्वर्य क्षणभंगुर है बड़े। २ इंद्र अहमिंद्रनिका पतनसहित है बलभद्र नारायणनिका ऐश्वर्य क्षणमात्रमें नष्ट हो गया अन्य जीवनिका ऐश्वर्य केताक है ऐसै जानि ऐश्वर्य दोय दिन पाया है तो दुःखित जीवनिका उपकार करो विनयवान होय दान देहु परमात्मस्वरूप अपना ऐश्वर्य जानि इस कर्मकृत ऐश्वर्यमें विरक्त होना योग्य है। बहुरि रूपका मद मति करो यो विनाशीक पुद्गलको रूप आत्माका स्वरूप नाहीं विनाशीक है क्षणक्षणमें नष्ट होय है इस रूपकूं रोग वियोग दरिद्र जरा महाकुरूप करैगा ऐसा हाडचामका रूपमें रागी होय मद करना बडा

अनथ है । इस आत्माका रूप तो केवलज्ञान है जिसमें लोक अलोक सर्व प्रतिविंवित होय हैं तातैं चामडाका रूपमें आपा छांडि अपना अविनाशी ज्ञानस्वरूपमें आपा धारहु । बहुरि श्रुतका गर्वकूं छांडहू आत्मज्ञानरहितका श्रुत निष्फल है, जातैं एकादशअंगका ज्ञान सहित होय करके हूं अभव्य संसारहीमें परिभ्रमण करै है सम्यग्दर्शन विना अनेक व्याकरण छंद अलंकार काव्य कोपादिक पढना विपरीत धर्ममें अभिमान लोभमें प्रवर्तन कराय संसाररूप अंधकूपमे डुवोबनेके अर्थि जानहू । और इस इंद्रियजनित ज्ञानका कहा गर्व है एकक्षणमें वातपित्तकफादिकके घटनेबधनेतैं ज्ञान चलायमान हो जाय है अर इंद्रिय जनित ज्ञान तो इन्द्रियनिका विनाशकी साथ हो विनशैगा अर मिथ्याज्ञान तो ज्यों बंधैगा त्यों खोटे काव्य, खोटी टीकादिकनिकी रचनामें प्रवर्तन कराय अनेक जीवनिकूं दुराचारमें प्रवर्तन कराय डबोय देगा तातैं श्रुतका मद छांडहू, ज्ञान पाय आत्मविशुद्धता करहू, ज्ञान पाय अज्ञानीकैसे आचरणकरि संसारमें भ्रमण करना योग्य नाहीं । बहुरि सम्यक्त्व विना मिथ्यादृष्टिका तप निष्फल है तपको मद करो हो जो मैं बडा तपस्वी हूं सो मदके प्रभावतैं बुद्धि नष्टकरिकैं यो तप दुर्गतिमें परिभ्रमण करावेगा तातैं तपका गर्व करना महा अनर्थ जानि भव्यनिकूं तपका गर्व करना योग्य नाहीं है । बहुरि जिस बलकरि कर्मरूप वैरीकूं जीतिये कथा काम क्रोध लोभकूं जीतिये सो वल तो प्रशंसायोग्य है और देहका बल यौवनका बल ऐश्वर्यका बल पाय अन्य निर्बल अनाथ जीवनिकूं मारिलेना, धनखोसिलेना जमी जीविका खोसिलेना, कुशील सेवनकरना, दुराचारमें प्रवर्तन

करावना सो बल तो नरकके घोर दुःख असंख्यातकाल भोगाय तिर्यंचगतिमें मारण ताडन लादन करि तथा दुर्वचन तथा क्षुधा तृषादिकनिके दुःख अनेक पर्यायनिमें भुगताय एकेन्द्रियनिमें समस्तबलरहित असमर्थ करैगा। तातैं बलका मद छांडि क्षमा ग्रहण करि उत्तमतपमें प्रवर्तन करना योग्य है।

बहुरि जे विज्ञान कहिये अनेक हस्तकला अनेक वचनकला अनेक मनके विकल्प जिनकरि यो आत्मा चतुर्गतिरूप संसारमें परिभ्रमणकरि दुःख भोगै है ते समस्त कुज्ञान हैं। इस संसारमें खोटीकला चतुरताका बड़ा गर्व है जो हमारा सामर्थ्य ऐसा है तो सांचेकूं झूठा करिदेवैं, झूठेकूं सांचा करिदेवैं, कलंकरहितकूं कलंकसहित करिदेवैं, शीलवन्तकूं दूषित करिदेवैं, अदण्डनिकूं दण्डदेने योग्य करिदेवै बहुत दिननिका संचय किया द्रव्यकूं कढा लेवैं तथा धर्म छुटाय अन्यथा श्रद्धान कराय देवैं तथा प्राणीनिके वशीकरण तथा अनेक जीवनिका मारण तथा अनेक जलमें गमन करनेके, स्थलमें गमन करनेके, आकाशमें गमन करनेके, अनेक यन्त्र बनायदेवैं इत्यादिक कलाचातुर्य हैं ते सब कुज्ञान हैं याका गर्व नरकके घोर दुःखका कारण है। कलाचातुर्य सम्यक् तो सो है जातैं अपना आत्माकूं विषयकषायके उलझावतैं सुलझावना तथा लोकनिकूं हिंसारहित सत्यमार्गमें प्रवर्तावना है, ऐसे सत्यार्थवस्तु का स्वरूप समझि जाति, कुल, धन, ऐश्वर्य, रूप विज्ञानादिककूं कर्मके अधीन जानि इनका मद छांडि दर्शनविशुद्धता करो। ऐसैं तीन मूढता अर आठ शङ्कादिकदोष अर षट्अनायतन अर अष्टमद ऐसैं पचीस दोषका परिहार करि सम्यग्दर्शनकी उज्वलता

होय है ऐसैं जानि दर्शनविशुद्धि भावना को निरन्तर चिंतवनकरै अर याकूं ध्यानगोचर करि स्तुतिसहित उज्वलअर्घ उतारण करै सो मुक्तिस्त्रीसूं संबन्ध करै है। ऐसैं दर्शनविशुद्धता नाम प्रथम भावना वर्णन करी ॥१॥

अब आगैं विनयसंपन्नता नाम दूजी भावना कहिये है सो—विनय पंचप्रकार कह्या है दर्शनविनय, ज्ञानविनय, चारित्रविनय, तपविनय, उपचारविनय। तहां जो अपने श्रद्धानके शङ्कादिकदोष नाहीं लगावना तथा सम्यग्दर्शनकी विशुद्धताकरि ही अपना जन्म सफल मानना सम्यग्दर्शनके धारकनिमें प्रीति धारना, आत्मा अर परका भेदविज्ञानका अनुभव करना सो दर्शनविनय है। बहुरि सम्यग्ज्ञानके आराधनमें उद्यम करना, सम्यग्ज्ञानकी कथनीमें आदर करना तथा सम्यग्ज्ञानके कारण जे अनेकांत रूप जिनसूत्र तिनके श्रवण पठनमें बहुत उत्साहरूप होना तथा वन्दना स्तवन-पूर्वक बहुत आदरतैं पढना सो ज्ञानविनय है तथा ज्ञानके आराधक ज्ञानीजनोंका तथा जिनागमके पुस्तकनिका संयोगका बड़ालाभ मानना, सत्कार स्तवन आदरादिक करना सो ज्ञानविनय है। बहुरि अपनी शक्तिप्रमाण चारित्र धारणमें हर्ष करना, दिनदिन चारित्रकी उज्वलता के अर्थि विषयकषायनिकूं घटावना तथा चारित्रके धारकनिके गुणनिमें अनुराग स्तवन आदर करना सो चारित्र विनय है। बहुरि इच्छाकूं रोकि मिले हुए विषयनिमें संतोष धारणकरि ध्यानस्वाध्यायमें उद्यमी होय कामके जीतनेकूं अर इंद्रियनिके विषयनिमें प्रवृत्ति रोकनेकूं अनशनादिक तपमें उद्यम करना सो तपविनय है। बहुरि इन च्यारि आराधनाका

उपदेशकरि मोक्षमार्गमें प्रवर्त्तन करावनेवाले हैं तथा जिनके स्मरण करनेतैं परिणामनिका मल दूरि होय विशुद्धता प्रगट हो जाय ऐसे पंचपरमेष्ठीके नामकी स्थापनाका विनय वंदना स्तवन करना सो उपचारविनय है। अन्य हू उपचारविनयका बहुत भेद है अभिमानकूं छांडि अष्टमदका अत्यंत अभाव जाकै होय कठोरता छूटि कोमलता जाकै प्रगट होय ताकै नम्रपना प्रगट होय है ताकै सत्यार्थ ऐसा विचार है यो धन यौवन जीवन क्षणभंगुर है कर्मके अधीन है, कोऊ जीव हमतैं क्लेशित मत होहू, सकल सम्बन्ध वियोगसहित है, इहां केते काल रहूंगा समय-समय कालके सन्मुख अखंड गमन करूं हूं, कोऊ वस्तुका संबंध थिर नाहीं है इहां विनय धर्म ही भगवान मनुष्य जन्मका सार कह्या है यो विनय संसाररूप वृक्षके दग्ध करनेकूं अग्नि है यो विनय है सो त्रैलोक्यवर्ती जीवनिके मनकी उज्वलता करनेवाला है अर विनय है सो समस्त जिन शासनको मूल है विनयरहितके जिनेंद्रकी शिक्षा ग्रहण नाहीं होय है, विनयरहित जीव समस्त दोषनिका पात्र है विनय है सो मिथ्याश्रद्धानके छेदनेकूं सूल है विनयविना मनुष्यरूप घासडाको वृक्ष मानरूप अग्नि करि भस्म होय है अर मानकषायकरिके यहां ही घोर दुःख सहै है अर परलोकमें निंद्य जाति कुलरूप बुद्धिहीन बलहीन उपजै है जे अभिमानी यहां किंचित वचनमात्र हू नाहीं सहैं हैं ते तिर्यंचगतिमें नासिकामें मूंजका जेवडाका बन्धन लादन मारण लात ठोकरांका घात घासडाका मरमस्थानमें घात पराधीन हुआ भोगै हैं तथा चांडालनिके मलीन घरमें बन्धनतैं बन्ध रहै हैं जिन ऊपरि मलादि निंद्य वस्तु

लादिये हैं और इसलोकमें हू अभिमानीके समस्त लोक वैरी हो जाय हैं अभिमानीकूं समस्त निंदैं हैं महाअपयश प्रगट हो जायहै समस्त लोग अभिमानीका पतन चाहैं मानकषायतैं क्रोध प्रगट होय कपट विस्तारै अतिलोभ करै दुर्वचननिमें प्रवर्तनकरैं। लोकमें जेती अनीति है तितनी मानकषायतैं होय है, परधन हरणादिक हू अपने अभिमान पुष्ट करनेकूं करै है, यातैं इस जीवका बड़ा वैरी मानकषाय हैं यातैं विनय गुणमें महान आदरकरि अपना दोऊ लोक उज्ज्वल करो सो विनय देवको शास्त्रको गुरुनिको मन वचन कायतै प्रत्यक्ष करो अर परोक्ष हू करो। तहां देव जो भगवान अरहंत समवशरण विभूतिसहित गंध कूटीके मध्य सिंहासन ऊपरि अंतरीक्ष विराजमान चौसठ चमरनिकरि वीज्यमान छत्त्रत्रयादिक प्रतिहार्यनिकरि विभूषित कोटिसूर्यसमान उद्योतका धारक परमौदारिकदेहमें तिष्ठता द्वादशसभाकरि सेवित दिव्यध्वनिकरि अनेक जीवनिका उपकार करनेवाले अरहंतको चिंतवनकरि ध्यान करना सो मनकरि परोक्षविनय है। याका विनयपूर्वक स्तवन करना सो वचनकरि परोक्षविनय है। अंजुलीजोडि मस्तक चढाय नमस्कार करना सो कायकरि परोक्षविनय है। बहुरि जो जिनेन्द्रकी प्रतिबिंबकी परमशांत मुद्राकूं प्रत्यक्ष नेत्रनितैं अवलोकनिकरि महाआनन्दतैं मनमें ध्यानकरि आपकूं कृतकृत्य मानना सो मनकरि प्रत्यक्षविनय है। जिनेन्द्रका प्रतिबिंबके सन्मुख होय स्तवन करना सो प्रत्यक्ष वचनविनय है। अंजुली मस्तक चढ़ाय वन्दना करना तथा भूमिमें अंजुलीसहित मस्तक गोडानिका स्पर्शनकरि नमस्कार करना सो कायकरि प्रत्यक्षविनय है। तथा सर्वज्ञ वीतराग

परमात्मा जिनेन्द्रका नामका स्मरण, ध्यान, वन्दना स्तवन करना सो समस्त परोक्षविनय है। ऐसें देवका विनय समस्त अशुभकर्मनिका नाश करनेवाला कह्या है।

बहुरि जो निर्ग्रंथ वीतरागी मुनीश्वरनिकूं प्रत्यक्ष देखि खडा होना आनन्दसहित सन्मुख जाना, स्तवन करना, वन्दना करना, गुरुनिकूं आगैंकरि पाछैं चलना कदाचित् बराबर चलना होय तो गुरुनिके बामतरफ चालना गुरुनिकूं अपने दक्षिणभागमें करिकै चालना बैठना, गुरुनिकूं विद्यमान होते आप उपदेश नाहीं करना, कोऊ प्रश्न करै तो गुरुनिके होते आप उत्तर नाहीं देना, अर गुरुनिकी इच्छा होय तो गुरुनिकी इच्छाके अनुकूल उत्तर देना, गुरुनिके होते उच्च आसन नाहीं बैठना अर गुरु व्याख्यान उपदेशादिक करै ताकूं अंजुली जोडि बहुत आदरतैं ग्रहण करना, गुरुनिका गुणनिमें अनुराग करि आज्ञाके अनुकूल प्रवर्तन करना अर गुरु दूर क्षेत्रमें होय तो बाकी जो आज्ञा होय तैसैं वर्तन करना दूरहीतैं गुरुनिका ध्यान स्तवन नमस्कारादि विनय करना सो गुरुनिका विनय है।

बहुरि शास्त्रका विनय करना बड़ा आदरतैं पठन श्रवण करना, द्रव्य क्षेत्र काल भावकूं देखि व्याख्यानादि करना, शास्त्रका कह्या व्रत संयमादिक आपतैं नाहीं बनि सकै तो आज्ञाका उल्लङ्घन नाहीं करना, सूत्रकी आज्ञा होय तिस प्रमाण ही कहना तथा जो सूत्रकी आज्ञा होय ताकूं एकाग्रचित्ततैं श्रवण करना, श्रवण करते अन्य कथा नाहीं करना, आदरपूर्वक मौनतैं श्रवणकरना अर जो संशय होय तो संशय दूरकरनेकूं विनय

पूर्वक अल्प अक्षरनिकरि जैसे सभाके अर लोकनिकै अर वक्ताकै क्षोभ नाहीं उपजै तैसें विनयपूर्वक प्रश्न करना उत्तरकूं आदरतैं अंगीकार करना सो शास्त्रका विनय है तथा शास्त्रकूं उच्चआस-नपर धरि नीचा बैठना प्रशंसा स्तवन करना इत्यादिक शास्त्रका विनय करना ऐसैं देव गुरु शास्त्रका विनय है सो धर्मका मूल है।

बहुरि जो रागद्वेषकरि आत्माका घात जैसे नाहीं होय तैसे प्रवर्तन करना सो आत्माका विनय है, जातैं ऐसा विचारै हैं अब यो मेरो जीव चतुर्गतिमें मति परिभ्रमण करो, अब मेरा आत्मा मिथ्यात्व कषाय अविनयादिककरि संसार परिभ्रमणके दुःख मति प्राप्त होहू ऐसे चिंतवन करता मिथ्यात्व कषाय अविन-यादिककरि आत्माका ज्ञानादिक गुण घात नाहीं करना सो आत्माका विनय है। याहीकूं निश्चय विनय कहिये है यह तो परमार्थ विनय कह्या।

अब यहां ऐसा विशेष जानना जाके मान कषाय घटि जाय ताहीके व्यवहारविनय है कोऊ जीवका मोतैं अपमान मति होहू जो अन्यका सन्मान करैगा सो आपहू सन्मानकूं प्राप्त होयगा जो अन्यका अपमान करैगा सो आपहू अपमानकूं प्राप्त होय है जो समस्तकूं मिष्टवचन बोलना सो विनय है किसी जीवकूं तिर-स्कार नाहीं करना सोहू विनय ही है। अपने घर आया ताका यथा-योग्य सत्कार करना किसीकूं सन्मुख जाय ल्यावना किसीकूं उठि खडा होना एक हस्तकूं माथैं चढावना किसीकूं आइए २ इत्यादिक तीनवार कहि अङ्गीकार करना कोऊकूं आदरकरि नजीक बैठावना किसीकूं आसनदान देना किसीको आवो बैठो, किसीके शरीरकी

कुशल पूछना तथा हम आपके हैं हमकूं आज्ञा करिये भोजनपान करिये, यह आपहीका गृह है ये गृह आपके आवनेतैं उच भया है आपकी कृपा हमारे पर सनातनतैं है ऐसे हू व्यवहार-विनय है। तथा कोऊकूं हस्त उठाय माथै चढावना एता ही विनय है, यह समस्त व्यवहारविनय है और हू दान सन्मान कुशल पूछना रोगी दुःखीका वैयावृत्त्य करना सो भी विनयवान ही के होय है। दुःखित मनुष्य तिर्यंचनिकूं विश्वास देना, दुःखित होय आपका दुःख कहनेकूं आया होय ताका दुःख श्रवण करना अपना सामर्थ्य प्रमाण उपकार करना, नाहीं बन-नेका होय तो धीरता संतोषादिकका उपदेश देना ऐसे व्यवहा-रविनय है। सो परमार्थविनयका कारण है, यशकूं उपजावै है धर्मकी प्रभावना करै है। मिथ्यादृष्टिका हू अपमान नाहीं करना मिष्टवचन बोलना यथायोग्य आदर सत्कार करना योही विनय है। महापापी द्रोही दुराचारीकूं हू कुवचन नाहीं कहना एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियादिक तथा सर्पादिक दुष्ट जीव तिनकी विराधना नाहीं करना याकी रक्षा करि प्रवर्तना सोही इनका विनय है अन्यधर्मीनिका मंदिरप्रतिमादिकतैं वैर करि निंदा नाहीं करना ऐसा परमार्थव्यवहार दोऊ प्रकारकूं विनयको धारणकरि गृहस्थकूं प्रवर्तन करना योग्य है। देखो सकलसंगका परित्यागी वीतरागी मुनीश्वरहूकूं कोऊ मिथ्यादृष्टि वन्दना करै है ताकूं आशीर्वाद देवैं हैं चांडाल भील धीवरादिक अधमजाति हू वंदना करै ताकूं पापक्षयोस्तु इत्यादिक आशीर्वाद दे हैं तातैं विनय-अंग धारण करो हो तो बाल अज्ञान धर्मरहितका तथा नीच

अधम जाति होय ताका हू विनय नाहीं करो तो हू तिरस्कार निंदा कदाचित् करना उचित नाहीं है इस मनुष्यजन्मका मण्डन विनय ही है विनय विना मनुष्यजन्मकी एक घड़ी भी हमारे मति जावो ऐसे भगवान गणधरदेव कहैं हैं ऐसा विनयगुणकी महिमा जानि याका महान अर्घ उतारण करो। हे विनयसंपन्नताअंग हमारे हृदय में तूही निरन्तर वास करि, तेरे प्रसादतैं अब मेरा आत्मा कदाचित् अष्टमदनकरि अभिमानकूं मति प्राप्त होहू ऐसे विनयसंपन्नता नाम अङ्गकी दूजी भावना वर्णन करी ॥ २ ॥

अब तीसरी शीलव्रतेष्वनतीचार भावना कहै हैं—शीलव्रतेष्वनतीचारका ऐसा अर्थ वार्तिकमें कह्या है अहिंसादिक पंचव्रत अर इनव्रतनिका पालनके अर्थि क्रोधादिकषायका वर्जनादिरूप शीलविषै जो मनवचनकायकी निर्दोष प्रवृत्ति सो शीलव्रतेष्वनतिचारभावना है। शीलनाम आत्माका स्वभावका है आत्मस्वभाव का नाश करनेवाला हिंसादिक पांच पाप हैं तिनमें कामसेवन नाम एकही पाप हिंसादिक समस्तपापनिकूं पुष्ट करै है अर क्रोधादिकषायनिकी तीव्रता करै है तातैं यहां जयमालामें ब्रह्मचर्यकी ही प्रधानताकरि वर्णन करिये है यो शील दुर्गतिके दुःखका हरनेवाला है स्वर्गादिक शुभगतिका कारण है तपव्रतसंयमका जीवन है शीलविना तप करना, व्रतधरना, संयम पालना, मृतकका अङ्ग समान देखने मात्र है कार्यकारी नाहीं तैसे शीलरहितका तपव्रतसंयम धर्मकी निंदा करावनेवाला है ऐसा जानि शील नाम धर्मका अङ्गकूं पालना करहू अर चंचल मनरूप पक्षीकूं दमो, अतिचाररहित शुद्धशीलकूं पुष्ट करो, धर्मरूपवनके विध्वंस करनेवाला

मनरूप मदोन्मत्त हस्तीकूं रोको चलायमान हुआ मनरूप हस्ती महान् अनर्थ करै है हस्ती मदवान होय तदि ठाणमेंतैं निकलि भागै है अर मनरूपहस्ती कामकरि उन्मत्त होय तब समभावरूपी ठाणतैं निकलि भागै है तथा कुलकी मर्यादा सन्तोषादि छांडि निकसै है मदोन्मत्तहस्ती तो सांकल तुडाय जाय है अर मनरूप-हस्ती सुबुद्धिरूप सांकल तोडि विचरै है, हस्तीतो मार्गमें चलावने-वाला महावतकूं नाखै है अर कामीका मन सम्यग्धर्मके मार्गमें प्रवर्तावनेवाला ज्ञानकूं छांड़ै है हस्ती तो अंकुशकूं नाहीं मानै है अर मनरूपहस्ती गुरुनिके शिक्षाकारी वचनकूं नाहीं मानै है हस्ती तो महाफल अर छायाका देनेवाला वृक्षकूं उखाडि पटकै है अर कामकरि व्याप्त मन है सो स्वर्गमोक्षरूप फलका देनेवाला अर यशरूप सुगंधकूं विस्तारता सकलविषयांकी आतापकूं हरने-वाला ब्रह्मचर्यरूप वृक्षकूं उखाडि डालै है हस्ती तो मल कर्दमादिक दूर करनेवाला सरोवरमें स्नानकरि मस्तक ऊपरि धूल नाखता धूलिरजसूं क्रीड़ा करै है अर कामकरि व्याप्त मन सिद्धांतरूप सरोवरमें अवगाहनकरि अनेक अज्ञानरूप मैलकूं धोय करके हू पापरूप धूलितैं क्रीड़ा करै है। हस्ती तो कर्णनिकी चपलताकूं धारण करै है अर कामसंयुक्तमन पांचूं इन्द्रियनिका विषयनिमें चंचलता धारण करै है हस्ती तो हस्तिनीमें रति करै है कामसंयुक्त मन कुबुद्धिरूप हस्तिनीमें रचै है, हस्ती हू स्वछंद डोलै मन हू स्वछंद डोलै, हस्ती तो मदकरिके मत्त है कामीका मन रूपादिक अष्टमदकरि मत्त है हस्तीके नजीक तो कोऊ पथिक नाहीं आवै दूर भागिजाय अर कामकरि उन्मत्तके नजीक कोऊ एक हू गुण

नाहीं रहै है यातैं इस कामकरि उन्मत्त मनरूप हस्तीकू वैराग्यरूप स्थम्भकै बांधो, यो खुल्यो हुवो महाअनर्थ करैगा यो काम अनंग है याकै अङ्ग नाहीं है यो तो मनसिज है मनहीमें याका जन्म है ज्ञानकूं मथन करनेवाला है याहीतैं याकूं मनमथ कहिये है। संवरको अरि कहिये वैरी है यातैं संवरारि कहिये है कामतैं खोटा दर्प जो गर्व सो उपजै है यातैं याकूं कंदर्प कहिये हैं। याकरि अनेक मनुष्य तिर्यंच परस्पर विरोधकरि मरिजाय हैं यातैं याकूं मार कहिये है याहीतैं मनुष्यनिमें अन्य इंद्रियनिके भोग तो प्रगट हैं अर कामके अंगहू ढके हुए हैं कामके अङ्गका नामहू उत्तमपुरुष हैं ते नाहीं उच्चारण करै हैं। यो समान अन्य पाप नाहीं है धर्मतैं भ्रष्ट करनेवाला काम है यो काम हरिहरब्रह्मादिकनिकूं भ्रष्टकरि आपके आधीन किये है, याहीतैं समस्त जगतकूं जीतनेवाला एक काम है याका विजय करनेवाला मोहकूं सहज ही जीतै है, याहीतैं कामके परिहारके अर्थि मनुष्यनी तथा देवांगना तथा तिर्यंचनी इनका संसर्ग संगति कामविकारके उपजावनेवाली दूरहीतै परिहार करो।

स्त्रीनिमें मनवचनकायकरि रागका त्याग करो आप कुशीलके मार्गमें नाहीं चलना अन्यकूं कुशीलके मार्गका उपदेश मति करो अन्य कोऊ कुशीलके मार्गमें प्रवर्तन करै तिनकी अनुमोदना भव्य जीव नाहीं करै है बालिका स्त्रीकूं देखि पुत्रीवत् निर्विकार बुद्धि करो अर यौवनरूप करींद्रऊपरि चढी, लावण्य जो सौंदर्यरूप जलमें जाका सब अंग डूबि रह्या ऐसी रूपवती स्त्रीमें बहिणवत् निर्विकार बुद्धि करहु अर वाकूं सनमान दान मति करो। वचन-करि आलाप मति करो शीलवान् हैं तिनकी दृष्टि स्त्रीनिमें प्राप्त

होते ही मुद्रित हो जाय है जो स्त्रीनिमें वचनालाप करैगा स्त्रीके अंगनिका अवलोकन करैगा ताके शीलका भंग अवश्य होयगा। तातैं जो गृहस्थ है ताकै तो एक अपनी स्त्रीविना अन्य स्त्रीनिकी संगति तथा अवलोकन वचनालापकरि परिहार अर अन्य स्त्रीनिकी कथाका स्वप्नहूमें विचार नाहीं रहै है अर एकांतमें माता-बहनपुत्रीकी सङ्गति हू नाहीं करै है, मुनीश्वर तो समस्त-स्त्री-मात्रका सम्बंध नाहीं करै हैं स्त्रीनिमें उपदेश नाहीं करै है जातैं स्त्रीका नाम ही प्रगट दोषनिकूं कहै है। स्त्री समान इस जीवकूं नष्ट करनेवाला अन्य कोऊ अरि कहिये वैरी नाहीं तातैं उत्तम पुरुष याकूं नारी कहै हैं दोषनिकूं प्रत्यक्ष देखते-देखते आच्छादन करै तातैं याका नाम स्त्री है, याका देखनेकरि पुरुषको पतन होजाय तातैं याका नाम पत्नी है, कुमरण करनेका कारण है तातैं याका नाम कुमारी है, याकी सङ्गतिकरि पौरुषबुद्धिबलादिक नष्ट होजाय यातैं याका नाम अबला है। संसारके बन्धका कारण है यातैं याका नाम वधू है कुटिलता मायाचारका स्वभाव धारैं है यातैं याका नाम वामा है, याका नेत्रनिमें कुटिलता वसै है यातैं याका नाम वामलोचना है, शीलवंतकूं इंद्र नमस्कार करैं हैं शीलवानपुरुष रत्नत्रयरूप धन लेय कामादिक लुटेरानिका भयरहित निर्भय निर्वाणपुरीप्रति गमन करै हैं शीलकरि भूषित रूपरहित होय तथा मलीन होय रोगादिककरि व्याप्त होजाय तो हू अपना संसर्गकरि समस्त सभानिवासीनिकूं मोहित करै है सुखित करै है। अर शीलरहित व्यभिचारी रूपकरि कामदेव समान है तो हू लोकनिमें थुथकार करिये है जातैं याका नाम

ही कुशील है शील नाम स्वभावका है कामी मनुष्यका शील जो आत्माका स्वभाव सो खोटा हो जाय है यातैं याकूं कुशील कहिये है। बहुरि कामी मनुष्य धर्मतैं आत्माका स्वभावतैं व्यवहारकी शुद्धतातैं चलिजाय है यातैं याकूं व्यभिचारी कहिये हैं या समान जगमें अन्य कुकर्म नाहीं तातैं कामकूं कुकर्म कहिये है। यातैं मनुष्य पशुकेसमान होजाय यातैं याकूं पशुकर्म कहिये है। ब्रह्म जो आत्मा ताका ज्ञानदर्शनादिस्वभाव ताका घात यातैं होय है तातैं याकूं अब्रह्म कहिये है। जातैं कुशीलाकी संगतितैं कुशीलो होय जाय है जो शीलकी रक्षा करी सो ही क्षांति तप व्रत संयम समस्त पाल्या। बहुरि जो अपना स्वभावतैं नाहीं चलायमान होना ताकूं मुनीश्वर शील कहै हैं, शीलनामका गुण समस्तगुणनिमें बड़ा है शीलकरिसहित पुरुषका वो थोरा हू व्रत तप प्रचुर फलकूं फलै है अर शीलविना बहुत हू तप व्रत है सो निष्फल है। इस प्रकार जानि अपने आत्मामें शीलकी शुद्धताके अर्थि शीलहीकूं नित्य पूजूहूँ यो शीलव्रत मनुष्यजन्महीमें है अन्यगति में नाहीं है वातैं जन्म सफल किया चाहो हो तो शीलकी ही उज्वलता करो ऐसैं शीलव्रतेष्वनतीचार नाम तीसरी भावना वर्णन करी ॥३॥

अब अभीक्ष्णज्ञानोपयोग नाम चौथी भावनाका वर्णन करै हैं। भो आत्मन् यो मनुष्यजन्म पाय निरन्तर ज्ञानाभ्यास ही करो ज्ञानका अभ्यासविना एकक्षण हू व्यतीत मति करो ज्ञानके अभ्यासविना मनुष्य पशुसमान है यातैं। योग्यकालमें जिनआगमको पाठ करो अर समभाव होय तदि ध्यान करो अर शास्त्रनिके अर्थ

का चिंतवन करो अर बहुत ज्ञानी गुरुजन तिनमें नम्रता वन्दना विनयादिक करो अर धर्म श्रवण करनेके इच्छुक तिनकूं धर्मका उपदेश करो याहीकूं अभीक्ष्णज्ञानोपयोग कहैं हैं इस । अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोगनाम गुणका अष्टद्रव्यनितैं पूजन करकै याका अर्घ उतार करो और पुष्पनिकी अंजुलि अग्रभागविषै क्षेपण करो इहां ज्ञानोपयोग है सो चैतन्यकी परिणति है याहीतैं क्षणक्षणमें निरन्तर चैतन्यकी भावना करना । मेरे अनादिकालतैं काम क्रोध अभिमान लोभादिक संग लगि रहै हैं इनका संस्कार अनादितैं मेरे चैतन्यरूपमे घुलि रहे हैं अब ऐसी भावना होहु जो भगवानके परमागमका सेवनका प्रभावतैं मेरा आत्मा रागद्वेषादिकतैं भिन्न अपना ज्ञायकस्वभावरूपहीमें ठहरि जाय अर रागादिकनिके वशीभूत नाहीं होय सो ही मेरी आत्माका हित है अथवा नवीनशिष्यनिके आगे श्रुतका अर्थ का ऐसा प्रकाश करना जो संशयादिक रहित शिष्यनिका हृदयमें यथावत् स्वपर पदार्थका स्वरूप प्रगट हो जाय पाप पुण्यका स्वरूप, लोकअलोकका स्वरूप, मुनिश्रावक का धर्मको स्वरूप सत्यार्थ निर्णय हो जाय तैसैं ज्ञानाभ्यास करना तथा अपने चित्तमें संसारभोगदेहतैं विरक्तता चिंतवन करना । संसारदेह भोगनिका यथार्थ स्वरूपका चिंतवन करनेतैं रागद्वेष-मोह ज्ञानकूं विपरीत नाहीं करि सकै हैं।

समस्त द्रव्यनिमें एक मिल्या हुआ हू आत्माका भिन्न अनुभव होय सो ही ज्ञानोपोग हैं, ज्ञानाभ्यास करके विषयनिकी वांछा नष्ट होय है कषायनिका अभाव होय है माया मिथ्यात्व निदान तीनशल्य ज्ञानके अभ्यास करि नष्ट होय हैं। ज्ञानके अभ्यास हीतैं मन स्थिर होय है, ज्ञानके

अभ्यास करके ही अनेक प्रकारके विकल्प नष्ट होय हैं, ज्ञानाभ्यास करके धर्म ध्यानमें शुक्लज्ञानमें अचल होय तिष्ठै है ज्ञानाभ्यासतैं ही व्रतसंयममें चलायमान नाहीं होय है, ज्ञानाभ्यास करके ही जिनेंद्रका शासन आज्ञा (प्रवर्तै) है अशुभकर्मका नाश हू ज्ञानाभ्यास करके ही होय, प्रभावना हू जिन धर्मका ज्ञानके अभ्यास करके ही होय ज्ञानका अभ्यासतैं लोकनिका हृदयमेतैं पूर्वसंचय किया ऐसा पापरूप ऋण नष्ट हो जाय है, अज्ञानी घोर तपकरि कोटि पूर्वमे जिस कर्मकूं खिपावै तिस कर्मकूं ज्ञानी अन्तर्मुहूर्तमें खिपावै है जिन धर्मका स्थंभ ज्ञानका अभ्यास ही है। ज्ञान हीके प्रभावतैं समस्त विषयनिकी वांछारहित होय संतोष धारण करिये है, ज्ञानहीतैं उत्तमक्षमादि गुण प्रगट होय है, ज्ञानाभ्यासतै ही भक्ष्य अभक्ष्य योग्य अयोग्य त्यागने योग्य ग्रहण करने योग्यका विचार होय है ज्ञान विना परमार्थ अर व्यवहार दोऊ नष्ट हो जाय हैं ज्ञानरहित राजपुत्रहू का निरादर होय है।

ज्ञान समान कोऊ धन नाहीं है, ज्ञानका दान समान कोऊ दान नाहीं है, दुःखित जीवकूं सुखितकूं सदा ज्ञान ही शरण है ज्ञान ही स्वदेशमे अन्य देशमें आदर करावनेवाला परम धन है ज्ञान धन है सो किसी करि चोरया जाय नाहीं, किसीकूं दिये घटै नाहीं, ज्ञान ही सम्यग्दर्शन उपजावै है ज्ञानहीतैं मोक्ष होय है, सम्यग्ज्ञान आत्माका अविनाशी स्वाधीन धन है। ज्ञानविना संसारसमुद्रमें डूबतेकूं हस्तावलंबन देय कौन रक्षा करे, विद्यासमान आभूषण नाहीं, विद्या विना आभूषणमात्रतैं ही सत्पुरुषनिके आदरने योग्य होय नाहीं है, निर्धनकै परमनिधान प्राप्त करानेवाला एक सम्यग्ज्ञान ही है। यातैं हे

भव्यजीवो ! भगवान करुणानिधान वीतराग गुरु तुमकूं या शिक्षा करै हैं अपनी आत्माकूं सम्यग्ज्ञानके अभ्यासहीमें लगावो अर मिथ्यादृष्टिनिकरि प्ररूप्या मिथ्याज्ञानका दूरहीतैं परिहार करो सम्यक्मिथ्याकी परीक्षा करि ग्रहण करो अपना संतानकूं पढावो अन्यजननिकूं विद्याका अभ्यास करावो जे धनवान होय अपने धनकूं सफल कर्या चाहो हो तो पढने पढानेवालेकूं आजीविकादिक देयकरि थिरता करावो पुस्तक लिखाय देवो विद्या पढनेवालेकूं देवो पुस्तकनिकूं शुद्ध करो करावो पठन पाठनके अर्थि स्थान देवो निरंतर पठन श्रवणमें ही मनुष्य जन्मका काल व्यतीत करो यो अवसर व्यतीत होतो चल्या जाय है, जेते आयु काय इंद्रियां बुद्धि वन रही हैं तेते मनुष्य जन्मकी एक घडी हू सम्यग्ज्ञानविना मति खोवो ज्ञानरूपधन परलोकमें हू लार जायगा इस अभीक्ष्णज्ञानोपयोगकी महिमा कोटि जिह्वानिकरि हू वर्णन नाहीं करी जाय है। याहीतैं ज्ञानोपयोगकी परमशरणके अर्थि गृहस्थ धनसहित होय सो भावना भाय अर अर्घ उतारण करै अर गृहकै त्यागी होय ते निरन्तर भावना भावो ऐसैं अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग नामा चौथी भावना वर्णन करी ॥ ४ ॥

अब पंचमी संवेग भावनाका वर्णन करै हैं—जो संसार देह भोगनितैं विरक्तपना सो संवेग है तथा धर्ममें अर धर्मका फलमें अनुराग सो संवेग है अथवा संसार देह भोगनितैं विरक्त होय करि धर्ममें अनुराग करना सो संवेग है। इहां संसारमें जिस पुत्र सूं राग करिये है सो पुत्र जन्म लेते ही तो स्त्रीका यौवन सौंदर्यादिक बिगाडै है अर जन्म हुए पाछैं वडी आकुलता करि वडा

कष्ट करि धनका खरचकरि पुत्रकूं वधाइये है अर रोगादिकनिका बडा जाबता अर क्षणक्षणमें बडी सावधानीतैं महामोही महारागी ग्लानिरहित होय बडा कष्ट सहिकरि बडा करिये है बडा होय तदि आछा भोजन आछा वस्त्र आछा आभरण आछा स्थानकूं हठान् ग्रहण करे है अर जो मूर्ख होय व्यसनी होय तीव्रकषायी होय तो रात्रिदिन क्लेश होनेका परिमाण नाहीं कहनेमें आवै है पुत्रके मोहतैं परिग्रहमें बडी मूर्छा वधै है, अर समर्थ होजाय अर अपनी आज्ञामें मंद होय तो महा आर्तरूप हुआ मरणपर्यंत क्लेश नाहीं छांडै है, अर जो पिताकूं अपना कार्य करनेवाला समझै जेते प्रीति करै है असमर्थ होजाय तासूं राग नाहीं करै, धनरहितका निरादर करै है यातैं पुत्रका स्वरूपकूं समझि राग त्यागि परमधर्मसूं राग करो। पुत्रके अर्थि अन्यायतैं धनादिपरिग्रहके ग्रहणका परित्याग करो। बहुरि स्त्री हू मोहनाम ठिगकी महापाशी है ममता उपजानेवाली है तृष्णाकूं बधावनेवाली है स्त्रीमें तीव्रराग है सो धर्ममें प्रवृत्तिका नाश करै है लोभकूं अत्यन्त बधावै है परिग्रहमें मूर्छा वधावै है ध्यान स्वाध्यायमें विघ्न करै है विषयनिमें अंध करनेवाली है क्रोधादि च्यारों कषायनिकी तीव्रता करनेवाली है संयमका घात करनेवाली है कलहको मूल है दुर्ध्यानको स्थान है मरण विगाडनेवाली है इत्यादिक दोषनिका मूलकारण जानि स्त्रीके संगमें रागभाव छांडि वीतराग धर्मसूं अपना संवन्ध करो। बहुरि कलिकालके मित्र हू विषयनिमें उलझावनहारे हैं समस्त व्यसननिमें सहकारी हैं, धनवान देखें हैं तिनतैं अनेकप्रकार मित्रता करै हैं निर्धनतै कोऊ संभाषण हू नाहीं करै है तातैं भो

ज्ञानी जन हो जो संसार-पतनको भय है तो अन्य समस्ततैं मित्रता छांडि परमधर्ममें अनुराग करो अर संसार निरंतर जन्म-मरण रूप है। जन्मदिनतैं ही मरणके सन्मुख निरंतर प्रयाण करै है अनंतानंतकाल जन्म मरण करते भया तातैं पंच परिवर्तनरूप संसारतैं विरागता भावो।

अर ये पंचइन्द्रियनिके विषय हैं ते आत्माका स्वरूपकूं भुलावने वाले है, तृष्णाके बधावनेवाले हैं, अतृप्तताके करनेवाले हैं विषयनिकीसी आताप त्रैलोक्यमें अन्य नाहीं है विषय हैं ते नरकादिकुगतिके कारण हैं धर्मतैं पराङ्मुख करै हैं कषायनिकूं वधावने वाले हैं, अपना कल्याण चाहै तिनकूं दूरहीतैं त्यागनेयोग्य है ज्ञानकूं विपरीत करने वाले है, विषके समान मारनेवाले हैं अर अग्नि समान दाहके उपजानेवाले हैं तातैं विषयनितैं राग छाडना ही परमकल्याण है अर शरीर है सो रोगनिका स्थान है महामलीन दुर्गंध सप्तधातुमय है, मलमूत्रादिककरि भरया है वातपित्तकफमय है, पवनके आधारतैं हलन चलनादिक करै है सासता क्षुधातृषाकी वेदना उपजावै है समस्त अशुचिताका पुंजहै दिन दिन जीर्ण होता चल्याजाय है, कोटिनिउपाय करके हू रक्षा किया हुआ मरणकूं प्राप्त होय है ऐसा देहतैं विरागता ही श्रेष्ठ है ऐसे पुत्र मित्र कलत्र संसार भोग शरीरका दुःख करनेवाला स्वरूप जानि विराग भावकूं प्राप्त होना सो सवेग है। संवेग भावनाकूं निरन्तर चिंतवन करनाही श्रेष्ठ है यातैं मेरे हृदयमें निरन्तर संवेग भावना तिष्ठो ऐसा चिंतवन करते संसारदेहभोगनितैं विरक्तता होय तदि परमधर्ममें अनुराग होय है। धर्मशब्दका अर्थ ऐसा जानना जो वस्तुका स्वभाव है सो धर्म है

तथा उत्तमक्षमादि दशलक्षणरूप धर्म है तथा रत्नत्रयरूप धर्म है तथा जीवनिका दयारूप धर्म है। ऐसे पर्यायबुद्धि शिष्यनिकें समझावनेके अर्थि धर्मशब्दकूं च्यारप्रकारकरि वर्णन किया है तो हू वस्तु जो आत्मा ताका स्वभाव ही दशलक्षण है क्षमादि दशप्रकार आत्मा का ही स्वभाव है अर सम्यग्दर्शनज्ञान चरित्र हू आत्मातैं भिन्न नाहीं हैं अर दया है सो हू आत्माहीका स्वभाव है सो ऐसा जिनेन्द्रकरि कह्या आत्माका स्वभावरूप दशलक्षण-धर्ममें जो अनुराग सो संवेग धर्म है अर कपटरहित रत्नत्रयधर्ममें अनुराग करना सो संवेग धर्म है तथा मुनीश्वरनिका अर श्राव-कका धर्ममें अनुराग सो संवेग है तथा जीवनिकी रक्षाकरनेरूप जीवनिकी दयामे परिणाम होना सो भगवान संवेग कह्या है अथवा वस्तु जो आत्मा ताका स्वभाव केवल ज्ञान केवलदर्शन है तिस स्वभावमें लीन होना सो प्रशंसा करने योग्य संवेग है जातैं धर्ममें अनुराग परिणाम सो संवेग है, तथा धर्मका फलकूं अत्यन्तमिष्ट जानना सो संवेग है। ये तीर्थंकरपना चक्रवर्ती होना नारायण प्रतिनारायण बलभद्रादिक उपजना सो धर्म ही का फल है तथा बाधारहित केवली होना तथा स्वर्गादिकनिमें महानऋद्धिका धारकदेव होना तथा इंद्र होना तथा अनुत्तरादिक विमानमें अह-मिंद्र होना सो समस्त पूर्व जन्ममें आराधनकिया धर्मका ही फल है।

बहुरि और हू जो भोगभूमि आदिकमें उपजना राजसंपदा पावना अखंड ऐश्वर्य पावना, अनेक देशनिमें आज्ञाप्रवर्तन प्रचुरधनसंपदा पावना, रूपकी अधिकता पावनी, बलकी अधिकता चतुरता, महान् पंडितपना, सर्व लोकमें मान्यता, निर्मलयशकी

विख्यातता बुद्धिकी उज्वलता, आज्ञाकारी धर्मात्मा कुटुम्बका संयोग होना, सत्पुरुषनिकी संगति मिलना, रोगरहित होना, दीर्घआयु इन्द्रियनकी उज्वलता, न्यायमार्गमें प्रवर्तना, वचनकी मिष्टता इत्यादिक उत्तमसामग्रीका पावना है सो हू कोऊ धर्ममें प्रीति करी है तथा धर्मात्मानिका सेवन कियां है धर्मकी तथा धर्मात्मनिकी प्रशंसा की है ताका फल है, कल्पवृक्ष चिंतामणि समस्त धर्मात्माके द्वारे खड़े जानहू। धर्मके फलकी महिमा कोऊ कोटि जिह्वानिकरि कहनेकूं समर्थ नांहीं होइये है। ऐसे धर्मके फलकूं त्रैलोक्यमें उत्कृष्ट जानै है ताके संवेगभावना होय है। बहुरि धर्मसहित सधर्मीनिकूं देखि आनन्द उपजना तथा धर्मकी कथनीमें आनन्दमय होना और भोगनितैं विरक्त होना सो संवेग नामा पंचमअंग है, याकूं आत्माका हित समझि याकी निरंतर भावना भावो अर भावनाके आनन्दकरि सहित होय याकी प्राप्तिके अर्थि याका महाअर्घ उतारण करो। ऐसैं संवेगनामा पंचम भावना वर्णन करी ॥ ५ ॥

अब शक्तिप्रमाणत्याग भावनाव र्णन करिये है। त्यागनामभावना प्रशंसायोग्य मनुष्यजन्मका मण्डन है। अपने हृदयमें त्यागभाव रचनेके अर्थि अनेक उत्सवरूप वादित्रनिकूं वजाय याका महान अर्घ उतारण करो। बाह्य आभ्यन्तर दोय प्रकारका परिग्रहतैं ममता छांडिनेकरि त्यागधर्म होय है। अंतरंगपरिग्रह चौदहप्रकार है ऐसे जानना। जाण्याविना ग्रहण त्याग वृथा है। मिथ्यात्व, अर स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदरूप परिणाम सो वेदपरिग्रह है। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, राग,

द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ ऐसे चौदहप्रकार अंतरंग परिग्रह जनाया। तहाँ जो शरीरादिक परद्रव्यनिमें आत्मबुद्धि करना सो मिथ्यात्व नाम परिग्रह है। यद्यपि जो वस्तु है सो अपना द्रव्य अपना गुण अपना पर्याय है सो ही अपना स्वरूप है। जैसे सुवर्णनाम द्रव्य है सुवर्णके पीतादिक गुण हैं कुण्डलादि पर्याय हैं सो समस्त सुवर्ण ही है यातैं सुवर्ण अन्यवस्तुका नाहीं अन्य वस्तु सुवर्णका नाहीं सुवर्ण है सो सुवर्ण हीका है अन्य वस्तुका कोऊ हुआ नाहीं, होहै नाहीं, होयगा नाहीं, अपनास्वरूप है सो ही आपका है ऐसै आत्मा है सो आत्माहीका है, आत्माका अन्य कोऊ ही द्रव्य नाहीं है। अब जो देहकूं आपा मानै है जो मैं गोरा, मैं सावला, मैं राजा, मैं रङ्क, मैं स्वामी, मैं सेवक, मैं क्षत्रिय, मैं वैश्य, मैं शूद्र, मैं वृद्ध, मैं बाल, मैं बलवान, मैं निर्बल, मैं मनुष्य, मैं तिर्यंच इत्यादिक कर्मकृत विनाशीक परद्रव्यकृत पर्यायमें आत्मबुद्धि करना सो ही मिथ्यात्वनाम परिग्रह है। मिथ्यादर्शनतैं ही मेरा गृह, मेरा पुत्र, मेरा राज मैं ऊंच मैं नीच इत्यादिक मानि समस्त परपदार्थनिमें आत्मबुद्धि करै है पुद्गलका नाशकूं अपना नाश मानै है याके बन्धनेतैं अपना बंधना घटनेतैं घटना मानि पर्यायमें आत्मबुद्धिकरि अनादिकालतैं आपा भूलि रह्या है यातैं समस्त परिग्रहमें आत्मबुद्धिका मूल मिथ्यात्वनामपरिग्रह है जाकै मिथ्याज्ञान नाहीं सो परद्रव्यनिमें 'हमारा' ऐसै कहता हुआ हू परद्रव्यनिमें कदाचित् आपा नाहीं मानै है।

बहुरि वेदके उदयतैं स्त्री पुरुषनिमें जो कामसेवनके परिणाम होय हैं तिस काममें तन्मय होय कामके भावकूं आत्मभाव

माननना सो वेदपरिग्रह है। काम तो वीर्यादिकका प्रेर्या देहका विकार है इसकूं अपना स्वरूप जानै सो वेदपरिग्रह है। बहुरि धन ऐश्वर्य पुत्र स्त्री आभरणादि परद्रव्यादिकमें आसक्तता सो रागपरिग्रह है अन्यका विभव परिवार ऐश्वर्य पाण्डित्यादिक देखि वैरभाव करना सो द्वेषपरिग्रह है हास्यमें आसक्त होना सो हास्यपरिग्रह है अपना मरण होनेतैं मित्रनिका परिग्रहादिकनिकरि वियोगहोनेतैं निरन्तर भयवान रहना सो भयपरिग्रह है। पंचइं-द्रियनिकरि वांछित भोग-उपभोगके भोगनिमें लीन हो जाना सो रति परिग्रह है। अनिष्टवस्तुका संयोगमें परिणामनिका संक्लेश-रूप होना सो अरतिपरिग्रह है- अपना इष्ट स्त्रीपुत्रमित्रधनजीविका-दिकका वियोग होते तिनका संयोगकी वांछा करके संक्लेशरूप होना सो शोक परिग्रह है। बहुरि घृणावान पुद्गलनिके देख-नेतैं श्रवणतैं चिंतवनतैं स्पर्शनतैं परिणाममें ग्लानि उपजना सो जुगुप्सा नाम परिग्रह है। अथवा अन्यका उदय देखि परिणाममें क्लेशित होना सुहावे नाहीं सो जुगुप्सा परिग्रह है। बहुरि परि-णाममें रोषकरि तप्त होना सो क्रोध परिग्रह है बहुरि उच्च कुल जाति धन ऐश्वर्य रूप बल ज्ञान बुद्धि इनकरि आपकूं अधिक जानि मदकरना तथा परकूं घाटि जानि निरादरकरना, कठोरपरि-णाम रखना सो मानपरिग्रह है अनेक कपटछलादिककरि वक्रपरिणाम रखना सो माया परिग्रह है। परद्रव्यनिके ग्रह-णमें तृष्णा सो लोभ परिग्रह है। ऐसैं सांसारिक भ्रमणके कारण आत्माके ज्ञानादिक गुणनिके घातक चौदह प्रकार अन्तरंगपरिग्रह हैं अर इनहीतैं मर्छाके कारण

धनधान्यक्षेत्रसुवर्णादिक स्त्रीपुत्रादि चेतन अचेतन बाह्य परिग्रह हैं ऐसे अन्तरंग बहिरंग दोय प्रकारके परिग्रहके त्यागनेतैं त्याग धर्म होय है। यद्यपि बाह्यपरिग्रहरहित तो दरिद्री मनुष्य स्वभाव हीतैं होय है परन्तु अभ्यंतर परिग्रहका त्याग बहुत दुर्लभ है। यातैं दोयप्रकार परिग्रहका एक देशत्याग तो श्रावकके होय है अर सकलत्याग मुनीश्वरनिके होय है बहुरि कषायनिका त्यागतैं त्यागधर्म होय है। बहुरि इन्द्रियनिकूं विषयनितैं रोकनेकरि त्याग होय है। बहुरि रसनिका त्यागकरि त्यागधर्म होय है जातैं रसना इन्द्रियकी लोलुपता जीतनेतैं समस्त पापनिका त्याग सहज होय है। बहुरि जिनेन्द्रका परमागमका अध्ययन करना अन्यकूं अध्ययन करावना शास्त्रनिकूं लिखाय देना शोधना शुधावना सो परम उपकार करनेवाला त्यागधर्म होय है। बहुरि मनके दुष्टविकल्पनिका अभाव करना, दुष्टविकल्पनिके कारण छांडि चारि अनुयोगकी चरचामें चित्त लगावना सो त्यागधर्म है। बहुरि मोहका नाश करनेवाला धर्मका उपदेश श्रावकनिकूं देना सो महापुण्यका उपजावनेवाला त्यागधर्म है, वीतरागधर्मका उपदेशतैं अनेकप्राणीनिका परिणाम पापतैं भयभीत होय है धर्मके प्रभावकूं अनेक प्राणी प्राप्त होय हैं। बहुरि उत्तम मध्यम जघन्य ऐसैं तीन प्रकारके पात्रनिकूं भक्तिकरि युक्त होय आहारदान देना, प्रासुक औषधि देना, ज्ञानके उपकरण सिद्धान्तके पढनेयोग्य पुस्तकका दान देना, मुनिके योग्य तथा श्रावकके योग्य वस्तिका दान देना, गुणनिके धारकनिकूं तपकी वृद्धि करनेवाला, स्वाध्यायमें लीन करनेवाला, ध्यानकी वृद्धिका

कारण आहारादिक चारि प्रकारका दान परमभक्तितैं विकसित चित्त हुआ अपना जन्मकूं कृतार्थ मानता गृहाचारकूं सफल मानता बड़ा आदरतैं पात्रदान करो। पात्रदान होना महाभाग्यतैं जिनका भला होना है तिनके होय है पात्रका लाभ होना ही दुर्लभ है अर भक्तिसहित पात्रदान होय जाय ताकी महिमा कहनेकूं कौन समर्थ है बहुरि क्षुधातृषाकरि जो पीडित होय तथा रोगी होय दरिद्री होय वृद्ध होय दीन होय तिनकूं अनुकंपाकरि दान देना सो समस्त त्यागधर्म है त्यागहीतैं मनुष्यजन्म सफल है, त्यागहीतैं धनधान्यादिक पावना सफल है, त्यागविना गृहस्थका गृह है सो श्मशान समान है, अर गृहस्थीका स्वामी पुरुष मृतक समान है अर स्त्रीपुत्रादिक गृद्धपक्षी समान हैं सो याका धनरूप मांस चूंटि-चूंटि खाय हैं ऐसैं त्यागभावना वर्णन करी॥ ६॥

अब शक्तिप्रमाणतप भावना अंगीकार करना। क्योंकि यो शरीर दुःखको कारण है। अनेक दुःख यो शरीर उपजावै है अर यो शरीर अनित्य है, अस्थिर है अशुचि है, कृतघ्नवत् है, कोट्यां उपकार करता हू जैसैं कृतघ्न अपना नाहीं होय है तैसैं देहके नानाउपकार सेवा करता हू अपना नाहीं होय है यातैं यथेष्टविधि करि याकूं पुष्ट करना योग्य नाहीं, कृश करने योग्य है, तो हू यो गुण रत्ननिके संचयको कारण है। शरीर विना रत्नत्रयधर्म नाहीं होय है, सेवककी ज्यों योग्य भोजन देय यथाशक्ति जिनेन्द्रका मार्गतैं विरोधरहित कायक्लेशादि तप करना योग्य है। तप विना इन्द्रियनिकी विषयनिमें लोलुपता घटै नाहीं तपविना त्रैलोक्यका जीतनेवाला कामकं नष्टकरनेकूं समर्थता होय नाहीं, तपविना

आत्माकूं अचेत करनेवाली निद्रा जीती जाय नाहीं अर तपविना शरीरका सुखिया स्वभाव मिटै नाहीं, जो तपके प्रभावतैं शरीरकूं साधि राख्या होय तो क्षुधा तृषा शीत उष्णादिकं परीषह आये कायरता उपजै नाहीं संयमधर्मतैं चलायमान होय नाहीं तप है सो कर्मकी निर्जराका कारण है। तातैं तप ही करना श्रेष्ठ है। अपनी शक्तिकूं नाहीं छिपायकरिकैं जैसैं जिनेन्द्रके मार्गतैं विरोधरहित होय तैसैं तप करो तपनाम सुभटका सहाय विना ये अपना श्रद्धान ज्ञानआचरणरूप धनकूं काम क्रोध प्रमादादिक लुटेरे एकक्षणमें लूटि लेवेंगे तदि रत्नत्रयसंपदाकरि रहित चतुर्गतिरूपसंसारमें दीर्घकाल भ्रमण करोगे याहीतैं जैसैं वात पित्त कफ ये त्रिदोष विपरीत होय रोगादिक नाहीं उपजावैं तैसैं तप करना उचित है। समस्ततैं प्रधानतप तो दिगम्बरपणा है कैसा है दिगम्बरपणा जो घरकी ममतारूपपासीकूं छेदि देहका समस्त सुखियापणा छांडि अपनाशरीरतैं शीत उष्ण तावडा वर्षा पवन डांस मच्छर मक्षिकादिकनिकी बाधाके जीतनेकूं सम्मुख होय कोपीनादिक समस्त वस्त्रादिकको त्यागकरि दशदिशारूपही जामें वस्त्र हैं ऐसा दिगम्बरपणा धारणा करना सो अतिशयरूप तप जानना जाका स्वरूपकूं देखते श्रवण करते बडे बडे शूरवीर कंपायमान हो जाय हैं तातैं भो शक्तिकूं प्रगटकरनेवाले हो जो संसारके बंधनसे छूट्या चाहो हो तो जिनेश्वरसंबंधी दीक्षा धारण करो जातैं अङ्गका सुखियापणा नष्ट होय उपसर्गपरीषह सहनेमें कायरताका अभाव होय सो तप है। जातैं स्वर्गलोककी रंभा अर तिलोत्तमा हू अपने हावभाव विलासविभ्रमादिककरि मनकूं कामका विकारसहित नाहीं कर-

सकै ऐसा कामकूं नष्ट करै सो तप है। जो दोय प्रकारके परिग्रह में इच्छाका अभाव हो जाय सो तप है जो इन्द्रियनिके विषयनिमें प्रवर्तनेका अभाव होजाय सो तप है, तप तो वही है जो निर्जन-वन अर पर्वतनिका भयंकर गुफा जहां भूतराक्षसादिकनिके अनेक विकार प्रवर्तै अर सिंहव्याघ्रादिकनिके भयङ्कर प्रचार होय रहे अर कोट्यां वृक्षनिकरि अन्धकार होय रह्या अर जहां सर्प अज-गर रीछ चीता इत्यादिक भयङ्कर दुष्टतिर्यचनिका संचार होय रह्या ऐसे महा विषमस्थाननिमें भयरहित हुआ ध्यानस्वाध्यायमें निरा-कुल हुवा तिष्ठै सो तप है। जो आहारका लाभ अलाभमें समभा-वके धारक मीठा खोटा कड़वा कषायला ठंडा तांता सरस नीरस भोजन जलादिकमें लालसारहित संतोषरूप अमृतका पान करते आनन्दमें तिष्ठै सो तप है। जो दुष्टदेव, दुष्टमनुष्य, दुष्टतिर्यंच-निकरि किये घोर उपसर्गनिकूं आवतें कायरता छांडि कंपायमान नाहीं होना सो तप है जातैं चिरकालका संचय किया कर्म निर्जरै सो तप है बहुरि जो कुवचन कहनेवाले निंद्यदोष लगावनेवाले ताडन मारन अग्निमें ज्वालनादि उपद्रव करनेवालेमें द्वेषबुद्धिकरि कलुषपरिणाम नाहीं करना, अर स्तुतिपूजनादि करनेवालेमें राग भावका नाहीं उपजनां सो तप है। बहुरि पंचमहाव्रतनिका अर पंचसमितिका पालन अर पंचइन्द्रियनिका निरोध करना अर छह आवश्यक समयका समय करना, अपने मस्तकके डाढीमूछके केशनिकूं अपने हस्ततैं उपवासका दिनमें उपाडनो, दोय महीना पूर्ण भए उत्कृष्ट लोंच है मध्यम तीनमहीने गये लोंच करै जघन्य चारमहीने गएं लोंच करै है सो लोंचकरना हू तप है अन्य मेपी-

निकी ज्यों रोजीना केश नाहीं उपाडै है, शीतकाल ग्रीष्मकाल वर्षा कालमें नग्न रहना अर स्नानका नाहीं करना अर भूमिशयनकरि अल्पकाल निद्रा लेना दन्तनिकूं अंगुलिकरि हू नाहीं धोवना अर एकवार भोजन खडा भोजन,रसनीरस स्वादकूं छांडि भोजन करै ऐसे अट्ठाईस मूलगुण अखंड सो बड़ा तप है इन मूलगुणनिके प्रभावतै घातियाकर्मनिका नाशकरि केवलज्ञानकूं प्राप्त होय मुक्त हो जाय है। यातैं भो ज्ञानीजन हो धर्मको अंग यो तप है याकी निर्विघ्न प्राप्तिके अर्थि याहीका स्तवनपूजनादिककरि याका महाअर्घ उतारण करो। यातैं दूरि अर अत्यन्तपरोक्ष हू मोक्ष तुम्हारे अतिनिकटताकूं प्राप्त होय है ऐसैं शक्तितस्त्यागनामा सप्तमी भावनाका वर्णन किया ॥ ७ ॥

साधुसमाधिनामा अष्टमीभावनाकूं कहै हैं। जैसैं भंडारमें लागी हुई अग्निकूं गृहस्थ है सो अपना उपकारक वस्तुका नाश जानि अग्निकूं बुझाइये है; क्योंकि अनेक वस्तुकी रक्षा होना बहुत उपकारक है तैसैं अनेक व्रतशीलादि अनेक गुणनिकरि सहित जो व्रती संयमी तिनके कोऊ कारणतैं विघ्न प्रगट होतैं विघ्नकूं दूरिकरि व्रत शीलकी रक्षा करना सो साधुसमाधि है अथवा गृहस्थके अपने परिणामकूं विगाडनेवाला मरण आ जाय उपसर्ग आ जाय,रोग आ जाय इष्टवियोग हो जाय,अनिष्टसंयोग आ जाय तदि भयकूं नाहीं प्राप्त होना सो साधुसमाधि है। सम्यग्ज्ञानी ऐसा विचार करै हैं हे आत्मन्! तुम अखंड अविनाशी ज्ञानदर्शन स्वभाव हो तुम्हारा मरण नाहीं, जो उपज्या है सो विनशैगा, पर्यायका विनाश है चैतन्य द्रव्यका विनाश नाहीं है

पांच इन्द्रिय, अर मनबल कायबल वचनबल आयुबल अर उस्वास ये दशप्राण हैं इनका नाशकूं मरण कहिये है तुम्हारा ज्ञानदर्शन सुखसत्ता इत्यादिक भावप्राण हैं तिनका कदाचित् नाश नाहीं है तातैं देहका नाशकूं अपना नाश मानना सो मिथ्याज्ञान है।

भो ज्ञानिन्! हजारां कृमिनिकरि भरया हाडमांसमय दुर्गंध विनाशीक देहका नाश होतै तुम्हारे कहा भय है तुम तो अविनाशी ज्ञानमय हो यो मृत्यु है सो बड़ा उपकारी मित्र है जो गल्या सड्या देहमेतैं काढि तुमकूं देवादिकनिका उत्तमदेह धारण करावै है मरण मित्र नाहीं होता तो इस देहमें केते काल वसता अर रोगका अर दुःखनिका भरया देहतैं कौन निकासता अर समाधिमरणादिकरि आत्माका उद्धार कैसैं होता? अर व्रततपसंयमका उत्तम फल मृत्युनाम मित्रका उपकार विना कैसैं पावता अर पापतैं कौन भयभीत होता अर मृत्युरूप कल्पवृक्षविना चारि आराधनाका शरण ग्रहण कराय संसाररूप कर्दमतैं कौन काढता तातैं संसारमें जिनका चित्त आसक्त है अर देहकूं अपना रूप जानै है तिनके मरणका भय है। सम्यग्दृष्टि देहतैं अपना स्वरूपकूं भिन्न जानि भयकूँ प्राप्त नाहीं होय है तिनके साधुसमाधि होय है अर जो मरणके अवसरमें कदाचित् रोग-दुःखादिक आवै हैं सो हू सम्यग्दृष्टिके देहसूं ममत्व छुडावनेके अर्थि हैं अर त्याग संयमादिकके सम्मुख करनेके अर्थि हैं, प्रमाद कूं छुडाय सम्यग्दर्शनादिक चारि आराधनामें दृढ़ताके अर्थि हैं अर ज्ञानी विचारै है जो जन्म धारया है सो अवश्य मरैगा जो कायर होहूंगा तो मरण नाहीं छांडैगा अर धीर होय रहूंगा तो

मरण नाहीं छांडैगा तातैं दुर्गतिका कारण जो कायरतातैं मरण ताकूं धिक्कार होहू । अब ऐसा साहसतैं मरूं जो देह मरि जाय अर मेरा ज्ञानदर्शनस्वरूपका मरण नाहीं होय ऐसैं मरण करना उचित है तातै उत्साहसहित सम्यग्दृष्टिके मरणका भय नाहीं सो साधुसमाधि है ।

बहुरि देवकृत मनुष्यकृत तिर्यंचकृत उपसर्गकूं होते जाकै भय नाहीं होय पूर्वकर्मका उपजाया निर्जरा ही मानै है ताकै साधुसमाधि है । बहुरि रोगका भयकूं नाहीं प्राप्त होय है जातैं ज्ञानी तो अपना देहकूं ही महारोग मानै है जातैं निरन्तर क्षुधातृषादिक घोर रोगकूं उपजावने वाला शरीर है बहुरि यो मनुष्य शरीर है सो वातपित्तकफादिक त्रिदोषमय है असातावेदनीय कर्मके उदयतै त्रिदोषकी घटती बधतीतैं ज्वर कांस स्वास अतिसार उदरशूल शिरशूल नेत्रका विकार वातादिपीडा होते ज्ञानी ऐसा विचार करै है जो यो रोग मेरे उत्पन्न भया है सो याकूं असातावेदनीयकर्मको उदय तो अंतरंग कारण है अर द्रव्य क्षेत्रकालादि बहिरंग कारण हैं सो कर्मके उदयकूं उपशम हुआ रोगका नाश होयगा असाताका प्रबल उदयकूं होते बाह्य औषधादिक ही रोग मेटनेकूं समर्थ नाहीं हैं अर असाताकर्मके हरनेकूं कोऊ देव दानव मंत्र तंत्र औषधादिक समर्थ है नाहीं यातैं अब संक्लेशकूं छांडि समता ग्रहण करना अर बाह्य औषधादिक हैं ते असाताके मन्द उदय होतैं सहकारी कारण हैं असाताका प्रबल उदय होतैं औषधादिक बाह्यकारण रोग मेटनेकूं समर्थ नाहीं हैं ऐसा विचारि असाताकर्मके नाशका कारण परमसमता धारणकरि संक्लेशरहित

होय सहना, कायर नाहीं होना सो ही साधुसमाधि है। वहुरि इष्टका वियोग होतैं अर अनिष्टका संयोग होतैं ज्ञानकी दृढ़तातैं जो भयकूं प्राप्त नाहीं होना सो साधुसमाधि है। पुरुष जन्मजरामरणकरि भयवान है अर सम्यग्दर्शनादि गुणनिकरिसहित है सो पर्यायका अनन्तकालमें आराधनाका शरणसहित अर भय करिरहित देहादिक समस्तपरद्रव्यनिमें ममतारहित हुआ व्रतसंयमसहित समाधिमरणकी वांछा करै है।

इस संसारमें परिभ्रमण करता अनन्तानन्तकाल व्यतीत भया समस्त समागम अनेकवार पाया परन्तु सम्यक्समाधिमरणकूं नाहीं प्राप्त भया हूँ जो समाधिमरण एक वार हू होता तो जन्ममरणका पात्र नाहीं होता संसारपरिभ्रमण करता मैं भवभवमें एक नवीन नवीन देह धारण किये ऐसा कौन देह है जो मैं नाहीं धारण किया अव इस वर्तमान देहमें कहा ममत्व करूं अर मेरे भवभवमे अनेक स्वजन कुटुम्वजनका हू संवंध भया है अव ही स्वजन नाहीं मिले हैं यातैं कौन कौन स्वजनमें राग करूं अर मेरे भवभवमें अनेक वार राजऋद्धि हू उपजी अवमें इस तुच्छ सम्पदामें ममता कहा करूंगा भवभवमें मेरे अनेक माता पिता हू पालना करने वाले हो गये अव ही नाहीं भये हैं। वहुरि मेरे भवभवमें नारीपणा हू भया अर मेरे भवभवमें कामकी तीव्रलम्पटतासहित नपुन्सकपणा हू भया अर मेरे भवभवमें अनेकवार पुरुषपणा हू भया तो हू वेदके अभिमानकरि नष्ट होता फिरया अर भवभवमें अनेक जातिके दुःखकूं प्राप्त भया ऐसा संसारमें कोऊ दुःख नाहीं है जो मैं अनेकवार नाहीं पाया अर ऐसा कोऊ इन्द्रियजनित सुख हू नाहीं

है जो मैं अनेकवार नहीं पाया अर अनेकवार नरकमें नारकी होय असंख्यातकालपर्यंत प्रमाणरहित नानाप्रकारके दुःख भोगे अर अनेक भव तिर्यंचनिके प्राप्त होय असंख्यात अनंतबार जन्मसरण करता अनेकप्रकारके दुःख भोगता वारम्वार परिभ्रमण किया। अनेकवार धर्मवासनारहित मिथ्यादृष्टि मनुष्य हू भया। अर अनेकवार देवलोकनिमें हू प्राप्त भया अर अनेक भवनिमें जिनेन्द्रकूं पूज्या अनेक भवनमें गुरुबन्दना हू करी अनेक भवनिमें मिथ्यादृष्टि हुआ कपटतै आत्मनिंदाहू करी अनेक भवनिमें दुर्द्धर तप हू धारण किया। अनेक भवनिमें भगवानका समवशरण हू में संचार किया अर अनेक भवनिमें श्रुतज्ञानके अङ्गनिका हू पठनपाठनादिक अभ्यास किया तथापि अनन्तकाल भव निवासी ही रह्या यद्यपि जिनेन्द्रकूँ पूजना गुरुनिकी बन्दना तथा आत्मनिंदा करना तथा दुर्द्धर तपश्चरण करना समवशरणमें जावना, श्रुतनिके अङ्गनिका अभ्यास करना इत्यादिक ये कार्य प्रशंसायोग्य हैं, पापका विनाशक हैं, पुण्यका कारण है तो हू सम्यग्दर्शन विना अकृतार्थ हैं। संसारपरिभ्रमणकूं नाहीं रोकि सकें हैं सम्यग्दर्शन विना समस्त क्रिया पुण्यका बन्ध करनेवाली है सम्यग्दर्शन सहित होय तदि संसारको छेद करै। सो ही आत्मानुशासनमें कह्या है—

समबोधवृत्ततपसां पाषाणस्यैव गौरवं पुंसः।
पूज्यं महामणेरिव तदेव सम्यक्त्वसंयुक्तं ॥ १ ॥

अर्थ—पुरुषके समभाव अर ज्ञान अर चारित्र अर तप इनको महानपणो पाषाणका महानपणाके तुल्य है, अर ये ही जे

समबोध चरित्र अर तप जो सम्यक्त्व सहित होंय तो महामणि कीज्यों पूज्य हो जांय।

भावार्थ—जगतमें मणि है सो हू पाषाण है अर अन्य भाभड़ा पत्थर है सो हू पाषाण है परन्तु पाषाण तो मण दोय मण हू बांधि ले जाय वेचै तो हू एक पीसो उपजै तातैं एक दिन हू पेट नाहीं भरै। अर मणि केई रती हू ले जाय वेंचै तो हजारां रुपया उपजै समस्तजन्मका दारिद्र नष्ट होजाय तैसैं समभाव अर शास्त्रनिका ज्ञान अर चारित्रधारण अर घोर तपश्चरण ये सम्यक्त्व विना बहुत काल धारणकरैं तो राज्यसंपदा पावै तथा मन्दकषायके प्रभावतैं देवलोकमें जाय उपजै फिर चयकरि एकइन्द्रियादिक पर्यायनिमें परिभ्रमण करै अर जो सम्यक्त्वसहित होय तो संसारपरिभ्रमणका नाशकरि मुक्त होजाय तातैं सम्यक्त्वविना मिथ्यादृष्टि है सो जिनकूं पूजो वा गुरुवन्दना करो समवसरणमें जावो श्रुतका अभ्यास करो तपकरो तो हू अनन्तकाल संसारवास ही करैगा, इस तीन भवमें सुख दुःखकी समस्त सामग्री यो जीव अनन्तबार पाई कोऊ हू दुर्लभ नाहीं एक साधुसमाधि जो रत्नत्रयका लब्धिकूं निर्विघ्न परलोकताईं लेजानाहै सो रत्नत्रयसहित हुआ देहकूं छांड़ै है तिनके साधुसमाधि होय ताका पावना ही दुर्लभ है साधुसमाधि है सो चतुर्गतिनिमें परिभ्रमणके दुःखका अभावकरि निश्चल स्वाधीन अनन्त सुखकूं प्राप्त करै है। जो पुरुष साधुसमाधि भावनाकूं निर्विघ्न प्राप्त होनेके अर्थि इस भावनाकूं भावता याका महान अर्घ उतारण करै है सो ही शीघ्र संसारसमुद्रकूं तिरि अष्टगुणनिका धारक सिद्ध होय है ऐसैं साधु-

समाधिनामा अष्टमी भावना वर्णन करी ॥८॥

अब वैयावृत्तिनामा नवमी भावना वर्णन करिये है। कौठा अर उदरकी व्यथा जो आमवात, संग्रहणी, कठोदर, सफोदर, नेत्र-शूल, कर्णशूल, शिरःशूल, दन्तशूल, तथा ज्वर, कास, स्वास, जरा इत्यादिक रोगनिकरि पीडित जे मुनि तथा श्रावक तिनकूं निर्दोष आहार औषधि वस्तिकादिक करि सेवा करना, तिनकी शुश्रूषा करना, विनय करना, आदर करना, दुःख दूरि करनेमें यत्न करना, सो समस्त वैयावृत्त्य है। जे तपकरि तप्त होंय अर रोग करि युक्त जिनका शरीर होय तिनके वेदना देखकर तिनके अर्थि प्रासुक औषधि तथा पथ्यादिककरि रोगका उपशम करना, सो नवम वैयावृत्त्य नाम गुण है। वैयावृत्त्य मुनीश्वरनिके दशभेद करि दश प्रकार है। आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु, मनोज्ञ इन दश प्रकारके मुनीश्वरनिके परस्पर वैयावृत्त्य होय है, कायकी चेष्टा करि वा अन्य द्रव्यकरि दुःखवेदनादिक दूर करनेमे व्यापार करिये, प्रवर्तन करिये सो वैयावृत्त्य है। इन दश प्रकारके मुनिनिका ऐसा स्वरूप जानना जिनतैं स्वर्ग मोक्षके सुखके बीज जे व्रत तिननैं आदरसहित ग्रहण करिकै भव्यजीव अपने हितके अर्थि आचरण किये ते सम्यग्ज्ञानादि गुणनिके धारक आचार्य हैं।

भावार्थ—जिनतैं मोक्षके स्वर्गके साधक व्रत आचरण करिये ते आचार्य हैं। जिनका समीपकूं प्राप्त होय आगमकूं अध्ययन करिये ते व्रत शीलश्रुतके आधार ऐसे उपाध्याय हैं। महान् अन-शनादितपमें तिष्ठैं ते तपस्वी हैं, जे श्रुतके शिक्षणमें तत्पर निरन्तर

व्रतनिकी भावनामें तत्पर ते शैक्ष्य हैं। रोगादिककरि जाका शरीर क्लेशित होय सो ग्लान है, वृद्धमुनिनकी परिपाटीका होय सो गण है, आपकूं दीक्षा देनेवाला आचार्यका शिष्य होय सो कुल है। च्यारि प्रकारके मुनिकासमूह सो संघ है, चिरकालका दीक्षित होय सो साधु है जो पण्डितपणाकरि वक्तापणाकरि ऊंचे कुलकरि लोकनिमें मान्य होय धर्मका गुरु कुलका गौरवपणाका उत्पन्न करने वाला होय सो मनोज्ञ है। अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि हू संसार का अभावरूपपणातें मनोज्ञ है इन दश प्रकारकेमुनिनकै रोग आजाय परीषहनिकरि खेदित होय तथा श्रद्धानादि बिगडि मिथ्यात्वादिक प्राप्त होय जाय तो प्रासुक औषधि भोजनपान योग्यस्थान आसन काष्ठफलक तृणादिकनिका संस्तरादिकनिकरि अर पुस्तक पीछिकादिक धर्मोपकरणकरि जो प्रतिकार उपकार करिये तथा सम्यक्त्वमे फेरि स्थापन करिये इत्यादि उपकार सो वैयावृत्त्य है। अर जो बाह्य भोजनपान औषधादिक नाहीं सम्भवते होंय तो अपने कायकरके कफ तथा नाशिकामल मूत्रादिक दूरि करनेकरि तथा उनके अनुकूल आचरण करनेकरि वैयावृत्त्य होय है इस वैयावृत्त्य में सयमका स्थापन ग्लानिको अभाव अर प्रवचनमें वात्सल्यपणो अर सनाथपणो इत्यादि अनेक गुण प्रगट होय हैं। वैयावृत्त्य ही परम धर्म है। वैयवृत्त्य नाहीं होय तो मोक्षमार्ग बिगडि जाय। आचार्यादिक हैं ते शिष्य मुनि तथा रोगी इत्यादिकका वैयावृत्त्य करनेतैं बहुत विशुद्धता उच्चताकूं प्राप्त होय हैं। ऐसे ही श्रावकादिक मुनिका वैयावृत्त्य करै तथा श्रावक श्राविका करैं। औषधिदानकरि वैयावृत्त्य करैं। अर भक्तिपूर्वक युक्तिकरि देहका आधार

आहारदानकरि वैयावृत्य करै अर कर्मके उदयतै दोष लगि गया होय ताका ढांकना तथा श्रद्धानसूं चलायमान भया होय ताकूं सम्यग्दर्शन ग्रहण करावना तथा जिनेंद्रके मार्गसूं चलि गया होय ताकूं मार्गमें स्थापन करना इत्यादिक उपकारकरि वैयावृत्य है। बहुरि जो आचार्यादि गुरु शिष्यकूं श्रुतका अंग पढावै तथा व्रत संयमादिककी शुद्धिको उपदेश करै सो शिष्यका वैयावृत्य है अर शिष्यहू गुरुनिकी आज्ञाप्रमाण प्रवर्तता गुरुनिका चरणनिका सेवन करै सो आचार्यका वैयावृत्य है बहुरि अपना चैतन्यस्वरूप आत्माकूं रागद्वेषादिक दोषनकरि लिप्त नाहीं होने देना सो अपने आत्माका वैयावृत्य है तथा अपने आत्माकूं भगवान्के परमागममें लगायदेना तथा दशलक्षणरूप धर्ममें लीन होना सो आत्मवैयावृत्य है। तथा काम क्रोध लोभादिकके अर्थ अर इंद्रियनिके विषयनिके आधीन नाहीं होना सो अपना आत्माका वैयावृत्य है। बहुरि इहां औरहू विशेष जानना जो रोगी मुनिका तथा गुरुनिका प्रातःकाल अर अथणने शयन आसन कमंडलु पीछी पुस्तक नेत्रनिसूं देखि मयूरपिच्छिकातैं शोधना तथा अशक्त रोगीमुनिका आहार औषधकरि संयमके योग्य उपचार करना तथा शुद्ध ग्रंथके वाचनेकरि, धर्मका उपदेशकरि परिणामकूं धर्ममें लीन करना तथा उठावना बैठावना मलमूत्र करावना कलोट लिवाना इत्यादिककरि वैयावृत्य करै तथा कोऊ साधु मार्गकरि खेदित होय तथा भील म्लेच्छ दुष्टराजा दुष्टतिर्यंचनिकरि उपद्रवरूप हुआ होय दुर्भिक्ष मारी व्याधि इत्यादिक उपद्रवकरि पीडा होनेतैं परिणाम कायर भया होय ताकूं स्थान देय कुशल

पूछिकरि आदरकरि सिद्धान्ततैं शिक्षाकरि स्थितीकरण करना सो वैयावृत्त्य है।

बहुरि जो समर्थ होय करकेहू अपना बलवीर्यकूं छिपाय वैयावृत्य नाहीं करै है सो धर्मरहित है। तीर्थंकरनिकी आज्ञा भङ्ग करी श्रुतकरि उपदेश्या धर्मकी विराधना करी आचार बिगाड्या प्रभावना नष्ट करी धर्मात्माकी आपदाहूमें उपकार नाहीं किया तदि धर्मतैं पराङ्मुख भया अर जाके ऐसा परिणाम होय जो अहो मोह अग्निकरि दग्ध होता जगतमे एक दिगम्बर मुनि ज्ञान-रूप जलकरि मोहरूप अग्निकूं बुझाय आत्मकल्याणकूं करै है धन्य हैं, जे कामकूं मारि रागद्वेषका परिहारकरि इन्द्रियनिकूं जीत आत्माके हितमें उद्यमी भए हैं ये लोकोत्तर गुणनिके धारक हैं मेरे ऐसे गुणवंतनिका चरणनिका ही शरण होहू ऐसे गुणनिमें परिणाम वैयावृत्यतैं ही होय हैं अर जैसे जैसे गुणनिमें परिणाम बधै तैसैंतैसैं श्रद्धान बधै है श्रद्धान बधै तदि धर्ममें प्रीति बधै अर धर्ममें प्रीति बधै तदि धर्मके नायक अरहंतादिक पंच परमेष्ठीके गुणनिमें अनुरागरूप भक्ति बधै है कैसीक भक्ति होय है जो माया-चार रहित, मिथ्याज्ञानरहित, भोगनिकी वांछारहित अर मेरुकी ज्यों निष्कंप अचल ऐसी जिनभक्ति जाकै होय ताके संसारके परिभ्रमणका भय नाहीं रहै है सो भक्ति धर्मात्माकी वैयावृत्यतैं होय है। बहुरि पंच महाव्रतनिकरि युक्त अर कषाय करि रहित रागद्वेषका जीतनेवाला श्रुतज्ञानरूप रत्ननिका निधान ऐसा पात्रका लाभ वैयावृत्य करनेवालेके होय है जो रत्नत्रयधारीका वैयावृत्य किया सो रत्नत्रयसूं अपना जोड वांधि आपकूं अर अन्यकूं मोक्षमार्गमें स्थापै है। बहुरि वैयावृत्य अन्तरंग बहिरंग दोऊ

तपनिमें प्रधान कर्मकी निर्जराका प्रधान कारण है जो आचार्यको वैयावृत्य कीयो सो समस्त संघको सर्व धर्मको वैयावृत्य कीयो भगवानकी आज्ञा पाली अर आपके अर परके संयमकी रक्षा शुभध्यानकी वृद्धि अर इन्द्रियनिका निग्रह किया रत्नत्रयकी रक्षा अर अतिशयरूप दान दीया निर्विचिकित्सा गुणकूं प्रगट दिखाया जिनेन्द्रधर्मकी प्रभावना करी, धन खरच देना सुलभ है रोगीकी टहल करना दुर्लभ है अन्यका औगुण ढाकना, गुण प्रकट करना इत्यादिक गुणनिके प्रभावतैं तीर्थंकर नाम प्रकृतिका बन्ध करै है यो वैयावृत्य जगतमें उत्तम ऐसी जिनेन्द्रकी शिक्षा है जो कोऊ श्रावक वा साधु वैयावृत्य करै है सो सर्वोत्कृष्ट निर्वाणकूं पावै है। बहुरि जो अपना सामर्थ्यप्रमाण छः कायकी जीवनिकी रक्षामें सावधान है ताके समस्त प्राणीनिका वैयावृत्य होय है ऐसे वैयावृत्य नाम नवमी भावना वर्णन करी ॥ ९ ॥

अब अरहन्तभक्ति नाम दशमीभावना वर्णन करै हैं। जो मनवचनकाय करिकैं जिन ऐसे दोय अक्षर सदाकाल स्मरण करै है सो अरहन्तभक्ति है।

भावार्थ—अरहन्तके गुणनिमें अनुराग सो अरहंतभक्ति है जो पूर्वजन्ममें षोडशकारण भावना भाई है सो तीर्थंकर होय अरहन्त होय है ताकै तो षोडशकारण नाम भावनातैं उपजाया अद्भुतपुण्य ताके प्रभावतैं गर्भमें आवनेके छह महीने पहली इन्द्रकी आज्ञातैं कुवेर है सो बारहयोजन लम्बी, नवयोजन चौड़ी, रत्नमय नगरी रचै है तिसकै मध्य राजाके रहनेका महलनिका वर्णन अर

नगरीकी रचना अर वड़े द्वार अर कोटखाई पडकोटो इत्यादिक रत्न मई जो कुवेर रचै है ताकी महिमा तो कोऊ हजार जिह्वानिकरि वर्णन करनेकूं समर्थ नाहीं है तहां तीर्थंकरकी माताका गर्भका शोधना अर रुचकद्वीपादिकमे निवास करनेवाली छप्पन कुमारिका देवी माताकी नाना प्रकारकी सेवा करनेमें सावधान होय हैं अर गर्भके आवनेके छह महिना पहली प्रभात मध्याह्न अर अपराह्न एक-एक कालमें आकाशतैं साढा तीनकोटि रत्ननिकी वर्षा कुवेर करै है अर पाछैं गर्भमें आवतैं ही इन्द्रादिक च्यारि निकायके देवनिका आसन कम्पायमान होनेतैं च्यारिप्रकारके देव आय नगर की प्रदक्षिणा देय मातापिताकी पूजा सत्कारादिकरि अपने स्थान जाय हैं अर भगवान तीर्थंकर स्फटिकमणिका पिटारासमान मलादिरहित माताका गर्भमें तिष्ठै हैं अर कमलवासिनी छहदेवी अर छप्पन रुचिकद्वीपमें वसनेवालीं अर और अनेक देवी माता की सेवा करै हैं अर नवमहीना पूर्ण होतैं उचित अवसरमें जन्म होते ही च्यारों निकायके देवनिका आसन कम्पायमान होना अर वादित्रनिका अकस्मात् वाजनेतैं जिनेन्द्रका जन्म जानि बड़ा हर्ष तैं सौधर्म नामा इंद्र लक्षयोजन प्रमाण ऐरावत हस्ती ऊपरि चढि अपना सौधर्म स्वर्गका इकतीसमा पटलमें अठारमां श्रेणीवद्ध नाम विमानतैं असंख्यातदेव अपने परिकरनिकरि सहित साढा बाराकोडिजातिका वादित्रनिकी मिष्टध्वनि अर असंख्यात देवनिका जयजयकार शब्द अर अनेक ध्वजा अर उत्सवसामिग्री अर कोट्यां अप्सरानिका नृत्यादिक उत्सव अर कोट्यां गंधर्वदेवनिका गावने करि सहित असंख्यातयोजन ऊंचा इहांतैं इंद्रका रहनेका पटल अर

असंख्यातयोजन तिर्यक् दक्षिणदिशामें है तहां ते जंबूद्वीपपर्यंत असंख्यातयोजन उत्सव करते आय नगरकी प्रदक्षिणा देय इन्द्राणी प्रसूतिगृहमें जाय माताकूं मायानिद्राके वशिकरि वियोग के दुःखके भयतैं अपनी देवत्वशक्तितै तहां बालक और रचि तीर्थंकरकूं बड़ी भक्तितैं ल्याय इन्द्रकूं सौंपे है तिसकालमें देखतां इन्द्र तृप्तताकूं नाहीं प्राप्त होता हजार नेत्र रचिकरि देखै है फिर तहां ईशानादिक स्वर्गनिके इन्द्र अर भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषीनिके इन्द्रादिक असंख्यातदेव अपनी अपनी सेना वाहन परिवार सहित आवै है तहां सौधर्म इन्द्र ऐरावत हस्ती ऊपरि चढ्या भगवानकूं गोदमे लेय चालै, तहां ईशानइन्द्र छत्र धारण करै अर सनत्कुमार महेंद्र चमर ढारते अन्य असख्यातदेव अपने-अपने-नियोगमें सावधान बड़ा उत्सवतै मेरुगिरिका पांडुकवनमें पांडुकशिला ऊपरि अकृत्रिम सिंहासन है तिसऊपरि जिनेन्द्रकूं पधराय अर पांडुकवनतैं क्षीरसमुद्र पर्यंत दोऊ तरफ देवोंकी पंकति बंध जाय है सो क्षीरसमुद्र मेरुकी भूतितैं पांचकोड दश-लाख साढा गुणचासहजार योजन परै है तिस अवसरमे मेरुकी चूलिकातै दोऊ तरफ मुकुट कुण्डल हार कंकणादि अद्भुत रत्ननिके आभरण पहरैं देवनिकी पंक्ति मेरुकी चूलिकातै क्षीरसमुद्र पर्यंत श्रेणी बंधै हैं अर हाथूंहाथ कलश सौंपै हैं तहां दोऊ तरफ इन्द्रके खड़े रहनेके अन्य दोय छोटे सिंहासनऊपरि सौधर्म ईशान इन्द्र कलश लेय अभिषेक एकहजार आठ कलशनिकरि करै है तिन कलशनिका मुख एकयोजनका, उदर चारियोजन चौड़ा, आठ योजन ऊंचा तिन कलशनितैं निकसी धारा भगवानके वज्रमय

शरीर ऊपरि पुष्पनिकी वर्षा समान बाधा नाहीं करै है अर पाछै इंद्राणी कोमलवस्त्रतैं पूंछ अपना जन्मकूं कृतार्थ मानती स्वर्गतैं ल्याये रतनमय समस्त आभरण वस्त्र पहरावैं हैं। तहां अनेकदेव अनेक उत्सव विस्तारे हैं तिनकूं लिखनेकूं कोऊ समर्थ नाहीं फिर मेरुगिरतैं पूर्ववत् उत्सव करते जिनेन्द्रकूं ल्याय माताकूं समर्पण करि इंद्र वहां तांडवनृत्यादिक जो उत्सव करै है तिन समस्त उत्सवनिकूं कोऊ असंख्यातकालपर्यंत कोटि जिह्वानिकरि वर्णन करनेकूं समर्थ नाहीं है। जिनेन्द्र जन्मतैं ही तीर्थंकर प्रकृतिके उदयके प्रभावतैं दश अतिशय जन्मतैं लिये ही उपजैं। हैं पसेवरहित शरीर होय, मल मूत्र कफादिकरहितपना, अर शरीरमें दुग्धवर्ण रुधिर, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रऋषभनाराच संहनन, अद्भुत अप्रमाणरूप, महासुगंधशरीर, अप्रमाणबल, एक हजार आठ लक्षण, प्रियहितमधुरवचन ये समस्त पूर्वजन्ममें षोडशकारण भावना भाई ताका प्रभाव है बहुरि इन्द्र अंगुष्ठमें स्थाप्या अमृत ताकूं पान करता माताका स्तनमें उपज्या दुग्धपान नाहीं करै हैं फिर अपनी अवस्थाके समान बने देवकुमारनिमें क्रीडा करते वृद्धिकूं प्राप्त होय हैं अर स्वर्गलोकतैं आये आभरण वस्त्र भोजनादिक मनोवांछित देव लीयैं सासता रात्रिदिन हाजिर रहैं हैं पृथ्वीलोकका भोजन आभरण वस्त्रादिक नाहीं अंगीकार करैं हैं स्वर्गतैं आये ही भोगैं हैं। बहुरि कुमारकाल व्यतीत करि इंद्रादिकनिकरि कीये अद्भुत उत्साह करि भक्तिपूर्वक पिताकरि समर्पण कीया राज्य भोगि अवसर पाय संसार देह भोगनितैं विरागता उपजै तदि अनित्यादिक बारह भावना भावतेही लौकां-

तिकदेव आय वंदना स्तवनरूप सम्बोधनादिक करैं हैं अर जिनेंद्रका विराग भाव होतेही चारिनिकायके इंद्रादिकदेव अपने आसन कम्पायमान होनेतैं जिनेन्द्रके तपका अवसर अवधिज्ञानतैं जानि वडे उत्सवतैं आय अभिषेककरि देवलोकके वस्त्राभरणतैं भक्तितैं भूषित करि, रत्नमयी पालकी रचि, जिनेन्द्रकूं चढाय अप्रमाण उत्सव अर जयजयकार शब्दसहित तपके योग्य वनमें जाय उतारैं तहां वस्त्र आभरण समस्त त्यागै देव अधर झेलि मस्तक चढ़ावै अर पंचमुष्टी लोंच सिद्धनिकूं नमस्कारकरि करैं तदि केशनिकूं महा उत्तम जाणि इंद्र रत्नके पात्रमे धारणकरि क्षीर-समुद्रमें बड़ी भक्तितैं क्षेपै है जिनेंद्र केतेक कालमें तपके प्रभावतैं शुक्लध्यानके प्रभावतैं क्षपकश्रेणीमें घातियाकर्मनिका नाश करि केवलज्ञानकूं उत्पन्न करैं हैं तदि अरहन्तपना प्रगट होय है तदि केवलज्ञान रूप नेत्रकरि भूत भविष्यत् वर्तमान त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्यनिकी अनन्तानन्त परणतिसहित अनुक्रमतैं एकसमय में युगपत् समस्तकूं जानै हैं देखै हैं। तदि च्यारिनिकायके देव ज्ञानकल्याणकी पूजा स्तवन करि भगवानका उपदेशके अर्थि समवसरण अनेक रत्नमय रचैं हैं तिस समवसरणकी विभूतिका वर्णन कौन कर सकै? पृथ्वीतैं पांच हजार धनुष ऊंचा जाके बीस हजार पैडी तीऊपरि इंद्रनीलमणिमय गोल भूमि बारह योजन प्रमाण तिसऊपरि अप्रमाणमहिमासहित समवसरण रचना है। जहां समवसरण रचना होय है अर भगवानका विहार होय है तहां अन्धेनिकूं दीखने लगि जाय बहरे श्रवण करने लगि जांय लूले चालने लगि जांय हैं गूंगे बोलने लगि जांय हैं वीतराग

की, अद्भुत महिमा है जाके धूलिशालादिक रत्नमय कोट मान-स्तंभ अर बावड्यां अर जलकी खातिका अर पुष्पवाड़ी, फिर रत्न-मय कोट दरवाजे नाट्यशाला उपवन वेदी भूमि फिर कोट फिर कल्पवृक्षनिका वन रत्नमयस्तूप फिर महलनिकी भूमि फिर स्फटि-कका कोटमे देवच्छद नाम एक योजनका मंडप सर्व तरफ द्वादश सभा तिनकरि सेवित रत्नमय तीन कटनी गंधकुटीमें सिंहासन ऊपरि च्यारि अंगुल अंतरीक्ष विराजमान भगवान अरहंत हैं जिनकी अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंतवीर्य अनंतसुखमयी अंतरंग विभूतिकी महिमा कहनेकूं च्यारिज्ञानके धारक गणधर समर्थ नाहीं अन्य कौन कहि सकै अर समवसरणकी विभूति ही वचन के अगोचर है अर गंधकुटी तीसरा कटणी ऊपरि है तहां चउ-सठि चमर बत्तीस युगल देवनिके मुकुट कुंडल हार कडा भुजबं-धादिक समस्त आभरण पहिरे ढालि रहैं हैं तीन छत्र अद्भुत कांतिके धारक जिनकी कांतितैं सूर्य चन्द्रमा मंदज्योति भासैं हैं अर जिनकी देहका प्रभामंडलको चक्र बंध रह्या जाकरि समवसरणमें रात्रिदिनको भेद नाहीं रहै है सदा दिवस ही प्रवर्तै है अर महा-सुगंध त्रैलोक्यमे ऐसा सुगंध और नाहीं ऐसी गंधकुटीके ऊपर देवनिकरि रच्या अशोकवृक्षकूं देखते ही समस्तलोकनिका शोक नष्ट होय जाय है अर कल्पवृक्षनिके पुष्पनिकी वर्षा आकाशतें होय है अर आकाशमें साढाबाराकोटि जातिके वादित्रनिकी ऐसी मधुर ध्वनि होय है जिनके श्रवणमात्रतैं क्षुधातृषादिक समस्तरोग वेदना नष्ट हो जाय है अर रत्नजडित सिंहासन सूर्यकी कांतिकूं जीतै है।

बहुरि जिनेन्द्रकी दिव्यध्वनिकी अद्भुत महिमा त्रैलोक्य-

वर्ती जीवनिकै परम उपकार करनेवाली मोहअंधकारका नाश करै है अर समस्त जीव अपनी अपनी भाषामें शब्द अर्थ ग्रहण करै है अर समस्तजीवनिके संशय नाहीं रहै है स्वर्गमोक्षका मार्ग कूं प्रगट करै है दिव्यध्वनिकी महिमा वचन द्वारा गणधर इन्द्रादिक कहनेकूं समर्थ नाहीं हैं जिनके समवसरणमें जातिविरोधी जीवनिकै वैर विरोध नाहीं रहै है समवसरणमें सिह अर गज, व्याघ्र अर गौ, मार्जारी अर हंस इत्यादिक जातिविरोधी जीव वैरबुद्धि छोडि परस्पर मित्रताकूं प्राप्त होय हैं। वीतरागताकी अद्भुत महिमा है जिनके असंख्यात देव जयजयकार शब्द करै हैं जिनके निकटताकूं पायकरिकै देवनकरि रचे कलश झारी दर्पण ध्वजा ठोंणो छत्र चमर बीजणा ये अचेतन द्रव्यहू लोकमें मंगलताकूं प्राप्त होय हैं। अर केवलज्ञान उत्पन्न भये पीछै दश अतिशय प्रगट होय हैं चारों तरफ सौ सौ योजन सुभिक्षता, अर आकाशगमन, भूमिका स्पर्श नाहीं करै, अर कोऊ प्राणीका वध नाहीं होय, अर भोजनका अभाव अर उपसर्गका अभाव, अर चतुर्मुख दीखै, अर समस्त विद्याका ईश्वरपना, छायारहितपणा अर नेत्र टिमकारै नाहीं, अर केश नख बधैं नाहीं ये दश अतिशय घातियाकर्मका नाशतैं स्वयं प्रगट होय हैं। अर तीर्थंकर प्रकृतिका प्रभावतैं चौदह अतिशय देवनिकरि किये होय हैं। अर्द्धमागधी भाषा, समस्त जनसमूहमें मैत्रीभाव, समस्त ऋतुके फूल फल पत्रादिकसहित वृक्ष होय हैं, पृथ्वी दर्पणसमान रत्नमयी तृण-कंटक-रज-रहित होय है, शीतल मंद सुगंध पवन चलै है, समस्त जनोंके आनन्द प्रगट होय है, अनुकूल पवन सुगंध जलकी वृष्टि-

करि भूमि रजरहित होय है चरण धरै तहां सात आगे सात पाछै एक बीच ऐसे पंद्रा पंद्राकरि दोयसे पच्चीस कमल देव रचैं हैं, आकाश निर्मल, दिशा निर्मल, च्यार निकायके देवनिकरि जयजय शब्द, एक हजार आरांकरिसहित किरणनिका धारक अपना उद्योतकरि सूर्यमंडलकूं तिरस्कार करता धर्मचक्र आगे चालै, अष्ट मगलद्रव्य ये चौदह देवकृत अतिशय प्रगट होय हैं। क्षुधा तृषा जन्म जरा मरण रोग शोक भय विस्मय राग द्वेष मोह अरति चिंता स्वेद खेद मद निद्रा इन अष्टादश दोषनिकरि रहित अरहंत तिनको वंदना स्तवन ध्यान करो। या अरहंतभक्ति ससारसमुद्रका तारनेवाली निरन्तर चिंतवन करो। सुखका करनेवाला अरहंत ताका स्तवन करो याका गुणनिके आश्रय तो अनन्त नाम हैं। अर भक्तिका भरया इन्द्र भगवान्का एक हजारआठ नामकरि स्तवन किया है अर जे अल्पसामर्थ्यके धारक है ते हू अपनी शक्तिप्रमाण पूजन स्तवन नमस्कार ध्यान करो अरहंतभक्ति संसा-रसमुद्रको तारनेवाली है सम्यग्दर्शनमें अरहंतभक्तिमे नामभेद है अर अर्थभेद नाहीं है। अरहंतभक्ति नरकादिगतिकूं हरनेवाली है या भक्तिको पूजन स्तवनकरि अर्घ उतार करैं हैं सो देवांका सुख फिर मनुष्यका सुख भोगि अविनाशी सुखका धारक अक्षय अवि-नाशीसुखकूं प्राप्त होय हैं ऐसे अरहंतभक्ति नाम दशमी भावना वर्णन करी ॥ १० ॥

अब आचार्यभक्ति नाम ग्यारमीभावना वर्णन करै हैं सोही गुरुभक्ति है धन्यभाग जिनका होय तिनके वीतराग गुरुनिके गुण-निमें अनुराग होय है धन्यपुरुषनिके मस्तकऊपरि गुरुनिकी आज्ञा

प्रवर्तै है आचार्य है सो अनेकगुणनिकी खानि है श्रेष्ठतपका धारक हैं यातैं इनका गुण मनविषै धारणकरि पूजिये अर्घ उतारण करिए पुष्पांजलि अग्रभागमे क्षेपिए जो मेरे ऐसे गुरुनिका चरण-निका शरण ही होहू कैसेक हैं आचार्य जिनके अनशनादिक बारह प्रकारका उज्वल तपनिमे तिरन्तर उद्यम है अर छह आवश्यक क्रियामें सावधान हैं अर पंचाचारके धारक हैं अर दशलक्षणधर्म रूप है परणति जिनकी अर मनवचनकायकी गुप्तिकरि सहित हैं ऐसे छत्तीसगुणनिकरि युक्त आचार्य होय है अर सम्यग्दर्शनाचा-रकूं निर्दोष धारै है अर सम्यग्ज्ञानकी शुद्धताकरि युक्त हैं अर त्रयोदशप्रकार चारित्रकी शुद्धताके धारक अर तपश्चरणमे उत्सा-हयुक्त अर अपने वीर्यकूं नाहीं छिपावते बाईसपरीषहनिके जीतनेमें समर्थ ऐसे निरन्तर पंच आचारके धारक हैं अंतरंग बहिरंग ग्रंथकरि रहित, निर्ग्रंथ मार्गके गमन करनेमें तत्पर हैं अर उपवास बेला तेला पंचोपवास पक्षोपवास मासोपवास करने में तत्पर हैं अर निर्जनवनमें अर पर्वतनिके दराडे अर गुफानिके स्थानमें निश्चल शुभध्यानमे निरन्तर मनकूं धारै हैं अर शिष्यनि की योग्यताकूं आछी रीतिसूं जानि दीक्षा देनेमें अर शिक्षाकरनेमें निपुण है अर युक्तितैं नव प्रकार नयके जाननेवाले हैं अर अपनी कायसूं ममत्व छांडि रात्रिदिन तिष्ठै हैं संसारकूपमें पतन हो जानेतैं भयवान हैं मनवचनकायकी शुद्धतायुक्त नासिकाका अग्रमें स्थापित किये हैं नेत्रयुगल जिनूंने ऐसे आचार्यकूं समस्त अंगनिकूं पृथ्वीमे नमाय मस्तकधारि बंदना करिये तिनआचार्यनिका चरणनिकरि स्पर्श भई पवित्र रजकूं अष्टद्रव्यनि करि पूजिए सो

संसारपरिभ्रमणका क्लेश पीडाकूं नष्ट करनेवाली आचार्यभक्ति है

अब यहां ऐसा विशेष जानना जो आचार्य हैं सो समस्तधर्मके नायक हैं आचार्यनिके आधार समस्त धर्म है यातैं एते गुणनिके धारक ही आचार्य होय बड़ा राजानिका वा राजाके मन्त्रीनिका वा महान श्रेष्ठीनिका कुलमें उपज्या होय अर जाके स्वरूपकूं देखते ही शांतपरिणाम हो जांय ऐसा मोहरूपका धारक होय जिनका उच्च आचार जगतमें प्रसिद्ध होय, पूर्वैं गृहचारामें भी कदे हीणआचार निंद्यव्यवहार नाहीं किया होय अर वर्तमान भोग-संपदा छांडि विरक्तताकूं प्राप्त भया होय अर लौकिक व्यवहार अर परमार्थके ज्ञाता होय अर बुद्धिकी प्रबलता अर तपकी प्रबलता का धारक होय अर संघके अन्य मुनीश्वरनितैं ऐसा तप नाहीं बनि सकै तैसा तपका धारक होय, बहुत कालका दीक्षित होय, बहुत काल गुरुनिका चरणसेवन किया होय, वचनका अतिशय-सहित होय जिनका वचन श्रवण करतैं ही धर्ममें दृढता अर संशयका अभाव अर संसार देहभोगनितैं विरागता जाकै निश्चल होय सिद्धांतसूत्रके अर्थका पारगामी होय इन्द्रियनिका दमनकरि इसलोक परलोकसम्बन्धी भोगविलासरहित देहादिकमे निर्ममत्व होय, महाधीर होय, उपसर्गपरीषहनिकरि कदाचित् जाका चित्त चलायमान नाहीं होय, जो आचार्य ही चलि जाय तो सकलसंघ भ्रष्ट होजाय धर्मका लोप होजाय, स्वमत परमतका ज्ञाता होय, अनेकान्तविद्यामे क्रीडा करनेवाला होय, अन्यके प्रश्नादिकतैं कायरतारहित तत्काल उत्तर देनेवाला होय एकान्तपक्षकूं खंडन करि सत्यार्थधर्मकूं स्थापन करनेका जाका सामर्थ्य होय धर्मकी

प्रभावना करनेमें उद्यमी होय गुरुनिके निकट प्रायश्चित्तादिकसूत्र पढ़ि छत्तीस गुणनिका धारक होय है सो समस्त संघकी साखिसूं गुरुनिकरि दिया आचार्य पद प्राप्त होय। एते गुणनिका धारक होय तिसहीकूं आचार्यपना होय है। एते गुणनि बिना आचार्य होय तो धर्म तीर्थका लोप होजाय उन्मार्गकी प्रवृत्ति होजाय समस्तसंघ स्वेच्छाचारी होजाय सूत्रकी परिपाटी अर आचारकी परिपाटी टूटि जाय। बहुरि आचार्यपना के अन्य अष्ट गुण हैं तिनका धारक होय। आचारवान, आधारवान, व्यवहारवान, प्रकति, अपायोपायविदर्शी, अवपीडक, अपरिस्रावी, निर्यापक ए आठ गुण हैं। तिनमें पंचप्रकारका आचार धारण करै ताकूं आचारवान कहिये जीवादिकतत्त्व भगवान सर्वज्ञ वीतराग दिव्य निरावरणज्ञानकरि प्रत्यक्ष देखि कह्या तिनमें श्रद्धानरूप परिणति सो दर्शनाचार है। स्वपरतत्त्वनिकूं निर्बाध आगम अर आत्मानुभव करि जाननारूप प्रवृत्ति सो ज्ञानाचार है। हिंसादिक पंच पापनिका अभावरूप प्रवृत्ति सो चारित्राचार है। अंतरङ्ग बहिरङ्ग तपमें प्रवृत्ति सो तपाचार है। परीषहादिक आए अपनी शक्तिकूं नाहीं छिपाय धीरतारूपप्रवृत्ति सो वीर्याचार है तथा औरहू दशप्रकार स्थितिकल्पादिक आचार में तथा समितिगुप्त्यादिकनिका कथन करिए तो बहुत कथन बधि जाय। पंचप्रकार आचार आप निर्दोष आचरै अर अन्य शिष्यादिकनिकूं आचारण करावनेमें उद्यमी होय सो आचार्य है आप हीणाचारी होय सो शिष्यनिकूं शुद्धआचरण नाहीं कराय सकै हीणाचारी होय सो आहार विहार उपकरण वस्तिका अशुद्ध

ग्रहण कराय दे, अर आपही आचारहीण होय सो शुद्ध उपदेश नाहीं करि सकै तातैं आचार्य आचारवान ही होय ॥ १ ॥ बहुरि जाके जिनेन्द्रका प्ररूप्या च्यार अनुयोगका आधार हो स्याद्वाद विद्याका पारगामी होय शब्दविद्या न्यायविद्या सिद्धान्तविद्याका पारगामी होय प्रमाणनय निक्षेपकरि स्वानुभवकरि भले प्रकार तत्त्वनिका निर्णय किया होय सो आधारवान है। जाके श्रुतका आधार नाहीं सो अन्य शिष्यनिका संशय तथा एकांतरूप हठ तथा मिथ्याचरणकूं निराकरण नाहीं करि सकै। बहुरि अनंतानन्तकालतैं परिभ्रमण करता जीवके अतिदुर्लभ मनुष्यजन्मका पावना तामें हू उत्तम देश जाति कुल, इंद्रियपूर्णता, दीर्घायु सत्संगति, श्रद्धान, ज्ञान, आचरण ये उत्तरोत्तर दुर्लभ संयोग पाय तो अल्पज्ञानी गुरुके निकट वसनेवाला शिष्य सो सत्यार्थ उपदेश नाहीं पावनेतैं यथार्थ आपका स्वरूप नाहीं पाय संशयरूप होजाय तथा मोक्षमार्गकूं अतिदूर अतिकठिन जानि रत्नत्रयमार्गमूं चलि जाय तथा सत्यार्थ उपदेश विना विषयकषायनिमें उरझ्या मनकूं निकासनेमें समर्थ नाहीं होय तथा रोगकृत वेदनामें तथा घोरउपसर्गपरीषहनितैं चल्या हुआ परिणामकूं श्रुतका अतिशयरूप उपदेशविना थांभनेकूं समर्थ नाहीं होय है। बहुरि मरण आजाय तदि सन्यासका अवसरमें आहारपानका त्यागका यथाअवसर देशकाल सहाय सामर्थ्यका क्रमकूं नसमझेविना शिष्यका परिणाम चलिजाय या आर्तध्यान होजाय तो सुगति बिगडि जाय धर्मका अपवाद हो जाय अन्य मुनि धर्ममें शिथिल होजाय तो बड़ा अनर्थ है तथा यो मनुष्य

आहारमय है आहारतैं जीवै है आहारहीकी निरंतर वांछा करै है अर जब रोगके वशतैं तथा त्याग करनेतैं आहार छूटि जाय तदि दुःखकरि ज्ञानचारित्रमें शिथिल होय, धर्मध्यानरहित हो जाय तो बहुश्रुत गुरु ऐसा उपदेश करै जाकरि क्षुधातृषाकी वेदनारहित होय उपदेशरूप अमृतकरि सींचा हुआ समस्त क्लेशरहित भया धर्मध्यानमें लीन होजाय है। क्षुधातृषारोगादिककी वेदनासहित शिष्यकूं धर्मका उपदेशरूप अमृतका पान अर शिक्षारूप भोजनकरि ज्ञानसहित गुरुही वेदनारहित करै बहुश्रुतीका आधारविना धर्म रहै नाहीं तातैं आधारवान आचार्य होय ताहीका शरण ग्रहण करना। मिष्टवचन कहना इत्यादिककरि दुःख दूर करै तथा पूर्वैं जे योग्य है बहुरि जो शिष्य वेदनाकरि दुःखित होय ताके हस्त पाद मस्तकका दाबना स्पर्शनादि करना, अनेक साधु घोरपरीषह सहकरि आत्मकल्याण किया तिनकी कथाके कहनेकरि तथा देहतैं भिन्न आत्माका अनुभव करावनेकरि वेदनारहित करै तथा भो मुने! अब दुःखमें धैर्य धारण करो संसारमें कौन-कौन दुःख नाहीं भोगै अर वीतरागका शरण ग्रहण करोगे तो दुःखनिका नाश करि कल्याणकूं प्राप्त होवोगे इत्यादिक बहुत प्रकार कहि मार्गसूं नाहीं चलने देवै तातैं आधारवान गुरुनिहीका शरण योग्य है ॥२॥

बहुरि जो व्यवहार प्रायश्चित्तसूत्रनिका ज्ञाता होय जातैं प्रायश्चित्तसूत्र आचार्य होने योग्य होय तिसहीकूं पढावै हैं औरनिके पढ़ने योग्य नाहीं जो जिनआगमका ज्ञाता अर महाधैर्यवान प्रबलबुद्धिका धारक होय सो प्रायश्चित्त देवै है अर द्रव्य क्षेत्रकाल

भाव, क्रिया, परिणाम, उत्साह, संहनन, पर्याय जो दीक्षाका काल अर शास्त्रज्ञान पुरुषार्थादिक आछी रीति जाणि रागद्वेष-रहित होय प्रायश्चित्त देवै है।

भावार्थः—जामें ऐसी प्रवीणता होय जो याकूं ऐसा प्राय-श्चित्त दिये याका परिणाम उज्वल होयगा अर दोषका अभाव होयगा व्रतनिमें दृढता होयगी ऐसा ज्ञाता होय जाके आहारकी योग्यता अयोग्यताका ज्ञान होय तथा या क्षेत्रमें ऐसा प्रायश्चित्त का निर्वाह होयगा वा या क्षेत्रमें निर्वाह नाहीं होयगा तथा इस क्षेत्रमें वात पित्त कफ शीत उष्णताकी अधिकता है कि हीनता है कि समपना है अथवा इस क्षेत्रमें मिथ्यादृष्टिनिकी अधिकता है कि मंदता है तथा धर्मात्मानिकी हीनता अधिकताकूं जाणि प्रायश्चित्तका निर्वाह देखै वहुरि शीत उष्णवर्षा कालकूं तथा अवसर्पिणी उत्सर्पिणीका तृतीय चतुर्थ पंचम कालादिकके आधीन प्रायश्चित्तका निर्वाह देखै वहुरि परिणाम देखै तथा तपश्चरणमें याके तीव्र उत्साह है कि मंद है ताकूं देखै। वहुरि संहननकी हीनता अधिकता तथा बलकी मंदता तीव्रता देखै तथा ये बहुत कालका दीक्षित है कि नवीन दीक्षित है तथा सहनशील है कि कायर है सो देखै तथा बाल युवा वृद्ध अवस्थाकूं देखे वहुरि आगमका ज्ञाता है कि मंदज्ञानी है सो देखै तथा पुरुषार्थी है कि निरुद्यमी है इत्यादिकका ज्ञाता होय प्रायश्चित्त देवै। जैसे दोषरूप फिर आचार नाहीं करै अर पूर्वकृत दोष दूरि होय तैसे सूत्रके अनुकूल प्रायश्चित्त देवै जो गुरुनिके निकट प्रायश्चित्तसूत्र शब्दतैं अर्थतैं पढ्या नाहीं औरनिकूं प्राय-श्चित्त देवै है सो संसाररूप कर्दममें डूबै है अर अपयशकूं

उपार्जन करैहै तथा उन्मार्गका उपदेशकरि सम्यक् मार्गका नाशकरि मिथ्यादृष्टि होय है। जो एते गुणका धारक होय ताकूं प्रायश्चित्त-सूत्र पढाय गुरु अपना आचार्यपद दे है "जो महाकुलमें उपज्या व्यवहारपरमार्थका ज्ञाता होय कोऊ कालमेंहू अपने मूलगुणनिमें अतीचार नाहीं लगाया होय, च्यारि अनुयोगसमुद्रका पारगामी होय, धैर्यवान होय कुलवान होय, परीषह जीतनेमें समर्थन होय देवनिकरि कीया उपसर्गतैंहू जो चलायमान नाहीं होय, वक्तापना की शक्तिका धारक होय, वादीप्रतिवादीनिके जीतनेमें समर्थ होय विषयनितैं अत्यंत विरक्त होय, बहुतकाल गुरुकुल सेया होय, सर्व-संघके मान्य होय, पहिले ही समस्त संघ जाकूं आचार्यपनाकी योग्यता जाणै सोही गुरुनिका दिया प्रायश्चित्तसूत्रका ज्ञाता होय आचार्यपना पावै सो प्रायश्चित्त देवै। एते गुणनिविना जैसें मूढ वैद्य देश काल प्रकृत्यादिक नाहीं जानै तो रोगी हू मारै है तैसें व्यवहार सूत्ररहितमूढ गुणसंयुक्त होय है। संघमें कोऊ रोगी होय वा वृद्ध होय अशक्त होय कोऊ बाल होय कोऊ सन्यास धारण किया होय तिनकी वैयावृत्त्यमें युक्त किये जे मुनि ते टहल करैं ही परन्तु आप आचार्य हू संघ मुनीश्वरनिमें जो अशक्त होजाय ताका उठावना बैठावना शयन करावना तथा मलमूत्रकफादिक तथा राधिरुधिरादिक शरीरतैं दूरि करना धोवना उठावना, प्रासु-कभूमिमें स्थापना, धर्मोपदेश देना, धर्मग्रहण करावना, इत्यादिक आदरपूर्वक भक्तितैं वैयावृत्य करै तिनकूं देखि समस्तसंघके मुनि वैयावृत्यमें सावधान होय विचारै है अहो धन्य हैं ये गुरु भग-वान् परमेष्ठी करुणानिधान जिनके धर्मात्मामें ऐसा वात्सल्य है

हम निंद्य हैं आलसी होय रहे हैं हमकूं होते हू सेवा करैं हैं यह हमारा प्रमादीपना धिक्कारने योग्य है बन्धका कारण है ऐसा विचार समस्त संघ वैयावृत्यमें उद्यमी होय है जो आचार्य आप प्रमादी होय तो सकल संघ वात्सल्यरहित होजाय यातैं आचार्य का कर्तृत्वगुण मुख्य है समस्त संघको वैयावृत्य करनेका जाका सामर्थ्य होय सो आचार्य होय है कोऊ हीणाचारी ताकूं शुद्ध आचार ग्रहण करावै कोऊ मन्दज्ञानी होय तिनकूं समझाय चारित्रमें लगावै केइनिकूं प्रायश्चित्त देय शुद्ध करै, कोऊकूं धर्मोपदेश देय दृढता करै। धन्य है ! आचार्य जिनके शरणे प्राप्त हो गया तिनकूं मोक्षमार्गमे लगाय उद्धार करै हैं यातैं आचार्यका प्रकर्त्ता नामा गुण प्रधान है ॥ ४ ॥

वहुरि अपायोपायविदर्शी नामा पांचमो गुण है कोऊ साधु क्षुधा तृषा रोगवेदनाकरि पीडित हुआ क्लेशित परिणामरूप हो जाय तथा तीव्र रागद्वेषरूप होजाय तथा लज्जाकरि भयकरि यथावत् आलोचना नाहीं करै तथा रत्नत्रयमें उत्साह रहित हो जाय धर्म शिथिल हो जाय तो ताकूं अपाय मानि रत्नत्रयका नाश अर उपाय रत्नत्रयकी रक्षानिका प्रगट गुण दोष ऐसा दिखावै जो रत्नत्रयका नाश होनेतैं कंपायमान हो जाय अर रत्नत्रयका नाशतैं अपना नाश अर नरकादिक कुगतिमे पतन साक्षात् दिखावैं अर रत्नत्रयकी रक्षातैं संसारतैं उद्धार होय अनंत सुखकी प्राप्ति उपदेशकरि साक्षात् दिखाय देय ऐसा उपदेश सामर्थ्य जामें होय सो अपायोपायविदर्शी नाम गुणका धारक आचार्य होय है इहाँ उपदेश दिखाये कथन वहुत होजाय तातैं नाहीं लिख्या ॥५॥

अव अवपीडक नाम छठा गुण कहिये है कोऊ मुनि रत्नत्रय

धारण करके हू लज्जाकरि भयकरि अभिमानगौरवादिकरि अपना आलोचना यथावत् शुद्ध नाहीं करै तो आचार्य ताकूं स्नेह की भरी कर्णनिकूं मिष्ट अर हृदयमें प्रवेश करने वाली शिक्षा करै जो हे मुने ! बहुत दुर्लभ रत्नत्रयका लाभ ताकूं मायाचारकरि नष्ट मति करो माता पिता समान गुरुनिके निकट अपने दोष प्रगट करनेमें कहा लज्जा है अर वात्सल्यके धारक गुरु हू अपने शिष्यके दोष प्रगट करि शिष्यका अर धर्मका अपवाद नाहीं करावै हैं तातैं शल्य दूरि करि आलोचना करो जैसैं रत्नत्रयकी शुद्धता अर तपश्चरणका निर्वाह होयगा तैसैं द्रव्य क्षेत्र काल भावके अनुसार प्रायश्चित्त तुमकूं दिया जायगा तातैं भय त्यागि आलोचना निर्दोष करहू ऐसे स्नेह रूप वचन करिके जोहू माया शल्य नाहीं त्यागै तो तेजका धारक आचार्य शिष्यकी शल्यकूं जबरीतैं निकासै जिस काल आचार्य शिष्यकूं पूछै हैं जो हे मुने ! ए दोष ऐसै ही हैं सत्यार्थ कहो तदि उनके तेज तपके प्रभावतै जैसै सिंहकूं देखते ही स्याल खाया हुआ माँसकूं तत्काल उगलै है तथा जैसैं महान प्रचण्ड तेजस्वी राजा अपराधीकूं पूछै तदि तत्काल सत्य कहता ही बणै तैसै शिष्यहू मायाशल्यकूं निकासै है अर मायाचार नाहीं छांडे तो गुरु तिरस्कारके वचन हू कहै हैं हे मुने ! हमारे संघतैं निकस जाहु हमकरि तुम्हारे कहा प्रयोजन है जो अपना शरीरादिक का मेल धोया चाहैगा सो निर्मल जलके भरे सरोवरकूं प्राप्त होयगा जो अपना महान रोगकूं दूरि किया चाहैगा सो प्रवीण वैद्यकूं प्राप्त होयगा तैसै जो रत्नत्रय रूप परमधर्मका अतीचार दूरि करि उज्वलता किया चाहैगा सो गुरुनिका आश्रय करेगा

तुम्हारे रत्नत्रय की शुद्धता करनेमें आदर नाहीं तातैं ये मुनिपणा व्रत धारण, नग्न होय क्षुधादि परीषह सहनेकी विडंबनाकरि कहा साध्य है संवर निर्जरा तो कषायनिके जीतनेतैं है, मायाकषायका ही त्याग नाहीं किया तदि व्रत संयम मौन धारण वृथा है, नग्नता अर परिषह सहनता मायाचारीका वृथा है, तिर्यंच हू परिग्रहरहित नग्न रहै ही है यातैं तुम दूरभव्य हो हमारे वंदनेयोग्य नाहीं हो अर तुम्हारे परिणाम ऐसे हैं जो हमारा दोष प्रगट होय तो हम निंद्य होय जावें हमारा उच्चपणा घटिजाय सो मानना बंधका कारण है श्रमण तो स्तुति निंदामें समानपरिणामी होय है ऐसे गुरु कठोर वचन कहिकरिके हू मायाचारादिका अभाव करावैं। कैसा होय अवपीडक आचार्य जो बलवान होय उपसर्ग परीषह आये कायर नाहीं होय, प्रतापवान होय जाका वचन कोऊ उल्लंघन करने समर्थ नाहीं होय अर प्रभाववान होय जाकूं देखतेप्रमाण दोषका धारक साधु कांपने लगि जाय, जाकूं बडे बड़े विद्याके धारक नम्रीभूत होय वंदना करैं जाकी उज्ज्वलकीर्ति विख्यात होय जाकी कीर्ति सुनता ही जाके गुणनिमें दृढ़ श्रद्धा हो जाय, जाका वचन जगतमें देख्या विनाही दूरदेशनिमें प्रमाण करैं सिंहकी ज्यों निर्भय होय ऐसा अवपीड़क गुणका धारक गुरु होय सो जैसैं शिष्यका हित होय तैसें उपकार करै है। जैसें बालकका हितने चिंतवन करती माता रुदन करताहू बालककूं दावकरि मुख फाडि जबरीतैं घृत दुग्धादि पान करावै है। ऐसे शिष्यका हितकूं चिंतवन करता आचार्य हू मायाशल्यसहित क्षपकका बलात्कारकरि दोष दूर करै

है अथवा कटुक औषधि ज्यों पश्चात् हित करै है। जो जिह्वाकरि के मिष्ट बोले अर शिष्यकूं दोषतै नाहीं छुड़ावै सो गुरु भला नाहीं अर जो आचरण करि ताडनाहू करि दोषनितैं भिन्न करै है सो गुरु पूजने योग्य है यातै अवपीडकगुणका धारक ही आचार्य होय है ॥ ६ ॥

अब अपरिस्रावी गुणकूं कहै हैं जो शिष्य गुरुनिकूं दोष आलोचना करै सो दोष अन्यकूं गुरु प्रकाश नाहीं करै जैसें तप्तायमानलोहकरि पीया जल सो बाह्य प्रकट नाहीं होय तैसें शिष्यकरि श्रवणकिया दोष आचार्यहू किसीकूं नाहीं जणावै है सोही अपरिस्रावी नाम गुण है। शिष्य तो गुरुका विश्वास करकै कहै अर गुरु जो शिष्यका दोष प्रकट करै अन्यकूं जनावै तो वह गुरु नाहीं अधम है विश्वासघाती है कोऊ शिष्य अपना दोषकी प्रकटता जानि दुःखित होय आत्मघात करै है व क्रोधी होय रत्न-त्रयका त्याग करै है तथा गुरुकी दुष्टता जानि अन्य संघमें जाय तथा जैसें हमारी अवज्ञा करी तैसैं तुम्हारी हू अवज्ञा करैगा ऐसे समस्तसंघमें घोषणा प्रगट होय, समस्तसंघ आचार्यनिका प्रतीतिरहित होजाय, आचार्य सबके त्याज्य होजांय इत्यादिक बहुत दोष आवै बहुत कहे कथनी वधि जाय तातैं अपरिस्रावी गुणका धारक ही आचार्य योग्य है ॥७॥

अब आचार्य निर्यापक होय जैसें नावकूं खेवटिया समस्त उपद्रवनिकूं टालि नावकूं पार उतारि ले जाय तैसें आचार्यहू शिष्यकूं अनेक विघ्नसूं बचाय संसार समुद्रसे पार करै सो निर्यापक है ॥८॥ ऐसे आचारवान ॥१॥ आधारवान ॥२॥ व्यव-हारवान ॥३॥ प्रकर्त्ता ॥४॥ अपायोपायविदर्शी ॥५॥ अवपीडक ॥६॥ अपरिस्रावी ॥७॥ निर्यापक ॥ ८ ॥ यह आचार्यनिके अष्ट-

गुणकूं धारणकरतेनिके गुणनिमे अनुराग सो आचार्यभक्ति है ऐसैं आचार्यनिके गुणनिकूं स्मरण करके आचार्यनिका स्तवन वंदना करता जो पुरुष अर्घ उतारण करै है सो पापरूप संसारकी परिपाटीकूं नष्टकरि अक्षयसुखकूं प्राप्त होय है ऐसै वीतराग गुरु कहै हैं। ऐसे आचार्यभक्ति वर्णन करी ॥ ११ ॥

अब बहुश्रुतभक्ति नाम बारमी भावनाकूं कहैं हैं। जो अंग-पूर्वादिकका ज्ञाता तथा च्यार अनुयोगनिका पारगामी जो निरन्तर आप परमागमकूं पढ़ै अन्य शिष्यनिकूं पढ़ावै ते बहुश्रुती है तथा जिनके श्रुतज्ञान ही दिव्यनेत्र है अर अपना अर परका हित करनेमें प्रवर्तते अर अपने जिनसिद्धान्त अर अन्य एकांतीनिके सिद्धान्तनिका विस्तारतैं जानने वाले स्याद्वादरूप परमविद्याके धारक तिनकी जो भक्ति सो बहुश्रुतभक्ति है बहुश्रुतीकी महिमा कौन कहनेकूं समर्थ है जे निरन्तर श्रुतज्ञानका दान करै हैं ऐसे उपाध्याय तिनकी भक्ति विनयकरि सहित करैं हैं ते शास्त्ररूप समुद्रका पारगामी होय हैं। जे अङ्गपूर्व प्रकीर्णक जिनेन्द्र वर्णन किये तिन समस्त जिनागमकूं निरन्तर पढ़ै पढ़ावैं ते बहुश्रुती हैं। इहां प्रथम आचारांग तामैं अठारहहजार पदनिमें मुनिधर्मका वर्णन है ॥ १ ॥ सूत्रकृताङ्गका छत्तीसहजार पद है तिनमें जिनेन्द्रके श्रुतके आराधन करने के विनयक्रिया-का वर्णन है ॥ २ ॥ स्थानांगका ब्यालीसहजार पदनिमें षट्-द्रव्यनिका एकादि अनेक स्थानका वर्णन है ॥ ३ ॥ समवायांग एकलाख चौसठिहजार पदनिमें है तिनमें जीवादिक पदार्थनिका द्रव्य क्षेत्र काल भावके आश्रित समानता वर्णन है ॥ ४ ॥ व्या-

ख्याप्रज्ञप्ति अंगके दोयलक्ष अट्ठाईस हजार पदनिमें जीवका- अस्ति नास्ति इत्यादि गणधरनिकरि कीये साठिहजार पदनिका वर्णन है ॥५॥ ज्ञातृधर्मकथांगके पांचलक्षछप्पनहजार पदनिमें गणधरनिकरि कीये प्रश्ननिके अनुसार जीवादिकनिका स्वाभाविकवर्णन है ॥६॥ उपासकाध्याय नाम अंगके ग्यारहलक्ष सत्तर हजार पदनिमें श्रावकके व्रत शील आचार क्रियाका तथा याका मन्त्रनिका उपदेशका वर्णन है ॥७॥ अंतकृतदशांगके तेईसलक्ष अट्ठाईसहजार पदनिमें एक एक तीर्थंकरके तीर्थमे दश दश मुनीश्वर उपसर्गसहित निर्वाण प्राप्त भये तिनका कथन है ॥ ८ ॥ अनुत्तरोपपादकदशांगके बाणवै लक्ष चौवालीस हजार पदनिमें एक एक तीर्थंकरके तीर्थमें दश दश मुनीश्वर महा भयङ्कर घोर उपसर्गसहित देवनितैं पूजापाय विजयादिक अनुत्तर विमाननिमे उपजे तिनका वर्णन है ॥ ९ ॥ प्रश्नव्याकरण नाम अङ्गके त्र्यानवेलक्ष षोडशसहस्र पदनिमें नष्ट मुष्टि लाभ अलाभ सुख-दुःख जीवित मरणादिकके प्रश्नका वर्णन है ॥ १० ॥ विपाकसूत्रांगके एककोटि चौरासीलक्ष पदनिमे कर्मनिका उदय उदीर्ण सत्ताका वर्णन है ॥ ११ ॥ अर दृष्टिवाद नाम बारम अंगका पांच भेद है परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्व, चूलिका तिनमें परिकर्मकाहू पांच भेद हैं तिनमें चंद्रप्रज्ञप्ति के छह लक्ष पांचहजार पदनिमे चंद्रमाका आयु गति अर कलाकी हानिवृद्धि अर देवीविभव परिवारादिकका वर्णन है ॥ १ ॥ अर सूर्यप्रज्ञप्तिके पांचलक्ष तीनहजार पदनिमें सूर्यका आयु गति विभवादिकका वर्णन है ॥२॥ जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिके तीनलक्ष पचीसहजार पदनिमें जंबूद्वीपसम्बन्धी क्षेत्र कुलाचल द्रह

नदी इत्यादिकनिका निरूपण ॥ ३ ॥ द्वीपसागरप्रज्ञप्तिके बावन-लक्ष छत्तीसहजार पदनिमें असंख्यातद्वीप समुद्रनिका अर मध्य-लोकके जिनभवननिका अर भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्क देवनिके निवासनिका वर्णन है ॥ ४ ॥ व्याख्याप्रज्ञप्तिके चौरासीलक्ष छप्पनहजार पदनिमें जीव पुद्गलादि द्रव्यका निरूपण है ॥ ५ ॥ ऐसे पंच प्रकार परिकर्म कह्या। अब दृष्टिवाद अंगका दूजा भेद सूत्रके अट्ठासीलक्ष पदनिमें जीव अस्तिरूप ही है नास्तिरूप ही है कर्त्ता ही है भोक्ता ही है इत्यादि एकांतवदकारि कल्पित जीवका स्वरूपका वर्णन है ॥ २ ॥ बहुरि प्रथमानुयोगके पांचहजार पदनिमें त्रेसठि महापुरुषनिके चरित्रका वर्णन है ॥ ३ ॥ अब दृष्टिवादअंगका चतुर्थभेदमें चौदहपूर्व है तिनमें उत्पादपूर्वके एककोटि पदनिमें जीवादिक द्रव्यनिका उत्पादादि स्वभावका निरूपण है ॥ १ ॥ अग्रायणीपूर्वके छिनवैकोटि पदनिमें द्वादशांग का सारभूत सप्ततत्त्व नवपदार्थ षट् द्रव्य सातसै सुनय दुर्नया-दिकका स्वरूपका वर्णन है ॥ २ ॥ वीर्यानुवादके सप्तलक्ष पदनि में आत्मवीर्य, परवीर्य, क्षमवीर्य, कालवीर्य, भाववीर्य, तपो-वीर्यादि समस्त द्रव्यगुण पर्यायनिका वीर्यका निरूपण है ॥३॥ अस्तिनास्तिप्रवाद नाम पूर्वके साठिलक्ष पदनिमें जीवादि द्रव्य-निका स्वद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षा अस्ति और परद्रव्यादि चतु-ष्टयकी अपेक्षा नास्ति इत्यादिक सप्तभंगादिक तथा नित्य अनित्य एक अनेकादिकनिका विरोधरहित वर्णन है ॥ ४ ॥ ज्ञानप्रवाद पूर्वके एक घाटि कोटि पदनिमें मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल ये पांच ज्ञान अर कुमति कुश्रुत विभंग ये तीन अज्ञान इनका

स्वरूप संख्या विषय फलनिके आश्रय प्रमाणपना अप्रमाणपनाका वर्णन है ॥ ५ ॥ सत्यप्रवादपूर्वके छह अधिक एककोटि पदनिमें वचनगुप्ति अर वचनके संस्कारकारण अर द्वादश भाषा अर बहुत प्रकार असत्य अर दशप्रकारके सत्यका वर्णन है ॥ ६ ॥ आत्मप्रवादपूर्वके छब्बीसकोटि पदनिमें आत्मा जीव है कर्त्ता है भोक्ता है प्राणी है वंक्ता है पुद्गल है वेद है विष्णु है स्वयंभू है शरीर मान वक्ता शक्ता जन्तु मानी मायी वियोगी असंकुट क्षेत्रज्ञ इत्यादि स्वरूपका वर्णन है ॥ ७ ॥ कर्मप्रवादपूर्वके एककोटि अस्सीलाख पदनिमें कर्मनिका बंध उदय उदीर्णा सत्त्व उत्कर्षण उपशमन संक्रमणविधि निकाचितादि अवस्था अर ईर्यापथ तपस्या अधः-कर्मादिकनिका वर्णन है ॥ ८ ॥ प्रत्याख्यानपूर्वके चौरासीलक्ष पदनिमें नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भावनिकूं आश्रय करि पुरुषनिका संहनन अर बलादिकनिके अनुसार प्रमाणीककाल वा अप्रमाणीककाल लिये त्याग अर पापसहित वस्तुतैं निराला होना अर उपवासकी विधि अर उपवासकी भावना अर पंच-समिति अर तीनगुप्तिका वर्णन है ॥ ९ ॥ विद्यानुवादके एक कोटि दशलक्ष पदनिमें अंगुष्ठप्रसेवनादिक सातसै अल्पविद्या अर रोहणी आदि पांचसै महाविद्यानिका स्वरूप सामर्थ्य अर इनका साधन मंत्र तंत्र पूजा-विधानका अर सिद्ध भई तिनका फलका अर अन्तरिक्ष भौम अंग स्वर स्वप्न लक्षण व्यंजन छिन्न ये अष्ट-प्रकार निमित्तज्ञानका वर्णन है ॥ १० ॥ कल्याणानुवादपूर्वके छब्बीसकोटि पदनिमें तीर्थंकर चक्रधर बलदेव प्रतिवासुदेवादि-कनिका गर्भकल्याणादि महाउत्सवनिका अर इन पदनिका कारण

षोडश भावना वा तत्विशेष आचरणादिकनिका अर चन्द्रमा सूर्य्य ग्रह नक्षत्रनिका गमन तथा ग्रहण शकुनादिकके फलका वर्णन है ॥ ११ ॥ प्राणप्रवाद पूर्वके तेरहकोटि पदनिमें कायाकी चिकित्साका अष्टांग आयुर्वेद जो वैद्यविद्या ताका भूतकर्मका अर जांगलिका अर इला पिंगलादिक स्वासोच्छ्वासका अर गतिके अनुसार दशप्राणनिके उपकारक अनुपकारक द्रव्यनिका वर्णन है ॥ १२ ॥ क्रियाविशालके नवकोटि पदनिमें संगीतशास्त्र छंद अलंकार बहत्तरि कला अर स्त्रीके चौसठिगुण अर शिल्पादिज्ञान अर चौरासी गर्भाधानादि क्रिया अर एकसौ-आठ सम्यग्दर्शनादिक्रिया अर पच्चीस देवबंदनादिक नित्य नैमित्तिक क्रियाका वर्णन है ॥ १३ ॥ त्रैलोक्यबिंदुसारपूर्व के साढाबारहकोटि पदनिमे त्रैलोक्यको स्वरूप, छब्बीस परिकर्म अष्ट व्यवहार, च्यारि वीज, मोक्षका स्वरूप मोक्षगमनका कारण क्रिया अर मोक्षसुखका वर्णन है ॥ १४ ॥ ऐसे पिच्याणवै कोडि पचासलाख पांच पदनिमें चौदह पूर्व वर्णन किया । अब दृष्टिवादांगको पांचमो भेद चूलिका पांच प्रकार है एकएक चूलिका के दोयकोटि नवलक्ष निवासीहजार दोय सै पद है तिनमेंजलगता-चूलिका में जलका स्तम्भन जलमें गमन, अग्निका स्तम्भन भक्षण अग्निऊपरि आसन अग्निमे प्रवेशनादिकका कारण मन्त्र तन्त्र तप-श्चरणका वर्णन है ॥ १ ॥ अर स्थलगताचूलिकामे मेरु कुलाचला-दिकनिमें भूमिमें प्रवेश करनेकूं अर शीघ्रगमनके कारण मन्त्र तन्त्र तपश्चरणका वर्णन है ॥ २ ॥ अर मायागताचूलिकामे माया-रूप इन्द्रजालादि विक्रियाका मन्त्र तन्त्र तपश्चरणादिकका वर्णन

है ॥३॥ आकाशगतचूलिकामें आकाशगमनका कारण मंत्र तन्त्र तपश्चरणादिकका वर्णन है ॥४॥ रूपगताचूलिकामें सिंह हस्ती तुरङ्ग मनुष्य वृक्ष हरिण शशा वलध व्याघ्रादिकनिके रूप पलटनेके कारण मन्त्र तन्त्र तपश्चरणका वर्णन है तथा चित्राम माटी पाषाणकाष्ठकादिक इनका खोदना तथा धातुवाद रसवाद खान्य वादादिककी रचनाके अर्थ हैं ॥ ५ ॥ पंचचूलिकाके दशकोटि गुणचासलाखछयालीसहजार पद है। इहां ऐसा जानना समस्त द्वादशाङ्गके एकघाटि एकठी प्रमाण अक्षर हैं। १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ एते अपुनरुक्त अक्षर हैं एक बार आयाअक्षर दूसरां नाहीं आवै इनमें चोसठि संयोगा ताईं अक्षर हैं अर आगममें कह्या ऐसा मध्यपदका प्रमाण सोलासै चौंतीसकोडि तीयासीलक्ष सात हजार आठसै अठासी १६३४८३०७८८८ अपुनरुक्त अक्षर है इन अक्षरनिका प्रमाणका भाग दीए एकसौ बाराकोटि तियासीलक्ष अंठावनहजार पांचपद आये तिनमें समस्त द्वादशाङ्ग है अर अवशेष अक्षर आठकोटि एकलक्ष आठ हजार एकसौ पचेतरि आंक रहे ८०१०८१७५ इन अक्षरनिका पूर्ण एकपद होय नाहीं तातैं इनकूं अंगवाह्य कह्या तिन अक्षरनिका सामायिक आदि चौदह प्रकीर्णक है।

सामायिक नाम प्रकीर्णकमें मिथ्यात्व कषायादिकके क्लेशका अभावरूप नाम स्थापना द्रव्यक्षेत्र काल भाव के भेदतै छहभेद रूप सामायिकका वर्णन है ॥ १ ॥ बहुरि चौंतीस अतिशय अष्टप्रातिहार्य परमौदारिक दिव्य देह समवशरण सभा धर्मोपदेशादिक तीर्थंकरनिका माहात्म्यका प्रकाशरूप स्तवन नाम प्रकीर्णक है ॥२॥ एक तीर्थंकरके आलम्बन रूप चैत्यालय प्रतिमाका स्तवन

रूप प्रकीर्णक है ॥३॥ बहुरि पूर्वक्त प्रमादजनित दोषका निराकरणके अर्थि दैवसिक, रात्रिक पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक ऐर्यापथिक, उत्तमार्थ ऐसे सप्त प्रकार प्रतिक्रमण जामें वर्णन ऐसा प्रतिक्रमण नाम प्रकीर्णक है ॥४॥ बहुरि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप उपचार स्वरूप पंचप्रकार विनयका वर्णनरूप विनय नाम प्रकीर्णक है ॥५॥ बहुरि नवदेवतानिकी वन्दनाके अर्थि तीन प्रदक्षिणा चतुःशिरोनति तीनशुद्धता द्वादश आवर्त इत्यादिक नित्यनैमित्तिकक्रियाका जामें वर्णन ऐसा कृतिकर्म प्रकीर्णक है ॥६॥ बहुरि जामें साधुका आचारके गोचर आहारकी शुद्धताका वर्णन रूप दश वैकालिक प्रकीर्णक है ॥ ७ ॥ बहुरि च्यारप्रकार उपसर्ग तथा बाईस परीहसहनिके सहनेके विधान अर इनके फलका वर्णन रूप उत्तराध्ययनप्रकीर्णक है ॥ ८ ॥ बहुरि साधुके योग्य आचरणका विधान अयोग्यसेवनका प्रायश्चित्तका वर्णन रूप कल्पव्यवहार नाम प्रकीर्णक है ॥९॥ बहुरि द्रव्य क्षेत्र काल भावके आश्रय साधुकूं ये योग्य हैं ये अयोग्य हैं ऐसा विभागका वर्णनरूप कल्पाकल्प नाम प्रकीर्णक है ॥१०॥ बहुरि उत्कृष्ट संहननादिसंयुक्त द्रव्य क्षेत्र काल भावके प्रभावतैं उत्कृष्टचर्याकरि वर्तते ऐसे जिनकल्पी साधुनिके योग्य त्रिकालयोगादिआचरणका अर स्थविरकल्पिनका दीक्षा शिक्षा गण पोषण आत्मसंस्कार सल्लेखना अर उत्कृष्टस्थानगत उत्कृष्टआराधनाका वर्णनरूप महाकल्प नाम प्रकीर्णक है ॥११॥ जामें भवन व्यन्तर ज्योतिष्क तथा कल्पवासीनिके विमाननिमे उत्पत्तिका कारण दान पूजा तपश्चरण अकामनिर्जरा सम्यक्त्व संयमादिकका विधान तिनके उपजनेका

स्थान वैभवका वर्णनरूप पुण्डरीक नाम प्रकीर्णक है ॥१२॥ बहुरि महर्द्धिक देवनिमें इन्द्र प्रतींद्रादिकनिमें उत्पत्तिका कारण तपोविशेषादिक आचरणका कहनेवाला महापुण्डरीक प्रकीर्णक है ॥१३॥ जामें प्रमादसूं उपज्या दोषनिका त्यागरूप निषिद्धका प्रकीर्णक है ॥१४॥ जैसा द्वादशाङ्ग सूत्रका ज्ञान है सो तपका प्रभावतैं उपजै है सो आप पढ़ै है अन्यकी बुद्धिप्रमाण शिष्यनिकूं पढावै है तिन बहुश्रुतनिकी भक्ति है सो हू बहुश्रुतभक्ति है जो गुणनिमें अनुराग करना ताकूं भक्ति कहिये है जो शास्त्रनिमे अनुरागकरि पढ़ै तथा शास्त्रके अर्थकूं अन्यकूं कहै जो धनकूं लगाय शास्त्रनिको लिखावै तथा अपने हस्तकरि शास्त्र लिखै तथा हीन अधिक अक्षरकूं मात्राकूं शोधन करै तथा पढ़नेवालेनिकूं शास्त्र लिखाय देवै तथा व्याख्यान करै पढ़ावने बचावनेवालेनिकी आजीविकाकी थिरताकरि शास्त्रनिके ज्ञानाभ्यासका प्रवर्तन करावै स्वाध्याय करनेके अर्थि निराकुल स्थान देवै सो ज्ञानावरण कर्मके नाश करनेवाली बहुश्रुतभक्ति है। बहुरि बहुमूल्य वस्त्रनिमें पूठा लगाय पट्टमय डोरि करि शास्त्रनिकूं बांधै जो देखने श्रवण पठन करनेवालेनिका मनकूं रंजायमान करै सो समस्त बहुश्रुतभक्ति है। बहुरि सुवर्णकरि मनोहर गढ़े भये अर पंचप्रकार रत्ननिकरि जटित सैकड़ा पुष्पनिकरि शास्त्र की सारभूत पूजा करै सो श्रुतभक्ति संशयादिक-रहित सम्यग्ज्ञान उपजाय अनुक्रमतैं केवलज्ञान उपजावै है, जो पुरुष अपने मनकूं इन्द्रियनिके विषयनितैं रोकि अर बारम्बार श्रुतदेवताका गुण स्मरण करके भली विधिसूं बनाया पवित्र अर्घ श्रुतदेवताका

उतारै है सो समस्त श्रुतका पारगामी होय केवलज्ञान उपजाय निर्वाणकूं प्राप्त होय है। ऐसे बहुश्रुतभक्ति नाम बारमी भावना वर्णन करी सो निरन्तर भावो ॥ १२॥

अब प्रवचनभक्तिनाम तेरमी भावनाकूं वर्णन करैं हैं। प्रवचन नाम जिनेंद्र सर्वज्ञ वीतरागकरि प्ररूपण किया आगमका है। जिसमें षट्द्रव्यनिका पञ्चास्तिकायका सप्ततत्त्वनिका नवपदार्थनिका वर्णन है अर कर्मनिकी प्रकृतीनिका नाश करनेका वर्णन सो आगम है जाका प्रदेश बहुत होय ताकी अस्तिकाय संज्ञा है। अर गुणपर्यायनिकूं प्राप्त निरन्तर होय तातै द्रव्य संज्ञा है वस्तुपनाकरि निश्चय करिये तातैं पदार्थसंज्ञा है स्वभावरूपपनातैं तत्त्वसंज्ञा है सो इनकी विशेष कथनी आगे प्रकरण पाय कहसी। जैसे अंधकारसंयुक्त महलमें दीपक हस्तमें लेकरि समस्त पदार्थ देखिये है तैसैं त्रैलोक्यरूप मन्दिरमें प्रवचनरूप दीपककरि सूक्ष्म स्थूल मूर्तीक अमूर्तीक पदार्थ देखिये है। प्रवचनरूप ही नेत्रनिकरि मुनीश्वरनि चेतनादि गुणनिके धारक समस्तद्रव्यनिका अवलोचन करै जिनेद्रके परमागमकूं योग्यकालमें बहुत विनयतैं पढिये सो प्रवचनभक्ति है कैसाक है प्रवचन जामें षट्द्रव्य सप्ततत्व नवपदार्थनिका भेद समस्तगुणपर्यायनिका वर्णन है जामें भूतकाल अनन्त भया अर भविष्यत् अनन्त होयगा अर वर्तमान तिनका स्वरूप वर्णन है। जामें अधोलोककी सप्त पृथ्वी अर नारकीनिका बसनेका उत्पत्ति होनेका स्थाननिकूं अर आयु काय वेदना गत्यादिक समस्तका अर भवनवासी देवनिका सातक्रोड बहत्तरलाखभवननिका अर तिनका आयु काय विभव विक्रिया भोगादिकनिका

अधोलोकमें वर्णन किया है। जामें मध्यलोक सम्बन्धी असंख्यात द्वीप समुद्रनिका अर तिनमें मेरु कुलाचल नदी द्रहादिकनिका अर कर्मभूमिके विदेहादिक क्षेत्रनिका अर भोगभूमिका अर छिनवै अन्तर्द्वीपसम्बन्धी मनुष्यनिका अर कर्मभूमिके भोगभूमिके मनुष्य-निका कर्तव्यका अर आयु काय सुख दुःखादिकनिका अर तिर्यं-चनिका व्यंतरनिके निवास विभव परिवार आयु काय सामर्थ्य विक्रियाका वर्णन है। तथा मध्यलोकमें ज्योतिष्कदेव है तिनके विमान विभव परिवार आयु कायादिकका तथा सूर्य चन्द्रमा ग्रह नक्षत्रनिका चारक्षेत्रगत संयोगादिकका वर्णन है। बहुरि ऊर्ध्व-लोकके त्रेसठपटलनिका स्वर्गके अहमिंद्रके पटलनिका इन्द्रादिक देवनिका विभव परिवार आयु काय शक्ति गति सुखादिकका वर्णन है। ऐसैं सर्वज्ञकरि प्रत्यक्ष देखा त्रिलोकवर्ती समस्त द्रव्य-निके उत्पाद व्यय ध्रौव्यपना समस्त प्रवचनमें वर्णन किया है। बहुरि कर्मनिकी प्रकृतिनिका बंध होनेका उदयका सत्वका संक्रम-णादिकनिका समस्त वर्णन आगममें है। बहुरि संसारतैं उद्धार करनेवाला रत्नत्रयका स्वरूप प्राप्त होनेका उपाय परमागमहीमें है बहुरि गृहस्थपणांमें श्रावकधर्मका जघन्य मध्यम उत्कृष्ट चर्याका, तथा श्रावकनिके व्रत संयमादिक व्यवहार परमार्थरूप प्रवृत्तिका वर्णन प्रवचनतैंही जानिये है बहुरि गृहका त्यागी मुनीनिके महा-व्रतादि अट्ठाईस मूलगुण अर चौरासीलाख उत्तरगुण अर स्वा-ध्याय ध्यान आहार विहार सामायिकादि चारित्र चर्याका धर्म-ध्यान शुक्लध्यानादिकका सल्लेखनामरणका समस्तचर्याका वर्णन प्रवचनमें है। बहुरि चौदह गुणस्थाननिका स्वरूप तथा चौदह

जीवसमासनिका अर चौदहमार्गणानिका वर्णन प्रवचनतैं जानिये है तथा जीवनिके एकसो साढानिन्यानवै लक्ष कुलकोड अर चौरासीलाख जातिका योनिस्थान प्रवचनहीतैं जानिये है तथा च्यार अनुयोग च्यार शिक्षाव्रत तीनगुणव्रत आगमतैं ही जानिये है। तथा च्यार गतीनिका भेद अर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रका स्वरूप भगवानका प्ररूप्या आगमहीतैं जानिये है। बहुरि द्वादशभावना अर द्वादशतप अर द्वादश अङ्ग अर चौदहपूर्व चौदहप्रकीर्णकनिका स्वरूप प्रवचनहीतैं जानिये है। बहुरि उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालकी फिरणि अर यामें छह छह भेदरूप कालमें पदार्थकी परिणतिका भेदनिका स्वरूप आगमतैं जानिये है। बहुरि कुलकर तीर्थंकर चक्रधर बलदेव वासुदेव प्रतिवासुदेव इत्यादिकनिकी उत्पत्ति प्रवृत्ति धर्म तीर्थका प्रवर्तन चक्रीका साम्राज्य वासुदेवादिकनिके विभव परिवार ऐश्वर्यादिक आगमहीतैं जानिये है। बहुरि जीवादिक द्रव्यनिका प्रभाव आगमहीतैं जानिये है जातैं आगमकूं भक्तिपूर्वक सेवनविना मनुष्यजन्ममें हू पशू समान है भगवान सर्वज्ञ वीतराग समस्त लोक अलोककूं अनंतानंत भूत भविष्यत वर्तमान कालवर्ती पर्यायनिकरि संयुक्त एक समयमें युगपत् क्रमरहित हस्तकी रेखावत् प्रत्यक्ष जान्या देख्या ताकरि प्ररूपण किया स्वरूपकूं सप्तऋद्धि च्यार ज्ञानधारी गणधरदेव द्वादशांगरूप रचना प्रगट करी। इहां ऐसा विशेष जानना जो देवाधिदेव परमपूज्य धर्मतीर्थके प्रवर्तन करनेवाले अनन्तज्ञान अनन्तदर्शनअनन्तवीर्य अनन्तसुखरूप अन्तरंगलक्ष्मी अर समवशरणादि बहिरंगलक्ष्मीकरि मंडित अर इन्द्रादिक

असंख्यात देवनिके समूहकरि वंदनीक चौंतीस अतिशय अष्टप्रातिहार्यादिक अनुपम ऋद्धिकरि सहित अर क्षुधा तृषादिक अष्टादशदोषरहित समस्तजीवनिका परमोपकारक अर लोकअलोकके अनंतगुण पर्यायनिका क्रमरहित युगपत् ज्ञानका धारक अर अनंतशक्तिका धारक संसारमें डूबते प्राणीनिकूं हस्तावलम्बन देनेवाला समस्त जीवनिका दयालु परमात्मा परमेश्वर परमब्रह्म परमेष्ठी स्वयंभू शिव अजर अमर अरहंतादि नामकरि विख्यात अशरण प्राणीनिकूं परमशरण अन्तका परमौदारिक देहमें तिष्ठता, गणधरादिक मुनीश्वरनिकरि वंदनीक है चरण जिनका अर कण्ठ तालुवो ओष्ट जिह्वादिक चलनहलनरहित इच्छाविना अनेक प्राणीनिका पुण्यके प्रभावतै उपज्या अर आर्य अनार्य समस्त देशके प्रणीनिका ग्रहणमें आवता समस्त पापका घातक दिव्यध्वनिकरि भव्य जीवनिका मोह अन्धकारकूं नष्ट करता चमरनिकरि वीज्यमान छत्रत्रयादिक प्रातिहार्यके धारक रत्नमयसिंहासन अर च्यार अंगुल अंतरीक्ष विराजमान भगवान सकलपूज्य परमभट्टारक श्रीवर्धमानदेवाधिदेव मोक्षमार्गके प्रकाशनेके अर्थि समस्तपदार्थनिका स्वरूप सातिशय दिव्यध्वनिकरि प्रगट किया तिस अवसरमें निकटवर्ती निर्ग्रंथ ऋषीश्वरनिकरि वंदनीक सप्तऋद्धिसमृद्ध च्यारिज्ञानके धारक श्रीगौतम नाम गणधरदेव कोष्ठबुद्धि आदिक ऋद्धिके प्रभावतैं भगवानभाषित अर्थकूं नाहीं विस्मरण होता भगवानभाषित अर्थकूं धारणकरि द्वादशांगरूप रचना रची।

जब चतुर्थ कालका तीनवर्ष साढाआठ महीना बाकी रह्या तदि श्रीवर्धमानस्वामी निर्वाण गये पाछै गौतम स्वामी, सुधर्माचार्य,

जम्बूस्वामी ए तीन केवली बासठवर्ष पर्यंत केवलज्ञानकरि समस्त प्ररूपणा करी। पाछै केवलज्ञानका अभाव भया। ता पाछैं अनुक्रमकरि विष्णु, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्धन, भद्रबाहु ये पांच मुनि द्वादशांगके धारक श्रुतकेवली भए तिनका एकसौ वर्ष का अवसर क्रमतैं भया तिनके अवसरमें भगवान केवलीतुल्य पदार्थनिका ज्ञान अर प्ररूपणा रही। बहुरि विशाखाचार्य, प्रोष्ठिलाचार्य, क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिमान, गंगदेव, धर्मसेन ये दश पूर्वके धारक एकादश परम निर्ग्रंथ मुनीश्वर अनुक्रमतैं एकसौ तीयासी वर्षमें भये ते हू यथावत प्ररूपणा करी बहुरि नक्षत्र, जयपाल, पांडुनाम, ध्रुवसेन कंसाचार्य ये पांच महामुनि एकादशांग विद्याका पारगामी अनुक्रमतैं दोयसौवीस वर्षमे भये तेहू यथावत प्ररूपणा करी। बहुरि सुभद्र, यशोभद्र, भद्रबाहु, महायश, लोहाचार्य ये पंच महामुनि एक प्रथमअङ्गका पारगामी एकसौअठारा वर्षमें अनुक्रमतैं भये। ऐसैं भगवान् वीरजिनेन्द्रकूं निर्वाण गये पाछैं छहसौ तिरासी वर्ष पर्यंत अङ्गका ज्ञान रह्या पाछैं ऐसे कालके निमित्ततैं बुद्धिवीर्यादिककी मन्दता होते श्रीकुन्दकुन्दादि अनेक मुनि निर्ग्रन्थ वीतरागी अङ्गके वस्तुनिका ज्ञानी होते भए तथा उमास्वामी भये ऐसे पापतै भयभीत ज्ञानविज्ञानसम्पन्न परमसंजमगुणमण्डित गुरुनिकी पारिपाटीतैं श्रुतका अव्युच्छिन्न अर्थके धारक वीतरागीनिकी परम्परा चली आई तिनमें श्री कुन्दकुन्दस्वामी समयसार प्रवचनसार पंचास्तिकाय रयणसार अष्टपाहुडकूं आदि लेय अनेक ग्रन्थ रचे ते अवार प्रत्यक्ष वांचने पढ़नेमें आवैं हैं। इन

ग्रन्थनिका जो विनयपूर्वक आराधन सो प्रवचन भक्ति है।

बहुरि दश अध्यायरूप तत्त्वार्थसूत्र श्री उमास्वामी रच्या तिस तत्त्वार्थसूत्र ऊपरि सर्वार्थसिद्धि नाम टीका पूज्यपाद स्वामी रची है। अर तत्त्वार्थसूत्र ऊपर ही राजवार्तिक सोलह हजार श्लोकनिमें श्री अकलङ्कदेव रच्या अर श्लोकवार्तिक बीसहजार श्लोकनिमें विद्यानन्दिस्वामी रच्या अर गन्धहस्ति नाम महाभाष्य चौरासीहजार श्लोकनिमें समन्तभद्रस्वामी बड़ी टीका रची सो अबार इस अवसरमें मिले है नाहीं अर गन्धहस्तिमहाभाष्य को आदि मंगलाचरण एकसौ पन्द्रह श्लोकनिमें देवागमस्तोत्र किया ताकी आठसौ श्लोकनिमें टीका अष्टशती तो अकलङ्कदेव रची अर देवागम अष्टशती ऊपरि आप्तमीमांसा नामा जाकूं अष्टसहस्री कहिए सो आठ हजार श्लोकनिमें विद्यानन्दिजी रची तिस अष्टसहस्री ऊपरि सोलहहजार टिप्पणी है अर विद्यानन्दि स्वामीकृत आप्तकी परीक्षारूप तीनहजार श्लोकनिमें आप्तपरीक्षा नाम ग्रन्थ है तथा परीक्षामुख माणिक्यनन्दि रच्या अर याकी बड़ी टीका प्रभाचन्द्रआचार्य प्रमेयकमलमार्त्तण्ड बारहजार श्लोकनिमें रची अर छोटी टीका प्रमेयचन्द्रिका अनन्तवीर्यनाम आचार्य रची। अर अकलंकदेव कृत लघुत्रयी ऊपरि न्यायकुमुद चन्द्रोदय सोलहहजार श्लोकनिमें प्रभाचन्द्रनाम आचार्य रच्या तथा और हू न्यायके केई ग्रन्थ प्रमाणपरीक्षा, प्रमाणनिर्णय प्रमाणमीमांसा तथा बालावबोधन्यायदीपिका इत्यादिक जिनधर्म के स्तंभ द्रव्यनिका प्रमाणकरि निर्णय करते अनेकान्तका भर्या हुआ द्रव्यानुयोगग्रन्थ जयवन्ते प्रवर्तै हैं। अर करणानुयोगका

गोम्मटसार लब्धिसार क्षपणासार त्रिलोकसारादि अनेक ग्रंथ हैं। तथा चरणानुयोगके मूलाचार आचारसार रत्नकरण्डश्रावकाचार भगवती आराधना स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा आत्मानुशासन पद्मनन्दिपच्चीसी इत्यादिक अनेकग्रंथ हैं तथा जैनेन्द्रव्याकरण अनेकान्तका भरया है तथा प्रथमानुयोगके जिनसेनाचार्यकृत आदिपुराण तथा गुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराण इत्यादिक जिनेन्द्रके परमागमके अनुसार उपदेशीग्रन्थ तथा पुराणचरित्र आचारके अनेक ग्रंथ हैं तिनकूं बड़ी भक्तितैं पठन करना तथा श्रवण करना तथा व्याख्यान करना तथा वंदना करना लिखना लिखावना शोधना सो समस्त प्रवचनभक्ति है मेरे शास्त्रका अभ्यासमें जो दिन जाय सो धन्य है । परमागमका अभ्यास विना हमारे जो काल जाय सो वृथा है। स्वाध्याय विना शुभ ध्यान नाहीं होय स्वाध्याय विना पापसूं नाहीं छूटै कषायनिकी मन्दता नाहीं होय शास्त्रका सेवन विना संसार देह भोगनितैं विरागता नाहीं उपजै है। समस्त व्यवहारकी उज्वलता परमार्थका विचार आगमका सेवनहीतैं होय है, श्रुतका सेवनतैं जगतमें मान्यता उच्चता उज्वलता आदरसत्कारकूं प्राप्त होय है, सम्यग्ज्ञान ही परमबांधव है, उत्कृष्टधन है, परममित्र है, सम्यग्ज्ञान अविनाशी धन है स्वदेशमें, परदेशमें, सुख अवस्थामें, दुःखमें, आपदामें सम्पदामें परमशरणभूत सम्यग्ज्ञान ही है। स्वाधीन अविनाशी धन ज्ञान ही है यातैं शास्त्रनिके अर्थ ही का सेवन करना। अपनी आत्माकूं नित्य ज्ञानदान करो अपनी सन्तानकूं तथा शिष्यनिकूं ज्ञानदान ही करो। ज्ञानदान देने समान कोटिधनका

दान नाहीं है धन तो मद उपजावै है विषयनिमें उरझावै दुर्ध्यान करै, संसाररूप अन्धकूपमें डबोवे, तातैं ज्ञानदान समान दान नाहीं। एक श्लोक अर्धश्लोक एक पद मात्रहूका जो नित्य अभ्यास करै तो शास्त्रार्थ का पारगामी होजाय। विद्या है सो परमदेवता है जो माता पिता ज्ञानाभ्यास करावै है ते कोट्यां धन दिया। जे सम्यग्ज्ञानके दाता गुरु है तिनका उपकार समान त्रैलोक्यमें कोऊ उपकारक नाहीं अर जो ज्ञानके देनेवाला गुरुका उपकारकूं लोपै है तिससमान कृतघ्नी नाहीं, पापी नाहीं। ज्ञान का अभ्यास विना व्यवहार परमार्थ दोउनिमें मूढ है यातैं प्रवचन-भक्ति ही परमकल्याण है। प्रवचनका सेवनविना मनुष्य पशु-समान है। या प्रवचनभक्ति हजारां दोषनिका नाश करनेवाली है याका भक्तिपूर्वक अर्घ उतारण करो याहीतै सम्यग्दर्शनकी उज्व-लता होय है। ऐसे प्रवचनभक्ति नामा तेरमी भावना वर्णन करी॥ १३॥

अथ आवश्यकापरिहाणि नाम चौदमी भावना वर्णन करैं है। अवश्य करनेयोग्य होय ताकूं आवश्यक कहिये है। आवश्यकनि की जो हानि नाहीं करनेका चिंतवन सो आवश्यकापरिहाणि नाम भावना है अथवा इंद्रियनिके वश नाहीं सो अवश्य कहिये अवश्य जे मुनि तिनकी जो क्रिया सो आवश्यक है आवश्यककी हानि नाहीं करना सो आवश्यकापरिहाणि कहिये। ते आवश्यक छहप्रकार हैं। सामायिक, स्तवन, वन्दना, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय कायोत्सर्ग ये छह आवश्यक हैं सो कहिये है। जे देहतैं भिन्न ज्ञानमय ही जाके देह ऐसा परमात्मस्वरूप कर्मरहित चैतन्यमात्र

शुद्ध जीवकूं एकाग्रकार ध्यावता मुनि है सो सर्वोत्कृष्ट निर्वाणकूं प्राप्त होय है अर जो विकल्परहित शुद्ध आत्माके गुणनिमे आपका मन नाहीं तिष्ठै तो तपस्वी मुनि षट् आवश्यकक्रिया हैं तिनको पुष्ट करो अङ्गीकार करो अर आवते अशुभकर्मके आस्रवकूं निराकरण करो टालो प्रथम तो सुन्दर असुन्दर वस्तुमें तथा शुभ अशुभ कर्मके उदयमें रागद्वेष मति करो तथा आहार वस्तिकादिकनिका लाभमें वा अलाभमें समभाव करो जातै स्तुतिमें निंदामें, आदरमें अनादरमें, पाषाणमें रत्नमें, जीवनमें मरणमें, वैरीमें मित्रमें, सुखमें दुःखमे, स्मशानमें महलमें, रागद्वेषरहित परिणाम होना सो समभाव है। जातैं साम्यभावके धारक हैं ते बाह्य पुद्गलनिकूं अचेतन अर आपतैं भिन्न अर अपने आत्मस्वभावमें हानि वृद्धिके अकर्ता जानि रागद्वेष छांडै है अर आपकूं शुद्ध ज्ञाताद्रष्टारूप अनुभव करता रागद्वेषादिविकार रहित तिष्ठै है ताके साम्यभाव होय है सोही सामायिक हैं बहुरि भगवान जिनेन्द्रके अनेकनामनिकरि स्तवन करना सो स्तवन नाम आवश्यक है। जो कर्मरूप वैरीकूं आप जीतैं तातैं 'जिन' हो, अर अपने स्वरूपमें आपकरि आप तिष्ठो हो तातैं स्वयंभू हो अर केवलज्ञानरूप नेत्रकरि त्रिकालवर्ती पदार्थनिकूं जानो हो तातैं त्रिलोचन हो, अर आप मोहरूप अन्धसुरकूं मार्या तातैं अंधकांतक हो, आप घातियाकर्म रूप अर्धवैरीनिका नाशकरके हो अद्वितीय ईश्वरपना पाया तातैं अर्धनारीश्वर हो, आप शिवपद जो निर्वाणपद तामें वसे तातैं आप शिव हो, पापरूप वैरीका संहार करो हो तातैं आप हर हो, लोकमें सुखका कर्त्ता तातैं आप

शंकर हो, शं जो परमआनन्दरूप सुख तामें उपजै तातै संभव हो,वृष जो धर्म ताकरि दिपो हो तातैं आप वृषभ हो अर जगतके सकल प्राणीनिमे गुणनिकरि बड़े तातैं जगज्ज्येष्ठ हो, क जो सुख ताकरि समस्त जीवनिकी पालना करो तातैं आप कपाली हो, केवलज्ञानकरि समस्त लोक अलोकमें व्याप्त हो रहे तातैं आप विष्णु हो अर जन्मजरामरणरूप त्रिपुरकुं मार्‌या तातैं आप त्रिपुरांतक हो ऐसै एकहजारआठ नामकरि आपका स्तवन इंद्र किया है। अर गुणनिकी अपेक्षा आपका अनन्त नाम है। ऐसैं भावनिमें गुणचिंतवनकरि जो चौबीस तीर्थंकरनिका स्तवन करै है सो स्तवन नाम आवश्यक है ॥२॥ बहुरि चतुर्विंशति तीर्थंकरनिमेंतैं एक तीर्थंकरकी वा अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधुनमेतैं एककूं मुख्यकरि स्तुति करना सो वन्दना आवश्यक है ॥ ३ ॥ बहुरि जो समस्त दिनमें प्रमादके वश होय तथा कषायनिके वश होय वा विषयनिमें रागद्वेषी होय कोऊ एकन्द्रियादिक जीवनिका घात किया तथा अनर्थक प्रवर्तन किया वा सदोषभोजन किया वा किसी जीवका प्राण पीडित किया तथा कर्कश कठोर मिथ्यावचन कह्या वा किसीकी निंदा अपवाद किया वा अपनी प्रशंसा करी वा स्त्रीकथा भोजनकथा देशकथा राज्यकथा करी तथा अदत्तधन ग्रहण किया वा परका धनमें लालसा करी तथा परकी स्त्रीमें राग किया तथा धनपरिग्रहादिकमैं लालसा करी ते समस्त पाप खोटे किये बंधके करण किये, अब ऐसा पापरूप परिणामनिसूं भगवान पंच परमगुरू हमारी रक्षा करहु अब ए परिणाम मिथ्या होहु पंच परमेष्ठीके प्रसादतैं हमारे पाप

रूपपरिणाम मति होहू ऐसे भावनिकी शुद्धतावास्ते कायोत्सर्गकरि पंच नमस्कारके नव जाप्य करै ऐसे समस्त दिनकी प्रवृत्तिकूं संध्याकाल चिंतवनकरि पापपरिणामनिकूं निंदना सो दैवसिक प्रतिक्रमण है। अर रात्रिसम्बन्धी पापका दूरिकरनेके अर्थ प्रभात प्रतिक्रमण करना सो रात्रिक प्रतिक्रमण है। बहुरि मार्गमें चालनेमें दोष लाग्या ताकी शुद्धिका जो प्रतिक्रमण सो ऐर्यापथिक प्रतिक्रमण है, एक पक्षके दोष निराकरणके अर्थ पाक्षिक प्रतिक्रमण है, च्यार महीनेके दोष निराकरणके अर्थ प्रतिक्रमण करना चातुर्मासिक प्रतिक्रमण है, एक वर्षके दोष निराकरणके अर्थ सांवत्सरिक प्रतिक्रमण है, समस्त पर्यायके कालका दोष निराकरणके अर्थ अंत्यसंन्यासमरणकी आदिमें प्रतिक्रमण है सो उत्तमार्थ प्रतिक्रमण है ऐसैं सप्त प्रकार प्रतिक्रमण है तिनमें गृहस्थकूं संध्या अर प्रभात तो अपना नफा टोटा अवश्य देखना योग्य है। इहां जो सौ पचास रुपयाका व्यवहार करनेवालाहू आथणनै ठिगाई जिताई देखै है तो इस मनुष्य जन्मकी एक एक घड़ी कोटिधनमें दुर्लभ, गयां पाछैं नाहीं मिलै है याका विचार हू अवश्य करना, जो आज मेरे परमेष्ठीका पूजनमें स्तवनमें केता काल गया अर स्वाध्यायमें पंचपरमगुरुके शास्त्रश्रवणमें तत्वार्थकी चर्चामें धर्मात्माकी वैयावृत्तिमें केता काल गया अर घरके आरंभमें कषायमें तथा विकथा करनेमें विसंवादमें भोजनादिकमें वा अन्य इंद्रियनिके विषयनिमें, प्रमादमें, निद्रामें, शरीरके संस्कारमें, हिंसादिक पंच पापनिमें केता काल गया है ऐसा चिंतवनकरि पापमें बहुत प्रवृत्ति भई होय तो आपकूं धिक्कार देय पापबंधके कारण-

निकूं घटाय धर्म कार्यमें आत्माकूं युक्त करना योग्य है पञ्चम-कालमें प्रतिक्रमण ही परमागममें धर्म कह्या है। आत्माका हित अहितका विचारमें निरन्तर उद्यमी रहना योग्य है। यो प्रतिक्रमण आत्माकी बड़ी सावधानी करनेवाला है अर पूर्वले किये पापकी निर्जरा करै हैं ॥ ४ ॥ बहुरि आगामी कालमें आपके आस्रवके रोकनेके अर्थ पापनिका त्याग करना जो आगे मैं ऐसा पाप कबहू मन वचन कायसों नाहीं करूंगा सो प्रत्याख्यान नाम आवश्यक सुगतिका कारण है ॥५॥ बहुरि च्यार अङ्गुलके अन्तरालै दोऊ पग-बरोबर करि खड़ा रहै दोऊ हस्तनिकूं लंबायमानकरि देहसों ममता छांड़ि नासिकाका अग्रमें दृष्टि धारि देहतैं भिन्न शुद्ध आत्मा की भावना करना सो कायोत्सर्ग है। निश्चल पद्मासनतैं हू होय अर खड़ा देहकरि हू होय दोऊनिमें शुद्ध ध्यानका अवलम्बनतै सफल है॥ ६ ॥ ए छह आवश्यक परमधर्मरूप हैं इनकूं पूजि पुष्पांजलि क्षेपि अर्घ उतारण करना योग्य है। कहुरि ए छह आवश्यक परमागममें छह छह प्रकार कह्या है। नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव करि षट्प्रकार जानना। शुभ अशुभ नामकूं श्रवणकरि राग द्वेष नाहीं करना सो नाम सामायिक है। कोऊ स्थापना प्रमाणादिककरि सुन्दर है, कोऊ प्रमाणादिककरि हीनाधिककरि असुन्दर है तिनके विषै राग द्वेषका अभाव सो स्थापना सामायिक है। सुवर्ण रूपा रत्न मोती इत्यादिक अर मृत्तिका काष्ठ पाषाण कंटक छार भस्म धूल इत्यादिकनिमें रागद्वेष रहित सम देखना सो द्रव्यसामायिक है।

महल उपवनादि रमणीक, श्मशानादिक अरमणीक क्षेत्रमें राग-द्वेष छांडना सो क्षेत्रसामायिक है, हिम शिशिर वसंत ग्रीष्म वर्षा शरत ये ऋतु अर रात्रि दिवस अर शुक्लपक्ष कृष्णपक्ष इत्यादिक काल विषै रागद्वेषको वर्जन सो काल सामायिक है। अर समस्त जीवनिके दुःख मति होहू ऐसा मैत्रीभावकरि अशुभ परिणामनिका अभाव करना सो भावसामायिक है; ऐसैं छहप्रकार सामायिक कह्या। अब छहप्रकार स्तवन कहै हैं चतुर्विंशति तीर्थंकरनिका अर्थ सहित एकहजार आठ नामकरि स्तवन करना सो नामस्तवन है अर कृत्रिम अकृत्रिम अपरिमाण तीर्थंकर अरहंतनिके प्रतिबिं-बनिका स्तवन सो स्थापना स्तवन है अर समवसरणस्थित काल देह-प्रभा, प्रातिहार्यादिकनिकरि स्तवन सो द्रव्यस्तवन है। अर कैलाश संमेदाचल ऊर्जयंत (गिरनार) पावापुर चंपापुरादि निर्वाण क्षेत्रनिका तथा समवसरणमे धर्मोपदेशक क्षेत्रका स्तवन सो क्षेत्र स्तवन है। अर स्वर्गावतरण जन्म तप ज्ञान निर्वाणक-ल्याणकके कालका स्तवन सो कालस्तवन है, अर केवलज्ञानादि अनंतचतुष्टयभावका स्तवन सो भावस्तवन है ऐसैं छहप्रकार स्तवन कह्या। ए तीर्थंकर वा सिद्ध तथा आचार्य उपाध्याय साधु इनमें एकएकका नामका उच्चारण करना सो नामवंदना है अर अरहंत सिद्धआचार्यादिकनिमें एकका प्रतिबिंबादिककी वंदना सो स्थापना वंदना है। तिनके शरीरकी वंदना सो द्रव्यवंदना है। अरहंत सिद्ध आचार्यादिकनिकरि व्याप्त जो क्षेत्र ताकी वंदना सो क्षेत्रवं-दना है। तिन ही पंचपरमगुरुनिमें कोऊ एककरि व्याप्त जो काल ताकी वंदना सो कालवंदना है। ए तीर्थंकरका वा सिद्धका वा

आचार्यका वा उपाध्यायका वा साधुके आत्मगुणनिकूं वंदना करना सो भाववंदना है। ऐसै छहप्रकार वंदना कही।

अब छहप्रकार प्रतिक्रमण कहै हैं। अयोग्य नामके उच्चारणमें कृतकारितअनुमोदनारूप मनवचन कायतैं उपज्या दोषका निराकरणके अर्थि प्रतिक्रमण करना सो नामप्रतिक्रमण है। कोऊ शुभ अशुभ स्थापनाका निमित्ततै मनवचनकायतैं उपज्या दोषतैं आत्मा कूं निवृत्त करना सो स्थापनाप्रतिक्रमण है। अर द्रव्य जो आहार पुस्तक औषधादिकके निमित्ततैं मनवचनकायतैं उपज्या दोषका निराकरणके अर्थ द्रव्यप्रतिक्रमण है। क्षेत्रमें गमनस्थानादिकके निमित्ततैं उपज्या अशुभपरिणामजनित दोषनिका निराकरणके अर्थ क्षेत्रप्रतिक्रमण है। अर दिवस रात्रि पक्ष ऋतु शीत उष्ण वर्षाकाल इनके निमित्ततै उपज्या अतीचारका दूर करनेकूं प्रतिक्रमण करना सो कालप्रतिक्रमण है। अर रागद्वेषादिभावनितैं उपज्या दोषके दूर करनेकूं भावप्रतिक्रमण कहै है। बहुरि अयोग्य पापके कारण जे नामउच्चारण करनेका त्याग सो नामप्रत्याख्यान है अर अयोग्य मिथ्यात्वादिकके प्रवर्तावनेवाली स्थापना करनेका त्याग सो स्थापना प्रत्याख्यान है। पापबंधका कारण सदोषद्रव्य वा तपके निमित्त निर्दोषद्रव्यका हू मनवचनकाय करि त्याग सो द्रव्यप्रत्याख्यान है। बहुरि असंजमका कारण क्षेत्रका त्याग सो क्षेत्रप्रत्याख्यान है। असंजमका कारण कालका त्याग सो काल प्रत्याख्यान है मिथ्यात्व असंजम कषायादिकनिका त्याग सो भावप्रत्याख्यान है। ऐसे छहप्रकार प्रत्याख्यान वर्णन किया। अब छहप्रकार कायोत्सर्गकूं कहै हैं। पापके कारण कठोर कटुक

नामादिकतैं उपज्या दोषका दूर करनेके अर्थ कायोत्सर्ग करना सो . म कायोत्सर्ग है। पापरूप स्थापनाका द्वारकरि आया अतीचार दूर करनेकूं कायोत्सर्ग करना सो स्थापनाकायोत्सर्ग है। सदोषद्रव्य के सेवनतैं तथा सदोषक्षेत्रकालके सेवनतैं संयोगतैं उपज्या दोष दूर करनेकूं कायोत्सर्ग करना सो द्रव्यक्षेत्रकालकायोत्सर्ग है। मिथ्यात्व असंयमादिक भावनिकरि कीया दोष दूर करनेकूं कायोत्सर्ग करना सो भाव-कायोत्सर्ग है । ऐसे छह प्रकार छहआवश्यक वर्णन किये । अब गृहस्थके और हू छहप्रकारके आवश्यक है। भगवान जिनेन्द्रका नित्यपूजन करना, निर्ग्रंथगुरुनिका सेवन, स्तवन चिंतवन नित्य करना, अर जिनेन्द्रके प्ररूपणाके आगमका नित्य स्वाध्याय करना, इंद्रियनिकूं विषयनितैं रोकना छहकाय जीवनकी दया पालना सो संयम है, शक्ति प्रमाण नित्य तप करना, शक्ति प्रणाम नित्य दान देना ये षट्प्रकारहू आवश्यक गृहस्थकूं नित्य नियमतैं अंगीकार करना योग्य है। ऐसे समस्तपापका नाशकरने वाली भावनिकूं उज्ज्वल करनेवाली आवश्यकनिकी हानिका अभावरूप चौदमी भावना वर्णन करी ॥ १४ ॥

अब सन्मार्ग प्रभावना नाम पंद्रमीभावना वर्णन करै हैं। इहां सन्मार्ग जो मोक्षका सत्यार्थमार्ग ताका प्रभाव प्रगट करना सो मार्ग प्रभावना है। सो सन्मार्ग रत्नत्रय है रत्नत्रय आत्माका स्वभाव है वाकूं मिथ्यात्व रागद्वेष काम क्रोध मान माया लोभ ये अनादितैं मलीन विपरीत करि राख्या है अब परमागमका शरण पाय मोकूं मिथ्यात्वादिक दोषनिकूं दूरिकर रत्नत्रय-स्वभावकूं उज्ज्वल करना। यो मनुष्यजन्म अर इन्द्रियपूर्णता

अर ज्ञानशक्ति अर परमागमका शरण अर साधर्मीनिका समागम अर रोगादिकरि रहितपना अर अति क्लेशरहित जीविका इत्यादिक पुण्यरूप सामग्री पायकरके हू जो आत्माकूं मिथ्यात्वकषायविषयादिक तैं नाहीं छुडाया तो अनन्तानन्त दुःखनिका भरया संसारसमुद्रतैं मेरा निकसना अनन्तकालहू में नाहीं होयगा जो सामग्री अबार मिली है सो अनन्तकालमेंहू अति दुर्लभ है अर अन्तरंग बहिरंग सकलसामग्री पायकरके हू जो आत्माका प्रभाव नाहीं प्रगट करूंगा तो अचानक काल आय समस्त संयोग नष्ट कर देगा तातैं अब मैं रागद्वेष मोह दूरकरि जैसैं मेरा शुद्ध वीतरागस्वरूप अनुभवगोचर होय तैसैं ध्यान स्वाध्यायमें तत्पर होना । बहुरि बाह्यप्रवृत्ति भी मेरी उज्वलकरि अन्तर्गतधर्मका प्रभाव प्रगटकरि मार्गप्रभावना करना जाकूं देखि अनेक जीवनिके हृदयमें धर्मकी महिमा प्रवेश करि जाय। जिनेंद्रका उत्सव ऐसा करना जाकूं देखि हजारां लोकनिका भाव जिनेन्द्रके जन्मकल्याणसमय जैसै इन्द्रादिक देव अभिषेककरि अपना जन्म सफल किया तैसैं जयजयकार शब्दकरि हजारां स्तवनका उच्चारणकरि लोक आपकूं कृतार्थ मान तन मन प्रफुल्लित हो जाय तैसैं अभिषेककरि प्रभावना करना तथा जिनेन्द्रकी बड़ी भक्ति अर बड़ी विनय अर निश्चल ध्यानकरि ऐसे पूजन करो जाकूं करते देखते अर शुद्धभक्तिके पाठ पढ़ते तथा श्रवण करते हर्षके अंकूरे प्रगट होंय आनन्द हृदय में नाहीं समावता बाह्य उछलने लगजाय जिनकूं देखि मिथ्यादृष्टिनिका हू ऐसा परिणाम हो जाय अहो जैनीनिकी भक्ति

आश्चर्यरूप है जामें ये निर्दोष उत्तम उज्वल प्रमाणीक सामग्री अर ये उज्वल सुवर्णके रूपाके तथा कांशा पीतलमय मनोहर पूजनके पात्र अर ये भक्तिके रसकरि भरे अर्थसहित कर्णनिकूं अमृतरूप सींचते शुद्ध अक्षरनिका उच्चारण अर एकाग्ररूप विनय सहित शब्दनिके अनुकूल उज्वल द्रव्यका चढ़ावना अर ये परम-शांतमुद्रारूप वीतरागके प्रतिविंव प्रातिहार्यनिकरि भूषितका पूजना स्तवन करना नमस्कार करना धन्य पुरुषनिकरि होय है। धन्य इनकी भक्ति धन्य इनका जन्म अर धन्य इनका मनवचनकाय अर धन्य इनका धन जो निर्वांछिक होय ऐसे सन्मार्गमें लगावैं हैं। ऐसा प्रभाव व्याप्त हो जाय। अर देखनेतैं अर श्रवण करने तैं निकटभव्यनिके आनन्दके अश्रु पाप झरने लगि जांय। भक्ति ही संसारसमुद्रमें डूबतेनिकूं हस्तावलम्बन देनेवाली है हमारे भव-भवमें जिनेन्द्रकी भक्ति ही शरण होहू ऐसा जिनेन्द्रका नित्य पूजन करना तथा अष्टाह्निक पर्वमें तथा षोडशकारण दशलक्षण रत्नत्रयपर्वमें समस्त पापके आरम्भ छांडि जिनपूजन करना आनन्दसहित नृत्य करना, कर्णनिकूं प्रिय ऐसे वादित्र बजावना तथा स्वर ताल मूर्छनादिसहित जिनेन्द्रके गुण गावने; ते समस्त सन्मार्ग प्रभावना है। सो जिनके हृदय में सत्यार्थ धर्म बसै है तिनके प्रभावना होय है। बहुरि जिनेन्द्रके प्ररूपे च्यार अनु-योगनिके सिद्धान्तनिका ऐसा व्याख्यान करना जाकूं श्रवण करनेतैं एकान्तका हठ नष्ट होय, अनेकान्त हृदयमें रुचि जाय पापनितैं कांपने लगि जाय व्यसन, छूटिजाय दयारूपधर्ममें प्रवर्तन होजाय अभक्ष्यभक्षणका त्याग होजाय ऐसा व्याख्यान करना

जाके श्रवण करनेतैं हजारां मनुष्यनिके कुदेव कुगुरु कुधर्मके आराधनका त्याग होयकै अर वीतराग देव दयारूपधर्म, आरम्भ परिग्रहरहित गुरुनिके आराधनमें दृढ श्रद्धान होजाय तथा ऐसा व्याख्यान करना जो श्रवणकरि बहुत मनुष्य रात्रिभोजन अयोग्य-भोजन, अन्यायका विषय, परधनमें राग छांडि व्रतनिमें शीलमें संयमभावमें सन्तोषभावमें लीन होय जाय। तथा ऐसा उपदेश करना जाकरि देहादिक परद्रव्यनितैं भिन्न अपने आत्माका अनुभव होना, पर्यायमें आपा छूटना, जीव अजीवादिक द्रव्यनिका प्रमाणनयनिक्षेपनिकरि निर्णय होय संशयरहित द्रव्यगुणपर्याय-निका सत्यार्थ स्वरूप प्रगट हो जाना मिथ्या अन्धकार दूर होना ऐसा आगमका व्याख्यानतै सन्मार्गकी प्रभावना होय है। बहुरि घोर तपश्चरण करना जो कायरनिकरि नाहीं धारण किया जाय ऐसैं तपकरि प्रभावना होय है। क्योंकि विषयानुराग छांडि निर्वांछक होनेकरि आत्माका प्रभाव भी प्रकट होय है अर धर्मका मार्ग भी तपहीतै दिपै है। यो तप ही दुर्गतिका मार्गका नष्ट करने-वाला है। तप बिना कामादिकविषय ज्ञानकूं चारित्रकूं नष्ट करि देहैं तपके प्रभावतैं कामका क्षय होय रसनाइंद्रियकी चपलता नष्ट होय लालसाका अभाव होय है यातैं रत्नत्रयकी प्रभावना तपही तैं दृढ़ होय है। बहुरि जिनेन्द्रका प्रतिविंबकी प्रतिष्ठा करना जिनेन्द्रका मन्दिर करावना यातैं सन्मार्गकी प्रभावना है जातैं प्रतिष्ठा करावनेकरि जहांतांई जिनबिंब रहैगा तहांतांई दर्शन स्तवन पूजनादिकरि अनेक भव्य पुण्य उपार्जन करेंगे अर जिन-मन्दिर करावेंगे तिन गृहस्थनिका ही धनपावना सफल होयगा।

पूजन रात्रिजागरण शास्त्रनिका व्याख्यान श्रवण पठन, जिनेंद्रका स्तवन सामायिक प्रतिक्रमण अनशनादिकतप नृत्य गान भजन उत्सव जिन-मन्दिर होय तदि ही होय जिनमन्दिर बिना धर्मका समस्त समागम होय ही नाहीं यातैं बहुत कहा लिखिये अपना परका परम उपकारका मूल प्रतिष्ठा करना अर मन्दिर करवाना है उत्कृष्टधर्मका मार्ग तो समस्तपरिग्रह छांडि वीतरागता अंगीकार करना है परन्तु जाके प्रत्याख्यान वा अप्रत्याख्यान नाम कषायका उपशम भया नाहीं तातैं गृहसम्पदा छांड़ी जाय नाहीं अर धनसम्पदा बहुत होय तो प्रथम तो जिनका आप अन्यायसूं धन लिया होय वाके निकट जाय क्षमा ग्रहण कराय उनका धन लौटा देना बहुरि धन बहुत होय तदि नवीनधन उपार्जनका त्याग करना बहुरि तीव्ररागके बधावनेवाले इन्द्रियनके विषयनकी लालसा छांडि करि संवररूप होना, फिर जो धन है तामेंसूं अपने मित्र हितू पुत्री बहण भूवा बन्धुजननिमें जे निर्धन रोगी दुःखित होंय तिनको वा अनाथ विधवा होंय तिनको यथायोग्य देय संतोषित करना बहुरि अपने आश्रित सेवकादिक वा समीप वसनेवाले तिनको यथायोग्य सन्तोषित करकैं बहुरि पुत्रको स्त्रीको विभागादिक निरालो करि पीछैं जो द्रव्य होय ताकूं जिनबिंबके करवानेमें वा जिनबिंबकी प्रतिष्ठा करावने में तथा जिनेन्द्रके धर्म का आधार सिद्धान्तनिके लिखावनेमें कृपणता छांडि उदारमनतैं परके उपकार करनेकी बुद्धितैं धन लगावै है तिस समान कोऊ प्रभावना नाहीं है अर जे मंदिरप्रतिष्ठा तो करावैगा अर अनीतिकरि परधन राखि मेलैगा अन्यायका धनकूं ग्रहण करेगा वो

ताकी समस्त प्रभावना नष्ट हो जायगी तथा प्रतिष्ठा करावनेवाला मंदिर करावनेवाला खोटा बनिज व्यवहार करै तथा हिंसादिक महापापनिमें निंद्य अयोग्य वचननिमें तथा तीव्रलोभमें प्रवर्तै, कुशीलमें प्रवर्तै तथा अतिकृपणताकरि परिणाममें संक्लेशरूप हुआ धनकूं खरच करै तो समस्त प्रभावना नष्ट हो जाय यातैं प्रतिष्ठा का कराने वाला, मंदिर करावनेवालाकी बाह्य प्रवृत्ति भी शुद्ध होय है ताकी प्रभावना होय है तथा शिखर कलश घंटा चढावने करि क्षुद्रघंटिका बांधनेकरि प्रभावना करै तथा मंदिरनिमें चंदोवा घंटा सिंहासनादि उत्तमउपकरण चढावनेकरि अर स्वाध्यायमें प्रवृत्ति इत्यादिकरि प्रभावना दुःखका नाश करनेवाली होय है प्रभावना शुद्ध आचरण करि होय है यातैं जिनवचनका श्रद्धानी होय सो धर्मकी प्रभावनाही करै जैनीनिका गाढा प्रेम देखि मिथ्यादृष्टीनिकैं हृदयमें हू बड़ो महिमा दीखै जैनीनिका धर्म जो प्राण जातै हू अभक्ष्यभक्षण नाहीं करै हैं, तीव्ररोग वेदना आवतैंहू रात्रिमें औषधि जलादिकका पान नाहीं करैं है, धन अभिमानादिक नष्ट होते हू असत्य बचनादि नाहीं बोलैं हैं, महाआपदा आवतैं हू परधनमें चित्त नाहीं चलावै हैं। अपना प्राण जातैं हू अन्य जीवका घात नाहीं करैं हैं तथा शीलका दृढता परिग्रहपरिमाणता परमसंतोष धारण करनेतैं आत्मप्रभावना होय अर मार्गकी प्रभावना हू होय तातैं समस्त धन जाते हू अर प्राण जातै हूं अपने निमित्ततैं धर्म की निंदा हास्य कदाचित् नाहीं करावै ताकै सन्मार्ग प्रभावना अंग होय है। इस प्रभावनाकी महिमा कोटि जिह्वानितैं वर्णन करनेको कोऊ समर्थ नाहीं है यातैं भो भव्यजन

हो त्रिलोकमें पूज्य जो प्रभावनाअंग ताकूं दृढ़ धारण करि याहीकूं भक्ति करि पूजो याका महाअर्घ उतारण करो जो प्रभावनाकूं दृढ़ धारण करै है सो इन्द्रादिक देवनिकरि पूज्य तीर्थंकर होय है ऐसैं सन्मार्गप्रभावनानामा पंद्रमी भावना वर्णन करी ॥१५॥

अब प्रवचनवत्सलत्व नाम सोलमी भावना वर्णन करै हैं। प्रवचन जो देव गुरु धर्म इनमें जो वात्सल्य कहिये प्रीतिभाव सो प्रवचनवत्सलत्व नाम कहिये है। जे चारित्रगुणयुक्त हैं शीलके धारक हैं परम साम्यभावकरि सहित बाईसपरीषहनिके सहनेवाले देहमें निर्ममत्व समस्त विषय—वांछारहित आत्महितमें उद्यमी परके उपकार करने में सावधान ऐसे साधुजननिके गुणनिमें प्रीतिरूपपरिणाम सो वात्सल्य है तथा व्रतनिके धारक अर पापसूं भयभीत न्यायमार्गी धर्ममें अनुरागके धारक मंदकषायी संतोषी ऐसे श्रावक तथा श्राविका तिनके गुणनिमें तिनकी संगतिमें अनुराग धारण करना सो वात्सल्य है तथा जे स्त्रीपर्यायमें व्रतनिकी हदकूं प्राप्त भये अर समस्त गृहादिक परिग्रह छांडि कुटुम्बका ममत्व तजि देहमें निर्ममत्वता धार पंच इंद्रियनिके विषय त्यागि एकवस्त्रमात्र परिग्रहकूं अवलम्बनकरि भूमिशयन क्षुधा तृषा शीतउष्णादि परिषहनिके सहनेकरि संयमसहित ध्यान स्वाध्याय सामायिकादिक आवश्यकनिकरि युक्त अर्जिकाकी दीक्षा ग्रहणकरि संयमसहित काल व्यतीत करै हैं तिनके गुणनिमें अनुराग सो वात्सल्यभाव है तथा मुनीश्वरनिकी ज्यों वनमें निवास करते बाईस परीषह सहते उत्तम क्षमादि धर्मके धारक देहमें निर्ममत्व आपके निमित्त किया औषध अन्न पानादि नाहीं ग्रहण करते एक

वस्त्र कोपीनविना समस्तपरिग्रहके त्यागी उत्तम श्रावकनिके गुण-निमें अनुराग सो वात्सल्य है तथा देव गुरु धर्मका सत्यार्थ स्वरूपकूं जानि दृढश्रद्धानी धर्ममें रुचिके धारक अव्रतसम्यग्दृष्टिमें वात्सल्यता करहु। इस संसारमें अपने स्त्री पुत्र कुटुम्बादिकनिमें तथा देहमें इन्द्रियनिके विषयनिके साधकनिमें अनादितैं अति अनुरागी होय याहीके अर्थि कटैं हैं मरैं हैं अन्यकूं मारै हैं ऐसा कोऊ मोहका अद्भुत माहात्म्य है। ते धन्यपुरुष हैं जे सम्यग्ज्ञानतैं मोहकूं नष्टकरि आत्माके गुणनिमें वात्सल्यता करै हैं संसारी तो धनकी लालसाकरि अति आकुल भए धर्ममें वात्सल्यता त्यागैं हैं अर संसारीनिके धन बधै है तदि अतितृष्णा बधै है। समस्त धर्मका मार्ग भूलजाय धर्मात्मानिमें दूरहीतैं वात्सल्यता त्यागै है रात्रिदिन धनसंपदाके बधावनेमें ऐसा अनुराग बधै है लाखनिका धन हो जाय तो कोटिनमें वांछा करता आरम्भ परिग्रहकूं बधावता पापनिमें प्रवीणता बधावता धर्ममें वात्सल्य नियमतै छांडै है जहां दानादिकनिमें परोपकारमें धन लगावता दीखै तहां दूरहीतैं टालि निकलै है अर बहु आरम्भ बहुपरिग्रह अतितृष्णातैं समीप आया नरकका वास ताकूं नाहीं देखै है तामें पंचमकालका धनाढ्यां तो पूर्व मिथ्याधर्म कुपात्रदान कुदाननिमें रचि ऐसा कर्म बांधि आया है सो नरक तिर्यंचगतिकी परिपाटी असंख्यातकाल अनंतकाल-पर्यंत नाहीं छूटै उनका तन मन वचन धन धर्मकार्यमें नाहीं लागै है। रात्रिदिन तृष्णा अर आरंभकरि क्लेशित रहैं तिनके धर्मात्मामें अर धर्मके धारणमें कदाचित् वात्सल्यता नाहीं होय है अर

धन रहित धर्मात्मा हू होय ताकूं नीचा मानै है तातैं भो आत्मन् हितके वांछक हो धनसंपदाकूं महामदकी उपजावनेवाली जानि अर देहकूं अस्थिर दुःखदायी जानि कुटुम्बकूं महाबंधन मानि इनसूं प्रीति छांडि अपने आत्माकूं वात्सल्य करो। धर्मात्मामें, व्रतीनिमें, स्वाध्यायमें, जिनपूजनमें वात्सल्यता करो जे सम्यक्चारित्ररूप आभरणकरि भूषित साधुजन हैं तिनको स्तवन करै हैं गौरव करै हैं तिनके वात्सल्यनाम गुण है सो सुगतिकूं प्राप्त करै है कुगतिका नाश करै है, वात्सल्यगुणके प्रभाव करकैं ही समस्त द्वादशांग विद्या सिद्ध होय है जातै सिद्धान्तसूत्रमे अर सिद्धांतका उपदेश करनेवाला उपाध्यायमे सांची भक्तिके प्रभावतैं श्रुतज्ञानावरणकर्मका रस सूकिजाय है तदि सकल विद्या सिद्ध होय है। वात्सल्यगुणके धारककूं देव नमस्कार करै हैं अर वात्सल्य करकै ही अठारह प्रकार बुद्धि ऋद्धि अर आकाशगामिनी क्रिया ऋद्धि दोय प्रकार, चारणऋद्धि अनेक प्रकार अर अष्टप्रकार विक्रियाऋद्धि, तीन प्रकार बलऋद्धि, सप्तप्रकार तपऋद्धि, छहप्रकार रसऋद्धि, छहप्रकार औषधऋद्धि, दोयप्रकार क्षेत्रऋद्धि इत्यादिक अनेकशक्ति प्रकट होय हैं। यहां ऋद्धिनिका स्वरूप कहिये तो कथनी बधिजाय तातैं नाहीं लिख्या है अर्थप्रकाशिकादिनिमें लिख्या है तहांतैं जानना।

वात्सल्य करके ही मंदबुद्धिनिकै हू मतिज्ञान श्रुतज्ञान विस्तीर्ण होय हैं वात्सल्यके प्रभावतैं पापका प्रवेश नाहीं होय है वात्सल्यकरके तप हू भूषित होय है तपमें उत्साह विना तप निरर्थक है। यो जिनेन्द्रको मार्ग वात्सल्यकरिही शोभाकूं प्राप्त होय है। वात्सल्यकरिही शुभ ध्यान वृद्धिकूं प्राप्त होय है वात्सल्यतैं ही

सम्यग्दर्शन निर्दोष होय है। वात्सल्य करके ही दान दिया कृतार्थ होय है। पात्रमें प्रीति विना तथा देनेमें प्रीति विना दान निंदाका कारण है जिनवाणीमें वात्सल्य जाके होयगा ताहीके प्रशंसा योग्य सांचा अर्थ उद्योतरूप होयगा जाके जिनवाणी में वात्सल्य नाहीं, विनय नाहीं ताकूं यथावत अर्थ नाहीं दीखैगा विपरीत ग्रहण करैगा इस मनुष्य जन्मका मण्डन वात्सल्य ही है वात्सल्यरहित बहुत मनोज्ञ आभरण वस्त्र धारण करना हू पदपदमें निंद्य होय है। अर इस लोकका कार्य जो यशको उपार्जन, धर्मको उपार्जन धनको उपार्जन सो वात्सल्य हीतैं होय है। अर परलोक जो स्वर्गलोकमें महर्द्धिक देवपना सो हू वात्सल्यहीतै होय है, वात्सल्यविना इस लोकका समस्त कार्य नष्ट हो जाय परलोकमें देवादिगति नाहीं पावै है। बहुरि अर्हंत-देव निर्ग्रंथगुरु स्याद्वादरूप परमागम दयारूपधर्ममें वात्सल्य है सो संसारपरिभ्रमणका नाशकरि निर्वाणकूं प्राप्त करै है तथा वात्स-ल्यतैं ही जिनमन्दिरका वैयावृत्त्य जिनसिद्धान्तका सेवन साधर्मी-निका वैयावृत्त्य तथा धर्ममें अनुराग दान देनेमें प्रीति ये समस्त-गुण वात्सल्यतैं ही होय हैं जे षट्कायके जीवनिमे वात्सल्य किया है ते ही त्रैलोक्यमें अतिशय रूप तीर्थंकर प्रकृतिका उपार्ज्जन करै हैं यातैं जे कल्याणके इच्छुक हैं ते भगवान जिनेन्द्रका उपदेश्या वात्सल्यगुणकी महिमा जानि षोडशमा अंग जो वात्सल्यताका स्तवनकरि पूजनकरि याका महान अर्घ उतारण करै हैं। सो दर्शनकी विशुद्धता पाय बहुरि तप आचरणकरि अहमिंद्रादि देव-लोककूं प्राप्त होय फिर जगतका उद्धारक तीर्थंकर होय निर्वाण

कूं प्राप्त होय है। षोडश कारण धर्मकी महिमा अचिंत्य है जातैं त्रैलोक्यमें आश्चर्यकारी अनुपम विभवके धारक तीर्थंकर होय हैं ऐसे षोडशभावनाका संक्षेपविस्ताररूप वर्णन किया॥ १६ ॥

अब धर्मका स्वरूप दशलक्षण रूप है इन दश चिह्ननिकरि अन्तर्गतधर्म जानिये है। उत्तमक्षमा, उत्तममार्दव उत्तमआर्जव. उत्तमसत्य, उत्तमशौच, उत्तमसंयम, उत्तमतप, उत्तमत्याग, उत्तमआकिंचन्य, उत्तमब्रह्मचर्य ए दश धर्मके लक्षण हैं। जातैं धर्म तो वस्तुका स्वभावहीकूं कहिये है लोकमें जेते पदार्थ हैं तितने अपने स्वभावकूं कदाचित् नाहीं छांडै हैं। जो स्वभावका नाश हो जाय तो वस्तुका अभाव होय, सो होय नाहीं आत्मा नाम वस्तुका स्वभाव क्षमादिकरूप है अर क्रोधादिक कर्मजनित उपाधि हैं आवरण हैं। क्रोधनाम धर्मका अभाव होय तदि क्षमा नाम आत्मा का स्वभाव स्वयमेव रहै है ऐसैं ही मानका अभावतैं मार्दवगुण अर मायाके अभावतैं आर्जवगुण लोभके अभावतैं शौचगुण इत्यादिक आत्माके गुण हैं ते कर्मके अभावतैं स्वयमेव प्रगट होय हैं तातैं ये उत्तमक्षमादिक आत्माका स्वभाव हैं मोहनीय कर्मके भेद क्रोधादिक कषायनिकरि अनादिका आच्छादित होय रहै हैं कषाय के अभावतैं क्षमादिक स्वाभाविक आत्माका गुण उघडै है। अब उत्तमक्षमागुणकूं वर्णन करै हैं—

क्रोध वैरीका जीतना सो ही उत्तमक्षमा है कैसाक है क्रोधवैरी इस जीवके निवास करनेका स्थान जे संयमभाव सन्तोषभाव निराकुलताभाव ताकूं दग्ध करनेकूं अग्नि समान सम्यग्दर्शनादिरूप रत्ननिका भंडारकूं दग्ध करै है यशकूं नष्ट करै है अपयशरूपकालिमाकूं वधावै है धर्मअधर्मका विचार नष्ट

होय जाय है क्रोधीके अपना मन वचन काय आपके वश नाहीं रहै है। बहुत कालहूकी प्रीतिकूं क्षणमात्रमें विगाडि महान वैर उत्पन्न करै है क्रोधरूप राक्षसके वश होय सो असत्यवचन लोकनिंद्य भीलचाण्डालादिकनिके बोलनेयोग्य वचन बोलै है। क्रोधी समस्त धर्म लोपै है, क्रोधी होय तब पिताने मारि नाखै माताकूं पुत्रकूं स्त्रीकूं बालककूं स्वामीकूं सेवककूं मित्रकूं मारि प्राणरहित करै है। अर तीव्रक्रोधी आपका हू विषतैं शस्त्रतैं मरण करै है ऊंचे मकान तथा पर्वतादिकतै पतन करै है, कूपमें पड़ै है, क्रोधीकी कोऊप्रकार प्रतीति नाहीं जाननी। क्रोधी है सो यमराजतुल्य है, क्रोधी होय सो प्रथम तो अपना ज्ञानदर्शन क्षमादिक गुणनिकूं घातै है पीछे कर्मके वशतैं अन्यका घात होय वा नाहीं होय, क्रोधके प्रभावतैं महातपस्वी दिगम्बरमुनि धर्मतैं भ्रष्ट होय नरक गये हैं। यो क्रोध है सो दोऊ लोकका नाश करै है, महापापबन्ध कराय नरक पहुंचावै है, बुद्धि भ्रष्ट करै है, निर्दयी करदे है अन्यकृत उपकारकूं भुलाय कृतघ्न करै है तातैं क्रोधसमान पाप नाहीं इसलोकमें क्रोधादिक कषाय समान अपना घात करनेवाला अन्य नाहीं है। जो लोकमें पुण्यवान है महाभाग्य है जिनका दोऊलोक सुधरना है तिनहीके क्षमा नाम गुण प्रगट होय है। क्षमा जो पृथ्वी ताकी ज्यों सहनेका स्वभाव होय सो क्षमा है। अर सम्यक् स्वरूपकूं हित अहितकूं समझकरि जो असमर्थनिकरि किया हू उपद्रवनिकूं आप समर्थ होय करके रागद्वेषरहित हुआ सहै है, विकारी नाहीं होय है ताकूं उत्तमक्षमा कहिये है। इहां उत्तमशब्द सम्यग्ज्ञानसहित होनेकं

कह्या है। उत्तमक्षमा त्रैलोक्यमें सार है उत्तमक्षमा संसारसमुद्रतैं तारनेवाली है उत्तमक्षमा है सो रत्नत्रयकूं धारण करने वाली है उत्तमक्षमा दुर्गतिके दुःखनिकूं हरनेवाली है जाके क्षमा होय ताके नरक अर तिर्यंच दोऊ गतिनमे गमन नाहीं होय है उत्तमक्षमाकी लार अनेकगुणनिके समूह प्रगट होय हैं मुनीश्वरनिकूं तो अति प्यारी उत्तमक्षमा है उत्तमक्षमाका लाभकूं ज्ञानीजन चिंतामणि-रत्न मानै है अर उत्तमक्षमा ही मनकी उज्वलता करै है, क्षमा-गुणविना मनकी उज्वलता अर स्थिरता कदाचित् ही नाहीं होय है, वांछित सिद्ध करनेवाली एक क्षमा ही है। इहां क्रोधके जीतने की भावना ऐसी जनानी—कोऊ आपकूं दुर्वचनादिकरि दुःखित करै गाली दे चोर कहै अन्यायी पापी दुराचारी दुष्ट नीच वा दोगलो चण्डाल पापी कृतघ्नी ऐसैं अनेक दुर्वचन कहै तो ज्ञानी ऐसी भावना करै जो याका मैं अपराध किया है कि नाहीं किया है? जो मैं याका अपराध किया तथा रागद्वेष मोहका वशतैं कोई बातकरि दुखाया है तदि मै अपराधी हूँ मोकूं गाली देना धिक्कार देना नीच चोर कपटी अधर्मी कहना न्याय है। मोकूं इस सिवायभी दण्ड देना सो भी ठीक है, मैं अपराध किया है मोकूं गाली सुनि रोष नाहीं करना ही उचित है। अपराधीकूं नरकमें दण्ड भोगना पड़ै है तातैं मेरा निमित्तसूं याके दुःख भया तदि क्लेशित होय दुर्वचन कहै है ऐसा विचारकरि क्लेशित नाहीं होय क्षमा ही करै है अर जो दुर्वचन कहनेवाला मन्द-कषायी होय तो आप जाय क्षमा ग्रहण करावनेकूं कहै भो कृपालु! मैं अज्ञानी प्रमादके वश वा कषायके वश होय आपका

चित्तकूं दुखाया सो अब मैं अपराध माफ कराऊं हूं आगानै ऐसा कार्य चुककरि नाहीं करूंगा एकबार चूकिजाय ताकी चूककूं महतपुरुष माफ करै हैं अर जो आगला न्यायरहित तीव्रकषायी होय तो वासूं अपराध माफ करावनेको जाय नाहीं कालातरमें क्रोध उपशांत हुआ पाछें माफ करावै अर जो आप अपराध नाहीं किया अर ईर्षाभावतें केवल दुष्टतातें आपकूं दुर्वचन कहै तथा अनेक दोष लगावै तो ज्ञानी किंचित्संक्लेश नाहीं करै ऐसा विचारै जो मैं याका धन हरया होय तथा जमीन जायगा खोंसी होय तथा याकी जीविका विगाडी होय चुगली खाई होय तथा याका दोष कहणादि करकै जो मैं अपराध किया होय तो मोकूं पश्चात्ताप करना उचित है अर जो मैं अपराध नाहीं किया तदि मोकूं कुछ फिकर नाहीं करना यो दुर्वचन कहै है सो नामकूं कहै है तथा कुलकूं कहै है सो नाम मेरा स्वरूप नाहीं जातिकुलादि मेरा स्वरूप नाहीं मैं तो ज्ञायक हू जाकूं कहै सो मै नाहीं। मैं हूं ताकूं वचन पहुंचै नाहीं तातैं मोकूं क्षमा ग्रहण करना ही श्रेष्ठ है। बहुरि जो यो दुर्वचन कहै है सो मुख याका, अभिप्राय याका, जिह्वा-दंत ओष्ठ याका अर शब्द अर पुद्गल याका परिणामनिकरि शब्द उपज्या जाकूं श्रवणकरि मैं जो विकारकूं प्राप्त होऊं तो या मेरी बड़ी अज्ञानता है। बहुरि जो ईर्षावान दुष्ट पुरुष मोकूं गाली देहै सो स्वभावकरि देखिये तो गाली कुछ वस्तु ही नाहीं है मेरे कहां हू गाली लगी नाहीं दीखै है अवस्तुमें देने लेनेका व्यवहार ज्ञानी होय सो कैसे संकल्प करै। बहुरि जो मोकूं चोर कहै अन्यायी कपटी अधर्मी इत्यादिक कहै तहां ऐसा चिंतवन करै 'जो हे

आत्मन्! तू अनेकवार चोर हुआ अनेक जन्ममें व्यभिचारी ज्वारी अभक्ष्यभक्षी भील चाँडाल चमार गोला बांदा कूकर शूकर गधा इत्यादिक तिर्यंच तथा अधर्मी पापी कृतघ्नी होय होय आया अर संसारमें भ्रमण करता अनेकवार होऊंगा अब तो कूकर शूकर चोर चांडाल कहै ताकूं श्रवणकरि तोकूं क्लेशित होना बड़ा अनर्थ है अथवा ये दुष्टजन दुर्वचन कहै है सो याको अपराध नाहीं हमारा बांध्या पूर्वजन्मकृत कर्मका उदय है सो याके दुर्वचन कहनेके द्वारकरि हमारे कर्मकी निर्जरा होय है सो हमारे बड़ा लाभ है इनका यह हू उपकार है जो ये दुर्वचन कहनेवाले अपना पुण्यका समूहका तो दोष कहनेकरि नाश करै हैं अर मेरे किये पापकूं दूरि करैं हैं ऐसे उपकारीतैं जो मैं रोष करूं तो मो समान कोऊ अधम नाहीं है। बहुरि यो तो मोकूं दुर्वचन ही कह्या है। मारया तो नाहीं रोपकरि मारने लगिजाय है क्रोधी तो अपने पुत्र पुत्री स्त्री बालादिककूं मारै है सो मोकूं मारया नाहीं यो भी लाभ है, अर जो दुष्ट आपकूं मारै तो ऐसा विचारै जो मोकूं मारया ही प्राणरहित तो नाहीं किया दुष्ट तो आपका मरण नाहीं गिन करके भी अन्यकूं मारै है यो भी मेरे लाभ है। अर जो प्राणरहित करै तो ऐसा विचारे एक बार मरणो ही छो कर्मका ऋण चुक्यो। हम इहां ही कर्मके ऋणरहित भये हमारा धर्म तो नाहीं नष्ट भया। प्राणधारण तो धर्महीतैं सफल है ये द्रव्यप्राण तो पुद्गलमय हैं मेरा ज्ञान दर्शन क्षमादिधर्म ये भावप्राण हैं इनका घात क्रोधकरि नाहीं भया इस समान मेरे लाभ नाहीं है। बहुरि जो कल्याणरूप कार्य हैं तिनमें अनेक विघ्न आवै ही हैं जो

मेरे विघ्न आया सो ठीक ही है। मैं तो अब समभावकूं आश्रय करूं अर जो उपद्रव आवते मैं क्षमा छांडि विकारकूं प्राप्त हूंगा तो मोकूं देखि अन्य मंदज्ञानी तथा कायर त्यागी तपस्वी धर्मतैं शिथिल हो जायंगे तो मेरा जन्म केवल अन्यके क्लेशके अर्थि ही भया तथा मैं वीतरागधर्म धारण करके हू क्रोधी विकारी दुर्वचन होऊं तो मोकूं देखि अन्य हू क्रोधमें प्रवर्तने लगिजांय यदि धर्मकी मर्यादा भंगकरि पापकी परिपाटी चलानेवाला मैं ही प्रधान भया तातैं क्षमागुण प्राण जाते हू धन अभिमान होते हू मोकूं छांडना उचित नाहीं। बहुरि पूर्वे मै अशुभकर्म उपजाया ताका फल मैं ही भोगूंगा अन्य जे जन है ते तो निमित्तमात्र है इनके निमित्ततैं पाप उदय नाहीं आता तो अन्यके निमित्ततैं आता। उदयमें आया कर्म तो फल दिये बिना टलता नाहीं बहुरि ये लौकिक अज्ञानी मेरेविषै क्रोधित होय दुर्वचनादिक करि उपद्रव करै है अर जो मैं भी यातैं दुर्वचनादिककरि उत्तर करूं तो मैं तत्त्वज्ञानी अर ये अज्ञानी दोऊ समान भया हमारा तत्वज्ञानीपना निरर्थक भया न्यायमार्गतैं उदयमें आया मेरा पापकर्म ताकूं सन्मुख होते कौन विवेकी अपना आत्माकूं क्रोधादिकनिके वश करै। भो आत्मन्! पूर्वे बांध्या जो असाताकर्म ताका अब उदय आया ताकूं इलाज-रहित अरोक जानि करके समभावनितैं सहो जो क्लेशित होय भोगोगे तो असाताकूं तो भोगोहीगे अर नवीन बहुत असाताका बंध और करोगे तातै होनहार दुःखतैं निःशंकित होय समभावतैं ही सहो ये दुष्टजन बहुत है अपना सामर्थ्य करके मेरे रोषरूप अग्निकूं प्रज्वलितकरि मेरा समभावरूप संपदाकूं दग्ध किया

चाहैं हैं अब यहां जो असावधान होय क्षमाकूं छांड दूंगा तो अवश्य ही साम्यभाव नष्ट करकै धर्म अर अपना यशका नाशकरने वाला होय जाऊंगा तातैं दुष्टनिका संसर्गमें सावधान रहना उचित है। ज्ञानी मनुष्य तो नाहीं सह्या जाय ऐसा क्लेशकूं उत्पन्न होते हू पूर्वकर्मका नाश होना जानि हर्षित ही होय है, जो वचनकंटकनिकरि वेध्या जो मैं क्षमा छांडदूंगा तो क्रोधी अर मैं समान भया अर जो वैरी नानाप्रकारका दुर्वचन मारण पीडन करकैं मेरा इलाज नाहीं करै तो मैं संचय किये अशुभकर्म तिनतैं कैसे छूटता तातै वैरी हू हमारा उपकार ही किया है अथवा तातैं विवेकी होय जो जिनआगमके प्रसादतैं साम्यभावका अभ्यास किया ताकी परीक्षा लेनेकूं ये वैरीरूप परीक्षा स्थान प्रगट भया है सो मेरे भावनिकी परीक्षा करि, ये परीक्षाकरनेके ही कर्म उदय भये हैं जो समभावकी मर्यादाकूं भेदकरि जो मैं वैरीनिमें रोष करूं तो ज्ञाननेत्रका धारक हू मैं समभावकूं नाहीं प्राप्त होय क्रोधरूप अग्निमें भस्म होय जाऊं। मैं वीतरागके मार्गमें प्रवर्तन करने वाला संसारकी स्थिति छेदनेमें उद्यमी अर मेरा ही चित्त जो द्रोहकूं प्राप्त हो जाय तो संसारके मार्गमे प्रवर्त्तते मिथ्यादृष्टीनिके समान मैं हू भया अर जो दुष्ट जननिकूं न्याय धर्मरूप मार्ग समझाया अर क्षमा ग्रहण कराया जो नाहीं समझै अर क्षमा ग्रहण न करै तो ज्ञानीजन वासूं रोष नाहीं करै। जैसे विष दूर करनेवाला वैद्य कोऊका विष दूरि करनेकूं अनेक औषधादि देय विष दूरि करया चाहे अर वाका जहर दूरि नाहीं होय तो वैद्य आप जहर नाहीं खाय है जो याका

विष दूर नाहीं भया तो मैं हू विष भक्षणकरि मरूं' ऐसा न्याय नाहीं है तैसैं ज्ञानीजनहू दुष्टजनकी पहली दुष्टताकी जाति पिछानैं जो यो दुष्टता छांडेगा वा नाही छांडैगा वा अधिक दुष्टता धारैगा ऐसा विचारि जो विपरीत परिणमता देखि ताकूं तो उपदेश ही नाहीं देना अर कुछ समझने लायक योग्यता दीखै तो न्याय वचन हितमितरूप कहना अर दुष्टता नाहीं छांडै तो आप क्रोधी नाहीं होना जो यो मोकूं दुर्वचनादि उपद्रवकरि नाही कंपायमान करै तो मै उपशम भावकरि धर्मका शरण कैसैं ग्रहण करता तातैं जो मोकूं पीडा करनेवाला है सो मोकूं पापतैं भयभीत करि धर्मसूं सम्बन्ध कराया है तातैं पीडा करनेवालाहू मेरा प्रमादीपना छुडाय वडा उपकार किया है। बहुरि जगतमें केतेक उपकारी तो ऐसे हैं जो अन्यजनके सुख होनेके निमित्त अपना शरीरकूं छॉडै है अर धनकूं छांडै हैं तो मेरे दुर्वचनबन्धनादिक सहनेमें कहा जायगा मोकूं दुर्वचन कहे ही अन्यके सुख हो जाय तो मेरे क्या हानि है ? बहुरि जो अपनेकूं पीडा करनेवालेतैं रोष नाहीं करूं तो वैरी के पुण्यका नाश होय है अर मेरे आत्माके हितकी सिद्धि होय है अर पीडा करनेवालेतैं रोष करूं तो मेरा आत्माका हितका नाश होय दुर्गति होय यातैं प्राणनिका नाश होते हू दुष्टनिप्रति क्षमा करना ही एक हित सत्पुरुष कहैं है तातै आत्मकल्याणकी सिद्धि अर्थि क्षमा ही ग्रहण करूं अथवा दुष्टनिकरि दुर्वचनादिक पीडा करनेतैं मेरे जो क्षमा प्रगट भई है सो मेरे पुण्यका उदयतैं या परीक्षाभूमि प्रगट भई है जो मैं इतना कालतैं वीतरागका धर्म धारण किया सो अब क्रोधादिकके निमित्ततैं साम्यभाव रह्या कि

नाहीं रह्या ऐसी परीक्षा करूं बहुरि सोई साम्यभाव प्रशंसा योग्य है अर सो ही कल्याणका कारण है जो मारनेके इच्छुक निर्दयी-निकरि मलीन नाहीं किया गया। बहुरि चिरकालतैं अभ्यास किया शास्त्र करके अर स्वभाव करके कहा साध्य है जो प्रयोजन पड्यां व्यर्थ हो जाय है धैर्य वो हो प्रशंसा योग्य है जो दुष्टनिके कुवचनादि होते नाहीं छूटै दृढ़ रहे उपद्रव आये विना तो समस्त-जन सत्य शौच क्षमाके धारक बन रहे है जैसैं चंदनवृक्षकूं कुल्हाडा काटै तौ हू कुल्हाड़ेका मुखकूं सुगन्धही करै तैसैं जाकी प्रवृत्ति होय सोही सिद्धिकूं साध्या है। बहुरि अन्यकरि किया उपसर्गतैं वा स्वयमेव आया उपसर्ग तिनकरि जाका चित्त कलुषित नाहीं होय सो अविनाशी संपदाकूं प्राप्त होय है। अज्ञानी हैं ते अपने भाव-निकरि पूर्वे किया पापकर्म ताके अर्थि तो नाहीं रोष करै अर जो कर्मके फल देनेके वाह्यनिमित्त तिनिप्रति क्रोध करे हैं जिसकर्मका नाशतैं मेरा संसारका संताप नष्ट होजाय सो कर्म स्वयमेव भोग्या तौ मेरे वांछित सिद्ध भया। बहुरि यो संसाररूप वन अनंत संक्लेशनिकरि भरया है इसमें वसनेवालाके नानाप्रकारके दुःख नाहीं सहने योग्य हैं कहा ? संसारमें तो दुःख ही है जो इस संसारमें सम्यग्ज्ञान विवेककरिरहित अर जिनसिद्धांततैं द्वेष करने वाले अर महानिर्दयी अर परलोकका हितके अर्थि जिनके बुद्धि नाहीं अर क्रोधरूप अग्निकरि प्रज्वलित अर दुष्टताकरि सहित विषयनिकरि लोलुपताकरि अन्ध हठग्राही महाअभिमानी कृतघ्नी ऐसे बहुत दुष्टजन नाहीं होते तो उज्वल बुद्धिके धारक सत्पुरुष अब तपश्चरणकरि मोक्षके अर्थि उद्यम कैसैं करते ? ऐसे क्रोधी

दुर्वचनके बोलनेहारे हठग्राही अन्यायमार्गीनिकी अधिकता देखि करके ही सत्पुरुष वीतरागी भये हैं अर जो मैं बड़े पुण्यके प्रभावतैं परमात्माका स्वरूपका ज्ञाता भयो अर सर्वज्ञकरि उप-देश्या पदार्थनिकूं हू निर्णयरूप जाण्या अर संसारके परिभ्रमणा-दिकतैं भयभीत होय वीतरागमार्गमें हू प्रवर्तन किया अब हू जो क्रोधके वश हूंगा तो मेरा ज्ञान चारित्र समस्त निष्फल होयगा अर धर्मका अपयश करावनवारा होय दुर्गतिका पात्र हूंगा। बहुरि और हू पद्मनंदिमुनि कह्या है जो मूर्खजनकरि बाधा पीडा अर क्रोधके वचन अर हास्य अर अपमानादिक होते हू जो उत्तम-पुरुषनिका मन विकारकूं प्राप्त नाहीं होय ताकूं उत्तमक्षमा कहिये है सो क्षमा मोक्षमार्गमें प्रवर्तते पुरुषके परम सहायताकूं प्राप्त होय है। विवेकी चिंतवन करै है हम तो रागद्वेषादि मल-रहित उज्वल मनकरि तिष्ठां अन्यलोक हमकूं खोटा कहो तथा भला कहो हमकूं कहा प्रयोजन है? वीतरागधर्मके धारकनिकूं तो अपने आत्माका शुद्धपना साधने योग्य है। जो हमारा परि-णाम दोषसहित है अर कोऊ हितू हमकूं भला कह्या तो भला नाहीं हो जावैंगे अर हमारा परिणाम दोषरहित है अर कोऊ हमकूं वैरबुद्धितैं खोटा कह्या तो हम खोटा नाहीं हो जावैंगे फल तो अपनी जैसी चेष्टा आचरण होयगा तैसा प्राप्त होयगा जैसे कोऊ कांचकूं रत्न कहदिया अर रत्नकूं कांच कहदिया तो हू मोल तो रत्नका ही पावैगा कांचखण्डका बहुतधन कौन देवै। बहुरि दुष्टजन है ताका तो स्वभाव परके दोष कहा हू नाहीं होय वो हू परके दोष कह्यांविना सुखकूं प्राप्त नाहीं होय तातैं दुष्टजन

हैं सो मेरे माहीं अविद्यमान हू दोष लोकमें घरघरमें समस्त-मनुष्यनिप्रति प्रगटकरि सुखी होहू अर जो धनका अर्थी है सो मेरा सर्वस्व ग्रहणकरि सुखी होहू अर जो वैरी प्राणहरणका अर्थी है सो शीघ्र ही प्राण हरो अर स्थानको अर्थी है सो स्थान हरो मैं मध्यस्थ हूं, रागद्वेषरहित हूं, समस्त जगतके प्राणी मेरे निमित्ततैं तो सुखरूप तिष्ठो मेरे निमित्ततैं किसीप्राणीके कोऊ प्रकार दुःख मति होहू या मैं घोषणाकरि कहूं हूं क्योंकि मेरा जीवना तो आयुकर्मके आधीन अर धनका अर स्थानका जावना रहना पापपुण्यके आधीन है हमारे किसी अन्य जीवसे वैर विरोध नाहीं है, समस्तके प्रति क्षमा है। बहुरि हे आत्मन्! जे मिथ्यादृष्टि अर दुष्टतासहित अर हितअहितका विवेक-रहित मूढ ऐसे मनुष्यनिकरि किया जे दुर्वचनादिक उपद्रवनितैं अस्थिर हुआ बाधाकूं मानि क्लेशित होय रह्या है सो तीनोंलोकका चूडामणि भगवान वीतराग है ताहि नाहीं जान्या कहा? तथा वीतरागका धर्मकी उपासना नाहीं कीई कहा? तथा लोक-निकूं मूर्ख नाहीं जान्या कहा? मोही मिथ्यादृष्टि मूढनिके ज्ञान तो विपरीत ही होय है कर्मनिके वादी हैं तातैं इनमें क्षमा ही ग्रहण करना योग्य है। क्षमा है सो इसलोकमें परमशरण है माताकी ज्यों रक्षा करनेवाली है बहुत कहा कहिये जिनधर्मका मूल क्षमा है यांके आधार सकलगुण हैं, कर्मकिर्जराको कारण है, हजारां उपद्रव दूरि करनेवाली है। यातैं धन जाते, जीवितव्य जाते हू क्षमाकूं छांडना योग्य नाही। कोऊ दुष्टताकरि आपकूं प्राणरहित करै तिसकालमें हू कटुवचन मति कहो जो मारने

वालेकूं भी अन्तर्गत वैर छांडि ऐसे कहो जो आप तो हमारे रक्षक ही हो परन्तु हमारा मरण आय पहुँच्या वदि आप कहा करो हमारे पाप कर्मका उदय आयगया तो हू हमारा बडा भाग्य है जो आप सारिखे महान् पुरुषनिके हस्तादिकतैं हमारा मरण होय अर जो हम सारिखा अपराधीकूं आप दण्ड नाहीं दियो तो मार्ग मलीन होजाय अर हम अपराधको फल नरक तिर्यंच गतिमें आगे भोगते सो आप हमकूं ऋणरहित किया। मैं आपसूं वैर विरोध मन बचन कायतैं छांडि क्षमा ग्रहण करूं हूं अर आप भी मेरे अपराधको दण्ड देय क्षमा ग्रहण करो। मैं रोगादिक कष्टकूं भोगि करिकैं अति दुःखतैं मरण करतो सो धर्मका शरणसूं ऋणरहित होय सज्जनकी कृपासहित मरण कररयूं ऐसैं मारनेवालेसूं हू वैर त्यागि समभाव करना सो उत्तमक्षमा है। ऐसैं उत्तमक्षमा नामा धर्मकूं कह्या ॥ १ ॥

अब उत्तममार्दव नाम गुणकूं कहै हैं—मार्दवका स्वरूप ऐसा है जो मानकषायकरि आत्मामें कठोरता होय है सो कठोरताका अभाव होनेतैं जो कोमलता होय सो मार्दवनाम आत्माका गुण है अर जो आत्मा का अर मानकषायका भेदकूं अनुभव करि मान मदका छांडना सो उत्तमार्दव नाम गुण है। मानकषाय तो संसारका बधावनेवाला है अर मार्दव संसारपरिभ्रमणका नाश करनेवाला है। यो मार्दवगुण दयाधर्मका कारण है अभिमानीकै दयाधर्मका मूलहीतैं अभाव जानना कठोरपरिणामी तो निर्दयी ही होय है मार्दवगुण समस्तके हित करनेवाला है। जिनके मार्दवगुण है तिनहीका व्रतपालना संयमधारणा ज्ञानका अभ्यास

करना सफल है अभिमानी का निष्फल है। मार्दवनाम गुण मानकषायका नाशकरनेवाला है अर पचंइंद्रिय अर मनकूं दण्ड देनेवाला है। मार्दवधर्मके प्रसादतैं चित्तरूप भूमिमें करुणारूप वेल नवीन फैलै है. मार्दवकरके ही जिनेन्द्रभगवानमें तथा शास्त्रनिमें भक्ति का प्रकाश होय है। मदसहितके जिनेंद्रके गुणनिमें अनुराग नाहीं होय है मार्दवगुणकरि कुमतिज्ञानके प्रसारका नाश होय है कुमति नाहीं फैलै है अभिमानिके अनेक कुबुद्धि उपजै है। मार्दवगुणकरि वड़ा विनय प्रवर्तै है, मार्दव करकैवहुत कालका वैरी हू वैर छांडै है। मान घटै तदि परिणामनिकी उज्वलता होय कोमल परिणाम करके ही दोऊ लोककी सिद्धि होय, कोमल परिणामीकूं इस लोक में सुयश होय है, परलोकमें देवलोककी प्राप्ति होय है, कोमल परिणामकरकैं ही अंतरंग वहिरंग तप भूषित होय है, अभिमानीका तप हू निंदवे योग्य है, कोमलपरिणामीतैं तीन जगतके लोकनिका मन रंजायमान होय है, मार्दव करकैही जिनेंद्र का शासन जानिये है, मार्दव करकै अपना परका स्वरूप अनुभव करिये है, कठोर-परिणामीके आपापरका विवेक नाहीं होय है, मार्दवकरके ही समस्तदोषनिका नाश होय है, मार्दवपरिणाम संसारसमुद्रतैं पार करै हैं। यातैं मार्दवपरिणामकूं सम्यग्दर्शनका अंग जानि निर्मल मार्दवधर्मका स्तवन करो संसारीजीवनिके अनादिकालका मिथ्यादर्शनका उदय होय रहा है ताका उदयकरि पर्यायबुद्धि हुआ जातिकूं, कुलकूं, विद्याकूं, ऐश्वर्यकूं, रूपकूं तपकूं, धनकूं, अपना स्वरूप मानि इनका गर्वरूप होय रहा है। ताकूं ये ज्ञान नाहीं हैं जो ये जातिकुलादिक समस्त कर्मका उदयके

अधीन पुद्गलके विकार हैं विनाशीक हैं मैं अविनाशी ज्ञानस्वभाव अमूर्तीक हूँ मैं अनादिकालतैं अनेक जाति कुल बल ऐश्वर्यादिक पाय पाय छांडे हैं मैं अब कौनमे आपा धारू' समस्त धन यौवन इन्द्रियजनित ज्ञानादिक विनाशीक है, क्षणभंगुर है, इनका गर्व करना संसारपरिभ्रमणका कारण है। इस संसारमें स्वर्गलोकका महाऋद्धिका धारक देव मरि करि एकसमयमें एकेंद्रिय आय उपजै है तथा कूकर शूकर चांडालादिक पर्यायकूं प्राप्त होय है तथा चक्रवर्ती नवनिधि चौदहरत्ननिका धारक एकसमयमें मरि सप्तमनरकका नारकी होजाय है तथा बलभद्र नारायणका ऐश्वर्य नष्ट होय गया। अन्यकी कहा कथा है जिनकी हजारां देव सेवा करें तथा तिनकै पुण्यका क्षय होते कोऊ एक मनुष्य पानी देवनेवाला हू नाहीं रह्या अन्य पुण्यरहित जीव कैसै मदोन्मत्त बन रहे हैं। बहुरि जे उत्तमज्ञानकरि जगतमें प्रधान है अर उत्तम तपश्चरण करनेमें उद्यमी हैं अर उत्तम दानी है ते हू अपने आत्माकूं अतिनीचा मानै हैं तिनके मार्दवधर्म होय है।

विनयवानपना मदरहितपना समस्त धर्मका मूल है समस्त सम्यग्ज्ञानादि गुणको आधार है जो सम्यग्दर्शनादि गुणनिका लाभ चाहो हो अर अपना उज्वल यश चाहो अर वैरका अभाव चाहो हो तो मदनिकूं त्यागि कोमलपना ग्रहण करो, मद नष्ट हुवा विना विनयादिक गुण वचनकी मिष्टता पूज्यपुरुषनिका सत्कार दान सन्मान एक हू गुण नाहीं प्राप्त होयगा। अभिमानीका विना अपराध समस्त वैरी होजाय हैं अभिमानीकी समस्त निन्दा करै हैं अभि-

मानोंका समस्त लोक पतन होना चाहै है। स्वामी हू अभिमानी सेवककूं त्यागें है, अभिमानीकूं गुरुजन विद्या देनेमें उत्साहरहित होय हैं, अपना सेवक पराङ्मुख होजाय, मित्र भाई हितू पड़ौसी याका पतन ही चाहैं है, पिता गुरु उपाध्याय तो पुत्रकूं शिष्यकूं विनयवन्त देखकरि ही आनन्दित होय हैं। अविनयी अभिमानी पुत्र वा शिष्य बड़े पुरुषनके मनहूकूं संतापित करै है जातैं पुत्रका तथा शिष्यका तथा सेवकका तो ये ही धर्म है जो नवीन कार्य करना होय सो पिता गुरु स्वामीकूं जनायकरि करै, आज्ञा मांगि करै तथा आज्ञाको अवसर नाहीं मिलै तो अवसर देखि शीघ्र ही जनावै यो ही विनय है या ही भक्ति है। जाका मस्तकऊपरि गुरु विराजैं ते धन्यभाग हैं, विनयवन्त मदरहित पुरुष हैं ते समस्तकार्य गुरुनिको जनाय दे हैं, धन्य हैं जे इसकलिकालमें मदरहित कोमल परिणामकरि समस्तलोकमें प्रवर्त्तें हैं। उत्तम पुरुष हैं ते बालकमें वृद्धमें निर्धनमें रोगीनिमें बुद्धिरहित मूर्खनिमें तथा जातिकुलादिहीनमें हू यथायोग्य प्रियवचन आदर सत्कार स्थानदान कदाचित् नाहीं चूकै है, प्रियवचन ही कहैं, उत्तमपुरुष उद्धतताका वस्त्र आभरण नाहीं पहरैं उद्धतपणाका परके अपमानका कारण देनलेन विवाहादि व्यवहार कार्य नाहीं करैं है, उद्धत होय अभिमानीपनाका चालना बैठना झांकना बोलना दूरहीतैं छांडे तातैं लोकमें पूज्य मार्दवगुण होय है। धनपावना रूपपावना ज्ञानपावना विद्याकलाचतुराईपावना ऐश्वर्य पावना बलपावना जातिकुलादि उत्तमगुण जगन्मान्यता पावना तिनका सफल है जो उद्धततारहित अभिमानरहित नम्रतासहित विनयसहित प्रवर्तें हैं अपने मनमें

आपकूं सबतै लघु मानता कर्मके परबस जानै है सो कैसें गर्व-करै ? नाहीं करै है। भव्यजन हो सम्यग्दर्शनका अंग इस मार्दव अंगकूं जाणि चित्तके विषै ध्यान करो, स्तवन करो। ऐसै मार्दव-धर्मको वर्णन कियो ॥२॥

अब आर्जवधर्मकूं वर्णन करै है—धर्मका श्रेष्ठ लक्षण आर्जव है। आर्जव नाम सरलताका है, मनवचनकायकी कुटिलताका अभाव सो आर्जव है। आर्जव धर्म है सो पापका खंडन करने-वाला है अर सुख उपजानेवाला है। तातैं कुटिलता छांड़ि कर्मका क्षय करनेवाला आर्जवधर्म धारण करो। कुटिलता है सो अशुभ-कर्मका बंध करनेवाली है, जगतमें अतिनिंद्य है यातै आत्माका हितका इच्छुकनिकूं आर्जवधर्मका अवलम्बन करना उचित है जैसा आपके चित्तमें चिंतवन करिये तैसाही अन्यकूं कहना अर तैसा ही वाह्यकरि प्रवर्तन करिये सो सुखका संचय करनेवाला आर्जवधर्म कहिये है। मायाचाररूप शल्य मनतैं निकालो उज्वल पवित्र आर्जवधर्मका विचार करो, मायाचारीका व्रत तप संयम समस्त निरर्थक है, आर्जवधर्म निर्वाणके मार्गका सहाई है। जहाँ कुटिलवचन नाहीं बोलै तहां आर्जवधर्म प्राप्त होय है। यो आर्जवधर्म है सो दर्शनज्ञानचारित्रको अखंडस्वरूप है अर अतीं-द्रिय सुखका पिटारा है आर्जवधर्मका अभावकरि अतींद्रिय अवि-नाशी सखकूं प्राप्त होय है, संसाररूप समुद्रके तरनेकूं जिहाज रूप आर्जव ही है। मायाचार जान्या जाय तदि प्रीतिका भंग होय है जैसे कांजीतैं दुग्ध फटि जाय है अर मायाचारी अपना कपटकूं बहुत छिपावते हू प्रगट हुयां विना नाहीं रहै है। पर-

जीवनिकी चुगली करैं वा दोष प्रकाशैं ते आपही प्रगट हो जाय हैं मायाचार करना है सो अपनी प्रतीतिका बिगाड़ना है धर्मका विगाड़ना है मायाचारीका समस्त हितू विना किये वैरी होय हैं जो व्रती होय त्यागी तपस्वी होय अर जाका कपट एकवार किया हू प्रगट हो जाय ताकूं समस्तलोक अधर्मी मानि कोऊ प्रतीति नाहीं करैं है कपटीकी माता हू प्रतीति नाहीं करैं है, कपटी तो मित्रद्रोही स्वामिद्रोही धर्मद्रोही कृतघ्नी है अर यो जिनेन्द्रको धर्म तो कपट-रहित छलरहित है जैसे बाँका म्यानमें सूधो खड्ग प्रवेश नाहीं करै तैसै कपटकरि वक्रपरिणामीका हृदयमें जिनेन्द्रका आर्जव कहिये सरलधर्म प्रवेश नाहीं कर सकै है। कपटीका दोऊ लोक नष्ट हो जाय है याते जो यश चाहो हो, धर्म चाहो हो प्रतीति चाहो हो तो मायाचारका त्यागकरि आर्जवधर्म धारण करो कपटरहित की वैरी हू प्रशंसा करै हैं, कपटरहित सरलचित्त जो अपराध भी किया होय तौ दण्ड देने योग्य नाहीं होय है आर्जवधर्मका धारक तो परमात्माका अनुभवनमें संकल्प करैं है, कषाय जीतनेका संतोष धारनेका संकल्प करै है, जगतके छलनिका दूरहीतैं परिहार करै है आत्माकूं असहाय चैतन्यमात्र जानै है जो धन सम्पदा कुटुम्बादिककूं अपनावै सो ही कपट छलकरि ठिगाई करै, तातैं जो आत्माकूं संसार परिभ्रमणतैं छुटाय परद्रव्यनितैं आपकूं भिन्न असहाय जानै सो धन जीवितव्यके अर्थि कपट कदाचित् नाहीं करै तातै जो आत्माकूं संसारपरिभ्रमणतैं छुटाया चाहो तो मायाचारका परिहार करि आर्जव धर्म धारण करो। ऐसैं आर्जवधर्मका वर्णन किया ॥ ३ ॥

अब सत्यधर्मका वर्णन करैं हैं—जो सत्यवचन है सो ही धर्म है यो सत्यवचन दयाधर्मको मूल कारण है अनेक दोषनिका निराकरण करनेवाला है, इस भवमें तथा परभवमें सुखका करनेवाला है समस्तके विश्वास करनेका कारण है समस्त धर्मके मध्य सत्यवचन प्रधान है, सत्य है सो संसार समुद्रके पार उतारनेकूं जहाज है समस्त विधाननिमें सत्य है सो बड़ा विधान है समस्तसुखका कारण सत्य ही है सत्यतै ही मनुष्यजन्म भूषित होय है, सत्यकरके समस्त पुण्यकर्म उज्वल होय हैं, जे पुण्यके ऊँचे कार्य करिये हैं तिनकी उज्वलता सत्य विना नाहीं होय है, सत्यकरि समस्तगुणनिका समूह महिमाकूं प्राप्त होय है, सत्यका प्रभावकरि देव हैं ते सेवा करैं हैं, सत्यकरकैं ही अणुव्रत महाव्रत होय हैं, सत्यविना व्रत संजम नष्ट होजाय है, सत्यकरि समस्त आपदाको नाश होय है यातैं जो वचन बोलो सो अपना परका हितरूप कहो प्रमाणीक कहो कोऊकै दुःख उपजे ऐसा वचन मति कहो परिजीवनिकै बाधाकारी सत्य हू मति कहो, गर्वरहित कहो, परमात्माको अस्तित्व कहनेवाला वचन कहो नास्तिकनिके वचन पापपुण्यका स्वर्गनरकका अभाव कहनेवाला वचन मति कहो। यहां ऐसा परमागमका उपदेश जानना यो जीव अनन्तानन्तकाल तो निगोदमें ही रह्या तहां वचनरूप कर्मवर्गणा ही ग्रहण नाहीं करी क्योंकि पृथ्वीकाय अप्काय तेजकाय वायुकाय वनस्पतिकाय इनके मध्य अनन्तकाल असंख्यातकाल रह्यो तहां तो जिह्वा इंद्रिय ही नाहीं पाई बोलनेकी शक्ति ही नाहीं पाई अर जो विकल चतुष्कमें उपज्या तथा पंचेन्द्रियतिर्यंचनमें उपज्या तहां जिह्वा

इन्द्रिय पाई तो हू अक्षरस्वरूप शब्द उच्चारण करनेका सामर्थ्य नाहीं भया। एक मनुष्यपनामें वचन बोलनेकी शक्ति प्रगट होय है। ऐसा दुर्लभ वचनकूं असत्य बोलि बिगाड़ देना सो बड़ा अनर्थ है, मनुष्यजन्मकी महिमा तो एक वचनहीतै है, नेत्र कर्ण जिह्वा नासिका तो ढोर तिर्यंचके हू होय है खावना पीवना कामभोगादिक पुण्यपापके अनुकूल ढोरनिकूं हू प्राप्त होय हैं। आभरण वस्त्रादिक कूकरा वानरा गधा घोड़ा ऊँट वलध इत्यादिकनिकूं हू मिलै हैं परन्तु वचन कहनेकी शक्ति, श्रवण करनेकी शक्ति तथा उत्तर देनेकी शक्ति तथा पढने पढ़ावनेका कारण वचन तो मनुष्यजन्ममें ही है अर मनुष्यजन्म पाय जो वचन बिगाड़ि दिया सो समस्त जन्म बिगाड़ि दिया बहुरि मनुष्यजन्ममें जो लेना देना कहना सुनना धीज प्रतीत धर्मकर्म प्रीतिवैर इत्यादिक जे प्रवृत्तिरूप अर निवृत्तिरूप कार्य हैं ते वचनके अधीन हैं अर वचनकूं ही दूषित कर दिया तदि समस्त मनुष्यजन्मका व्यवहार बिगाड़ दूषित कर दिया। तातैं प्राण जाते हू अपना वचनकूं दूषित मत करो। बहुरि परमागममें कह्या जो च्यारप्रकारका असत्यवचन ताका त्याग करो। जो विद्यमान अर्थका निषेध करना सो प्रथम असत्य है जैसे कर्मभूमिका मनुष्य तिर्यंचका अकालमृत्यु नाहीं होय ऐसा वचन असत्य है जातै देव नारकी तथा भोगभूमिका मनुष्यतिर्यंचका तो आयुकी स्थिति पूर्ण भयां ही मरण है बीच आयु नाहीं छिदै है जितनी स्थिति बांधी तितनी भोग करकैही मरणकरै हैं अर कर्मभूमिका मनुष्यतिर्यंचनिका आयु है सो विषका भक्षणकरि तथा ताडन मारण छेदन बन्धनादिक वेदनाकरि तथा रोगकी तीव्र वेदनाकरि तथा देहतैं रुधिर-

का नाश होनेकरि तथा दुष्ट मनुष्य दुष्ट तिर्यंच भयंकर देवकरि उपज्या भयकरि तथा वज्रपातादिकका स्वचक्र परचक्रादिकके भयकरि तथा शस्त्रका घातकरि तथा पर्वतादिकतैं पतनकरि तथा अग्नि पवन जल कलह विसंवादादिकतै उपज्या क्लेशकरि तथा स्वास उस्वासका धूमादिकतैं रुकनेकरि तथा आहारपानादिका निरोधकरि आयुका नाश होय है। आयुकी दीर्घस्थिति हू विषभक्षण, रक्तक्षय, भय, शस्त्रघात, संक्लेश, स्वासोच्छ्वास निरोधकरि अन्नपानका अभावकरि तत्काल नाशकूं प्राप्त होय ही है।

केते लोक कहै हैं आयु पूरी हुआ विना मरण नाहीं होय ताका उत्तर करै हैं जो बाह्य निमित्तसूं आयु नाहीं छिदै तो विषभक्षणतै कौन परांमुख होता अर विष खानेवालेकूं उकाली काहेकूं देते अर शस्त्रघात करनेवालेतै काहेकूं भयकरि भागते अर सर्प सिंह व्याघ्र हस्ती तथा दुष्ट मनुष्य तिर्यंचादिकनिकूं दूरहीतैं काहेकूं छांड़ते अर नदी समुद्र कूप बावड़ीमें तथा अग्नि की ज्वालामें पड़नेतै कौन भय करता अर रोगका इलाज काहेकूं करते तातै बहुत कहनेकरि कहा जो आयुघात होनेका बहिरङ्गकारण मिलजाय तो आयुका घात हो जाय यह निश्चय है। बहुरि आयुकर्मकी ज्यों अन्य हू कर्म बहिरङ्गकारण मिले उदय आवै ही है समस्त जीवनिके पापकर्म पुण्यकर्म सत्तामें विद्यमान हैं बाह्य द्रव्य क्षेत्र काल भावादि परिपूर्ण सामग्री मिले कर्म अपना रस देवै ही है बाह्य निमित्त नाहीं मिलै तो उदयमें नाहीं आवै तथा रस दियाबिना ही निर्जरै है बहुरि जो असद्भूतकूं प्रगट करना सो दूजा असत्य है जैसें देवनिकै अकालमृत्यु कहना देवनिकूं

भोजन ग्रासादिरूप करना कहे वा देवनिकूं मांसभक्षी कहना तथा मनुष्यनिके देवकरि कामसेवन तथा देवांगनातैं मनुष्यका कामसेवन इत्यादिक कहना दूजा असत्य है। बहुरि वस्तुका स्वरूपकूं अन्य विपरीत स्वरूप कहना सो तीसरा असत्य है। बहुरि गर्हितवचन कहना सो चौथा असत्य वचन है। गर्हित वचनका तीन भेद हैं गर्हित, सावद्य, अप्रिय।

तिनमें पैशून्य, हास्य, कर्कश, असमंजस, प्रलपित इत्यादिक अन्य हू सूत्रविरुद्धवचन सो गर्हितवचन हैं। तिनमें जो परके विद्यमान तथा अविद्यमान दोषनिकूं पीठ पाछैं कहना तथा परका धनका विनाश जीविकाका विनाश प्राणनिका नाश जिस वचनतैं होजाय तथा जगतमे निंद्य होजाय अपवाद होजाय ऐसा वचन कहना सो गर्हित नाम असत्यवचन है। बहुरि हास्य लीला भंडवचन तथा श्रवणकरनेवालेनिके अशुभराग उपजावनेवाले वचन सो हास्यनामा गर्हित वचन है। बहुरि अन्यकूं कहै तू ढांढ है तू मूर्ख है अज्ञानी है मुढ्ढ इत्यादिक कर्कश वचन है। बहुरि देश कालके योग्य नाहीं जातैं आपकै अन्यके महासंताप उपजै सो असमंजसवचन है। बहुरि प्रयोजनरहित धीठपनातैं बकवाद करना सो प्रलपित वचन है।

बहुरि जिस वचनकरि प्राणीनिका घात होजाय देशमें उपद्रव होजाय देश लुटिजाय तथा देशका स्वामीनिकै महा वैर होजाय तथा ग्राममें अग्नि लगिजाय, घर बलजाय, वनमें अग्नि लगजाय तथा कलह विसंवाद युद्ध प्रगट हो जाय तथा विषाद करि मरिजाय तथा मारिजाय, वैर बंध जाय तथा छहकायके जीवनिके घातका प्रारंभ होजाय महाहिंसामें प्रवृत्ति होजाय सो सावद्यवचन है

तथा परकूं चोर कहना, व्यभिचारी कहना सो समस्त सावद्यवचन दुर्गतिके कारण त्यागने योग्य हैं। अब अप्रियवचन त्यागने योग्य प्राण जाते हू नाहीं कहना अप्रियवचनके भेद ऐसे जानने— कर्कश, कटुक, परुषा, निष्ठुरा, परकोपनी, मध्यकृषा, अभिमानिनी, अनयंकरी, छेदंकरी, भूतबधकरि ये महापापके करनेवाली महानिंद्य दश भाषा सत्यवादी त्याग करै है। तू मूर्ख है बलद है ढोर है, रे मूर्ख तू कहा समझै इत्यादिक कर्कशा भाषा है बहुरि तू कुजाति है नीच जाति है, अधर्मी महापापी है तू स्पर्शन करनेयोग्य नाहीं तेरा मुख देख्यां बडा अनर्थ है इत्यादिक उद्वेग करनेवाला कटुक भाषा है, तू आचारभ्रष्ट है भ्रष्टाचारी है महादुष्ट है इत्यादिक मर्म छेदनेवाली परुषाभाषा है। तोकूं मार नाखिस्यूं थारो नाक काटिस्यूं, थारै डाह लगास्यूं, थारो मस्तक काटिस्यूं, तनै खाय जास्यूं इत्यादिक निष्ठुरा भाषा है। रे निर्लज्ज वर्णसंकर तेरा जातिकुल आचारका ठिकाना नाहीं, तेरा कहा तप, तू कुशील है, तू हंसने योग्य है, महानिंद्य है, अभक्ष्यभक्षण करनेवाला है तेरा नाम लियां कुल लज्जित होय है इत्यादिक परकोपनी भाषा है। बहुरि जिस वचनके सुनते ही हाडनिकी शक्ति नष्ट हो जाय सो मध्यकृषा भाषा है। बहुरि लोकनिमें अपना गुण प्रगट करना परके दोष कहना अपना कुल जाति रूप बल विज्ञानादिक मद लिये जो वचन बोलना सो अभिमानिनी भाषा है। बहुरि शीलखंडन करनेवाली अर विद्वेष करनेवाली अनयंकरी भाषा है। बहुरि जो वीर्य शील गुणादिकनिके निर्मूल करनेवाली, असत्यदोष प्रगट करनेवाली, जगतमें झूंठा कलंक प्रगट करनेवाली, छेदंकरी भाषा

है। जिस वचनकरि अशुभ वेदना प्रगट होजाय वा ८ । नाशकरनेवाली भूतवधकरी भाषा है। ए दश प्रकार निंद्यवचन त्यागने योग्य है। बहुरि स्त्रीनिके हावभाव विलासविभ्रमरूप क्रीडा व्यभिचारादिकनिकी कथा कामके जगानेवाली, ब्रह्मचर्य का नाशकरनेवाली स्त्रीनिकी कथा तथा भोजनपानमे राग करा· वनेवाली भोजनकी कथा तथा रौद्रकर्म करानेवाली राजकथा तथा चोरीनिकी कथा तथा मिथ्यादृष्टी कुलिंगीनिकी कथा तथा धन उपार्जन करनेकी कथा तथा वैरीदुष्टनिके तिरस्कार करनेकी कथा तथा हिंसाकूं पुष्ट करनेवाली वेद स्मृति पुराणादिक कुशास्त्रनिकी कथा कहनेयोग्य नाहीं, श्रवणकरनेयोग्य नाहीं, पापका आस्रव को कारण अप्रिय भाषा त्यागने योग्य है। भो ज्ञानी हो ये चार प्रकारकी निंद्यभाषा हास्यकरि क्रोधकरि लोभकरि मदकरि भय· करि द्वेषकरि कदाचित मति कहो आपका परका हितरूपही वचन बोलो इस जीवकै जैसा सुख हितरूप अर्थसंयुक्त मिष्ट वचन करै है निराकुल करै है आताप हरै है तैसा सुखकारी आताप हरने· वाली चन्द्रकान्तिमणि जल चंदन मुक्ताफलादिक काऊ पदार्थ नाहीं अर जहां अपने बोलनेतैं धर्मकी रक्षा होती होय प्राणीनि का उपकार होता होय तहां विना पूछै हू बोलना अर जहां आप· का अन्यका हित नाहीं होय तहां मौनसहित ही रहना उचित है।

बहुरि सत्य वचनतैं सकलविद्या सिद्ध होय हैं जहां विद्या देनेवाला सत्यवादी होय अर सीखनेवाला हू सत्यवादी होय ताकै सकल विद्या सिद्ध होय कर्मकी निर्जरा होय सत्यका प्रभाव से अग्नि जल विष सिंह सर्प दुष्ट देव मनुष्यादिक बाधा

नाहीं कर सकैं है। सत्यका प्रभावतैं देवता वशीभूत होय है प्रीति प्रतीति दृढ़ होय है, सत्यवादी मातासमान विश्वास करनेयोग्य होय है, गुरुका ज्यों पूज्य होय है, मित्र ज्यों प्रिय होय है उज्वल यशकूं प्राप्त होय है, तपसंयमादि समस्त सत्यवचनतैं सोहै हैं। जैसै विष मिलनेकरि मिष्टभोजनका नाश होय, अन्यायकरि धर्मका यशका नाश होय तैसैं असत्यवचनतैं अहिंसादि सकलगुणनिका नाश होय है तथा असत्यवचनतैं अप्रतीति, अकीर्ति अपवाद, अपने वा अन्यके संक्लेश, अरति कलह, वैर, शोक, बध, बन्धन, मरण, जिह्वाछेद, सर्वस्वहरण, बन्दीग्रहमें प्रवेश, दुर्ध्यान अपमृत्यु, व्रततप शील संयमका नाश, नरकादि दुर्गतिमें गमन भगवानकी आज्ञाको भङ्ग, परमागमतैं परांमुखता, घोरपापका आस्रव इत्यादि हजारां दोष प्रगट होय है। यातैं भो ज्ञानीजन हो लोकमें प्रिय हित मधुर वचन बहुत अरचा है, सुन्दर शब्दकी कमी नाहीं फिर निंद्यवचन क्यों बोलो हो? रे तू इत्यादिक नीच पुरुषनिके बोलनेके वचन प्राण जातै हू मति कहो अधमपना अर उत्तमपना तो वचनहीतैं जाण्या जाय है, नीचनिके बोलनेके निंद्यवचनकूं छांड़ि प्रिय हित मधुर पथ्य धर्मसहित वचन कहो जे अन्यकूं दुःखका देनेवाला वचन कहैं हैं तथा झूंठा कलंक लगावैं हैं तिनके पापतैं इहांही बुद्धि भ्रष्ट होय है जिह्वा गलिजाय आंधा होजाय पग नष्ट होजाय दुर्ध्यानतैं मरि नरक तिर्यंचादि कुगतिका पात्र होय है। अर सत्यका प्रभावतैं इहां उज्वल यश वचनकी सिद्धि द्वादशाङ्गादि श्रुतका ज्ञान पाय फिर इंद्रादिक महर्द्धिक देव होय तीर्थकरादि उत्तम पद पाय निर्वाण जाय है

यातैं उत्तम सत्यधर्महीकूं धारण करो ऐसैं सत्यनामा धर्मका वर्णन किया ॥ ४ ॥

अब शौचधर्मका स्वरूप वर्णन करिये हैं—शौच नाम पवित्रताका–उज्वलताका है जो बहिरात्मा देहकी उज्वलता स्नानादिक करनेकूं शौच कहैं हैं सो सप्त धातुमयको मलमूत्रको भर्‌या जलतैं धोया शुचिपनाकूं प्राप्त नाहीं होय है जैसे मलका बनाया घट मलका भर्‌या जलतैं शुद्ध नाहीं होय तैसैं शरीर हू उज्वल जलतैं शुद्ध नाहीं होय, शचि मानना वृथा है। बहुरि शौचधर्म तो आत्माकूं उज्वल किए होय आत्मा लोभकरि हिंसाकरि अत्यंत मलीन होय रह्या है सो आत्माके लोभमलका अभाव भये शुचिता होय है जो अपने आत्माकूं देहतैं भिन्न ज्ञानापयोग दर्शनोपयोगमय अखंड अविनाशी जन्मजरामरण रहित तीनलोकवर्ती समस्तपदार्थनिका प्रकाशक सदा काल अनुभव करै है ध्यावै है ताकै शौचधर्म होय है। वहुरि मनकूं मायाचारलोभादिक रहित उज्वल करना ताकै शौचधर्म होय है जाका मन कामलोभादिकरि मलीन होय ताकै शौचधर्म नाहीं होय है। धनकी गृद्धिता जो अतिलम्पटता ताका त्यागतैं शौचधर्म होय है। वहुरि परिग्रहकी ममताकूं छांडि इंद्रियनिका विषयनिको त्यागकरि तपश्चरणका मार्गमें प्रवर्तन करना सो शौचधर्म है। वहुरि ब्रह्मचर्य धारण करना सो शौचधर्म है बहुरि अष्टमदकरिरहित विनयवानपना भी शौचधर्म है, अभिमानी मदसहित होय सो महामलीन है ताकै शौचधर्म कैसैं होय। बहुरि वीतरागसर्वज्ञका परमागमका अनुभव करनेकरि अंतगत मिथ्यात्व कषायदिक मलका धोवना सो शौचधर्म है। उत्तम-

गुणनिका अनुमोदनाकरि शौचधर्म होय है।

परिणामनिमें उत्तम पुरुषनिका गुणनिका चिंतवनकरि आत्मा उज्वल होय है कषाय मलका अभावकरि उत्तम शौचधर्म होय है। आत्माकूं पापकरि लिप्त नाहीं होने देना सो शौचधर्म है जो समभाव सन्तोषभावरूप जलकरि तीव्र लोभरूप मलका पुंजकूं धोवै है अर भोजनमें अति लंपटतारहित है, ताकै निर्मल शौचधर्म होय है जातैं भोजनका लंपटी अति अधर्मी है अर अखाद्यवस्तुकूं भी खाय है, हीनचारी होय है भोजनका लंपटीके लज्जा नष्ट होजाय है जातैं संसारमें जिह्वाइंद्रिय अर उपस्थइंद्रियके वशीभूत भये जीव आपा भूलि नरकके, तिर्यंचगतिके कारण महानिंद्य परिणामनिकूं प्राप्त होय है। संसारमें परधनकी वांछा परस्त्रीकी वांछा अर भोजनकी अतिलंपटता ही परिणामकूं मलीन करने वाली है इनकी वांछातैं रहित होय अपने आत्माकूं संसारपतनतैं रक्षा करो। आत्मा की मलीनता तो जीवहिंसातैं अर परधन परस्त्रीकी वांछातैं है जे परस्त्री परधनका इच्छुक अर जीवघातके करनेवाले हैं ते कोटितीर्थनिमें स्नान करो समस्त तीर्थनिकी वंदना करो तथा कोटि दान करो, कोटिवर्ष तप करो, समस्त शास्त्रनिका पठन पाठन करो तौ हू उनकै शुद्धता कदाचित नाहीं होय। अभक्ष्य भक्षण करनेवालेनिका अर अन्यायका विषय तथा धनके भोगनेवालेनिका परिणाम ऐसे मलीन होय हैं जो कोटि वार धर्मका उपदेश अर समस्तसिद्धान्तनिकी शिक्षा बहुत वर्ष श्रवण करते हू कदाचित् हृदयमें प्रवेश नाहीं करै है सो देखिये है जिनकूं पचासवरस शास्त्र श्रवण करते भये हैं तोहू धर्मका स्वरूप

का ज्ञान जिनकूं नाहीं है सो समस्त अन्याय धन अर अभक्ष्य भक्षणका फल है तातैं जो अपनी आत्माका शौच चाहो हो तो अन्यायका धन मति ग्रहण करो अर अभक्ष्य भक्षण मतिकरो, परस्त्रीकी अभिलाषा मति करो। वहुरि परमात्माके ध्यानतैं शौच है अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य और परिग्रहत्यागतैं शौचधर्म है। जे पंचपापनिमें प्रवर्तनेवाले हैं ते सदाकाल मलीन हैं, जे परके उपकारकूं लोपै हैं ते कृतघ्नी सदा मलीन हैं, जे गुरुद्रोही धर्मद्रोही स्वामीद्रोही मित्रद्रोही उपकारकूं लोपनेवाले हैं, तिनके पापका संतान असंख्यात भवनिमें कोटितीर्थनिमें स्नानकरि दानकरि दूर नाहीं होय है विश्वासघाती सदा मलीन है, यातैं भगवान्के परमागमकी आज्ञा प्रमाण शुद्ध सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रकरि आत्माकूं शुचि करो, क्रोधादि कषायका निग्रह करि उत्तमक्षमादि गुण धारण करि उज्वल करो समस्तव्यवहार कपटरहित उज्वल करो, परका विभव ऐश्वर्य उज्वल यश उत्तम विद्यादिक प्रभाव देखि अदेखसका भावरूप मलीनता छांडि शौचधर्म अंगीकार करो, परका पुण्यका उदय देखि विषादी मति होइ इस मनुष्यपर्यायकूं तथा इंद्रिय ज्ञान बल आयु संपदादिकनिकूं अनित्य क्षणभंगुर जानि एकाग्र चित्तकरि अपने स्वरूपमें दृष्टि धारि अशुभभावनिका अभावकरि आत्माकूं शुचि करो। शौच ही मोक्षका मार्ग है, शौच ही मोक्षका दाता है। ऐसैं शौच नाम पंचमधर्मको वर्णन कीयो ॥ ५ ॥

अब संयम नाम धर्म का स्वरूप कहिये है—संयमका ऐसा लक्षण जानना जो अहिंसा कहिये हिंसाको त्याग दयारूप रहना हितमित प्रिय सत्यवचन बोलना, परके धनमें वांछाका

अभाव करना कुशीलका छांडना परिग्रह त्यागना ए पांच व्रत हैं तिनमें पंचपापनिका एक देश त्याग सो अणुव्रत है, सकलत्याग सो महाव्रत है इन पंचव्रतनिकूं दृढ धारण करना अर पंचसमितिका पालना; तिनमें गमनकी शुद्धता ईर्यासमिति है, वचनकी शुद्धता सो भाषासमिति है, निर्दोष शुद्ध भोजन करना सो ऐषणा समिति है, शरीर, उपकरणादिक नेत्रनितैं देखि सोधि उठावना धरना सो आदाननिक्षेपणा समिति है मलमूत्र कफादिक मलनिकूं अन्य जीवनके ग्लानि दुःख बाधादिक नाहीं उपजै ऐसे क्षेत्रमें क्षेपना सो प्रतिष्ठापनासमिति है इन पंचसमितिनिका पलना अर क्रोध मान माया लोभ इन च्यार कषायनिका निग्रह करना अर मनवचनकायकी अशुभप्रवृत्ति ए दंड हैं इन तीन दंडनिका त्याग अर विषयनिमें दौड़ती पंचइंद्रियनिकूं वश करना जीतना सो संयम है।

भावार्थ—पंचव्रतनिका धारण पंच समितिका पालन कषायनिका निग्रह दंडनिका त्याग इंद्रियनिका विजयकूं जिनेन्द्रके परमागममें संयम कह्या है। सो संयम बहुत दुर्लभ है जिनके पूर्वके बांधे अशुभकर्मनिका अतिमंदपना होते मनुष्य-जन्म, उत्तमदेश उत्तमकुल, उत्तम जाति, इंद्रियपरिपूर्णता, नीरोगता, कषायनिकी मंदता होय अर उत्तमसंगति अर जिनेन्द्रका आगमनिका सेवन अर सांचे गुरुनिका संयोग सम्यग्दर्शनादि अनेक दुर्लभसामग्रीका संयोग होय तदि संसार देह भोगनितैं अति विरक्तताके धारक मनुष्यकै अप्रत्याख्यानावरणका क्षयोपशमतैं तो देशसंयम होय अर जाकै अप्रत्याख्यान अर प्रत्याख्यान दोऊ कषायनिका क्षयो-

पशम होय ताके सकलसंयम होय है ताते संयम पावना महा-दुर्लभ है। नरकगतिमें तिर्यचगतिमे देवगतिमें तो संयम होय नाहीं कोऊ तिर्यंचकै देशव्रत अपनी पर्यायसाफिक कदाचित् होय है अर मनुष्यपर्यायमे भी नीचकुलादिमें अधमदेशनिमें इंद्रिय-विकल अज्ञानी रोगी दरिद्री अन्यायमार्गी विषयानुरागी तीव्रक-षायी निंद्यकर्मी मिथ्यादृष्टीनिकै संयम कदाचित नाहीं होय है तातैं संयमका पावना अतिदुर्लभ है ऐसें दुर्लभ संयमकूं हू पाय कोऊ मूढबुद्धि विषयनिका लोलुपी होय छांडैं है तो अनन्तकाल जन्म मरण करता संसारमें परिभ्रमण करै है। जो सयम पाय छांडै है संयमकूं विगाडै है ताके अनन्तकाल निगोदमें परिभ्रमण, त्रस-स्थावरनिमें भ्रमण करना होय। सुगति नाहीं होय, सयम पाय बिगाड़ने समान अन्य अनर्थ नाहीं है विषयनिका लोभी होय करि जो संयमकूं बिगाड़ै है सो एक कौडीमें चिंतामणिरत्न बेचै है। तथा ईंधनके अर्थि कल्पवृक्षकूं छेदै है विषयनिका सुख है सो सुख नाहीं सुखाभास है, क्षणभगुर है नरकनिके घोर दुःखनिका कारण है, किंपाकफल जैसें जिह्वाका स्पर्शमात्र मिष्ट लागै है पाछै घोर दुःख महादाह संताप देय मरणकूं प्राप्त करै है तैसें भोग किंचिन्मात्र काल तो अज्ञानी जीवनिकूं भ्रमतैं सुख-सा भासै है फिर अनन्तकाल अनन्तभवनिमें घोर दुःखका भोगना है यातैं संयमकी परमरक्षा करो। पांच इंद्रियनिकूं विषयनिके संबंधतैं रोकनेतैं संयम होय है, कषायनिका खंडनकरि संयम होय है दुर्द्धर-तपका धारणकरि संयम होय है रसनिका त्यागकरि संयम होय है मनके प्रसारके रोकनिकरि संयम होय है महान कायक्लेशनिके

सहनेकरि संयम होय है उपवासादिक अनशनतपकरि संयम होय है मनमे परिग्रहकी लालसाका त्यागकरि संयम होय है, त्रसस्थावर जीवनिकी रक्षा करना सो ही संयम है, मनके विकल्पनिके रोकनेकरि तथा प्रमादतैं वचनकी प्रवृत्तिके रोकनेकरि संयम होय है। शरीरके अंगउपांगनिका प्रवर्तनकूं रोकनेकरि संयम होय है। बहुत गमनके रोकनेकरि संयम होय है। बहुरि दयारूप परिणामकरि संयम होय है, परमार्थका विचारकरकै तथा परमात्माका ध्यान करके संयम होय है, संयमकरकैं ही सम्यग्दर्शन पुष्ट होय संयम ही मोक्षका मार्ग है, संयमविना मनुष्यभव शून्य है, गुणरहित है, संयमविना यो जीव दुर्गतिनिकूं प्राप्त भया, संयमविना देहका धारना, बुद्धिका पावना, ज्ञानका आराधन करना समस्त वृथा है संयमविना दीक्षाधारणा व्रतधारना मूंड मुडावना, नग्न रहना, भेषधारणा ये समस्त वृथा हैं। जातैं संयम दोयप्रकार है इंद्रियसंयम अर प्राणसंयम; जाकी इंद्रियां विषयनितै नाहीं रुकीं अर जाके छहकायके जीवनिकी विराधना नाहीं टली ताकै वाह्य परीषह सहना तपश्चरण करना, दीक्षा लेना वृथा है, संसारमें दुःखितजीवनिकूं संयमविना कोऊ अन्य शरण नाहीं है ज्ञानीजन तो ऐसी भावना भावैं हैं जो संयमविना मनुष्य जन्मकी एक घटिका हू मति जावो, संयमविना आयु निष्फल है यो संयम है सो इस भवमें अर परभवमें शरण है दुर्गतिरूप सरोवरके शोषण करनेकूं सूर्य है, संयम करके ही संसाररूप विषमवैरीका नाश होय, संसार-परिभ्रमणका नाश संयम विना नाहीं होय। ऐसा

नियम है अर जो अंतरंगमे कपायनिकरि आत्माकूं मलीन नाहीं होने देहै अर बाह्य यत्नाचारी हूआ प्रमादरहित प्रवर्तै है वाकै संयम होय है ऐसैं संयमधर्मका वर्णन किया ॥ ६ ॥

अब तपधर्मका वर्णन करै हैं,—इच्छाका निरोध करना सो तप है तप च्यार आराधनानिमे प्रधान है जैसैं सुवर्णकूं तपावने करि सोलाताव लगे समस्त मल छांडि करकै शुद्ध होय है तैसैं आत्मा हू द्वादश प्रकार तपके प्रभावकरि कर्ममलरहित शुद्ध होय है। अज्ञानी मिथ्यादृष्टि तो देहकूं पंचअग्निकरि तपावै हैं तथा अनेक प्रकार कायके क्लेशकूं तप कहैं हैं सो तप नाहीं है। कायकूं दग्ध किये अर मार लिये कहा होय ? मिथ्यादृष्टि ज्ञानपूर्वक आत्माकूं कर्मबंधतैं छुडावना नाहीं जानै है। कर्ममलकलकरहित आत्मा तो भेदविज्ञानपूर्वक अपने आत्माका स्वभावकूं अर राग-द्वेष मोहादिरूप भावकर्मरूप मैलकूं भिन्न देखै है जैसैं रागद्वेष मोहरूप मल भिन्न होजाय अर शुद्धज्ञान दर्शनमय आत्मा भिन्न होजाय सो तप है याहोतैं कहैं हैं मनुष्यभव पाय जो स्वपरतत्वकूं जाण्या है तो मनसहित पंचइद्रियनिकूं रोकि विषयनितैं विरक्त होय समस्त परिग्रहकूं छांडि बध करनेवाली रागद्वेषमई प्रवृत्तिकूं छांडि पापका आलम्बन छूटनेके अर्थि ममता नष्ट करनेकूं वनमें जाय तप करिये। ऐसा तप धन्यपुरुषनिके होय है। संसारी जीवके ममता रूप बडी फांसी हैं सो ममतारूप जालमें फंसाहुआ घोर-कर्मकूं करता महापापका बन्धकरि रोगादिकका तीव्रवेदना अर स्त्रीपुत्रादि समस्त कुटुम्बका तथा परिग्रहका वियोगादिकतैं उपज्या तीव्र आर्तध्यानतैं मरण पाय दुर्गतिनके घोर दुःखनिकूं जाय प्राप्त

होय है। तपोवनकूं प्राप्त होना दुर्लभ है तप तो कोऊ महाभाग्य पुरुष पापनितैं विरक्त होय समस्त स्त्रीपुत्रधनादिकपरिग्रहतैं ममत्व छांडि परम धर्मके धारक वीतराग निर्ग्रंथ गुरुनिका चरणनिका शरण पावै है अर गुरुनि को पायकरि जाकै अशुभ कर्मका उदय अति मन्द होय सम्यक्त्वरूप सूर्यको उदय प्रगट होय संसारविषयभोगनितैं विरक्तता जाकै उपजी होय सो तप संयम ग्रहण करै है, अर जो ऐसा दुर्द्धर तपकूं धारण करकै हू कोऊ पापी विषयनिकी वांछाकरि विगाडै ताके अनन्तानन्त कालमें फिर तप नाहीं प्राप्त होय है यातैं मनुष्यभव पाय तत्वनिका स्वरूप जानि मनसहित पंचइंद्रियनिकूं रोकि वैराग्यरूप होय समस्तसंगकूं छांडि वनमे एकाकी ध्यानमें लीन हुआ तिष्ठै सो तप है ।

जहां परिग्रहमें ममता नष्ट होय वांछारहित तिष्ठना तथा प्रचण्ड कामका खण्डन करना सो बड़ा तप है । जहां नग्न दिगम्बररूप धारि शीतकी, पवनकी, आतापकी, वर्षाकी तथा डांस माछर मक्षिका मधुमक्षिका सर्प विच्छू इत्यादिकतैं उपजी घोरवेदनाकूं कोरे अंगपरि सहना सो तप है अर जो निर्जनपर्वतनिकी निर्जन गुफानिमें भयङ्कर पर्वतनिके दराडेनिमे तथा सिंह व्याघ्र रोछ ल्याली चीता हस्तीनिकरि व्याप्त घोरवनमें निवास करना सो तप है। तथा दुष्ट वैरी म्लेच्छ चोर शिकारी मनुष्य अर दुष्टव्यंतरादिक देवनिकृत घोर उपसर्गनितैं कम्पायमान नाहीं होना धीर वीरपनातैं, कायरता छांडि वैरविरोध छांडि समताभावतैं परमात्माका ध्यानमे लीन हुआ सहना सो तप है। वहुरि समस्त जीवनिकूं उलझानेवाले राग-

द्वेषनिकूं जीतना नष्ट करना सो तप है। बहुरि यो याचनारहित भिक्षाके अवसरमें श्रावकका घरमें नवधाभक्तिकरि हस्तमें धरया खारा अलूणा कड़वा खाटा लूखा चीकना रस नीरस तिसमें लोलुपता अर संक्लेशरहित निर्दोष प्रासुक आहार एकवार भक्षण करना सो तप है। बहुरि जो पचसमितिका पालना अर मनवचनकायकूं चलायमान नाहीं करना, अपना रागद्वेषरहित आत्मानुभव करना सो तप है। जो स्वपर तत्त्वकी कथनीका च्यार अनुयोगका अभ्यासकरि धर्मसहित काल व्यतीत करना सो तप है। बहुरि अभिमान छांडि विनयरूप प्रवर्तना कपट छांडि सरलपरिणाम धारना, क्रोध छांडि क्षमा ग्रहणकरना, लोभ त्याग निर्वाञ्छक होना सो तप है। जाकरि कर्मका समूहका नाशकरि आत्मा स्वाधीन होजाय सो तप है। जो श्रुतका अर्थका प्रकाश करना, व्याख्यान करना, आप निरंतर अभ्यास करै, अन्यकूं अभ्यास करावै सो तप है। तपस्वीनिका देवनिका इन्द्र स्तवन करै, भक्ति का प्रकाश करै, तपकरि केवलज्ञान उत्पन्न होय है तप का अचिंत्य प्रभाव है तपके मांहि परिणाम होना अति दुर्लभ है। नरक तिर्यंचदेवनिमें तपकी योग्यता ही नाहीं एक मनुष्यगतिमें होय मनुष्यमें हू उत्तम कुल जाति बल बुद्धि इंद्रियनिकी पूर्णता जाके होय तथा विषयनिकी लालसा जाकै नष्ट भई ताकै होय है तप द्वादशप्रकार है जाकी जैसी शक्ति होय तिसप्रमाण धारण करो। बालक करो, वृद्ध करो, धनाढ्य करो, निर्धन करो, बलवान् करो, निर्बल करो सहायसहित होय सो करो. सहायरहित होय सो करो, भगवान्‌को प्ररूप्यो तप किसीकै हू करनेकूं अशक्य नाहीं

है। जैसे वायुपित्तकफादिका प्रकोप नाहीं होय, रोगकी वृद्धि नाहीं होय जैसें शरीर रत्नत्रयको सहकारी बन्यौ रहै तैसें अपना संहनन बल वीर्य देखि तप करो। तथा देशकालआहारकी योग्यता देखि तप करो जैसें तपमें उत्साह बधतो रहै परिणामनि में उज्वलता बधती जाय तैसें तप करो तथा जो इच्छाका निरोध करि विषयनिमें राग घटावना सो तप है। तप ही जीवका कल्याण है, तप ही कामकूं निद्राकूं प्रमादकूं नष्ट करनेवाला है यातैं मद छांडि बारहप्रकार तपमें जैसा २ करनेकूं सामर्थ्य होय तैसा ही तप करो सो बारह प्रकार तपकूं आगे न्यारो लिखेंगे। ऐसें तपधर्मकूं वर्णन किया ॥७॥

अब त्यागधर्मका वर्णन करै हैं। त्याग ऐसें जानना जो धन संपदादि परिग्रहकूं कर्मका उदयजनित पराधीन अर विनाशीक अर अभिमानको उपजावनेवाली तृष्णाकूं बधावनेवाला रागद्वेष की तीव्रता करनेवाला, आरम्भकी तीव्रता करनेवाला, हिंसादिक पंचपापनिका मूल जानि उत्तमपुरुष याकूं अंगीकार ही नाहीं किया ते धन्य है। कोई याकूं अंगीकार करि याकूं हलाहलविष-समान जानि जीर्णतृणकी ज्यों त्याग किया तिनकी अचिंत्यमहिमा है। अर केई जीवनिके तीव्ररागभाव मन्द हुआ नाहीं यातैं सक-लत्यागनेकूं समर्थ नाहीं अर सरागधर्ममे रुचि धारैं हैं अर पापतैं भयभीत हैं ते इस धनकूं उत्तमपात्रनिके उपकारके अर्थि दानमें लगावै हैं अर जे धर्मके सेवन करने वाले निर्धन जन हैं तिनके अन्नवस्त्रादिककरि उपकार करनेमें धन लगावै हैं तथा धर्मके आयतन जिनमन्दिरादिकनमें जिनसिद्धांत लिखाय देनेमें तथा उप-

करणमैं पूजनादिक प्रभावनामें लगावै है तथा दुःखित दरिद्री रोगीनिके उपकारमें तन मन धन करुणावान होय लगावै हैं ते धन जीतव्यकूं सफल करै हैं। दान है सो धर्मका अंग है यातैं अपनी शक्तिप्रमान भक्तिकरि गुणनिके धारक उज्वलपात्रनिको दान देना है सो परलोककूं जीवने महान सुखसामग्रीकूं लेजावै है सो निर्विघ्न स्वर्गकूं तथा भोगभूमिकूं प्राप्त करानेवाला जानो दानकी महिमा तो अज्ञानी बालगोपाल हू कहैं हैं, जो पूर्वे दान दिया है सो नानाप्रकार सुखसामग्री पाई है अर देगा सो पावैगा तातैं जो सुखसंपदाका अर्थी होय सो दान ही में अनुराग करो। अर जे दानकरनेमें निरुद्यमी हैं ते इहांहू तीव्रआर्तपरिणामतै मरि सर्पादिक दुष्ट तिर्यंचगति पाय नरक निगोदकूं जाय प्राप्त होय हैं धन कहा लार जायगा धन ? पावना तो दानहीतैं सफल है दान-रहितका धन घोर दुःखनिकी परिपाटीका कारण है अर इहां हू कृपण घोरनिंदाकूं पावै हैं, कृपणका नाम भी लोक नाहीं कहै हैं कृपण सूमका नामकूं लोग अमंगल मानैं हैं जामे औगुण दोष हू होय तो दानीका दोष ढकि जाय है। दानीका दोष दूरि भागै है दानकरि ही निर्मलकीर्ति जगतमे विख्यात होय है। देनेकरि वैरी हू चरननिमें नमै है दानदेनेतैं वैरी वैर छांडें है अपना हित करने वाला मित्र होजाय है, जगतमें दान बड़ा है, थोड़ासा दान हू सत्यार्थ भक्तिकरि करने वाला भोगभूमिका तीन पल्यपर्यंत भोग भोगि देवलोकमें जाय है देना ही जगतमें ऊंचा है दान देना विकय संयुक्तस्नेहका वचनकरिसहितहोयदेना अर दानी हैं ते ऐसा अभि-मान नाहीं करै हैं जो हम इसका उपकार करै हैं। दानी तो पात्र

कूं अपना महाउपकार करनेवाला मानै हैं जो लोभ रूप अन्ध-कूपमें पडनेका उपकार पात्र विना कौन करै पात्रविना लोभीनिका लोभ नाहीं छूटता अर पात्रविना संसारके उद्धार करनेवाला दान कैसैं बणता। यातै धर्मात्मा जननिके तो पात्रके मिलनेसमान अर दानके देनेसमान अन्य कोऊ आनन्द नाहीं है, बड़ापना धना-ढ्यपना ज्ञानीपना पाया है तो दानमे ही उद्यम करो। छहकायके जीवनिकूं अभयदान देहु अभक्ष्यका त्यागकरि, बहुआरम्भके घटा-वनेकरि देखि सोधि मेलना धरना, यत्नाचारविना निर्दयी होय नाहीं प्रवर्तना, किसी प्राणीमात्रकूं मनवचनकायतैं दुःखित मति करो। दुःखिनिकी करुणा ही करो यो ही गृहस्थके अभयदान है यातैं संसारमें जन्म मरण रोग शोक दारिद्र वियोगादिक संताप का पात्र नाहीं होओगे।

बहुरि संसारके बधावनेवाले हिंसाकूं पुष्ट करनेवाले तथा मिथ्याधर्मकी प्ररूपणा करनेवाले तथा युद्धशास्त्र शृंगारशास्त्र मायाचारके शास्त्र वैद्यकशास्त्र रस रसायण मंत्र जंत्र मारण वशी-करणादिकशास्त्र महापापके प्ररूपक हैं इनकूं अति दूरतैं ही त्यागि भगवान वीतराग सर्वज्ञका कह्या दयाधर्मकूं प्ररूपणा करनेवाला स्याद्वादरूप अनेकांतका प्रकाश करनेवाले नयप्रमाणकरि तत्त्वार्थ की प्ररूपणा करनेवाले शास्त्रनिकूं अपने आत्माकूं पढनेपढावने करि आत्माका उद्धारके अर्थि अपनेअर्थि दान करो। अपनी संता-नकूं ज्ञानदान करो तथा अन्य धर्मबुद्धि धर्मके रोचक इच्छुक तिनकूं, शास्त्रदान करो ज्ञानके इच्छुक हैं ते ज्ञानदानके अर्थि पाठ-शाला स्थापन करैं हैं जातैं धर्मका स्तंभ ज्ञान ही है। जहां ज्ञान-

ज्ञान होयगा तहां धर्म रहैगा यातैं ज्ञानदानमें प्रवर्त्तन करो। ज्ञानदानके प्रभावतैं निर्मल केवलज्ञानकूं पावै है। बहुरि रोगका नाश करनेवाला प्रासुक औषधिका दान करो, औषधदान बडा उपकारक है अर रोगीकूं सीधी तैयार औषधि मिलै है ताका बड़ा आनन्द है अर निर्धन होय तथा जाकै टहल करनेवाला नाहीं होय ताकूं औषध जो करी हुई तय्यार मिल जाय तो निधीनिका लाभसमान मानै है औषध लेय नीरोग होय है सो समस्त व्रत तप संयम पालै है ज्ञानका अभ्यास करै है औषधदान है ताकै वात्सल्यगुण स्थितिकरणगुण निर्विचिकित्सागुण इत्यादिक अनेक गुण प्रगट होय हैं, औषधिदानके प्रभावतैं रोगरहित देवनिका वैक्रियिक देह पावै है। बहुरि आहारदान समस्तदाननिमें प्रधान है प्राणीका जीवन शक्ति बल बुद्धि ये समस्त गुण अहारविना नष्ट होजाय हैं आहार दिया सो प्राणीकूं जीवन बुद्धि शक्ति समस्त दीना। आहारदानतैं ही मुनि श्रावकका सकलधर्म प्रवर्तै है आहारविना मार्गभ्रष्ट होजाय, आहार है सो समस्तरोगका नाश करनेवाला है जो आहारदान दे है सो मिथ्यादृष्टि हू भोगभूमिमें कल्पवृक्षनिका दशांग भोगकूं असंख्यातकाल भोगै अर क्षुधातृषादिककी बाधारहित हुआ आंवलाप्रमाण तीन दिनके आंतरै भोजन करै। समस्तदुःखक्लेशरहित असंख्यातवर्ष सुख भोगि देवलोकनिमें जाय उपजै है। यातैं धनकूं पाय च्यारप्रकारके दान देनेमें प्रवर्त्तन करो। अर जो निर्धन है सो हू अपना भोजनमेंतैं जेता बनै तेता दान करो, आपकूं आधा भोजन मिलै तीमेंतैं हू ग्रास दोयग्रास दुःखित बुभुक्षित दीनदरिद्रीनिके अर्थ देवो। बहुरि

मिष्टवचन बोलनेका बड़ा दान है, आदरसत्कार विनय करना स्थान देना कुशल पूछना ये महादान हैं। बहुरि दुष्टविकल्पनिका त्याग करो पापनिमें प्रवृत्तिका त्याग करो चार कषायनिका त्याग करो विकथा करनेका त्याग करो, परके दोष सत्य, असत्य कदाचित मति कहो। बहुरि अन्यायका धन ग्रहण करनेका दूरहीतैं त्याग करो भो ज्ञानीजन हो! जो अपना हितके इच्छुक हो तो दुखितजननिकूं तो दान करो अर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानादि गुणनिके धारकनिका महाविनय सन्मान करो समस्तजीवनिमें करुणा करो मिथ्यादर्शनका त्याग करो रागद्वेषमोहके धारक कुदेव अर आरम्भ परिग्रहके धारक भेषधारी अर हिंसाके पोषक रागद्वेषकूं पुष्ट करनेवाले मिथ्यादृष्टिनिके शास्त्र इनकूं बंदना स्तवन प्रशंसा करनेका त्याग करो, क्रोध मान माया लोभ इनके निग्रह करनेमें बड़ा उद्यम करो, क्लेश करनेके कारण अप्रियवचन गालीके वचन अपमानके वचन मदसहित वचन कदाचित् मति कहो। इत्यादिक जो परके दुःखके कारण तथा अपना यशकूं नष्ट करनेवाला धर्मकूं नष्ट करनेवाला मनवचन कायके प्रवर्तनका त्याग करो ऐसे त्यागधर्मका संक्षेप वर्णन किया ॥ ८ ॥

अब आकिंचन्यधर्मका स्वरूप कहिये है,—जो 'अपना ज्ञानदर्शनमय स्वरूपविना अन्य किंचिन्मात्र हू हमारा नाहीं है मैं किसी अन्यद्रव्यका नाहीं हूं, मेरा कोऊ अन्यद्रव्य नाहीं है ऐसा अनुभवनकूं आकिंचन्य कहिये है। भो आत्मन्! अपना आत्माकूं देहतैं भिन्न अर ज्ञानमय अन्यद्रव्यकी उपमारहित अर स्पर्शरसगंधवर्णरहित अर अपना स्वाधीन ज्ञानानंदसुखकरि पूर्ण परम

अतींद्रिय भयरहित ऐसा अनुभव करो।

भावार्थ—यह देह है सो मैं नाहीं, देह तो रसरुधिरहाड़ मांस चाममय जड़ अचेतन है। मैं इसदेहतैं अत्यन्त भिन्न हूँ ये ब्राह्मण क्षत्रियादिक जातिकुल देह के हैं मेरे ये नाहीं हैं स्त्री पुरुष नपुंसक लिंग देहके हैं मेरे नाहीं, यो गोरापना सांवलापना राजापना रंकपना स्वामीपना सेवकपना पंडितपना मूर्खपणा इत्यादि समस्त रचना कर्मका उदयजनित देहके हैं मैं तो ज्ञायक, हूं ये देह का संबंधी मेरा स्वरूप नाहीं है, मेरा स्वरूप अन्य द्रव्यका उपमारहित है, ताता ठंडा नरम कठोर लूखा चीकना हलका भारी अष्टप्रकार स्पर्श हैं ते हमारा रूप नाहीं, पुद्गल के रूप हैं, ये खाटा मीठा कडवा कसायला चिरपरा पंचप्रकार रस अर सुगंध दुर्गंध दोयप्रकार का गंध अर काला पीला हरा स्वेत रक्त ये पंचवर्ण मेरा स्वरूप नाहीं, पुद्गलका है मेरा स्वभाव तो सुखकरि परिपूर्ण है परन्तु कर्मके आधीन दुखकरि व्याप्त होय रह्या हूँ मेरा स्वरूप इंद्रियरहित अतींद्रिय है इंद्रियां पुद्गलमय कर्मकरि की हुई हैं मैं समस्त भयरहित अविनाशी अखंड आदिअंतरहित शुद्ध ज्ञानस्वभाव हूँ परन्तु अनादिकालतैं जैसे सुवर्ण अर पाषाण मिल रह्या है तैसे तथा क्षीरनीर ज्यों कर्मनिकरि अनादि कालतैं मिलरह्या हूँ तिनमे हू मिथ्यात्वनाम कर्मका उदयकरि अपना स्वरूपका ज्ञानरहित होय देहादिकपरद्रव्यनिकूं आपका स्वरूप जानि अनंतकाल मैं परिभ्रमण किया।

अब कोऊ किंचित आवरणादिकके दूर होनेतैं श्रीगुरुनिका उपदेश्या परमागमके प्रसादतैं अपना अर परका स्वरूप का ज्ञान भया है जैसें रत्ननिका व्यापारी जड़ेहुए

पंचवर्ण रत्ननिके आभारणनिमें गुरुकी कृपातैं अर निरन्तर अभ्यासतैं मिल्याहुवा हू डाकका रंग अर माणिक्यका रंगकूं अर तोलकूं अर मोलकूं भिन्न भिन्न जाने है तैसे परमागमका निरंतर अभ्यासतै मेरा ज्ञान स्वभावमें मिल्या हुआ राग द्वेष मोह कामादिक मैलकूं भिन्न जाण्या है अर मेरा ज्ञायक स्वभावकूं भिन्न जाण्या है तातैं अब जैसे रागद्वेषमोहादिक भाव-कर्मनिमें अर कर्मनिके उदयतैं उपजे विनाशीक शरीर परिवार धन संपदादि परिग्रहमें ममता बुद्धि मेरे जैसे फिर अन्य जन्ममें हू नाहीं उपजै तैसें आकिंचन्य भाऊं। या आकिंचन्य भावना अनादिकालतै नाहीं उपजी, समस्तपर्यायनिकूं अपना रूप मान्या तथा रागद्वेषमोहक्रोधकामादिक भाव कर्मकृत विकार थे तिनकूं आपरूप अनुभवकरि विपरीत भावनितैं घोरकर्मबंधकूं कीया अब मैं आकिंचन्य भावनामें विघ्नका नाश करनेवाला पंच परमगुरुनिका शरणतैं आकिंचन्य ही निर्विघ्न चाहू हूं और त्रैलोक्यमें कोऊ अन्यवस्तुकूं नाहीं वांछूं हूं। यो आकिंचन्यपणा ही संसारसमुद्रतैं तारणेकूं जिहाज होहू। जो परिग्रहकूं महाबंध जानि छांडना सो आकिंचन्य है, आकिंचन्यपणा जाके होय है ताके परिग्रहमें वांछा नाहीं रहै है आत्मध्यानमें लीनता होय है, देहादिकनिमें वाह्यक्षेपमें आपो नाहीं रहै है, अर अपना स्वरूप जो रत्नत्रय तामें प्रवृत्ति होय है इंद्रियनिके विषयनिमें दौड़ता मन रुकि जाय है देहतैं स्नेह छूटि जाय सांसारिकदेवनिका सुख, इंद्र अहमिंद्र चक्रवर्तीनिका सुख हू दुख दीखै है। इनमें वांछा कैसे करै। परिग्रह रत्न सुवर्ण राज्य ऐश्वर्य स्त्री पुत्रादिकनिकूं जीर्णतृणमें जैसें ममता-

रहित छांडनेमें विचार नाहीं तैसैं परिग्रह छाडै है। आकिंचन्य तो परम वीतरागपणा है जिनकै संसारको अंत आगयो तिनकै होय है जाकै आकिंचन्यपणा होय ताकै परमार्थ जो शुद्धआत्मा ताका विचारनेकी शक्ति प्रगट होय ही अर पंचपरमेष्ठीमें भक्ति होय ही अर दुष्टविकल्पनिका नाश होय ही अर इष्टअनिष्ट भोजनमें राग द्वेष नष्ट हो जाय है, केवल उदररूप खाडा भरना अन्य रसनीरस भोजनमें विचार जाता रहै है, समस्त धर्मनिमें प्रधान धर्म आकिंचन्य ही मोक्षका निकट समागम करावनेवाला है। अनादिकालतैं जेते सिद्ध भए हैं ते आकिंचन्यतैं ही भये हैं अर आगैं जो जो तीर्थंकरादि सिद्ध होंगे ते आकिंचन्यपणा हीतैं होंगे। यद्यपि आकिंचन्यधर्म प्रधानकरि साधुजननिकै ही होय है तथापि एकदेश धर्मका धारक गृहस्थ उस धर्मके ग्रहण करनेकी इच्छा करै है अर गृहचारमें मंदरागी होय अतिविरक्त होय है प्रमाणीकपरिग्रह धारै है आगामी वांछारहित है अन्यायका धन परिग्रह कदाचित् ग्रहण नाहीं करै है अल्पपरिग्रहमें अति संतोषी होय रहै है परिग्रहकूं दुःखका देनेवाला अर अत्यंत अस्थिर मानै है ताकै ही आकिंचन्यभावना होय है। ऐसैं आकिंचन्यधर्मका बर्णन कीया ॥ ६ ॥

अब उत्तमब्रह्मचर्यका स्वरूप कहिए है—समस्त विषयनिमें अनुराग छांड करकै ब्रह्म जो ज्ञायकस्वभाव आत्मा तामें जो चर्या कहिये प्रवृत्ति सो ब्रह्मचर्य है। भो ज्ञानीजन हो यो ब्रह्मचर्य नाम व्रत बड़ो दुर्द्धर है हरेक बापडा विषयनिके वस हुआ आत्मज्ञान रहित है ते याकूं धारवेकूं समर्थ नाहीं हैं जे मनुष्यनिमें देवके

समान है ते धरवेकूं समर्थ हैं अन्य रंक विषयनिकी लालसाके धारक ब्रह्मचर्य धारनेकूं समर्थ नाहीं हैं यो ब्रह्मचर्यव्रत महादुर्द्धर है, जाकै ब्रह्मचर्य होय ताकै समस्त इंद्रिय अर कषायनिका जीतना सुलभ है। भो भव्य हो स्त्रीनिका सुखमे रागी जो मन-रूप मदोन्मत्त हस्ती ताकूं वैराग्यभावनामें रोक करकै अर विष-योंकी आशाका अभाव करकैं दुद्धर ब्रह्मचर्य धारण करो। यो काम है सो चित्तरूप भूमिमे उपजै है याकी पीडाकरि नाहीं करने योग्य ऐसे पाप करै हैं यातैं यो काम मनकूं मथन करै है मनका ज्ञानकूं नष्ट करै है याहोतैं याकूं मनमथ कहिये है, ज्ञान नष्ट हो जाय यदि ही स्त्रीनिका महादुर्गंध निंद्य शरीरकूं रागी हुआ सेवै है अर कामकरि अंध हो जाय तदि महाअनीतिकूं प्राप्त होय अपनो परकी नारीका विचार ही नाहीं करै है। 'जो इस अन्यायतैं मैं इहां ही मारया जाऊंगा राजाका तीव्रदण्ड होयगा यश मलीन होयगा धर्म भ्रष्ट होजाऊंगा सत्यार्थबुद्धि नष्ट होजायगी मरणकरि नरकनिमे घोर दुःख असंख्यातकाल पर्यंत भोगि फिर असंख्यात तिर्यंचनिके दुःखरूप अनेकभव पाय कुमा-नुषनिमें अंधा लूला कूबडा दरिद्री इन्द्रियविकल बहरा गूंगा चांडाल भील चमारनिके नीचकुलमें उपजि फिर त्रसस्थावरनि में अनन्तकाल परिभ्रमण करूंगा। ऐसा सत्यविचार कामीके नाहीं उपजै है। इस कामके नाम ही जगतके जीवनिकूं प्रगट करै हैं। कं कहिये खोटा दर्प अर्थात् गर्व उपजावै तातैं कंदर्प कहिये है। अति कामना जो वांछा उपजाय दुःखित करै तातैं याकूं काम कहिये है। याकरि अनेक तिर्यंचनिके तथा मनुष्यनि

के भवनिमें लड़ि-लड़ि मरिये तातैं मार कहिये हैं। संवरको वैरी तातैं संवरारि कहिये। ब्रह्म जो तपसंयम तातैं सुवति कहिये चलायमान करै तातैं ब्रह्मसू कहिये इत्यादिक अनेक दोषनिकूं नाम ही कहै हैं या जानि मनवचनकायतै अनुरागकरि ब्रह्मचर्य व्रत पालो। ब्रह्मचर्यकरिसहित ही संसारके पार जावोगे, ब्रह्मचर्य विना व्रत तप समस्त असार है ब्रह्मचर्य विना सकल कायक्लेश निष्फल हैं। बाह्य जो स्पर्शनइन्द्रियका सुखतैं विरक्त होय अभ्यन्तर परमात्मस्वरूप आत्मा ताकी उज्ज्वलता देखहु जैसे अपना आत्मा कामके रागकरि मलीन नाहीं होय तैसैं यत्न करो। ब्रह्मचर्यकरि ही दोऊ लोक भूषित होय है। बहुरि जो शीलकी रक्षा चाहो हो अर उज्वल यश चाहो हो अर धर्म चाहो हो अर अपनी प्रतिष्ठा चाहो हो तो चित्तमें परमागमकी शिक्षा इस प्रकार धारण करो स्त्रीनिकी कथा मति श्रवण करो, मति कहो स्त्रीनिका रागरंग कुतूहल चेष्टा मति देखो ये मेला देखना परिणाम बिगाड़ै है। व्यभिचारी पुरुषनिकी सङ्गतिका त्याग करना, भांग जरदा मादकवस्तु भक्षण नाहीं करना, तांबूल तथा पुष्पमाला अतर फुलेलादि शीलभङ्ग व्रतभङ्गके कारण दूरतैं टालो गीतनृत्यादि कामोद्दीपनके कारणनिका परिहार करो, रात्रिभक्षण टालो, विकार करनेका कारण लोकविरुद्ध वस्त्र आभरण मति पहरो, एकांतमें कोऊ ही स्त्रीमात्रका संसर्ग मति करो रसनाइंद्रियकी लम्पटता छांडो, जिह्वाकी लम्पटताकी लार हजारां दोष आवै हैं यातैं समस्त ऊंचापणो यश धर्म नष्ट होजाय है जिह्वा इंद्रियका लंपटी के सन्तोष नष्ट होजाय समभावकूं स्वप्नमें हू नाहीं जानै

लोकव्यवहार भ्रष्ट होजाय ब्रह्मचर्य भङ्ग होजाय यातैं आत्माके हितका इच्छुक एक ब्रह्मचर्यकी ही रक्षा करो ऐसैं धर्मके दशलक्षण सर्वज्ञ भगवान कहे हैं। जाके ये दश चिह्न प्रगट होंय ताके धर्म है उत्तक्षमादिकनिके घातक धर्मके वैरी क्रोधादिक हैं तिनतैं अनेक दोष उपजै हैं तिनकी भावना करो अर क्षमादिकनिमें अनेक गुण हैं तिनकी भावना बारम्बार सदैव भावो। जो क्षमा है सो अपना प्राणनिकी रक्षा है, धनकी रक्षा है, यशकी रक्षा है, धर्मकी रक्षा है व्रतशीलसंयमसत्यकी रक्षा एक क्षमातैं ही है, कलहके घोरदुःखतैं अपनी रक्षा एक क्षमा ही करै है, समस्त उपद्रव तथा वैरतैं क्षमा ही रक्षा करै है। बहुरि क्रोध है सो धर्मअर्थकाममोक्षका मूलतैं नाश करै है अपना प्राणनिका नाश करै है, क्रोधतैं प्रचण्ड रौद्रध्यान प्रगट होय है, क्रोधी एक क्षणमात्रमें आप मरि जाय है, कूवामे बावड़ीमें तालाब नदी समुद्रमें डूबि मरै है, शस्त्रघात विषभक्षण झंझापातादि अनेक कुकर्मकरि आत्मघात करै है। अन्यके मारनेकी क्रोधीके दया नाहीं होय है क्रोधी होय सो अपने पिताकूं पुत्रकूं भ्राताकूं मित्रकूं स्वामीकूं सेवककूं गुरुकूं एक क्षणमात्र में मारै है। क्रोधी घोर नरकका पात्र है, क्रोधी महा भयङ्कर है समस्तधर्मका नाश करनेवाला है। क्रोधीके सत्यवचन नाहीं होय है, आपकूं अर धर्मकूं अर समभावकूं दग्ध करनेवाला कुवचनरूप अग्निकूं उगलै है, क्रोधी होय सो धर्मात्मा संयमी शीलवान मुनि अर श्रावकनिकूं चोरी अन्यायके झूठे दोष कलङ्क लगाय दूषित करै है। क्रोधके प्रभावतैं ज्ञान कुज्ञान होय है, आचरण विपरीत होजाय है, श्रद्धान भ्रष्ट होजाय है अन्यायमें प्रवृत्ति हो

जाय है, नीतिका नाश होय है, अति हठी होय विपरीतमार्गका प्रवर्तक होय है, धर्म अधर्म उपकार अपकारका विचाररहित कृतघ्नी होय है। यातैं वीतरागधर्मके अर्थी हो तो क्रोधभावकूं कदाचित् प्राप्त मति होहू। बहुरि मार्दव जो कठोरतारहित कोमलपरिणामी जीव में गुरुनिका बड़ा अनुराग वर्तै है मार्दव-परिणामीकूं साधुपुरुष हू साधु माने हैं तातै कठोरतारहित पुरुष ही ज्ञानका पात्र होय है, मानरहित कोमलपरिणामीकूं जैसा गुण ग्रहण कराया चाहै तथा जैसी कला सिखाया चाहै तैसी कला गुण प्राप्त हो जाय है, समस्त धर्मका मूल समस्तविद्याका मूल विनय है विनयवान समस्तके प्रिय होय है अन्यगुण जामें नाहीं होय सो पुरुष हू विनयतैं मान्य होय है विनय परम आभूषण है कोमल परिणामीमें ही दया वसै है मार्दवतैं स्वर्गलोककी अभ्युदय सम्पदा निर्वाणकी अविनाशीक सम्पदा प्राप्त होयहै अर कठोरपरि-णामीकूं शिक्षा नाहीं लागै है, साधुपुरुष हैं तिनका परिणाम हू अविनयी कठोरपरिणामीकूं दूरहीतैं त्याग्या चाहै है जैसैं पाषाण में जल नाहीं प्रवेश करै तैसैं सद्गुरुनिका उपदेश कठोरपुरुषका हृदयमें-प्रवेश नाहीं करै है जातैं जो पाषाणकाष्ठादिक हू नरमाई लिये होय ताका तो बालबालमात्र हू जहां घड़या चाहै छील्या चाहै तहां बालमात्र ही उतरि आवे तदि जैसी सूरत मूरत बनाया चाहै तैसैं ही बने है अर कोमलतारहितमें जहां टांची लगावे तहां चिढक उतरि दूरि पड़े शिल्पीका अभिप्राय माफिक घड़ाईमें नाहीं आवै तैसैं कठोरपरिणामीकूं यथावत् शिक्षा नाहीं लागै अभि-मानी कोऊकूं प्रिय नाहीं लागै अभिमानीका समस्तलोक विना

किया वैरी होय है अर परलोकमें अतिनीच तिर्यंचमनुष्यनिमें असंख्यातकाल नाना तिरस्कारका पात्र होय है। यातैं कठोरता त्यागि मार्दवभावना ही निरन्तर धारण करो।

बहुरि कपट समस्त अनर्थनिका मूल है प्रीति अर प्रतीतिका नाश करनेवाला है कपटीमें असत्य छल निर्दयता विश्वासघातादि समस्त दोष बसैं है, कपटीमें गुण नाही समस्त दोष हीं दोष वास करै है। मायाचारी यहां अपयशकूं पाय तिर्यंचनरकादिक गतिनिमें असंख्यात काल भ्रमण करै है। मायाचार-रहित आर्जवधर्मका धारकमें समस्तगुण बसैं हैं समस्त लोकनिकूं प्रीतिका अर प्रीतीतिका कारण होय है परलोकमें देवनिकरि पूज्य इन्द्र प्रतींद्रादिक होय हैं यातै सरलपरिणाम ही आत्माका हित है। बहुरि सत्यवादीमें समस्तगुण तिष्ठै हैं सदाकाल कपटा-दिदोषरहित जगतमें मान्यताकूं हू प्राप्त होय है अर परलोकमें अनेक देवमनुष्यादिक जाकी आज्ञा मस्तक ऊपर धारैं हैं। अर असत्यवादी इहां ही अपवाद निन्दा करनेयोग्य होय है। समस्तके अप्रतीतिका कारण है बांधवमित्रादिक हू अवज्ञा करि छांडै हैं राजानिकरि जिह्वाछेद सर्वस्वहरणादिक दण्ड पावै हैं अर पर-लोकमे तिर्यंचगतिमें वचन रहित एकेन्द्रिय विकलत्रयादि असं-ख्यातपर्याय धारैं हैं यातैं सत्यधर्मका धारण ही श्रेष्ठ है।

बहुरि जाका शुचिआचरण होय सो ही जगतमे पूज्य है, शुचि नामपवित्रता उज्वलताका है जाकी आहारविहारादिक समस्तप्रवृत्ति हिंसारहित हिंसाका भयतैं यत्नाचारसहित होय अर अन्यके धनमें

अन्यकी स्त्रीमें कदाचित् स्वप्नमें वांछा नाहीं होय सो ही उज्वल आचारणको धारक है तिसकूं ही जगत पूज्य मानै है। निर्लोभीका समस्तलोक विश्वास करै है, सो ही लोक में उत्तम है ऊर्ध्वलोकका पात्र है, लोभरहितका बड़ा उज्वलयश प्रगटै है, लोभी महामलीन समस्तदोषनिका पात्र है निंद्यकर्ममें लोभीकी प्रीति होय है लोभीके ग्राह्यअग्राह्य खाद्यअखाद्य कृत्य-अकृत्यका विचार ही नाहीं होय है, इहां हू लोकमें निन्दा धर्मतैं पराङ्मुखता निर्दयता प्रकट देखिये है, लोभी धर्म अर्थ कामकूं नष्टकरि कुमरणकरि दुर्गति जाय है लोभीका हृदयमे गुण अवकाश नाहीं पावै है इसलोकमें परलोकमे लोभीकूं अचिंत्य क्लेश दुःख प्राप्त होय है यातै शौच-धर्मका धारण ही श्रेष्ठ है। बहुरि संयम ही आत्माका हित है इस-लोकमें संयमका धारक समस्त लोकनिके वन्दनेयोग्य होय है समस्तपापनिकरि नाहीं लिपै है याकी इसलोकमें परलोकमें अचित्यमहिमा है अर असंयमी है सो प्राणनिका घात अर विषयनिमें अनुरागकरि अशुभकर्मका बन्ध करै है यातैं संयम धर्म ही जीवका हित है। बहुरि तप है सो कर्मका संवर निर्जरा करनेका प्रधान कारण है, तप ही आत्माकूं कर्ममलरहित करै तपका प्रभावतैं यहां ही अनेक ऋद्धि प्रकट होय हैं, तपका अचिंत्यप्रभाव है, तपबिना कामकूं निद्राकूं कौन मारै, तपबिना वांछाकूं कौन मारै? इंद्रियनिके विषयनिको मारनेमें तप ही समर्थ है, आशारूप पिशाचणी तपहीतैं मारी जाय है, कामका विजय तपहीतैं होय है तपका साधन करनेवाला परीषह उपसर्ग आवते हू रत्नत्रयधर्मतैं नहीं छूटै यातैं तपधर्म ही धारण करना

उचित है तपविना संसारतैं छूटना नाहीं है, जातैं चक्रीपनाका हू राज्य छांडि तप धारै सो त्रैलोक्यमें वन्दनेयोग्य पूज्य होय है अर तपकूं छांडि राज्य ग्रहण करै सो अतिनिंद्य थुथुकार करने योग्य होय तृणतैं हू लघु होय यातैं त्रैलोक्यमें तप-समान महान् अन्य नाहीं।

बहुरि परिग्रहसमान भार नाहीं जेते दुःख दुर्ध्यान क्लेश वैर वियोग शोक भय अपमान हैं ते समस्त परिग्रहके इच्छुककै है जैसैं जैसैं परिग्रहतै परिणाम निराला होय तैसै तैसैं खेदरहित होय है जैसें बडाभारकरि दुःखित पुरुष भाररहित होय तदि सुखित होय तैसैं परिग्रहकी वासना मिटै सुखित होय है समस्त दुःख अर समस्तपापनिका उपजावनेका स्थान ये परिग्रह है जैसैं नदी-निकरि समुद्र तृप्त नाहीं होय अर ईंधनकरि अग्नि तृप्त नाहीं होय है। आशारूप खाडा बडा अगाध है जाका तलस्पर्श नाहीं ज्यों ज्यों यामें धरो त्यों त्यों खाडा बधता जाय, जो आशारूप खाडा निधिनितैं नाहीं भरै सो अन्यसंपदातैं कैसैं भरै। अर ज्यों ज्यों परिग्रहकी आशाका त्याग करो त्यों त्यों भरतो चल्या जाय तातैं समस्तदुःख दूरि करनेकूं त्याग ही समर्थ है। त्यागहीतैं अन्तरङ्ग बहिरङ्ग बंधनरहित होय अनन्तसुखके धारक होहुगे परिग्रहके बंधनमें बंधे जीव परिग्रह त्यागतैं ही छूटि मुक्त होय तातैं त्यागधर्म धारण ही श्रेष्ठ है। बहुरि हे आत्मन्! यो देह अर स्त्री पुत्र धन धान्य राज्य ऐश्वर्यादिकनिमें एक परमाणुमात्र हू तुम्हारा नाहीं है, पुद्गलद्रव्य हैं जड हैं, विनाशीक हैं, अचेतन हैं इन परद्रव्यनिमें 'अहं' ऐसा संकल्प तीव्र दर्शनमोहकर्मका उदय-

विना कौन करावै इस परद्रव्यमें आत्मसंकल्प मेरे कदाचित् मति होहू मैं अकिंचन हूं। या आकिंचन्यभावनाके प्रभावतैं कर्म का लेपरहित यहां ही समस्त बंधरहित हुआ तिष्ठै है साक्षात् निर्वाणका कारण आकिंचन्यधर्म ही धारण करो।

बहुरि कुशील महापाप है संसारपरिभ्रमणका बीज है ब्रह्मचर्य के पालनेवालेतैं हिंसादिक पापनिका प्रचार दूरि भागै है समस्तगुण-निकी संपदा यामें बसै है जितेंद्रियता प्रकट होय है ब्रह्मचर्यतैं कुलजा-त्यादि भूषित होय हैं परलोकमें अनेक ऋद्धिका धारक महर्द्धिकदेव होय है। ऐसैं भगवान अरहंत देवाधिदेवके मुखारविंदतैं प्रगट हुआ दृशलक्षणधर्म आत्माका स्वभाव है, परवस्तु नाहीं है, क्रोधादिक कर्मजनित उपाधि दूरि होतैं स्वयमेव आत्माका स्वभाव प्रगट होय है, क्रोधके अभावतैं क्षमागुण प्रगट होय है, मानके अभावतैं मार्दवगुण प्रगट होय है, मायाके अभावतैं आर्जवगुण प्रगट होय है, लोभके अभावतैं शौचधर्म प्रगट होय है, असत्यके अभावतैं सत्यधर्म प्रगट होय हैं कषायनिके अभावतैं संयमगुण प्रगट होय है, इच्छाके अभावतैं तपगुण प्रगट होय है, परमें ममताके अभाव तैं त्यागधर्म प्रगट होय है, परद्रव्यनितैं भिन्न अपने आत्मानुभव होनेतैं आकिंचन्यधर्म प्रगट होय है, वेदनिके अभावतैं आत्म-स्वरूपमें प्रवृत्तितैं ब्रह्मचर्यधर्म प्रगट होय है। यो दश प्रकारधर्म आत्माका स्वभाव है यो धर्म किसीतैं खोस्या खुसै नाहीं, लूट्या लुटै नाहीं चोर चोरि सकै नाहीं राजाका लूट्या लुटै नाहीं स्वदेश में परदेशमें सदा याका स्वरूप छूटै नाहीं, किसीका बिगाड्या बिगड़ै नाहीं धनकरि मोल आवै नाहीं आकाशमें पातालमें दिशामें

विदिशामें पहाडमें जलमें, तीर्थमें मन्दिरमें कहीं धरया नाहीं आत्माका निजस्वभाव है याका लाभ सम्यग्ज्ञान श्रद्धानतैं होय है अर ऐसा सुगम है जो बालक वृद्ध युवा धनवान निर्धन बलवान निर्बल सहायसहित असहाय रोगी निरोगी समस्तके धारण करने मे आवनेयोग्य स्वाधीन है धर्मके धारनेमे कुछ खेद क्लेश अपमान भय विषाद कलह शोक दुःख कदाचित् है नाहीं, दुर्लभ है नाहीं बोझ उठावना नाहीं दूरदेश जावना नाहीं क्षुधा तृषा शीत उष्णताकी वेदनाका आवना नाहीं, किसीका विसम्वाद झगड़ा है नाहीं, अत्यन्त सुगम समस्तक्लेश दुःखरहित स्वाधीन आत्माकाही सत्यपरिणमन है। यातैं समस्त संसारपरिभ्रमणतैं छूटि अनन्तज्ञान दर्शन सुख वीर्यका धारक सिद्ध अवस्था याका फल है। ऐसैं दशलक्षणधर्मको संक्षेप करि वर्णन कियो।

अब शल्यनिका जाके अभाव होय सो व्रती होय है शल्यसहितके व्रत कदाचित् नाहीं होय यातैं तीनशल्यका स्वरूप श्रावक कूं हू जाणया चाहिये। निदानशल्य, मायाशल्य, मिथ्यादर्शनशल्य ये तीनों ही शल्य व्रतके घात करनेवाली है तिन तीन शल्य मे निदान है सो तीनप्रकार है एक प्रशास्तनिदान, अप्रशस्तनिदान, भोगार्थनिदान ये तीनप्रकार ही निदान संसारका कारण हैं इहां निदाननाम आगामी वांछाका है, तिनमें जो संयम धारनेके अर्थि उत्तमकुल उत्तमसंहनन बलवीर्य शुभसंगति तथा बंधुजननिकी धर्ममें सहायता उज्वलबुद्धि आदिकूं चाहना सो प्रशस्तनिदान है। बहुरि अभिमानके अर्थि उत्तमकुल जाति भली बुद्धि प्रबलशक्ति तथा आचार्यपना गणधरपना तीर्थंकरपना इत्यादिक अपनी

आज्ञा तथा आदर उच्चता प्रवर्तनेके अर्थि चाह करना सो अप्रशस्तनिदान है तथा क्रोधी होय अन्यके मारनेके अर्थि वांछा करना परके स्त्री-पुत्र राज्य ऐश्वर्यका नाशके अर्थि वांछा करना सो हू अप्रशस्तनिदान है। बहुरि जो संयमधारणकरि घोरतपश्चरणकरि ताका फल इंद्रियनिका विषय राज्य ऐश्वर्य तथा देवपना तथा अनेक अप्सरानिका स्वामीपना तथा जातिकुलमें उच्चपना तथा चक्रीपना चाहना सो भोग के अर्थि निदान जानना सो यो निदान दीर्घकाल संसारपरिभ्रमण करावनेवाना जानना। संयमका प्रभावकरि समस्त कर्मका नाश करि अतींद्रिय अविनाशी निर्वाण का अनन्तसुख पाइये है। तिस संयमकूं पालि भोगनिकी वांछा करै है सो एक कौड़ी में चिन्तामणिरत्नकूं वेचै है तथा अपनी रत्ननिकी भरी समुद्रमें दौड़ती नावकूं ईंधनके अर्थि तोड़ै है तथा मणिमय हारकूं सूतके अर्थि तोड़ै है तथा गोशीर जो चन्दन ताकूं भस्मके अर्थि दग्ध करै है। जो वांछा करै है ताके पुण्य हू नष्ट होजाय, पापका बंध होजाय है। पुण्यका बंध तो निर्वांछक भावतैं होय है सम्यग्दृष्टी तो भोगनिकी वांछारहित है, सम्यग्दृष्टी कूं तो इंद्रअहमिंद्रलोकका सुख हू सुखाभास विनाशीक पराधीनताकरि दुःखरूप दीखै है, वाकूं तो आत्मीक स्वाधीन अतींद्रिय सुखका अनुभव है। यातैं इंद्रियजनित आतापतैं महाक्लेशका भर्‌या तृष्णारूप आतापकूं बधावता विषयनिके आधीनकूं कैसैं सुख मानै जैसैं जो अमृत आस्वादन किया सो कटुक महादुर्गंध आताप उपजावनेवाली कड़वी खलिकूं कैसैं वांछा करै? सम्यग्दृष्टीके तो ऐसी वांछा है—

दुक्खक्खयकम्मक्खयसमाहिमरणं च वोहिलाहो य ।
एयं पत्थे दव्वं णपत्थनीयं तदो अण्णं ॥ १ ॥

अर्थ—हमारे शरीरधारणादिक जन्म मरण क्षुधा तृषादिक दुःखनिको क्षय होहु, आत्मगुणकूं नष्ट करनेवाला मोहनीय ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तराय कर्मको क्षय होहु तथा इस पर्यायमें च्यार आराधनाका धारणसहित समाधिमरण होहु, बोधि जो रत्नत्रय ताका लाभ होहु। सम्यग्दृष्टीकै ऐसी ही प्रार्थना करने योग्य है। इनतैं अन्य इस भवमें परभवमें प्रार्थना करने योग्य नाहीं है। संसारमें परिभ्रमण करता जीव उच्चकुल नीचकुल राज्य ऐश्वर्य धनाढ्यता निर्धनता दीनता रोगीपना नीरोगपना रूपवानपना विरूपपना बलवानपना निर्बलपना पण्डितपना मूर्खपना स्वामीपना सेवकपना राजापना रङ्कपना गुणवानपना निर्गुणपना अनन्तानन्त वार पाया है अर छांड्या है तातैं इस क्लेशरूप संयोगवियोगरूप संसारमें सम्यग्दृष्टी निदान कैसैं करै ? इस संसारमें अनन्त पर्याय दुःखरूप पावै तदि एक पर्याय इन्द्रियजनित सुखकी पावे फिर अनन्तवार दुःखकी पावै सो ऐसें परिवर्तन करते इन्द्रिजनित सुख हू अनन्तवार पाया।

अब सम्यग्दृष्टी इंद्रियनिके सुखकी कैसैं वांछा करै ? इस संसारमें स्वयंभूरमणसमुद्रका समस्त जलप्रमाण तो दुःख है अर एक बालकी अणीके जल लागै ताका अनन्तभाग करिये तिनमें एक भाग प्रमाण इन्द्रियजनित सुख है इसतैं कैसैं तृप्ति होयगी अर भोगनिका त्याग तथा इष्ट सम्पदाका संयोगका जेता सुख है तिस तैं असंख्यातगुणा वियोगकालमें दुःख है अर संयोग होय ताका

वियोग नियमसूं होयगा जैसैं शहदकरि लिप्त खड्गकी धाराकूं जो जिह्वाकरि चाटै ताके स्पर्शमात्र मिष्टताका सुख अर जिह्वा कटि पड़े ताका महादुःख, तैसैं विषयनिके संयोगका सुख जानो तथा जैसैं किंपाकफल दीखनेमें सुन्दर खावनेमें मिष्ट है पीछैं प्राणनिका नाश करै है तथा जहरतैं मिल्या मोदक खातां तो मीठा परिपाक कालमें प्राणनिका महादुखतैं नाश करनेवाला है तैसैं भोगजनित सुख जानहु। बहुरि जैसै कोऊ पुरुषकनैं बहुत धन होय अल्प-मोल लीया चाहै तो बहुत धनके साटै थोरा धन मिलजाय अर आपकनै अल्पधन होय अर वाका मोल बहुत चाहै तो नाहीं मिलै तैसैं जो स्वर्गकी सम्पदा पावनेयोग्य पुण्यबन्ध किया होय अर पीछै निदान करै तो राज्यसम्पदा मिलिजाय तथा व्यन्तरा-दिकदेवनिमें जाय उपजै निदान करनेतैं अपना अधिकपुण्य होय ताकूं घाति तुच्छसम्पदा जाय पावै है पाछैं संसारपरिभ्रमण याका फल है। जैसैं सूत की लांबी डोरीकरि बंधा पक्षी दूरि उड़ गया हू उसी स्थानकूं प्राप्त होय है जातैं दूरि उडि चल्या तो कहा पग तो सूत की डोरीतैं बंधा है, जाय नाहीं सकेगा। तैसै निदान करनेवाला अति दूरि स्वर्गादिकमें महर्द्धिकदेव हुआ हू संसार ही में परिभ्रमण करैगा देवलोक जाय करके हू निदानके प्रभावतैं एकेंद्रिय तिर्यंचनि में तथा पंचेन्द्रियतिर्यंचनिमें तथा मनुष्यमें आय पापसंचय करि दीर्घकाल परिभ्रमण करै है अथवा जैसैं ऋणसहित पुरुष करारकरि वंदीगृहतैं छूटिकरि अपने घरमें सुखसूं आय वस्या तो हू करार पूर्ण भये फिर वन्दीगृहमें जाय वसै तैसैं निदानकरि सहित पुरुष हू तपसंयमतैं पुण्य उपजाय स्वर्गलोक जाय करकैं हू आयु पूर्ण भये स्वर्गतैं चय संसारहीमें परिभ्रमण करै है।

यहां ऐसा जानना जो मुनिपनामें वा श्रावकपनामें मन्दकषायके

प्रभावतै वा तपश्चरणके प्रभावतैं अहमिंद्रनिमें तथा स्वर्गमें उप-जनेका पुण्यसंचय किया होय अर पाछैं भोगनिकी वांछादिरूप निदान करै तो भवनत्रिकादिक अशुभदेवनिमें जाय उपजै अर जाकै पुण्य अधिक होय अर अल्पपुण्यका फलके योग्य निदान करै तो अल्पपुण्यवाला देव मनुष्य जाय उपजै अधिक पुण्य-वाला देव मनुष्यनिमें नाहीं उपजै जो निर्वाणका तथा स्वर्गादिक-निके सुखका देनेवाला मुनि श्रावकका उत्तमधर्म धारणकरि निदानतैं बिगाड़ै है सो ईंधनके अर्थि कल्पवृक्षकूं छेदै है ऐसैं निदानशल्यका दोष वर्णन किया। अब मायाशल्यका दोष कौन वर्णन करि सके। पूर्वैं मायाचारके दोष कहे ही, मायाचारीका व्रतशीलसंयम समस्त भ्रष्ट है जो भगवान जिनेन्द्रका प्ररूप्या धर्म धारण करो अर आत्माकूं दुर्गतिनिके दुखतैं रक्षा करी चाहो हो तो कोटि उपदेशनिका सार एक उपदेश यह है जो मायाश-ल्यकूं हृदयमेंसे निकास्यो, यश अर धर्म दोऊनिका नाश करने-वाला मायाचार त्यागि सरलता अङ्गीकार करो। बहुरि मिथ्या-त्वका पूर्वैं वर्णन किया सो समस्त संसारपरिभ्रमणका बीज है मिथ्यात्वके प्रभावतैं अनंतानंत परिवर्तन किया मिथ्यात्वविषकूं उगल्यांविना सत्यधर्म प्रवेश ही नाहीं करै, मिथ्यात्वशल्य शीघ्र ही त्यागो। माया मिथ्या निदान इन तीन शल्यका अभाव हुआ-विना मुनिका श्रावकका धर्म कदाचित् नाहीं होय निःशल्य ही व्रती होय है। बहुरि दुष्टमनुष्यनिका संगम मति करो जिनकी संगतितैं पापमें ग्लानि जाती रहै पापमें प्रवृत्ति हो जाय तिनका प्रसंग कदाचित मति करो, जुआरी चोर छली परस्त्री-लंपट

जिह्वा इन्द्रियका लोलुपी, कुलके आचारतैं भ्रष्ट विश्वासघाती मित्रद्रोही गुरुद्रोही धर्मद्रोही अपयशके भयरहित निर्लज्ज पाप-क्रियामें निपुण व्यसनी असत्यवादी असंतोषी अतिलोभी अति-निर्दयी कर्कशपरिणामी कलहप्रिय विसंवादी वा कुचाल प्रचण्ड-परिणामी अतिक्रोधी परलोकका अभाव कहनेवाला नास्तिक पाप के भयरहित तीव्रमूर्छाका धारक अभक्ष्यका भक्षक वेश्यासक्त मद्यपानी नीचकर्मी इत्यादिकनिकी संगति मति करो जो श्रावक-धर्मकी रक्षा किया चाहो हो, जो अपना हित चाहो हो तो अग्नि-समान विषसमान कुसंग जानि दूरतैं ही छांडो जातैं जैसाका संसर्ग करोगे तिसमें ही प्रीति होयगी अर प्रीति जामें होय ताका विश्वास होय विश्वासतैं तन्मयता होय है तातैं जैसी संगति करोगे तैसा हो जावोगे जातैं अचेतन मृत्तिका हू संसर्गतैं सुगन्ध दुगध होय है तो चेतन मनुष्य संगतिकरि परके गुणरूप कैसैं नाहीं परिणमैगा। जो जैसेकी मित्रता करै है सो तैसा ही होय है दुर्जन की संगतिकरि सज्जन हू अपनी सज्जनता छांडि दुर्जन हो जाय है जैसैं शीतल हू जल अग्निकी संगतितैं अपना शीतलस्वभाव छांडि तप्तपनेनें प्राप्त होय है। उत्तमपुरुष हू अधमकी संगति पाय अध-मताकूं प्राप्त होय है जैसैं देवताके मस्तक चढनेवाली सुगंधपुष्प-निकी माला हू मृतकका हृदयका संसर्गकरि स्पर्शनेयोग्य नाहीं रहै है, दुष्टकी संगतितैं त्यागी संयमीपुरुष हू दोषसहित शंका करिये है जैसैं कलालका हस्तमें दुग्धका घडा हू मदिरादि शंका उपजावै है तथा कलालका घरमें दुग्धपान करता हू ब्राह्मण लोकनिकै मदिरा-पीवनेकी शंका उपजावै है लोक तो परके छिद्र देखनेवाले हैं परके

दोष कहनेमें आसक्त हैं, जो तुम दुष्टनिकी दुराचारीनिकी संगति करोगे तो तुम लोकनिन्दानै प्राप्त होय धर्मका अपवाद करावोगे तातैं कुसंग मति करो। खोटे मनुष्यकी संगतितैं निर्दोष हू दोषसहित मिथ्यामार्गी शीघ्र होय हैं जातैं मिथ्यात्वका अर कषायनिका परिचय तो अनादिकालका है अर वीतरागभाव कदाचित् कोई महाकष्टतैं उपज्या सो कुसंग पाय क्षणमात्रमें जाता रहैगा अनादिकालका मोहकर्म बडा प्रबल है। याका उदयतैं विषयकषायनिमें विना सिखाया स्वयमेव प्रवर्तै है फिर कुसंगतितैं तो पवनकी संगतितैं अग्निका ज्यों अतिप्रज्वलित होय है यातैं कुसंग छांडि शुभसंगति करो, सज्जननिकी संगतितैं दुष्ट हू अपना दोषकूं छांडै हैं। बहुरि सत्संगतितैं निर्गुणपुरुष हू जगतकै मान्य होय है जैसैं निर्गंध हू पुष्प देवतानिका संगतितैं लोक मस्तकविषैं चढावैं हैं। यद्यपि कोऊकै धर्ममें प्रीति नाहीं है अर परीषह सहनेमें अर इंद्रियनिके विषय त्यागनेमें अतिपराङ्मुखपना है तोहू संयमीत्यागी व्रती पुरुषनिकी संगतिरहनेके प्रभावतैं लज्जाकरि भयकरि अभिमानकरि अन्यायके विषयकषायतैं विरक्त होय ही है, अर जो प्रकृतिकरि ही मन्दकषायी धर्मानुरागी पापतैं भयभीत होय अर ताकूं उत्तमसंगति मिलै ताकै परमधर्मका ग्रहण होय संसारके पारकूं पावै ही है बहुरि जिनतैं सम्यक्धर्मकी प्रवृत्ति होय जिनकी संगतितै अनेकजन विषयकषायतैं विरक्त होंय त्यागसंयमतपमें लीन हो जांय ऐसा न्यायमार्गी धर्मचर्याका धारक धर्मात्मा एक पुरुषकरि ही जगत भूषित है कृतार्थ है, धर्मरहित विषयी कषायी बहुतकरि कहा साध्य है। कल्पवृक्ष तो एक ही समस्त वेदनारहित

करि वांछित सुख दे है अर विषके बहुत वृक्ष केवल मूर्छा संताप मरणके कारणकरि कहा साध्य है इसलोकमें जो अनर्थ पैदा होय सो कुसंगतें होय है, कुसंगविना जुवारी चोर परस्त्रीलंपट वेश्यासक्त अभक्ष्यभक्षक पद्यपायी नाहीं होय, बड़े-बड़े अनर्थ दोष कुसंगतैं ही होय हैं यातैं दोऊलोकमे अपना हित चाहो हो तो कुसंग मति करो। प्रत्यक्ष देखिये है जे उत्तमकुल उत्तमउज्वल धर्म पाया है फिर हू कुदेव कुगुरु कुधर्म पाखण्डीनिकी उपासना करैं हैं, भांग पीवैं हैं जरदा खाय हैं बहुरि हुक्का पीवे हैं, रात्रिभक्षण करैं है वेश्याकी उच्छिष्ट खाय है जुआ खेले हैं, चोरी करै हैं, चुगली करैं हैं परधन परस्त्रीकी ओर तृष्णा करैं हैं, जिह्वाइन्द्रियके लालुपी हैं निर्दयपरिणामी कुवचन बोलनेमें रक्त, परविघ्नसंतोषी सत्संगति विना कुसंगतें ही होय है। महा पुण्याधिकारी मनुष्य होय है सो इस विषम कलिकालमें कुसंगछांडि शुभसंगति पावै है। अर जो जिनेन्द्रधर्म धारण किया है तो अपनी प्रशंसा अर परकी निन्दा मति करो जो अपने मुखतैं अपनी प्रशंसा करै हैं सो अपने यश का नाश करैं हैं, अतिमानी मदवान विना अपनी प्रशंसा अन्य नाहीं करै है, अपनी प्रशंसा करता पुरुष तृणसमान लघु होय है अवज्ञायोग्य होय है, विद्यमान हू गुण अपने मुखतैं कहि गुण-रहित होय दोषनिका पात्र होय है जामें और कछू हू दोष नाहीं होय ताकै बडाभारी दोष आपकी प्रशंसा करना है। अपने मुखतैं अपनी प्रशंसा नाहीं करना सो बडा गुण है अपना गुणकी प्रशंसा नाहीं करता पुरुषका विद्यमानगुण नाशकूं नाहीं प्राप्त होय है जैसैं अपना तेजकी नाहीं प्रशंसा करता सूर्यका तेज जगतमें

विख्यात होय है आपमें गुण नाहीं अर आपकी प्रशंसा करता पुरुषकै गुणवानपना प्रगट नाहीं होय है जैसैं स्त्रीकी ज्यों हाव-भाव विलासविभ्रम शृङ्गार अंजन वस्त्रादिक धारण कर स्त्रीकी ज्यों आचरण करता नपुंसक स्त्री नाहीं होयगा, नपुंसक ही रहैगा। आपमें गुण विद्यमान हू होय अर कोऊ कीर्तनकरै प्रशंसा करै तदि उत्तम पुरुष तो अपनी कीर्ति श्रवणकरि लोकनिमें लज्जाकूं प्राप्त होय है, सत्पुरुषनिकूं अपनी कीर्ति नाहीं रुचै है अपनी कीर्ति श्रवणकरि अतिलज्जित हुवा आत्मनिंदा करै है जो मैं संसारी अनेकदोषनिकरि भर्या मेरी प्रशंसाकरि लोक मेरेऊपरि बडाभार आरोपण करैं हैं प्रशंसायोग्य तो वे हैं जे आत्माकी परम-विशुद्धताके इच्छुक होय मोह काम क्रोधादिकका विजयकूं प्राप्त भये हैं, हम संसारी रागद्वेषकरि व्याप्त इन्द्रियनिके विषयनिकरि तर्जित, परिग्रहासक्त अतिनिंदनेयोग्य हैं, जिनके एक घडी हू प्रमा-दीपनातैं धर्मरहित व्यतीत होय हैं ते जगतमे महामूढ हैं, निंद्य हैं, यो मनुष्यजन्म अतिदुर्लभ अर जामे जिनधर्मका पावना अतिदुर्लभतर ऐसे अवसर में भी जे धर्म छांडि विषयनिमें रचैं हैं ते अपने गृहमें उपज्या कल्पवृक्षकूं काटि विषकूंवृक्ष लगावै हैं तथा चिन्तामणिरत्नकूं काक उडावनेकूं क्षेपैं है तथा चिन्तामणि-रत्नकूं कांचका खंडमें वेचैं है। इस मनुष्यजन्मकी एक एक घड़ी कोटि धनमें दुर्लभ सो वृथा जाय है लोकनिकी कथामें तथा लोकनि-की रागद्वेषपरणति देखि मैं हू कषायसहित हुवा दुर्ध्यानतैं मनुष्य जन्म व्यतीत करूं हूॅं सो मुझ समान निंदने योग्य अन्य नाहीं इत्यादिक अपनी निंदा गर्हा करता उत्तमपुरुषकूं अपनी प्रशंसाकैसें

रुचै नाहीं रुचै आपकूं नीचा देखै है जो वचनकरि अपनी प्रशंसा करै सो नीचगोत्रनामकर्मका बन्ध करै है अर इहां लोकनिमें महानिंद्य होय है। सत्पुरुष अपने गुण आप प्रगट नाहीं करै तो हू उज्वल आचरणकरि जगतमें गुण विख्यात होय हैं जैसे चन्द्रमा का उद्योत अर शीतलपना अर आल्हादकपना विना कह्या जगतमें विख्यात होय है।

बहुरि परकी निंदा कदाचित् मति करो, परकी निन्दा करनेसमान जगतमें दोष नाहीं है। परकी निंदा महावैरका कारण है दुर्ध्यानका कारण है कलहका कारण है भयका कारण है दुःखका तथा पश्चात्तापका तथा शोकका तथा विसंवादका तथा अप्रतीतिका कारण है जगतमें निंदा होय है परकी निंदा करनेवाला अपना धर्म अर यश अर बडापनाका अत्यन्त नाश करै है जे परके दोष प्रगट करि आप निर्दोष बण्या चाहें हैं सो परकूं औषधि भक्षणकरनेतैं अपना नीरोगपना चाहें हैं कोटिदोषनिका शिरोमणि एक अन्यकी निंदा करना है यातैं जो जिनेन्द्रका धर्म धारण करो हो तो परके दोष मति कहो सत्पुरुष तो परमें दोष देखि आप लज्जित होय है अर परका दोषकूं अपना सामर्थ्य प्रमाण ढांकैं है, जैसैं अपना अपवादका भय करै तैसैं परके अपवाद होनेका बडाभय करै है जो संसारी जीवनिकै ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मका उदय प्रबल है जाकरि जीव अज्ञानकूं प्राप्त होय रहे हैं अर मोहनीयकर्मके उदयतैं रागी दोषी कामी क्रोधी लोभी मानी कपटी होय रहे हैं भयवान शोकवान ग्लानिवान रतिके वश अरतिके वशीभूत होय नाना विकाररूप कुचेष्टा करै हैं जैसैं मदिरा पीय परवस होय

आपा भूलै है तथा धतूरा खाय उन्मत्तचेष्टा करता परवश हुवा आपाभूलि निंद्यचेष्टा करै है तथा जैसें वातपित्तकरि उन्मत्त भया परवस बकवाद करैं हैं तैसें संसारीजीव विषयकषायके बस होय निंद्यचेष्टा करै है। इनकी तो करुणा धारि दोषनितैं छुडाऊं, निंदा अपवाद कैसें करूं, परका अपवादकरि अनेक निंद्यपर्याय दुर्गतिनिमें तिरस्कार पाया है। सम्यग्दृष्टी तो नित्य ही ऐसी प्राथना करै है जो मेरे परके दोष कहनेमे मौन होहू, मेरा समस्तजीवनि प्रति वचन ही प्रवर्तो, जिनधर्मी तो गुणग्राही ही होय है मिथ्यादृष्टीनिके तीव्र कषायीनिके मिथ्या आचरण देखि वैरबुद्धि करि निंदा नाहीं करै है जो याका अपवाद होय तो अच्छा है ऐसा अभिप्राय नाहीं धारै है, दोषनिकूं मिथ्यात्वकूं अनंतकाल दुःखनिका देनेवाला जानि करुणाबुद्धितैं मंदकषायी जीवनिकूं गुण, दोष, हानिवृद्धिका स्वरूप दिखावै है।

बहुरि निद्रा आलस्य प्रमादका विजय करो. निद्रा समस्त धर्मका अभाव करै है जाकैं निद्राका विजय नाहीं हुवा ताकै छह-आवश्यक स्वाध्याय ध्यान जाप्य समस्त उत्तम कार्य नष्ट हो जाय हैं मुनीश्वरनिके तो तप ही निद्राका विजयके अर्थि है। निद्रा है सो दर्शनावरणका उदयजनित सर्वघाती है, आत्माकूं अचेतन करै है, जो निद्राकूं नाहीं जीती ताकै समस्त हितरूप कार्य नष्ट हो जायगा। शास्त्र पठन करैगा अथवा जिन सूत्रका श्रवण करैगा अर निद्रा ऊंघ आजायगी तदि श्रवण करना नाहीं होयगा, जिनसूत्रके श्रवणपठनमें अरुचि होजायगी, ध्यान-सामायिक करते निद्रा आजायगी तदि ध्यान जाप्य सामायिक आत्मध्यान भावना समस्त नष्ट हो जायगी निद्रामें एकेन्द्री-

समान होय है समस्तज्ञानकूं निद्रा नष्ट करि देय है अबुद्धिपूर्वक अनेक विकल्प आत्मामें उपजै हैं बुद्धिपूर्वक आत्माका हित होनेकी भावनाका अभाव होय है दिवसमें निद्रातैं दर्शनावरणकर्मका आस्रव होय है मुनीश्वर तो प्रहररात्रि गये पाछैं खेदप्रमादादि दूरि करनेकूं मध्यमरात्रिके दोयप्रहरमें शयन करैं सो अल्प निद्रा लेय फिर जाग्रत हुआ द्वादशभावनादिक चिंतवन करैं हैं फिर क्षणमात्र निद्रा आवै फिर जाग्रत होय धर्मध्यानमे लीन होय हैं ऐसैं वीचली दोयप्रहरमें हू अनेकबार जाग्रत होय धर्मध्यान करता रहै हैं अर जो कदाचित् मुहूर्तप्रमाण भी निद्रामें अचेत होजांय तो निद्रा के जीतनेके अर्थि उपवास दोयउपवास तीन चार पांच इत्यादिक उपवास तथा रसपरित्यागादिक महान् अनशनादिक तपकरि निद्राका अभाव करैं हैं। निद्राके जीतनेकूं अर कामके जीतनेकी सावधानीके अर्थि अनशनादि तप निरन्तर आचरे हैं निद्रामें तो समस्तपरिणामनिकी सावधानीको अर वचनकायकी सावधानी को अभाव होय है जाकूं उत्तम मनुष्यजन्म अर उत्तमधर्मका नाशकरि एकेन्द्रीसमान होय मनुष्यआयुकं पूर्ण करना होय तो बहुतनिद्रा ले है दिवसमें निद्रा ले ताका तो व्रतसंयम ही गलि जाय है, खेदआलस्यादिक दूर करनेकूं रात्रिविषैं अल्पनिद्रा ग्रहण करैं हैं, निद्राआलस्यादिक तो जीवका अंतरंग महावैरी है निद्रामें हेयउपादेय, कार्य अकार्य, हितअहित, योग्य अयोग्यका विचाररहित होय है, निद्रा जीते विना इस लोकहीके समस्तकार्य नष्ट हो जांय तदि परमार्थरूप कार्य कैसैं बनै। यातैं जो विद्या विनय तप संयम स्वाध्याय ध्यान जाप्य सिद्धि चाहो हो तो

निद्राकूं जीति खेद ग्लानिके दूर करनेकूं अल्पनिद्रा ग्रहण करो।

अब अष्ट शुद्धिका वर्णन करें हैं। यद्यपि ये अष्ट शुद्धि तो मुनीश्वर परमवीतरागी साधुनिकै होय हैं तथापि साधुपना धारण करनेका वांछक अर साधुका धर्ममें भावना भावनेका इच्छुक जो गृहस्थ ताकूं अष्टशुद्धि जाननेयोग्य हैं। भावशुद्धि, कायशुद्धि, विनयशुद्धि, ईर्यापथशुद्धि, भिक्षाशुद्धि, प्रतिष्ठापनाशुद्धि, शयनासनशुद्धि, वाक्यशुद्धि ये अष्टप्रकार शुद्धि हैं तिनमें मोहनीयकर्मका क्षयोपशमतैं उपजी जो मोक्षमार्गमें रुचि ताकरि परिणामनिमें ऐसी उज्वलता होय जो रत्नत्रय ही मार्ग है, अन्य है सो संसारमें उलझावनेवाला कुमार्ग है, आत्माका हित मोक्ष है सो मोक्ष कर्म के बंधन रहित है अर कर्मबंधनका छूटना रत्नत्रयतैं ही है ऐसा दृढश्रद्धानज्ञानतैं उपजी संसारदेहभोगनितैं विरागतारूप समस्तरागद्वेषादि मलरहित उज्वलता सो भावशुद्धि है। जातैं भावनिमेंतैं विषयनिकी इच्छा रागद्वेषादि उपद्रव, मिथ्यात्वरूप महामल दूर हुआविना मुनिका आचार तथा श्रावकका आचार प्रकाशकूं प्राप्त नाहीं होय है जैसें अतिशुद्ध भींतिऊपरि चित्राम उघड़ै है कर्दमादिकरि लिप्त भूमिऊपरि अतिचतुर हू चित्रकार सुन्दर रंगावली नाहीं कर सकै है तैसें मिथ्यात्व कषायादिकरि लिप्तपुरुषकै हू सम्यग्ज्ञानचरित्र नाहीं होय है। ऐसें भावशुद्धता कही।

साधुनिकै कायशुद्धि कैसें होय है। जाकै आचरण तो सूतके रेशमके सणके घासके रोमके चामके वृक्षनिके बकलके वस्त्रादिक आच्छादन तथा भस्मादिक लगावनेकरि रहित है बहुरि समस्त आभरणादिकरहित अर स्नानगंधलेपनादिसंस्काररहित जैसें रेत

धूलि पसेव तृणादि शरीरउपरि आय चिपकै तिनका संस्काररहित अर नासिका नेत्र ललाट ओष्ठ भृकुटि मस्तक स्कंध हस्त अंगुली इत्यादिकनिका हलावने चलावनेके विकाररहित अर सर्वत्र क्रिया में यत्नाचारसहित प्रशमसुख की मूर्तिकूं दिखावै ही है कहा. मानूं ऐसा कायकूं होतेसंते आपके परतैं भय नाहीं होय है अर परके आपतैं भय नाहीं होय है ऐसी कायकी विशुद्धता साधुनिकै ही होय है अर श्रावक हू एकदेश शुद्धताका धारक जे वस्त्राभरण पहरैं हैं ते ऐसे पहरे जिनकरि आपके तथा परके काम नाहीं उपजै अभिमान नाहीं उपजै, भय नाहीं उपजै लोकनिके मान्य अपना पदस्थके योग्य तथा अवस्थाके योग्य पहरणा तथा अंगकी चेष्टा नेत्रनिकरि अवलोकन वचनका कहना, बैठना, सोवना, चलना, रागादि, अभिमानादि दोषरहित प्रवर्तन करना सो कायशुद्धि होय है

अब विनयशुद्धता ऐसी जानो अरहंतादिक परमगुरुनिकी यथायोग्य पूजामें लीनता अर सम्यग्ज्ञानादिकमें यथाविधि भक्तिकरि युक्त रहना अर सर्वकाल गुरुनिके अनुकूल प्रवर्तना अर प्रश्न करनेमें, स्वाध्यायमें, वाचनामे, कथनीमें, वीनती करनेमें निपुणपना तथा देशकालभावनिकूं जानि निपुणताकरि आचार्यादिकनिकै अनुकूल प्रवर्तना आचरण करना सो विनय-शुद्धता है विनय है सोही समस्तचारित्र संपदाको मूल है, विनय ही पुरुषका आभूषण है, विनय ही संसार-समुद्र तिरनेकूं नाव है याहीतैं गृहस्थ है सो मनकरि, वचनकरि, कायकरि प्रत्यक्ष परोक्ष विनयहीकूं धारण करो सो आगै तपके कथनमें हू वर्णन करसी ।

अब साधुनिके ईर्यापथशुद्धता ऐसी जानहू नानाप्रकारके जीवनिके स्थान अर जीवनके उत्पत्तिरूप योनि अर जे जे जीवनि के रहनेके आश्रय तिनके जाननेकरि उपज्या यत्नाचार तातें जीवांके पीडाकूं दूरहीतें त्यागकें गमन करै हैं बहुरि अपना ज्ञान अर सूर्यका प्रकाशकरि नेत्रादिक इंद्रियनिका प्रकाश करि देखा हुवा मार्गमें गमन करै हैं अर मार्गमें उतावला शीघ्रगमन अर विलंब करता गमन अर संभ्रमकरि गमन विस्मयरूप आश्चर्य-सहित गमन अर क्रीडाकरता गमन अर शरीरकूं विकारसहित करता गमन अर दिशानकूं अवलोकन करता गमन, यह गमन-के दोष हैं इन दोषनिकरि रहित चार हस्तप्रमाण भूमिको अग्र-भागविषै देखि अनेक मनुष्य गाडा गाडी बलद गर्दभादिक अनेक जिस मार्गकरि गमन किया होय अर प्रातःकालकी पवन मार्गकूं स्पर्शन कीया होय तथा सूर्यकी किरणनिका संचार जिस मार्गमें भया होय तिस मार्गमें दिवसविषै गमन करे तिस साधुके ईर्यासमिति होय है। ईर्यासमितिकूं होते संतेही संयम प्रतिष्ठित होय है जैसें सुनीति होते ही विभव होय है अर याहीका एक-देशधर्म अंगीकार करता गृहस्थकूं हू इर्यापथकी शुद्धतारूप गमन करनेकी भावना राखणा अर अपनी शक्तिप्रमाण मार्गमें कीडाकीडी हरित अंकुर घास दूब कर्दम नील इत्यादिकूं टालि दयापरिणामतैं गमन करना उचित है अर देखि शोधिकरि गमन करता गृहस्थकै हूं इसलोकमें हू खाडामें पडनेकी ठोकर लागनेकी सर्पादिक दुष्टजीवनिकी बाधा नाहीं होय है जिनेंद्रकी आज्ञाका पालन होय है। अब मुनीश्वरनिके भिक्षाशुद्धता वर्णन करै हैं—साधु जब वनतैं भिक्षा वास्तै

नगरग्रामादिकमें जाय तदि देशकी रीतितैं कालकूं जानि अर नगरग्रामादिककूं उपद्रवरहित जानिकरि जाय है। जो अग्निका उपद्रव तथा परचक्रका उपद्रव तथा राजादि महंतपुरुषनिके मरण का उपद्रव होय तथा धर्ममे उपद्रव जानै तो भिक्षाकूं नाहीं जाय है तथा महान् हिंसा होती जानै तो नाहीं जाय जिसकालमें चाकी- निका मूसलनिका बहुत शब्द होते मंद रहि जाय तथा अनेक भेषधारी भिक्षा लेय आवते होय तिस कालमें मलमूत्रकी बाधा होय तो बाधा मेटि पाछैं पीछेतैं अपना अंगका आगलापीछला भागकूं शोध करि कमंडलु पीछी लेय करके गमन करै। मार्गमें अतिशीघ्र गमन नाहीं करै है, विलम्ब करते गमन नाहीं करै किसीसूं मार्गमें वचनालाप नाहीं करै, मार्गमे वनकी भूमिकी नगर ग्रामादिककी शोभा नाहीं देखै, जहां कलह विसंवाद कौतुक नृत्य गीतादिक होय तिनकूं दूरि छांडि गमन करै, मार्गमें दुष्टतिर्यंच दुष्टमनुष्य उन्मत्तमनुष्य तथा स्त्री तथा पत्र फल कर्दमादिक जिस भूमिमें होंय ताकूं दूरहीतैं छांडि गमन करै है।

आचारांगसूत्रमें कह्या देशकाल ताके जाननेमें निपुण अर मार्ग में गमन करता दातारका चिंतवन नाहीं करै जो मोकूं कौन दातार भोजन देगा तथा मोकूं शीघ्र भोजन मिलै तो अच्छा है तथा मिष्टभोजनका लाभ वा लवणादिकका लाभ तथा उष्ण- भोजन शीतभोजन स्वादिष्ट वेस्वाद इत्यादिक भोजनका विकल्प नाहीं करै. अंतरायकर्मके क्षयोपशमके आधीन लाभअलाभकूं जानि, भोजनका लाभमें अलाभमें, मानमें अपमानमें मनकी वृत्तिकूं समान करता, धर्मध्यानरूप चिंतवन करता, चार आराधनाका शरणसहित क्षुधातृषादिक वेदनाका

चिंतवन नाहीं करता भिक्षाके अर्थि गमन करै हैं, लोकनिंद्य कुलमें गमन नाहीं करै हैं तथा ऐसे उत्तमकुलके गृहनिमें हू प्रवेश नाहीं करै हैं जहां दानशाला होय, जहां विवाहादिक होय मृतकका सूतक होय, गानगीत होरहे होंय, नृत्यके वादित्र बजनेका समाज होरह्या होय, रुदन होरह्या होय, अनेक भिक्षाके अर्थ भेले होरहे होंय, कलह विसंवाद द्यूतक्रीडादि होरहे होंय, किवाड जुड़े होंय, जावतेकूं कोऊ मनै करता होय, घोड़ा हाथी ऊंट बलध इत्यादि मार्गमें खड़े होंय वा बंधि रहे होंय तथा अनेकमनुष्यनिका संघट होरह्या होय तथा सकडे मार्गमें बहुत लोकनिका सकडाईतैं आवना जावना होय तथा नाभितैं अधिक नीचे द्वार करि जाना होय अर गोडेनतैं ऊंची भूमिका उल्लंघन होय ऐसैं गृहनिमें तो साधु भोजनके अर्थ प्रवेशहू नाहीं करै हैं, चन्द्रमाकी चांदनी ज्यों धनाढ्यनिर्धनादि समस्तगृहनिमे जाय हैं, दीन अनाथ निंद्य कर्मकरि जीविका करनेवाले इत्यादि अयोग्य गृहनिकूं छांडि भिक्षा के अर्थि गृहनिमें जहां ताईं अन्यभिक्षुकनिका तथा हरेक जनके आवनेका आड नाहीं तहांताईं जाय आशीर्वादादिक धर्मलाभादिक मुखतैं कहैं नाहीं, हूंकारा भृकुटीकी समस्या करै नाहीं, उदरका कृशपना दिखावै नाहीं हस्ततैं याचनाकी समस्या करै नाहीं, दातारके देखनेकूं भोजनके देखनेकूं ऊंचा तथा दिशाविदिशामांहि अवलोकन करै नाहीं, खडा रहै नाहीं, बीजलीके चमत्कावत् अर्द्ध अंगणेमे जाय बाहुडै है, तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ ऐसैं आदरपूर्वक तीन बार उच्चारणकरि खडा राखैं तो खडा रहै, एकबार निकसे पाछैं फिर उस गृहमे प्रवेश करै नाहीं फिर अन्यगृहमें प्रवेश करै, अन्तराय

हो जाय तो अन्यगृहमें हू नाहीं जाय, पाछा वनहीकूं जाय है दानव्रतरहित याचनारहित प्रासुक आहार आचारांगमे कह्या तिस-प्रमाण छियालीस दोष चौदहमल बत्तीसअन्तरायरहित भोजन अंगीकारकरि प्राणनिकी रक्षामात्र फल अंगीकार करता सुन्दररस में नीरसमे लाभमें अलाभमें समान संतोषी होय सो भिक्षा है। इस भिक्षाकी शुद्धताकरि चारित्रकी उज्वल संपदा प्राप्त होय है जैसैं साधुपुरुषनिकी सेवा करि गुणनिकी संपदा होय है।

अब या भिक्षा मुनीश्वरनिके पंचप्रकार होय है। गोचरवृत्ति, अक्षम्रक्षणवृत्ति, उदराग्निप्रशमनवृत्ति, भ्रामरीवृत्ति, गर्तपूरणवृत्ति ऐसें पंचप्रकार आहारमें साधुनिकी प्रवृत्ति जाननी।

जैसैं लीला विकार वस्त्र आमरणादि सहित रूपयौवनकरि-युक्त स्त्रीका लाया घासकूं गऊ चरै है तिस स्त्रीका अंगनिका सौंदर्य वथा आभरण वस्त्रकूं नाहीं अवलोकन करै है केवल घास चरनेका प्रयोजन है तैसैं साधु हू दातारका रूप अभारणादि सौंदर्यकूं नाहीं अवलोकन करता नवधाभक्तिकरि प्रतिग्रहपूर्वक हस्तमें धारण किया ग्रासकूं भक्षण करै हैं सो गोचरीवृत्ति है। अथवा जैसैं गऊ वनके नाना स्थाननि में तिष्ठती तृणकूं जैसैं लाभ हो जाय तैसैं भक्षण करै है वनकी शोभा वृक्षनिकी शोभा देखनेमें परिणाम नाहीं धारै है तैसैं साधु हू गृहस्थनिके घरमें जाय तदि गृहस्थका महल मकान शय्या आसनादिकनिके देखने में तथा सुवर्णके रूपाके कांसीके पीतलके मृत्तिकाके पात्रादिक-निके देखनेमें परिणाम नाहीं करै हैं तथा अनेक भोजन परिवारके देखनेमें परिणाम नाहीं लगावते केवल अपने हस्तमें धर्या ग्रासकूं भक्षण करनेमें दृष्टि राखै हैं, परिकरजननिके

कोमल ललित रूप वेष विलासनिके देखनेमें वांछारहित भये शुष्क तथा गीला आहार ताकूं नाहीं देखता गौका ज्यों भोजन करै तातैं गोचरीवृत्ति वा गवेषणा कहिये है।

जैसें वणिक् रत्ननिका भर्या गाडाकूं घृतादिकतैं वांगि धुरके घृत लगाय अपने वांछित देशांतरकूं लेजाय तैसें साधु हू गुणरत्ननिकरि भर्या देहरूप गाडाकूं निर्दोष भिक्षाभोजन देय अपने वांछित समाधिरूप पत्तनकूं प्राप्त करै हैं यातैं अक्षम्रक्षणवृत्ति कहिये है।

बहुरि जैसें अनेकवस्त्र आभरणादिकनिकरि भर्या भण्डारविषै उठी अग्निकूं शुचि अशुचि जलतैं बुझाय अपनी वस्तुनिकी गृहस्थी रक्षा करै है तैसें साधु हू उदररूप भण्डारमें उपजी क्षुधातृषादिरूप अग्निकूं सुन्दर असुन्दर भोजनतैं बुझावता सो उदराग्निप्रशमनवृत्ति है।

बहुरि जैसें भ्रमर पुष्पकूं किंचिन्मात्र बाधा नाहीं करता पुष्पकी गंध हरै है तैसें साधु हू दातारके किंचित् बाधा नाहीं होय तैसें भोजन करै सो भ्रमराहारवृत्ति है।

बहुरि जैसें गृहस्थका गृहमें गर्त जो खाडा हो गया तो ताकूं धूलिपाषाणादिकतैं पूर्ण करै है तैसें साधु हू उदररूप खाडाकूं रसनीरसभोजनकरि भरै तातैं गर्तपूरणवृत्ति कहिये है। ऐसें पंचवृत्तिकरि भोजन करता साधुकै भिक्षाशुद्धि होय है।

श्रावक हू अन्याय छांडि बहुत हिंसाके कारण व्यवहार छांडि कर्मके दियेमे संतोष धारण करि अन्यके पीडादुःख नाहीं करि न्यायके वित्तकूं मद विषाद दीनतारहित दानकूं विभागकरि भोगै है तथा अभक्ष्यादिक सदोषभोजनका परिहार करि दिवसमें भोगांतराय लाभांतरायका क्षयोपशम-प्रमाण रसनीरस मिल्या तामें कुटुम्बका विभाग तथा दानका विभागकरि भोजनादिक करै

गृहस्थकै लालसा गृद्धतारहित ही भोजनकी शुद्धता है। बहुरि संयमी है सो अपना शरीरका नखकेशकफनासिकामलमूत्रपुरीषादिकनिकूं देशकाल जानि बिरोधरहित जीवनिके बाधा न होय, परके परिणाम मलीन नाहीं होय ऐसैं क्षेत्रमें खेपै ताकै प्रतिष्ठापनशुद्धि होय है अर गृहस्थ है सो हू अपना देहका मल तथा जल कजोडा भस्म मृत्तिका पाषाण काष्ठादिक जतनतैं क्षेपै जैसैं छोटे बड़े जीवनिकी विराधना नाहीं होय, किसीके साथ कलह विसंवाद नाहीं होय, आपका अंगमें बाधा नाहीं आवै, अन्य जननिके ग्लानि नाहीं उपजै तैसै क्षेपण करना। बहुरि शयनासनशुद्धता साधुका प्रधान आचरण है। जहां स्त्री नपुंसक चोर मद्यपायी शिकारी इत्यादिक पापी जनोंका आरजारस्थान (आने जाने का स्थान) नाहीं होय जहां शृंगार शरीरविकार उज्वलवस्त्र आभरण धारती स्त्री विचरै तथा वेश्यानिका क्रीडावन बाग गीतनृत्यवादित्रकरि व्याप्त ऐसे स्थान का दूरहीतैं परिहार करि तिष्ठै हैं, अकृत्रिम पर्वतनिकी गुफा वृक्षांका कोटर तिनमे तथा कृत्रिमशून्यगृहादिक, आपके अर्थ नाहीं किया आरंभरहित ऐसे स्थाननिमें तथा शुद्धभूमिमें शयन आसन करै हैं। अर गृहस्थ भी विषयनिके विकाररहित स्त्री नपुंसक दुष्ट कलह विसंवाद विकथादिरहित परिणामनिकी उज्वलता जहां नाहीं विगडै ऐसे स्थानमें शयनआसन करै, स्थान के दोषतैं परिणाममें दुर्ध्यान रहै, दुष्ट चिंतवन होय तातैं अपनी जीविकादिकका न्यायमार्गतैं साधन करकै अर स्थान शयन निराकुल स्थानहीमें करै हैं।

बहुरि साधु है सो पृथ्वीकायिकादिक जीवनिकी विराधनाकी प्रेरणारहित कठोर कटुकादिक परपीडाका कारण

वचनरहित, व्रतशील संयम उपदेशरूप वचन कहता, हितमित मधुरमनोहर वचन कहै सो वाक्यशुद्धता है। गृहस्थ भी जेता वाक्य कहै सो विवेकसहित कहै लोक विरुद्ध धर्मविरुद्ध हिंसा का प्रेरक असत्य कटुक कर्कशादिक कदाचित् नाहीं कहै है। ऐसें अष्टप्रकार शुद्धता संयमीनिकी है। गृहस्थ अष्टशुद्धताकूं चिंतवन करता रहै, भावना राखै तो बहुत पापनितैं लिप्त नाहीं होय, धर्मभावनाकी वृद्धि होय।

अब तपभावना हू गृहस्थकूं भावने योग्य है। यद्यपि तपकी प्रधानता मुनीश्वरनिकै है तथापि गृहस्थ हू तपभावना भावता रहै तो रोगादिक कष्ट आये चलायमान नाहीं होय। इंद्रियनिकी विकलताकूं जीतै, वृद्धअवस्थामें जराकरि बुद्धि चलित नाहीं होय खानपानमें विकलताका अभाव होय, संतोषवृत्ति प्रगट होय दीनताका अभाव होय, लोकमें यश उज्वल होय, परलोकमें स्वर्गकी प्राप्ति होय तातैं तप ही करना उचित है। सो तप दोय-प्रकार है एक बाह्य एक अभ्यंतर। तिनमें बाह्य तपका छह भेद हैं अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्तशय-नाशन, कायक्लेश ऐसे छह प्रकार बाह्यतप है। तिनमें अनशन तपका स्वरूप कहिये हैं—अनशन जो भोजन ताका त्याग करिये सो अनशनतप है जो दुष्टफलकी अपेक्षा रहित होय करै सो अनशनतप है, जो इहां यशके वास्तै करै, विख्यातता वास्तै करै जगतके लोकनितैं पूजा नमस्कारादिवास्तै वा मंत्र साधनवास्तै करै ऋद्धि संपदा वैरीनिको घात, परलोकमें राज्यसंपदावास्तै करै, कषायतैं वैरतैं करै, दुःखित हुवा अपना घातवास्तै करै सो अन-

शनतप सम्यक् नाहीं केवल संसारपरिभ्रमणका कारण है जो इंद्रियनिकी विषयनिमें लालसा घटावनेके अर्थ तथा छहकायके जीवनिकी दयाके अर्थ रागभावके घटानेके अर्थ निद्राके जीतनेके अर्थ कर्मकी निर्जराकेअर्थ ध्यानकी सिद्धिकेअर्थ देहका सुखिया-पनाको मेटने के अर्थ जो उपवासादि करै सो अनशनतप है। सो अनशनतप दोयप्रकारका है—एक तो कालकी मर्यादाकरि है एक यावज्जीव है। एक दिनमें दोयबार भोजन होय है तिनमें एकबार भोजन करना एकबारका भोजनका त्याग करना सो अनशन है अर पहिले दिन एकबार भोजनकरि एकबारका त्याग अर दूसरे-दिनके दोय भोजनका त्याग अर पारणाके दिन एक भोजनका त्यागकरि एकबार जीमना सो च्यारभोजनका त्यागरूप चतुर्थ है याहीकूं उपवास कहिये है अर छहभोजनका त्याग ताहि दोय उपवास कहिये है, अष्ट भोजनका त्यागकूं तेला, दशभोजनका त्यागकूं चोला इत्यादि; ऐसैं कालकी मर्यादारूप अनशनतप जानना। अर आयुका अंतमें यावज्जीव भोजन त्यागना सो याव-ज्जीव अनशन है इंद्रियनिका उपशमकेअर्थ भगवान उपवास कह्या है तातैं इंद्रियनिकूं जीतनेवाला मुनि भोजन करता हू उपवासीक जानना अर जो उपवास करता इंद्रियनिकूं विषयनितैं नाहीं रोके है आरंभ करै है कषायरूप प्रवर्ते है ताका अनशनतप निष्फल होय है कर्मकी निर्जरा नाहीं करै है ऐसा अनशनतपका स्वरूप कह्या सो जैसैं वात पित्त कफादिक विकारकूं प्राप्त नाहीं होय रोगका उप-शम होय, उत्साह वधता जाय तैसैं अपना परिणामकी विशुद्धता की वृद्धि चाहता देशके अनुकूल कालके अनुकूल आहारपानकी

योग्यताके अनुकूल, कुटुंबादिकका सहायके अनुकूल, संहनन प्रमाण जैसैं देह नाहीं विगडै तैसैं श्रावकनिकूं हू शक्तिप्रमाण अनशनतप अंगीकार करना ही श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

अब अवमौदर्यतपका स्वरूप ऐसा जानना अवम कहिये ऊन उदर जामें होय सो अवमौदर्य कहिये। जेता प्रमाणरूप ओदनादिकतैं उदर भरिये तितना प्रमाणतैं ऊनभोजन करिये सो अवमौदर्यतप है, अवमौदर्यतपतैं इंद्रियनिका संयम होय है, भोजनकी गृद्धिताका अभाव होय है, अल्पआहार करनेतैं वातपित्तकफ प्रकोपकूं प्राप्त नाहीं होय है, रोगनिका उपशम होय है, निद्रा आलस्यका जीतना होय है, स्वाध्यायमें सामायिकमें, कायोत्सर्गमें ध्यानमें खेद नाहीं होय, सुखकरि ध्यान स्वाध्याय आवश्यकादिक होय है। अवमौदर्य करनेतैं उपवासका खेद गरमी नाहीं व्यापै है उपवास सुखसूं होय है जातैं बहुत भोजन करै वदि आवश्यक ध्यान कायोत्सर्ग सुखतैं नाहीं होय आलस्य निद्रा प्रबल होजाय, तृषाका प्रकोप होय है, गरमी आताप रोग बधै है यातैं इन्द्रियांकी लालसादि घटानेकूं, मनके रोकनेकूं ज्ञानी मुनि तो, अर्द्ध भोजन चतुर्थभागभोजन तथा एकग्रास वा दोयग्रास इत्यादिक एकग्रास घाटिपर्यंत अवमौदर्यतपका भेद करैं हैं अर जो मिष्टभोजनका लाभके अर्थ वा कीर्ति प्रशंसा होनेके अर्थ अल्प भोजन करै सो अवमौदर्यतप नाहीं। है अवमौदर्य तो भोजनमें लालसा घटानेके अर्थ है गृहस्थश्रावककूं हू अंतरायकर्मका क्षयोपशमप्रमाण प्राप्त हुवा भोजनतैं संतोषकरि भोजनमें लालसा छांडि इच्छाका निरोधके अर्थ अवमौदर्यतप करना श्रेष्ठ है।

अब वृत्तिपरिसंख्यान नाम तप मुनीश्वरनिकै होय है सो कहै हैं। मुनीश्वर भोजनकूं जावतां प्रतिज्ञा करै जो आज एकघर में जावना वा दोय तीन पाँच सात घरनिका प्रमाणकरि जाय तथा आज सूधे मार्गमें ही मिलै तथा वक्रमार्गमें ही तथा ऐसादातार ऐसाभोजन तथा ऐसापात्रमें ऐसीविधितैं मिलै तो ग्रहण करना अन्यप्रकार नाहीं करना ऐसी कठिन २ प्रतिज्ञाकर भोजनके अर्थ गमन करै ताकै वृत्तिपरिसंख्यान तप होय है, यो दुर्द्धरतप मुनीश्वरनितैं ही होय है अन्य गृहस्थ धारणकरनेकूं समर्थ नाहीं होय हैं अर गृहस्थ हैं सो हू वीतरागगुरुनिके प्रसादतैं ऐसी प्रतिज्ञा धारै हैं जो मैं जिनेन्द्रधर्म पाय उज्वल धर्मका घात जामें नाहीं होय ऐसी रीति ही जीविका करूं, जामे श्रद्धान ज्ञान व्रत नष्ट हो जाय सो जीविका नाहीं करूं बहुतहिंसा झूंठ मायाचारकरिसहित ऐसी सेवा नाहीं करूं, खोटे पापके वणिज व्यवहार नाहीं करूं उज्वल वणिज बहुत आरंभरहित कपटरहित असत्यरहित जो जीविका होय सो ही मोकूं करना अन्य नाहीं करना इत्यादि आजीविकामें नियम करै तथा एताधन एतापरिग्रह एतावस्त्रतैं भोगउपभोग करना तथा रोगादिक होजाय तो एती औषध ही भक्षण करूं इन औषधनितैं अन्य भक्षण नाहीं करूं तथा आज मेरे गृहमें तैयार भोजन पावैगा सो ही भक्षण करूंगा, मैं मुखसें कहिकरि कराऊं नाहीं मगाऊं नाहीं तथा आज मेरे गृहमें मेरा घरकाग्रासलीये पहली एकबार जो पात्रमें घालदेगा सो ही भोजन करूंगा फेर मांगूं नाहीं इत्यादिक इच्छाका रोकनेके अर्थ गृहस्थ प्रतिज्ञा करै है।

अब रसपरित्यागतपका ऐसा स्वरूप है दुग्ध, दही, घृत, लवण, गुड, तेल ये छहप्रकारके रस हैं जिनमें जिह्वादिक इन्द्रियनिकूं दमनके अर्थ, मनकी लोलुपता मेटनेके अर्थ, कामके जीतनेके अर्थ निद्राके घटावनेके अर्थ, संयमके अर्थ, रसनिका त्याग करना कदे एकरसका त्याग, कदे दोयतीनका त्याग, कदे छहू रसनिका त्याग करना सो रसपरित्याग तप है। संसारीजीव मिष्टरसादि भक्षण करनेके लोलुपी होय अभक्ष्यभक्षण करैं हैं, लज्जा छांडै हैं व्रततप बिगाडैं हैं, भोजनकी लोलुपतातैं शूद्रादिकनिके अयोग्य कुल में भोजन करैं हैं, दीन हुवा तरसैं हैं, रसादिक भक्षण करनेकूं लडैं हैं, मरैं है पडैं हैं, बहुआकरि रसनिके लोभी हुये भ्रष्ट हो रहे हैं कोऊ धन्यपुरुषनिकै रसरूप भोजन करनेकी लालसा नाहीं रहै है उत्तम गृहस्थ है सो प्रथम ही नानाप्रकारके घृत मिष्ट रसादिकनिमें लालसाका त्यागकरि जो अपने गृहमें खारा अलूणा लूखा सचिक्कण इत्यादिक जो स्वाभाविक कर्म विधि मिलाय दे ताकूं, संतोषसहित भक्षण करै हैं अर रसरूप भोजनकी कथा स्वप्नांमें हू नाहीं करै है, रसनिकी लंपटता दोऊलोकमें भ्रष्ट करनेवाली है तातैं लालसा छूटनेके अर्थ इन्द्रियनिकूं वशीभूत करनेके अर्थ परमसंवर अर निर्जराके अर्थ, दीनताका अभावके अर्थ, संतोष धारणके अर्थ रसपरित्याग नामा तप ही श्रेष्ठ है।

अब विविक्तशयनासन नामा तपका ऐसा स्वरूप जानना शूना गृह एकांतस्थान विकलत्रयादि जीवनिकी बाधारहित स्त्री-नपुंसक असंयमीनिका आरजाररहित स्थानमें वा पर्वतनिकी गुफा वन-खंडादिकनिमें ध्यान अध्ययन करना शयन-आसन

करना सो विविक्तशयनासन तप है जातें एकांतमें तिष्ठता साधुके हिंसाका अभाव, ममत्वका अभाव विकथाको अभाव होय है काम का अभव होय, ध्यान-अध्ययनकी सिद्धि होय है, दूजाको प्रसंग होय तब वचनालाप होय वचनालाप होय तदि मनमें संकल्प होय तदि ध्यानतैं चलायमानता होय, रागभावकी वृद्धि होय तातैं संयमी एकांतमें ही शयन आसन करै है अर गृहस्थ धर्मात्मा भी पापसूं भयभीत होय अपना गृहाचारके आजीविकादि कार्य न्याय-मार्गतैं अल्पआरम्भादिकरूप पापकार्यतैं भयभीत हुआ तथा शरीर के स्नानभोजनादिक कार्य करके एकांत मकान अपने गृहमें वा जिनमन्दिरमें वा धर्मशालामें वा वनके चैत्यालयादिकनिमें साध-र्मी लोकनिकी संगतिमें धर्मचर्चा करता, स्वाध्याय करता, जिनाग-मका पठनपाठन, व्याख्यान करता, जिनागमश्रवण करता पंच नमस्कारका स्मरण करता दिनरात्रि व्यतीत करै, स्त्रीकथा राज-कथा भोजनकथा देशकथा कदाचित् हू नाहीं करता काल व्यतीत करै है तथा कामविकारका वधावनेवाला रागका उपजावनेवाला शय्यासनका परिहार करै गृहस्थकै हू विविक्तशयनासन निर्जराको कारण है।

वहुरि मुनीश्वरनिके कायक्लेश नामा वड़ा तप है जो एक आसनकरि वैठना, एक पसवाडे शयन करना, मौन धारण करना तथा ग्रीष्मऋतुमें पर्वतनिकेशिखर शिलातलनि ऊपरि सूर्यके संमुख कायोत्सर्गादिक धारणकरि ग्रीष्मका घोर आताप तप्तपवनादिककी घोर वेदना होते हू धर्मध्यानमें, वारह भावनाका चिंतवनमें परि-णामकूं स्थिरकरि परिणामकूं क्लेशरूप नांहीं होने दे है। तथा

वर्षाऋतुमें वृक्षके नीचे योगधारण करते घोरअन्धकारकी भरी रात्रिमें अखंड धाररूप वर्षता मेघकरि धरती आकाश जलमय होरह्या होय अर पर्वतनितैं पडती नदीनका घोर कोलाहल होरह्या होय अर वृक्षनिमें एकट्ठा जल होय बहुत स्थूल धार पड़ती होय अर बिजुलीनिकी झकझकाहट अर घोरगर्जना अर बज्र-पातनिका पडना तिस अवसरमें धन्य मुनि आच्छादनरहित नग्न-अङ्ग ऊपरि घोरवेदना भोगते हू संक्लेशरहित धर्मध्यान शुक्ल-ध्यानसूं जुडेहुये तिष्ठै है सो समस्त वीतरागताकी महिमा है तथा शीतऋतुमें नदीके तीर वा चौहटे नग्नअङ्ग ऊपरि बरफका पड़ना महान् घोरशीतलपवनका चलना तिस अवसरमें दुखरहित धर्मध्यानतैं शीतकालकी रात्रि व्यतीत करै हैं तथा दुष्टजीवनिकरि किया घोर उपद्रवनिकूं भोगि समभावरखना सो कायक्लेशतप है सो परवस दुख आए चलायमान नाहीं होनेके अर्थ तथा देह-जनित सुखकी अभिलाषाका अभावके अर्थ रोगनितैं चलायमान नाहीं होने के अर्थ, भयके जीतनेके अर्थ, परीषह सहनेके अर्थ, कर्मकी निर्जराके अर्थ कायक्लेशतप धारण करै हैं अर गृहस्थके ये आतापनयोगादिक नाहीं होय। यो तप तो दिगम्बरसाधुनितैं ही होय, गृहस्थ है सो आप तो चलायकरि कायक्लेश करै नाहीं अर सामायिकादिकके अवसरमें ही आयजाय तो चलायमान होय नाहीं अर कर्मके उदयतैं अपनी रक्षा करते हू शीतज्वर दाहज्वर वातशूलादिक आजाय वा दुष्टवैरी धर्मद्रोही म्लेच्छादिक आय उप-द्रव करै वा बन्दीगृहादिकमें रोकदे वा ताडन मारन करै तो गृहस्थ है सो मुनीश्वरनिका कायक्लेशतपकी भावनाकरि सम-

भावनिकरि सहै कायरता धारण नाहीं करै दारिद्र्यका दु:खजनित क्षुधातृषाशीतउष्णादिककी वेदना कर्मके उदयतैं आवै तहां कायर नाहीं होय धर्मके शरणतैं सहना सो ही कायक्लेश है मुनीश्वर तो ऐसा कायक्लेशतप उत्साहकरि धारण करै हैं, हम कायक्लेशतैं अतिदूरि वर्तैं हैं तो हू असाता कर्मका उदयकरि दु:ख आय गया तो भयवान हुआ कौन छांडैगा अब जो धैर्य धारणकरि सहूंगा तो कर्म रस देय जरूर निर्जरैगा अर कायरता करूंगा क्लेश करूंगा तोहू भोगना पड़ेगा कर्मका उदयके दया है नाहीं, कायर होय दुख करनेतैं उदयमें आया सो भी भोगूंगा अर यातैं बहुत गुणा आगानै बंध करूंगा तातैं जिनेन्द्रका वचनांका शरण ग्रहण करकै कर्मका उदयमें धैर्य धारण करना ही श्रेष्ठ है अर गृहस्थकै अन्तरायकर्मका उदय आवै है तदि उदरभर भोजन हू पूरा नाहीं मिलै वा घृतादिक रस नाहीं मिलै, अतिअल्प मिलै तदि जो अल्पमें संतोषित रहै, परका विभव देखि वांछा नाहीं करै समभाव रूप रहै तो सहज ही कायक्लेश तप होय है, बड़ी निर्जरा करै है ऐसैं छहप्रकारका बाह्यतप कह्या। बाह्य अन्यके प्रत्यक्ष जानने में आवै बाह्य भोजनादिकके त्यागतैं होय वा अन्य गृहस्थ परमती हू धारतें तातैं याकूं बाह्य तप कह्या तथा जैसे अग्नि बहुत संचय किया तृणादिककूं दग्ध करै तैसैं पूर्वसंचितकर्मकूं दग्ध करै है तातैं तप कह्या तथा शरीर इन्द्रियनिकूं संतापितकरि विषयादिकनिमें मग्न नाहीं होने दे तातैं तप कहिये तथा जैसैं तपाया हुआ सुवर्ण पाषाण है सो कीटिको छांडि शुद्ध सुवर्ण हो जाय है तैसैं आत्मा याके प्रभावतैं कर्ममलरहित होजाय तातैं याकूं भगवान तप कह्या है।

अब छहप्रकार अभ्यन्तरतप है सो कहिये है—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ऐसै छहप्रकार है। इनमें प्रायश्चित्तका नव भेद अर संख्यात असंख्यात भेद हैं सो इहां आलोचनादिकका कथन लिखे कथनी बहुत होजाय तातैं संक्षेप कहिये है जो। धर्मात्मा है सो अपने व्रतधर्ममें कदाचित् दोषरूप आचरण नाहीं करै अन्यको सदोष आचरण नाहीं करावै दोषसहित आचरण करै ताकूं मनवचनकायकरि भला नाहीं कहै अर जो कदाचित् प्रमादकरि भूलकरि दोष लगि जाय तो निर्दोष साधुके निकट जाय सरलपरिणामतैं दशदोषरहित आलोचना करकैं जो गुरुनिकरि दिया प्रायश्चित्त ताहि परमश्रद्धातै आदर-पूर्वक ग्रहण करै हृदयमें ऐसी शंका नाहीं करै जो मोकूं बहुत प्रायश्चित्त दिया वा अल्प प्रायश्चित्त दिया। प्रमादतैं एक बार दोष लगिगया ताकूं प्रायश्चित्त लेय दूरि किया फिर ऐसी साव-धानी राखै जो अपना शतखंड होजाय तो हू फिर दोष नाहीं लगने देवै ताकै प्रायश्चित्त लेना सफल होय है। बहुरि प्रायश्चित्त लेवै सो अनेकगुणनिका धारक सिद्धान्तरहस्यका पारगामी प्रशांतमन का धारक अपरिस्रावीगुणका धारक; जैसैं तप्तलोहका गोला जल पीगया ताका फिर बाहिर प्रकाश नाहीं तैसैं जो शिष्यकरि आलो-चना किया दोषका कदाचित् प्रकटना ग्राह्य नाहीं करनेवाला देश-कालका ज्ञाता, एकान्तमें तिष्ठता पूर्वैं कह्या आचार्यनिके अनेक गुण तिनका धारक तिनके निकट अंजुली जोडि महाविनयपूर्वक-बालक ज्यों सरलचित्तहोय आत्मनिंदा करता आलोचना करै है।

बहुरि जैसैं रुधिरसूं लिप्त वस्त्र रूधिर कर नाहीं धुवै कई मकरि नाहीं धुवै, तैसैं दोषनिकरिसहित साधु हू शिष्यकूं निर्दोष नाहीं करि सकै है जैसें मूढ़वैद्य रोगीका विपरीत इलाज-करि प्राणरहित करै तैसैं अज्ञानीगुरु हू शिष्यकूं संसारसमुद्रमें डुबोय दे है, तातैं निर्दोषगुरु प्रायश्चित्त देय शुद्ध करै संयमी पुरुष तो एकगुरु एकशिष्य दोय ही एकान्तमें आलोचना करै, आर्यिकादिक प्रगट प्रकाशस्थानमें एकगुरु दोयआर्यिका एकगणिनी होय एक दोष लाग्यो होय सो होय ऐसैं तीन होय। जो लज्जातैं वा तिरस्कार वा प्रायश्चित्तका भयतैं वा अभिमानतैं दोषकूं शुद्ध नाहीं करै तो जैसैं लाभ अर खरचका ज्ञानरहित वणिककी ज्यों कर्मरूप ऋणवान होय भ्रष्ट होय है अथवा आलोचनाविना महान् हू तप अंगीकार कियाहुआ वांछित फल नाहीं देवै है अर आलोचना करकैहू गुरुका दोया प्रायश्चित्त नाहीं करै तो वैद्यका कह्या औषधकूं नाहीं भक्षण करता रोगीकी ज्यों शुद्ध नाहीं होय है वा हलादिककरि नाहीं सुधार्या क्षेत्रमें धान्यवत् महाफल नाहीं फलै है अथवा जैसैं विना मज्जन किया दर्पणमें रूपका ज्यों चित्तकी शुद्धता बिना आत्मामें चारित्रकी उज्वलता नाहीं भासै है। अब इस कलिकालके प्रभावकरि निर्दोषगुरु प्रायश्चित्त देनेवाले दीखै नाहीं जो आप ही अनेक पापनिकरि लिप्त सो अन्यकूं कैसैं शुद्ध करै रुधिरसूं रुधिर कैसें धोवै सो ही आत्मानुशासनजीमें कह्या है,—

कलौ दण्डो नीतिः स च नृपतिभिस्ते नपतयो-
नयन्त्यर्थार्थं तं न च धनमदोऽस्त्याश्रमवताम्।

नतानामाचार्या न हि नतिरताः साधुचरिता-
स्तपस्थेषु श्रीमन्मणय इव जाताः प्रविरलाः ॥१४६॥

अर्थ—कोऊ शिष्य गुणभद्र स्वामीसूं पूछ्या जो हे स्वामिन् इस कालमें तपस्वी मुनिनिविषै हू सत्य आचरण के धारक अत्यंत विरले रह गये ताका कारण कहा है ताका उत्तर देनेरूप काव्य कह्या ताका अर्थ लिखिये है—इस कलिकालमें नीति मार्ग है सो दंड है, दंडका भय विना न्यायमार्गमें कोऊ स्वयं नाहीं प्रवर्तै है अर दंड है सो राजानिकारि दिया जाय क्योंकि कलिकाल में जोरावर विना अन्य साधर्मीनिकरि तथा वृद्धपुरुषनिकरि तथा लोकनिकरि दिया दंड कोऊ ग्रहण करै नाहीं, कोऊ कह्या माने नाहीं तातैं बलवान राजा कर दिया दंड ही ग्रहण करै अर इस कलिकालमें राजा ऐसे होने लगे जातैं धन आवता देखें ताकूं दण्ड देवैं, निर्धननिकू दण्ड नाहीं देवें, अर आश्रमवान संयमी तिनके कुछ धन नाहीं तातैं संयम लेयकरि कुमार्ग चालै तिनके राजाका दंड तो है नाहीं जातैं कुमार्गतैं रुकै अर आचार्यनिका दंड हुवा चाहिये सो कलिकालमें आचार्यनिका शिष्यनिमें अनुराग हो गया जो आपकूं नमिजाय ताकूं दंड दे नाहीं अपना संप्रदाय बधावने का अर्थि जो आपकूं नमोऽस्तु नमस्कार करले ताकूं अपना जानि दंड देवे नाहीं तदि दंडका भयरहित सूत्रविरुद्ध आचरण करने लगि जाय तातैं कलिकाल विषै तपस्वी जननिमें हू सत्य आचारके धारक अति विरले देखिये है केवल भेषधारी ही बहुत दीखैं हैं। तातैं प्रायश्चित्त नाम ही कल्याणका कारण है तातैं गृहस्थनिकैं प्रायश्चित्तकी प्रवृत्ति कैसैं होय तातैं परमेष्ठी

का प्रतिबिंबके सन्मुख, होय करके ही अपना अपराधकूं आलोचनाकरि ऐसा यत्न करना जो फेर अपराध स्वप्नमें हू नाहीं बने।

अब विनयनाम दूजा अभ्यंतर तप है ताका पांच भेद हैं दर्शन विनय, ज्ञान विनय, चारित्रविनय, तपविनय, उपचार विनय। तहां जे पदार्थनिका श्रद्धानविषै शंकादिदोषरहित निःशंक रहना सो दर्शनविनय है। सम्यग्दर्शन परिणाम होनेमें हर्ष अर सम्यक्त्व की विशुद्धतामें उद्यमी रहना सम्यग्दृष्टीनिका संगम चाहना, सम्यक्त्वके परिणामकी भावना भावना, मिथ्याधर्मकी प्रशंसा नाहीं करना, मिथ्यादृष्टीनिका तप ज्ञान दानकी प्रशंसा नाहीं करना; क्योंकि मिथ्यादृष्टिका आचरण है सो इसलोक परलोकमें यश विख्यातता, विषयसुख धन संपदाकी चाहपूर्वक आत्मज्ञानरहित है, बंधको कारण है यातैं प्रमाण नाहीं अर वीतराग सर्वज्ञ ने पदार्थनिका स्वरूप कह्या है सो प्रमाण है यो दर्शनविनय है। बहुरि ज्ञानविनय ऐसा है जो आलस्य-रहित विक्षेपरहित विषयकषायमलरहित शुद्ध मन करकै देशकाल की विशुद्धताका विधानमें विचक्षण पुरुष बहुत सन्मानतैं यथाशक्ति मोक्षका अर्थी हुवा वीतराग सर्वज्ञकरि प्ररूपणं किया परमागमका ज्ञान-ग्रहण अभ्यास स्मरणादि करना सो ज्ञानविनय जानना। ज्ञानका अभ्यास ही जीवका हित है, ज्ञानविना पशु समान है मनुष्याचार ही ज्ञानका सेवनतैं है, कामसेवन, भक्षणादिक इंद्रियविषय तो तिर्यंचके हू होय हैं। ज्ञानविनयका धारक निरंतर सम्यग्ज्ञान हीकी वांछा करै है, ज्ञानहीके लाभकूं परमनिधानका लाभ मानै है। यो ज्ञानविनय महानिर्जरा,

को कारण है जाके ज्ञानविनय होय ताके ज्ञानका धारक-निका विनय विशेषता करि होय है। अब चारित्रविनयका स्वरूप कहै हैं ज्ञानदर्शनवानपुरुषके पंचाचारका श्रवणकर्तां प्रमाण समस्तशरीरमें रोमांच प्रगट होय अन्तरंग में भक्तिका प्रगट होना अर कषायविषयनिका निग्रहरूप परमशांतभावके प्रसादतैं मस्तक- ऊपरि अंजुलि करणादिकरि भावनितै चारित्ररूप अपना होना सो चारित्रविनय है बहुरि जाके भावनिमें संसारका दुःख छेदने-वाला आत्माकूं बाधारहित सुखकूं प्राप्त करनेवाला विषय कषाय रोग उपद्रवका जीतनेवाला एक तपही परम शरण दीखै है ताके तप भावना होय है, ताहीके तपका विनय होय है तपस्वीनिकूं उच्च सर्वोत्कृष्ट समझना तपस्वीनिकी सेवा भक्ति वैयावृत्य स्तुति करना सो तपविनय है, शक्तिप्रमाण इन्द्रियनिका निग्रहकरि देश- कालकी योग्यता प्रमाण अनशनादितपमें उद्यमी होय धारण करना सो समस्त तप विनय है। अब उपचारविनय ऐसा जानना जो आचार्यादिक पूज्यपुरुषनिकूं देखतप्रमाण उठि खडा होना सप्त- पग सम्मुख जावना अंजुलि मस्तक चढावना उनकूं आगेकरि आप पाछैं गमनकरना, पठन पाठन तपश्चरण आतापनयोगादिक, सिद्धान्तका नवीन अभ्यासका ग्रहण विहार- वंदनादिक समस्तकार्य गुरुनिको जणाय करना, गुरुनिके होते ऊचासन छांडना सो समस्त उपचारविनय है। तथा आचार्या-दिक परोक्ष होंय तो मनवचनकाय की शुद्धतापूर्वक नमस्कार करना, अंजुली करना, गुणनिका स्मरण करना, गुणनिका कीर्तन करना जो बाकी आज्ञा धारण करो ताका पालाना; सो समस्त उपचारविनय है विनयके प्रभावतैं-

सम्यग्ज्ञानका लाभ होय है अनेकविद्या सिद्ध होय हैं मदका अभाव होय है आचारकी उज्वलता होय है सम्यक् आराधना होय है यशकी उज्वलता होय है, कर्मकी निर्जरा होय है।

बहुरि अन्य साधर्मीनिका, शिष्यनिका, मंदज्ञानके धारकहूका, यथायोग्य विनय करना, मिथ्यादृष्टिनिका हू तिरस्कार नाहीं करना, मिष्टबचन आदरपूर्वक बोलना, संतोष करनेवाला दुःख दूर करनेवाला वचन कहना सो ही विनय है। उद्धतचेष्टा दोऊ-लोक नष्ट करै है। बहुरि उपचारविनय मन वचन कायके मार्ग-करि अनेक प्रकार होय है गुरुनिका तथा सम्यग्दर्शनादिगुणनिके धारकनिका शय्याका स्थान, बैठकका स्थान शोधना आसनतैं नीचा बैठना, नीचा स्थानमें शयन करना, अनुकूल पादस्पर्शन करना, दुःखरोग आजाय तो शरीरकी टहल करके अपना जन्म सफल मानना, पूज्य पुरुषनिके निकट थूकना नाहीं, आलस्य नाहीं लेना, उबासी नाहीं लेना, अंगुलादिक भंजन नाहीं करना हास्य नाहीं करना, पांव नाहीं पसारणा, हस्तताल नाहीं देना अंगका विकार, भ्रकुटीका विकार, अङ्गका संस्कार नाहीं करना विनयवान है सो उच्चस्थानमें स्थित रह वंदना नाहीं करै, जठै जठै संयमी तिष्ठै, तठै तठै बन्दना करै जो आवते संयमीनिकूं देखि खड़ा होना आसन त्याग करना, वंदना करना तिनकैं ही विनय है जो गुरुनिकी आज्ञा हमकूं होय तिस प्रमाण अंगी-कार करना जो हमारे समान कोऊ पुण्यवान विरले हैं विनय-रहितके शील संयम विद्या समस्त निष्फल है विनयका प्रभावतैं क्रोध मानवैरादिक समस्त दोषनिका अभाव होय है विनय विना संसारसम्बन्धी लक्ष्मी सौभाग्य, यश, मित्रता गुणग्रहण

सरलता मान्यता समस्त नष्ट होय है तातैं साधुनिकूं अर गृहस्थ-निकूं समस्तधर्मका मूल विनय ही धारण करना श्रेष्ठ है।

अब वैयावृत्यतप हू, जिनकै गुणनिमें प्रीति, धर्ममें श्रद्धान धर्मात्मामें वात्सल्य, निर्विचिकित्सादिगुण होय तिनहीके होय है कृतघ्नके आचार्यादिकनिका वैयावृत्यमें परिणाम नाहीं होय है दशप्रकारके साधुनिका वैयावृत्य आगममें कह्या है। आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु, मनोज्ञ इन साधुनका दशप्रकार वैयावृत्त्य कह्या है। तिनमेंतैं जिनके सम्यग्ज्ञानादिकगुणनिकूं तथा सर्वमोक्षके सुखरूप अमृतका बीज व्रत संयम अपना हितके अर्थ आचरण करें ते आचार्य हैं तिनका अपना कायकरि तथा अन्य क्षेत्र शय्या आसनादिकरि सेवा करिये सो आचार्यवैयावृत्त्य है। आचार्यनिका वैयावृत्य है सो समस्तसघकी वैयावृत्त्य है समस्तसंघ समस्तधर्म आचार्य-निके प्रभावतैं प्रवर्तै है। बहुरि जिन व्रतशीलके धारकनिका समी-पकूं प्राप्त होय परमागमका अध्ययन पठन करिये सो उपाध्याय हैं। महान अनशनादितपमें प्रवर्तन करैं ते तपस्वी हैं। श्रुतज्ञानके शिक्षणमें तथा व्रतशील भावनामे निरन्तर तत्पर होय ते शैक्ष्य हैं। रोगादिककरि क्लेशित जिनका शरीर होय ते ग्लान हैं। वृद्ध मुनिनकी संतति सो गण है। आपको दीक्षा देनेवाला आचार्य-निका शिष्य होय सो कुल कहिये है। च्यारप्रकारके मुनीश्वर-निका समुदाय सो संघ है। बहुत कालका दीक्षित होय सो साधु है।

लोकमें पंडितपणाकरि मान्य होय तथा वक्तृत्वगुणकरि मान्य होय महा कुलीनपनाकरि लोकनिमें मान्य होय सो मनोज्ञ

है जातैं प्रवचनका धर्मका गौरवपणा प्रकट होय है ऐसैं दशप्रकार-के मुनीनिकें कदाचित् शरीरमें व्याधि प्रगट होय जाय तथा परी-षह आजाय तथा मिथ्यात्वादिकनिका भावनिमें उदय हो जाय तो प्रासुकऔषधि भोजन पान वस्तिका संस्तरणादिकरि धर्मोपदेशकरि श्रद्धानको दृढ़ता करावनेकरि पुस्तकपिच्छिकाकमंडलादि धर्मोपक-रणनिका दानकरि इलाज करना, धर्ममें दृढता करावना, संतोष धैर्यादि धारण करावना, वीतरागताका बधावना सो वैयावृत्य है बाह्य औषधि भोजनपानादिक द्रव्यका असंभव होतैं अपना काय-करि कफ नासिकामल मूत्र पुरीषादिक दूर करना, रात्रि जागरण करना, सो वैयावृत्त्य तप परमनिर्जराका कारण है। तिनमें केतेक उपकार तो मुनीश्वरनिका मुनीश्वर ही करैं हैं उठावना, बैठावना, शयन करावना, कलोटलिवावना, हस्तपादादिकनिका पसारना समेटना, उपदेश देना कफमलादि दूर करना, धैर्य धारण करावना मुनीश्वरनिका मुनीश्वर ही करैं हैं अर केतेक प्रासुक औषधि आहार पान उपकरणादिकनिकरि गृहस्थ धर्मात्मा श्रावकतैं ही बनै है, गृहस्थ है सो साधुनिका वैयावृत्त्य करै अर आर्जिकाका वैयावृत्त्य करै तथा करुणाबुद्धिकरि दुःखित रोगी बेवारिस बाल वृद्ध पराधीन बंदीगृहमे पडेनिका करुणाबुद्धितैं उपकार करै तथा माता पिता विद्यागुरु स्वामी मित्रादिकनिका उपकार स्मरणकरि कृतघ्नताछांडि सेवासन्मानदान प्रशंसादिकरि आदर सन्मानादि-करि सुख उत्पन्न करै, दुःख होय ताकूं दूर करै अपनी शक्तिप्रमाण दानसन्मानकरि वैयावृत्त्य करै ताकै वैयावृत्त्यतप महानिर्जरा करै

है। वैयावृत्यतैं ग्लानिको अभाव होय है, प्रवचनमें वात्सल्यता होय है आचार्यादिक अनेक वात्सल्यके स्थान हैं तिनमें कोऊको भी वैयावृत्य बनि जाय ताहीकरि समस्त कल्याणकूं प्राप्त होजाय है।

अब स्वाध्याय नामा तपकूं वर्णन करैं हैं—स्वाध्याय पंचप्रकार है—वांचना, पूछना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय, धर्मोपदेश ऐसे पंचप्रकार स्वाध्याय है। निर्दोषग्रन्थ कहिये पाठ तथा आगमका अर्थ तथा पाठ अर अर्थ दोऊ इनकूं पात्र मनुष्यनै पढ़ावना जनावना समझावना सो वाचनास्वाध्याय है जातैं परमागमका शब्द पढावनेसमान अर्थसमझावनेसमान कोऊ अपना परका उपकार है नाहीं तथा परमागमको पढाय योग्य शिष्यकूं प्रवीण करना है सो धर्मका स्तंभ खडा करना है जातैं जिनधर्म तो शास्त्रज्ञानतैं ही है प्रतिमा अर मन्दिर तो मुखतैं बोलैं नाहीं साक्षात् बोलता देवसमान हितमें प्रेरणा करनेवाला अर अहिततैं रक्षा करनेवाला भगवान सर्वज्ञका परमागम ही है तातैं शास्त्रपढावनेमें, पढनेमें परम उद्यमी रहना। बहुरि अपना संशयका नाशके अर्थ बहुज्ञानीसूं विनयपूर्वक प्रश्न करना, जातैं प्रश्नकरि संशय दूर किये बिना ज्ञान सम्यक् प्रकट नाहीं होय यातैं पूछना है अथवा आप जो आगमका शब्द अर्थ समझ राख्या होय सो बहुज्ञानीनिके मुखतैं श्रवण करले तो बहुत ज्ञान दृढ होजाय, ज्ञानकी शिथिलता दूर होजाय तातैं बहुज्ञानीनितैं प्रश्न करना अथवा आप संक्षेप समझ्या होय ताकूं विस्तारतैं जाननेके अर्थ बडी विनयतैं सम्यग्ज्ञानीनितैं प्रश्न करना अपनी उच्चता तथा अपना पंडितपना दिखावनेके अर्थि तथा परका तिरस्कार करनेके अर्थि तथा परका

हास्यके अर्थ सम्यग्दृष्टी प्रश्न नाहीं करै है शब्दमें हू प्रश्न करै शब्द अर्थ दोऊनिकूं हू प्रश्नादिककरि निर्णय करना सो पृच्छना नामा स्वाध्याय है।

बहुरि परमागमका जाण्या हुआ शब्द अर्थकूं अपना हृदयमें धारणकरि बारंबार मनकरि अभ्यासकरना चितवन करना तथा आगममें आज मैं पठनश्रवण किया तिसमें ये दोष मेरे त्यागनेयोग्य हैं ये गुण मेरे ग्रहण करने योग्य हैं ये हमारे स्वरूपतैं अन्य द्रव्यलोकक्षेत्रादिक जाननेयोग्य ही हैं ऐसे मनकरि वारंवार चिंतवन करना सो अनुप्रेक्षा नाम स्वाध्याय है। यातैं अशुभभावनिका नाश होय है शुभधर्मध्यान प्रकट होय है। बहुरि अतिशीघ्रतातैं पढना वा अतिविलंबित पढ़ना इत्यादिक वचनके दोष टालि धैर्य सहित एकएक अक्षरकी स्पष्टता सहित अर्थका प्रकाशसहित पढ़ना पाठ करना मिष्टस्वरतैं उच्चारण करना तथा सिद्धांतकी परिपाटीतैं आगमतैं विरोधरहित लोकविरुद्धतारहित पढ़ना सो आम्नाय नामा स्वाध्याय है। बहुरि लौकिकप्रयोजन लाभपूजा अभिमानमदादिकनिकूं छांड़ि उन्मार्गके दूर करनेकूं, सन्मार्ग दिखावनेकूं संशय निराकरण करनेकूं अपूर्वपदार्थ प्रगटकरनेकूं धर्मका उद्योत होनेकूं मोहअंधकार दूर करनेकूं संसारदेहभोगनतैं लोकनिकूं विरक्त करनेकूं, विषयानुराग तथा कषाय घटावनेकूं, अज्ञान निराकरण करनेकूं, भेदविज्ञान प्रगटकरनेकूं, पापक्रियातैं भयभीत होनेकूं भव्यनिकूं धर्मकथनीका उपदेश करना सो धर्मोपदेश नाम स्वाध्याय है। जहां अनेकभव्यजीवनिको धर्मका उपदेश देना होय है तहां मनवचनकाय समस्त धर्मके स्वरूपमें लीन हो जाय हैं अर ऐसा अभिप्राय उपदेशदाताका होय है जो कोऊरीति अनेकांतधर्म-

का यथावतस्वरूप श्रोतानिका हृदयमें प्रवेश करै कोऊप्रकार संसारदेहभोगनिमें राग घटै, कोऊप्रकार भेद विज्ञान प्रगट होय ऐसा अभिप्राय जाका होय सो सत्यार्थ धर्मका उपदेश करै है जाका आत्मा धर्ममें रचि जायगा सो ही अन्य श्रोतानिकूं धर्ममें रचावैगा। धर्मोपदेश देनेवालाके आत्मानुशासनमें ऐसे गुण कहे हैं जाकी बुद्धि त्रिकालविषयी होय जो पाछली अनेकरीति परमागमतैं नाहीं जानै सो यथावत वस्तुका स्वरूप नाहीं कहि सकै है, जाकूं वर्तमानवस्तुका स्वरूपको ज्ञान नाहीं होय सो विरुद्धकथनी करदे जाकूं आगानै परिपाकका ज्ञान नाहीं होय सो अयोग्य कह दे यातैं वक्ता होय सो बुद्धिका बलतैं आगमका बलतै लौकिकरीति प्रत्यक्षदेखनेतैं त्रिकालकी रीति जानै।

बहुरि समस्तशास्त्र जे च्यारअनुयोगके शास्त्र तिनका रहस्यका जाननेवाला होय जो च्यार अनुयोगनिका रहस्य नाहीं जानै अर वक्तापना करै तो श्रोतानिकूं यथावत् नाहीं समझाय सकै जातैं प्रमाणका कथन आजाय नयनिका तथा निक्षेपनिका तथा गुणस्थान मार्गणास्थानका तथा तीनलोकका तथा कर्मप्रकृतिनिका तथा आचारका कथन आजाय तो जाण्याविना यथावत् निःशंक संशयरहित नाहीं व्याख्यान कर सकै। यातैं समस्तशास्त्रनिका रहस्यका ज्ञाता होय बहुरि लोकरीतका ज्ञाता होय जो लौकिकरचनामें मूढ होय सो लोकविरुद्ध व्याख्यान करै बहुरि जाकै भोजन वस्त्र स्थान धन अभिमानकी आशा वांछा होय सो वक्ता यथार्थ व्याख्यान नाहीं करै लोकनिकूं रंजायमान किया चाहै, लोभीके सत्यार्थ वक्तापनो नाहीं होय है। बहुरि जाकी बुद्धि तत्काल उत्तर देनेवाली होय जो वक्ताकूं तत्काल

उत्तर नाहीं उपजै तो सभामें क्षोभ होजाय, वक्ताकी दृढप्रतीति सभानिवासीनिके नाहीं आवै। बहुरि वक्ता होय सो मंदकषायी होय मंदकषायीविना लोभीका कपटीका क्रोधीका अभिमानीका दिया उपदेश कोऊ अगीकार नाहीं करै है, बहुरि वक्ता ऐसा होय जो श्रोतानिका प्रश्नहुआ पहले ही उत्तरकूं दिखावनेवाला होय जो थे या कहो तो या है अर या कहो तो या है। इसप्रकार व्याख्यान ही ऐसा करै जो श्रोतानिकूं प्रश्न नाहीं उपजिसकै अगाऊ ही प्रश्नका मार्ग मुद्रित करता व्याख्यान करै जो बहुत प्रश्न होजाय तो सभामें क्षोभ मचि जाय बहुरि प्रबलप्रश्न हू कोऊ आय करै तो सहनशील होय क्रोधित नाहीं होय जो प्रश्न श्रवण· करि क्रोधित होजाय तो कोऊ प्रश्न नाहीं कर सकै। बहुरि जामें प्रभुत्वगुण होय जातैं जाकूं आपतैं ऊंचा जानै ताहीकी शिक्षा ग्रहण करै, दीनकी नीचकी शिक्षा कौन ग्रहण करै यातैं यामें जगत के मान्य प्रभुत्वगुण होय, बहुरि परके मनका हरनेवाला होय जो समस्तके प्रिय होय। जो मनकूं अप्रिय होय ताकी शिक्षा ग्रहण नाहीं होय है।

बहुरि जाकूं आप आछीरीति आगमतैं वा गुरुपरिपाटीतैं नीका समझलिया होय ताकूं ही व्याख्यान करै जाकूं आप ही पूरा नाहीं समझा होय सो अन्यकूं कैसैं उद्योत करेगा, दीपक आप प्रकाशरूप है सो ही घटपटादिकनिकूं प्रकाशै है बहुरि जाकी प्रवृत्ति व्यवहारमें परमार्थमें धर्ममें लेनेमें देनेमें बोलनेमें विणजा· दिक जीविकामें, भोजन वस्त्रादिकनिमें उज्वल यशसहित होय सो

ही वक्ता होय जाकी प्रवृत्ति मलीन हो ताकै वक्तापना सोहै नाहीं मलीन होजाय सो जगतमें मान्य नाहीं रहै। बहुरि जाकी अन्यलोकनिके ज्ञानउपजावनेमें परिणति होय जाकी अन्यके समझावनेमें परणति नाहीं होय सो काहेकूं कहै। बहुरि रत्नत्रयमार्गके प्रवर्तावनेमें जाकै उद्यम होय सो ही धर्मकथाका वक्ता होय इसमें अन्यलौकिक प्रयोजन है ही नाहीं। बहुरि जाको बडा ज्ञानीजन स्तुति करता होय क्योंकि बडे बडे ज्ञानी जाकी प्रशंसा करै ताका वचन जगतके दृढश्रद्धानमें आजाय है। बहुरि उद्धतताकरि रहित होय जातैं उद्धत होय सो समस्तके अप्रिय होय है। बहुरि लोकरीति, देश काल, श्रोतानिकी सुष्ठुता, दुष्टता, प्रवीणता मूढता, शक्तता अशक्ततादिक समस्त जानि ऐसो उपदेश करै जो समस्त जन बड़ा आदर तैं ग्रहण करैं लौकिकज्ञाताविना यथायोग्य उपदेश नाहीं होय। बहुरि कोमलतागुण जामें होय कठोरपरिणामीका कठोरवचन आदरनेयोग्य नाहीं होय जातैं श्रोता श्रवणकरनेतैं परांमुख होजाय है बहुरि जाके वक्तापनाकरि धन भोगादिककी वांछा नाहीं बहुरि जाका मुखतैं अक्षर स्पष्ट उचारण होय स्पष्ट अक्षर विना समझमें आवै नाहीं बहुरि मिष्ट अक्षर होय जातैं श्रोता जाने कि कर्णनिके द्वारकरि समस्त अंगनिकूं अमृतकरि सींच दिया बहुरि श्रोताजन जाका स्वामित्व समझे बहुरि सम्यग्दर्शनचरित्र वात्सल्यादि अनेक गुणनिका निधान होय ऐसे वक्तापनके अनेकगुणनिकरि सहित होय सो धर्मकथाका वक्ता होय सो ऐसे गुणनिका धारक वक्ता को उपदेश कोऊ महाभाग्य पुण्यवान जननिकूं मिले है।

सम्यग्देशनालब्धिका पावना अनन्तकालमें हू दुर्लभ है। बहुरि धर्मोपदेश हू मिले तो योग्य श्रोतापनाविना धर्मग्रहण नाहीं होय है जैसें योग्यपात्रबिना वस्तु ठहरै नाहीं, अयोग्यपात्रमे धरै तो पात्रका अर वस्तुका दोऊनिका नाश होय है तैसें योग्य श्रोतापनाविना हू धर्मका उपदेश ठहरै नाहीं याहीतैं श्रोताका लक्षण हू संक्षेपतैं ऐसें जानना।

प्रथम तो भव्य होय जो उपदेश देते हू सम्यक्श्रद्धानादिक ग्रहण करनेयोग्य नाहीं होय ताकूं उपदेश देना वृथा है। बहुरि मेरा कल्याण कहा है मेरा हित कहा है ऐसा जाके सासता विचार होय जाकै अपना हितकी बांछा नाहीं सो विना प्रयोजन धर्म कथा काहेको श्रवणकरै वे तो विषयका लाभ जातैं सधै ताकी बॉछा करै हैं। बहुरि दुःखतैं अत्यन्त भयभीत होय जो मेरे अब नरकतिर्यंचादिक पर्यायका दुःख मति होहू ऐसैं जाकै भय नाहीं होय सो पाप छॉडिवाका विषयकषायत्यागिवाका शास्त्र काहेकूं श्रवण करै तातैं दुखतैं भयभीत होय बहुरि सुखका इच्छुक होय जाकै सुखकी चाह नाहीं होय सो धर्मका श्रवण नाहीं करै अर जाकै कर्णइंद्रिया नाहीं होय, कर्ण बिगड़गये होंय तो काहेतें श्रवण करै बहुरि जाकै धर्मकथा श्रवण करनेकी इच्छा होय, इच्छाविना परिपूर्ण श्रवण होय नाहीं अर इच्छा भी होय अर प्रमाद आलस कुसङ्गकरि श्रवण नाहीं करै तो इच्छा वृथा है अर जो श्रवण हू करे अर ये गुरु ऐसें कहै हैं एती सावधानतारूप ग्रहणविना श्रवण वृथा है अर ग्रहण हू होय अर जो धारण नाहीं होय श्रवणकरते ही विस्मरण होजाय तो ग्रहणकरना वृथा है बहुरि जो विचारपूर्वक प्रश्नउत्तरकरि निर्णय नाहीं करै तो

श्रवणमें संशयादिक ही रहै तदि कैसैं आत्महितके सन्मुख होय। बहुरि श्रोता है सो ऐसा धर्मकूं श्रवण करै जो दयामय होय अर सुखका करनेवाला होय अर युक्तितैं प्रमाणनयतैं जामें बाधा नाहीं आवै अर भगवान सर्वज्ञवीतरागके आगमतैं प्रवर्त्या होय ऐसा धर्मकूं श्रवणकरि बारम्बार विचारकरि ग्रहण करै जो विचार-रहित होय मिथ्यात्वरूप हिंसाका कारण धर्म ग्रहण करले तो दुःख करनेवाला नरकादिकमें प्राप्त करै अर जामें युक्तितैं तथा सर्वज्ञवीतरागके आगमतै बाधा आजाय सो धर्म नाहीं है, अधर्म है; यातैं श्रवण करनेयोग्य नाहीं, हठग्राहादिकदोषरहित होय हठग्राहीकूं शिक्षा लगै नाहीं इत्यादिक अनेकगुणनिका धारक होय सो श्रोता धर्मका उपदेश श्रवणकरि आत्मकल्याण करै है।

अब इहां प्रकरणपाय श्रोतानिकी केतीकजाति दृष्टांतकरि कहै हैं केतेक श्रोता मृत्तिकाका स्वभाव लिए हैं जैसैं मृत्तिका पानी पड़ै जब तो नरम हो जाय पाछें कठोर होय तैसैं धर्मश्रवणकरते भावनिमे भीज जाय पाछैं कठोर होय है। केतेक चालनी जैसे कण छांडि तुष ग्रहण करै तैसैं धर्मकथामें सारगुण तो छांड दे अर औगुण करै हैं ते चालनीवत् जानना। बहुरि केतेक भैंसातुल्य श्रोता होय है जैसैं उज्वलजलका भरा सरोवरमें भैंसा प्रवेशकरि समस्तसरोवरकूं कर्दमय करै तैसैं समस्तसभाके लोक-निका परिणाम मलीन करै हैं। बहुरि केतेक हंसतुल्य श्रोता हैं जैसैं हंस जलदुग्धका भेदकरि दुग्ध ग्रहण करै तैसैं निःसार छांडि आत्महित ग्रहण करै हैं। बहुरि केतेक श्रोता सूवातुल्य हैं जिनकूं राम बुलावो तो राम बोलैं अर अन्य सिखावो तो अन्य

बोलै जाकूं रामका हू ज्ञान नाहीं अर रहीमका हू ज्ञान नाहीं तैसें पापपुण्यका विचाररहित जो पढावो सो ग्रहण करैं विचार-रहित आपनास्वरूप परस्वरूपका ज्ञानरहित सूवापक्षीसमान श्रोता होय हैं। बहुरि केतेक मार्जारसमान श्रोता हैं जैसें मार्जार सूता हू अपना शिकारकी तरफ जाग्रत रहै तैसें कोऊ श्रोता अपना विषयकषाय वाणीमें छलग्रहण करता तिष्ठै हैं। बहुरि कोऊ बुगला जातिका श्रोता ध्यानीसा बन्या रहै अपना विषयकषायकूं ग्रहण करै है। बहुरि कोऊ डांससमान श्रोता होय हैं वक्ताकं बारम्बार बाधा उपजावै हैं। बहुरि कोऊ बकराजातिका श्रोता जैसैं बकराकूं अतर फुलेल सुगन्ध पान करावते हू दुर्गन्ध ही प्रगट करै है तैसैं उज्वलधर्म श्रवण करकै हू पापही उगलै है। बहुरि कोऊ जलौकासमान श्रोता है जैसे जौंककूं स्तनऊपर लगावैं तो हू मलिनरुधिर ही ग्रहण करै। कोऊ फूटाघटसमान श्रोता है धर्मश्रवणकरता हू चित्तमे लेशमात्र भी धारण नाहीं करै है। कोऊ सर्पसमान श्रोता है जो दुग्धमिश्रीकूं पान करावते हू प्रबल-जहर वधै है। कोऊ गाय समान उत्तमश्रोता है जो तृणभक्षणकरि दुग्ध दे है। बहुरि कोऊ पाषाणकी शिलासमान; जाकूं बहुत धर्मोपदेशदेते हू हृदयमें प्रवेश नाहीं करै है। कोऊ कसौटी समान श्रोता परीक्षाप्रधानी हैं, कोऊ ताखड़ी की डांडी समान घाटबाध जानै हैं। ऐसे श्रोतानिका उत्तम मध्यम अधम अनेक जाति है जाका जैसा स्वभाव है तैसा धर्मका उपदेश परिणमै हैं ऐसें धर्मो-पदेश नाम स्वाध्यायका प्रकरणमें वक्ताश्रोताका लक्षण कह्या है। ऐसे पंचप्रकार स्वाध्याय वर्णन करा। स्वाध्याय करनेतैं बुद्धि तो

अतिशयवान होय है अभिप्राय उज्वल होय है, जिनधर्मकी स्थिति दृढ होय है, संशयका अभाव होय है परवादीकी शंकाका अभाव होय है, परमधर्मानुराग होय है, तपकी वृद्धि होय है, आचारकी उज्वलता होय है, अतीचारको अभाव होय, पापक्रियाका परिहार होय, कुधर्ममें रागका अभाव होय है, परमेष्ठीमें अतिशयरूप भक्ति होय, सम्यग्दर्शन प्रकट होय है, संसारदेहभोगनितैं विरागता होय कषायोंकी मन्दता होय, दयाभावकी वृद्धि होय, शुभध्यान होय आर्तरौद्रका अभाव होय, जगतके मान्य होय, उज्वल यश प्रकट होय, दुर्गतिका अभाव होय, स्वर्गके उत्तम सुख तथा निर्वाणका अतींद्रियसुखकी प्राप्ति होय इत्यादि अनेकगुणनिका उत्पन्न करने वाला जानि वीतरागसर्वज्ञका प्रकाश्या आगमका अभ्यास बिना मनुष्यजन्म व्यतीत मति करो। ऐसे स्वाध्यायनामा अंतरंगतपका पांचप्रकार स्वरूप कह्या।

अब कायोत्सर्ग नाम तपका स्वरूप कहिये हैं—जो बाह्य अभ्यंतर उपधिको त्याग सो कायोत्सर्ग है जो शरीर धनधान्यादिकको त्याग सो बाह्य उपधित्याग है अर अभ्यंतर मिथ्यात्व क्रोध मान माया लोभ हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा वेद परिणामनिका अभाव सो अभ्यंतर उपधित्याग है। बहुरि बाह्यत्यागमें आहारादिकका हू त्याग है संन्यासका अवसरमें आयुकी पूर्णता होय तहां यावज्जीव त्याग है सो आगै क्रमतैं सल्लेखनामें वर्णन करसी। तातैं इहां विशेष नाहीं लिख्या है।

अब ध्यान नामा तप छठा है ताकूं वर्णन करिये है—सो

याका ऐसा स्वरूप जानना जो एक पदार्थकै सन्मुख चिंतवनका रुकजाना सो ध्यान उत्तमसंहननवाले के अंतर्मुहूर्त रहै है। एकाग्र चिंतवनका रुकजाना अंतर्मुहूर्ततैं अधिक काल उत्तमसंहननवालेके भी नाहीं रहै है। वज्रवृषभनाराचसंहनन, वज्रनाराचसंहनन, नाराचसंहनन ये तीन उत्तम संहनन हैं। उत्तम संहननवालेकै ही मुख्यपनाकरि चित्तका रुकना होय है। जो संसारमें गमन भोजन शयन अध्ययनादिक अनेक क्रिया हैं तिनमे नियमरहित वर्तै है तहां ध्यान नाहीं जानना जहां एकके सन्मुख होय चित्तका रुकना सो ध्यान है अर जहां एकाग्रता नाहीं तहां भावना है। इहां प्रशस्त संकल्पतैं तो शुभध्यान होय है अर अप्रशस्तकल्पनातैं अशुभध्यान है। तिनमें शुभध्यान दोयप्रकार है एक धर्मध्यान, एक शुल्कध्यान अर अशुभध्यान हू दोयप्रकार है एक आर्तध्यान; दूजा रौद्रध्यान ऐसैं ध्यान च्यारप्रकार है। तिनमें अशुभध्यान तो विना यत्न ही जीवनिके होय है जातैं अशुभध्यानका संस्कार तो जीवनिके अनादिकालतैं चला आवै है कोऊ शास्त्र भी अशुभध्यान सिखावनेका नाहीं है विना शिक्षा ही जीवनिके होय है, अशुभध्यानका अभाव भये शुभध्यान होय है। तातैं अशुभध्यानका अभावके अर्थ प्रथम च्यारप्रकारका आर्तध्यानकूं प्ररूपण करिये है—एक अनिष्टसंयोगज, दूजा इष्टवियोगज, रोगजनित, निदानजनित ए च्यारप्रकार आर्तध्यान है। ऋत जो दुःख तातैं उपजै सो आर्तध्यान है जो अनिष्ट वस्तुका संयोगतैं महादुःख उपजै तिस अवसरमें जो चिंतवन सो अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान होय है। जो अपना

शरीरका नाश करनेवाले तथा धनका नाश करनेवाले तथा आजी-विकाकूं विगाडनेवाले तथा अपने स्वजनमित्रादिके नाश करने-वाले ऐसे दुष्ट वैरी तथा दुष्टराजा तथा राजाका दुष्ट अधिकारी तथा अपना दुष्ट पडोसीनिका संयोग मिलना तथा रोगीशरीर घोरदरिद्र नीचजाति नीचकुलमें जन्म, निर्बलता, असमर्थता, अंग-हीनता इत्यादिक पावना तथा सिंह व्याघ्र सर्प स्वान मूसा तथा अग्नि जलादिक तथा दुष्टराक्षसादिकनिका संयोग मिलना तथा दुष्टबांधव तथा दुष्टकलत्र पुत्रादिकनिका संयोग बड़ा अनिष्ट है इनका संयोगका दुःखमें जो संक्लेशरूप परिणाम होय इनका वियोगके अर्थ चिंतवन होना सो अनिष्टसंयोगज नामा आर्तध्यान है। जातै अतिशीत अतिउष्णता अतिवर्षा डांस मांछर कीडी कूटकरण दुष्टनके दुर्वचन श्रवणकरि चिंतवनकरि स्मरणकरि परिणाममें बडी पीडा उपजै है अनिष्टका संयोगतैं दिवसमें रात्रिमें घरमें बारैं कोऊ स्थानमें कोऊ कालमें क्लेश नाहीं मिटै है वातैं आर्तपरिणामतैं घोर कर्मका बन्ध होय है सो समस्त अनिष्ट संयोगज आर्तध्यानका प्रथम भेद है याकूं परिणाममें नाहीं होने दे है तिन सम्यग्दृष्टीनि के बहुत कर्मकी निर्जरा है। जो ज्ञानी महासत्पुरुष हैं ते अनिष्ट के संयोगमें आर्तकूं नाहीं प्राप्त होय हैं ऐसा चिंतवन करै हैं जो हे आत्मन्! ये तेरे जो अनिष्ट दुःख देनेवाली सामग्री उपजी है सो समस्त तेरा उपार्जन किया पाप-कर्मका फल है कोऊ अन्यकूं दूषण नाहीं है अन्यकूं अपना घात करनेवाला मति जानो जो पूर्वै परका धन हर्‌या है अन्याय किया है अन्य निर्बलनिकूं संताप उपजाया है अन्यके कलङ्क लगाया है

मिथ्याधर्मकी शिक्षा करी है शीलवन्तत्यागीतपस्वीनिकूं दूषण लगाया है खोटामार्ग चलाया है विकथामें रच्या है अन्यायविषय सेये हैं निर्माल्य देवद्रव्य खाया है ते कर्म अवसरपाय उदय आया है अब याका उदयमें दुःखित क्लेशित होय भोगोगे तो नवीन अधिकपापका बन्ध और करोगे अर दुःखित हुवा कर्म नाहीं छांडैगा और अधिक दुःख बधैगा, बुद्धि नष्ट हो जायगी, धर्मका लेशहू नाहीं रहैगा पापका बंध दृढ होयगा तातैं अब धैर्यधारणकरि समभावनितैं सहो अर जो संक्लेशरहित समभावनितैं सहोगे तो शीघ्र ही पापकर्मका नाश होयगा यातैं परिणाममें ऐसा चिंतवन करो जो मेरे बडा लाभ है जो कर्म इस अवसरमें उदय आय रस-देय निर्जरै है मेरे बडालाभ है जो जिनधर्मधारण होरह्या है इस अवसरमें बडी समतासूं कर्मका प्रहारकूं सहि कर्मके ऋणरहित होस्यूं, जो यो कर्म अन्य अवसरमें उदय आवतो यातैं अधिक बंधकरि असंख्यातभवनिमें याका उलझाणतैं नाहीं छूटतो। ऐसा विचार हू करो जो ये अनिष्टके संयोग जैसैं मोकूं अनिष्ट लागैं हैं तैसैं अन्यजीवनिके हू बाधा करनेवाला है तातैं मैं अब किसी अन्य जीवके अयोग्यवचनकरि अर अयत्नाचाररूप कायकरि अन्य जीवनिके दुःखहानि होने के चिंतवनकरि कदाचित् दुख करनेकी वांछा नाहीं करूं अर ये इस अवसरमें जो मेरे अनिष्ट संयोग मिले है तिनतैं असंख्यातगुणे नरकतिर्यंचपर्यायमें तथा मनुष्य-पर्यायमें अनेकबार भोगे हैं अनेकदुर्वचन भोगे हैं अनेक मारनिः करि नित्य दुख भोगे हैं, अनेकजन्म दारिद्र भोग्या है बहुरि बोझ लादनेका दुख मर्मस्थानमें मारनेका दुख हस्तपगनासिका छेदनेका

दुख नेत्र उपाडनेका दुख, क्षुधा का, तृषाका, शीतका, उष्णताका तावडामें पडा रहनेका पवनका दुष्टजीवनिकरि खावनेका चिरकाल पर्यंत बन्दीगृहमें पराधीन पडनेका हस्त पांव नाक छेदनका बंधनेका घोरदुःख भोगे हैं तथा अनेक बार अग्निमें दग्ध होय बल्या हूँ मरया हूँ अनेकबार जलमें डूबिमरया कर्दममें फसिमरया इस प्रकार तिर्यचनिमें, मनुष्यनिमें उपजि उपजि अनिष्टका संयोग अनन्तबार भोग्या है, नरकगतिका तो दुख प्रत्यक्षज्ञानी जाननेकूं समर्थ हैं अन्य नाहीं। इससंसारमें वास करैगा जेते तो अनिष्ट संयोग ही रहैगा तातै मैं पापकर्मकरि पंचमकालका मनुष्य भया हूं यामें अनिष्टके संयोगकर भय कहा है यामें जो अनन्तकालमें जाका लाभ दुर्लभ ऐसा धर्मरूप परमनिधान पाया इसका लाभका आनन्दकरि मोकूं अनिष्टसंयोगजनित दुखका अभावकरि परम-समता भावतैं कर्मका उदयकूं जीतना योग्य है ऐसे अनिष्टसंयोग जनित आर्तध्यानका अभव करना।

अब आर्तध्यानका दूजा भेद इष्टवियोगज है। इष्टके वियोगतैं बडी आर्ति उपजै है जो अपने चित्तकूं आनन्द देनेवाला अनेक-सुखनिकूं उपजावनेवाला ऐसा पुत्रका मरण होजाय वा आज्ञाकारिणी स्त्रीका वियोग होजाय तथा प्राणनिसमान मित्रका वियोग होजाय वा बहुतसंपदा राज्यऐश्वर्यभोगनिका देनेवाला स्वामीका वियोग हो जाय तथा सुखतैं जीवनेकी कारण आजीविका नष्ट होजाय तथा राज्यका भंग पदस्थका भंग संपदाका भंग होजाय तथा सुखतैं विश्राम करनेका कारण जायगा गृह स्थान नष्ट होजाय वा सौभाग्य यश नष्ट होजाय, प्रीतिके करनेवाले भोग नष्ट होजांय

सो समस्त इष्टका वियोग है ऐसे इष्टके वियोग होते जो शोक भ्रम भय मूर्छादिक होना वारम्वार तिनका संयोगके अर्थ चिंतवनकरना रुदन करना दुखमें अचेतहुवा विलाप करना वारम्वार पीडित होना हाहाकार करना, सो तिर्यंचगतिमें गमनका कारण इष्टवियोगज नाम आर्तध्यान है इष्टके वियोगतैं बड़ेबड़े शूरवीरनिका धैर्य छूटि जाय है महानपुरुष दीन होजाय है, हृदय फटि जाय है, मरणकर जाय है, उन्मत्त बावला होजाय है, कूपबावड़ीमें जायपडै है, ऊंचे मकानतैं तथा पर्वततैं पडि मरै है विषका भक्षण करै है शस्त्रादि-ककरि आत्मघात करै है, इस इष्टके वियोगकी आर्तिसमान कोऊ आर्ति नाहीं है, इष्टवियोगकी आर्तिकरि दोऊलोक नष्ट होजाय हैं, कोऊ उत्तमपुरुष संसारदेहभोगनितैं विरक्त श्रद्धानी सम्यग्ज्ञानी वीतराग सर्वज्ञके वचननिका अवलम्बन करनेवाला, वस्तुका सत्यार्थ स्वरूपकूं जाननेवाला पुरुष ही इष्टका वियोगजनित दुःखकूं जीतै हैं ते पुरुष ऐसी भावना करै हैं जो हे आत्मन् संसार में जेते तेरे संयोग भया है तिनका नियमतैं वियोग होयगा वियो-गके रोकनेकूं कोऊ देवता इंद्र मन्त्र जंत्र औषधि सेना बल परि-कर बुद्धि मित्र धन संपदा कोऊ समर्थ नाहीं है इस अपना देहका ही वियोग अवश्य होयगा तदि इस देहका संबन्धीनिकी कहा कथा है, जो ये स्त्री पुत्र पुत्री माता पितादिककूं अपना मानि प्रीति करै है सो तेरा सम्बन्ध इनके आत्मातैं नाहीं है, जो ये मुखऊपर चामडा वा दुर्गंधनाशिका तथा चामडाके नेत्र इनके विषै मोह-बुद्धिकरि परस्पर अपना समान राग करै है सो इनका तो अग्निमें एकदिन भस्म होना है तुम्हारा चामडाका अर इनका चामडाका

अनन्तकालमें हू कैसे सबन्ध मिलैगा ? जिनका संयोग भया है तिनका नियमतैं वियोग होयगा, माताका पिताका प्यारीस्त्रीका सपूतपुत्रका भ्राताका राज्यका ऐश्वर्यका धन संपदाका महलमकानका देशनगरग्रामका मित्रनिका स्वामीका सेवकका अवश्य वियोग होयगा तातैं इष्टका वियोगकी आर्तिकरि अशुभबंध मति करो। जो ये तुम्हारे इष्ट हैं तो तुमकूं दुःख उपजावनेकूं कैसे मरैं तातैं जो सम्यग्ज्ञानी हो तो परमधर्मरूप भावकूं इष्ट मानो जातैं संसारके दुखतैं छूटना होय। अर ये स्त्री पुत्र कुटुम्ब धन परिग्रहादिक इष्ट नाहीं हैं जो ममता उपजाय पापकर्ममें इंद्रियनिके विषयनिमें प्रवृत्ति करावै अनीतिमें प्रवर्ताय दुर्गति पहुँचावै ते काहेका इष्ट ? इष्ट तो परमहितरूप धर्ममें प्रवर्तन करानेवाले धर्मात्मा गुरुजन हैं वा साधर्मी हैं अन्य नाहीं, ये कुटुम्बके जन तो तुम्हारे पुण्यका उदयतैं धन संपदा है तेते सब अपने इष्ट दीखै हैं विना-धन कोऊ अपना इष्ट मानै नाहीं अर धन है सो पुण्यके आधीन है तातैं पुण्यके प्रभावकूं ही इष्ट मानो जो पुण्यका उदय आवै तो स्वर्गलोककी महान् इष्ट सामग्री असंख्यातदेवांकरि वंदनीक इंद्रपना अर महाप्रेमकी भरी हुई हजारां देवांगना अद्भुत भोग सामग्री मिलै है अर पापका उदयतैं अपना घना प्यारापुत्र तथा यत्नतैं पाल्या देहादिक ही घोर दुखके देनेवाले वैरी होजाय हैं। अर संसारमें अज्ञानभावतैं जो स्त्रीपुत्रादिकांनैं इष्ट मानो हो सो संसारमें अनन्त जीवनितैं अनेक नाते भए एती माताका दुग्ध पिया है जाका एकएकबूंद एकट्ठी करिये तो अनन्तसमुद्र भरि जांय अर एते देह धारण करि छांडे हैं जो एकदेहका एकएक रोम इकट्ठे

करिये तो सुमेरुसमान अनन्तढेर हो जांय अर एते कुटुम्बके तोकूं रोये अर कुटुम्बीनिके अर्थि तू रोया जो अश्रुपात एकठा करिये तो अनंत समुद्र भरिजांय तातैं सत्यार्थ विचार करो कौन-कौन से इष्टके वियोग गिनोगे अनेक इष्ट ग्रहणकरि छांड़े हैं। बहुरि इष्ट विद्यमान हैं तिनकूं हू छांडनेका अवसर सन्मुख जरूर आया अवसरका ठिकाना नाहीं कौनप्रकार मृत्यु आवैगी मृत्यु तो प्राप्त हुआ विना किसीकूं नाहीं रहै समस्त इष्टसामग्री जो थानैं दीखै है अर जामें राग करो हो तिनतैं वियोग होनेका अवसर अचानक आया जानो जिनमें ममताधरि फसि रहे हो अर जिनके निमित्ति पांचप्रकारके पाप करो हो ते अवश्य विछुरैंगे अर समस्त सामग्री है सो कोऊ हू वियोगके दिन कुछ करनेकूं समर्थ नाहीं है तातैं तिर्यंचगतिका कारण इष्टवियोग में क्लेश मति करो। अर ऐसी भावना करो जो यो शरीर है सो जलमे बुदबुदावत् है क्षणमें विनष्ट होयगा अर या लक्ष्मी इंद्रजाल की रचनातुल्य है अर ये स्त्रीपुत्रकुटुम्बादिक हैं ते प्रचण्डपवनका घातकरि प्रेरित समुद्रकी कल्लोलवत् चलायमान हैं अर विषयनिका सुख संध्याकालका बादलांका रागवत् विनाशीक है तातैं इनका वियोगमे शोक करना वृथा है जो देह धारण है ताकै दुःख अर मरण तो अवश्य प्राप्त होयहीगा तातैं दुखका अर मरणका भय छांडिकरि ऐसा उपाय चिंतवन करो जो देहका धारणकरनेहीका अभाव होजाय। अर हे आत्मन् किसी देव दानव मंत्र तंत्र औषधादिकनिकरि नाहीं रुकै ऐसा कर्मका वश करिकैं जो अपने इष्टका मरणहोते जो शोककरि दुर्ध्यान करना है सो उन्मत्त वावलाको आचरण है जातैं शोक

किये रुदन विलाप किये कौन करुणाकरि जिवायदेगा, शोककरि-कुछभी सिद्ध नाहीं केवल धर्म अर्थ काम मोक्ष समस्त नष्ट होयगा जो कोऊ उपज्या है सो मरणके अर्थ ही उपज्या है ज्यों समय व्यतीत होय है त्यों मरण का दिन नजीक आवै है जैसैं वृक्षके पुष्प फल पत्र उदय भये हैं ते पतन ही करैं हैं तैसैं कुलरूप वृक्षमें माता पिता पुत्र पौत्र जे उपजैं हैं ते विनसैहींगे यामें शोक करना वृथा है या भवितव्यता है सो दुर्लभ्य है पूर्वं उपार्जनकियो कर्मके उदय आये पाछैं फल नाहीं रुकै है अब जो उदयके आधीन इष्ट वस्तुका नाश भया ताका विलापकरि शोक करै है सो अंधकार में नृत्यका आरम्भ करै है कौन देखैगा पूर्वं उपार्जन किया कर्मका उदयका अवसरमें जाका आयुका अंत आयगा तथा वियोगका अवसर आगया तिस कालमें ताकूं कौन रोकैगा तातैं दुःख-छांडि परमधर्ममे यत्न करो प्रथम तो जे धनका उपार्जनके अर्थ परिग्रह बधावनेके अर्थ बहुत जीवनेके अर्थ महा संक्लेश दुर्ध्यान करैं हैं ते महामूढ हैं वांछा किये क्लेशित भये पुण्यका उदय विना कैसे प्राप्त होयगा। अर जो आपका इष्ट मर गया ताकूं दग्धकरि दिया अर एक एक परमाणु धूम्रादिक भस्म होय उड गये ताके प्राप्तिके अर्थ जो शोककरै तिस समान मूर्ख और कौन देखिये इस जगतकूं इन्द्रजालसमान प्रत्यक्ष देखता हू शोक कैसे करे है जो मरणको वियोगको हानिको जो दिन आजाय ताकूं एक क्षण हू टालनेकूं कोऊ इन्द्र जिनेन्द्र समर्थ नाहीं हैं। ऐसैं जानता हू जो रुदनविलाप करै है सो निर्जनवनमें बहुत पुकार-करि रोवै है, कौन दया करैगा पूर्वोपार्जितकर्म अचेतन है वाकै

दया है नाहीं जो अपना इष्टवस्तु विनशिजाय ताका तो शोक करना उचित है जो शोककियेतैं वस्तुका लाभ होजाय तथा आपके सुख होय तथा जगत्‌में बड़ा यश कीर्तन होजाय तथा धर्मका उपार्जन होजाय तथा धनकी प्राप्ति होजाय तो इष्टके वियोगका शोक हू करना ठीक है अर जो कुछ भी लाभ नाहीं होय अर केवल शोकतैं धर्मका नाश होय बुद्धिका नाश होय शरीरका नाश होय इन्द्रियां नष्ट होंय नेत्रनिकी जोति नष्ट होय, प्रकट घोर दुःख होय परलोकमें दुर्गति होय, अन्य श्रवण करनेवालेनिके क्लेश होय आपके रोगकी उत्पत्ति होय, बलवीर्यका नाश होय, व्यवहार परमार्थ दोऊंका नाश होय, धीरता नष्ट होय, ज्ञान नष्ट होय इत्यादिक अनेक दुःखनिका कारण शोक है तातैं तिर्यंचगतिमें अनेक जन्म उपार्जन करनेवाला इष्टवियोगज नाम आर्तध्यान कदाचित मति करो।

बहुरि जो इष्टका वियोग है सो पापका फल है सो अब याका शोक कीये कहा होइगा, पापकर्मके नाश करनेमें यत्न करो जो फिर इष्टवियोगादिकके दुखका पात्र नाहीं होवोगे। जो इष्ट वियोगकरि दुखरूप क्लेशित होरहे हैं सो ऐसा असाताकर्मका बन्ध करै हैं जो आगानैं संख्यात असंख्यातभव पर्यंत दुःखकी परिपाटीतैं नाहीं छूटेगा। जो यो क्षणक्षणमें आयु नष्ट होय है सो कालमुखमें प्रवेश है कोऊ ऐसा अनन्तकालमें न हुआ न होसी जो देह धारणकरि मरणकूं नाहीं प्राप्त होय सूर्यचन्द्रमादिक देवता तथा पक्षी ये तो आकाश ही में विचरें हैं अर मनुष्यतिर्यंचादिक पृथ्वीमें ही विचरैं मच्छकच्छादिक जलहीमें विचरें अर यो काल स्वर्ग में नरकमें आकाशमें पातालमें जलमें थलमें सर्वत्र विचरै है

पातैं कौन उबारै है ? जो दिन निरन्तर व्यतीत होय है सो आयु-का बडाबडा खंड प्रत्यक्ष टूटता चल्या जाय है। सागरनिका जिनका आयु ऐसा अणिमादिकहजारां ऋद्धिके धारक जिनकी असंख्यातदेव सेवा करैं तिनका ही विनाश होय है तो कीट-समान मनुष्य कैसे स्थिर रहैगा जिस पवनतैं पहाड़ उडिगये तातैं तृणपुंज कैसैं ठहरैगा ऐसा चिंतवनकरि इष्टका वियोग होतैं आर्तध्यान कदाचित मति करो। ऐसे इष्टवियोग आर्तध्यानका अर याके जीतनेकी भावनाका वर्णन कीया।

अब रोगजनित आर्तध्यानका स्वरूप कहिये है—इस शरीरमें रोग आय उपजै है तहाँ जो रोगका नाश होनेके अर्थ बारंबार संक्लेशरूप परिणाम होय सो रोगजनितआर्तध्यान है जो कास स्वास ज्वर वात पित्त कफ उदरशूल मस्तकशूल नेत्रशूल कर्णशूल दन्तशूल जलोदर स्फोदर कोढ खाज दाद संग्रहणी कठोदर अती-सार इत्यादिक प्राणनिका नाशकरनेवाला घोरवेदना देनेवाले रोगनिका उदयकरि घोर दुःख उपजै है रोगनिकी पीडाकरि एक-स्वास भी लेणा महासंकटतैं होय है बैठ्या ऊंभा वा शयन करतां कहां हूँ परिणाममें थिरता नाहीं लेने दे है तिस अवसरमें परिणा-मनिमें बडादुःखकरि उपज्या पीडाचिंतवन् नाम आर्तध्यान होय है। या रोगजनितवेदना ऐसी है जो बड़ेबड़े कोटीभट महाशूरवीर अनेकशस्त्रनिके सन्मुख होय घातखानेवाले शूरवीरनिका हू धैर्य चलायमान होजाय है बड़ेबड़ेत्यागी तपस्वी परीषहनिके सहनेवाले-निका हू धैर्य चलायमान करदे है ऐसा रोगवेदनाजनित आर्तध्या-नके जीतनेका सामर्थ्य बड़ादुर्धर है, रोगजनितवेदनामें आर्तपरि-

णामका जीतना भगवान जिनेन्द्रका शरणतै जानो, मोटाशरण-विना ऐसी दुर्धरवेदनामें धैर्य नाहीं रहता है; तातैं ही ज्ञानी सर्वज्ञका शरणग्रहणकरि चिंतवन करै है जो हे आत्मन् यह भयानक घोर असाताकर्म उदय आया है अब जो यामें विलाप करोगे तो दुख कौन दूरि करैगा अर तडफडाहट करोगे तो ये वेदना छांडनेकी नाहीं धीर होय भोगोगे तो भोगोगे अर कायर होय भोगोगे तो भोगोगे रोग देहमें आया है सो देहकूं मारैगा तुम्हारा आत्माकूं नाहीं मारैगा तुम्हारा आत्मा तो ज्ञायकस्व-भाव अविनाशी है परन्तु इस देहके फदेमे आय फस्या सो अब धैर्यधारणकरि कायरता छांडो जो इस संसारमें कोटनि रोगका उदय तथा ताड़नमारणादि त्रास नरकमें भोगा अर तिर्यंचगतिमें प्रत्यक्षघोरदुख रोगनितैं उपज्या देखो हो औरसैं तो भाग भी जाय परन्तु कर्मसैं नाहीं भागसकोगे। यो कर्ममयशरीर तुम्हारा एकएक प्रदेशकूं अनन्तकर्मके परमाणुनिकरि बाँधि अपने आधीन करिराख्या है सो कैसैं भागने देगा अर जो कर्म है सो तो मरणकिये हू नाहीं छांडैगा देह छूटैगा कर्म तो अन्य देह धारोगे तहां हू लार ही रहैगा रोगमें जे धैर्य धारण करै हैं तिनके कर्मकी बड़ी निर्जरा होय है। बहुरि ऐसा हू विचार करो जो मुनीश्वर तो ग्रीष्ममें आतापकी वेदना अर शीतऋतुमें शीतवेदना कर्मनिके जीतने वास्ते बड़ा उत्साहधरि सहैं हैं तुम्हारे कर्म आप ही उदय-आया तो यामे शूरपणो अंगीकार करि कर्मकूं जीतो अर ऐसा हू देखो जो केतेक मनुष्य निर्धन हैं अर एकाकी हैं स्थान-रहित हैं खानपान मिलैं नाहीं है अर कोऊ पूछनेवाला नाहीं कोऊका सहाय नाहीं अर शरीरमें उपरोऊपरि रोगनिका क्लेश

आवै है कोऊ पाणी पावनेवाला हू नाहीं ताका विलाप कौन सुनै ? ऐसा दुखका धारक अज्ञानी हू आपकूं असहाय एकाकी निर्धन समझि आपकी आप भोगै है तुम्हारे तो शयन करनेकूं स्थान है, खावनेकूं भोजन है, रोगकी औषधि है, ताता ठंडा समस्त सामग्री है चाकरी करनेवाला सेवक है स्त्री है पुत्र है मित्र है, मलमूत्रादिक धोवनेवाला है, अब तोकूं समभावतैं वेदना सहना, कायरता छांडना, धैर्यधारि आर्त छाँडना ही योग्य है। धर्मधारणका ये ही फल है जिनके कोऊप्रकार सहाय नाहीं सो हू धैर्यधारण करैं हैं तो हे आत्मन् ये जिनधर्म धारण करकै हू अर कर्मके उदयकूं अरोक समझ करि कैसैं कायरता धारो हो अर बंदीगृहमें घोररोगवेदना भोगते केतेक मरैं हैं तथा तिर्यंचमें घोररोगकी वेदना अर रोगी हुवा निर्जनवनमें पडना कर्दममें फंसना तावडामें शीतमें पड्या रहना, पड्याकूं अनेक जीव काटि काटि खावना इत्यादिक घोरवेदना संसारमें भोगिये है। संसार तो दुखहीका भर्या है ऐसा कौन रोग है जो संसारमें अनेकवार नाहीं भोग्या तातैं रोगमें जिनधर्म ही शरण है जिनेन्द्रका वचन-हीकूं जन्ममरण जरारोगके नाश करनेवाला जानहु। अन्य औषधि इलाज साताकर्मके सहायतैं असाताकूं मंद होते उपकार करैं है असाताका प्रबलउदयमें समस्त उपायनिकूं निष्फल जानि अशुभ कर्मके नाशका कारण परमसमताभाव ही धारण करना श्रेष्ठ है ऐसैं रोगजनित आर्तध्यानके जीतनेकी भावना कही।

अब निदान नामक चतुर्थ आर्तध्यानका स्वरूप वर्णन करैं हैं—जो देवनिके भोगनिकी बांछा करना तथा अपछरानिका

नृत्यादिक देखनेकी वांछा करना अपना सौभाग्य चाहना अद्भुत-रूप चाहना अखंड ऐश्वर्यसंयुक्त राज्य विभूतिकी वांछा करना सुन्दर महल मकान रमनेकूं चाहना. रूपवती स्त्रीका कोमल सुकुमार अंगोंको स्पर्श चाहना, शय्या आसन आभरण वस्त्र सुगन्ध मिष्टवांछित भोजन चाहना, नानारस सहित क्रीडाविहार चाहना, वैरीनिका तिरस्कार, वैरीनिका मरण चाहना, अपने वांछित विभूति चाहना, समस्त जगतके मध्य अपनी उच्चता चाहना, अपनी आज्ञाबारैं तिनका विजय चाहना, तिरस्कार चाहना सदकी पुष्टकरनेवाली समस्त पंडितनिकूं तिरस्कार करने-वाली विद्या चाहना, राजनीतिकूं अपने आधीन चाहना, आजी-विकाकी वृद्धि चाहना, परके कुटुम्बका संपदाका नाश चाहना, अपने कुटुम्बकी वृद्धि, धनका लाभ चाहना, अपना दीर्घकाल जीवित चाहना, अपना वचनकी सिद्धिका चाहना, अपना कपट-झूठमें गोप्यता चाहना, अन्य जीवनिका आपतैं न्यूनता चाहना, आपकी समस्तके मध्य उच्चता चाहना, समस्त भोगनिकी वांछा अपना निरोगपना, अपने अद्भुतरूप संपदा आज्ञाकारी पुत्र चतुर सेवक इत्यादिकी जो आगामी वांछा करना सो निदान आर्तध्यान है। संसार परिभ्रमणका कारण पुण्यका नाश करने-वाला जानि कदाचित् निदान मति करो जातैं वांछा तो पापका बन्ध है। भोगनिकी अभिलाषा अर अपना अभिमानकी पुष्टता चाहना है सो अपना संचयकिया पुण्यका नाश करै है जातैं निर्वांछक परिणाम हीतैं पुण्यबंध होय है। जातैं अपनी उच्चता की वांछा अर विषयनिका लोभ तीव्रकषायी पर्यायबुद्धि विना कोन करै अर ये विषय हैं अर ये अभिमान हैं ते केते दिन रहैगा

अनंतानन्त पुरुष पृथ्वीमें संपदावान, बलवान, रूपवान विद्यावान प्रलयकूं प्राप्त होगये यह काल अचानक ग्रसैगा एतेकाल भोग कहा कीया ? ये भोग अतृप्तिताके करने वाले हैं दुर्गति लेजानेवाले हैं, चाह कोये कदाचित प्राप्त हू नाहीं होय हैं असंख्यात जीव चाहकी दाहके मारे बलैं हैं मरण निकट आजाय तहांहू चाह ही है उपजै चाहकरि जगत बलै है जगतजीवनिकैं ऐसी तृष्णा है जो त्रैलोक्यका राज्यसे भी तृप्तिता नाहीं आवै तो देखो कौनकौनके समस्तलोकका राज्य आवैगा ? या खाकसमान अचेतन धनसंपदा है या करि आत्माकै कहा साध्य है लोकमें संपदा परिग्रह-अभिमान महादुःखदायी है अपनी अविनाशिक ज्ञानकी संपदा सुखसंपदा स्वाधीनताकूं प्राप्त होनेका यत्न करो। संतोषसमान सुख नाहीं संतोषसमान तप नाहीं मिलै विषयनिमें संतोषधारिकरि वांछारहित तिष्ठै हैं तिनकैबड़ा तप है, कर्मकी निर्जरा करै हैं। अर वांछाकरै हैं तिनकूं कहा मिलै है अनंतानंतजीव विषयकषायनिकी प्राप्तिकूं तरसते तरसते मरि दुर्गति चले जाय हैं तातै जो जिनेंद्रधर्म तुम्हारे हृदयमें सत्यार्थ रच्या है तो गईवस्तुत कूं चिंतवन मति करो अर आगामीकी वांछा मति करो अर वर्तमान कालमें जो कर्मका शुभअशुभ रस उदय आया ताकूं रागद्वेषरहित हुआ भोगो जो यह शुभअशुभका संयोग है सो हमारा स्वभाव नाहीं, कर्मका उदय है ऐसा निश्चयकरि आगामी वांछाका अभाव करि निदाननाम आर्त्तध्यानकूं जीतो। ऐसैं च्यारप्रकार आर्तध्यानका स्वरूप कह्या याका उपजना छट्ठे गुणस्थानपर्यंत है। निदान नाम आर्तध्यान पंचगुणस्थानपर्यंत ही होय है, निदान छट्टा गुण-

स्थानमें नाहीं होय है यो आर्तध्यान कृष्ण नील कापोत तीन जो अशुभलेश्या तिनके बलकरि उपजै है पापरूप अग्निके बधावने कूं ईंधनसमान है यो आर्तध्यान अनादिकाल का अशुभसंस्कार तै विनायत्न ही उपजै है याका फल अनंतदुःखनिकर व्याप्त तिर्यंचगतिमें परिभ्रमण है। क्षायोपशमिकभाव है, याका अंतमुहूर्तकाल है, जाका हृदयमें आर्तध्यान होय है ताका बाह्यशरीर ऊपरि ऐसे चिह्न होय हैं—शोक शंका भय प्रमाद कलह चिंता भ्रम भ्रांति उन्माद बारम्बार निद्रा, अंगमें जडता श्रम मूर्छा इत्यादि चिह्न प्रकटैं हैं ऐसैं आर्त्तध्यानका स्वरूप कह्या।

अब आगे च्यार प्रकारका रौद्रध्यान त्यागनेयोग्य है तिनका स्वरूप दिखावैं हैं—हिंसानंद, मृषानंद, स्तेयानंद, परिग्रहानंद ये च्यारप्रकारके रौद्रध्यान हैं तिनमें प्रथम हिंसानंदका ऐसा स्वरूप जानना जो प्राणीनिका समूहका आपकरि वा अन्यकरि घात होते जो हर्षका उपजना सो हिंसानंद रौद्रध्यान है जाकें हिंसाके कारण विषयनिमें अनुराग होय जलयंत्र बन्धावनेमें तलावबावड़ी कूवा नहरि नंदी नाले खुदावनेमें अनुराग होय तथा वन कटनेमें बागबगीचा लगनेमें सड़क खुदनेमें बांधबंधनेमें अनुराग होय तथा ग्राम दग्ध करनेमें गृहदग्ध होनेमें पर्वत कटनेमें अनुराग तथा युद्ध होनेमें परधनके विध्वंस होनेमें दारूके ख्याल छूटनेमें धाडामें लूटिमें अनुराग तथा जलचर स्थलचर नभचरनिकी शिकार करनेमें जीवनिके मारनेमें जीवनिके पकड़नेमें बंदीगृह देनेमें अनुराग सो समस्त हिंसानंद रौद्रध्यान है रौद्रध्यानीका निरन्तर निर्दयस्वभाव होय है अर क्रोधस्वभावकरि प्रज्वलित रहै है। मदकरि उद्धत पाप-

बुद्धि पापमें प्रवीणतायुक्त है, परलोककी नास्ति, धर्मअधर्मकी नास्ति माननेवाला है, रौद्रध्यानीके पापकर्ममे महानिपुणताकरि अनेकबुद्धि अगाऊ खडी हाजरी दे है अर पापके उपदेशमें बडी निपुणता है, अर नास्तिकमतके स्थापनमें बडी निपुणता अर हिंसाके कार्यमें रागकी अधिकता, निर्दयिनिकी संगतिमें निरन्तर बसना सो समस्त हिंसानंद है। बहुरि जिनतैं अपना विषयकषाय पुष्ट नाहीं होय तिनमें ऐसा चिंतवन करै—इनका घात कौन उपाय करि होय इनके मारनेमें कौनकै अनुराग है, इनकूं मूलतैं विध्वंस करनेमें कौनके निपुणता है वा ये केतेकदिननिमें कैसैं मारे जांयगे ये मारे जांयगे तदि ब्राह्मणनिकूं मनोवांछित भोजन कराऊंगा तथा देवतानिका पूजन आराधना करूंगा तथा वैरीनिका नाशके अर्थि धनदेय जाप करावना दुर्गापाठ करावना तथा अपने मस्तकडाढीका क्षौर नाहीं करावना केशबधावना इत्यादिक परिणामनिमें संक्लेश धारना सो समस्त हिंसानंद है। तथा जलके स्थलके विकलत्रय आकाशचारी जीवनिके मारनेमें बाल देवनेमें बांधनेमें छेदनेमें जाकै बडा यत्न तथा जीवनिके नख नेत्र चाम उपाडनेमें जीवनिके लडा-वनेमें बडा अनुराग जाकै होय ताकै हिंसानंद है याकी जीत याकी हार याका तिरस्कार याका मरण याकै धनका नाश याकै स्त्रीपुत्रका मरण वियोग होहू ऐसा चिंतवन तथा इनके श्रवणकरनेमें देखनेमें स्मरणमें अनुराग सो हिंसानंद है। बहुरि ऐसा विकल्प करै है जो कहा करूं मेरी शक्ति नाहीं कोऊ जबर मेरा सहाई नाहीं वो कौनसा दिन उदयकारी आवै जो नाना त्रास देय मेरा पूर्वला

शत्रुनिकूं मारूं वा जो मेरा सामर्थ्य इहां नाहीं होसी तो परलोक तांईं मारस्यूं तथा परका निरन्तर अपकार चाहै अर परके विघ्न आजाय, हानि वियोग अपमान होजाय तदि बड़ाहर्ष मानना सो समस्त हिंसानन्द नाम रौद्रध्यान है। ऐसैं अनेक प्रकारके हिंसाके विकल्प करना सो हिंसानन्द है। बहुरि हिंसानन्दके बाह्य चिन्ह हैं जो हिंसाके उपकरण, खड्ग छुरी कटारी इत्यादिक शस्त्रग्रहण करना, शस्त्रनितै मारने विदारनेके दावघात चिंतवन करना, मारनेकी कलामें निपुणता रखना, हिंसकजीवनिका पालना, हिंसक चीता कूकरा शिकरा(बाज)इत्यादिक जीवनिकूं निकट राखना सो सब हिंसानन्दके बाह्यचिन्ह हैं।

अब मृषानन्द नाम रौद्रध्यानका दूसरा भेद ऐसा जानना जिनका मन असत्यकी कल्पना करने में निपुण होय अर ऐसा चिंतवन करै तथा ऐसा कोऊ जाल खड़ा करै जो लोकनिको बस करि धनग्रहण करै वा ऐसा विद्याका लाभ दिखावै वा, रसायणका लाभ दिखावै वा मन्त्रका व्यंतरनिका तथा इंद्रजालकी विद्याका ऐसा चमत्कार दिखावै जो ये लोक अपने आधीन होजांय आपाभूलि हमारै आधीन होजांय तदि मेरी वचनकला सफल है तथा पापी परलोकका भयरहित होय अपना पण्डितपणके बलतैं कल्पितशास्त्र बणाय जगतूं विपरीतधर्म दिखावना हिंसादिक आरम्भमे यज्ञादिकमें धर्म बतावना रागी द्वेषी देवतानितैं वांछितकार्यकी सिद्धि बतावना देवतानिकूं मांसभक्षी मद्यपायी बतावना, देवतानिके बकराभैंसा इत्यादिक जीव मारि चढ़ावनेकरि वांछितकार्यसिद्ध होय वैरीनिका विध्वंस होय

राज्यादिकनिकी लक्ष्मी दृढ होय इत्यादिक खोटे शास्त्र रचना परिग्रही आरम्भीनिकूं पापमें प्रवर्तन करावना अर देवतानिके प्रसन्नकरनेवालेनिकूं मोक्षमार्गी बतावना इत्यादिक बहुत खोटे धर्मशास्त्र रचना तथा रागबधानेवाली कामके पुष्ट करनेवाली तथा राजकथा भोजनकथा स्त्रीकथा देशकथा करनेमें श्रवणमें आनन्द-मानना; परके झूंठे सांचे दोष कहनेमें अपनी बड़ाई करनेमें आनन्द मानना सो मृषानन्द है तथा असत्यका सामर्थ्यतैं झूठेनिकूं सांचे दिखाना सांचेनिकूं झूठे दिखाना, सदोषतिकूं निर्दोष कहना, निर्दोषनिकूं दोषसहित कहना तथा ऐसा विचार जो ये लोक मूर्ख हैं ज्ञानविचाररहित हैं इनकूं वचनकी प्रवीणतातैं अनर्थकार्यनिमें प्रवर्तन कराय भ्रष्ट करदेस्यूं धनसंपदा राखि लेस्यूं यामें संशय नाहीं इत्यायिक अनेक असत्यका संकल्प करना सो नरकगति-का कारण मृषानन्द नामा दूजा रौद्रध्यान जानना।

अब तीजा चौर्यानन्द नाम रौद्रध्यानका ऐसा स्वरूप जानना जो चोरीका उपदेशमें तत्परपणा तथा चोरीकरनेकी कलामें निपुणपणा सो चौर्यानन्द है तथा जो परधन हरनेकेअर्थि रात्रि-दिन चिंतवन करना अर चोरीकरि धन ल्याय बड़ा हर्ष मानना तथा अन्य कोऊ चोरीकरि धन उपार्जन किया होय ताकूं देखि विचारै जो देखो याकै एता धन हाथ लगिगया मेरे परका धन कैसे हाथ आवै कौन उपाय करैं, कौनका सहाय लेवैं कैसे धिजावै कोऊ ऐसा पुण्य कब उदय आवै जो कोऊ गिरया पड्या भूल्या धन हमारै हाथ लगिजाय अन्य कोऊ चोरीकरि मोकूं सौंपिजाय वा चोरका माल हमारे अल्पमोलमें आ जाय तथा बहुतमोलके

रत्न सुवर्णादिक मोकूं भूलिचकि बेचि जाय सो बडालाभ है। अथवा कोई अज्ञान तथा बालक मोकूं बहुतमोलकी वस्तु दे जाय ऐसा चिंतवन करना सो चौर्यानन्द है वा ये रक्षक मरजांय वा धनका धनी मरजाय तो धन हमारे रहिजाय ऐसा चिंतवन स्तेयानन्द है। अथवा कोऊ बलवानका सैन्याका सहाय लेयकैं वा बहुतप्रकार उपायकरकैं इहां बहुतकालका संचय किया धन ग्रहण करूं वा कोई मायाचारकरि वचनकलाकरि पुरुषार्थकरि प्राणनिका संकल्पकरि तथा इनकूं मारकरि याका धन ग्रहणकरूं यदि मेरा पुरुषार्थ सफल है। इत्यादिक चौर्यानन्द रौद्रध्यान है सो नरकगतिका कारण है।

अब परिग्रहानन्द रौद्रध्यानका स्वरूप कहै हैं—जो बहुत परिग्रहका बधावनेके अर्थि अर बहुत आरम्भके अर्थि जो चिंतवन करिये सो परिग्रहानन्द रौद्रध्यान है। जो विषयनिमें राग तथा अभिमानके वशि हुवा विचार करै जो ऐसा महल मकान रहनेकूं हमारै बनिजाय वा कोऊ हमारा भाग्य फलजाय तो नाना चित्रशाला सुवर्णके स्तंभ सांकलमें झूलनेके हिंडोले वा नाना ऋतुके केई महल वा कोट कांगुरे गढ तोप बडे दरवाजे ऐसे सुन्दर बणाऊं जो मेरे आंगणाकी विभूति देखि लोकनिके आश्चर्य उपजै तथा अनेक बाग लगाऊं बागनिमें अनेकमहल तथा जलके जंत्र फंवारे चादरि नदीनिका घोरा कुण्ड बावडी कूप द्रह नाना जलक्रीडाके स्थान कामक्रीडाके भोजनकरनेके नाट्यगृहनिके स्थान बणें तदि मेरे मनोवांछित सफल है नानाऋतुके फल फूल हमारे आगैं नजर करैं तथा मेरे महलमकानमें सुवर्णमय रूपामय वस्त्र-

मय ऐसी सामग्री अन्य मनुष्यनिके नाहीं देखिये ऐसी प्राप्ति होय तदि मैं धन्य हूं अथवा मेरे शरीरका अद्भुतरूप देखनेकूं हजारां स्त्रियां पुरुष अति अभिलाषा करैं तथा अपने नखस्यूं लेय शिख पर्यंत हीरानिके आभरनिकां जोड पन्नाके माणिक्यके इंद्रनीलमणिके मोतीनिके बहुमूल्य आभरणनिका चाहना अर इस संपदानै भूषित करनेवाले महान कोमल बहुमूल्य वस्त्रनिका चाहना नानाप्रकारके सुवर्णमय रत्नमय रूपामय उपकरण नानाप्रकारकी वांछा करना तथा कोमल सुकुमारांगी रूपलावण्य करि देवांगनानिकूं जीतनेवाली शीलवती प्रियहितवचन सहित प्रेमकी भरी स्त्रीनिका संगमचाहना, आज्ञाकारी शूरवीर धनवान विद्यावान विनयवान यशस्वी ऐसे पुत्रका चाहना, अपने मन समान वांछित कार्यके साधनेवाले महाचतुरतायुक्त प्रवीण स्वामिभक्त ऐसे सेवकनिका, समस्तलोकनितैं अधिक ऐश्वर्य परिवार विभूति होनेका चिंतवन करि आनन्दमानना तथा आपके जैसे जैसैं धन संपदा वधै ताका आनन्द मानना सो परिग्रहानन्द है। अथवा अपने गृहमें सुवर्णका कांशा पीतल लोहका तामाका पाषाणका काष्ठका चीनीका काचका माटीका कागदका वस्त्रका जो २ कोऊ परिग्रह वधै कोऊ दे जाय वा किसीका रहिजाय वा धनकरि खरीदाहोय आ जाय तिस परिग्रहकूं देख वा चिंतवनकरि हर्षका बधावना आनन्दमानना परिग्रह बधनेतैं आपकूं ऊंचा मानना सो समस्त परिग्रहानन्द रौद्रध्यान है। तथा ऐसा चिंतवन करै जो कोऊका जमीन जायगां मेरे आ जाय वा इसकी जीविका मेरे आजाय तथा याके आगैं कोऊ कार्यकरनेलायक

नाहीं है जो यो मरणकरिजाय तो मेरा ही याकी जीविकामें वा संपदामें अधिकार हो जाय, याके बालक पुत्र असमर्थ स्त्रीनिकां तिरस्कारकरि मैं एकाकी निष्कण्टक संपदा भोगूं ऐसी अभिलाषा करना परिग्रहानन्द है। तथा परके राज्यसंपदा धन जमीन जायगा तथा आजीविका तथा सुन्दरपरिग्रह सुन्दरस्त्री आभरण हस्ती घोटकादिक जबरीतैं खोस लेनेकी बुद्धिका शरीरका तथा सहाईनिका तथा कपटझूंठउपाय पुरुषार्थ इत्यादिक बल पावनेका अपने बड़ा आनन्द मानना सो समस्त परिग्रहानन्द रौद्रध्यान है या रौद्रध्यान अनेक बार नरकमें प्राप्त करनेवाला तथा अनंतवार तिर्यंचनिके घोर दुःखनिका तथा अनेक कुमानुषनिके भवनिमें घोरदारिद्र घोर रोगका उपजावनेवाला जानि याका दूरहीतैं त्याग करो। यो रौद्रध्यान कृष्णलेश्याका बलसहित है पञ्चमगुणस्थानपर्यंत होय है परन्तु सम्यग्दृष्टी अव्रतीके तथा श्रावकव्रतके धारक गृहस्थनिके नरकादिकका कारण रौद्र नाहीं होय है। कोऊ कालमें ऐसा होय है जो अपना पुत्रपुत्रीका विवाह करनेका तथा अपना मकान रहनेका बनवावना तथा न्यायमार्गतैं जीविकामें लाभ होनेका कार्यनिका चिंतवनमें हू हिंसा होय है इनकूं पापका कारण खोटा जानि आत्मनिंदा करै है तो हू अपना आरम्भाकार्यमे कदाचित् किंचित् हर्ष होय ही है अपने न्यायमार्गका प्रमाणीकपरिग्रह प्राप्त भये हर्ष होय ही है तथा अपना धनकूं चोरादिक नाही हरण करि सकै तातैं अपनी रक्षा वास्ते झूठ कपट करतो हू अन्य जीवनिका प्राण धनादिक हरनेमें प्रवृत्ति नाहीं करै है अपनी रक्षाके अर्थ कपटकी आडी ढाल करै

है अन्यका घातके अर्थि कपट झूठकी वरवार नाहीं करै है। तातैं श्रावकके नरकादिक कुगतिका कारण ऐसा रौद्रध्यानका भाव नाहीं होय है। रौद्रध्यानीके ये बाह्यलक्षण हैं स्वभावहीतैं क्रूरता, परकूं कठोर दण्ड देना, निर्दयीपना, अति कपटीपना, समस्तके दोष ग्रहण करना इत्यादिक भाव होय हैं अर बाह्य रक्तनेत्र करना भृकुटी चढ़ावना भयानक आकृति, वचनमें दुष्टता इत्यादिक बाह्य चिन्ह हैं क्षयोपशमभाव है, अंतरमुहूर्त काल है पाछैं अन्य अन्य हो जाय हैं। ऐसैं चारप्रकार आर्तध्यान च्यारप्रकार रौद्र-ध्यानकूं त्यागै तदि धर्मध्यान होय। इनकूं त्यागे विना धर्म-ध्यानकी वासना अनादितैं भई नाहीं तातैं धर्मका अर्थीनिकूं दोऊ दुर्ध्यानका स्वरूप समझि अपने आत्मामें ऐसे आर्तरौद्र-ध्यानके ऐसे भाव कदाचित मत होने दो।

अब धर्मध्यानका स्वरूप वर्णन करिये है—इहां यो धर्मध्यान है सो कोऊ सम्यग्दृष्टीके होय है, कोऊ विरला महान् पुरुष राग-द्वेषमोहरूप पाशीकूं छेदि परमउद्यमी हुआ बड़ा यत्नतैं धर्म-ध्यानकूं कदाचित प्राप्त होय है जैसैं सूता बैठा चालता खानपान करता विषयनिकूं भोगता कषायनिमें प्रवर्तते हू विना यत्न ही आर्तरौद्रध्यान होय हैं तैसैं धर्मध्यान नाहीं होय है धर्मध्यानका अर्थी केतेक स्थान परिणामकूं विगाड़नेवाले हैं तिनका परिहार करै है जातै स्थानके निमित्ततैं परिणाम शुभ अशुभ होय हैं तातैं परिणामकूं विगाड़नेवाले स्थानका दूरहीतैं परिहार करो। खोटे स्थान में परिणाम खोटे हो जांय हैं जो दुष्ट हिंसक पापकर्म करने वाले पापकर्मतैंजीविका करनेवाले तीव्रकषायी नास्तिकमती धर्म

के द्रोही जहां तिष्ठते होंय तहां परिणाम क्लेशित हो जांय तथा जहां दुष्ट राजा होय राजाके दुष्ट मन्त्री होय पाखण्डी मिथ्यादृष्टी भेषधारीनिका अधिकार होय तहां धर्मध्यानमें परिणाम नाहीं लगैं हैं। बहुरि जहां प्रजा ऊपरि परचक्रादिकका उपद्रव होय दुर्भिक्ष मारी इत्यादिकरि प्रजा उपद्रवसहित होय, बहुरि जहां वेश्यानिका संचार होय, व्यभिचारिणीनिका संकेत-स्थान होय आचरणभ्रष्ट भेषधारीनिका स्थान होय, जहां रसकर्म रसायणके कर्म प्रवर्तते होंय, मारण उच्चाटन विद्याके साधक होंय, जहां हिंसादिक पापकर्मके उपदेशक कामशास्त्र तथा युद्धशास्त्र कपटीधूर्तन की प्ररूपी खोटीकथाके शास्त्रके प्ररूपणा करते होंय तथा जहां द्यूतक्रीड़ा करनेवाले मद्यपान करनेवाले व्यभिचारी भांड डूंम चारण भाटनिकरि युक्त होंय, जहां चांडाल धीवर शिकारी वा कसायी इत्यादिक दुष्टनिका संचार होय तथा दुष्ट तपस्विनी तथा स्त्रीनिका परिचार होय नपुंसकनिका समागम होय, दीन याचक रोगी विकल अंगके धारक आंधे लूले बधिर पीडाके शब्द करने वाले होंय, जहां शिकारकरनेवाले हिंसकजीव कलह कामके धारक पशुमनुष्यादिक तिष्ठते होंय जहां जीवनिनै बिल बांवी कण्टक तृण विषम पाषाण टोकरे हाड मांस रुधिर मल मूत्र पञ्चेन्द्रिय-जीवनिके कलेवर कर्दमादिकरि दूषित स्थान होंय; जहां दुर्गंध आवता होय कूकरा बिलाव श्याल कागला घूघू इत्यादिक दुष्टजीव होंय और हू शुभपरिणामके बिगाड़नेवाले ध्यानकूं नष्ट करनेवाले स्थान दूरहीतैं त्यागने योग्य हैं। जातैं खोटेस्थानके योगतैं अवश्य परिणाम बिगड़ैं हैं तातैं जो शुभध्यानके इच्छुक होंय ते खोटे

स्थाननिमें स्वप्नविषै हू वास मति करो याहीतैं धर्मध्यानके अर्थ सुन्दर मनकूं प्यारा शीतउष्ण आताप वर्षा अतिपवनका बाधा-रहित डांस मांछर अन्य विकलत्रयादिकनिकी बाधा रहित शुद्ध भूमि तथा शिलातल तथा काष्ठका फलक होय तिनऊपरि तिष्ठकरि शून्यगृह पुरातनबाग वनके जिनमन्दिर वा अपनेगृहमें निराकुल एकांतस्थान बाधारहित होय, रागद्वेषादिके उपजावनेकरि रहित, कोलाहल शब्दरहित, नृत्यगीतवादित्रादिरहित होय, कलह विसम्वादादि रहित, हिंसारहित स्थानमे धर्मध्यानके इच्छुक होय निश्चल तिष्ठो। जातैं धर्मध्यानमें स्थानकी शुद्धता आसनकी दृढता प्रधानकारण है जाका आसन दोयप्रकार हू दृढ नाहीं होय ताकै सेवा कृषि वाणिज्यादिक ही बिगडिजाय तो धर्मध्यान आसनकी दृढताविना कैसैं बनै। बहुरि तीन जे उत्त-मसंहनन तिनके धारकनिकै ही ध्यानमें दृढता होय है जिनका वज्रमयसंहनन है अर महाबल पराक्रमके धारक हैं अर जे देवम-नुष्यनिकै घोरउपद्रव उपसर्गतैं चलायमान नाहीं होय जाका आसन मन दृढ होय सो तो जैसा स्थान वा आसन होय तिस-हीतैं ध्यान करिसकै है अर जे हीनसंहननके धारक हैं तिनकूं तो स्थानकी शुद्धता अर आसनकी शुद्धता अवश्य देखि धर्मध्यानमें प्रवर्तन करना श्रेष्ठ है। जिनका चित्त संसारदेहभोगनितैं विरक्त होय चित्तमें विक्षिप्तता नाहीं होय संशयरहित आत्मज्ञानी अध्या-त्मरसमें भीजि निश्चल होय ताकै स्थानका हू नियम नाहीं है। जे चारित्रज्ञान-संयुक्त हैं अर जितेन्द्रिय हैं ते अनेक अवस्थातैं ध्यानकी सिद्धिकूं प्राप्त भये हैं धर्मध्यानीके ऐसा चिंतवन

होय है अहो बडा अनर्थ है जो मैं अनंतगुणनिका धारक हूँ संसा-रूप वनमें अनादिकालका कर्मरूपी वैरीनिकरि समस्तपनातैं ठिग्या गया हूँ अहो मैं अज्ञानभावतै कर्मके उदयतैं भये रागद्वेष-मोह तिनकूं अपना स्वरूप जानि घोरदुःखरूपसंसारमें परि-भ्रमण कीया अब मेरे कोऊ कर्मके उपशमतैं परम उपकारक जिनेन्द्रका परमागमके उपदेशके लाभतैं रागरूप ज्वर नष्ट भया अर मोहनिद्राके दूर होनेतै स्वभावका अर परभावका जाणपणा-का लाभ भया है अब इस अवसरमें शुद्धध्यानरूप खड्गकरि जो कर्म नाश करल्यूं तो स्वाधीनताकूं पाय दुःखनिका पात्र नाहीं होऊं। जो अज्ञानरूप अन्धकारकूं आत्मज्ञानरूप सूर्यके उद्योतकरि अब हू दूर नाहीं करूं तो अन्य कौनपर्यायमें दूर करूंगा। समस्तजगतके देखनेका एक अद्वितीयनेत्र मेरा आत्मा है ताकूं हू अब अविद्यारूप पिशाचके प्रेरे विषयकषाय मुदित करैं हैं ये इन्द्रियविषय अर कषाय मोकूं हितअहितके अवलो-कनरहित करनेवाले हैं मैं इन ठगनिके वशीभूतहुवा भूलिगया हूँ अहो ये प्राप्त होते रमणीक अर अन्तमें अति नीरस ऐसे पंचेन्द्रि-यनिके विषयनितैं परम ज्योतिस्वरूप जगतमें महान् परमात्म-स्वरूप आत्मा हू ठिग्यो गयो है। मैं अर परमात्मा दोऊं ज्ञान-लोचन हैं अर परमात्मस्वरूपकी प्राप्तिके अर्थि मेरे स्वरूपके जाननेकी इच्छा करूं, परमात्माकै तो आत्मगुण प्रकट है अर मेरे कर्मनिकरि दबि रहे हैं हमारे अर परमात्माके गुणनिकरि भेद नाहीं है, शक्ति व्यक्तिकृत भेद है अर ये कर्मजनित दाह हैं ते जेतेक मैं ज्ञानसमुद्रमें गरक नाहीं होहूँ तितने मेरे संताप दुःख करैं हैं। बहुरि नारक तिर्यंच मनुष्य देव ये कर्मके

उदयजनितपर्याय मेरा स्वरूप नाहीं है मैं सिद्धस्वरूप निर्विकार स्वाधीनसुखरूप हूं मैं अनंतज्ञान अनन्तदर्शन अनंतवीर्य अनंत-सुखरूप हूं सो अब मोहरूप विषके वृक्षकूं नाहीं उपाडूं कहा ? अब मैं मेरा सामर्थ्यकूं ग्रहणकरि अपना स्वरूपमें अचल होय सकल वांछारहित हुवो मोहरूप विषवृक्षकूं उपाडस्यूं अब मोकूं मेरास्वरूप ही निश्चयकरना जातैं मेरेमांहि फँसीहुई अनादिकी मोहरूप पासी है ताके छेदनेका उपाय करूं जो अपना स्वरूपकूं ही नाहीं जानै सो परमात्माकूं कैसैं जानै तातैं ज्ञानीनिकूं प्रथम अपना स्वरूपहीका निश्चय करना योग्य है जो अपना स्वरूपकूं ही नाहीं जानैगा ताकी अपने स्वरूपमें स्थिति कैसै होयगी अर अनादिका पुद्गलमें एक होय रह्या है ऐसा आत्माकूं भिन्न कैसैं करूंगा अर देहतैं आत्माका भेदविज्ञान हुवाविना आत्माका लाभ कैसैं होयगा आत्माका लाभविना अनंतज्ञानादिक आत्मगुणनिका जानना हू नाहीं होय तदि आत्मलाभकी कहा कथा ? तातैं मोक्षा-भिलाषीनिकूं समस्तपुद्गलकी पर्यायनिकरि भिन्न एक आत्मस्व-रूपका ही निश्चय करना श्रेष्ठ है।

इहां आत्मा तीनप्रकारकरि तिष्ठै है बहिरात्मा, अन्तरात्मा परमात्मा। तिनमें जाके बाह्य शरीरादिक पुद्गलकी पर्यायनिमें आत्मबुद्धि है सो बहिरात्मा है जाकी चेतना मोहनिद्राकरि अस्त हो गई, पर्यायहीकूं अपना स्वरूप जानै है, इन्द्रियद्वारनिकरि निरन्तर प्रवर्तन करै है, अपना स्वरूपकी सत्यार्थपहिचान जाकै नाहीं है देहहीकूं आत्मा मानै है, देवपर्यायमें आपकूं देव, नरकपर्यायमें आपकूं नारकी, तिर्यंचपर्यायमें आपकूं तिर्यंच, मनुष्यपर्यायमें आपकूं मनुष्य जाणि पर्यायके व्यवहारमें

तन्मय होय रह्या है पर्याय तो कर्मकृत पुद्गलमय प्रत्यक्ष ज्ञानरूप-आत्मातैं भिन्न दीखै है तो हू कर्मजनित उदयमें आपाधारि पर्यायमें तन्मय हो रह्या है मैं गोरा हूं, मैं सांवला हूँ, मै अन्यवर्ण हूँ, मैं राजा हू, मैं सेवक हूं, मैं बलवान हूँ, मैं निर्बल हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्री हूँ, मैं वैश्य हूं, मैं शूद्र हूँ, मैं मारनेवाला हूँ, जिवावनेवाला हूँ, धनाढ्य हूँ, दातार हूँ, त्यागी हूं, गृहस्थी हूं, मुनि हूँ, तपस्वी हूँ, दीन हूँ, अनाथ हूँ, समर्थ हूँ, असमर्थ हूँ, कर्ता हूँ, अकर्ता हूँ, बल-वान हूँ, कुरूप हूँ, स्त्री हूँ, पुरुष हूँ, नपुंसक हूँ, पण्डित हूँ, मूर्ख हूँ, इत्यादिक कर्मके उदयजनित परपुद्गलनिकी विनाशीकपर्याय-निमें आत्मबुद्धि जाकै होय सो बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। जो शरीरमें आत्मबुद्धि है सो इहां हू शरीरका सम्बन्धी जो स्त्री पुत्र मित्र शत्रु इत्यादिक तिनमें रागद्वेषमोहक्लेशादि उपजाय आर्तरौद्रपरिणामतैं मरण कराय संसारमे अनंतकाल जन्ममरण करावै है तथा पुद्गलकी पर्यायमें आत्मबुद्धि है सो पुद्गलमें जडरूप एकेन्द्रियनिमें अनन्तकाल भ्रमण करावै है तातैं अब बहिरात्म-बुद्धिकूं छांडि अंतरात्मपना अवलंबनकरि परमात्मपना पावनेमें यत्न करो। जे जे या जगतमें रूप देखनेमें आवैं हैं ते ते समस्त अपने आत्माके स्वभावतैं भिन्न हैं, परद्रव्य हैं, जड हैं, अचेतन हैं मैं ज्ञानस्वरूप हूँ इन्द्रियनिके ग्रहणमें नाहीं आऊं अपना अनुभव करि साक्षात् प्रत्यक्ष हूँ अब कौनसूं वचनालाप करूं अर अन्यज-ननिकरि मैं समझावनेयोग्य हूँ तथा अन्यजननिकूं मैं सम्बोधन करूं ऐसा विकल्प हू भ्रम है जातैं अपने घर परके आत्माकूं जानेबिना कौनकूं समझावै अर कौन समझै जातैं मैं तो समस्त

विकल्परहित ज्ञाता हूँ जो अपना स्वरूपकूं जो आपरूप ग्रहण करै अर आपतैं अन्यकूं आत्मरूप ग्रहण नाहीं करै ऐसा निर्विकल्प विज्ञानमय केवल स्वसंवेदनगोचर हूँ। अंतरात्मा विचारै है जैसैं सांकलमें सर्पकी बुद्धि हो जाय तदि भयभीत होय-मर्या इत्यादिक भयतैं भागवो पडवो इत्यादिक क्रियातैं हू भ्रम होय है तैसैं हमारे हू पूर्वकालमें शरीरादिकमें अपनी आत्माकी बुद्धिकरि शरीरादिकका नाशमें अपना नाश जाणि बहुत विपरीतक्रियामें प्रवर्तन भया अर जैसैं सांकलमें सर्पका भ्रम नष्ट भया सांकलकूं सांकल जानै तदि भ्रमरूप क्रियाका प्रभाव होय तैसैं मेरे शरीरमें आत्माका भ्रम नष्ट होतैं अब आचरणमें हू भ्रमका अभाव भया, जाका ज्ञानविना मैं सूतो अर जाका ज्ञान होते जाग्रत भया, सो चैतन्यमय मैं हूँ इस ज्ञानज्योतिमय अपने स्वरूपकूं देखता जो मैं ताकै रागद्वेष नष्ट हुआ है तिसका कारणकरि मेरे कोऊ वैरी नाहीं अर कोऊ प्रिय नाहीं। वैरी मित्र तो ज्ञानमें रागद्वेषविकारतैं दीखैं हैं जो मेरा ज्ञायक आत्मस्वरूपकूं नाहीं जानै सो मेरे वैरी अर प्रिय नाहीं हैं अर जो साक्षात् मेरा स्वरूप देख्या सो हू मेरा वैरी अर मित्र नाहीं है अब मेरा स्वरूपका ज्ञाता जो मैं ताकूं पूर्वला पूर्वला समस्त आचरण स्वप्नवत् इन्द्रजालवत् भासै है, अहो, ज्ञानीपुरुषनिका अलौकिक वृत्तांत कौन वर्णन करि सकै। जहां अज्ञानी प्रवर्तनकरि कर्मका वन्ध करै हैं तहां ही ज्ञानी प्रवर्तनकरि कर्मवन्धनितैं छूटै हैं जगतके पदार्थ तो समस्त जैसे हैं तैसे ही हैं और प्रकार नाहीं परन्तु अज्ञानी विपर्ययरूप

करि रागी द्वेषी मोही हुआ घोरबन्धकूं प्राप्त होय है ज्ञानी पदार्थनिका सत्यस्वरूप जानि परमसाम्य वीतरागी हुवा प्रवर्तता निर्जरा करै है अर जो मैं पूर्वैं दुःखनिकरि व्याप्त संसारवनमें चिरकाल क्लेशित भया हूँ सो केवल अपना अर परका भेदविज्ञानविना भया हूँ सो समस्तपदार्थनका प्रकाश करनेवाला भेदविज्ञानरूप दीपककूं प्रज्वलित होते हू यो मूढलोक संसाररूप कर्दममें क्यों डूबे हैं यो अपना स्वरूप है सो आपके मांही आप करकैं प्रकट अनुभवमें आवैहै याकूं छांडि अन्यमें. आपके जाननेकूं वृथा खेद करै है। अज्ञानीके इहाँ जो जो परवस्तु प्रीतिके अर्थि है सो समस्त आपदाका स्थान हैं अर जो आनन्दका स्थान हैं तातैं भय करै है, अज्ञानभावका कोऊ ऐसा ही प्रभाव है। बन्धका कारण तो पदार्थके ज्ञानमें भ्रम है अर भ्रमरहित भाव है सो मोक्ष कारण है, जो बन्ध है सो परका संबंधतैं है अर परद्रव्यतैं भेदका अभ्यास करि मोक्ष है, जो इंद्रियनिकूं विषयनितैं रोकि क्षणमात्र हू अपने आत्मामें रोकै है सो परमेष्ठीका स्वरूपकूं स्मरण करै है जो सिद्धात्मा है—सो मैं हूँ, जो मैं हूँ सो परमेश्वर है यातैं मेरारूपतैं अन्य मेरे उपासना करने योग्य नाहीं अर मैं कोऊ अन्यके उपासना करनेयोग्य नाहीं, जो भ्रमरहित होय देहतैं भिन्न आत्माकूं नाहीं जानै है सो तीव्रतप करतो हू कर्मके बन्धनतैं नाहीं छूटै है अर जो भेदविज्ञानरूप अमृतकरि आनन्दित है सो बहुत तप करतो हूँ शरीरतैं उपजे क्लेशनिकरि खेदनै नाहीं प्राप्त होय है जाको चित्त रागद्वेषादिक मलरहित निर्मल है सो ही अपने स्वरूपकूं सम्यक् जानै है अन्य कोऊ हेतुकरि जानै नाहीं अपने चित्तकूं

विकल्परहित करना है सो ही परमतत्त्व है अर अनेक विकल्पनि करि उपद्रित करना है सो अनर्थ है तातैं सम्यक्तत्त्वकी सिद्धिके अर्थि चित्तकूं विकल्परहित करो जो अज्ञानकरि उपद्रितचित्त है सो अपने स्वरूपतैं छूटि जाय है अर भेदविज्ञान-वासितचित्त है सो परमात्मतत्त्वकूं साक्षात् देखै है जो उत्तमपुरुषनिका मन मोह कर्मके वशतैं कदाचित् रागादिककरि तिरस्कृत होजाय तो आत्म-तत्त्वके चिंतवनमें युक्तकरि रागादिकनिको तिरस्कार करै अज्ञानी आत्मा जिस कायमें रागी होरह्या है तिस कायतैं अपनी बुद्धिके बल करि उलटो फेरयो हुवो चिदानन्दमय निज स्वरूपमें युक्त कीयो हुयो कायमें प्रीति शीघ्र छांडै है। जो अपना आत्मज्ञान भ्रमतैं उपज्या दुःख सो आत्मज्ञानकरि ही नष्ट होय है आत्मज्ञानरहित संसारी जीवके परिभ्रमण बहुत तपकरि नाहीं छेद्या जाय है बहिरात्मा है सो आपके रूप आयुबलधनादिकनिकी संपदा वांछे है अर अन्तरात्माहै सो आयुबलविद्यादिकनितें अपना छूटना चाहै है, अज्ञानी है सो पुद्गलादिकमें आपकी बुद्धिकरि आपने बांधै है अर अंतरात्मा है सो अपने स्वरूपमें आत्मबुद्धि करि बंधने ते छूटै है, अज्ञानी है सो तीनलिंग जे पुरुष स्त्री नपुं-सकरूप शरीरकूं आत्मा जानै अर सम्यग्ज्ञानी है सो आपकूं तीनलिंगका संगरहित जानै है बहुत कालतैं अभ्यास किया अर आछीतरह निर्णय किया हू विज्ञान अनादिकालका विभ्रमतैं शीघ्र ही छूटि जाय है जो यो मोकूं दीखै है सो अचेतन है अर जो चेतन है सो मेरे देखनेमें आवै नाहीं तातैं अचेतनपदार्थनिमें राग-भावकरना वृथा है यातैं मोकूं स्वानुभव-प्रत्यक्ष आत्मा ही का

आश्रय करना। अज्ञानी है सो बाह्य पदार्थनिमें त्याग ग्रहण करै है अर ज्ञानी है सो अंतरङ्गमें रागादिक परभावनिकूं त्यागि आत्मभावकूं ग्रहण करै है ज्ञानी है सो वचनतैं अर कायतैं भिन्न करके आत्माको अभ्यास मनकरिकै करै है, अर अन्यविषय-भोगनिका कर्म है सो कोऊ वचनतैं करै है कोऊ कायतैं करै है सांसारिक कार्यनिमें मन नाहीं लगावै है, अज्ञानीकै तो विश्वासको अर आनन्दको स्थान यो जगत् है अर ज्ञानीके इस जगत्में कहां विश्वास अर कहां आनन्द अपना स्वभावमेही आनन्द अर विश्वास है ज्ञानी है, सो तो आत्मज्ञानविना अन्यकार्यकूं हृदयमें धारण नाहीं करै है अर लौकिक कार्यके वशतैं जो कुछ करै है सो अनादररूप भया वचनतैं करै वा कायतैं करै मन नाहीं लगावै है, जो ये इन्द्रियविषयनिका रूप है ते मेरा रूपतैं विलक्षण है, मेरा रूप तो आनन्दकरि परिपूर्ण ज्ञान ज्योतिमय है, ज्ञानीके तो जाकरि भ्रांति दूर होय अपनी स्थिति अपने आत्मरूपमे हो जाय सो ही कहने योग्य है, सो ही श्रवण करने योग्य है, सो ही चिंतवन करनेयोग्य है। इन इन्द्रियनिके विषयनिमें इस आत्माका हित कोऊ प्रकार हू नाहीं है तो हू बहिरात्मा अज्ञानी इन विषयनिमें ही प्रीति करै है, जो कहा हुआ हू आत्मतत्त्वकूं नाहीं कह्याकी—ज्यों अंगीकार करै है तिस अज्ञानीके प्रति कहनेका उद्यम वृथा है, अज्ञानीके आत्माका प्रकाश नाहीं तातैं परद्रव्यनिमे ही संतुष्ट होय रह्या है अर ज्ञानी है सो वाह्रिवस्तुनिमे भ्रमरहित अपना स्वरूपमें ही संतुष्ट है, जितने मनवचनकायकूं अपना स्वरूप मानै है तितने संसार-परिभ्रमण ही है, देहादिकनितैं भेदविज्ञानतैं संसारका

अभाव है। वस्त्र जीर्ण होय वा रक्त होय वा श्वेत होय वा दृढ़ होय तो आत्मा जीर्णरक्तादिरूप नाहीं होय तैसैं ही देहकूं जीर्णादिक होते आत्मा जीर्णादिक नाहीं होय है, अज्ञानी है सो प्रत्यक्ष इस शरीरकूं बिछुरता मिलता परमाणूनिका समूहकी रचनारूप देखे है तोहू याकूं आत्मा जानै है अनादिका ऐसा भ्रम है। ये दृढ स्थूल दीर्घ शीर्ण जीर्ण हलका भारी ए धर्म पुद्गलके हैं इनि पुद्गलनिके धर्मकरि संबंधकूं नाहीं प्राप्त होता आत्मा है सो केवलज्ञानस्वरूप है, इहां संसारमें मनुष्यनिका संसर्ग होय तदि वचनकी प्रवृत्ति होय, वचन प्रवर्तै तदि मन चलायमान होय मन चलै तदि भ्रम होय ये उत्तरोत्तर कारण हैं तातैं ज्ञानीजन लोकनिका संसर्ग ही छांडे हैं। अज्ञानी बहिरात्मा हैं सो अपना निवास नगरमें ग्राममें पर्वत वनादिकनिमें जानै है अर ज्ञानी तो अंतरात्मा है सो अपना निवास अपने मांहि ही भ्रमरहित मानै है। जो शरीरमें आत्माकूं जानना सो देह धारण करनेकी परिपाटीका कारण है अर अपने स्वरूपमें आपका जानना है सो अन्य शरीरके छूटनेका कारण है यो आत्मा आप ही अपनै मोक्ष करै है अर आप ही विपर्ययरूप भया अपने संसार करै है तातैं अपना गुरु हू आप ही है अर वैरी हू आप ही है अन्य तो बाह्य निमित्तमात्र है, अंतरात्मा जो है सो आत्मातैं कायकूं भिन्न जानि अर कायतैं आत्माकूं भिन्न जानि इस कायकूं मलका भऱ्या वस्त्र ज्यों निःशंक त्यागै है, शरीरतैं भिन्न आत्माकूं जानै है श्रवण करै है मुखतैं कहै तो हू भेदविज्ञानके अभ्यासमें लीन नाहीं होय तितने शरीरकी ममतातैं नाहीं

छूटै है अपने आत्माकूं शरीरतैं भिन्न ऐसैं भावौ जैसैं फेरि देह-करि संगम स्वप्नहूमें नाहीं होय स्वप्नमें हू देहतैं भिन्न ही आत्माका अनुभव होय पुरुषनिके जो व्रतनिका अर अव्रतका व्यवहार है सो शुभ अशुभ वंधका कारण है अर मोक्ष है सो बंधका अभाव रूप है यातैं व्रतादिक क्रिया है ते हू पूर्व अवस्थामें है प्रथम असं-यम भावकूं त्यागि संयममें लीन होना अर जव शुद्धात्मभाव परमवीतरागरूपमें अवस्थित होजाय तव संयमभाव कहां रहै ये जाति अर मुनिश्रावकका लिंग ये भी दोऊ शरीरके आश्रय वर्तैं हैं अर शरीरात्मक ही संसार है तातैं ज्ञानी है सो जाति अर लिंगमें हू अपना आपा त्यागै है, जाकै देहमें आत्मबुद्धि है सो पुरुष जागतो हू पढ़तो हू संसारतैं नाहीं छूटै है अर अपने आत्मा में आपका निश्चय जाकै है सो शयन करता वा असावधान हू संसारतैं छूटै है, ज्ञानी आपकूं सिद्धस्वरूप आराधना करि सिद्ध-पनाकूं प्राप्त होय है जैसैं वत्ती आप दीपकसूं युक्त होय आप दीपक हो जाय है यो आत्मा है सो आपका आत्माकी आराधना-करि परमात्मा हो जाय है। जैसैं वृक्ष आपतैं घसिकरि अग्नि होय है तैसैं आत्मा हू परमात्माभावतैं जुडिकरि सिद्ध हो जाय है। जैसैं काऊ स्वप्नमें अपना नाश देख्या तो आपका नाश नाहीं भया तैसैं जागते हू अपना नाश भ्रमतैं मानै है किन्तु आत्माका नाश नाहीं है पर्याय उपजी सो विनस्यां विना रहै नाहीं आत्मस्व रूपका अनुभव विना शरीरकूं आत्मारूप अनुभव करता अनेक शास्त्र पढता हू संसारतैं नाहीं छूटैगा अर अपने स्वरूपमें अपना अनुभव करता शास्त्रका अभ्यासरहित हू छूटि जायगा अर

ज्ञानी भी हो जो यो सुख अवस्थाकरि भया हुवा ज्ञान दुख आयां छूटि जायगा तातैं दुःख अवस्थामें रोगपरीसहादिक अवस्थामें हू आत्मज्ञानका दृढ अभ्यास करो इत्यादि चिंतवनके प्रभावतैं बाह्य शरीरादिकनिमें आत्मबुद्धिरूप जो बहिरात्मबुद्धि ताहि छांडि अर अपने अंतर कहिये आत्मरूपमें आपारूप अंतरात्मा होय करि परमात्मारूप होनेमें यत्न करो। परमात्मा दोयप्रकार है जो घातियाकर्मनिका नाश करि अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंतवीर्य अनंत सुखरूप स्वाधीन अठारह दोषनिकरिरहित इन्द्रधरणेंद्रनरेंद्रांकरि वंद्यमान अनेक अतिशयांकरि सहित सकल जीवनिका उपकारक दिव्यध्वनिकरि सहित देवाधिदेव परम औदारिक देहमें तिष्ठता अरहंत देव हैं ते सकल परमात्मा हैं, कल नाम शरीरका है जो देहसहित आयुका अन्त तांईं परमोपदेश देता ऐसा अरहंत हैं सो सकलपरमात्मा है अर जो अष्टकर्मरहित होय सिद्धपरमेष्टी भये तिनके कल जो देह सो नष्ट होगया यातैं सिद्ध भगवान विकलपरमात्मा हैं सो परमात्मपद इस मनुष्यपर्यायमें रत्नत्रयका आराधनकरि कोऊकै प्राप्त होय है, याका बीज बहिरात्मपना छांडि अंतरात्मपनामें लीन होना है बहिरात्माकै मिथ्यात्वगुणस्थान ही होय है अर अंतरात्मा जो हैं सो चतुर्थगुणस्थानेकूं आदि लेय बारमागुणस्थानपर्यंत हैं अर परमात्मा जो है सो देहसहित तो तेरवें चौदहवें गुणस्थानमें जानना अर देहरहित परमात्मा सिद्धभगवान हैं सो गुणस्थानकरिरहित हैं; जातैं गुणस्थान तो मोह अर योग की अपेक्षातैं हैं भगवान सिद्धनिकै मोह

कर्म भी नाहीं अर वचनकायके योगनिका हू अभाव भया तातैं गुणस्थानसंज्ञा रहित हैं।

अब धर्मध्यानका वर्णन करैं हैं—यो धर्मध्यान है सो सम्यग्दृष्टीविना मिथ्यादृष्टीकै नाहीं होय है ऐसा नियम है तातैं चतुर्थगुणस्थानकूं आदि लेय सप्तमगुणस्थान-पर्यंत धर्मध्यान होय है, सो धर्मध्यान परमागममे च्यारप्रकार कह्या है आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय। तिनमें आज्ञाविचय धर्मध्यानका संक्षेप कहिये है—जो भगवान सर्वज्ञ वीतरागका कह्या आगमकी प्रमाणतातैं पदार्थनिका निश्चय करना सो आज्ञाविचय धर्मध्यान है। जहां उपदेशदाताका अभाव होय अर कर्मके उदयतैं अपनी बुद्धि मंद होय अर पदार्थनिकै सूक्ष्मपना होय अर हेतु दृष्टांतका अभाव होय तहां सर्वज्ञकरि कह्या आगमकूं प्रमाणकरि ऐसा चिंतवन करै जो यो ही तत्त्व है, या प्रकार ही यो तत्व है और नाहीं, अन्य प्रकार नाहीं, सर्वज्ञ वीतराग जिन अन्यथा कहनेवाला नाहीं ऐसैं गहनपदार्थनिमें श्रद्धानमें अर्थका निश्चय करना सो आज्ञाविचय है अथवा सम्यग्दर्शनकरि परिणामनिकी विशुद्धिताका धारक अर अपने अर परमतके पदार्थनिका निर्णयका जाननेवाला ऐसा सम्यग्ज्ञानी सर्वज्ञकरि प्ररूपे सूक्ष्मपदार्थनितैं ग्रहणकरि तथा पंचअस्तिकायादिपदार्थनिमें निश्चय करि अन्य भव्यनिकूं शिक्षा करै तथा कथनका व्याख्यानका मार्गमे श्रुतज्ञानका सामर्थ्यतैं अपने सिद्धान्तमें विरोध नाहीं आवै तैसैं अर अन्य एकांतीनिके प्ररूपे मिथ्याप्रमाण हेतु नय तिनका खण्डन करनेमें समर्थ ऐसे अनेकान्तका ग्रहण करनेमें समर्थ होय श्रोतानिकूं पदार्थका

स्वरूप ग्रहणकरानेमें समर्थन करि श्रुतका व्याख्यान करै अर तिनका समर्थनके अर्थ तर्कनयप्रमाणकूं युक्त करनेमें तत्पर ऐसा चिंतवन करनेमें लीनपना सो सर्वज्ञकी आज्ञा प्रकाशनका अर्थीपनातैं आज्ञाविचय धर्मध्यान है। तथा जो जिनसिद्धांतमें प्रसिद्ध ऐसा सर्वज्ञकी आज्ञातैं वस्तुका स्वरूप चिंतवन करै सो आज्ञाविचय है, जगतमें जो वस्तु है सो अनंतगुण अनंतपर्याय-स्वरूप है याहीतैं उत्पादव्ययध्रौव्यरूप है, त्रिकालवर्ती है यातैं नित्य है ऐसी वस्तुका कहनेवाला कोऊ आगमका सूक्ष्मवचन अपनी स्थूलबुद्धिकरि ग्रहणमें नाहीं आवै अर जो हेतुकरि बाधाकूं भी नाहीं प्राप्त होय तहां 'सर्वज्ञकी आज्ञा ऐसै है सर्वज्ञ वीतरागजिन अन्यथा नाहीं कहैं' ऐसै प्रमाणरूप चिंतवन सो आज्ञाविचय है। अथवा जिनेन्द्रका परमआगमका पठन, श्रवण, चिंतवन, अनुभवन सो समस्त आज्ञाविचय है जो श्रुत सर्वज्ञ-वीतरागकरि कह्या हुवा जाकै श्रवणतैं रागी द्वेषी शस्त्रधारी देव-निकी उपासनातैं पराङ्मुखता होय जाय अर परिग्रहधारी विषयकषायनिके धारक अनेकभेषधारीनिमें गुरुबुद्धि पूज्यपनाकी बुद्धि नाहीं उपजै अर हिंसामें प्रवृत्तिरूप धर्म कदाचित् नाहीं दीखै अर जाके श्रवणपठनचिंतवनतैं विषयकषाय देहपरिग्रहा-दिकनितैं परांमुखता उपजिआवै, दयाधर्मकी वृद्धि होय जाय तिस आगमका शब्द अर्थका चिंतवन करना सो आज्ञाविचय धर्मध्यान है, आगम श्रीसर्वज्ञवीतरागका उपदेश है रत्नत्रयस्वरू-पकूं पुष्ट करनेवाला है अनादिनिधन समस्तजीवनिके परम शरण है, अनन्तधर्मके धारक पदार्थनिका प्रकाश करनेवाला है, प्रमा-णनयनिक्षेपनिकरि पदार्थनिका स्पष्ट उद्योत करनेवाला है

स्याद्वादरूप याका जीव है याका शरण नाही पाय करकैं जीव अनादिकालतैं चतुर्गतिमें परिभ्रमण किया है, सप्ततत्व नवपदार्थ पंचास्तिकायका स्वरूप प्रकाशनेवाला है, द्रव्यगुणपर्यायनिका स्वरूप दिखावनेवाला है, गुणस्थान मार्गणास्थान योनि कुलकोडिनि करि जीवका प्ररूपण करनेवाला है, आस्रवबंधउदयउदीरणा सत्ताका प्ररूपण करनेवाला है समस्त लोक अलोकका प्रकाशक है अनेकशब्दनिकी रचनारूप अंगप्रकीर्णकादिक रत्ननिकरि रत्नाकरवत् गम्भीर है, एकांतविद्याके मदकरि उन्मत्त मिथ्यादृष्टिनिका मद नष्ट करनेवाला है, मिथ्यात्वरूप अन्धकारके दूरकरनेकूं सूर्य है, रागरूप सर्पका विष उतारनेकूं गारुडीविद्या है, समस्तअंतरंग पापमल धोवनेकूं पवित्रतीर्थ है, समस्तवस्तुकी परीक्षा करनेकूं समर्थ है, योगीश्वरनिका तीजा नेत्र है, संसारका संतापरूप ज्वरका घातक है इंद्र अहमिंद्र गणधर मुनीन्द्रनिकरि सेवित ज्ञानीकूं परम अक्षयनिधान आशावांछाभयका नाश करनेवाला आत्मीक सुखरूप अमृतके प्रकटकरनेकूं चन्द्रमाका उदय है, अक्षय अविनाशी जीवका निजधन है, मुक्तिकूं प्रयाणकरतेकैं प्रधान गमनका ढोल है विनय न्याय इंद्रपद मननशील संयम संतोषादि गुणनिकूं उत्पन्न करनेवाला है। ऐसा परमागमका चिंतवन ध्यान अनुभवन सो आज्ञाविचय धर्मध्यान है ऐसैं आज्ञाविचय धर्मध्यान कह्या।

अब अपायविचय धर्मध्यानका ऐसा स्वरूप जानना—तहां एक तो मिथ्यात्वका संयोगतैं सन्मार्गका अपाय कहिये नाशका चिंतवन करना जो—सन्मार्ग कहिये मोक्षमार्ग ताका अभाव करनेवाला मिथ्यात्व ही है ऐसा चिंतवन सो अपायविचय है। मिथ्या

दर्शनकरि जिनके ज्ञाननेत्र ढकि रहे हैं तिनका आचार विनयादिक समस्त कार्य हैं ते संसारके वधावनेके अर्थि हैं क्योंकि मिथ्यादृष्टीकै अन्धेकी ज्यों विपरीतज्ञानकी बहुलता है; यातैं जैसैं बलवान हू जन्मका अन्धा भला मार्गतैं छूटे हुवे सत्यमार्गका उपदेश करनेवालाकरि नाहीं चलाया हुवा नीचा ऊंचा पर्वत अर विषमपाषाण अर कठोर ठूंठ झाड खाडा नाला कंटकनिकरि व्याप्त विषम पृथ्वीमें पड्या हुवा हलनचलन क्रिया करता हू उपदेशदाता विना मार्गमें गमनकरनेकूं नाहीं समर्थ होय है तैसैं सर्वज्ञका कह्या मार्गतैं पराङ्मुख जीव मोक्षका अर्थी हैं तो हू सन्मार्गका ज्ञानविना संसारमें अतिदूर ही परिभ्रमण करै है ऐसैं सन्मार्गका नाश चिंतवन करना अपायविचय धर्मध्यान है अथवा कुमार्गके प्रवर्तनका अभाव तथा नाशका चिंतवन करना सो हू अपायविचय है। अहो ये विपरीत ज्ञान श्रद्धानके धारक मिथ्यादृष्टी कुवादीनिकरि उपदेश्या कुमार्गतैं ये प्राणी कैसैं उबरैं अथवा इन प्राणीनिकै कुदेव कुधर्म कुगुरुनिका सेवनितैं कैसैं निरालापणों होय ऐसा चिंतवनकरना सो अपायविचय है अथवा पापका कारणमें कायका प्रवर्तन वचनका प्रवर्तन मनमें भावनाका अभावका चिंतवन सो अपायविचय धर्मध्यान है अथवा जामें उपायसहित कर्मनिका नाश चिंतवन करिये ताकूं ज्ञानीजन अपायविचय कहैं हैं श्रीसर्वज्ञ भगवान करि कह्या जो रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग ताहि नाहीं प्राप्त होय करकैं संसाररूपवनविषैं प्राणी चिरकालतैं नष्ट हो रहे हैं, जिनेश्वर का उपदेशरूप जिहाज नाहीं प्राप्त होय करके वापडे प्राणी संसारसमुद्रविषैं निरन्तर

डावक डूबा होता दुःखनिकूं भोगै है। महान कष्टरूप अग्नि करि दग्ध होता संसाररूप वनविषै भ्रमण करता हू मैं सम्यग्ज्ञानरूप समुद्रका तटकूं प्राप्त भया हूँ जो अब सम्यग्ज्ञानका शिखरकूं प्राप्त होय यातै चिगूंगा तो संसाररूप अन्धकूपके मध्य मेरा पतन कौन रोकेगा। अनादिके भ्रमतैं उपजे मिथ्यात्व, अविरत कषायादिक कर्मबंधके कारण मेरे दुर्निवार है, यद्यपि मैं तो शुद्ध हूँ दर्शनज्ञानमय निर्मलनेत्रका धारक सिद्धस्वरूप हूँ तो हू तिन कर्मनिकरि खंडन किया मैं चिरकालतैं संसाररूप कर्दममें खेदखिन्न भया हूँ, एकतरफ तो नानाप्रकार कर्मका सैन्य है अर एकतरफ मैं एकाकी आत्मा हूँ ऐसा वैरीनिका संकटमें मोकूं सावधान प्रमादरहित तिष्ठवो योग्य है जो अब प्रमादी होय रहूँगा तो कर्म मेरा ज्ञानदर्शन स्वरूपकूं घातकरि एकेन्द्रियादिरूप पर्यायमें जड़ अचेतन करि देगा। अब प्रबलध्यानरूप अग्निकरि मेरे आत्मातैं कर्ममलकूं नष्टकरि पाषाणमेतैं सुवर्णकी ज्यों शुद्ध कब करूंगा, मेरे प्राप्त होनेयोग्य सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्ररूप मेरा स्वभाव ही है अन्य परभाव पर ही हैं, स्वयमेव मोतैं भिन्न हैं मैं कौन स्वरूप हूँ, मेरे कौन कारणतैं कर्मका आस्रव होय है ? कैसैं कर्म बंधै है ? कैसैं कर्म निर्जरैगा ? अर मुक्ति तो कहा है ? अर मुक्तिका स्वरूप कहा है अर मुक्तिका बाधारहित निराकुलतालक्षण ऐसा स्वभावतैं उपज्या—सुख मेरे कौन उपायकरि होय ? मेरा स्वरूपका ज्ञान होतैं सकल भुवनत्रयका ज्ञान होय है। जातैं सर्वज्ञ सर्वदर्शी मेरा स्वभाव ही कर्ममलकूं दूर भये मेरेमांहि प्रगट होय है। जैते-जेते काल मेरे बाह्यवस्तुनिकरि सम्बन्ध है तितने-तितने काल मेरी

स्थिति मेरा स्वभावमें स्वप्नमें भी दुर्घट है यातैं वाह्यपदार्थनितैं भेदविज्ञानतैं भिन्न होनेरूप ही उपाय करूं ऐसैं अपायविचय नाम धर्मध्यानका दूजा भेद वर्णन किया।

अब विपाकविचय नाम तीजाभेदकूं निरूपण करै हैं—ज्ञानावरणादिक कर्मका उदयकूं आपतैं भिन्न चिंतवन करै सो विपाक विचय है।

भावार्थ—अनादिकालतैं नरकादिगतिमें उपजि नारकीतिर्यंच मनुष्यादिपर्याय धरना इंद्रियनिका पावना शरीरादि धारणकरना रूपरसगंधस्पर्शादि पावना, संहनन, बल, पराक्रम, राज्यसम्पदा विभव परिवारादिक समस्तकर्मका उदयजनित है मेरा स्वरूपतैं भिन्न हैं मेरा स्वरूप ज्ञाता दृष्टा है, अविनाशी अखण्ड है, कर्मके उदयजनित परिणतितैं भिन्न है, जेते संयोग हैं ते कर्मजनित हैं यातैं कर्मके उदयजनित परिणतितैं आपकूं जुदा अवलोकनिकरि कर्मके उदयजनित रागद्वेष जीवनमरणादिकतैं हू आपकूं भिन्न अवलोकन करै सो विपाकविचय है। पूर्वकालमें बंध किया कर्म द्रव्यक्षेत्रकालभावका संयोग पाय विचित्र रस दे है। कर्मकी मूलप्रकृति आठ है अर आठका एकसौ अड़तालीस भेद हैं अर एक एक का असंख्याततलोकमात्र भेद है सो समस्त एकेंद्रियादिक जीवनिके भिन्न भिन्न उदय देखिये है। सामान्यकरि जीव ज्ञानस्वभाव है स्वपरका जाननेवाला है असंख्यातप्रदेशी है कर्मजनित देहप्रमाण है सुखदुःखका भोक्ता है तथापि कर्मका बंध अपने भिन्न भिन्न परिणामनिकरि अनेकप्रकार बंध किया है तिस कर्म का रस हू उदयकालमें जुदा-जुदा देखिये है समस्त जीवनिके

प्रकृतिरूप लाभ अलाभ, सुख दुःख, रागद्वेष, पुण्य पाप, संयोग वियोग, आयु, काय, बुद्धि, बल, पराक्रम इच्छा इत्यादिक एकएक जीवके कर्मके उदयके अनुसार भिन्न २ देखिये है अन्य किसीतैं नाहीं मिलै है यातैं नानाजीवनिके नाना प्रकार उदयकी जाति देखि रागद्वेषके वश मति होइ। जैसैं वनमें विहारकरता पुरुष वनमें लाखां कोट्यां वृक्षवेलि छोटेवडे अनेक देखै हैं कौन कौनमें रागद्वेष करै कोऊ ऊंचा वृक्ष है कोऊ नीचा है कोऊ गम्भीर छाया सहित है कोऊ अल्प है कोऊ फूलफलसहित है कोऊ निष्फल है कोऊ कडवा है कोऊ मीठा है कोऊ खाटा है कोई चिरपरा है कोऊ जहरका भर्या है कोऊ अमृत समान है कोऊ कांटाकरि सहित, कोऊ रहित, कोऊ वक्र है कोऊ सरल है कोऊ जीर्ण है कोऊ नवीन है कोऊ सुगंध, कोऊ दुर्गंध इत्यादिक समस्त रचना पूर्वकर्मके संस्कारतैं एकेन्द्रियजीवनिके भी उदय देखिये है, काटिये है फाडिये है कतरिये है छीलिये है रांधिये है छौंकिये है बालिये है चाबिये है रगडिये है घसीटिये है चींथिये है गालिये है सुखाईये है पीसिये है बांधिये है मोडिये है इत्यादिक एकेन्द्रिय वनस्पतिमें हू कर्मका उदयकी नानाजाति देखि अपने वा अन्यके पुण्यपापका उदयकी नानातरंग देखि साम्यभाव धारण करो हर्ष विषाद मति करो कर्मका उदयकी लहरि समय समयमें भिन्न २ है जो भगवान सर्वज्ञवीतराग जिस क्षेत्रमें जिस कालमें जिसप्रकार देख्या है सो ही प्रमाण है तैसैं ही होयगी कर्मके उदयकूं अपना स्वभावतैं भिन्न-जानो नानाजीव पुद्गलनिकी रचना तथा संयोग वियोगादिक देखि रागद्वेषरहित परमसाम्यभाव धारण करो ज्यूं पूर्वबंध

किया कर्मकी निर्जरा हो जाय, नवीनबंध नाहीं होय ऐसे तपके प्रकरणमें विपाक विचय नाम धर्मध्यानका वर्णन किया।

अब संस्थानविचय चौथा धर्मध्यानका वर्णन करिये है—यो अनन्तानन्त सर्वतरफ आकाश है सो आपके आधार आप है तिसके अत्यन्तमध्यविषै जीवपुद्गलधर्मअधर्मकाल जेता आकाश का क्षेत्रमें तिष्ठै सो लोक है सो लोक किसीका किया नाहीं है अनादिनिधन है। अब इहां कोई अन्यवादी कहै जो इस जगत् का कर्त्ता कोऊ ईश्वर है जातैं कर्ता विना कोऊ ही सत्‌रूप वस्तु होय नाहीं ताकूं पूछिये जो—किया बिना कोऊ ही सत्‌रूप वस्तु नाहीं है, तो ईश्वरकूं कौनने किया? ईश्वर हू सत्‌वस्तु है ईश्वरकूं करनेवाला कूं कह्या चाहिये अर जो कहोगे याका कर्ता हू अन्य है तो वाकूं कौन किया? वाका अन्य कर्ता कहोगे तो वाकूं कौन किया ऐसैं अनवस्था नाम दोष आवैगा। बहुरि और पूछैं हैं जो पहली सृष्टिरचना नाहीं थी तो सृष्टिबाहिर ईश्वर कहां था? अर कौन स्थानमें ईश्वर तिष्ठि जगतकूं रच्या अर ईश्वर आप जगत्-बिना निराधार बहुतकालतैं विद्यमान आप तो कहां तिष्ठै था अर इस जगतकूं रचि कहां स्थापन किया? अर इसजगतकूं किसीके आधार कहोगे तो वे कौनके आधार हैं? उसका अन्य आधार कहोगे तो उस अन्यका कौन आधार है ऐसैं अनवस्था दोष आवैगा। अर जो या कहोगे निराधारमें अनादिनिधनमें तर्क नाहीं तो सृष्टिका हू कर्तापणा कहना बणै नाहीं जैनी तो समस्तपदार्थनिकूं ही अनादिनिधन कहैं हैं जाके मतमें सृष्टिका कर्ता मानै हैं ताकै ही दोष आवैगा। बहुरि जगत नानारूप है

ताकूं एकरूप ईश्वर करनेमें कैसैं समर्थ होय ? बहुरि ईश्वर शरीररहित अमूर्तीक है अमूर्तीकतैं शरीरादिक मूर्तीक कैसै उपजाया जाय अमूर्तीकतैं मूर्तीक कैसैं होय ? बहुरि उपकरणसामग्रीविना लोककूं काहेतैं रच्या जातैं उपादानकारण विना कोऊ वस्तुकी रचना बनती नाहीं देखिये है जैसैं मृत्तिकाविना समर्थ हू कुम्भकार घटकी रचना करनेकूं समर्थ नाहीं होय है अर जो या कहोगे ईश्वर है सो पहली सामग्री वणाय पाछैं जगतकूं रच्या तो पूछिये उस सामग्रीकूं काहेतैं रची ऐसैं अनवस्थादोष आवैगा अर जो या कहोगे जो जगतके रचनेयोग्य सामग्री तो स्वभावही तै विना किये सिद्ध है तो लोकहूकूं स्वतः सिद्ध माननेका प्रसङ्ग आवैगा । बहुरि जो या कहोगे-ईश्वर समर्थ है सो सामग्री विना ही इच्छामात्रकरि लोककूं रचै है तो ऐसे इच्छामात्र युक्तिकरि-रहित तुम्हारा कहना कौनके श्रद्धान करनेयोग्य होय? इच्छामात्र करनेकी और हू कल्पना करो तो तुमकूं कौन रोकै है इच्छामात्र कह्या तहां विचार काहेका रह्या बहुरि ईश्वर कृतार्थ है कृतकृत्य है कि अकृतकृत्य है जो कृतार्थ है जाकै करनेयोग्य कोऊ कार्य बाकी नाहीं रह्या, तो जगत के रचने की इच्छा ईश्वरके कैसैं उपजी ? अर जो अकृतार्थ कहोगे तो अकृतार्थ होगया सो समस्त जगत्के रचनेकूं कुम्भकारकी ज्यों समर्थ नाहीं होयगा जातैं अकृतार्थ कुम्भकार एक घटकूं रचि आपकूं कृतार्थ मानै समस्त जगतका रचना तो अकृतार्थ बनैगा नाहीं तैसैं ईश्वरकूं अकृतार्थ मानो हो तो एक एक वस्तकूं करि खेदित क्लेशित होता अनन्त पदार्थनिकूं कैसे पूर्ण करैगा

तातैं हू जगतका कर्त्तापना ईश्वरकै नाहीं सम्भवै है। बहुरि ईश्वर कूं अमूर्त्तीक कहैं हैं अर निःक्रिय कहैं हैं अर सर्वव्यापी कहैं है सो ऐसा ईश्वर जगतकूं कैसैं रचै जातैं अमूर्त्तीकतै तो मूर्त्तीक व्यापी समस्तजगतमें उत्पन्न होयनाहीं अर जो निःक्रिय कहिये क्रियारहित होय ताकैं रचनेकी क्रिया कैसैं बने। बहुरि जो व्याप रह्या ताके लोककी रचना कैसे बनै। समस्तलोकमें अनादिहीका व्याप्त हो रह्या है। बहुरि ईश्वरकूं विक्रियारहित निर्विकारी कहै ताके रचनेके अर्थ विकारी होना नाहीं सम्भवै है।

बहुरि ईश्वर सृष्टिकूं रची सो कहा फल चाहता रची? ईश्वर तो कृतार्थ है कृतकृत्य है ताकै धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों पुरुषार्थनिमें कुछ करना बाकी नाहीं रह्या तदि सृष्टिकूं रचि कहा फल चाह्या? प्रयोजन विना तो मूर्ख हू नाहीं प्रवर्तैं है अर जो या कहोगे ईश्वर कै सृष्टि रचनेमें कुछ प्रयोजन तो नाहीं विना प्रयोजन ही रचे है तो अनर्थरूपकार्य करनेका प्रसंग आया अर जो कहोगे ईश्वरके या क्रीड़ा है तो बड़ा मोहका संतान आया क्रीड़ा तो अज्ञानी मोही बालक करै है वा पहले दुःखित होय सो क्रीडा करि दिन व्यतीत करै अपना दुःखका भुलावनेकूं क्रीड़ा करै बहुरि जो ईश्वर जगतकूं रच्या तो समस्त पदार्थनिकूं उज्वल सुख-कारी मनोहर रूपवान ही काहेकूं नाहीं रचे जगतमें केई दरिद्री केई रोगी केई कुरूप केई कुबुद्धि केई नीचजाती ऐसे काहेकूं रचे अर विषादिक कंटकादि मलमूत्रादिक दुगधादिक काहेकूं बनाये तथा दुष्ट म्लेच्छ भील सर्पादिक चांडालादिक क्यों रचे? जगतमें भी देखिये है जो महाबुद्धिमान चतुर होय सो बहुत सुन्दर ही

बनाया चाहै अपना किया कार्यकूं विगाड्या तो नाहीं चाहै यातैं ईश्वर है सो बुद्धिमान अर समर्थ अर स्वाधीन होय ग्लानि-रूप भयानक दुःखदायक विडरूप रचना कैसें करी ? सो कहो अर जो या कहोगे प्राणी जैसें कर्मका उपार्जन किया तैसैं उनके शरीरादिक सकल सामग्री रची तो ईश्वरकै ईश्वरपना कहां रह्या? जैसैं कोलीकूं महीन सूत दिया तब महीनवस्त्र बुन दिया, मोटा दिया तो मोटा बुन दिया ईश्वरपना नाहीं रह्या अर और हू पूछिये है संसारमें प्राणी भले वा खोटे कर्म करैं हैं ते ईश्वरके अभिप्रायतैं ईश्वरके कराये करैं हैं कि ईश्वरके अभिप्राय विना अपनी जबरीतैं करैं हैं ? सो कहो जो ईश्वरकी इच्छातैं करैं हैं तो ईश्वर होय करकै अपनी प्रजातैं खोटे कृत्य कैसै करावै है ? अपना संतानकूं दुराचारी किया कोऊ चाहै नाहीं अर जो ईश्वरकी इच्छा विना ही करै हैं तो ईश्वरकै ईश्वरपना अर कर्तापना कहां रह्या? जगत् स्वयं ही कर्मादिक कार्यके कर्त्ता भये। बहुरि कहोगे जो कार्य तो होय है सो जैसा कर्म किया तैसा ही होय है परन्तु ईश्वरके निमित्ततैं होय है तो ऐसे सिद्धवस्तुके विना कारण ईश्वरका क्रियापना वृथा क्यों कहो हो ? असत्यकूं पुष्ट करना बडा अनर्थ है। बहुरि पूछें हैं जो ईश्वर समस्त प्राणीनिमें वात्सल्य करै है अर जगतके अनुग्रह करनेकूं जगतकूं रचै है तो समस्तसृष्टिकूं सुखमयी उपद्रवरहित रची चाहिये दुःखमय वियोगमय दरिद्रमय रंकमय कैसें रची ? ऐसें ईश्वरपना रह्या नाहीं अर जो कहोगे जे ईश्वरके भक्त थे तिनकूं सुखी किये दुष्टनिकूं दुःखी किये तो पूछिये है ईश्वर होय आप दुष्ट कैसें रचे ? अपने

भक्त ही रचने थे म्लेच्छादिक अपने द्रोहीनिकूं काहेकूं बनाये जो कहोगे ईश्वरकूं पहले ठीक नाहीं था फिर दुष्ट देखे तदि तिनकूं दण्ड दिया तो ईश्वरके अज्ञानीपना प्रगट भया अज्ञानीकी-कीनी सृष्टि भई। बहुरि पूछे हैं ईश्वर जगतकूं रचै है सो जगत पहले विद्यमान है ताकूं रचै है कि अत्यन्त असत्कूं रचै है जो विद्यमानकूं ही रचै है तो पहली ही तो सत्रूप विद्यमान था उसकूं कहा रचैगा? अर अत्यन्त असत्कूं रचै है तो आकाशका पुष्पकी रचना समान अवस्तु ठहरया। बहुरि ईश्वरकूं मुक्त कहो हो तो मुक्तकरने करावनेमें उदासीन है वाकै सृष्टिरचनेका अभिप्राय कैसैं होय करने करावनेकी चिन्ता मुक्तकै सम्भव नाहीं अर जो ईश्वर संसारी है तो अपने समान है उसका किया समस्तजगत् कैसैं उत्पन्न होय तातै तुम्हारा यह सृष्टिका ईश्वरकृत्य कहना कुछ ही नाहीं रह्या। बहुरि पहली तो जगतकूं आप रच्या अर पाछैं आप ही संहार किया ताकैं महान अधर्म भया अर जो कहोगे दैत्यादिक दुष्ट बहुत इकट्ठे भये तिनके मारनेकूं प्रलयकालमें संहार करै है तो दैत्यादिक दुष्ट पहली रचै ही क्यों अर पहली आपकूं ज्ञान नाहीं था जो ये दुष्ट हो जांयगे तो ईश्वरकै बड़ा अज्ञानीपना भया जो अपने कियेका फल नाहीं पहिचान्या अर महादुःखितपना भया जो नवीन रचना करबो करै अर चूकि बणि जाय तदि मारता फिरै है, हेरता फिरै है, अर दुःखका मारया आप छिपता फिरै अर दुष्टनिकूं मारनै अर्थि हजारां उपाय सहाय भेष शस्त्रादिक सामग्रीका चिंतवन करता महाक्लेशतैं जन्म पूरा करै है ऐसे ईश्वरके तो अज्ञान-

रागद्वेष मोहादिक बहुत दोष दीखैं हैं तातैं मिथ्यादृष्टीनिके रचे असत्य शास्त्रनिकरि उपज्या क्लेशकूं छांडि वीतराग सर्वज्ञका कह्या अनादिनिधन स्वतःसिद्ध लोकका स्वरूप जाणि श्रद्धान करो, ये छह द्रव्य जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल अनादिनिधन हैं, कोऊ असत्कूं सत्करनेकूं समर्थ नाहीं जातैं जो सत्वस्तु है ताका कदाचित् नाश नाहीं अर असत्का उत्पाद नाहीं ये उत्पादविनाश है ते पर्यायार्थिक नयतैं कहिये है—जेते चेतन अचेतनपदार्थ हैं ते द्रव्यपनाकरि कदे ही नाहीं विनशै हैं, नाहीं उपजै हैं समयसमय पूर्वपर्यायका नाश अर उत्तरपर्यायका उत्पाद होय रह्या है, द्रव्य ध्रौव्य है, उपजै नाहीं, उपजना विनशना पर्यायका एकरूप रहै नाहीं, द्रव्यनिका नाश कदे नाहीं, छहद्रव्यका समुदाय ही लोक है अन्यवस्तुरूप लोक नाहीं है।

अब इस संस्थानविचय धर्मध्यानविषै द्वादशभावना निरंतर चिंतवन करने योग्य हैं। अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ, धर्म ये द्वादश भावनाके नाम कहे इनका स्वभाव भगवान् तीर्थंकर हू चिंतवनकरि संसार देहभोगनितैं विरक्त भये हैं तातैं ये भावना वैराग्यकी माता हैं, समस्त जीवनिके हितकरनेवाली हैं अनेक दुःखनिकरि व्याप्त संसारी जीवनिके ये भावना ही भला उत्तम शरण हैं। दुःखरूप अग्निकरि तप्तायमान जीवनिकूं शीतलपद्मवनका मध्यमें निवाससमान है, परमार्थमार्गके दिखावनेवाली हैं तत्त्वनिका निर्णय करावनेवाली हैं सम्यक्त्वकूं उपजावनेवाली हैं अशुभ ध्यानके नष्ट करनेवाली हैं। इन द्वादशभावना समान इस

जीवका अन्य हित नाहीं है, द्वादशांगको सार है; यातैं द्वादश-भावना भावसहित इस संस्थानविचय धर्मध्यानमें चिंतवन करो।

अब अनित्यभावनाका ऐसा चिंतवन है देव मनुष्य तिर्यंक् ये समस्त देखतेदेखते जलका बुदबुदावत वा झागका पुंजवत् विनाशीक हैं देखतेदेखते विलायमान होते चले जाय हैं अर ये समस्त-ऋद्धिसंपदापरिकर स्वप्नके समान हैं ऐसैं विनशै है जैसैं स्वप्नमें देख्या फेरि नाहीं देखिये है। इस जगतमें धनयौवनजीवनपरिवार समस्त क्षणभंगुर हैं अर संसारी मिथ्यादृष्टी जीव इनहीकूं अपना स्वरूप अपना हित जाणि रहे हैं अपने स्वरूपकी पहिचान होय तो परकूं अपना कैसैं मानैं समस्त इन्द्रियजनित सौख्य जो ये दृष्टिगोचर हैं ते इन्द्रधनुषके रंगसमान देखतेदेखते विलाय जाय हैं यौवनका जोश संध्याकालकी लालीसमान क्षणक्षणमें विनशै है यातैं ये मेरा ग्राम, मेरा राज्य, मेरागृह, मेराधन, मेरा कुटुम्ब ऐसा विकल्प करना महामोहका प्रभाव है जे जे पदार्थ नेत्रनितैं दीखैं हैं ते ते समस्त विलाय जायंगे अर इनकूं देखने जाननेवाली इंद्रियां हैं ते अवश्य नष्ट होयंगी तातैं आत्माके हितमें शीघ्र ही उद्यम करो। जैसैं एक नावमें अनेकदेशके अनेक जातिके मनुष्य शामिल होय बैठे हैं पाछैं तीरपर जाय नानादेशनिप्रति गमन करै हैं तैसैं कुलरूप नावमें अनेकगतिनितैं आये प्राणी शामिल आय वसे हैं पाछैं आयु पूर्ण भये अपनेअपने कर्मके अनुसार च्यारोंगतिमें जाय प्राप्त होय है अर जिसदेहके सम्बन्धतैं स्त्रीपुत्रमित्रबांधवादिकनिकूं मानि रागी होय रहे हो सो देह अग्निमें भस्म होयगी वा माटीमें

लीन होगया तथा जीव खायगा तो विष्टा वा कृमिकलेवररूप होय एक एक परमाणु जमीन आकाशमें अनंतविभागरूप होय बिखरि जांयगे फिर कहां मिलैगा तातैं इनका सम्बन्ध फिर नाहीं प्राप्त होयगा ऐसा निश्चय जानि स्त्रीपुत्रमित्रकुटुम्बादिकमें ममताधारि धर्मबिगाड़ना बड़ा अनर्थ है। बहुरि जिस पुत्र स्त्री भ्राता मित्र स्वामी सेवकादिकनिके शामिल रहि सुखस्यूं जीवन चाहो हो ते समस्त कुटुम्बके लोग शरद्कालके बादलेनिकी ज्यों बिखरि जायंगे ये सम्बन्ध अवार दीखै है सो बना नाहीं रहैगा शीघ्र ही बिखरैगा ऐसा नियम जानो। बहुरि जिस राज्यके अर्थि वा जमीनके अर्थि तथा हाट हवेली मकान तथा आजीविकाके अर्थि हिंसा असत्य कपट छलमें प्रवृत्ति करो हो भोलेनिकूं ठिगो हो जोरावर होय निर्बलनिकूं मारि खोसो हो तिन समस्त परिग्रहका सम्बन्ध तुम्हारै शीघ्र विनशैगा अल्पजीवनके निमित्त नरकतिर्यंच गतिका अनंतकालपर्यंत अनंतदुःखनिका संतान ग्रहण मति करो इनका स्वामीपनाका अभिमानकरि अनेक विलायगये अर अनेक प्रत्यक्ष विनशते देखो हो; यातैं अब तो ममताछांडि अन्यायका परिहार करि अपनी आत्माके कल्याण होनेके कार्यमें प्रवर्तन करो। बंधुमित्रपुत्रकुटम्बादिकसहित बसना है सो जैसैं ग्रीषमऋतुमें मार्गमार्गनिके बीच एक वृक्षकी छायामें अनेकदेशके पथिक विश्रामलेय अपनेअपने स्थान जाय हैं तैसैं कुलरूपवृक्षकी छायामें ठहरि कर्मके अनुकूल अनेक गतिनिमें चलेजाय हैं। बहुरि जिनकूं अपनी प्रीति मानो हो सो हू एक मतलबके हैं नेत्रनिका [illegible] ज्यों [illegible] प्रीतिभ। राग नष्ट होय है बहुरि [illegible]

वृक्षविषै पक्षी पूर्वैं संकेत किये विना ही आय बसैं हैं तैसें कुटु-म्बके जन संकेतविना ही कर्मके वशतैं भेले होय बिखरैं हैं। ये समस्त धन संपदा आज्ञा ऐश्वर्य राज्य इंद्रियनिके विषयनिकी सामग्री देखते देखते अवश्य वियोगनैं प्राप्त होयगे यौवन मध्या-न्हकी छायाकी ज्यों ढलि जायगा, थिर नाहीं रहैगा चन्द्रमा सूर्य ग्रह नक्षत्रादिक तो अस्त होय फिर उदय होय हैं अर हिम वसंता-दिकऋतु हू जाय जाय फिर फिर आवैं हैं परन्तु गई हुई इंद्रिय-यौवनआयुकायादिक फिर उलटे नाहीं आवै हैं जैसैं पर्वततैं पडती नदीकी तरंग अरोक चली जाय है तैसै आयु क्षणक्षणमें अरोक व्यतीत होय है अर जिसदेहके आधीन जीवना है तिस देहकूं जरजरा करती जरा समयसमय आवै है कैसीक है जरा यौबनरूप वृक्षके दग्ध करनेकूं दावाग्निसमान है, सौभाग्यरूप पुष्पनिकूं ओलानिकी वृष्टि है, स्त्रीनिकी प्रीतिरूपहरणीकूं व्याघ्र समान है ज्ञाननेत्रके मूंदनेकूं धूलिकी वृष्टिसमान है, तपरूपकमलके वनकूं हिमानीसमान है, दीनता उत्पन्न करनेकी माता है, तिरस्कार बधा-वनेकूं धाई समान है, उच्छाव घटावनेकूं तिरस्कार है रूपधनके चोरनेवाली बलकूं नष्ट करनेवाली जंघाबल विगाड़नेवाली आलस्य बधावनेवाली स्मृति नष्टकरनेवाली या जरा है, मौतके मिलावनेकी दूती ऐसी जराके प्राप्त होते हू अपना आत्महितकूं विस्मरण होय स्थिर हो रहे हो सो वड़ा अनर्थ है वारम्वार मनुष्यजन्मादिक सामग्री नाहीं मिलेगी। वहुरि जेते नेत्रादिकइन्द्रियनिका तेज है सो क्षणक्षणमें नष्ट होय है समस्तसंयोग वियोगरूप जानहु इनि इंद्रि-यनिके विषयनिमे राग करि कौन कौन नष्ट नाहीं भये यह समस्त

विषय भी विलाय जायगा अर इन्द्रिय हू नष्ट होजायंगीं कौनके अर्थि आत्महित छांडि घोर पापरूप दुर्ध्यान करो हो ? विषयनिमें रागकरि अधिक अधिक लीन हो रहे हो, ये समस्तविषय तुम्हारा हृदयमें तीव्रदाह उपजाय विनशैंगे इस शरीरको रोगनिकरि निरंतर व्याप्त जानहू अर जीवनिकूं मरणकरि व्याप्त जानहू, ऐश्वर्य विनाशके सन्मुख जानहू, ये संयोग हैं तिनका नियमसूं वियोग होयगा ये समस्तविषय हैं ते आत्माके स्वरूपकूं भुलावनेवाले हैं इनमें राचि तीनलोक नष्ट होयगया जो विषयनिके सेवनेतैं सुख चाहना है सो जीवनके अर्थि विष पीवना है तथा शीतल होनेके अर्थि अग्निमें प्रवेश करना है तथा मिष्ट भोजनकेअर्थि जहरके वृक्षकूं सींचना है, ये विषय महा मोहमदके उपजावनेवाले हैं इनूं का राग छांडि आत्माका कल्याण होनेमें यत्न करो, अचानक मरण आवैगा फिर मनुष्यजन्म यो जिनेन्द्रको धर्म गयां पाछैं मिलना अनंतकाल में दुर्लभ है, जैसैं नदीकी तरंग निरंतर चली जाय है उलटी नाहीं आवै है तैसैं आयु कायरूप बल लावण्य इन्द्रियशक्ति गये हुवे नाहीं बाहुडेंगे अर जो ये प्यारे स्त्रीपुत्रादिक दृष्टिगोचर दीखै हैं तिनका संयोग नाहीं बण्या रहैगा, स्वप्नका संयोग समान जानहू, इनके अर्थि अनीति पाप छांडि शीघ्र व्रत संयमादिक धारण करो। यो जगत इन्द्रजालवत् लोकनिके भ्रम उपजावनेवाला है इस संसारमें धन यौवन जीवन स्वजन परजन का समागममें जीव अंध होरह्या है सो धनसंपदा चक्रवर्तीनिके स्थिर नाहीं रही है तो अन्य पुण्यहीननिकै कैसैं स्थिर रहैगी अर यौवन है सो जराकरि नष्ट होयगा जीवना मरणसहित है, स्वजन

परजन वियोगके सन्मुख,है कौनमें स्थिरबुद्धि करो हो, यो देह है ताकूं नित्य स्नान करावो हो सुगंध लगावो हो आभरणवस्त्रादिककरि भूषित करो हो, नानाप्रकार भोजनपान करावो हो, वारंवार याहीका दासपनामें काल व्यतीत करो हो, शय्या आसन काम भोग निद्रा शीत उष्ण अनेक उपकारकरि याकूं पुष्ट करो हो अर याका रागतैं ऐसे अंध होरहे हो जो भक्ष्यअभक्ष्य योग्यअयोग्य न्याय अन्यायका विचाररहित होय अपना धर्म विगाड़ना, यश विनाशना, मरण होना, नरक जावना निगोदवास करना समस्त नाहीं गिणो हो सो यो शरीर जलका भरया काचा घड़ाकी ज्यों शीघ्र विनशैगा इस देहका उपकार कृतघ्नका उपकारकी ज्यों विपरीत फलैगा सर्प्पकूं दुग्धमिश्रीका पान करानेकी ज्यों अपने महादुःख रोग क्लेश दुर्ध्यान असंयम कुमरण नरकमे पतनका कारण निश्चयतैं जानो इस शरीरकूं ज्यों ज्यों विषयादिककरि पुष्ट करोगे त्यों त्यों आत्माका नाश करनेमें समर्थ होयगा, एकदिन भोजन नाहीं घोगा तो बड़ा दुःख देवैगा,जे जे शरीरमें रागी भये हैं ते ते संसारमें नष्ट होय आत्मकार्य विगाड़ि अनंतानंतकाल नरकनिगोदमें भ्रमें हैं अर जे या शरीरकूं तपसंयममे लगाय कृश किया तिनूनै अपना हित कीया है। अर ये इंद्रियां हैं ते ज्यों ज्यों विषयनिकूं भोगैं हैं त्यों त्यों तृष्णा बधावैं हैं जैसैं अग्नि ईंधनकरि तृप्ति नाहीं होय है तैसैं इन्द्रियां विषयनिकरि तृप्त नाहीं होय हैं। एक एक इन्द्रियके विषयकी वांछाकरि बड़े बड़े चक्रवर्ती राजा भ्रष्ट होय नरक जाय पहुंचे अन्यकी कहा कहिये। इन इन्द्रियनिकूं दुःखदाई पराधीन करनेवाली नरक पहुं-

वानेवाली जानि इन्द्रियनिका राग छांडि इनकूं वश करो संसारमें जेते निंद्यकर्म करिये है तेते समस्त इन्द्रियनिके आधीन होय करि ही करे हैं यातैं इन्द्रियरूप सर्पनिके विषतैं आत्माकी रक्षा ही करो। बहुरि या लक्ष्मी है सो हू क्षण-भंगुर है, या लक्ष्मी कुलीनमें नांहीं रमै है, धीरमें शूरमें पंडितमें मूर्खमें रूपवानमें कुरूपमें पराक्रमीमें कायरमें धर्मात्मामें अधर्मीमें पापीमें दानीमें कृपणमें कहां हू नाहीं रमै है या तो पूर्वजन्ममें पुण्य कीयो ताकी दासी है कुपात्रदानादिक कुतप करि उपजी हुई प्राणनिकूं खोटे भोगनिमें कुमार्गमें मदनिमें लगाय दुर्गति पहुंचानेवाली है इस पंचमकालके मध्य तो कुपात्रदानकरि कुतपस्याकरि ही लक्ष्मी उपजैं है सो बुद्धिकूं विगाड़ि महादुःखतैं उपजै महादुःखतैं भोगै पापमें लागै वा दानभोगविना छांडि मरणकरि आर्तध्यानमें तिर्यंचगतिमें उपजावै है यातैं इस लक्ष्मीकूं तृष्णा बधावनेवाली मद उपजावनेवाली जानि दुःखित दरिद्रीनिके उपकारमें धर्मके बधावनेवाले धर्मके आयतननिमें विद्या पढ़ावनेमें वीतरागसिद्धांत लिखावनेमें लगाय सफल करो न्यायके प्रामाणीक भोगनिमें जैसैं धर्म नाहीं बिगड़ै तैसे लगावो या लक्ष्मी जलतरंगवत अस्थिर है अवसरमें दान उपकार करलो। परलोक लार जायगी नाहीं, अचानक छांडि मरण करोगे। जो निरन्तर या लक्ष्मीकूं संचय करै है दानभोगनिमें हूं नाहीं लगावै है सो आपकूं आप ठिगै है जे पापके आरम्भकरि लक्ष्मीकूं संचय करी महामूर्छाकरि उपार्जन करी ताकूं अन्यके हाथ दीनी वा अन्यदेशमें व्यापारादिककरि बधावनेके अर्थि स्थापन करी तथा जमीनमें अतिदूरि गाड़ि मेली अर

रातदिन याहीका चिंतवन करता दुर्ध्यानतैं मरणकरि दुर्गति जाय पहुँचै है कृपणकै लक्ष्मीका रखवालापणा वा दासपणा जानना दूर जमीनमें गाड़ी लक्ष्मीकूं तो पाषाणसमान करी जैसें भूमिमें अन्य पाषाण गडे हैं तैसें लक्ष्मी हू जानों तथा राजानिका वा दाईयादारनिका तथा कुटुम्बीनिका कार्य साध्या आपका देह तो भस्म होय उड़िजायगा सो प्रत्यक्ष नाहीं दीखै है कहा ? इस लक्ष्मी समान आत्माकूं ठिगनेवाला कोऊ अन्य नाहीं है अपना समस्त परमार्थकूं भूलि लक्ष्मीका लोभका मार्‍या रात्रि और दिन घोर आरम्भ करै अवसरमें भोजन नाहीं करै है शीत उष्णवेदना सहै है रोगादिकका कष्टकूं नाहीं जानै है चिंतावान हुवा रात्रिकूं निद्रा नाहीं लेवै है लक्ष्मीका लोभी अपना मरण होनेकूं नाहीं गिनै है संग्रामके घोर संकटमें जाय है समुद्रनिमें जाय है, घोर भयानक-वनपर्वतनिमें जाय है धर्मरहित देशनिमें जाय है जहां अपना कोऊ जातिका कुलका घरका दीखिये नाहीं ऐसे स्थानमें केवल लक्ष्मीका लोभकरि भ्रमण करता करता मरणकरि दुर्गतिमें जाय पहुँचै है लोभी नाहीं करनेका तथा नीच भील चांडालनिके करनेयोग्य कार्यनिकूं करै है तातैं अब जिनेन्द्रके धर्मकूं प्राप्त होय संतोष धारणकरि अपनापुण्यके अनुकूल न्यायमार्गतैं प्राप्त हुआ धनकूं संतोषी हुवा तीव्रराग छांडि न्यायके विषय भोगो। दुखित बुभुक्षित दीन अनाथनिके उपकारके निमित्त दानसन्मानमें लगावो या लक्ष्मी अनेकनिकूं ठिगि दुर्गति पहुंचाये हैं लक्ष्मीका संगमकरि जगतके जीव अचेत हो रहे हैं अर या पुण्य अस्त होते ही अस्त हो जायगी लक्ष्मीकूं संग्रहकरि मरजाना ऐसा फल लक्ष्मीका

नाहीं है याका फल केवल उपकार करना धर्मका मार्ग छलावना है, या पापरूप लक्ष्मीकूं नाहीं ग्रहण करैं हैं ते धन्य हैं अर ग्रहण करके हू ममता छांडि क्षणमात्रमें त्याग दीनी ते हू धन्य हैं ऐसैं बहुत कहा लिखिये। यह धन यौवन जीवन कुटुम्बसंगमकूं जलके बुदबुदा समान अनित्य जानि आत्माके हितरूप कार्यमें प्रवर्तन करो। संसारके जेते संगम है ते ते समस्त विनाशीक हैं ऐसे अनित्यभावना भावो अर जो पुत्र पौत्र स्त्री कुटुम्बादिक हैं ते किसीकी लार परलोक गये नाहीं अर जांयगे नाहीं अपना उपार्जन किया पुण्य पापादिककर्म लार रहैगा अर ये जाति कुल रूपादिक तथा देश नगरादिकनिका समागम देहकी लार ही विनशैगा तातैं अनित्यभावना क्षणमात्र हू विस्मरण मति होहू जातैं परसूं ममत्व छूटि आत्मकार्यमें प्रवृत्ति होय। ऐसैं अनित्यभावना वर्णन करी ॥ १ ॥

अब अशरणभावना भावहु—इस संसारमें ऐसा कोऊ देव दानव इन्द्र मनुष्य नाहीं है जाके ऊपरि यमराजकी फांसी नाहीं परी है कालकूं प्राप्त होतें कोऊ शरण नाहीं है आयु पूर्ण होनेके कालमें इन्द्रका पतन क्षणमात्रमें होय है जाका असंख्यात देव आज्ञाकारी सेवक अर हजारां ऋद्धिकरि संयुक्त अर स्वर्गका असंख्यातकालतैं निवास अर रोगादिक क्षुधा तृषादिक उपद्रवरहित शरीर अर असंख्यात बलपराक्रमका धारक इन्द्र हीका पतन हो जाय तो अन्य शरण कोऊ है नाहीं। जैसें निर्जनवनमें व्याघ्रकरि ग्रहणकिया मृगका बच्चाकूं कोऊ रक्षाकरनेकूं समर्थ नाहीं है तैसैं मृत्युकरि ग्रहण किया प्राणीकूं कोऊ रक्षा करनेकूं

समर्थ नाहीं है। इस संसारमें पूर्वें अनंतानंतपुरुष प्रलयकूं प्राप्त हो गये यहां कौन शरण है कोऊ ऐसा औषध मंत्र तंत्र क्रिया देव दानवादिक है नाहीं जो एक क्षणमात्र हू कालतैं रक्षा करै जो कोऊ देव देवी वैद्य मन्त्र तन्त्रादिक एक मनुष्यकूं हू मरणतैं रक्षा करता तो मनुष्य अक्षय हो जाते तातैं मिथ्याबुद्धिकूं छाडि अशरण भावना भावो। मूढलोक ऐसा विचार करै है जो मेरा हितूका इलाज नाहीं भया, औषध नाहीं दी, कोऊ देवताका शरण नाहीं ग्रहण किया, बिना उपाय मरगया ऐसें अपना स्वजनका शोच करै है अर अपना शोच नाहीं करै है जो मैं हू यमकी डाढके बीच बैठा हूँ जो काल कोटिन उपायकरि इंद्रनिकरि नाहीं रुक्या ताकूं मनुष्यरूप कीड़ा कैसें रोकैगा? जैसें परके मरण प्राप्त होते देखिये है तैसें मेरे हू अवश्य प्राप्त होयगा, जैसें अन्य जीवनिके स्त्री पुत्रादिकका वियोग देखिये तैसें मेरे हू वियोगमें कोऊ शरण नाहीं। बहुरि अशुभकर्मका उदीरण होते ही बुद्धि नष्ट होय है, प्रबल कर्मका उदय होते एक हू उपाय नाहीं चलै है, अमृत विष होय परिणमें है, तृण हू शस्त्र होय परिणमें हैं, अपने निजमित्र वैरी होय परिणमें हैं अशुभका प्रबल उदयके वशतैं बुद्धि विपरीत होय आप ही आपका घात करै है,अर शुभकर्मका उदय होय तब मूर्खके हू प्रबलबुद्धि प्रकट होय है, बिना किये अनेक उपाय सुखकारी आपतैं ही प्रगट होय हैं, बैरी हू मित्र होय परिणमें है, विष हू अमृतमय परिणमें है, जब पुण्यका उदय होय तब समस्त उपद्रवकारी वस्तु हू नानाप्रकार सुख करनेवाली होय है तातैं पुण्यकर्म ही शरण है पापके उदयकरि हस्तमें प्राप्तहुआ हू धन क्षण-

मात्रमें नष्ट होय है अर पुण्यके उदयतैं अति दूर तिष्ठती वस्तु हू प्राप्त होय है लाभांतरायका क्षयोपशम होय तदि विना यत्न ही निधि रत्न प्रकट होय है बहुरि पापउदय होय तब सुन्दर आचरण करता होय ताकूं हू दोष कलङ्क लागै है, अपवाद अपयश होय है अर यशनामकर्मका उदयकरि समस्तअपवाद दूरि होय दोष हू गुणरूप परिणमें हैं। संसार है सो पुण्यपापका उदयरूप है परमार्थतैं दोऊ उदयकूं परका किया आपतैं भिन्नजानि ज्ञायक रहो हर्षविवाद मति करो पूर्वैं बंध किया सो अब उदय आगया सो अपना किया दूरि होय नाहीं उदय आये पाछैं इलाज नाहीं कर्मका फल जो जन्मजरामरण रोगचिंता भयवेदना दुःखकूं प्राप्त होते कोऊ रक्षा करनेवाला मंत्रतंत्र देवदानव औषधादिक समर्थ नाहीं होय है कर्मका उदय आकाशपातालमें कहीं ही नाहीं छोड़ेहै औषधादिक बाह्य निमित्त हू अशुभकर्मका उदयकूं मन्द होतैं उपकार करैं हैं दुष्ट चोर भील वैरी तथा सिंह व्याघ्र सर्पादिक तौ ग्राममें वनमें मारैं जलचरादिक जलमें मारै अर अशुभकर्मका उदय जलमें स्थलमें वनमें समुद्रमें पहाड़में गढ़में घरमें शय्यामें कुटुम्बमें राजादिक सामंतनिके वीच शस्त्रनिकरि रक्षाकरते हू कहांही नाहीं छांडे है। इसलोकमें ऐसे स्थान हैं जिनमें सूर्य चन्द्रमाका उद्योत तथा पवन तथा वैक्रियिकऋद्धिधारी हू गमन नाहीं कर सकें हैं परन्तु कर्मका उदय तो सर्वत्र गमन करै है प्रवल कर्मका उदय होते विद्या मन्त्र वल औषधि पराक्रम निजमित्र सामंत हस्ती घोड़ा रथ पियादा गढ़ कोट शस्त्र उपाय साम दाम दण्ड भेदादिक समस्त उपाय शरण नाही हैं जेसैं उदय होता

सूर्यकूं कौन रोकै तैसैं कर्मका उदयकूं अरोक जानि साम्यभावकी शरण करो तौ अशुभकर्मकी निर्जरा होय आगानै नवीनबंध नाहीं होय रोगवियोग दरिद्रमरणादिकनितैं भय छांडि परमधैर्य ग्रहण करो यो अपना वीतराग संतोषभाव परमसमताभाव यो ही शरण है अन्य नाहीं इस जीवका उत्तमक्षमादिक भाव आपकूं शरण है क्रोधादिकभाव इसलोक परलोकमे इस जीवका घातक है इस जीवके कषायनिकी मन्दता इसलोकमें हजारां विघ्नोंका नाश करता परमशरण है परलोकमें नरक तिर्यंचगतिमें रक्षा करै है मंदकषायीका देवलोकमें तथा उत्तम मनुष्यनिमें उपजना होय है अर जो पूर्वकर्मका उदयमें आर्त्त रौद्र परिणाम करोगे तो उदीरणाकूं प्राप्त हुवा कर्मके रोकनेकूं कोऊ समर्थ है नाहीं केवल दुर्गतिका कारण नवीनकर्म और बंधेगा कर्मके उदय आवनैके कारण बाह्य सहकारी क्षेत्र काल भाव मिलै पाछैं कर्मके उदयकूं इंद्र जिनेंद्र मणि मंत्र औषधादिक कोऊ रोकनेकूं समर्थ है नाहीं रोगनिका इलाज तो जगतमें औषधादिक देखिये है परन्तु प्रबल कर्मका उदयके रोगनिकूं औषधादिक समर्थ नाहीं होय है विपरीत होय परिणमै हैं। इस जीवके असातावेदनीयकर्मका उदय प्रबल होय तदि औषधादिक विपरीत होय परिणमें असाताका मंदउदय होय वा उपशम होय तदि औषधादि उपकार करै है क्योंकि मंद उदयके रोकनेकूं समर्थ तो अल्पशक्तिका धारक हू होय है प्रबल बलका धारककूं अल्पशक्तिका धारक रोकनेकूं समर्थ नाहीं होय है अर इस पंचकालमें अल्प ही तो बाह्य द्रव्य क्षेत्रादिक सामग्री है अल्प ही ज्ञानादिक है अल्पही पुरुपार्थ है अर अशुभका उदय

आवनेका बाह्य सामग्रीका सहाय प्रबल है तातैं अल्पसामग्री अल्पपुरुशार्थतैं प्रबलअसाताका उदयकूं कैसैं जीतै ? जैसैं प्रबल- नदीका प्रवाह ढाहा उपाड़ता चल्या आवै ताकै सन्मुख तिरण- विद्यामें समर्थ हू पुरुष तिर नाहीं सकै है, नदीका प्रवाहका वेग मंद वहता होय तदि तिरणेकी कलाका धारक तिरकरि पार हो जाय है;तातैं प्रवलकर्मका उदयमें आपकूं अशरण चिंतवन करो। यहां पृथ्वी अर समुद्र दोऊं वड़े हैं सो पृथ्वीके पार होनेकूं अर समुद्रके तिरणेकूं हू समर्थ अनेक देखिए है परन्तु कर्मउदयके तिरणेकूं समर्थ होना नाहीं देखिए है। इस संसारमें एक सम्य- ग्ज्ञान शरण है तथा सम्यग्दर्शनशरण है तथा सम्यक्चारित्र सम्यक्- तपसंयम शरण है इन चार आराधना बिना अनन्तानन्त कालमें कोऊ शरण नाहीं है तथा उत्तमक्षमादिक दशधर्म प्रत्यक्ष इस लोकमें समस्त क्लेशदुःख मरण अपमान हानितैं रक्षा करनेवाला है इस मंदकषायका फल तो स्वाधीन सुख अर आत्मरक्षा अर उज्वलयश क्लेशरहितपना उच्चता इसलोकमें प्रत्यक्ष देखि याका शरण ग्रहण करो अर परलोकमें याका फल स्वर्गलोकमें होना है। बहुरि व्यवहारमें चार शरण हैं अरहंत, सिद्ध, साधु, केवलीका प्रकाश्या धर्म; ये शरण जानना जातैं इनका शरणविना आत्मा उज्वलताकूं नाहीं प्राप्त होय है ऐसैं अशरण भावना वर्णन करी ॥ २ ॥

अब संसारभावनाका स्वरूप वर्णन करैं हैं—इस संसारमें अनादिकालका मिथ्यात्वके उदयकरि अचेतभया जीव जिनेन्द्र सर्वज्ञवीतरागका प्ररूपण किया सत्यार्थधर्मकूं नाहीं प्राप्त होय

ब्यारू'गतिनिमें परिभ्रमण करै है संसारमें कर्मरूप दृढ़बंधनकरि बंधा पराधीन हुवा त्रसस्थावरनिमें निरन्तर घोरदुःख भोगता बारम्बार जन्ममरण करै है अर जे जे कर्मका उदय जाय रस देहैं तिनके उदयमें आपा धारणकरि अज्ञानी जीव अपना स्वरूपकूं छांडि नवीन नवीन कर्मका बंधकूं करैं हैं अर कर्मके बंधके आधीन हुवा प्राणीनिकै ऐसी कोऊ दुःखकी जाति बाकी नाहीं रही जो नाहीं भोगी, समस्तदुःखनिकूं अनंतानंत बार भोगते अनंतानंतकाल व्यतीत हो गया ऐसे अनंतपरिवर्तन संसारमें इस जीवकै व्यतीतभये हैं। ऐसा कोऊ पुद्गल संसारमें नाहीं रह्या जाकूं जीव शरीररूप आहाररूप ग्रहण नाहीं किया अनन्तजातिके अनन्तपुद्गलनिका शरीर धारया, आहाररूप भोजनपानरूप हू किये। तीनसैं तीयालीस घनराजू प्रमाण लोकमें ऐसा कोऊ क्षेत्रको एक प्रदेश हू नाहीं है जहां संसारी जीव अनन्तानन्त जन्ममरण नाहीं किये अर उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालका ऐसा कोऊ एक समय हू बाकी नाहीं रह्या है जिस समयमें यो जीव अनन्तवार नाहीं जन्म्या अर नाहीं मरया अर नरक तिर्यंच मनुष्य देव इन चारों पर्यायनिमे यो जीव जघन्यआयुतैं लेय उत्कृष्टआयु पर्यन्त समस्तआयु का प्रमाण धारण करि करि अनन्तवार जन्म धारया है एक अनुदिशअनुत्तरविमाननिमें तो नाहीं उपज्या क्योंकि उन चौदह विमाननिमें सम्यग्दृष्टि बिना अन्यका उत्पाद नाहीं सम्यग्दृष्टिकै संसारपरिभ्रमण नाहीं है। बहुरि कर्मकी स्थितिबंधके स्थान तथा स्थितिबंधकूं कारण असंख्यातलोकप्रमाण कषायाध्यवसायस्थान तिनकूं कारण असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागबंधाध्यवसायस्थान

तथा जगतश्रेणीके संख्यातवें भाग योगस्थान ऐसा कोऊ भाव बाकी नाहीं रह्या जो संसारीके नाहीं भया। एक सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्रके योग्य भाव नाहीं भये अन्य समस्तभाव संसारमें अनंत वार भये हैं जिनेंद्रके वचनका अवलम्बनरहित पुरुषनिकी मिथ्या ज्ञानके प्रभावतैं विपरीतबुद्धि अनादिकी हो रही है सो सम्यक् मार्गकूं नाहीं ग्रहण करता संसाररूप वनमें नष्ट हुआ निगोदमें जाय प्राप्त होय है कैसीक है निगोद जातैं अनन्तानन्त कालमें हू निकसना अतिकठिन है अर कदाचित्त पृथ्वीकायमें जलकायमें अग्निकायमें पवनकायमें प्रत्येक साधारण वनस्पतिकायमें समस्त ज्ञानकी नष्टतातैं जड़रूप हुवा एक स्पर्शनइन्द्रियद्वारैं कर्मका उदय के आधीन हुआ आत्मशक्तिरहित जिह्वा घ्राण नेत्र कर्णादिक इंद्रियरहित हुआ दुःखमय दीर्घकाल व्यतीत करै है अर वेन्द्री त्रीद्रिय चतुरिंद्रियरूप विकलत्रयजीव आत्मज्ञानरहित केवल रसनादिक इंद्रियनिका विषयनिका अतितृष्णाका मारया उछलि-उछलि विषयनिके अर्थि पड़िपड़ि मरै है। बहुरि असंख्यातकाल विकलत्रयमें फिर ऐकेन्द्रियनिमें फिर-फिर बारम्बार अरहंटकी घड़ीकी ज्यों नवीन नवीन देह धारण करता चारों गतिनिमें निरन्तर जन्म-मरण क्षुधा-तृषा रोग वियोग सन्ताप भोगता परिभ्रमण अनन्तकालतैं करै है याहीका नाम संसार है। जैसैं तप्तायमान आधणमें तन्दुल सर्वतरफ दौड़तासन्ता सीझै है तैसैं संसारीजीव कर्मकरि तप्तायमान हुआ परिभ्रमण करै है आकाशमें गमन करते पक्षीनिकूं अन्यपक्षी मारैं हैं जलमें विचरते मच्छादिकनिकूं अन्य मच्छादिक मारै हैं स्थलमें विचरते मनुष्यपशुआदिकनिकूं

स्थलचारी सिंह व्याघ्र सर्पादिक दुष्ट तिर्यंच तथा भील म्लेच्छ चोर लुटेरा, महानिर्दई मनुष्य, पशु मारैं है, इस संसारमें समस्त स्थाननिमें निरन्तर भयरूप हुआ निरन्तर दुःखमय परिभ्रमण करैं हैं, जैसैं शिकारीका उपद्रवकरि भयभीत हुआ सूस्या (शशक) फाड्या हुआ अजगरका मुखकूं बिल जानि प्रवेश करै है तैसैं अज्ञानीजीव क्षुधा तृषा कामकोपादिक तथा इन्द्रियनिके विषयनि की तृष्णाकी आतापकरि संतापित हुआ विषयादिकरूप अजगर का मुखमें प्रवेश करै हैं, विषयकषायनिमें प्रवेशकरना सो ही संसाररूप अजगरका मुख है यामें प्रवेशकरि अपने ज्ञानदर्शन सुखसत्तादिक भावप्राणनिकूं नाशकरि निगोदमें अचेतनतुल्य हुआ अनन्तवार जन्ममरण करता अनंतानंतकाल व्यतीत करै है तहां आत्मा अभावतुल्य ही है, ज्ञानादिक अभाव भया तदि नष्ट ही भया निगोदमे अक्षरके अनंतवें भाग ज्ञान है सो सर्वज्ञ करि देख्या है अर त्रसपर्यायमे हू जेते दुःखके प्रकार है ते ते दुःख अनंतबार भोगै हैं ऐसी कोऊ दुःखकी जाति बाकी नाहीं रही, जो या जीवनै संसारमें नाहीं पाई, इस संसारमे यो जीव अनंतपर्याय दुःखमय पावै तदि कोई एक बार इंद्रियजनित सुखकी पर्याय पावै है सो हू विषयनिका आतापसहित भयशंकासंयुक्त अल्पकाल पावै, फिर अनंतपर्याय दुःखकी पाय फिरि कोऊ एक पर्याय इंद्रियजनित सुखकी कदाचित् प्राप्त होय है।

अब चतुर्गतिका किंचित्स्वरूप परमागमके अनुसार चिंतवन करिये है—नरककी सप्त पृथ्वी हैं तिनमे गुणंचास पटल है तिन पटलनिमें चौरासीलाख बिल है तिनहीकूं नरक कहिये है, तिनकी

वज्रमयभूमि भींति छति है केई विल संख्यातयोजनके चौड़े लम्बे हैं, केई असंख्यातयोजन के लम्बे चौड़े हैं, तिन एक एक बिलनिकी छातिविषै नारकीनिके उत्पत्तिके स्थान हैं, ते छोटे मुखके उष्ट्रमुखके आकारादिक लिये औंधेमुख हैं, तिनमें नारकी उपजि नीचैं मस्तक अर ऊंचेपगतैं आय वज्राग्निमय पृथ्वीमें पडिकरि जैसैं जोरतैं पडी दडी पडकरि झपा खाय उछलै है, तैसैं पृथ्वीमें पडि उछलते लोटते फिरै हैं कैसी है नरककी भूमि असंख्यातबीछूनिके स्पर्शनितैं असंख्यातगुणी वेदना करनेवाली है। तिन नरकनिके बिलनिमें ऊपरिकी च्यार पृथ्वीमें अर पंचमपृथ्वीके दोयलक्ष बिल ऐसे बीयालीस लाख बिलनिमें तो केवल आताप उष्णताकी वेदना है सो नरककी उष्णताके जणावनेकूं इहां कोऊ पदार्थ दीखनेमें जाननेमें आवै नाहीं जाकी सदृशता कही जाय, तो हू भगवानके आगममें ऐसा अनुमान उष्णताका कराया है जो लक्षयोजनप्रमाण मोटा लोहे का गोला छोड़िये तो भूमिकूं नहिं पहुँचतप्रमाण नरकक्षेत्रकी उष्णताकरि रसरूप होय बहि जाय है अर पंचमपृथ्वीका तिहाई अर छटी-सातवींका शीतबिलनिमें शीतकी ऐसी तीव्र वेदना है जो लक्षयोजनप्रमाण लोहका गोला धरिये तो एकक्षण मात्रमें शीतकरि खंडखंड होय बिखरिजाय है; ऐसी उष्णवेदना अर शीतवेदनाका भरा नरकमें कर्मकेवश भये जीव घोरदुःख असंख्यातकाल पर्यंत भोगैं हैं आयु पूर्णभयेविना मरणकूं प्राप्त नाहीं होय हैं ऐसी तो नरकमें घोर शीत उष्णकी वेदना है, अर क्षुधावेदना ऐसी है जो समस्त जगतके पाषाण मृत्तिकादिक भक्षण किये हू क्षुधावेदना नाहीं मिटै पर एक कणमात्र भक्षणकूं मिलै

नाहीं अर तृषावेदना ऐसी है जो समस्त समुद्रनिका जल पीवै तो हू तृषाकी वेदना नाहीं दूर होय पर एक बूंदमात्र जल जहां मिलै नाहीं, अर कोटयां रोगनिकी घोरवेदना जहां एक ही कालमें उत्पन्न होय है, जहां नवीन नारकीकूं देखि हजारां नारकी महाभयङ्कररूप अनेक आयुधनिकरि सहित मारल्यो, चीरो, फाडो, विदारो ऐसा भयङ्करशब्द करते चारों तरफतैं मारनेकूं आवैं हैं, कैसे हैं नारकी नग्नरूप अतिलूखा भयङ्कर श्यामरूप रक्तपीत वक्रनेत्रनिकरि क्रूर देखते, फाटे हैं मुख जिनके, लहलहाट करती विकराल जिह्वाकरि युक्त, करोतसमान तीक्ष्ण वक्र हैं दन्त जिनके तथा ऊंचे रक्तपीन-कठोरकेशनिकरि भयानक,तीक्ष्ण नख, महानिर्दयी, हुण्डकसंस्थान के धारक आयकरि केई मुद्गर मुसण्डीनिकरि मस्तकका चूर्ण करैं हैं तथापि नारकोनिका देह जैसैं जलके भरे द्रहमें जलकूं मूसलादिककरि कूटते जल उछलिकरि उसही द्रहमें शामिल आय पड़े है तैसैं नारकीनिका देह हू खंडखण्डरूप होय उछलि उछलि शामिल आय मिलै है,आयुपूर्ण हुआ विना मरण नाहीं होय है, तरवारनितैं खंड खंड करैं हैं,करोतनितैं चीरैं हैं,कुल्हाडेनितैं फोड़ैं हैं, बसोंलेनितैं छीलैं हैं,भालानितैं बेधैं हैं, शूलीनिमें पोवैं हैं,उदरादिक मरमस्थाननिकूं छेदैं हैं,विदारैं हैं,नेत्रनिकूं उपाड़ैं हैं,भाड़में भूंजैं है,कढाहेनिमे रांधैं हैं,घाणीनिमें पेलैं हैं, ऐसैं परस्पर नारकीनिकरि मारण ताडन त्रासन जो नरकमे है सो कोऊ कोटि जिह्वानिकरि कोटयांवर्षपर्यंत एक क्षणके दुःख कहनेकूं समर्थ नाहीं है।

नरकमें जो दुःखकारी सामग्री है ताका एक क्षण मात्र हू इस-

लोकमें नाहीं है जहां नरकभूमिकी सामग्री अर नारकीनिका विक-
रालरूप जो है जैसा काऊनैं एक क्षण स्वप्नमें दिखावै तो भयकरि
प्राणरहित हो जाय, अर नारकीनिकै रससामग्री ऐसी कड़वी है
इहां कांजीर विष हालाहलमें नाहीं नारकीनिके देहादिकनिका एक
कण यहां आवै तो जिनकी कड़वी गंधतैं यहांके हजारां पंचेन्द्री
जीव मरण कर जांय अर नरककी मृत्तिकाकी दुर्गंध ऐसी है जो
सातवां नरककी मृत्तिकाका एक कण यहां आ जाय तो साढा
चौईसकोसके चारूं तरफके पचेन्द्री जीव दुर्गंधतैं मरण करजांय
जातैं एक हू एक नरक पटलकी मृत्तिकाकी दुर्गंधमे आध-आध
कोसके अधिक अधिक जीव मारणेकी शक्ति है तातैं गुणंचासमां
पटलकी मृत्तिकाकी दुर्गंधिमें साढाचौईसकोसपर्यंतकी मारणशक्ति
कही है। वहुरि नरकमें वैतरणी नदी है ताका जल कैसाक है जाके
स्पर्शमात्रतैं नारकीनिके शरीर फाटि जाय हैं तिनमे क्षार विष
अग्निमय तप्ततेलके सींचनतै हू अपरिमाण बाधाका उपजावने
वाला है अर जहांकी पवन ऐसी है जो यहांके पर्वत स्पर्श होने
मात्रतैं भस्म होय उडि करि जगतमें विखर जांय अर नरककी
वज्राग्निकूं धारण करनेकूं यहां पृथ्वी पर्वत समुद्र कोऊ समर्थ
नाहीं। कहा स्वरूप वर्णन करिये नारकीनिके शब्द ऐसे भयङ्कर
अर कठोर हैं जो यहां श्रवण कर ले तो हस्तीनिके अर सिंहनिके
हृदय फाटि जांय तहां नारकीनिकूं कर्मरूप रखवाले सागरांपर्यंत
नाहीं निकसनैं दे हैं जहां निरन्तर मार मार सुनिये हैं रोवैं हैं पकड़ैं
हैं भागैं हैं घसीटे हैं चूर्णरूप करै हैं अर अंग फिर फिर पारेका ज्यों
मिलना चल्याजाय है कोऊ रक्षकनाहीं दयावाननाहीं राजानाहीं मित्र

नाहीं माता नाहीं पिता नाहीं पुत्रस्त्रीकुटुम्बादिक नाहीं केवल पाप का भोग है. कोऊ छिपानै स्थान नाहीं, कोऊसूं अपना दुःखदरद कहिये सो नाहीं केवल क्रूरपरिणामी महाभयङ्कर पातकी हैं जैसैं इहां दुष्ट श्वानादिक तिर्यंचनिके देखते प्रमाण वैर है तैसैं नारकीन के विनाकारणही परस्पर वैर है दुःखतैं भाग वनमें जाय तहां शाल्मलीवृक्षादिकनिके पत्र शरीरकूं वसोलेकुहाडेनिकी ज्यों काटने वाले आय पड़ै हैं तिनकरि अंग छिदि जाय कटि जाय है बहुरि वनहीमें वा गुफानिमेंतें सिंह व्याघ्रादिक निकसकरि अंगकूं विदारैं हैं जहां वज्रमई चूंचनिके धारक गृद्धादिकपक्षी नारकीन के अंगकूं फाड़ै हैं नेत्रादिक उपाड़ै हैं, उदर फाड़ि आंतां काढि ले हैं यद्यपि नरकमें तिर्यंच नाहीं हैं तथापि नारकी जीव विक्रिया करि तिर्यंचरूप हो जाय हैं नारकीनिके पृथक्जुदा शरीर करने की विक्रिया नाहीं है एक शरीर ही सिंह व्याघ्र श्वान गृद्ध काका-दिकनिका देह धारण करै है। नारकी शुभ क्रिया चाहैं तो हू शुभ नाहीं होय आपकूं अन्यकूं दुःखदाई ही परिणाम अर देह वेदनाविक्रिया करनेकूं समर्थ हैं, सुखकरनेवाली विक्रिया नाहीं होय परिणाम नाहीं होय देह नाहीं होय वेदना नाहीं होय ऐसा क्षेत्रजनित जीवनिके पापकर्मका उदय है। बहुरि नरकमें नारकीन के मारनेके नाना आयुध शूली पांच्यां अन्य लोहमय कांटा बनेके तपनेके बांधनेके नाना दुःखदायीपात्र देनेके स्वभावते होय हैं जहां सुखदायीसामग्री तो स्वप्नमैं हू नाहीं है जहां लोहमय पूतरी तातीकरि कूं [illegible] जिनका अंग ते [illegible] आदि नारकीनिकूं पचावै हैं जारै हैं जिनका स्पर्श कोटिवीछूनिके

स्पर्शसमान तथा वज्राग्नि समान तथा विषमय तीक्ष्णशस्त्रनिका स्पर्शमात्रतैं असंख्यातगुणी वेदना करै है जो नरकनिमें दुःखदायी सामग्री है तिसका स्वभावादिक दिखावनेकूं अनुभव करावनेकूं समस्त मध्यलोकमें कोऊ वस्तु दीखै नाहीं तथापि उनकी अधिकता दिखावनेकूं केतीक वस्तु वर्णन करी है अर नारकीनिका दुःख तो साक्षात् भगवानका ज्ञान जानै है तथापि नारकी होय भुगतै तदि यो जीव जानै है। नारकीनिका देह रुधिर मांस हाड चाम आदि सप्तधातुमय नाहीं है परन्तु उनके देहकै पुद्गल ऊंट श्वान मार्जारादिकनिके सड़े हुये कलेवर तिनतैं असंख्यातगुणे दुर्गंधयुक्त हैं अर असंख्यातगुणे दर्निरीक्ष्य घृणा करानेवाले हैं जिनका स्वरूप न देख्या जाय, न श्रवण किया जाय न गंध ग्रहण किया जाय मनुष्यादिक तो देखतप्रमाण दुर्गंधि आवतप्रमाण प्राणरहित हो जाय। पूर्वजन्ममें परिणामनितैं खोटे नरकका आयु बांधि उपजै हैं ते असंख्यातकाल पर्यंत दुःख भोगैं हैं बहुत आरम्भ करनेवाले बहुतपरिग्रहमें आसक्त घोरहिंसकपरिणामी विश्वासघाती धर्मद्रोही गुरुद्रोही स्वामिद्रोही कृतघ्नी परधन परस्त्रीके लोलुपी अन्यायमार्गी धर्मात्माकै त्यागीनिकै कलङ्क लगावने वाले यतीनिका घात करनेवाले ग्रामनिमें घास तृणादिक वृक्षनिमें अग्नि लगानेवाले देवद्रव्य चोरनेवाले तीव्रकषायी अनन्तानुबंधीकषायके धारक कृष्णलेश्याके धारक सुन्दर आहारादिमिलते हू जिह्वाइन्द्रियकी लोलुपतातैं मांसके भक्षक मद्यपायी वेश्यानुरागी परविघ्नसंतोषी लम्पटी तीव्रलोभी दुराचारके धारक मिथ्यात्व-अन्यायअभक्ष्यकी प्रशंसा करनेवालेनिका नरक गमन होय है।

विषादिक मिलावना, विषादिक उपजानेवाले, वनकटी करावने वाले वनमें दावाग्नि लगानेवाले जीवनिकूं बाड़ामें बांधि दग्ध करनेवाले हिंसाके तीव्रकर्मकी परिपाटीके चलानेवालेनिका नरक-गमन होय है। नरकमें अम्बावरीसादिक दुष्ट असुरकुमार तीसरी पृथ्वीताईं जायं लड़ावैं हैं कोऊ नारकीनिकूं तीजी पृथ्वीताईं पूर्वले सम्बन्धी देव आय धर्मका उपदेश भी देय हैं किसीके पूर्वलापापनिकी निंदा भी होय है बड़ा पश्चात्ताप होय है जो म्हानै पूर्वै सत्पुरुषां शिक्षा घणी ही करी अरे अनीति मार्ग मति लागो, बहुत उपदेश भी दिया परन्तु मैं पापी विषयकषायनिमें मदकरि अन्धा भया शिक्षा ग्रहण नाहीं करी अब मैं दैवबल, पौरुषबलकरि रहित कहा करूं ? जे पापी दुरा-चारी पापमें प्रेरणा करनेवाले व्यसनी अनीतिके पुष्ट करनेवाले हमकूं नरकमें प्राप्त किये ते पापी न जानिये देहछांडि कहां जांयगे हमारी लार कोऊ दीखे नाहीं हमारे धनभोगनेमें विषयसेवनमें सहाई पापके प्रेरक मित्र पुत्र बांधव स्त्री सहायादिक थे अब उनकूं कहां देखूं ऐसैं अवधिज्ञानतैं पूर्वजन्ममें दुराचार किये तिनका पश्चात्ताप करता घोरमानसिक दुःखकूं प्राप्त होय है। केई महाभाग्यकै सम्यग्दर्शन भी उपजै है परन्तु पर्याय-सम्बन्धी कषाय दुःख स्वयमेव उपजै है आप किसीकूं नाहीं मारया चाहै तो हू कषायनिकी प्रबलता कर्मउदयतैं रुकै नाहीं स्वयमेव हस्ता-दिक शस्त्ररूप परिणमै हैं।

नारकीनिके क्षणमात्र विश्राम नाहीं, निद्रा नाहीं भूमिकै स्पर्शका दुःख ही केवली-गम्य है अतितीव्र कर्मका उदयमें कोऊ शरण नाहीं, शरणका अर्थी हुवा देखै तहां कोऊ

दयावान नाही समस्त क्रूर निदयी भयानक उग्रदेहका धारक अङ्गारा समान प्रज्वलितनेत्रनिकरि सहित प्रचण्ड अशुभध्यानके करावनेवाले क्रोधकूं उपजावनेवाले घोर नारकी हैं तिन नारकीनि के महान् विलाप अर रुदन मारण त्रासनके घोर शब्द सुनिये हैं अहो जब मैं मनुष्यपनामें स्वाधीन होय आत्महित नाहीं किया अब दैव पुरुषार्थ दोऊनिके बलकरिरहित कहा करूं ? पूर्वैं जे जे निंद्यकर्म मैं किये ते ते अब मेरे याद करते ही मरमनिकूं छेदैं हैं जो दुःख एकनिमेष मात्र नाहीं सह्या याय सो यहां सागरांपर्यंत कैसैं पूर्णकरस्यूं जिनके अर्थि पापकर्म किये ते सेवक स्त्री पुत्र बांधवनिकूं यहां कहां देखूं वें तो धनके विषयनिके भोगनेमें शामिल थे अब इनि दुःखनिमे कहां देखूं ऐसैं दुःखनितैं रक्षा करनेवाला एक दयाधर्म ही है सो धर्म मैं पापी उपार्जन नाहीं किया परिग्रहरूप महापिशाचकरि अचेतन भया या नाहीं जानी जो यमराजरूप सिंहकी चपेटतैं एकक्षणमे मरि नारकी जाय उपजूंगा इत्यादिक मनका संतापजनित घोर दुःखनिकूं प्राप्त होय है। जो पूर्वजन्ममें अन्यप्राणिनिका मांस छेदि खाया है तातैं मेरा मांसकूं काटिकाटि मोकूं खुवावैं हैं पूर्वैं मद्यपान किया अभक्ष्य खाया तातैं अनेक नारकी ताम्रलोहमय गल्या हुआ रस सिंहासीनतैं मुखफाडि पावैं हैं जे परस्त्रीलम्पटी थे तिनकूं वज्राग्निमय पूतला बलात्कार पकडि बहुतकाल आलिंगन करावैं हैं चक्षुका टिमकारनेमात्र काल हू सुख है नाहीं जो कदाचित् कोऊकालमें क्षणमात्र भूलि जाय तो दुष्ट अधर्म असुर प्रेरणा करैं वा परस्पर नारकी प्रेरणा करैं हैं। बहुत कहा कहिये

असंख्यात जातिके दुःख असंख्यात काल पर्यन्त नरकमें नारकी भोगैं हैं संसारमें एक धर्म ही इस जीवका उद्धार करने वाला है सो धर्म उपजाया नाहीं तदि नरकमें कौन रक्षा करै कोऊ धन कुटुम्बादिक जीवकीलार नाहीं जाय है अपना भावनितैं उपार्जन किया पापपुण्य कर्म ही लार हैं। ये संसारी उपस्थ इन्द्रिय अर रसनाइन्द्रियके विषयनिके लोलुपी होय नरकादिनिमें दुःखका पात्र होय हैं ऐसैं तो अनेकबार नरक जाय घोर दुःख भोगैं हैं।

बहुरि तिर्यंचगतिनिमें गया पाछैं कुछ भ्रमणका ठिकाना नाहीं दुःखका पार नाहीं, दुःखमय ही है, पृथ्वीकायमें खोदना दग्ध करना कूटना रगड़ना फाड़ना छेदना आदि क्रियानितै कौन रक्षा करै, जलकाय धारण किया तहाँ औटायागया बाल्या गया मसल्या गया मल्या गया पिया गया विषनिमें क्षारनिमें कटुकनिमें मिलाया गया तप्तलोहादिक धातु पाषाणादिकमें बुझाया गया घोरशब्द करता चलै है पर्वतनिमें पडि शिलानिऊपरि घोर पछाडा खाये हैं वस्त्रनिमें भरि भरि करि शिलानिऊपरि पछाडिये है दंडनिकरि कूटिये है जलकायके जीवनिकी कौन दया करै अग्निऊपरि पटकिये ग्रीष्मऋतुमें तप्तभूमि रजादिकऊपरि सींचिये कोऊ दया करै नाहीं क्योंकि पूर्वजन्ममे दयाधर्म अङ्गीकार किया नाहीं अब अपनी दया कौन करै। बहुरि अग्निकायमें हू दवाना बुझावना कूटना छेदना इत्यादिक घोरदुःख भोगै है कौन रक्षा करै। बहुरि पवनकाय पाया तहां पर्वतनिकी कठोर भींतनिकी निरन्तर चोट सहैहै अग्निमय चर्ममय धवनकरि धमिये हैं बीजने पंखे वस्त्रनि करि फटकारे खानेकरि वृक्षनिके पछांटेनिकरि

पवनकायमें घोरदुःख भोगै है। बहुरि वनस्पतिकायमें साधारणनिमें तो अनन्तनिका एकका घातमें मरण इत्यादिक दुःख तो ज्ञानी ही जानै है परन्तु प्रत्येक वनस्पतीका दुःख देखो जो काटिये है, छेदिये है, छोलिये है, बनारिये है, रांधिये है, चाबिये है, तलिये है, घृततेलादिकमें छौंकिये है, बांटिये है, भोभलमें भुलसिये है, घसीटिये है, रगड़िये है, घाणीनिमें पेलिये है, कूटिये है इत्यादिक घोर दुःख वनस्पतिकायमें यो जीव पावै है यातैं एकेन्द्रीपर्यायमें बोलनेकूं जिह्वा नाहीं, देखनेकूं नेत्र नाहीं, श्रवणकरनेकूं कर्ण नाहीं, हस्तपादादिक अंग उपाङ्ग नाहीं, कोऊ रक्षक नाहीं, असंख्यात अनन्तकालपर्यंत घोरदुःखमय एकेन्द्रियपनातैं निकसना नाहीं होय है। मिथ्यात्वअन्यायअभक्ष्यादिकनिके प्रभावकरि जीवका समस्तज्ञानादिक गुण नष्ट होय है एकेन्द्रियमें किंचित्मात्र पर्यायज्ञान रहै है आत्माका समस्त प्रभाव शक्ति सुख नष्ट हो जाय जड़ अचेतनकी ज्यों होय है, किंचित्मात्र ज्ञानकी सत्ता एक स्पर्शइन्द्रियकै द्वारै ज्ञानीनके जाननेमें आवै है समस्त शक्तिरहित केवल दुःखमय एकेन्द्रियपर्यायमें जन्ममरण वेदना दुख भोगै है।

बहुरि कदाचित् कोऊ त्रसपर्याय पावै तो विकलचतुष्कमे घोरदुःख भोगै है लहलहाट करती जिह्वाइन्द्रीका मारया तीव्र क्षुधातृषामय वेदनाका मार्‌या निरन्तर आहारकूं हेरता फिरै है लट कीड़ा अपना मुखफाड़ि आहारके निमित्त चपल भये फिरैं हैं मक्षिका, मकड़ी, मांछर, डांस क्षुधाका मार्‌या निरन्तर आहार हेरता फिरैं हैं रसनिमे पड़ैं हैं जलमें, अग्निमें पड़ैं हैं पवननिके वा वस्त्रनिके पछांटेनिकरि मरैं हे तिर्यंचनिकी पूंछनितैं,

खुरनितैं नाशकूं प्राप्त होय हैं मनुष्यनिके नखनिकरि हस्तपादादिकनिके घात करि चिथैं हैं, कटैं हैं, दबैं हैं, मलकफादिकनिमें उलझै हैं, विकलत्रयकी कोऊ दया करै नाहीं चिड़ी, कागला चुगि जाय हैं विसमरा सर्प इत्यादिक हेरहेर मारै हैं पक्षी बड़ी वज्रमय चूंचनिकरि चुगैं हैं चीरैं हैं अग्निमें बालैं हैं इली घुण इत्यादिक कीटनिकरि भर्या हुआ धान्यादिक तिनकूं दलै है, पीसैं हैं, ऊखलीनिमें खण्ड खण्ड करैं हैं, भाड़निमें भूंनैं हैं, रांधैं हैं तथा बदरीफलादिक फलनिमें शाकपत्रादिकनिमें बिदारिये हैं, छीलिये है, कूटिये है, छौंकिये है, चाबिये है, कोऊ दया नाहीं करै है, बहुरि मेवेनिके फलनिमें, औषधनिमें, पुष्पपल्लव डाली जड़वल्कलनिमें तथा मर्यादातैं अधिक कालका समस्त भोजन दधि दुग्धादिक रसनिमें बहुत विकलत्रय वा पंचेंद्रिय जीव उपजैं है ते समस्त खाया जाय जीवजन्तु चुगि जाय अग्निमें बल जाय कौन दया करै बहुरि विकलत्रयकी उत्पत्ति वर्षाऋतुमें सर्वभूमि छा जाय ते ढोरनिके पगकरि मनुष्यनिके पगकरि घोड़ेनिके खुरनिकरि रथ बैल गाड़ा गाड़ीनिकरि चिथैं हैं कटै हैं पगकहां टूटि पड़ैं हैं माथा कटि जाय, उदर चीरा जाय कौन दया करै ? कोऊ देखै ही नाहीं ऐसा विकलत्रयरूप तिर्यंचनिका नाना दुःखनिकरि मरण होय है। क्षुधातृषाकरि शीतउष्णवेदनाकरि वर्षाकी पवनकी, गड़ानिकी बाधाकरि मरण करै है तथा भाठा ठीकरा माटीका ढगला लाकड़ा मलमूत्र तप्तजल अग्नि इत्यादिक पतनतैं दबिकरि मरैं हैं विकलत्रयजीवनिकी ओर कोऊ देखै तो इनकी दया कोऊ करै नाहीं। घृततेलादिकमे पड़करि दीपक तथा अग्नि इत्या-

दिकमें पड़ि मरि घोरदुःख भोगता फिर उपजि फिर मरते असं-ख्यात काल दुःख भोगै हैं बहुरि कदाचित पंचेंद्रिय तिर्यंच होय तिनमें जलचरनिमें निर्वलकूं सवल भक्षण करै हैं धीवरनिके जालमें वा कांटेनिमें फंसि मरै हैं वा जीवितनिकूं भुलसि खाय हैं वनके जीव सदाकाल भय रूप भये क्षुधातृषा, शीत, उष्ण, वर्षा, पवन कर्दमादिककी घोर वेदना सहैं हैं प्रातःकालसे कहां भोजन अर बड़ी क्षुधा वेदना अर कदाचित आहार मिलै है अर जल नाहीं मिलै है तीव्र तृषावेदना भोगै है शिकारी पारधी जावैं मारैं वा सबल होय सो निर्वलनिकूं मार खाय हैं बिलनिमें पारधा खोदि खादि काढ़ि मारैं हैं तथा बलवान तिर्यंच निर्वल-निकूं गुफानिमें पर्वतनितैं वृक्षनिमें छिपे हुयेनिकूं बड़ा छलतैं जाय पकड़ि मारैं हैं सिंहव्याघ्रादिक हू सदा भयवान रहैं हैं आहार मिलनेका नियम नाहीं बहुत क्षुधा तृषावान भये पड़े रहैं हैं कदाचित् किंचित् अल्पआहार मिलैं दो दिन तीन दिनमें मिलै वा नाहीं मिलै तदि घोरवेदना भोगता मरै है तथा कषायीमनुष्य यंत्रनितैं जालनिके उपायतैं पकड़ि मार-मार बेचैं हैं खाय हैं जीव-तेनिके पग काटि बेचैं हैं, जीभे काटिदेय हैं, इन्द्रिया काटि बेचैं हैं, पूंछ काटि बेचैं हैं, मरमस्थाननिकूं काटैं हैं, छेदैं हैं, तलैं हैं, रांधैं हैं तिस तिर्यंचगतिमें कोऊ रक्षक नाहीं, कोऊ उपाय नाहीं तिर्यंचनिके मध्य माता ही पुत्रका भक्षण करै है तहां अन्य कौन रक्षा करै ?

बहुरि नभचर पक्षीनिके हू दुःखनिका निरंतर समागम है निर्वल पक्षीनिकूं सबल होय सो पकड़िमारैं हैं बाज शिकारी आकाशमे मारैं हैं खाय है बागलि घूघू इत्यादिक रात्रिमे विचरने-वाले दुष्टपक्षी कण्ठ जाय तोड़ैं हैं, मार्जार कूकरा पक्षीनिकूं

बड़ाछलतैं मारैं हैं पची भयभीत भये वृक्षनिकी ओटि शाखा पकड़ि तिष्ठै है सोवना बिछावणा बैठना नाहीं पवनकी जलकी वर्षाकी गड़ेनिकी शीतकी घोरवेदना भोगि भोगि मरैं हैं दुष्टमनुष्य पकड़ि पांखड़ा उपाड़ैं हैं चीरैं हैं तप्ततेलमें जीवतेनिकूं तलि खाय हैं राधैं हैं जहाँ देखैं तहां तिर्यंचनिके घोर दुःख हैं जातैं हिंसाका फल है। बहुरि हाथी घोड़ा ऊंट बलध गधा भैंस इनकी पराधीनताका दुःखकूं कौन कहि सकै है नाक फोड़ि सांकल जेवड़ानिकी नाथ घालना पराधीन बंध्या रहना जिनकूं स्वच्छन्द फिरना खाना नाहीं तावड़ामें बांधैं हैं वर्षामें बांधे हैं शीतमें बांधैं हैं पराधीन कहा करैं बहुत बोझ लादैं हैं। मारमार करैं हैं तीक्ष्ण लोह मय और कांटनिकरि बेधैं हैं चर्ममय चाबुकनिकरि बारंबार समस्त मार्गमें मारैं हैं लाठी लकड़ीनिकी चोट मारि मरमस्थाननिमें मारैं हैं पीठ गलि जाय है मॉस काटि खाड़े पड़ि जाय हैं कांधे गलि जाय हैं, नाक गलि जाय है कीड़ा पड़ि जाय हैं तो हू पत्थर लकड़ी धातुनिका कठोर भार तिनकरि हाड़निका चूर्ण हो जाय है पग टूटि जाय है महारोगो हो जाय है नासिका गलि जाय है उठ्या नाहो जाय है जराकरि जरजरा हो जाय पीठ गलि जाय तो हू बहुत भार लादैं है बहुत दूर ले जाय हैं क्षुधा तृषाकी वेदना तथा रोगकी वेदना तथा तावड़ाकी वेदनाकूं नाहीं गिनते अर्धरात्रि गये बहुत भार लादै हैं अर दूजे दिनके तीन प्रहर व्यतीत भये भार उतारैं हैं कुछ घास कांटा तुस भुस कणरहित नीरस अल्प आहार मिलै है सो उदरभरि मिलै नाहीं पराधीनताका दुःख तिर्यचगति समान और नाहीं। निरंतर बंधनमें पींज-

रनिमैं घोर दुःख भोगैं है चांडालके वारणैं बंध्या रहे चमारके कषायीनिके वारणैं बंध्या रहै खावनेकूं मिलै नाहीं अन्य पुण्य-वानके वारणैं तिर्यंचनिकूं भक्षण करते देखि मानसिक दुःखकूं प्राप्त होय है परके आहारघासमें मुख चलावैं तो पांसलीनिमें बड़े लठनिकरि मारिये है महान घोर क्षुधाका दुःख भोगै है, मारग चालने का भार वहनेका घोर दुःख भोगै है रोगनिके घोर दुःख भोगे है अर तिर्यंच बलध कूकरा इत्यादिकनिके नेत्रनिमें कर्णनिमें इंद्रियमें पोतानिमें घोरवेदना देनेवाली गुंगां चींचड़ा पैदा होयहै सो समस्त मरमस्थाननिमें तीक्ष्ण मुखनिकरि लोहूकूं खेंचैं हैं तिनको घोरवेदना भोगैं हैं केतेककूं घास खानेकूं जल पीवनेकूं नाहीं मिलै तदि घोरवेदना भुगतता ग्रीषमकूं पूर्ण करै अर श्रावण आ जाय तदां बहुत तृण पैदा होय, तहां हू पापके उदयकरि कोट्यां डांस माछर पैदा हो जाय तो जहां चरनेकूं जाय तहां ही डांस माछरनिके तीक्ष्ण डंककरि उछलता फिर तृणहूकी तरफ मुख नाहीं करिसकै, बैठे, सोवै जहां जुवांनिकी घोरवेदना भोगैहै अर ऊंट बलध घोड़ा इत्यादिक मार्गमें भारके दुःखकरि तथा जराकरि वा रोगकरि थकि जाय चाल्या नाहीं जाय पड़ि जाय वा पांव टूटि जाय मारते मारते हू चलनेकूं समर्थ नाहीं होय तदि वनमें जलमें पर्वतमें तहां ही छांडि धनी चल्या जाय निर्ज-नस्थाननिमें कादामें एकाकी पड़ा हुवा कोऊ शरण नाही कौनकूं कहै पानी कौन पियावे घास कहांतैं आवै तावड़ामें कादामे शीतमें वर्षामे पड़ा हुवा घोर क्षुधातृषाकी वेदना भोगे है अर अशक्त जानि दुष्टपक्षी लोहमय चूंचनिकरि नेत्र उपाड़ लैं हैं, मरमस्थान-

निमित्त अनेकजीव मांस काटि २ खाय हैं नरक समान घोरवेदना भोगता केई दिन तड़फड़ाट करता कठिनतातैं दुःख भोगि मरैं हैं ये समस्तकाल अन्याय धन हरनेका कपटी छली होय दानलेनेका विश्वासघात करनेका अभक्ष्यभक्षणका रात्रिभोजन करनेका निर्माल्य देवद्रव्य भक्षणकरनेका फल तिर्यंचयोनिमें भोगैं हैं परके कलंक लगावनेका अपनी प्रशंसा करनेका परकी निंदाकरनेका पराये छल हेरनेका परके मिष्ट भोजनका लालसा का, अतिमायाचार करनेका फल तिर्यंचनिमें भोगै है यहां असंख्याते अनंत भव तिर्यंचगतिमें बारबार धारण करता अर मायाचारादि तीव्ररागके परिणामतैं नवीन तियच नरकका कारण कर्मबंध करता अनंतकाल पूर्ण करिये है ये सब मिथ्याश्रद्धान मिथ्याज्ञान मिथ्याआचरणका फल है।

बहुरि यहाँ मनुष्यगतिमें हू केई तो तिर्यंचसमान ज्ञानरहित हैं केतेक गर्भमें आवते ही पिता आदि मरजाँय तदि परका उच्छिष्ट भोजन करता क्षुधातृषाका पीड़ा सहता परके तिरस्कार सहता बधै है परका दासपना करै है तिर्यंचनिकी ज्यों तीव्र भार वहै हैं एक सेर अन्नतै उदर भरने के अर्थ एकभार मस्तक ऊपरि एक भार पीठ ऊपर एक भार हस्तमें धारण करता बारा कोष गमन करता अन्न घृतका तेलका लूणका धातुका कठोर भारकूं वहै है केई समस्त दिनमें जलका भारकूं वहै है कई विदेशनिमें रात्रिदिन गमन करै हैं गमनसमान दुःख नाहीं वीसकोश वीसकोश उदरभरनेकूं नित्य दौड़ैं हैं केई पाषाणमृत्तिकादिकनिका भार निरन्तर वहै हैं केई सेवामें पराधीनताकरि मनुष्य जन्म व्यतीत

करैं हैं केई लुहार लोह घडि पेट भरैं, केई काठ चीरैं हैं फाड़ैं हैं तदि अन्न मिलै है केई वस्त्र धोवैं हैं केई वस्त्र रंगैं हैं केई छापैं हैं केई सीवैं हैं केई तूमें हैं केई वस्त्र बुनें हैं केई तिर्यंचनिकी सेवा करैं है तो हू उदर नाहीं भरै है, केई तृणनिका काष्ठनिका भार वहैं हैं केई चमडानिका छीलना बनावना करैं हैं, केई पोसैं हैं केई दलैं हैं केई खोदैं हैं केई रांधैं है केई अग्निसंस्कार करैं हैं केई भट्टी चलावैं हैं केई घृत तेल चारलवणादिकनिकरि जीविका करैं हैं केई दीनपनाकहि घर-घरमें मांगैं हैं केई रङ्क भए फिरैं हैं केई रोवैं हैं केई कर्मके आधीन हुए आपाभूलि मनुष्यजन्म वृथा व्यतीत करैं हैं केई चोरी करैं हैं छल करैं हैं, असत्य बोलें हैं व्यभिचार करैं हैं केई चुगली करैं हैं केई गैला मारैं हैं, मार्ग लूटैं हैं केई संग्राममें जाय हैं केई समुद्रनिमें विषम वनीमें प्रवेश करैं हैं केई नदी उतरैं हैं कूआ जोतैं हैं खेती करैं हैं नाव चलावैं है बोवैं हैं लूनें हैं केई हिंसाके आरम्भ हिंसाके व्यापार अभिमानी लोभी हुआ करैं हैं केई आमद खरचके लिखनकर्म करैं हैं केई नाना चित्र करैं हैं केई पाषाण ईंट पकावैं हैं केई घर चुनैं हैं केई द्यूत-क्रीडामें रचैं हैं केई वेश्यामें रचैं हैं केई मद्यपायी हैं केई राजसेवा करैं हैं केई नीचनिकी सेवा करैं हैं केई गानविद्यातैं जीविका करैं हैं केई वादित्र बजावैं हैं केई नृत्य करैं हैं कर्मके वश पड़े नाना प्रकारके क्लेशतैं मनुष्यपना व्यतीत करैं हैं, पुण्यपापके आधीन हुआ नाना मनुष्य नानाप्रकार कर्म धारैं प्रत्यक्ष नानाफल भोगते दीखैं हैं केई अन्नादिक वेचि जीवैं हैं केई गुड़ खांड घृत तैलादि-

करि जीवैं हैं केई वस्त्रनिकरि, केई स्वर्णरूपादिककरि, केते हीरा-मोती मणिमाणिक्यादिकनिका व्यापारकरि आजीविका करैं हैं केई लोहापीतल इत्यादिकधातु,केई काष्ठ पाषाण, केई मेवा मिठाई पूवा घेवर मोदकादिककरि, केई अनेक व्यंजन अनेक औषधि इत्यादिकनिकरि कर्म आधीन नाना प्रकार जीविका करैं हैं, केई व्यापारी हैं, केई सेवक हैं, केई दलाल हैं, केई उद्यमी हैं,केई निरुद्यमी आलसी हैं, केई यथेच्छ वस्त्र आभरण पहरैं हैं, केते कष्टतैं उदर भरैं हैं, केई कष्टरहित सुखिया हुआ भोजन करै हैं, केई परघर जाय जाचक होय खाय हैं, केई पूज्यगुरु बन खाय हैं, केई रङ्क दीन होय खाय हैं, केई नाना रससहित भोजन करैं हैं, केई नीरसभोजन करै हैं, केई उदर भरि अनेक बार भोजन करैं हैं, केई रूखा नीरस भोजनतैं आधा उदर भरै हैं, केईकूं एकदिनके अन्तर मिलैं, केईनिकूं दो तीन दिन गये भी कठिनतातैं मिलै केईनको नाहीं मिलनेतैं क्षुधा तृषाकी वेदना कर मरण होय है केई वंदीग्रहमें पराधीन पड़ैं घोर वेदना सहैं हैं, केई अपने हितून का वियोग की दाहकरि बलैं हैं, केई रोगजनित घोर वेदना समस्त पर्यायमें भोगता आर्तितैं मरैं हैं, केई ज्वरकी स्वासका कांसका अतीसारका केई प्रकारका वायुका पित्तका उदरविकार जलोदर कटोदरादिककी घोर वेदना भुगतैं हैं, केई कर्णशूल दन्तशूल नेत्र-शूल मस्तकशूल उदरशूलकी घोर वेदना भोगि मरैं हैं, केई जन्म तैं अंधा, केई जन्मतैं वहरा गूंगा केई हस्तपादादिक अंगकरि विकल भये जन्म पूर्ण करैं हैं, केई केती आयु व्यतीत भए अन्धा भया वहरा भया लूला भया पागल हुवा पराधीन पड्या मानसीक

अर शरीरसम्बन्धी घोर दुःख भोगै हैं, केतेक रुधिरविकारकरि कोढ़, खाज, पांवबीच दाद इत्यादिकनि करि अंगुल गलि जाय हस्त गलि जाय नासिकापादादिक गलि जाय है, कर्मका उदयकी गहन गति है, केई अन्तरायका उदयकरि निर्धन भये नाना दुःख भोगैं हैं कदाचित उदर भरै कदे नाहीं भरै नीरस भोजन गला हुवा सिडा हुवा बहुत कष्टतैं मिलै नानातिरस्कार भुगतैं हैं, घर रहनेकूं महाजीर्ण तिस ऊपरि तृणफूंसपत्रकी हू छाया पूरी नाहीं अति सांकडो तामें हू सांप बीछू घोरनिका चारोंतरफ बिल अर महादुर्गंध अर चांडालादि कुकर्मीनिके घरनिके समीप रहना खावनेकूं पाव भर धान नाहीं भरै अर कलहकारिणी काली कटुकवचनयुक्त महाभयङ्कर विडरूप डरावनी पापिणी स्त्रीका संगम अर अनेक रोगी भूखे विलाप करते कुरूप पुत्रपुत्रीनिका संगम पापके उदयतैं पावैं हैं तथा व्यसनी दुष्ट महापातकी पुत्र का संगम वैरीनितैं हू महावैरी जबर दुष्टभाईका संगम तथा दुष्ट अन्यायमार्गी बलवान पापी दुराचारी व्यसनी पड़ौसीनिका संगम तथा लोभी दुष्ट अवगुणग्राही कृपण क्रोधी मूर्ख स्वामीकी सेवा महाक्लेशकारी पापके उदयतैं पावैं हैं तथा कृतघ्नी दुष्ट छिद्रहेरनेवाला जबर सेवकका मिलना ये समस्त संसारमें पापके उदयतैं देखिये है। बहुरि धर्मरहित अन्यायमार्गी क्रूर राजाका राजमें वसना, दुष्टमन्त्री प्रधान कोटपालनिका संगम मिलना, कलङ्क लगिजाना, अपयश हो जाना, धनका नष्ट होना ये सब पंचमकालके मनुष्यनिके बहुत प्रकार पाइये है इस दुःखमकालमें जे मनुष्य उपजैं हैं ते पूर्व जन्ममें मिथ्यादृष्टि व्रतसंयमरहित होय

ते भरतक्षेत्रमें पंचमकालके मनुष्य होय हैं अर कोऊ मिथ्याधर्मी कुतप कुदान मन्दकषाय प्रभावसूं आवैं सो राज्य ऐश्वर्य धन भोग सम्पदा नीरोगता पाय अल्पआयु इत्यादिक भोगि पाप उपार्जन करनेवाले अन्याय अभक्ष्य मिथ्यामार्गमें प्रवर्तनकरि संसारपरिभ्रमण करै हैं।

कोऊ विरले पुरुष यहां सम्यग्दर्शन संयम व्रत धारण करैं हैं मन्दकषायी आत्म-निंदागर्हायुक्ततैं मनुष्य जन्मकूं सफलकरि स्वर्गमें महर्द्धिकदेव होय है अर यहां कोऊ पूर्वजन्ममें मन्दकषाय उज्वलदानादिक करनेवाला पुण्यसंयुक्त भी होय ताके हू इष्टका वियोग अनिष्टसंयोग होय ही। संसारके दुःखका स्वभाव देखो, जो भरत चक्रवर्तीके हू लघुभ्राता ही महाअनिष्ट होय बलके मद्-करि चक्रीको मानभंग कियो न्यायमार्गतैं देखिये तो बड़ा भाई पिताके पदमें तिष्ठता नमने योग्य था फिर चक्रवर्ती अर कुलमें बड़ा ताकी उच्चता लघुभ्राता होय देखि नाहीं सकै, भरत बड़ा सांचा ममत्वसूं राज्यकूं शामिल भोगनेकूं बुलाया परन्तु भाईतैं बड़ी ईर्षा करी अपयश कीयो तदि अन्यकी कहा कथा। कोऊकै तो स्त्री नाहीं ताकी तृष्णा करि स्त्रीविना अपना जीवन वृथा मानि दुःखित है, कोऊकै स्त्री है सो दुष्टिनी है, व्यभिचारणी है, कलहकारिणी मर्मके विदारनेवाली तथा रोगकरि निरन्तर संतापकरनेवाली होय ताकरि महादुःखकूं प्राप्त होय है। बहुरि कोऊकै आज्ञाकारिणी भर्तारकी आज्ञानुसार चलने वाली मर जाय ताके वियोगका महा दुःखकूं प्राप्त होय है। केतेनके वृद्ध अवस्थामे निर्धनतामें स्त्रीका मरण

होजाय छोटे बालक माताके वियोगकरि रहिजांय तिनकूं देखि संतापकूं प्राप्त होय है बहुरि केते वृद्ध अवस्थामें अपना विवाह की वांछा करैं अर मिलै नाहीं ताकरि दुःखी होय हैं। केई पुत्र-रहित होय दुःखी हैं केई कुपूतपुत्रनिकरि दुःखी हैं, कोऊके सुपुत्र यशवान है सो मरण करै ताके वियोगका महा दुःख है, केईनिके बैरीसमान मारनेवाला कुवचन बोलनेवाला ऐसा भाईका समागम समान दुःख नाहीं, कोऊ महारोग अर निर्धनताके दुःखकरि क्लेशित होय हैं, केईकैं पुत्री बहुत होय तिनके विवाहादिकयोग्य धन नाहीं तातैं दुःखी हैं, केईकैंपुत्री वरयोग्य बड़ी होय अर वरका संयोग नाहीं मिलै तदि बड़ादुःख अर कन्या आंधी लूलो गूंगी बावली अंगहीन विडरूप होय ताका महादुःख है अर पुत्रीकेकुबुद्धी व्यसनी निर्धन रोगी पापी वरका संयोग होजाय तो घोरदुःख होय अर पुत्री थोरी अवस्थामें विधवा होजाय ताका महादुःख, पुत्रीकूं निर्धन दुखित देखै तो महादुःख होय है अर पुत्री व्यभि-चारिणी होय तो मरणतैं भी अधिक दुःख होय है अर विवाही पुत्रीका मरण होय तो दुःख होयहै, माता पिताके वियोगका दुःख होय है, पिता अन्य जोरावरनिका निर्दयीनिका कर्ज छांडि जाय ताका दुःख होय है जातैं ऋणसमान दुःख नाहीं पिता ऋणकरि जाय तो दुःख, माता भगिनी व्यभिचारिणी दुष्ट होय तो महादुःख कोई जबरीतैं इनकूं हर लेजाय, खोस ले तो महादुःख, अपना सन्तानकूं कोऊ चोर ले जाय तथा मार जाय ताका घोर दुःख दुष्टनिका समागमका दुःख दुष्टअधर्मी अन्यायमार्गीनिके शामिल आजीविका होय तो महादुःख, दुष्ट अन्यायीनिका आधीनपना

होय तो दुःख, बहुरि मनुष्यजन्ममे धनवान होय निर्धन होनेका दुःख तथा मानभंगका दुःख है। बहुरि अपना मित्र होयकरि फिर छिद्रप्रगटकरनेवाला असत्यसंभाषणकरि अपराधलगानेवाला शत्रु होय ताका बड़ा दुःख है, यो संसारवास सर्वप्रकार दुःखरूपही है राजा होय रंकहोय है रंकका राजा होय है इत्यादिक मनुष्यपर्याय मे घोरदुःख ही हैं।

अर कदाचित देवपर्याय पावे तो तहां हू मानसीक दुःख होय हैं, यद्यपि देवनिकैं निर्धनता नाहीं, जरा नाहीं, रोग नाहीं, क्षुधातृषा मारण ताडना वेदना नाहीं तथापि महानऋद्धिके धारकनिकूं दुखि आपकूं नीचा मानता मानसीक दुःखकूं प्राप्त होय है। कोई इष्टदेवांगनाका वियोग होनेका दुःखकूं प्राप्त होय है यद्यपि देवांगनादिक कोऊ मरण करै है ताकी एवज शरीर एवज शरीररूप ऋद्ध्यादिक करि तैसाका तैसा अन्य उपजै है तो हू उस जीवका वियोगका दुःख उपजै ही, बहुरि पुण्यहीन देवहै ते इंद्रादिक महर्द्धिदेवनिकी सभामें प्रवेश नाहीं करसकैं ताका मानसीक बड़ा दुःख है तथा आयु पूर्ण भये देवलोकतैं अपना पतन दीखै ताके दुःखकूं भगवान केवली ही जानै हैं, इस संसारमें स्वर्गका महर्द्धिकदेव मरिकरि एकेन्द्री आय उपजै है तथा मलमूत्र के भरे गर्भमें रुधिरमांस आय जन्मै है इस संसारमें परिभ्रमण करता पापपुण्यके प्रभावकरि श्वानादिक तिर्यंच हैं ते तो देवजाय उपजै हैं अर देव ब्राह्मण चांडाल तिर्यंच हो जाय, कर्मनिके आधीन हुवा जीव चारूंगतिनिमें परिभ्रमण करैहै संसारमें राजा होयकैं रंक होय है स्वामीका सेवक होय है सेवकका स्वामी होय है पिता होय सो पुत्र हो जाय है पुत्रका पिता हो जाय है पिता

पुत्र ही माता हो जाय भार्या हो जाय बहिन हो जाय दासीदास हो जाय दासीदास ही पिता हो जाय माता हो जाय आप ही आपके पुत्र हो जाय, देवता होय तिर्यंच होजाय धनाढ्यका निर्धन निर्धनका धनाढ्यपना पावै है, रोगीदरिद्रीनिका दिव्यरूपवान हो जाय दिव्यरूपवान महाविडरूप देखनेयोग्य नाहीं रहै है।

बहुरि शरीर धारण हू बड़ा भार है भारकूं वहता पुरुष तो कोऊ स्थानमें भार उतारि विश्रामकूं प्राप्त होय है देहके भारकूं वहता पुरुष कहां हू विश्रामकूं प्राप्त नाहीं होय है, जहां औदारिक वैक्रियिकका क्षणमात्र भार उतरै तहां आत्मा इनूंतैं अनंतगुणा तैजसकार्माणशरीरका भार धारै है, कैसाक है तैजसकार्माण जो आत्माका अनन्तज्ञानदर्शनवीर्यकूं दाबि राख्या है जाकरि केवल ज्ञान तथा अनन्तसुखशक्ति ताका अभावतुल्य हो रह्या है जैसै वनमें अन्धमनुष्य भ्रमण करै हैं तैसें मोहकरि अन्ध चतुर्गतिमें परिभ्रमण करैं है संसारी जीव रोगदरिद्रवियोगादिकके दुःखकरि दुःखित होय धन उपाय दुःख दूर करनेकूं मोहकरि अन्धहुवा विपरीत इलाज करै है सुखी होनेकूं अभक्ष्यभक्षण करै है, छल कपट करै है, हिंसा करै है, धनके वास्तैं चोरी करै मार्ग लूटै परन्तु धन हू पुण्यहीनकै हाथ नाहीं आवै है, सुख तो पंचपापनिके त्यागतैं होय मिथ्यात्वी पंचपाप करि अपने धनकी वृद्धि सुखकी वृद्धि चाहै इंद्रियनिके विषयकी प्राप्ति होनेमें सुख जानै हैं सो ही मोहकरि अन्धपना है जे संसारी जीवके इहां हू दुःख देखिये हैं ते जीवनिके मारनेतैं असत्यतैं चोरीतैं कुशीलतैं परिग्रहकी लालसातैं क्रोधतैं अभिमानतैं छलतै लोभतैं अन्यायतैं ही दुःख देखिये है, अन्यमार्ग दुःख होनेका

नाहीं है ऐसे प्रत्यक्ष देखता हू पापनिमें रचै है यो विपरीतमार्ग ही अनन्तदुःखनिका कारण संसार है दुःखनितैं दुःख ही उपजै जैसैं अग्नितैं अग्नि उपजै है, ऐसैं संसारका सत्यार्थस्वरूपकूं बारंबार चिंतवन अनुभवन करै ताकै संसारतें उद्वेग रहै विरक्त होय सो संसारपरिभ्रमण दूर करनेका उद्यममें सावधान होय। ऐसैं तीसरा संसारभावना वर्णन करी ॥ ३ ॥

अब एकत्वभावना—

अपना स्वरूपकी प्राप्तिके अर्थ चिंतवन करो। ये जीव कुटुम्ब स्त्रीपुत्रादिकके अर्थ तथा शरीरके पालनेके अर्थ वा देहके अर्थ बहु आरंभ बहुपरिग्रह अन्याय अभक्ष्यादिक करै है ताका फल घोरदुःख नरकादिपर्यायनिमें एकाकी आप भोगै है। जिस कुटुम्ब के अर्थि वा अपना देहके अर्थि पाप करै है ते समस्त तो भस्म होय उड़ि जायगा कुटुम्ब कहाँ मिलैगा अपने उपजाये कर्मनिका उदयकरि आये रोगादिकदुःखवियोग तिनकूं भोगता जीवके समस्त मित्र कुटुंबादिक प्रत्यक्ष देखते हू किंचित दुःख दूरि नाहीं कर सकै है तदि नरकादिगतिमें कौन सहायी होयगा, एकाकी भोगैगा, आयुका अंत होते एकाकी मरै है मरणतैं रक्षाकरनेकूं कोऊ दूजा सहायी नाहीं है, अशुभका फल भोगनेमें कोऊ अपना सहायी नाहीं है परलोकप्रति गमनकरते आत्माके स्त्री पुत्र मित्र धन देह परिग्रहादिक सहाई नाहींहैं, कर्म एकाकीकूं ले जायगा इसलोकमें जे बांधवमित्रादिक हैं ते परलोकमें बांधवमित्रादिक नाहीं होंयगे अर जे धन शरीर परिग्रह राज्य नगर महल आभरण सेवकादि परिकर यहां हैं ते परलोक लार नाहीं जायेंगे इस देहके संबंधी इस

देहका नाश होतैं संबंध छांड़ैंगे ये अपने कर्मके आधीन सुख दुख आपके आपही भोगेंगे जीव एकाकी जायगा तातैं संबंधीनिमें ममताकरि परलोक बिगाड़ना महाअनर्थ है। यहां जो सम्यक्त्व व्रत संयम दान भावनादिककरि धर्मउपार्जन किया सो इसजीवके सहाई होय है एकधर्मविना कोऊ सहाई नाहीं, एकाकी है, धर्मके प्रसादतैं स्वर्गलोकमें इंद्रपना महर्द्धिकपना पाय तीर्थंकर चक्रवर्ती-पना मंडलेश्वरपना उत्तमरूप बल विद्या संहनन उत्तम जातिकुल जगतपूज्यपना पाय निर्वाणकूं प्राप्त होय है जैसे वंदीगृहमें बंधनि करि बंध्या पुरुषकूं बंदीगृहमें राग नाहीं है तैसैं सम्यग्ज्ञानी पुरुषकै देहरूप बंदीगृहमें राग नाहीं है जातैं धनकुटुम्ब अभिमानादिक घोर बंधनमें पराधीन हुवा दुःख भोगैहै एकाकी ही अपना स्वरूप छांडि परद्रव्य देहपरिग्रहादिकनिकूं आपा जाणि अनंत-काल भ्रमै है, एकाकी अन्यगतितैं आय जन्म धारै है, कर्म-विना अन्य लार नाहीं आया है, पापपुण्यकर्म राजा रंक नीच ऊंचके गर्भादि योनिस्थानमें ले जाय उपजावै अर एकाकी ही आयु पूर्ण भये समस्त कुटुम्बादि छांडि परलोककूं जाय है फिर पीछा आवना नाहीं गर्भमें वसनेका दुःख योनिसंकटका दुःख रोगसहित शरीरका दुःख, दरिद्रका घोर दुःख, वियोगका महा दुःख, क्षुधा तृषादि वेदनाका दुःख, अनिष्टदुष्टनिका संयोगका दुःख यो जीव एकाको भोगै है अर स्वर्गनिके असंख्यात कालपर्यंत महान सुख अर अपछरानिका संगम असंख्यात देवनिका स्वामीपना हजारां ऋद्ध्यादिक सामर्थ्य पुण्यके उदयकरि एकाकी जीव भोगै है अर पापके उदयतैं नरकमें ताड़न मारण छेदन भेदन शूलारोहण

कुंभीपाचन वैतरणीनिमज्जन, क्षेत्रजनित शरीरजनित मानसीक तथा परस्परकृत घोरदुःख एकाकी भोगै है तथा तिर्यंचनिके पराधीन बंधना बोझभार लादना कुवचन श्रवण करना मरमस्थानमें नानाप्रकार घात सहन, दीर्घकालपर्यंत भार लेय बहुत दूर चलना, क्षुधातृषा सहना रोगनिकी नानावेदना भोगना, शीत उष्ण पवन तावड़ा वर्षा गड़ा इत्यादि की घोरवेदना भोगना, नासिकादिकमें जेवड़ां घालि दृढ़ वांधना, घसीटना, चढ़ना समस्तदुःख पापके उदयतैं एकाकी जीव भोगै है, कोऊ मित्र पुत्रादि सहाई लार नाहीं रहै है, एक धर्म ही सहाई है, ऐसैं एकत्वभावना भावनेतैं स्वजननिमें प्रीति नाहीं बधै है अन्य परिजनोंमें द्वेषका अभाव होय तदि अपने आत्माका शुद्धतामें ही यत्न करै ऐसैं एकत्वभावना वर्णन करा ॥ ४ ॥

अब अन्यत्वभावनाका स्वरूप चिंतवन करना योग्य है—

हे आत्मन् ! इस संसारमें जे जे स्त्री पुत्र धन शरीर राज्य भोगादिकनिका तेरे सम्बन्ध है ते ते समस्त तेरा स्वरूपतैं अन्य हैं भिन्न हैं, कौनके शोचमे विचारमें लगि रहे हो अनंतानंत जीवनिका अर अनंतपुद्गलनिका संबंध तुम्हारे अनंतबार होय २ छूटै है, अज्ञानी संसारी आपतैं अन्य जे स्त्रीपुत्रमित्रशत्रुधनकुटुम्बादिक तिनका संयोगवियोग सुखदुःखादिकनिका चिंतवनकरि काल व्यतीत करै है अर अपने नजीक आया मरण वा नरक तिर्यंचादिकगतिनिमें प्राप्त होना ताका चिंतवन विचार नाहीं करै है जो समय समय, यो मनुष्यआयु जाय है यामें ही जो मैं मेरा हित नाहीं किया, पापतैं पराङ्मुख नाहीं भया तथा कुगतिके कारण

रागद्वेष मोह काम क्रोध लोभादिक महा छलीतैं आत्माकूं नाहीं छुड़ाया तो तिर्यंचनरकगतिमें अज्ञानीपराधीन अशक्त हुआ कहा करूंगा इस पंचपरिवर्तनरूपसंसारमें अनंतानंतकालतैं परिभ्रमण करता जीवके कोऊ अपना स्वजन नाहीं है ये स्वामी सेवक पुत्र स्त्रीमित्र बांधवनिकूं जो अपना मानोहो सो मिथ्यामोहकी महिमा है याहीकूं मिथ्यात्व कहिये है, ये तो समस्त संबन्ध कर्मजनित अल्पकाल है अचानक वियोग होयगा ये समस्त संबन्ध विषय-कषाय पुष्ट करनेकूं अपना स्वरूपकी भूलि होनेकूं हैं संसारमें समस्त जीवनितैं अपना शत्रुमित्रपना अनेकबार भया है अर आगानै भी इस परद्रव्यनिके संबन्धमें आत्मबुद्धिकरि अनंतकाल भोगोगे तहां रागद्वेषबुद्धिकरि शत्रुमित्र बुद्धिहीतैं एकेंद्रियपना तथा ज्ञान पिछान विचाररहित अज्ञानी भये अनंतकाल भ्रमोगे जैसैं अनेकदेशनितैं आए भिन्नभिन्न अनेक पथिक रात्रिमें एकआश्रममें वसैं हैं अथवा एकवृक्षके विषैं अनेकदिशानितैं आए अनेक पक्षी आय वसैं हैं प्रभातकाल भये नानामार्गनिकरि नानादेशनिकूं जाय हैं तैसैं स्त्री पुत्र मित्र बांधवादिक नानागतिनितैं पापपुण्य बांधि आज कुलरूप आश्रममें शामिल भये हैं आयु काल पूर्ण भये पाप पुण्यके अनुसार नरकतिर्यंच मनुष्यादिक अनेकभेदरूप गतिनिकूं प्राप्त होयेंगे कोऊ ही कोऊका मित्र नाहीं, पुण्यपापके अनुकूल दोयदिन आपका उपकार अपकार करि संसारमे जाय रुलै हैं, इस संसारमें जीवनिकी भिन्न२ प्रकृति है कोऊका स्वभाव कोऊसूं मिले नाहींहै स्वभावमिल्यां बिना काहेको प्रीति है परस्पर कोऊ अपना अपना विषयकषायरूप प्रयोजन सधता दीखै है

तिनकै प्रीति होय है, प्रयोजन विना प्रीति नाहीं है। ये समस्त लोक बालू रेतका कणका ज्यों कोऊका कोऊसूं संबंध है नाहीं जैसै बालूका भिन्न भिन्न कण कोऊ जलादिक सचिक्कणद्रव्यका समागमतैं मूठीमें बंधिजाय चिपि जाय चेप दूर भये कणा कणा भिन्न भिन्न बिखरै है तैसैं समस्त पुत्र स्त्री मित्र बांधव स्वामी सेवकनिका संबंध हू कोई अपना विषय वा लोभ अभिमानादि कषाय जेते साधता दीखे है ते ते प्रीति जानों, जिनतैं इंद्रियनिके विषय सधै नाहीं, अभिमानादि कषाय पुष्ट होय नाहीं तिनके लूखे परिणामनिमें प्रीति नाहीं अर विनाप्रयोजन हू जगतमें प्रीति देखिये है सो लोकलाजका अभिमानतैं तथा आगामी कुछ प्रयोजनकी आशातैं तथा पूर्वकालका उपकारि लोपूंगा तो लोकमें मेरा कृतघ्नपना दीखैगा इस भयतैं मिष्टवचनादिकरूप प्रीति करै हैं, कषायविषयनिका संबंधविना प्रीति है ही नाहीं सो देखिये ही है जिसतैं अपना अभिमान सधता देखै वा धनका लाभ वा विषयभोगनिका लाभ तथा आदरका बडाईका वा अपना पूज्यपना होनेका लाभके अर्थ वा जसके अर्थ अथवा कोऊ प्रकार आपदाका भयतैं प्रीति करै है, विषयकषायका चेपविना प्रीति है ही नाहीं समस्त अन्य हैं माता हू जो पुत्रका पोषण करै है सो दुःखमें वृद्धपनामें अपना आधार जानि पोषे है अर पुत्र जो माताका पोषण करै है सो ऐसा विचार करै है जो मैं माताका सेवा नाहीं करूंगा तो जगत्में मेरा कृतघ्नीपनाका अपवाद होयगा तथा पांच-आदम्यांमे मेरी उच्चता नाहीं रहैगी ऐसा अभिमानतैं प्रीति करै है, बैरी हू उपकार दान सन्मानादिकरि अपना मित्र होय है अर

अपना अति प्यारा पुत्र हू विषयनिके रोकनेतैं अपमान तिरस्कारादि करनेकरि अपना क्षणमात्रमें शत्रु होय है तातैं कोऊका कोऊ मित्र हू नाहीं अर शत्रु हू नाहीं है, उपकार अपकारकी अपेक्षा मित्रशत्रुपना है अर संसारीनिके जो अपना विषय अर अभिमान पुष्ट करै सो मित्र है अर विषय अर अभिमानकूं रोकै सो वैरी है जगतका ऐसा स्वभाव जानि अन्यमें रागद्वेषका त्याग करो,यहां जे घणा प्यारा स्त्रीपुत्रमित्रबांधव तुम्हारे हैं ते समस्त स्वर्गमोक्षका कारण जो धर्मसंयमादिकनिमे वीतरागतामें अत्यन्त विघ्न करैं हैं अर हिंसा असत्य चोरी कुशील परिग्रहादिक महा अनीतिरूप परिणाम कराय नरकादिक कुगति पावनेका बंध करावै हैं ते अति वैरी है, इस जीवकूं मिथ्यात्व विषय कषायादिकतैं रोकि संयममें दशलक्षणधर्ममें प्रवृत्ति करावैं हैं ते मित्र हैं, ते निर्ग्रंथ गुरु ही हैं बहुरि यो आत्मा स्वभावहीतैं शरीरादिकनितैं विलक्षण है चेतनमय है देह पुद्गलमय अचेतन जड़ है जो देह ही अन्य है विनाशीक है तो याका सम्बन्ध स्त्रीपुत्रमित्र कुटुम्ब धन धान्य स्थानादिक अन्य कैसैं नाहीं होय। यो शरीर तो अनेक पुद्गलपरमाणूनिका समूह मिलि बन्या है ते शरीरके परमाणु भिन्नभिन्न बिखरि जांयगे अर आत्मा चैतन्यस्वभाव अखंडअविनाशी रहैगा तातैं सकलसम्बन्धनिमे अन्यपनाका दृढ़ निर्णय करो। बहुरि कर्मके उदयजनित रागद्वेषमोहकामक्रोधादिक ही भिन्न हैं विनाशीक हैं तो अन्य शरीरादिकसंबंधी अन्य कैसैं नाहीं होय यातैं अपना ज्ञान दर्शन स्वभावविना अन्य जे ज्ञानावरणादिक जे द्रव्यकर्म अर रागद्वेषादिक भावकर्म शरीर परिग्रहादिक, नोकर्म ये समस्त

अन्य हैं, ये पुत्रादिक हैं ते अन्य गतितैं अन्य पापपुण्य स्वभाव कषाय आयु कायादिकका सम्बन्धरूप देखिए हैं तुम्हारा स्वभाव पापपुण्य इनतैं अन्य है यातैं अन्यत्वभावना भावो तो इनकी ममताजनित घोरबंधका अभाव होय ऐसैं अन्यत्वभावनाका वर्णन किया ॥५॥

अब अशुचि भावना वर्णन करै हैं—भो आत्मन् ! इस देहका स्वरूपकूं चिंतवन करो महामलीन माताका रुधिर पिताका वीर्यकरि उपज्या है, महादुर्गंध मलिन गर्भकेविषै रुधिरमांसका भर्‍या हुआ जरायुपटलमें नवमास पूर्णकरि महादुर्गंध मलीनयोनितैं निकलनेका घोरसंकट सहै है अर सप्तधातुमय देह रुधिर मांस हाड़ चाम वीर्य मज्जा नसांका जालमय देह धार्‍या है, मलमूत्र लटकोड़ेनिकरि भर्‍या महाअशुचि है, जाके नवद्वार निरन्तर दुर्गंधमलकूं स्रवैं हैं, जैसें मलका बनाया घड़ा अर मलकरि भर्‍या अर फूटा चारोंतरफ मल स्रवै सो जलसूं धोये कैसैं शुचि होय। जगतमें कपूर चन्दन पुष्प तीर्थनिके जलादिक हैं ते देहके स्पर्शमात्रतैं मलीन दुर्गंध हो जांय सो देह कैसैं पवित्र होय, जेते जगतमें अपवित्र वस्तु है ते देहके एक एक अवयवके स्पर्शतैं ही हैं, मलके मूत्रके हाड़के चामके रसके रुधिरके मांसके वीर्यके नसांके केशके नखके कफके लालके नासिकाके मल दन्तमल नेत्रमल कर्णमलके स्पर्शमात्रतैं अपवित्र होय हैं, द्वींद्रियादिक प्राणीनिके देहका सम्बन्धविना कोऊ अपवित्र वस्तु हो लोकमें नाहीं हैं, देहका सम्बन्धविना लोकमें अपवित्रता कहांतैं होय अर देहके पवित्र करनेकूं त्रैलोक्यमे ऊ पदार्थ नाहीं जलादिकनितैं कोटिबार धोइये

तो जल हू अपवित्र होजाय। जैसैं कौयलाकूं ज्यौं धोवो त्यौं कालिमा ही स्रवै उज्वल नाहीं होय तैसैं देहका स्वभाव जानि याकूं पवित्र मानना मिथ्यादर्शन है। यो देह तो एक रत्नत्रय उत्तम-क्षमादिक धर्मकूं धारण करता आत्माका सम्बन्धकरि देवनिकरि वंदनेयोग्य पवित्र होय है, बहुरि धनादिकपरिग्रह अर पंचइंद्रियनिके विषय अर मिथ्यात्व अर क्रोधमानमायालोभ ये अमूर्तीक आत्माका स्वभावकूं महा मलीन करै हैं, अधर्म करैं हैं, निंद्य करैं हैं दुर्गतिकूं प्राप्तकरै है यातैं कामक्रोधरागादि छांडि आत्माकूं पवित्र करो, देह पवित्र नाहीं होयगा; इसप्रकार देहका स्वरूप-जानि जे देहतैं राग छांडि आत्मातैं अनादितैं सम्बन्धनै प्राप्त भये रागादिककर्ममल तिनके दूर करनेमें यत्न करो, धनसंपदादिक परिग्रह अर पंचइन्द्रियनिके भोग अर देहमें स्नेह ये आत्माकूं मलीन करनेवाले हैं तातैं इनका अभाव करनेमें उद्यम करो, धर्म है सो आत्माकै काम क्रोध लोभ मद कपट ममता बैर कलह महाआरम्भ मूर्छा ईर्षा अतृप्तितादिक हजारोंदोषनिकूं उपजावै है, इस लोकसम्बन्धी परलोकसम्बन्धी समस्त दोष अतिचिंता दुर्ध्यान महाभय उपजावनेवाला एक धनकूं निर्णयकरि चिंतवन करो अर पंचइन्द्रियनिके विषय आत्माकूं आपा भुलाय महा-निंद्यकर्म करावै हैं जो निंद्यकर्म नाहीं करनेयोग्य जगतमें हैं तिनकूं इन्द्रियनिके विषयनिकी वांछा करावै है अर देहमें स्नेह है सो मांसमज्जाहाड़मय महादुर्गंध सिड्याहुआ कलेवरसूं राग है सो महामलिनभावंको कारण है ऐसा शरीरकी शुचिता करनेवाला दशलक्षण धर्म ही है। शुचिपना दोय प्रकार है एक लौकिक, दूजा लोकोत्तर। जो कर्ममलकूं धोय शुद्ध आत्मस्वरूपमें स्थिर

होना सो लोकोत्तर शौच है याका कारण रत्नत्रयभाव है तथा रत्नत्रयके धारक परमसाम्यभावतैं तिष्ठते साधु हैं जिनके संगमकरि शुद्धात्माकूं प्राप्त होइये। अर लौकिकशुचि अष्ट प्रकार है— कोऊ कालशौच जो प्रमाणीककाल व्यतीतभये लोकमें शुचि मानिये है, कोऊ अग्निकरि संस्कार स्पर्शनकरि शुचि मानिये है, कोऊकूं पवनकरि, कोऊकूं भस्मतैं मांजने करि, कोऊकूं मृत्तिकातैं, कोऊकूं जलतै, कोऊकूं गोमयतैं, कोऊ ज्ञानतैं ग्लानि मिट जानेतैं लौकिकजन मनमें शुचिपनाका संकल्प करैं हैं परन्तु शरीरके शुचि करनेकूं कोऊ समर्थ नाहीं है, शरीरके संसर्गतै तो जलभस्मादिक अशुचि हो जाय हैं यो शरीर आदिमें अन्तमें मध्यमें कहां हू शुचि नाहीं। याका उपादान कारण रुधिर वीर्य सो शुचि नाहीं, यो आप शरीर शुचि नाहीं, याकै अभ्यन्तर दुर्गंधमलमूत्रादिक बाह्य चाम हाड मांस रुधिर शुचि नाहीं जो याकूं समस्त तीर्थ समस्तसमुद्रनिके जलकरि धोइये है तो समस्त जलकूं हू अशुचि करै है, यो देह है सो सर्वकाल रोगनिकरि भर्या है अर सर्वकाल अशुचि है अर सर्वथा विनाशीक है, दुःख उपजावनेवाला है याकै शुचि करनेका इलाज प्रतिकार धूप गंध विलेपन पुष्प स्नान जल चन्दन कर्पूरादिक कोऊ है नाहीं, याकै स्पर्शनमात्रतै पवित्रवस्तु हू अङ्गाराके स्पर्शनतैं अङ्गारा होय तैसे अपवित्र होय हैं। ऐसैं शरीरका अशुचिपना चिंतवनकरनेतैं शरीरका संस्कारकरनेमें रूपादिकमें अनुरागका अभावतैं वीतरागतामें यत्न करै है। ऐसै अशुचिभावना वर्णन करी ॥ ६ ॥

अब आस्रवभावनाका वर्णन करिये है—कर्मके आवनेके कारणतैं आस्रव है जैसैं समुद्रके बीच जहाजमें छिद्रनिकरि जल प्रवेश करै है तैसैं मिथ्यात्वभावकरि अर पंचइन्द्रिय छठा मनका विषयनिमें प्रवर्तनिके त्यागका अभावकरि अर छहकायके जीवनिकी हिंसाका त्याग नाहीं करनेकरि अर अनंतानुबंधीकूं आदि लेय पच्चीसकषायनितैं तथा मनवचनकायके भेदतैं पंद्रहप्रकार योग ऐसे सत्तावन द्वार कर्मआवनेका है। तिनमें मिथ्यात्व कषाय अव्रतादिकनिके अनुसार मनवचनकायतैं शुभ-अशुभकर्मका आस्रव होय है, तहां पुण्यपापके संयोगतैं मिले विषयनिमें संतोष करना, विषयनितैं विरक्तता, परोपकारके परिणाम, दुःखिनिकी दया, तत्वनिका चिंतवन, समस्त जीवनिमें मैत्रीभाव इत्यादि भावना, परमेष्ठीमें भक्ति, धर्मात्मामें अनुराग, तपव्रतशीलसंयममें परिणाम इत्यादिकरूप मनकी प्रवृत्ति पुण्यका आस्रव करै है अर परिग्रहमे अभिलाषा, इंद्रियनिके विषयनिमें अति लोलुपता, परके धन हरनेमें परिणाम, अन्याय प्रवर्त्तनमें अभक्ष्यभक्षणमें सप्तव्यसन सेवनमें परके अपवाद होनेमें अनुराग रखना, परके स्त्री पुत्रधन आजीविकाका नाश चाहना, परका अपमान चाहना, आपकी उच्चता चाहना इत्यादिक मनके द्वारै अशुभआस्रव होय है। बहुरि सत्यहितमधुर वचनकरि तथा परमागमके अनुकूल वचनकरि परमेष्ठीका स्तवन करि सिद्धान्तका वांचना तथा व्याख्यानकरि न्यायरूप वचनकरि पुण्यका आस्रव होय है। बहुरि परकी निंदा आपकी प्रशंसा अन्यायका प्रवर्तन जिस वचनकरि होय तथा हिंसाके आरंभ करावनेवाला विषयानुराग बधावनेवाला कषायरूप अग्निके प्रज्वलित

करनेवाला तथा कलह विसम्वाद शोक भयका वधावनेवाला तथा धर्मविरुद्ध मिथ्यात्व असंयमका पुष्टकरनेवाला अन्यजीवनिके दुःख अपमान धन आजीविकाकी हानिके करनेवाले वचनतैं पापका आस्रव होय है।

बहुरि परमेष्ठीका पूजन प्रणाम जिनायतनका सेवन धर्मात्मापुरुषनिका वैयावृत्य, यत्नाचारतैं जीवनिपर दयारूप हुवा सोवना बैठना पलटना मेलना धरना सौपना खावना पीवना बिछावना चालना हालना इत्यादिक कायका योग शुभ आस्रवका कारण है। बहुरि यत्नाचार विना करुणारहित स्वच्छंद देहका प्रवर्तावना, महा आरम्भादिकमें प्रवर्तन करना, देहके संस्कारमें रहना सो समस्त कायके द्वारै अशुभआस्रव होय है, ये मनवचनकायकी शुभअशुभ प्रवृत्ति तीव्र मन्द कषायके योगतै तीव्र मंद नानाभेदरूप कर्मके वन्धके निमित्त होय है इनका चिंतवन करनेतैं आत्मा अशुभप्रवृत्तिसूं रुकि शुभप्रवृत्तिमे सावधान होय प्रवर्तन करै है। बहुरि कषाय आत्माका समस्तगुणनिका घात करनेवाले हैं क्रोध है सो तो परजीवनके मारनेमें घात करनेमे बंधनादि करने में चित्तकूं दौडावै अर मान है सो इस जीवकूं दर्पकरि ऐसा उद्धत करै है जो पिता गुरु उपाध्याय स्वामीका हू तिरस्कार करना वाछै है विनयका विध्वंस करै है, मायाकषाय है सो अनेकछल अनेकधूर्तता अनेकपरकूं भुलाय देना इत्यादि कपट ही विचारै है परिणामकी सरलताका अभाव करै है, लोभकषाय है सो सुखका कारण संतोषकूं छेदै है योग्यअयोग्यके विचारका नाश करै है काम है सो मर्यादाका भंग करै लज्जाका भंग करै है हित अहितका नीचकर्म उच्चकर्मका विचाररहित करै है, मोह है सो मदिराकी

ज्यों स्वरूपकूं भुलावै है, शोक है सो अतिदुःखतैं हाहाकारशब्द करावै है रुदनादिक आत्मघातादिकमे प्रवृत्ति करावै है हास्य है सो परकी हास्य अज्ञानता प्रगट कीया चाहै है, स्नेह है सो मद्य विना पीये ही अचेतन करै है अर महाबन्धनरूप आत्माकूं हित प्रवृत्तिमें रोकनेवाला है अनर्थका स्थान है, निद्रा है सो आत्माका समस्त चैतन्यका घातकरि आत्माकूं जड अचेतन करै है, तृषा जो है सो नाहीं पीवनेयोग्य हू पानीकूं पिवाया चाहै है, क्षुधा है सो चांडालका घरमें हू प्रवेश करायकै याचना करावै है कुलमर्यादादिककूं नष्ट करै है घोर वेदना देवै है, नेत्र है सो रमणीक रूपादिक देखनेकूं झपापात लेवै हैं, जिह्वाइंद्रिय मिष्टभोजन करनेकूं अति चंचल भई लज्जा उच्चपना संयमादिक नष्टकरि नीचप्रवृत्ति करावै है घ्राणइंद्रिय सुगन्धद्रव्यप्रति अचेत भया झुकै है। स्पर्शनइंद्रिय स्त्रीनिके कोमल अङ्ग कोमल शय्यादिकमें तृष्णा बधावै है, कर्णइन्द्रिय नानारागनिमें झुकि आपा भुलाय पराधीन करैहै, मन है सो चंचल वानरकी ज्यों स्वच्छंद घोरविकल्पकरि शुभध्यान शुभप्रवृत्तिमे नाहीं ठहरे है, विषयकषायादिकनिमे भ्रमै है, असत्यवाणी मुखमेतैं अतिरागतै निकसि अपनी चतुरता प्रगट करै है हस्त हैं ते हिंसाके आरम्भ करनेका मुख्य उपकरण हैं, चरण हू पापकरनेका मार्गमें अति दौडैं हैं, कविपना है सो अति रागकरनेवाली कविता रच्या चाहै है, पण्डितपना कुतर्क अर असत्यप्रलापीपना करि अपनी विख्यातता चाहै है, सुभटपना घोर हिंसा चाहै है बाल्यपना अज्ञानरूप है यौवन वांछितविषयनिके अर्थि विषम स्थानमें हू दौडै है वृद्धपना है सो विकरालकालके निकट

वर्तैं है उस्वास निःस्वास निरन्तर देहतैं भागि निकसि जानेका अभ्यास करै है, जरा है सो कामभोग तेज रूप सौंदर्य उद्यम बल बुद्ध्यादिक रहनेकूं तस्करी है, रोग हैं ते यमराजके प्रबल सुभट हैं ऐसी सामग्री इस आत्माकूं आपा भुलावनेवाली है तिनतैं महान् कर्मका आस्रव होय है। ये इंद्रियविषय अर कषायनिके संयोगतैं मन वचनकायद्वारै आस्रव होय है ऐसैं आस्रवभावना वर्णन करी अब संवरभावना वर्णन करै है—

जैसैं समुद्रके मध्य नावके जल आवनेका छिद्र रोक दे तो नाव जलसूं भरि नाहीं डूबै तैसैं कर्म आवनेके द्वार रोकै ताकै परमसंवर होय है सम्यग्दर्शनकरि तो मिथ्यात्वनाम आस्रवद्वार रुकैहै इन्द्रियनिकूं अर मनकूं संयमरूप प्रवर्तावनेतैं इन्द्रियद्वारै आस्रव रुकि संवर होय है अर छहकायके जीवनिका घात करनेवाला आरम्भका त्यागतैं प्राण संयमकरि अविरतनिके द्वारै कर्मके आगमनके रुकनेतैं संवर होय है; कषायनिकूं जीति दशलक्षणरूप धर्मके धारने तैं चारित्र प्रगट होनेतैं कषायनिके अभावतैं संवर होय है ध्यानादिक तपतैं स्वाध्याय तपतैं योगद्वारै कर्म आवते रुकैं हैं यातै संवर है जातैं गुप्तित्रय पंचसमिति दश-लक्षणधर्म द्वादशभावना द्वाविंशतिपरीषह सहना पंचप्रकार चारित्र पालना इनकरि नवीनकर्म नाहीं आवै हैं तिनमें मनवचनकायके योगनिकूं रोकना सो गुप्ति है, प्रमादछांडि यत्नतैं प्रवर्तना सो स-मिति है दया है प्रधान जामें सो धर्म है स्वतत्वका चिंतवन सो

भावना है। कर्मके उदयतैं आए क्षुधातृषादिपरीषहनिकूं कायरता-रहित समभावसैं सहना सो परीषहजय है रागादिदोषरहित अपने ज्ञानस्वभाव आत्मामें प्रवृत्ति करना सो चारित्र है। ऐसैं जो विषयकषायतैं पराङ्मुख होय सर्व क्षेत्र कालमें प्रवर्तै है ताकै गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षा परीषहजय चारित्र इनकरि नवीनकर्म नाहीं आवै सो संवर है यो संवरके कारण चिंतवन करता रहै ताकै नवीनआस्रव बन्ध नाहीं होय है ऐसैं संवरभावना वर्णनकरी

अब निर्जराभावनाकूं कहिये है—

जो ज्ञानी वीतरागी हुआ मदरहित निदानरहित हुवा द्वादश प्रकार तप करै है ताकै महानिर्जरा होय है समस्त कर्मनिका उदयरूपरसकूं प्रगट करि झड़ना सो निर्जरा है सो दोय प्रकार होय है एक तो अपना उदयकालमें रस देय झड़ना सो सविपाकनिर्जरा है सो तो चारों गतिनिमें कर्म अपना रसरूप फल देय निर्जरै ही है अर जो व्रततपसंयम धारणकरि उदयका कालविना ही निर्जरा करै है सो अविपाकनिर्जरा है, मंद कषायके भावसहित जैसैं जैसैं तप बधै है तैसैं २ निर्जराकी वृद्धि होय है जो पुरुष कषायवैरीकूं जीत दुष्ट जननिके दुरवचन उपद्रव उपसर्ग अनादरादिकनिकूं कलुषभावरहित सहै है ताकै महानिर्जरा होय है अर जो दुष्टनिकरि कीया उपद्रव अर कर्मके उदयकृत परीषहादिक दरिद्र रोगादिक तथा दुष्टनिका संगमादिक आवतैं ऐसा विचारै है जो पूर्वकालमे पाप उपार्जन कीया था ताका ये फल है अब समभावतैं भोगो कर्मरूप ऋण छूटैगा नाहीं विषाद करोगे तो कर्म छोड़नेका नाहीं संक्लेश करनेमें संख्यात असंख्यात गुणा नवीन और बांधोगे जो उत्तम पुरुष

शरीरकूं तो केवल ममत्वका उपजावनेवाला विनाशीक अशुचि दुःख देनेवाला जानै है अर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र कूं सुखका उपजावनेवाला निर्मल नित्य अविनाशी जानै है अर अपनी निंदा करै है अर गुणवन्तनिका बड़ा सत्कारकरि उच्च मानै है अर मनकूं अर इंद्रियनिकूं जीति अपने ज्ञान स्वभावमें लीन होय है तिनका मनुष्यजन्म पावना सफल होय है अर तिस हीकै पापकर्मको बड़ी निर्जरा होय है अर संसारका छेदने-वाला सातिशय पुण्यका बन्ध होय है अर तिसहीकै परम अती-न्द्रिय अविनाशी अनन्तसुख होय है जो समभावरूप सुखमें लीन होय बारम्बार अपने स्वरूपकी उज्वलताकूं स्मरण करै है अर इंद्रियनिकूं अर कषायनिकूं महादुःखरूप जानि जीतै है तिस पुरुषकै महानिर्जरा होय है ऐसैं निर्जरा भावना वर्णन करी ॥९॥

अब लोकभावनाका वर्णन करैं हैं—

सर्व तरफ अनंतानंत आकाश ताका बहुत मध्यमे लोक है जो जीव पुद्गल धर्म अधर्म काल याका समुदाय जेता आकाशमें तिष्ठै है लोकिये है देखिये है सो लोक है तीनसै तीयालीस घनराजूप्रमाण क्षेत्र है, बाहर अनन्तानन्त आकाश हैं ताकी अलोक संज्ञा है। इस लोकमें अनन्तानन्त जीव हैं जीवनितैं अनन्तगुणा पुद्गल हैं, धर्मद्रव्य एक है, अधर्मद्रव्य एक है आकाश एक है, कालद्रव्य असंख्यात है। सो इन द्रव्यनिका स्वरूप तथा लोकका संस्थानादिकका स्वरूप अवगाहनादिक वर्णन करिये तो कथनी बहुत हो जाय ग्रन्थका विस्तार थोरा थोरा करता हू बहुत हो जाय अर अब आयुकायका हू रोगके प्रचारतै बल घटनेतै अल्प अवसर दीखै है

तातैं ग्रन्थका संग्रह कीया ताकी पूर्णतारूप फलकी जरूरत है यातैं अन्य ग्रन्थतैं जानना ॥ १० ॥

अब बोधिदुर्लभभावनाका संक्षेप कहैं हैं। अनादिकालतैं यो जीव निगोदमें वसै है, एक निगोदके शरीरमें अतीतकालके सिद्धनितैं अनन्तगुणे जीव हैं अपने अपने कार्माणदेहकरि युक्त अवगाहना सबकी एक देहमें है। ऐसैं बादरसूक्ष्म निगोदजीवनिके देहकरि समस्तलोक नीचेऊपरि मांहि बारै अन्तररहित भरया है। बहुरि पृथ्वीकायादिक अन्य पंचस्थावरनिकरि निरन्तर भरया है यामें त्रसपना पावना बालूका समुद्रमें पटकी हीराकी कणिकाका पावनावत् दुर्लभ है अर जो त्रसपना हू कदाचित् पावै तो त्रसनि मे विकलेन्द्रियनिकी प्रचुरतामें पंचेन्द्रियपना असंख्यातकाल परिभ्रमण करतैं हू नाहीं पाइये है फिर विकलत्रयमे मरि निगोदमें अनन्तकाल फिरि पंचस्थावरनिमें असंख्यातकाल संख्यातकाल फिरि निगोदमें जाय है ऐसैं परिभ्रमण करते अनंतपरिवर्तन पूर्ण होय है पंचेन्द्रियपना होना दुर्लभ है पंचेन्द्रियपनामें हू मन-सहितपना होना दुर्लभ है सो असंज्ञी हुवा हितअहितका ज्ञान-रहित शिक्षाक्रिया उपदेश आलापादि रहित अज्ञानभावतैं नरक-निगोदादिकतिर्यंचगतिमें दीर्घकाल परिभ्रमण करै है अर कदाचित् मनसहित हू होय तो क्रूरतिर्यंचनिमें रौद्रपरिणामी तीव्रअशुभ-लेश्याका धारक घोरनरकमें असंख्यातकाल नाना प्रकारके दुःख भोगै है असंख्यातकाल नरकके दुःखभोगि फिर पापी तिर्यंच होय है फिर नरकमें तथा तिर्यचनिमें अनेकप्रकार घोरदुःख भोगता असंख्यातपर्याय तिर्यंचकी वा नरककी भोगता फिर स्थावरनिमें

परिभ्रमण करता अनंतकाल जन्ममरण क्षुधातृषा शीत उष्णता मारन ताडन सहता अनन्तकाल व्यतीत करै है कदाचित् चौहटा मे रत्नराशिका पावना होय तैसैं मनुष्यपना दुर्लभ पायकरकै हू म्लेच्छ मनुष्य होया तो तहां हू घोरपाप संचय करि नरकादिकचतुर्गतिमें परिभ्रमण करतेकै फिरि मनुष्य-जन्म पावना अति ही दुर्लभ है तहां हू आर्यखण्डमें जन्म लेना अतिदुर्लभ है अर आर्यखण्डमें हू उत्तमजाति उत्तमकुल पावना अति दुर्लभ है जातैं भील चण्डाल कोली चमार कलाल धोबी नाई खाती लुहार इत्यादि नीच कुल बहुत हैं, उच्च कुल पावना दुर्लभ है अर कदाचित् उत्तम कुल हू पावै अर धनरहित होय तो तिर्यंचज्यों भार बहना नीचकुलके धारकनिकी सेवा करनेमें तत्पर रहना तथा अष्टप्रहर अधर्मकर्मकरि पराधीनवृत्तिकरि उदर भरना ताका उच्चकुल पावना वृथा है। बहुरि जो धनसहित हू होय अर कर्णादिक इंद्रियनकरि विकल होय तो धनपावना वृथा है इन्द्रियपरिपूर्णता हू होते रोगरहित देह पावना दुर्लभ है अर रोगरहितकै हू दीर्घआयु पावना दुर्लभ है, दीर्घआयु होते हू शील जो सम्यक् मनवचनकायका न्यायरूप प्रवर्तन दुर्लभ है, न्याय प्रवर्तन होते हू सत्पुरुषनिका संगति पावना दुर्लभ है अर सत्संगति होतैं हू सम्यग्दर्शन पावना दुर्लभ है अर सम्यक्त्व होतैं हू चारित्रका पावना दुर्लभ है अर चारित्र होतै हू याका आयुकी पूर्णतापर्यंत निर्वाहकरि समाधिमरणपर्यंत निर्वाह होना दुर्लभ है रत्नत्रय पायकरकै हू जो तीव्रकषायादिकनिकूं प्राप्त होय तो संसारसमुद्रमें नष्ट हो जाय है समुद्रमें पतन किया रत्नको ज्यों फिर रत्नत्रयका

पावना दुर्लभ है अर रत्नत्रयका पावना मनुष्यगति हीमें है मनुष्यगतिहीमे तपव्रतसंयम करि निर्वाणका पावना होय है ऐसा दुर्लभ मनुष्यजन्म पाय करकै हू जो विषयनिमें रमै हैं ते दिव्यरत्नकूं भस्मके अर्थं दग्ध करैं हैं। ऐसैं बोधिदुर्लभ भावना वर्णन करी ॥११॥ अब धर्मभावनाका संक्षेप करैं हैं—

धर्मका स्वरूप दशलक्षण भावनामें कहा ही है, धर्म है सो आत्माका स्वभाव है सो भगवान सर्वज्ञ वीतरागकरि प्रकाश्या दशलक्षण, रत्नत्रय तथा जीवदयारूप है ताका वर्णन यथा अवसर संक्षेपतै इस ग्रन्थमें लिख्या ही है इस संसारमें धर्मके जाननेकी सामग्री ही अतिदुर्लभ है धर्मश्रवण करना दुर्लभ, धर्मात्माकी सङ्गति दुर्लभ, धर्ममें श्रद्धाज्ञान आचरण कोई विरले पुरुषनिके मोहकी मन्दतातै कर्मनिकी उपशमतातैं होय है जो यो जीव जैसैं इंद्रियनिके विषयनिमें स्त्रीपुत्रधान्यादिकमें प्रीति करै है तैसैं एक जन्ममें हू जो धर्मसूं प्रीति करै तो संसारके दुःखनिका अभाव होजाय, यो संसारी अपने सुखकूं निरन्तर वांछै है अर सुखका कारण धर्म है तामें आदर नाहीं करै ताकै सुख कैसैं प्राप्त होयगा बोजविना धान्यकी प्राप्ति कैसैं होय इस संसारमे हू जो इन्द्रपना अहमिंद्रपना तीर्थंकरपना चक्रीपना तथा बलभद्रनारायणपना भया है सो समस्त धर्मके प्रभावतैं भया है तथा यहां हू उत्तम कुल रूप बल ऐश्वर्य राज्य सपदा आज्ञा सपूतपुत्र सौभाग्यवती स्त्री हितकारी मित्र, वांछित कार्य साधनेवाला सेवक निरोगता उत्तमभोग उपभोग रहनेका देवविमानसमान महल सुन्दरसंगतिमें प्रवृत्ति क्षमा विनयादिक

मंदकषायता पण्डितपना कविपना चतुरता हस्तकला पूज्यपना लोकमान्यता विख्यातता दातारपना भोगीपना उदारपना शूरपना इत्यादिक उत्तमगुण उत्तमसंगति उत्तमबुद्धि उत्तमप्रवृत्ति जो कुछ देखनेमें श्रवणमें आवै है सो समस्त धर्मका प्रभाव है धर्मके प्रसादतैं विषम हू सुगम होय है महाउपद्रव हू दूर भागै है उद्यम रहितहू के लक्ष्मीका समागम होय है। धर्मके प्रभावतैं अग्निका जलका पवनका वर्षाका रोगका मारीका सिंहसर्पगजादिक क्रूर जीवनिका नदीका समुद्रका विषका परचक्रका दुष्टराजाका दुष्ट वैरीनिका चोरनिका समस्त उपद्रव दूर होय सुखरूप आत्माकै अनेकविभव प्राप्त होय है तातैं जो सर्वज्ञके परमागमके श्रद्धानी ज्ञानी हो तो केवल धर्मका शरण ग्रहण करो। ऐसैं धर्मभावनाका संक्षेप वर्णन किया ॥१२॥ ऐसैं संस्थानविचय धर्मध्यानमें द्वादश भावनाका संक्षेप वर्णन किया।

धर्मध्यानका कथन ध्याननामा तपमें वर्णन किया है। अब धर्मध्यानका वर्णनमें ज्ञानार्णवादिक ग्रंथनिमें पिण्डस्थपदस्थ, रूपस्थान, रूपातीतध्यान ऐसै च्यारप्रकार कह्या है तिनका संक्षेप इस ग्रन्थमें हू जनाइए। पिंडस्थध्यानमें भगवान पंचधारणा वर्णन करी है विनकूं सम्यक् जाननेवाला संयमी संसाररूप पाशीकूं छेदै है। पार्थिवीधारणा, आग्नेयीधारणा, पवनधारणा, वारुणीधारणा, तत्त्वरूपवतीधारणा ऐसैं पंच धारणा जाननेयोग्य हैं।

तिनमें पृथ्वीसम्बन्धी पार्थिवी धारणाका ऐसा स्वरूप जानना इस मध्यलोकसमान गोल एक राजूका विस्ताररूप क्षीरसमुद्र चिंतवन करना कैसाक क्षीरसमुद्र चिंतवन करना शब्दरहित अर

कल्लोलरहित अर पाला बरफसमान उज्वल तिस क्षीरसमुद्रके मध्यमें ताया सुवर्ण समान अप्रमाणप्रभाका धारक एक हजार पत्रपांखड़ी-युक्त अर पद्मरागमणिमय उदयरूप केसरावली एक कमल चिंतवन करना कैसाक है कमल जम्बूद्वीपसमान एक लक्ष योजनका अर जाके बीच चित्तरूप भ्रमरके रंजायमान करतो मेरुसमान है कर्णिका जाकी, कांतिकरि दशदिशाकूं पीत करती तिसकर्णिकाके मध्य शरदके चन्द्रमाकी कांतिसमान उज्वल उच्च एक सिंहासन तिसमें आप बैठा हुआ सुखरूप रागद्वेषादि रहित संसारमें उपज्या कर्मसमूहके नष्ट करनेमें उद्यमी ऐसा आप कूं चिंतवन करै।

भावार्थ—ऐसा ध्यान करै जो एक उज्वल क्षोभरहित शब्द रहित मध्यलोक प्रमाण विस्तीर्ण क्षीरसमुद्र ताकै बीच जम्बूद्वीप-प्रमाण तायेसुवर्णसमान कांतिका पुञ्ज पद्मराग मणिमय केसर-युक्त एक हजार पाँखड़ीका एक कमल है तिस कमलके बीच मेरु-समान महाकांतिका पुञ्ज कर्णिका, तिस कर्णिकाके मध्य शरदके चन्द्रमासमान कांतिका पुञ्ज उन्नत एक सिंहासन, ताकै मध्य क्षोभरहित रागद्वेषरहित अर कर्मके नाश करनेमें उद्यमी निश्चल बैठ्या अपने आत्माका चिंतवन करना सो पार्थिवी धारणा है।

याका दृढ़ अभ्यास हो जाय तदि तिस स्फटिकमय सिंहासनमें तिष्ठता आपका नाभिमण्डलमें मनोहर षोडश उन्नतपत्रका धारक एक कमल चिंतवन करै तिस कमलका एकएक पत्र ऊपर तिष्ठती षोडशस्वरनिकी पंक्ति अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ऐसैं स्थापनकरि चिंतवन करै तिस कमलकी कर्णिका

में तिष्ठता एक शून्य अक्षर रेफ बिंदु अर्धचन्द्राकार कला-युक्त बिंदुमेंतैं कोटिकांतियुक्त दशदिशाकूं व्याप्त करता 'हँ' ऐसा मन्त्रकूं चिंतवन करना फिर तिस मन्त्रके रेफतैं मन्दमंद निकलता धूम चिंतवन करना। पाछैं अग्निके स्फुलिंगकी पंक्ति चिंतवन करै पाछै महामन्त्रका ध्यानतैं उपज्या ज्वालाका समूह ऊंचा बढ़ता हुआ चिंतवन करकै अपना हृदयमें तिष्ठता अधोमुख अष्टकर्ममय अष्टपाँखडीका कमलकूं दग्ध करै, पाछैं बाह्य निकसि त्रिकोणअग्नि मण्डल अग्निका बीजाक्षर रकारसहित स्वस्तिक चिह्नसहित ज्वालाका समूहकरि अग्नि शरीरकूं दग्ध करै पाछैं निर्धूम सुवर्णसमान प्रभाका धारक अग्नि धखधखाट करता मांही तो मन्त्रका अग्नि कर्मनिकूं दग्ध करै अर बारैंअग्निपुर शरीरकूं दग्ध करै फिर दग्ध करने-योग्य कुछ नाहीं रह्या तदि धीरेधीरे अग्नि स्वयमेव शांत होय शीतल होजाय यहां पर्यंत अग्निधारणा वर्णन करी।

अब पवन धारणाका वर्णन करैं हैं—कैसा है पवन महावेग युक्त अर महाबलवान अर देवनिके समूहकूं चलायमान करता अर मेरुकूं कंपायमान करता अर मेघनिके समूहकूं क्षोभरूप करता अर भुवननिके मध्य गमन करता अर दिशानिके मुखमें संचार करता अर जगतके मध्य फैलता अर पृथ्वीतलमें प्रवेश करता ऐसा पवन आकाशमें भर करि विचरता स्मरण करै तिस प्रबलपवनकरि वह कर्मका रज अर देहका रजकूं उड़ाय धीरेधीरे पवन शांततानै प्राप्त होय ऐसैं पवनधारणा वर्णन करी।

बहुरि वारुणीधारणामें मेघका समूहकरि व्याप्त आकाशकूं चित

वन करै कैसाक है मेघ इन्द्रधनुष, अर विजुलीनिके चमत्कार महागर्जनासहित स्मरण करै बहुरि अमृततै उपजी सघन मोती· समान उज्वल स्थूल धाराकरि निरन्तर वरसता स्मरण करै तीठां पाछैं वरुण वीजाक्षरकरि चिह्नित अर अमृतमयजलका पूरकर आकाशमें व्याप्त होता अर्द्धचंद्रमाके आकार वरुणपुरकूं चिंतवन करै तिस अचिंत्यप्रभावरूप दिव्यध्वनिरूप जलकरि कायतैं उपज्या समस्त रजकूं प्रक्षालन करै ऐसैं वारुणीधारणा वर्णन करी।

तीठां पाछैं सिंहासनमें तिष्ठता अर दिव्यअतिशयनिकरि संयुक्त अर कल्याणनिकी महिमायुक्त अर च्यारप्रकार देवनिकरि पूजित समस्तकर्मकरि रहित अतिनिर्मल प्रगटपुरुषाकार अपना शरीरके मध्य सप्तधातुरहित पूर्णचन्द्रसमान कांतिका पुंज सर्वज्ञसमान अपने आत्माकूं चिंतवन करै या तत्त्वरूपवतीधारणा वर्णन करी।

ऐसै पंचधारणारूप पिंडस्थ ध्यानके चिंतवनमें निश्चय अभ्यास करता योगी अल्पकालमे संसारका अभाव करै है। ऐसें इस पिंडस्थध्यानमें महाकांतिकरि जगतकूं आल्हादन करता सर्वज्ञ तुल्य मेरुके शिखरऊपरि सिंहासनमे तिष्ठता समस्तदेवनिकरि वंद्य अपने आत्माकूं निश्चल चिंतवन करता जिनागमरूप महा समुद्र का पारगामी होय है इस ध्यानहीके प्रभावतैं दुष्टनिकरि कीया विद्यामंडल मंत्रयंत्रादिक क्रूरक्रियाका नाश होय सिंह सर्प शार्दूल व्याघ्र गेंडा हस्ती इत्यादिक क्रूरजीव शांत होय निःसार होय भूत राक्षस पिशाच ग्रह शाकिन्यादिक दुष्टदेवनिके क्रूरवासनाका अभाव होय है। ऐसें पिंडस्थध्यानका वर्णन किया ॥ १ ॥

अब पदस्थधर्मध्यानका वर्णन करैं हैं। जे पूर्वले आचार्यनि-

करि प्रसिद्ध सिद्धान्तमें मंत्रपद है तिनका ध्यान करना सो पदस्थ ध्यान है अनादिसिद्धान्तमें प्रसिद्ध समस्तशब्दरचनाकी जन्मभूमि जगतके वंदनेयोग्य वर्णमातृका ध्यान करना नाभिविषैं एक षोडशपांखड़ीका कमल चिंतवन करो ताका पत्रपत्रप्रति षोड़शस्वरनिकी पंक्ति भ्रमणकरती चिंतवन करै अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ए ऐ ओ औ अं अः ऐसैं शोडषस्वरनिकी पंक्ति चिंतवन करै। बहुरि अपने हृदयमें चौबीसपांखडीका कमल चिंतवन करै ताकी कर्णिकासहित पच्चीस स्थाननिमें पंचवर्गके पच्चीसअक्षर क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म, ऐसैं चिंतवन करै। बहुरि मुख केविषैं अष्टपांखड़ीका कमल विषैं य र ल व श ष स ह ये अष्ट अक्षर प्रदक्षिणारूप परिभ्रमण करते चिंतवन करै इस प्रकार अनादिप्रसिद्ध वर्णमातृकाकूं स्मरण करता ज्ञानी श्रुतज्ञान समुद्रका पारगामी होय है। बहुरि इस वर्णमातृका ध्यानतैं नष्ट भई वस्तुका ज्ञान होय तथा क्षयरोग अरुचिरोग मंदाग्नि कोढ उदररोग कासस्वासादिक रोगको विजय करैं तथा असदृशवचनकला तथा महंतपुरुषनितैं पूजा पाय उत्तम गतिकूं प्राप्त होय है। बहुरि परमागम करि उपदेश्या पैंतीस अक्षरका मंत्र जपै 'णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं' तथा 'अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः' ऐसैं षोड़श अक्षरनिका मंत्रपदका ध्यान करे। तथा 'अरहंतसिद्ध' ऐसैं छह अक्षरनिका मंत्र जाप करै तथा 'णमोसिद्धाणं' ऐसा पांच अक्षरनिके मंत्रका ध्यान करै तथा 'अरहंत' इन चार अक्षरनिका तथा 'सिद्ध' इन

होय अक्षरनिका तथा 'ओं' इस एक अक्षरका तथा 'अ' कारका ध्यान करै तथा 'णमोअरहंताणं' ऐसैं सप्तअक्षरनिके मंत्रका तथा 'असिआउसा' ऐसे पंच अक्षररूप इत्यादिक पंचपरमेष्ठीके वाचक अनेक मंत्र परमगुरुनिके उपदेशकरि ध्यान करना तथा

चत्तारिमंगलं अरहंतमंगलं सिद्धमंगलं साहूमंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मोमंगलं, एव मंगलपद अर चत्तारिलोगुत्तमा अरहंतलोगुत्तमा सिद्धलोगुत्तमा साहूलोगुत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगत्तमा ये च्यार उत्तमपद अर चत्तारिसरणं पव्वजामि अरहंतसरणं पव्वजामि सिद्धसरणं पव्वजामिसाहूसरणं पव्वजामि केवलिपण्णत्तो धम्मोसरणं पव्वजामि ।

ये च्यार शरणपद हैं इनका कर्मपटलके नाश करनेके अर्थ नित्य ही ध्यान करना त्रैलोक्यमें ये चार ही मंगल हैं, चार ही उत्तम हैं, चार ही शरण हैं इनका ध्यानकूं निरन्तर विस्मरण मत होहु इत्यादिक अनेक मंत्र इस जीवके रागद्वेषमोहमूर्छाके नाशकरनेकूं वैरविरोध दूर करनेकूं दुर्ध्यानका नाशकरनेकूं परमशांतभाव उपजावनेकूं विषयनिमें राग नष्ट करनेकूं पंचइंद्रियनिके जीतनेकूं वीतरागतावर्धन करनेकूं, सकलपरवस्तुमें वांछा ममता रहित होय गुरुनिका उपदेशतैं जाप्य करैं हैं ध्यान करैं हैं तिनके कर्मनिकी बड़ी निर्जरा होय है, क्रमकरि संसारपरिभ्रमणका अभाव होय है जे रागी द्वेषी मोही होय परका मरण उच्चाटन वशीकरण इत्यादिकके अर्थि तथा विषयभोगनिके अर्थि वैरीनिका विध्वंसके अर्थि राज्यसंपदाग्रहणकरनेके अर्थि मंत्र जाप करैं हैं ध्यान मुद्रा तप इत्यादिक दृढ़ भये करैं हैं ते घोर संसारपरिभ्रमणका कारण मिथ्यादर्शनादि अशुभकर्मका बंध करैं हैं

खोटी वासना खोटा ध्यान तथा व्यंतर देवदेवी यक्षयक्षणी इत्यादिक कुदेवनिका ध्यानकरि अपने परिणामकूं श्रद्धान ज्ञानतैं भ्रष्टकरि घोर संसारपरिभ्रमण करैं हैं अर कदाचित् कोऊके चित्तका एकाग्रपणारूप तपके प्रभावतैं वा मंदकषायके प्रभावतैं वा शुभकर्मका उदयतैं खोटीविद्या सिद्ध हो जाय तो विषयकषाय अभिमानकी वृद्धिनै प्राप्त होय सम्यक्श्रद्धानज्ञानआचरणका घातकरि पापमें प्रवर्तनकरि दुर्गतिका पात्र होय ऐसा जानि वीतरागताकूं नष्ट करनेवाले खोटे मंत्र यंत्र मुद्रा मंडलनिका त्याग करो । महा मोहरूप अग्निकरि दग्ध होता इस जगविषैं कषायनिकूं छांडि करि केई परमयोगी ऊबरैं हैं या हजारां कष्ट आधिव्याधिकरि व्याप्त महा पराधीन रागद्वेष मोहरूप विषकरि व्याप्त अतिनिंद्य गृह वासमें वडेवडे बुद्धिमान हू प्रमादादिकनिकूं जीति चंचलमनवे वशकरनेकूं नाहीं समर्थ होइए है । बहुरि इस गृहस्थाश्रममें अनेक धनपरिग्रहादिकनिका संयोगमें एकएक वस्तुकी ममतारूप पाशी अर खोटी आशारूप पिशाचणीकरि ग्रस्याहुवा अर स्त्रीनिके रागकरि अंध भये ये जीव आत्माका हितकूं जाननेकूं असमर्थ हैं। बहुरि इसगृहस्थाश्रमपणामें निरंतर आर्तध्यानरूप अग्निकरि प्रज्वलित अर खोटीवासनारूप धूमकरि ज्ञानरूप नेत्र जिनका मुद्रित भया अर अनेक चितारूपज्वरकरि जिनका आत्मा अचेत हो रह्या है तिनकै स्वप्नमें भी ध्यानकी सिद्धि नाहीं होय है । आपदारूप महाकर्दममें फंसि रह्या ऐसा प्रबल रागरूप पिंजरेमें, पीड़ित हो रह्या अर परिग्रहरूप विषकरि मूर्छित गृहस्थी आत्माका हितरूप ध्यान करनेकूं असमर्थ है। अपने ही आरम्भ परिग्रहमें ममतारूप

बुद्धिकरि आप ही आपकूं बांधि पराधीन होय रहे हैं रागादिक रूप वैरीनिकूं गृहका त्यागी संयमी विना नाहीं जीतिये है अर गृहका त्यागी हू विपरीत तत्त्वकूं ग्रहण करते मिथ्यादृष्टिनिके स्वप्नमें हू ध्यानकी सिद्धि नाहीं यतीपणामें हू पूर्वापरविरुद्ध अर्थकी सत्ताकै अवलंबन करनेवाले पाखंडीको ध्यान नाहीं संभवै है सर्वथाएकान्त ग्रहण करनेवाले पाखंडी अनेकान्तस्वरूप वस्तुकूं जाननेकूं ही समर्थ नाहीं तिनकै ध्यान कैसैं होय जिनेंद्रकी आज्ञातैं प्रतिकूल प्रवर्तनेवाले मुनिलिंग धारण करते हू मनवचन-कायकी कुटिलताके धारक अर शिष्यादिक परिग्रहते आपकी उच्चताके माननेवाले अपनी कीर्ति अभिमानपूजासत्कार वदनाके इच्छुक अर लोकनिके रंजायमान करनेमे चतुर अर ज्ञाननेत्रकरि अध अर मदनिकरि उद्धत अर मिष्ट भोजनके लोलुपी पक्षपाती तुच्छशीली तिनकै मुनिभेष धारण करते हू कदाचित् धर्मध्यान नाहीं होय है अर ऐसे पाखण्डी भेषी अन्य भोलेलोकनिकूं कहैं यो काल दुःखमा है यामें ध्यानकी सिद्धि नाहीं या कहि अपने अर अन्यके ध्यानका निषेध करैं हैं। तथा काम भोग धनका लोलुपी मिथ्याशास्त्रनिके सेवक तिनकै ध्यान कैसैं होय। बहुरि रागभाव सहित इन्द्रियनिके विषयनिमें करुणारहित हास्य कौतुक मायाचार युद्ध कामशास्त्रनिके व्याख्यान करनेवालेनिकै ध्यान स्वप्न हू मैं नाहीं होय है। बहुरि जिनेश्वरकी दीक्षा धारण करिकै हू अपना गौरवका अर्थी होय करकै वशीकरण आकर्षण मारण उच्चाटन जलस्थंभन अग्निस्थंभन विषस्थंभन रसकर्म रसायण पादुकाविद्या अंजनविद्या पुरक्षोभ इंद्रजाल बलस्थंभन जीति हारि विद्याछेद

वेद वैद्यकविद्या ज्योतिष्कविद्या यक्षणीसिद्धि पातालसिद्धि काल-वंचना जॉगुलि सर्प मंत्र भूत पिशाच क्षेत्रपालादि-साधन, जल मंत्रन सूत्रबंधन इत्यादि कर्मनिके अर्थि ध्यान करै हैं मंत्रसाधन करै हैं घोर तप करै हैं तिनके बीचि मिथ्यात्व कषायके वशतैं घोरकर्मका बंधका कारण दुर्ध्यान जानना ताके प्रभावतै नरक तिर्यंचादिक कुगतिमें अनंतकाल परिभ्रमण होय है अर ऐसे पाखंडीनिकी उपासना करनेवाले अनुमोदना करनेवाले दुर्गतिमें परिभ्रमण करैं हैं ऐसा दृढ़श्रद्धान धारि खोटे मंत्र यंत्रनिका त्याग दूरहीतैं करो। इहाँ कोऊ कहै जो खोटे मारण उच्चाटनादि अनेक विद्या मंत्र तंत्रादिक द्वादशांगमें कहे है कि नाहीं ? ताकूं कहिए है—जो द्वादशांगमें तो समस्त त्रैलोक्यमे वर्तते द्रव्य क्षेत्र काल भाव विष अमृत समस्त कहे हैं परन्तु विषादिककूं त्यागने-योग्य कह्या, अमृतकूं ग्रहण करने योग्य कह्या तैसै खोटे मन्त्र खोटी विद्या त्यागने योग्य कही है। तातैं अयोग्य विद्याका दुर्ध्यानादिकका त्याग करिकै कर्मका निर्जरा करनेवाली वीतरागता काकारण पंचपरमेष्ठीके वाचक मंत्र पदनिहीका ध्यान करो। ऐसैं धर्मध्यानके भेदनिमें पदस्थ ध्यान वर्णन किया ॥२॥

अब रूपस्थध्यानसें भगवान अर्हंत परमेष्ठी समवसरणमें तिष्ठते असंख्यात इन्द्रादिक करि वंद्यमान द्वादशसभाके जीव-निकूं परम धर्मका उपदेशकरर्तेनिका ध्यान करनेका उपदेश करैं हैं। भगवान अर्हंतके धर्मोपदेश देनेका सभास्थान है सो भूमिसूं पांच हजार धनुष ऊँचा अकाशमें बीस हजार पैड़ीनिकरि युक्त है। अर हरित नील मणिमय जाकी भूमिका समवृत्त, झालरिके

आकार गोल है मानूं तीन लोककी लक्ष्मीके मुख अवलोकन करनेका दर्पण ही है। इस सभास्थानका वर्णन करनेकूं कौन समर्थ है जाका सूत्रधार कुवेर है जो अनेक रचना करनेमें समर्थ ताका वर्णन हम सारिखे मंदबुद्धि करनेकूं कैसैं समर्थ होंय तो हू शुभ ध्यान होनेके अर्थि तथा श्रवण चिंतवन करि भव्य जीवनिके अति आनन्द होनेके अर्थि किंचित् वर्णन करिये है। तिस द्वादश योजन प्रमाण इंद्रनीलमणिकी समवृत्त भूमिका पर्यंत अनेक वर्णनके रत्ननिकी धूलिकरि रच्या धूलीशाल कोट है। कहूँ तौ हरितमणिनिकी काँतिकरि आकाश हरित किरणमय सोहै है कहूँ पद्मराग मणिनिकी प्रभाकरि व्याप्त है कहूँ मेचक मणिनिकी प्रभाकरि व्याप्त है कहूँ चन्द्रकांतमणिनिकरि व्याप्त चन्द्रमाकी ज्योत्स्ना चानणीकूं धारण करै है। इत्यादिक अनेक कांतिके धारक रत्ननिका महाप्रभाकरि यो धूलीशालकोट आकाशमें वलयाकार इन्द्रधनुषकी शोभाकूं विस्तारता सोहै है कहूँ सुवर्णमय धूलकी काँतिकरि देदीप्यमान है इत्यादिक अनेक रत्ननिकी प्रभाका पुंज जो धूलीशाल ताकी च्यारि दिशानिमें सुवर्णमय दोय दोय स्तम्भ हैं तिन स्तंभनिके अग्रभागमें लूंबते मकराकृत तोरण तिनमें रत्ननिकी माला सोहै है: तिस धूलिशालकोटकै च्यारूं तरफ महा वीथी एक एक कोस चौड़ी मांही प्रवेश करनेकी है तिन महावीथीनिके मांही केतीक दूर जाइए तहाँ वीथोनिके बीच सुवर्ण मानस्तम्भ हैं ते महा ऊंचे हैं तिन मानस्तम्भनिके च्यारूतरफ च्यार च्यार द्वारनिकरि युक्त तीन कोट हैं और तीन तीन कोटनिकै मध्य षोडश सोपान जो सिवाणनिकरि युक्त पीठ हैं तिन पीठनिकै

मध्यविषैं वड़े ऊंचे मानस्तम्भ हैं ते पीठ सुर असुर मनुष्यनिकरि पूज्य हैं तिन स्तम्भनिकूं दूरहीतैं देखत प्रमाण मिथ्यादृष्टीनिका मान जाता रहै है तिन मानस्तम्भनिके मूल विषैं पीठ ऊपरि सुवर्णमय जिनेन्द्र प्रतिमा विराजैं हैं तिनकूं क्षीरसमुद्रके जलतैं इंद्रादिक देव अभिषेक करै हैं तिस जलकरि वह पीठ पवित्र है अर तहां शाश्वते देव मनुष्यनिकरि कीये नृत्यवादित्र जिनेन्द्रके मंगल रूप गान प्रवर्तें हैं। पृथ्वीके मध्य पीठ ताके ऊपरि पीठनिका तीन कटनी तीन तीन पीठनिके ऊपरि सुवर्णमय मानस्तम्भ तिनके मस्तक ऊपरि तीन छत्र हैं मिथ्यादृष्टीनिके मान स्तंभनकरनेतैं तथा त्रिलोकवर्त्ती सुर असुर मनुष्यादिकनिके माननेतैं पूजनेतैं इनका मानस्तम्भ सार्थक नाम है इन मानस्तम्भनिका च्यारूं तरफ च्यार बावड़ी हैं तिन बावड़ीनिमें निर्मल जल भर्या है नानाप्रकारके कमल प्रफुल्लित होय रहे हैं तिनका स्फटिकमणिमय तट है तिनके तटनि ऊपरि नाना प्रकारके पक्षीनिके शब्द होय रहे हैं ता पक्षीनिके शब्दनिकरि तथा भ्रमरनिके गुंजनकरि जिनके गुणनिका स्तवन ही करैं हैं। पूर्वके मानस्तम्भके च्यारूं तरफ नंदा नन्दोत्तरा नन्दवती नन्दघोषा ये चार बावड़ी, अर दक्षिणमें विजया वैजयन्ती जयन्ती अपराजिता, अर पश्चिममें अशोका सुप्रभा सिद्धा कुमुदा पुंडरीका है उत्तरके मानस्तम्भके च्यारूं तरफ प्रदक्षिणारूप नन्दा महानन्दा सुप्रबुद्धा प्रभंकरी ऐसैं च्यारदिशानिके च्यार मानस्तंभनिके च्यारतरफ षोडश बावड़ी हैं अर एक एक बावड़ीके दोय तटनिके निकट दोय दोय पादप्रक्षालन करनेकूं

कुण्ड हैं उन कुण्डनिके जलतैं चरण धोय मानस्तम्भनिकी पूजाकूं मनुष्यादिक जाय हैं अर इहांतै कछुक आगै जाइए तहां महावीथिका मार्गकूं छांडि च्यारतरफ कमलनिकरि व्याप्त जलकी भरी खातिका कहिये खाई हैं सो मानूं प्रभुके सेवनकूं गंगा ही च्यारतरफ आई है तिस खाईरूप आकाशमे तारानक्षत्रनिके प्रतिबिम्बसमान पुष्प सोहै हैं तिस खाईके रत्नमयतटविषै नानाप्रकार पक्षीनिके समूह शब्द करि रहे हैं अर अद्भुत तरंगनिकरि व्याप्त हैं तिस खातिकापर्यन्त एक योजन बलयनिष्कंभ है तिस खातिकाका अभ्यंतरभूमिका भागविषैं च्यारूंतरफ बल्लीनिका बन है तिसमे नानाप्रकार वल्ली छोटेगुल्म वृक्ष समस्तऋतुनिके पुष्पकरि व्याप्त हैं जिसमें नानाप्रकारके पुष्पनिकी वल्ली उज्वलपुष्पनिकरि व्याप्त मानूं देवांगनानिके मन्दहास्यकी लीलाकूं धारण करै हैं जिनऊपरि भ्रमर गुंजार करै है अर मन्दसुगंधपवनकरि वेलवृक्ष घूम रहे हैं तिस वेलनिका वनमे अनेकक्रीड़ाकरनेके क्षुद्रपर्वत हैं रमणीक शय्यानिकरि सहित ठौरठौर लतानिके मण्डप बन रहे हैं तिनमें अनेकदेवांगना जिनेन्द्रका यश गावैं हैं अर अनेक लताभवनमें हिमालयसमान शीतल चन्द्रकांतिमणिमय शिला देवनिका विश्रामके अर्थ तिष्ठैं है धूलीशालतैं लेय पुष्पवाड़ीपर्यन्त दोयोजनप्रमाण बलयविष्कभं है सो दोऊतरफ च्यारयोजनप्रमाण क्षेत्र भया इहांतैं महावीथीके मध्य कितने दूर जाइए तहां च्यारूं तरफ वाया सुवर्णमय प्रथमकोट तिस भमिकूं वेढ़ैं हैं जैसैं मनुष्यलोककूं मानुषोत्तरपर्वत वेढ़ैं है। सो यो सुवर्णमय प्रथमकोट अनेक रत्ननिकरि चित्रविचित्र है कहूं हस्तीनिके मिथुन कहूं

व्याघ्रसिंहनिके मनुष्यनिके हंसमयूर सूवा इत्यादिकनिके युगल-
निके रूपनिकरि नानाप्रकार रत्ननिके जड़ावकरि व्याप्त है कहूं
रत्नमय वेल पुष्प पल्लव वृक्षनिके सुन्दररूपकरि व्याप्त है अर
ऊपरिनीचैं कांगूरेनिमे मोतीनिकी तथा पंचवर्णमय रत्ननिकी
माला तथा झालरनिका जालकरि व्याप्त है तिसकोटकी अप्र-
माणकांतिकरि आकाश इन्द्रधनुषकरि व्याप्त हो रह्या है तिस
सुवर्णमय प्रथमकोटके च्यारूं दिशानिमें महानऊंचे रूपामय
उज्वल चार गोपुर कहिये दरवाजे हैं ते गोपुर विजयार्द्धके शिखर-
समान ऊंचे तीनतीन खणके ज्योतिके पुंज मानूं तीनजगतकी
लक्ष्मीकूं हंसैं ही है तिन रूपामई तीनखणके गोपुरनिके ऊपरि
पद्मरागमणिमय दिशानितैं आकाशनैं कांतिकरि व्याप्त करते ऊंचे-
शिखर आकाशमे जाय रहे हैं तिन गोपुरनिमें गान करनेवाले कई
देव जगतका गुरु जो जिनेन्द्र ताके गुण गाय रहे हैं कई जिनेन्द्र
के गुण श्रवण करै हैं कई जिनेन्द्रके गुणनिके भरे नृत्य करि रहे
हैं। बहुरि एक एक दरवाजेनि प्रति एकसौ आठ आठ झारी कलश
दर्पण ठोणा चमर छत्र ध्वजा बीजणा ये रत्नमय मंगल द्रव्य
सोहैं है बहुरि एक एक गोपुर प्रति रत्ननिका आभरणकी कांति-
करि व्याप्त किया है आकाश जानै ऐसे सौ सौ तोरण दिपैं हैं
मानूं स्वभावहीतैं अतिकांतिका धारक जिनेन्द्रका देह तामें अपना
अवकाश नाहीं जानिकरि ते आभरण गोपुरनिके तोरणतोरण
प्रति लूंबै हैं। बहुरि एकएक द्वारनिके वाह्यभूमिविषैं नवनव निधि
तीनभुवनकूं उल्लंघन करनेवाला जिनेन्द्रका प्रभावकी प्रशंसा करैं
हैं मानूं वीतराग भगवानकरि तिरस्कार करी नवनिधि हैं ते

द्वारका वहिर्भाग सेवन करैं हैं। बहुरि द्वारके अभ्यन्तर जो एक कोस चौड़ी महावीथी ताका दोऊ भागमें दोय नाट्यशाला हैं ऐसैं च्यारदिशानिके द्वारप्रति दोयदोय नाट्यशाला हैं ते नाट्यशाला तीन २ खनकी ऐसी सोहैं हैं मानूं जीवनकूं त्रयात्मक मोक्षमार्ग जनावनेकूं उद्यमी हैं तिन नाट्यशालानिकी उज्वल स्फटिकमणि-मय भींत हैं अर सुवर्णमय स्तंभ हैं अर स्फटिकमणिमय भूमिका है अर अनेक रत्नमयशिखरनिकरि आकाशकूं रोकती शोभैं हैं तिन नाट्यशालानिमें विजलीकी प्रभावत् नृत्य करती गान करती मोहकर्मका विजयकरि जिन नाम सार्थक पाया है ऐसा भग वानका यश गावती केतीक देवांगना पुष्पनिकी अंजुली क्षेपैं हैं केतीक देवांगना वीण बजावैं हैं मृदंगादिक अनेकवादित्रनिकी ध्वनिके साथ नानाप्रकार जिनेन्द्रस्तवन उच्चारण करती नाट्यरसमें जिनेंद्रका गुणनिमें तन्मय भई नृत्य करै हैं वीणाके नादसमान सुन्दर शब्दकरि गावते जे किन्नरदेव ते आवतेजावते देवादिकनिके मनकूं आसक्त करैं हैं। बहुरि नाट्यशालानितैं आगैं महावीथीके दोऊं पसवाडेनिमें दोय दोय धूपघड़े हैं तिनतैं निकसता धूपका धूम आकाशके आंगनमें फैलता दिशानिकूं सुगंध करैहैं आकाशतैं उतरते देवनिके मेघकी शंका उपजावै है, तिस महावीथीके दोऊ पसवाड़ेनिका अंतरालमें च्यार तरफ वनवीथी है तिनका एक योजनचौड़ा वलयविष्कंभ है तामें एक श्रेणी अशोकवृक्षनिकी दूजी सप्तपर्णवनकी तीजी चम्पकवनकी चौथी आम्रवनकी श्रेणीहै ते वन पत्र पुष्प फलनिकरि शोभित मानूं जिनेंद्रकूं अर्घ ही दे हैं। या वनश्रेणी दोऊ तरफ दोय योजनमें है तिनमें रत्नमय अनेकपक्षी

शब्द करैं हैं भ्रमरनिके नाद हो रहे है नन्दनवनवत् कोट्यां देव देवांगना नानाआभरणनिके धारक उद्योतके पुंज विचरैं हैं तिन वननिमें कहूं तो कोकिलनिके शब्द ऐसे हो रहे है मानूं जिनेंद्रके सेवनकूं देवेंद्रनिकूं बुलावै है जहां शीतलमन्दसुगन्ध पवनकरि वृक्षनिकी शाखा नृत्य करैं हैं तिस वनकी भूमिका सुवर्णमय रजकरि व्याप्त है इन वननिमें रत्नमयवृक्षनिकी ज्योतिकरि रात्रि-दिनका भेद नाहींनिरन्तरउद्योतरूप है अर वृक्षनिकी शीतलताके प्रभावकरि सूर्यके किरण आताप नाहीं करैं तिन वननिमें कहूँ त्रिकोण चतुष्कोण निर्मल निर्जंतु जलकी भरीं वापिका हैं तिन-बावडीनिकै रत्ननिके सिवाण हैं सुवर्णरत्नमय तट हैं कहूं रत्नमय अनेकक्रीड़ापर्वत हैं कहूँ रमणीक अनेकरत्नमय महल हैं कहूँ अनेकप्रकारके क्रीड़ामण्डप हैं कहूँ प्रेक्षागृह हैं कहूँ एकशाला कहूँ द्विशाला कहूं त्रिशाला अनेकमहलनिकी रचना है कहूँ हरितभूमि इन्द्रगोपरूपरत्ननिकरि व्याप्त है कहूं महानिर्मल सरोवर हैं कहूँ मनोज्ञ नदी हैं प्राणीनिका शोक दूरकरनेवाला अशोकवृक्षनिका वन मानूं जिनेंद्रका सेवनतैं अपने रक्तपुष्पपल्लवनिकरि रागकूं वमन ही करै है अर सप्तच्छदनामा वन मानूं अपने सप्तपत्र-निकरि भगवानके सप्त परमस्थाननिकूं दिखावै ही है अर चंपक वन अपने दीपकसमान पुष्पनिकरि मानूं दीपांगजातिके कल्प-वृक्षनिका वन प्रभूकी सेवा ही करै है बहुरि सुन्दर आम्रवन सो कोकिलनिके शब्दनिकरि जिनेन्द्रका स्तवन करै है बहुरि अशोकवनके मध्य एक अशोकनामा चैत्यवृक्ष है तीन सुवर्णमय पीठ ताके ऊपरि है तिस पीठके चोगिरद तीन कोट हैं एक एक

कोटके चारचार द्वार हैं ते द्वार छत्र चमर भारी कलश दर्पण बीजणो ठोणो ध्वजा इसप्रकार मङ्गलद्रव्य मकराकृत तोरण मोतिनिकी मालादिककरि भूषित हैं जैसैं जम्बूद्वीपकी स्थलीमध्य जम्बूवृक्ष सोहै तैसै वनकी स्थलीमध्य तीनपीठ ऊपरि अशोक-नामका चैत्यवृक्ष सोहै है शाखाका अग्र दशदिशानिमें विस्तरता देखतप्रमाण शोककूं नष्ट करै है अपने पुष्पनिकी सुगंधिकरि समस्त आकाशकूं व्याप्त करता अपना विस्तारकरि आकाशकूं रोकै है मरकतमणिमय हरितकांतिसंयुक्त पत्रनिकरि भरया पद्म-रागमणिमय पुष्पनिके गुच्छेनिकरि वेष्टित है सुवर्णमय ऊंची शाखा हैं वज्र जे हीरा तिनकरि रच्या पेड है अपनी प्रभाका मण्डलकरि समस्तदिशाकूं उद्योतरूप करै है, रणत्कार करते घण्टानिके नादकरि भगवान का विजयकी घोषणाकूं त्रैलोक्यमे व्याप्त करै है ध्वजानिके चलायमान वस्त्रनिकरि दर्शनकरते लोकनिके अपराध पापरूपरजकूं दूर करै है मुक्ताजालनिकरि युक्त मस्तकऊपरि लूमते तीनछत्रकरि जिनेन्द्रका तीन भवनका ईश्वरपणानैं वचनविना ही कहै हैं अर वृक्षका पेडके मूलभाग च्यार-दिशानिमें च्यारजिनेन्द्रके प्रतिबिंबकरि युक्त है अर तिन प्रति-बिंबनिका इन्द्रादिकदेव अभिषेक करैं हैं अर गंधमाला धूप दीप नैवेद्य फल अक्षतनिकरि देव पूजन करैं हैं ते अरिहन्तकी प्रतिमा क्षीरसमुद्रके जलकरि प्रक्षालित हैं सुवर्णमय है नित्य सुरअसुर देवलोकके उत्तमद्रव्यनिकरि इन्द्रादिकदेव पूजैं हैं स्तवन करैं हैं वंदना नमस्कार करैं है केतेक देव अरहन्तके गुणस्मरणकरि निश्चयकरि आनन्दतैं गावैं हैं जैसै अशोकवनमें एक अशोक

नाम चैत्यवृक्ष है तैसैं चम्पक सप्तच्छद आम्रनामके धारक वननि में एकएक चंपकादि नामधारक चैत्यवृक्ष जानना चैत्य जे जिनेंद्रकी प्रतिमा तिनिकरि युक्त इनका मूल है तातैं चैत्यवृक्ष सार्थकनामकूं धारैं हैं तिन वननिका पर्यंतभागविषैं चौगिरद वेदी है जो कांगुरे संयुक्त होय ताकूं कोट कहिये कांगुरेरहित चौगिरद भींत होय ताहि वेदी कहिये है सो वनका पर्यंतमें सुवर्णमय वेदी है ताकै महान ऊंचे चारतरफ रूपामय च्यारद्वार हैं सो वेदी अर दरवाजे अनेकरत्ननिकरि व्याप्त हैं जिन द्वारनिके घण्टानिके समूह लूम रहे हैं मोतीनिकी माला झालर पुष्पमाला लंबायमान है ते द्वार एकसौआठ अष्ट मङ्गलद्रव्य अर रत्ननिके आभरणसहित रत्नमय तोरणनिकरि भूषित हैं तिन तीनखणनिके द्वारनिमें अनेकदेव गीत वादित्र नृत्यकरि जिनेन्द्रके यशमें लीन हो रहे हैं तिनद्वारनि के आगैं वेदीके लगता ही रत्नमय पीठनिके ऊपरि सुवर्णमय स्तम्भनिके अग्रमें नानाप्रकारकी ध्वजानिकी पंक्ति हैं ते मणिमय पीठनिके ऊपरि सुवर्णमय अनुपमकांतिके धारक स्तम्भ हैं ते अठ्यासी अंगुल मोटे हैं स्थूल हैं पचीस धनुषका अंतराल परस्पर धारण करैं हैं इनकी ऊंचाईका प्रमाण ऐसा जानना समवसरणमें तिष्ठते सिद्धार्थवृक्ष चैत्यवृक्ष कोट वन वेदी अर स्तूप अर तोरणनि सहित मानस्तम्भ अर ध्वजानिकी अर वनके वृक्षनिके प्रासाद जे महल पर्वतादिकनिकी उच्चता तीर्थंकरका देहकी उच्चतातैं बारह गुणी जाननी बहुरि पर्वतनिकी चौड़ाई है सो अपनी ऊंचाईतैं अष्टगुणी है अर स्तूपनिकी चौड़ाई उच्चतातैं किंचित् अधिक है अर कोट वेदिकादिकनिकी चौड़ाई अपनी ऊंचाईके चौथे भाग

जाननी ते ध्वजा दशप्रकार है माला वस्त्र मयूर कमल हंस गरुड़
सिंह बलध हस्ती चक्रनिके चिह्नकी ध्वजा दशप्रकार हैं ते ध्वजा
प्रत्येक एकएक प्रकारकी एकसौआठ एकदिशामें हैं समस्त दश-
प्रकारकी ध्वजा एकहजार अस्सी एक दिशामें भई चारों तरफ
की चार हजारतीनसैवीस हैं समुद्रकी तरंगनिकी ज्यों पवनकरि
तिनके वस्त्र लहलहाट करै हैं मालाकी ध्वजामें मालाके आकार
वस्त्र लूमते हाल रहे हैं ऐसैं वस्त्रकी ध्वजा मयूराकार मयूरध्वजा
सहस्रपांखडीका कमलके आकार कमलध्वजा हंसध्वजा गरुड़ध्वजा
सिंहध्वजा वृषध्वजा गजध्वजा चक्रध्वजा ये दशप्रकार एक
दिशाप्रति एकसौआठ एकसौआठ हैं ऐसे चार दिशामें
चारहजारतीनसेवीस हैं मोहकर्मका विजयकरि उपार्जन कीई
जिनेन्द्रका त्रिभुवननरेशपनाकी प्रशंसा करै हैं सो या ध्वजा
भूमिका वलयविष्कंभ एकयोजनका दोऊतरफ दोययोजन चोड़ाहै
तिसकूं उल्लंघनकरि दूजाकोट अर्जुन कहिये सुवर्णका है इस
द्वितीयकोटके हू प्रथमकोटवत् रूपामई चार तरफ महाद्वार हैं
ते द्वार हू प्रथमकोटके द्वारवत् मंगलद्रव्य तोरण रत्ननिके आभ-
रणनिकी संपदा धारै हैं ये द्वार हू तीनतीन खणके अर अभ्यंतर
दोऊतरफ नाट्यशाला धूपघटयुग्म महावीथीके दोऊं पसवाडे-
निमें तिष्ठै हैं। वहुरि आगैं महावीथीकी दोऊकक्षाविषैं एक-
योजन चौड़ा वलयविष्कम्भ धारता अनेक रत्नमय कल्पवृक्षनिका
च्यारूतरफ वन है ते उन्नतछाया फल पुष्पनिकरि युक्त है दश
जातिके कल्पवृक्षनिके वनका रूपकरि देवकुरु उत्तरकुरु भोगभूमि
ही जिनेन्द्रका सेवन करैं हैं जिन कल्पवृक्षनिके आभरण वस्त्रादिक

फलपुष्पनिकी महान् महिमा है वृक्षनिके अधोभागमें देव बैठे हुए अपने स्वर्गनिके स्थानकूं भूलि चिरकाल तहाँ ही वसैं है ज्योतिरंग जातिके कल्पवृक्षनिमें ज्योतिष्कदेव अर दीपांगनिमें कल्पवासीदेव अर स्रगांगनिमें भावनेन्द्र यथायोग्य सुखित तिष्टैं हैं इन च्यार तरफके वनमें एकएक सिद्धार्थवृक्ष मध्यमें है तिनका मूलमें सिद्धप्रतिमा विराजै हैं जैसें चैत्यवृक्षनिका पूर्वै वर्णन कीया तैसै इनका वर्णन जानना एता विशेष है ये कल्पवृक्ष संकल्परूप कीया फलका देनेवाला है कल्पवृक्षनिका वनमें हू कहूं बावडी कहूं नदी बालूके टीबेवत रत्नमय धूलके पुंज हैं कहूँ सभागृह प्रासाद इत्यादिक अनेक सुखरूप स्थाननिकूं धरैं हैं बहुरि इस वनवीथीके अभ्यंतर वनवेदी रूपामई है उन्नत तीन तीन खणके च्यार द्वारनिकरि युक्त है अर पूर्ववेदीवत तोरण आभरण मंगलद्रव्यनि करि युक्त है तिन द्वारनिके अभ्यंतर जाय च्यार तरफ प्रासाद जे महल तिनकी पंक्ति है सुरशिल्पीकरि रचे नानाप्रकारके च्यारूं तरफ है तिन प्रासादनिके सुवर्णमय स्तंभ हैं वज्रमणि जे हीरा तिनमई भूमिका बन्धन है चन्द्रकांतिमणिमय भींति है नाना रत्ननिकरि चित्रित है केते दोयखणके केते तीनखणके केते च्यारखणके हैं केई प्रासाद चन्द्रशाला युक्त हैं ऊपरला ऊंचा चंद्रशाला कहिये है केई बलभीछद च्यारूं तरफ भींतिनिकरि सहित हैं ते प्रासाद अपनी उज्वलप्रभामें डूबिरहे हैं केई अपने उज्वलशिखरनिकरि चन्द्रमाकी चानणीकरि ही मानूं रचे हैं कहूं बहुत फिरखनिके महल हैं कहूं सभागृह हैं कहूँ नाट्यशाला हैं कहूं शय्यागृह है जिनके चन्द्रकांति मणिमय ऊंचे सोपान है तिनमें देव विद्या-

धरजातिके देव सिद्धजातिके देव गंधर्वदेव पन्नगदेव किन्नरदेव बहुत आदरसहित जिनेन्द्रके गुण गावैं हैं केई वजावैं हैं अनेक जातिके वादित्रनिकरि शब्दमय हैं केई संगीत नृत्य करैं हैं केई जयजयकार शब्द करै हैं केई जिनेन्द्रके गुणनिका स्तवन करै हैं। बहुरि तिस हर्म्यावलीकी भूमिका मध्यभागनिविषैं नवस्तूप हैं ते स्तूप पद्मरागमणिमय पुंजके आकार उतंग आकाशका अग्रकूं उलंघन करते ऐसे हैं मानूं समस्तदेव मनुष्यनिका चित्तका अनुराग ही स्तूपके आकारकूं प्राप्त भया है है कैसेक हैं स्तूप सिद्धनिके अर अर्हंतनिके प्रतिविंबनिके समूहकरि समस्त तरफ व्याप्त हो रहे हैं अपनीऊंचाईकरि आकाशकूं रोकै हैं ते स्तूप देव विद्याधरनिकरि सुमेरुकी ज्यों पूज्य हैं उच्चदेवनिकरि चारणऋद्धिके धारीनिकरि आराध्य हैं तथा ये नवस्तूप जिनेन्द्रकी नवकेवललब्धि ही स्तूपाकार भए हैं तिन स्तूपनिके अन्तरालविषैं रत्ननिके तोरणनिकी पंक्ति ऐसी शोभै हैं मानूं इंद्रधनुषमय ही हैं अर अपनी ज्योतिकरिं आकाशरूप अङ्गणकूं चित्ररूप करै हैं ते स्तूप छत्रनिकरि सहित हैं पताकाध्वजाकरि सहित हैं समस्त मङ्गलद्रव्यनिकरि भरया है तिन स्तूपनिविषैं जिनेन्द्रकी प्रतिमानिका अभिषेक करके अर पूजन स्तवन करके पाछै प्रदक्षिणा करिके भव्य जीव हर्षकूं प्राप्त होय है ऐसैं अर्द्धयोजनप्रमाण वलयविष्कंभरूप चौड़ी प्रासाद अर स्तूपनिकी भूमिकूं उलंघन करकै आगैं आकाश स्फटिकमणिमयती जा कोट है सो आकाशस्फटिक मणिमय आकाशसमान निर्मल कोट है सो जिनेन्द्रकी समीपताका सेवनतैं निकट भव्यका आत्माकी ज्यों उज्वल उतंग सद्वृत्त-

ताकरि युक्त है तिस स्फटिकमणिमय कोटके च्यार दिशानिमें पद्मरागमणिमय च्यार महाउत्तंग महाद्वार हैं मानूं भव्यनिका रागपुंज हैं इन द्वारनिके हू पूर्ववत मंगलद्रव्यनिकी संपदादिक समस्त है अर द्वारनिका समीपभागविषैं दैदीप्यमान गंभार नौ निधि हैं बहुरि तीनकोटनिके द्वारनिविषैं गदादिक हस्तनिमें धारण करते देव तिष्ठैं प्रथमकोटके द्वारपाल तो व्यंतरदेव हैं दूजे कोटके द्वारपाल भवनवासीदेव है तीजा स्फटिक मणिमयकोटके द्वारपाल कल्पवासीदेव हैं बहुरि तिस स्फटिकमणिमय कोटतैं गंधकुटीका पहला अधस्तलका पीठपर्यंत लंबी षोडश भींति आकाशस्फटिकमणिनिका रची हैं तिनकी निर्मल कांति है आदिकी पीठतलतैं लगाय स्फटिककोटतैं लगो षोडश भींति ते अपनी स्वच्छताके प्रभावतैं नेत्रनितैं नाहीं दीखै हैं आकाश ही दीखै हस्तादिक शरीरके स्पर्शनते ही भींति जानिये है स्वच्छताके प्रभावतैं दीखनेमें नाहीं आवै है निर्मल अर समस्तवस्तुनिके बिंब दिखावनेवाली भूमि जिनेन्द्रकी ज्ञानविद्या ज्यों सोहै है इन षोडश भींतिनिके मध्य षोडश ही दर तिनमें च्यार महावीथी हैं अर महावीथीनिके मध्य द्वादश सभास्थान है सो भींतनिकी आकाश समान स्वच्छताकरि न्यारापना नाहीं दीखै है सब एक दीखै हैं तिन षोडशभींतनिके ऊपरि रत्नमय षोडश स्तंभनिकरि धारण किया आकाशस्फटिकमणिमय श्रीमंडप महाउच्च है एक योजन चौड़ा लंबा गोल है महान शोभायुक्त है जाकेविषैं समस्त सुरअसुरनिकरि वंद्यमान परमेश्वर तिष्ठै हैं तातैं यो सत्य ही श्रीमंडप है यो श्रीमंडप आकाशस्फटिकमणिमय तातैं आकाश दीखै हैं

अर तीन जगतके जनसमूहकूं निर्बाध स्थान देनेतैं बड़ा वैभवकूं प्राप्त है तिस श्रीमंडपऊपरि गुह्यक देवनिकरि छोड़े पुष्पनिके समूह हैं ते श्रीमंडपके अधोभागमें तिष्ठते देवमनुष्यनिके तारानिका शंकाकूं उपजावै हैं एकयोजनप्रमाण यो श्रीमंडप तामें समस्त देव मनुष्य परस्पर बाधारहित सुखरूपतिष्ठें हैं सो जिनेन्द्रको माहात्म्य है तिसका मध्यभागमें तिष्ठता प्रथम पीठ है सो वैडूर्यमणि जो मयूरकंठवर्ण हरित है अष्ट धनुष ऊंचा है तिसपीठकै षोडश अंतर है तिन षोडश अंतरके षोडश षोडष पैंडा चढ़ने उतरनेके सिवाण है पहला पीठके च्यार तरफ तो महावीथी एककोश चौड़ी अर धूलीशालतैं प्रथमपीठपर्यंत लंबी सूधी है तिस पीठकै षोडश-पैड़ीनिके ऊपर चढि प्रथम पीठके ऊपरि जाय अपने २ सभाके स्थानप्रति देवमनुष्यादि षोडश पैड़ी उतरि अपनी अपनी सभामें जाय बैठे हैं तिस प्रथमपीठकूं च्यारूंतरफ अष्टमंगलद्रव्य भूषित करै हैं अर तिस प्रथमपीठऊपरि ऊंचे यक्षनिके मस्तकऊपरि धर्मचक्र च्यारतरफ हैं ते धर्मचक्र एक हजार रत्नमय किरणनिके समूहकरि मानूं प्रथमपीठकारूप उदयाचल पर्वतऊपरि सूर्यके बिंबही उदय भये है तिस प्रथमपीठऊपरि सुवर्णमय द्वितीयपीठ है सो पीठ सूर्यकी किरणनिसमान अपनी कांतिकरि आकाशकूं उद्योतरूप करैहै तिस द्वितीयपीठ ऊपरि अष्टप्रकारकी ध्वजा हैं ते ध्वजा १ चक्र, २ हस्ती, ३ वृषभ, ४ कमल, ५ वस्त्र, ६ सिंह, ७ गरुड़, ८ माला इनकी ध्वजा हैं ये पवनकरि हालते वस्त्रनिकरि पापरूप रजकूं उड़ावैं हैं कहा मानूं तिस द्वितीयपीठ ऊपरि अपने रत्ननिकी कांतिकरि अंधकारकूं दूर करता सर्व रत्नमय

तृतीयपीठ है ऐसैं त्रिमेखलामय पीठ समस्तरत्नमय भगवानकी उपासनाके अर्थि मानूं सुमेरु ही आया है और समवसरणका ऐसा विस्तार जानना धूलिशालतैं खातिका पर्यंत वलयव्यास योजन एक, पुष्पवाधडीको वेदीपर्यंत वलयव्यास योजन एक, अशोकादिक वनको वलयव्यास योजन एक, ध्वजानिकी भूमिको वलयव्यास योजन एक, कल्पवृक्षनिका वनको वलयव्यास योजन एक, प्रासाद-पंक्तिको वलयव्यास योजन अर्द्ध, ऐसे साढापांच योजन एक दिशा को भयो दोऊं दिशाको ग्यारह योजन भयो अर आकाशस्फटिककोटके बीच श्रीमंडपका विस्तार एकयोजनका ऐसैं बारहयोजनका प्रमाण समवसरणभूमिका है अर श्रीमडपमें स्फटिकमय कोटतैं गंधकुटीका नीचला पीठपर्यंत सभाकी भूमि एक कोश दोऊं तरफकी दोय कोश मध्यमें तीन कटनीका पीठ चौड़ा कोश दोय तिनमें ऊपरला तीसरा पीठकी चौड़ाई धनुष १००० हजार एक, दूजा पीठकी धनुष ७५० साढा सातसैकी चौडी कटनी दोऊ तरफका धनुष १५०० डेढ हजार, अर तीजा नीचला पीठका चौगिरद कटनी धनुष ७५० साढा सातसै, दोऊं तरफका धनुष १५००, ऐसैं तीन पीठका धनुष ४००० च्यार हजार तौंका दोय कोश ऐसैं मध्यका विस्तार योजन एक जानना।

बहुरि प्रथम पीठ भूमितैं आठ धनुष ऊंचा ताके ऊपर च्यार धनुष ऊंचा द्वितीय पीठ है ताके ऊपर च्यार धनुष ऊचा तृतीय पीठ है अर एक कोश चौड़ी च्यारूं तरफकी महावीथी है तिसके दोऊं पसवाडेनिकी भींति प्रथम पीठकी ऊंचाईप्रमाण आठ धनुषकी ऊंची है अर भींतिनिकी मोटाई ऊंचाईके आठमें भाग एक धनुषकी है बारह सभाकी बारह भींतिनिकी ऊंचाई भी

आठ धनुषकी अर चौड़ाई एक धनुषकी है अब तीसरा पीठ ऊपरि नाना रत्ननिके समूहकरि इन्द्रधनुष हो रहे हैं तहां इन्द्रके हस्तकरि क्षेपे नाना प्रकारके पुष्प सोहैं हैं तिस एक हजार धनुष प्रमाण गोल तीसरा पीठके मध्य छहसै धनुष चौड़ी लम्बी चौकोर अनेक रत्नमय गंधकुटी कुवेर रची है सो चौड़ाईतैं अधिक ऊंचाई मान अनुमानप्रमाणकरि युक्त है उत्तंग कोटकरि भूषित है नाना रत्ननिकी प्रभायुक्त कूट शिखर तिनकरि आकाशमें व्याप्त हैं अर उन्नत शिखरनिके बंधी जे जयरूप ध्वजा तिनकरि मानूं देवनिकूं बुलावै ही हैं स्थूल मोतीनिके जाल चारों तरफ लूमै हैं कहूं सुवर्ण रत्ननिके जालकरि भूषित है चारों तरफ अनेक रत्नमय आभरण अर महासुगंध कल्पवृक्षनिके पुष्पनिकी मालाकरि भूषित हैं अनेक सुगंध पुष्प अर महासुगंध धूप तिनतैं अधिक जिनेन्द्रके शरीरकी सुगंधकरि समस्त दिशानिकूं सुगंधित करै है तातैं याको गधकुटी कहिये है सुगंधकी अर कांतिकी अर शोभाकं त्रैलोक्यमे परम हद है छहसै धनुष प्रमाण चौकोर गंधकुटीके मध्य एक योजन ऊंचा सिंहासन है ताकी कांति किरणसमूह अर सौंदर्यवर्णन करनेकूं कोऊ समर्थ नाहीं है तिस सिंहासनऊपरि चार अंगुलि प्रमाण अंतर छांडि अपनी महिमाकरिकै ही सिंहासनकूं नाहीं स्पर्शन करता जिनेन्द्र तिष्ठै हैं तहां तिष्ठता जिनेन्द्रकूं इन्द्रादिक देव अति भक्ति संयुक्त पूजन स्तवन बंदना करैं हैं देवरूप मेघकरि कल्पवृक्षनिके अति सुगंध पुष्पनिकी वृष्टि द्वादश योजन प्रमाण समस्त समवसरणमें होय है बहुरि एक योजन प्रमाण श्रीमण्डपके ऊपरि रत्नमय अशोकवृक्ष सर्व तरफ सोहै

हैं जाकै मरकतमणिमय हरितपत्र हैं नानाप्रकार मणिमय पुष्प-निकरि भूषित हैं, पवनकरि मन्दमन्द हालती शाखाकरि मानूं नृत्य करैं हैं, मदोन्मत्त कोकिल अर भ्रमर तिनका शब्दकरि जिनेन्द्रका गुणनिका स्तवन करैं है, एकयोजनप्रमाण अपनी शाखाकरि समस्त जीवनिका शोक दूर करै हैं समस्त दिशाकूं अपने डाहल्लाकरि आच्छादित करैं हैं हीरामई पेड हैं पुष्पसमान रत्ननिके पुष्प वरषै हैं बहुरि तीन छत्र अपनी कांतिकी उज्वलताकरि सूर्य चन्द्रमा दोऊनिकी प्रभाका तिरस्कार करता अद्भुत त्रैलोक्यके पदार्थनिकी प्रभाकूं जीतता मोतीनिकी झालरी करि युक्त हैं सो त्रिलोककी लक्ष्मीको हास्यको पुञ्ज है कि धर्मरूप राजाको तीन लोकके आनन्दकरनेवाला हर्ष है कि मोहके विजयतैं उपज्या प्रभूका यशका पुञ्ज है ऐसैं तर्कना उपजावता तीन छत्र सोहै है बहुरि जिनेन्द्रका पर्यंतकूं सेवन करते यक्ष देवनिके हस्तनिके समूह करि चलायमान कीये चौसठ चमर प्रकट शोभैं हैं ते चामर मानूं क्षीरसमुद्रकी लहरनिकी पंकतिही हैं तथा अमृतके खण्डन करिही रचै हैं तथा चद्रमाकी किरणनिका समूह ही है तथा जिनेन्द्रके सेवनकूं चमरनिके रूप करि गंगाही आई है तथा जिनेन्द्रका अंगकी द्युति ही है वा क्षीरसमुद्रके झागनिकी पंकती पवनकरि हालै है तथा आकाशतैं पड़ती हंसनकी पंकति ही है तथा भगवानके उज्वल यश ही च्यारौं तरफ विस्तरै है ऐसे शोभनीक चौसठ चमर ढरै हैं बहुरि जिनेन्द्रके देवदुन्दुभि आकाशमें मेघके आगमनकी शंका करते कणनिकूं अमृतकी ज्यों सींचते मधुर शब्द करै हैं। देवलोकके अनेक जातिके वादित्र नानाप्रकारकी ध्वनिकरि समस्त

दिशाकूं पूर्ण करते मेघकी गर्जनावत् समस्त लोकमें व्याप्त होता भगवान मोहका विजय कीया ताका आनन्द-शब्द लोकनिके हृदयमें प्रकट करै हैं। बहुरि जिनेन्द्रका देहकी अद्भुत प्रभा समस्तसमवसरणमें व्यापै है तिस प्रभाकरि समस्त सुर असुर मनुष्यनिके महाआश्चर्य उपजै है जो प्रभा सूर्यका तेजकूं आच्छादन करै है कोट्यां कल्पवासी देवनिकी द्युतिकूं आच्छादती जगतमें एक अद्भुत महाउदयकूं प्रकट करती फैली है जिनेन्द्रका देहरूप अमृतका समुद्रविषै देवदानव मनुष्य अपने-अपने सप्त भव देखै है चन्द्रमाकी कांति तो जड़ता करै है अर सूर्यकी प्रभा आताप करै है अर जिनेन्द्रका देहकी प्रभा जड़ताकूं दूर करि ज्ञानका प्रकाश करै है अर समस्त संतापकूं दूरकरि सुखित करै है। बहुरि जिनेन्द्रका मुख कमलतैं मेघकी गर्जना समान दिव्यध्वनि प्रगट होय है सो भव्यजीवनिके मनतैं मोह-अन्धकारकूं दूर करता सूर्यवत् अनेकान्तस्वरूप वस्तुकूं उद्योत करै है अर एक रूप भी जिनेन्द्रका ध्वनि समस्त मनुष्यनिकी भाषारूप होय कर्णनिके अभ्यन्तर प्रवेश करै है अर तिर्यंचनिके हृदयमें हू प्रवेश करै है अर विपरीतज्ञानकूं दूर करि सम्यक्तत्त्वके ज्ञानकूं प्रकट करै है जैसैं एकरूप भी जलका समूह नानाप्रकारके वृक्षनिमें नानारूप परिणमै है तैसैं सर्वज्ञकी ध्वनि हू अनेक श्रोतारूप पात्रनिके विशेषतैं नाना रूप प्राप्त होय है जैसैं एकरूप भी स्फटिकमणि नाना प्रकार डाकके संयोगतैं नानारूप परिणमै है तैसै एक प्रकार हू सर्वज्ञकी ध्वनि स्वच्छताके प्रभावकरि पात्रके प्रभावतैं नानारूप परिणमै है। केई नाना भाषा स्वभाव परिणमन

देवनिकृत गुण कहें हैं सो यामे देवकृतपणा संभवै नाहीं अर दिव्यध्वनि अक्षरसहित ही है अक्षरसमूह बिना अर्थज्ञान कैसें होय ऐसै अष्ट प्रातिहार्यनिकी विभूतिसहित गंधकुटीमें अनंतज्ञान अनन्तदर्शन अनंतवीर्य अनंतसुखके धारक गंधकुटीमें पूर्वदिशाके सन्मुख अथवा उत्तर दिशाके सन्मुख तिष्ठै हैं अर गंधकुटीकी प्रदक्षिणारूप सन्मुख पहली सभामें गणधरादिक मुनीश्वर तिष्ठै हैं द्वितीय सभामें कल्पवासीदेवनिकी स्त्री तीसरी सभामें गणनी-युक्त अर्जिका अर मनुष्यणी चौथी सभामे चक्रवर्त्यादिसहित मनुष्य पंचमी सभामें ज्योतिष देवनिकी स्त्री छठी सभामें व्यंतर-निकी देवी सप्तमी सभामें भवनवासिनी देवी अष्टमी सभामें भव-नवासी देव नवमी सभामें व्यंतरदेव दशमी सभामें ज्योतिष्कदेव ग्यारमी सभामें कल्पवासी देव बारमी सभामें तिर्यंच हैं ऐसै ये द्वादश सभाके जीव जिनेन्द्रके चरणनिकी भक्तिकरि नम्रीभूत भये भगवान जिनेन्द्रका उपदेश्या धर्मरूप अमृतका पान करै हैं अर घातिया कर्मनिका नाश होनेतैं अष्टादश दोषनिका अभाव भया है—क्षुधा १, तृषा २, जन्म ३, मरण ४, जरा ५, रोग ६, शोक ७, भय ८, विस्मय ९, अरति १०, चिन्ता ११, स्वेद १२, खेद १३, मद १४, मोह १५, निद्रा १६, राग १७, द्वेष १८, ये अष्टा-दश दोष समस्त संसारी जीवनिमे व्याप्त हो रहे है भगवान अर-हंतनिके घातिया कर्मनिका अभावतैं ये समस्त दोष नष्ट भये तातैं अनंतसुखरूप परमात्मा परमपूज्य परमेश्वर अनंतगुणनिकरि भूषित कोटि सूर्य समान उद्योतका धारक अनेक अतिशयनिकरि

युक्त अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंतवीर्य अनंतसुखरूप तिष्ठै हैं ऐसे अरहंतस्वरूपका ध्यान करना सो रूपस्थध्यान है। जो पुरुष वीत-राग हुवा संता वीतरागकूं स्मरण करै है सो कर्मबंधनतैं छूटै है अर आप रागी हुवा सरागीको अवलम्बन करै है सो दुष्टकर्मनि करि बंधै है क्रोधी हुवा हू अनेक विकारकरि असार ध्यानके मार्गकूं अवलम्बन करै है तथा मंत्र मंडल मुद्रादि अनेक प्रयोग करि ध्यान करनेकूं उद्यमी है तिनका आत्माका एकाग्र होय जुड़-नेमें ऐसा सामर्थ्य प्रगट होय है जो क्षणमात्रमें सुर असुर मनुष्य-निके समूहकूं क्षोभनै प्राप्त करै हैं विद्यानुवादमें अनेक विद्या मंडल मन्त्र अक्षरादिकनिका सामर्थ्य आत्माके भावजुड़नेतैं प्रकट होतैं वर्णन किये हैं जातैं अनादि वस्तुनिके संयोगमें ऐसी ही सामर्थ्य है सो वस्तुनिका स्वभाव कोऊका दूर किया दूर होय नाहीं है जैसैं केतेक पुद्गलनिका संयोग मिलि विष हो जाय केते अमृत हो जाय है, केते शरीरके लगानेतैं विकार दूर करैं अर भक्षण करनेतैं प्राण हरैं तथा वचनके पुद्गलनिमे हू अचिंत्य सामर्थ्य है जिनतैं आत्मामें क्रोधादिक विकार प्रगट हो जाय तथा आजन्मके कषाय दूर हो जांय तथा मंत्रादिकनितैं जहर उतरि जाय अर जहर व्याप्त हो जाय ऐसे ही मनके एकाग्र जुड़नेमें ध्यानका अचिंत्य सामर्थ्य है नरक स्वर्ग मोक्ष होनेका कारण ध्यान है। केते असंख्यात ध्यान कुतूहलके अर्थि कुमार्गमें प्रवर्तन करावनेवाले कुमतिके कारण कुध्यान हैं क्योंकि आत्मामें अनंत सामर्थ्य स्वभावहोतैं हैं जैसा जैसा बाह्य निमित्त मिलै, तैसा तैसा परिणमन होय है यातैं जिनेन्द्रधर्मके धारक है ते खोटे ध्यान कुमंत्र

मंडलादिसाधन कौतुक करकै हू स्वप्नमें कदाचित सेवन मत करो कुध्यानादिकके प्रभावतैं सम्यक् मार्गतैं भ्रष्ट हो जाय फिर कुबुद्धि प्रगट होजाय है सांची उज्वल बुद्धि नष्ट होय फेरि अनेक भवनिमें बुद्धिकी शुद्धता नाहीं आवै है, मिथ्यामार्ग नाहीं छूटै है सन्मार्ग छूटै पाछैं असंख्यात भवपर्यंत सम्यकबुद्धि प्रगट नाहीं होय जिनसिद्धांतको उपदेश प्रवेश नाहीं करै बुद्धि विपरीत होजाय यातैं असत् ध्यान खोटे मंत्रादिक केवल आत्माके नाशके अर्थि हैं रागादिका वर्द्धन करै हैं गृहीतमिथ्यात्व है जे पुरुष नीचे ध्यान खोटे मंत्र मुद्रा मंडल यंत्र प्रयोगादिककरि रागी द्वेषी कामी क्रोधी नीचे व्यंतरदेव भवनवासी ज्योतिषी देव देवी यक्ष यक्षणीनिकी आराधना करै है संसारके विषय तथा धन तथा कषायनिकी खोटी आशाका अर्थी हुवा ये भोगांकी अर्तिकरि अपना पूर्व पुण्यका घातिकरि नरक भूमिकूं प्राप्त होय है ये विषय कषायनिकी वांछा ही दुर्गति करै है फिर इनके अर्थि खोटी विद्या खोटे मंत्रादिकरि ध्यान करना आत्मामें मिथ्यात्व कषायनिका दृढ़ आरोपण करणा है सो निगोदादिकमें अनंतकाल परिभ्रमण करावै ही बुद्धिमानकूं तो ऐसा ध्यान करना तथा ऐसा चिंतवन करना तथा ऐसा आचरण करना जातैं जीवके कर्मबंधका विध्वंस होय अर जे शांतचित्त है मंदकषायी हैं निर्वांछक हैं सन्तोषी हैं मोक्षमार्गके अवलम्बी हैं तिनके विद्याका साधन, देवता आराधन विना ही स्वयमेव अनेक सिद्धि अनेक ऋद्धि प्राप्त होय हैं अर नीच वांछा के धारक हीनपुण्यके धारकनिकै वांछित भी नाहीं होय अर अनेक मंत्रादिक साधन करते हू अनेक आपदा ही प्राप्त होय हैं तातैं

वीतरागधर्मका श्रद्धानी स्वप्नहूमे नीचे ध्यान मंत्रादिककी प्रशंसा हू मत करो। बहुरि जो शरीरादिक नोकर्म अर ज्ञानावरणादि-कर्मरहित चैतन्यस्वरूप निजानंदमय शुद्ध अमूर्त अविनाशी अजन्मा स्पर्शरसगंधवर्णादिपुद्गलविकार रहित अनंतदर्शन अनं-तज्ञान अनंतसुख अनन्तशक्तिस्वभाव, स्वाधीन, निराकुल, अती-न्द्रिय सिद्ध कृतकृत्य ऐसा शुद्ध आत्माका स्वभाव चिंतवन करना सो रूपातीतध्यान है। यद्यपि चित्तका एकाग्रपना ध्यान है तथापि सिद्धपरमेष्ठीका गुणसमूह तथा स्वरूप ध्यानमें अवलोकनकरि अनन्यशरण होय अर तिस स्वरूपमें लीन होजाना सोई धर्म-ध्यान है सिद्धपरमेष्ठीके गुणसमूहके स्वभावरूप अपना स्वरूपकूं करना सो ही परमात्मामें युक्त होना है परमात्माके अर हमारे गुणनिकरि तो समानता है परन्तु हमारे गुण कर्मनिकरि आच्छा-दित हैं सिद्धपरमेष्ठीकै कर्मके अभावतैं समस्त गुण प्रगट भये हैं ऐसैं निरन्तर अभ्यासतैं आत्मा ऐसा निश्चल होय जो स्वप्नादिक अवस्थामें हू सिद्धनिका स्वभाव प्रत्यक्ष दीखै ताकै रूपातीत ध्यान होय है। ऐसैं रूपातीत ध्यानकूं वर्णन करि धर्मध्यानका वर्णन समाप्त कीया ॥४॥

अब शुक्लध्यानके वर्णन करनेका अवसर आया यद्यपि शुक्ल-ध्यानके परिणामनिका एकदेशमात्र हू अपने साक्षात् नाहीं है तथापि आगमकी आज्ञाके अनुकूल किंचित लिखिये है। शुक्ल-ध्यान चार प्रकार है तिनमें आदिके दोयशुक्लध्यान तो पूर्वके ज्ञाता द्वादशांग धारक मुनीश्वरनिके होय हैं अर पिछले दोय शुक्लध्यान केवली भगवानके होय हैं। पृथक्त्ववितर्कवीचार १,

एकत्ववितर्कअवीचार २, सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति ३, व्युपरत-क्रियानिवर्ति ४ ये चार नाम हैं तिनमें प्रथम शुक्लध्यान तो मन-वचनकायके तीनूं योगनिमे होय है, दूजा शुक्लध्यान एक योगहीमें होय है, तीजा शुक्लध्यान एक काययोगहीमें होय है चौथा शुक्लध्यान अयोगीहीकैं होय है तिनमें प्रथमशुक्लध्यान तो सवितर्क कहिये श्रुतज्ञानका शब्द अर्थका अवलंबनसहित है अर सवीचार कहिये अर्थका पलटना शब्दका पलटना अर योग-का पलटना तिनकरि सहित है तातैं सवितर्कसवीचार है अर नानाशब्दअर्थयोगका पलटना सो पृथक्त्ववितर्कवीचार है अर दूजा शुक्लध्यान श्रुतका एक शब्द, एक अर्थ, एक योगका अवलं-बनकरि होय है अर अवलंबन किया तातैं परिणाम पलटैं नाहीं तातैं एकत्ववितर्कअवीचार नाम दूजा शक्लध्यान है इहां वितर्क नाम श्रुतज्ञानका है वीचार नाम अर्थका व्यंजनका अर योगका संक्रांति कहिये पलट जानेका है, अर्थ नाम तो ध्यानकरने योग्य ध्येयका है सो ध्येय द्रव्य है वा पर्याय है व्यंजन नाम वचनका है, योग नाम मनवचनकायका हलन चलनरूप क्रियाका है संक्रांतिनाम परिवर्तनका है द्रव्यकूं छांडि पर्यायकूं प्राप्त होना पर्यायकूं छांडि द्रव्यकूं प्राप्त होना सो अर्थसंक्रांति है एक श्रुतका शब्दकूं ग्रहणकरि अन्य श्रुतका वचनकूं अवलंबन करना ताकूं छांडि अन्यका अवलंबन करना सो व्यंजनसंक्रांति है काययोगनै छांडि अन्य योगकूं ग्रहण करना सो योग-संक्रांति है ऐसे परिवर्तनकूं वीचार कहिये है सो ये सामान्य विशेष कह्यो जो चार प्रकार शुक्ल ध्यान अर धर्मध्यान अर पूर्वैं कहे बहुत प्रकार गुप्त्यादिक उपाय संसारका अभावके

अर्थि महामुनिके धारने योग्य हैं यहाँ ध्यानके आरंभमें एता परिकर होय है जिसकालमें उत्तम तीन शरीरके संहननपना करि परीषहनिकी बाधा सहनेकी शक्तियुक्त आत्माकूं प्राप्त होय तिस कालमें ध्यानकै संयोगका परिचयके अर्थि आरम्भ करै, कैसैं करै सो कहै हैं—पर्वत गुफा कंदर दरी वृक्षनिके कोटर नदीके तट श्मशान जीर्णउद्यान शून्य गृहादिकनिमें कोऊ एक अवकाश-स्थान होय सो कैसा स्थान होय सर्प मृग पशु पक्षी मनुष्यनिके अगोचर होय अर आगंतुक कीडा कीड़ी बीछू डांस मांछर मधुम-क्षिकादिक जीवनिकरि रहित होय अर जहां अति ऊष्मा नाहीं होय, अतिशीत नाहीं होय, अतिपवन नाहीं होय वर्षा तावड़ाकी बाधारहित होय समस्त प्रकार बाह्य शरीरमें अर अभ्यंतर मन-विषैं विक्षेपनिका कारणकरि रहित पवित्र अनुकूल स्पर्शरूप भूमितलमे सुखरूप तिष्ठता,बांध्या है पल्यंकासन जाने अर सम सरल कठोरतारहित शरीरयष्टिकूं निश्चलकरि अपने अंकमें वामहस्ततलके ऊपरि दक्षिण हस्ततल सीधो स्थापन करि अर नेत्रनिकूं अति नाहीं उघाड़ता अर अति नाहीं निमीलन करता दंतन करि दंतनिके अग्रभाग स्पर्शन न करता अर किंचित् उन्नत-मुख धारैं सरल मध्य हृदय उदरादि धारैं अंगका करडापनानैं छांडि परिणाम मस्तक ओष्ठकी गंभीरता सरलताकूं धारता प्रस-न्नमुखका वर्ण धारै अर निमेषरहित स्थिर सौम्यदृष्टिसहित हुवा नष्ट भया है निद्रा आलस्य काम राग रति अरति शोक हास्य भय द्वेष ग्लानि जाकै अर मंद २ है स्वास उश्वासका प्रचार जाकै इत्या-दिक परिकरकूं धारता साधु है सो नाभिके ऊपर अथवा हृदय

में तथा मस्तकमें वा अन्य स्थानमें मनकी प्रवृत्तिकूं जैसैं पूर्वैं परिचय होय तैसैं निश्चल करकै मोक्ष जो कर्मबंधनतैं छूटनेका अभिलाषी हुआ प्रशस्तध्यानकूं ध्यावै, तिस ध्यानमें एकाग्रमन हुवा अर रागद्वेष मोह की उपशमताकूं प्राप्त हुआ निपुणपणातैं शरीरका हलनचलनक्रियाकूं निग्रह करता मंद २ उश्वासनिश्वास-रूप सम्यक् निश्चल अभिप्रायकूं धारता क्षमावान हुवा बाह्य अभ्यन्तर द्रव्यपर्यायनिमें ध्यावता श्रुतका सामर्थ्यकूं अंगीकार करता साधु है सो अर्थने अर व्यंजननै अर कायनै अर वचननै भिन्नपणाकरि परिवर्तन करता मनकरिकैं जैसैं कोऊ पुरुष परि-पूर्णबलका उत्साहरहित निश्चलतारहित हुवा तीक्ष्णतारहित मोटा शस्त्र करिकै बहुतकालमे सचिक्कण काष्ठकूं छेदै है तैसैं अष्टम नवम दशम गुणस्थानके भावका धारक साधुहू संज्वलनकषायका उदयतैं परिपूर्ण परिणामनिका बलके उत्साहकूं नाहीं प्राप्त हुवा अर भावनिकै कषायके उदयके धक्कातै दृढ़ निश्चलताकूं प्राप्त नाहीं होनेतैं अर मोहनीका समस्त उदयका नाश नाहीं होनेतैं धीरैं धीरैं करणरूप परिणामनिके सामर्थ्यतैं मोहनीयकर्मकी प्रकृतिनिनै उपशम करता वा क्षय करता पृथक्त्ववितर्कवीचार नाम ध्यानका धारक होय है। फेरि वीर्यविशेषकी हानितैं योगतैं योगान्तर नै शब्दतैं शब्दांतरनै अर्थतैं अर्थान्तरनै आश्रयकरता ध्यानके प्रभावतैं समस्त मोहरजका अभावकरि ध्यानका योगतैं निमडै है ऐसैं पृथक्त्ववितर्कवीचार नाम ध्यानका स्वरूप कह्या। बहुरि इसही विधिकरि समस्त मोहनीयकूं दग्ध करनेका इच्छुक अनन्तगुण विशद्ध योगविशेषकूं आश्रयकरि बहुरि ज्ञानावरणकी

सहाईभूत प्रकृतिनिका बंधकूं घटावता वा क्षय करता श्रुतज्ञानका उपयोगवान दूरि भया है अर्थ व्यंजन योगका पलटना जाकै अर अविचलित है मन जाका अर क्षीण भया है कषाय जाकै, वैडूर्य-मणिकी ज्यों निरुपलेप हुवा ध्यानकरिकै फेर नाहीं बाहुडै है ऐसैं एकत्ववितर्कध्यान कह्या। ऐसैं एकत्ववितर्कशुक्लध्यानरूप अग्नि-करि दग्ध किया है घातिकर्मरूप ईंधन जानैं अर प्रज्वलित भया है केवल ज्ञानरूप सूर्यमंडल जाकै, मेघपंजरका अभावतैं निकस्या सूर्यकी ज्यों कांतिकरि दैदीप्यमान भगवान तीर्थंकर वा अन्य केवली सो तीन लोकके ईश्वर जे इन्द्र धरणेंद्रादिकनिकरि वंदनीय पूजनीय हुवा उत्कृष्टकरि देशोनकोटिपूर्व विहार करैं हैं अर सो ही केवली जो अंतर्मुहूर्त आयु बाकी रहि जाय अर वेदनी नाम गोत्रकर्मकी स्थिति हू आयुके समान ही होय तदि तो समस्त वचन मनोयोगकूं अर बादर काययोगकूं छांडि करिकै सूक्ष्मकाय योगका अवलंबन करै सो सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्याननैं प्राप्त होने कूं योग्य होय है अर जो अतंर्मुहूर्त आयु शेष रही होय अर वेदनीनामगोत्रकी स्थिति अधिक होय तो सयोगी समस्त कर्मके रजकूं नाश करनेकी शक्ति स्वभावतैं दंड कपाट प्रतर लोकपूरण समुद्घात अपने आत्मप्रदेशनिके प्रसरणतैं च्यारि समयनिमैं करि बहुरि च्यारि समयमैं आत्मप्रदेशकूं संकोच करि समस्त कर्मनिकी स्थितिकूं समान करि पूर्वशरीरपरिमाण होय सूक्ष्मकाय-योगकरि सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यानकूं प्राप्त होय हैं तहां पाछैं समुच्छिन्नक्रियानिवृत्तिध्यानका आरम्भ करै हैं समुच्छिन्न कहिये नष्ट भया है स्वासोच्छ्वासका प्रचार अर समस्त कायवचनमन-

का योगरूप समस्तप्रदेशनिका हलन चलनरूप क्रियाका व्यापार जामें यातैं याकूं समुच्छिन्नक्रियानिवृत्तिध्यान कहिये है तिस समुच्छिन्नक्रियानिवृत्तिध्यानके होते समस्त बंधका कारण समस्त आस्रवका निरोध अर समस्त कर्मका नाश करनेका सामर्थ्यकी उत्पत्तितैं अयोगकेवलीभगवानकै सम्पूर्ण ससारका दुःखनिका संगमके छेदन करनेका कारण सम्पूर्ण यथाख्यातचारित्र ज्ञान दर्शन साक्षात् मोक्षका कारण उपजै है सो अयोगकेवली भगवान तदि ध्यानरूप अग्निकरि दग्ध किया है समस्त कर्ममलकलंकबंध जानै, नष्ट भया है कीटधातु पाषाण जातैं ऐसा सुवर्णकी ज्यों अपनी आत्माकी शुद्धता पाय निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं ऐसे शुक्लध्यानका संक्षेप स्वरूप वर्णन करि ध्यान नामा तपका वर्णन समाप्त किया। ऐसैं तप भावना वर्णन करी॥

अब इहां अनेकांत भावना अर समयसारादिभावना वर्णन करी चाहिये परन्तु आयु कायका अब शिथिलपणातैं ठिकाना नाहीं तातैं सूत्रकारका कह्या कथन कूं समेटना उचित विचारि मूलग्रंथका कथन लिखिये है। यहां तक श्रावकके बारा व्रत तो वर्णन किये, अब अनन्तकालमें सल्लेखना विना सफल नाहीं होय बारह व्रतरूप सुवर्णका मन्दिर खडा किया अब या ऊपर सल्लेखना है सो रत्नमयी कलश चढावना है यातैं सल्लेखनाका स्वरूप कहिये है तिसमें प्रथम सल्लेखनाका अवसरका वर्णन करनेकूं सूत्र कहैं हैं,—

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः॥ १२२॥

अर्थ—जाका इलाज नाहीं दीखै मिटनेका प्रतीकार नाहीं दीखै ऐसा उपसर्ग होतैं दुर्भिक्ष होतैं जरा होतै रोग होतैं जो धर्मकी रक्षाके अर्थि शरीरका त्याग करना ताहि गणधरदेव सल्लेखना कहैं हैं जातैं देहमें रहना अर देहकी रक्षा करना तो धर्मके धारनैके अर्थि है मनुष्यपणा इन्द्रिय अर मन इत्यादिक पावना सो समस्त धर्मके पालनेतैं सफल है अर जहां धर्महीका नाश दीखै जो अब धर्म नाहीं रहैगा श्रद्धान ज्ञान चारित्र नष्ट हो जायगा ऐसा निश्चय हो जाय तहां धर्मकी रक्षाके अर्थि देहका त्याग करना सो सल्लेखना है कोऊ पूर्वजन्मका वैरी असुर पिशाचादिक देव उपसर्ग आय करै तथा दुष्ट वैरी वा भील म्लेच्छादिक तथा सिंह व्याघ्र गज सर्पादिक दुष्ट तिर्यंचनिकृत उपसर्ग आया होय अथवा प्राणनिका नाश करनेवाला पवन वर्षा गडा तथा शीत उष्णता धूप अग्नि पाषाण जलादिकृत उपसर्ग आया होय तथा दुष्ट कुटुम्बके बांधवादिक स्नेहतै वा मिथ्यात्वकी प्रवलतातै तथा अपने भरणपोषणके लोभतै चारित्र धर्मके नाश करनेकूं उद्यमी होय तथा दुष्ट राजा, राजाका मन्त्री इत्यादिकनिकृत उपसर्ग आवै तो तहां सल्लेखना करै। बहुरि निर्जन वनमें दिशा भूल हो जाय मार्ग नाहीं पावै बहुरि अन्नपान जामें मिलनेका नाहीं ऐसा दुर्भिक्ष आ जाय बहुरि समस्त देहकूं जीर्ण करनेवाली नेत्रकर्णादिक इन्द्रियनिकूं नष्ट करनेवाली जंघा-बल नष्ट करनेवाली हस्तपादादिकनिकूं शिथिल असमर्थ करने-वाली जरा आजाय तिस कालमें सल्लेखना करना उचित है बहुरि असाध्य रोग आय गया हो प्रबल ज्वर अतीसार

तथा स्वास कास कफका वधना तथा वातपित्तादिककी प्रबलता होय तथा अग्निकी मन्दताकरि क्षुधाका घटना होय रुधिरका नाश होना होय तथा कठोदर सोजा इत्यादिक विकारकी प्रबलता होय तथा रागकी दिन दिन वृद्धि होय तदि शीघ्र ही धैर्य धारण करि उत्साहसहित सल्लेखना करना योग्य है ये अवश्य मरणके कारण आय प्राप्त होंय तहां च्यारि आराधनाका शरण ग्रहण करि समस्त देह गृह कुटुम्बादिकतै ममत्व छांडि अनुक्रमतैं आहारादिकनिका त्यागकरि देहकूं त्यागना देह विनशि जाय अर आत्माका स्वभाव दर्शन ज्ञान चारित्र जैसैं नाहीं विनशै तैसैं यत्न करना। यो देह तो विनाशीक है अवश्य विनशैगा कोट्यां यत्नतै देव दानव मंत्र तंत्र मणि औषधादिक कोऊ रक्षा नाहीं करैगा देह तो अनन्त भवधारण करि छांडे हैं यो रत्नत्रय धर्म अनंतभवनिमें नाहीं प्राप्त हुवा यातैं दुर्लभ है संसार परिभ्रमणतैं रक्षा करनेवाला है ऐसा धर्म मेरे परलोकपर्यंत मति मलीन होहू ऐसा निश्चय धरि देहतै ममता छांडि पण्डितमरणके अर्थि उद्यम करै।

अब समाधिमरणकी महिमा कहने कूं सूत्र कहैं हैं,—

अंतक्रियाधिकरणं तपःफलं सकलदर्शिनः स्तुवते।
तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयतितव्यं ॥ १२३ ॥

अर्थ—अन्तक्रिया जो सन्यासमरण सो ही जाका आधार होय तिस तपके फलकूं सकलदर्शी सर्वज्ञ भगवान स्तुवते कहिये प्रशंसा करते हैं जिस तप करनेवालेके तपके फलतैं अंतमें सन्यासमरण नाहीं भया सो तप निष्फल है तातैं जेता आपका

सामर्थ्य होय तेता समाधिमरण करनेमें प्रकृत यत्न करना योग्य है। भावार्थ—तप व्रत संयम करनेका फल लोकमें अनेक हैं। तप करनेका फल देवलोक है, तथा मिथ्यादृष्टिके तपके प्रभावतैं नवग्रैवेयक पर्यंतमें अहमिंद्र होना हू है महान ऋद्धि संपदा हू है, तपका फल चक्रवर्तीपणा नारायणपणा बलभद्रपणा राजेन्द्रपणा विभव संपदारूप निरोगपणा बलवानपणा अनेक प्रकार है, अखण्ड आज्ञा ऐश्वर्य ऋद्धि विभव परिवार समस्त ये तपका फल है सो अंतमे समाधिमरणविना समस्त देवादिकनिकी संपदा अनेक वार भोगि भोगि संसारमें परिभ्रमण ही किया परन्तु तप करकै जो अंतसमाधि मरणकी विधितै आराधनाका शरणसहित, भयरहित मरण कीया तिस तपका फलकूं सर्वदर्शी भगवान प्रशंसा करै हैं जातैं कोटिपूर्वपर्यंत तप कीया अर अन्तकालमे जाका मरण बिगड़ि गया ताका तप प्रशंसा-योग्य नाहीं, तप करनेतैं देवलोक मनुष्यलोककी संपदा पा जाय परन्तु मरणकालमें आराधनामरणके नष्ट होनेतैं संसारपरिभ्रमण ही करैगा जैसैं अनेक दूर देशनिमें बहुत भ्रमणकरि बहुत धन उपार्जन कीया परन्तु अपने नगरके समीप आय धन लुटाय दरिद्री होय है तैसैं समस्त पर्यायमें तप व्रत संयम धारण करकै हू जो अन्तकालमें आराधना नष्ट करि दीनो तो अनेक जन्ममरण करनेका ही पात्र होयगा।

अब संन्यास करनेका प्रारम्भमें कहा करै सो कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

स्नेहं वैरं सङ्गं परिग्रहं चापहाय शुद्धमनाः ।
स्वजनं परिजनमपि च क्षांत्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनैः॥१२३

अर्थ—अब स्नेह अर वैर संग परिग्रह इनूंका त्यागकरि शुद्धमन होय स्वजन अर परिकर के जन तिनमें क्षमा ग्रहण करिके अर समस्त परिकरके जनकूं आप हू प्रिय हित वचन करके क्षमा ग्रहण करावे सम्यग्दृष्टिकै स्नेह अर वैर दोऊनका अभाव होय है सम्यग्ज्ञानी ऐसा विचारै है जो इस पर्यायमें कर्मके वशतैं मैं आय उपज्या अब जो पर्यायका उपकारक तथा अपकारक द्रव्यनिकूं पुण्य पाप कर्मका उदयके आधीन जे वाह्य स्त्री पुत्रादिक थे तिनमें पर्यायके उपकारका अर्थि दान सन्मानादिकरि स्नेह किया अर जे इस पर्यायके उपकारक द्रव्यनिकूं नष्ट करनेवाले थे तिनकूं चारित्रमोहके उदयकरि वैरी माान्या उनतैं पराङ्मुख होय रह्या अब इस पर्यायका विनाश होनेका अवसर आया अब कौनसूं स्नेह करूं अर कौनसूं वैर करूं मेरा इनका आत्माके संबंध तो है ही नाहीं मैं इनूंका आत्माकूं जानूं नाहीं ये लोक हमारे आत्माकूं जाने नाहीं केवल हमारा इनूंका चामड़ा दीखनेमें आवै है यातैं चमड़ाहीसूं मित्र शत्रुका संबंध है सो ये चाम भस्म होय एक एक परमाणु उड़ि जांयगे अब कौनसूं स्नेह वैरका संकल्प करिये अर जे कोऊ आपसूं विनाकारण अभिमानसूं वैर करनेवाले हैं तिनसूं नम्रीभूत होय क्षमा ग्रहण करावै जो मेरी भूल चूक भई है जो मैं आप सारिखनतैं अपूठा होय रह्या मैं अब आपसं प्रार्थना करूं हूँ मेरा अपराध क्षमा करो

आप सारिखे सज्जननि विना कौन बकसीस करै अर जो आप किसीका धन धरती दाब लई होय तो उनकूं देय राजी करै जो मैं दुष्टताकरि आपका धन राख्या तथा जमीन जायगा खोसी सो अब ये आपकी ग्रहण करो मैं पापी हूं दुष्टताकरि छलकरि लोभकरि अंध भया दुराचार किया अब मैं अंतरंगमें पश्चात्ताप करूं हूं आपकूं बड़ा दुःख उपजाया अब जो अपराध किया सो तो कोऊप्रकार उल्टा आवै नाहीं अब मैं कहा करूं आप माफ करो इत्यादिक सरल भावनितैं क्षमा ग्रहण करावै अर जे अपने कुटुम्ब मित्रादिक स्नेहवान होंय तिनसूं कहै तुम हमारै सम्बन्धी स्नेही हो परन्तु तुमारै हमारै इस पर्यायका सम्बन्ध है सो थैं इस देहका उपजावनेवाला माता पिता हो, इस देहतैं उपजे पुत्र पुत्री हो, इस देहके रमावनेवाली स्त्री हो, इस देहके कुलके सम्बन्धी बन्धुजन हो तुम्हारै हमारै इस विनाशीक पर्यायका सम्बन्ध एते काल रह्या अर यो पर्याय आयुके आधीन है अब अवश्य विनशैगा अब विनाशीकतैं स्नेह करना वृथा है इस देहतैं स्नेह करो तो यो रहनेको नाहींतो यो अग्नि आदिकतैं भस्म होय समस्त विखर जायगा अर मेरा आत्मा ज्ञानस्वरूप है अविनाशी है अखंड है मेरा निजरूप है निज स्वभावका विनाश नाहीं जाका संयोग है ताका अवश्य वियोग है अर जो अनेक पुद्गल परमाणु मिलकरि उपज्या ताका अवश्य विनाश होय ही तातैं इस विनाशीक अज्ञान जड़स्वरूप मेरे पुद्गलतैं स्नेह छांडि मेरे अविनाशी ज्ञायक आत्माका उपकार करनेमें उद्यमी होना योग्य है जैसैं मेरा ज्ञान दर्शन स्वभाव आत्माका रागद्वेषमोहादिकतैं घात

नाहीं होय अर ज्ञानादिककी उज्वलता प्रकट होय वीतराग निज स्वभावकी प्राप्ति होय तैसैं यत्न करना ये पर्याय तो अनंतानंत धारण करि छांडी हैं मैं दर्शनज्ञान चारित्रकी विपरीततातैं विपरीत श्रद्धान विपरीतज्ञान विपरीत आचरणतैं च्यारि गतिनिमें परिभ्रमण किया कहां मेरा सकलका ज्ञाता सर्वज्ञस्वरूप अर कहां एकेन्द्रिय पर्यायमे अक्षरके अनंतवें भाग ज्ञानका रहना तथा अनंत शक्ति अंतराय कर्मकेउदयतैं नष्ट होय पृथ्वी पाषाण जल अग्नि पवन वनस्पतिरूप पंचस्थावररूप धरना विकलत्रय होना ये समस्त मिथ्याश्रद्धानज्ञानआचरणका प्रभाव है अब अनंतानंतकालमें कर्मके बडे क्षयोपशमतै वीतरागका स्याद्वादरूप उपदेशतैं मेरे किंचित् स्वरूप पररूपका जानना भया है तातै भो सज्जनजन हो, अब ऐसा स्नेह करो जैसैं मेरा आत्मा रागद्वेषमोहरहित हुवा निर्भय हुवा देहका त्याग आराधनाका, शरणसहित करै जातैं अनादिकालतैं अनंतानंत मिथ्यात्वसहित बालमरण किया जो एक बार भी पण्डितमरण करता तो फेर मरणका पात्र नाहीं होता तातैं अब देहतैं स्नेहादिक छांडि जैसे मेरा आत्मा रागादिकनिके वश होय संसार समुद्रमें नाहीं डूबै तैसैं यत्न करना उचित है ऐसे स्नेहवैरादिक छांडि अर देह परिग्रहादिकका राग छांडि शुद्ध मन करो। बहुरि समाधिमरणका इच्छुक कहा करै सो सूत्र कहैं हैं।

आलोच्य सर्वमेनः कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजम्।
आरोपयेन्महाव्रतमामरणस्थायि निःशेषम् ॥१२५॥

अर्थ—बहुरि जो पाप अपराध आप किया तथा अन्यतैं कराया होय तथा करतेकूं आछा जाना होय तिस अपराधकूं एकान्तमें निर्दोष वीतरागी ज्ञानी गुरुनितैं कपटरहित आलोचना करकै अर मरण पर्यंत समस्त महाव्रत आरोपण करै ग्रहण करै।

भावार्थ—वीतराग निर्दोष गुरुनिका संयोग प्राप्त होजाय अर अपना रागादिकषाय घटि जाय अर परीषहादिक सहनेमें अपना शरीर मन समर्थ होय धैर्यादि गुणका धारक होय निर्ग्रंथवीतराग गुरु निर्वाह करनेकूं समर्थ होय देशकालसहायादिकका शुद्ध संयोग होय तो महाव्रत अंगीकार करै अर बाह्य अभ्यंतरसामग्री नाहीं होय तो अपने परिणाममें ही भगवान पंचपरमेष्ठीका ध्यान करि अरहंतादिकतैं आलोचना करै अपनी योग्यताप्रमाण समस्त पंच पापनिका त्यागकरि गृहमें तिष्ठा ही महाव्रती तुल्य हुवा रोगादिक वेदनाकूं कायरता रहित बड़ा धैर्यतैं सहता दुःखरूप वेदनाकूं बाह्य नाहीं प्रकट करता सहै, कर्मके उदयकूं अपना स्वभावतैं भिन्न जानता समस्त शत्रु मित्र संयोग वियोगमें साम्य भाव धारता परिग्रहादिक उपाधिकूं त्यागिकरि विकल्परहित तिष्ठै है जातैं ऐसा जानना जो सन्यासका अवसर जानि परिग्रहका त्यागकरै तहां जो प्रथम तो किसीका देना ऋण होय तो ताकूं देय ऋणरहित होजाय बहुरि किसीकी धनादिक तथा जमींजायगा आप अनीतिसूं लीहोय तो ताकूं पाछी देय वाकै संतोष उपजाय अपना अपराध क्षमा कराय आपकी निंदा गर्हा करै। बहुरि जो धनपरिग्रह होय ताका विभागकरिकै देय निराकुल होजाय स्त्रीको विभागकरि स्त्रीनै देवै पुत्रनिका विभाग पुत्रनिको देवै पुत्रीका

विभाग होय पुत्रीकूं देवै दुःखित दीन अनाथ विधवा ऐसैं आपके आश्रय बहिण भुवा बंधु इत्यादिक होय तिनकूं देय समस्त परिग्रह त्यागि ममतारहित होय देहका संस्कारका त्याग करै स्त्री पुत्र गृहादिक समस्त कुटुम्बमें शय्या आसन वस्त्रादिकनिमें ममताकूं छोडै जो हमारा इनका अब केताक संबंध है जिस देहका संबन्धीनितैं संबंध था उस देहकू ही अब हम छाडैं हैं तब देहका संबन्धतैं हमारैं काहेकी ममता अब हमारा आत्माका संबंध तो अपने स्वभावरूप सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र है ते हमारा निजस्वभाव है देह तो चाम हाड मांस रुधिरमय कृतघ्न है जड़ है ये हमारा नाहीं हम इनका नाहीं देह विनाशीक है हमारा रूप अविनाशी है हमारे तो अज्ञान भावतैं यामें ममता रही ताकरि अशुभकर्मनिका बंध किया अब ऐसा देहका संबंधका नाशकूं वांछा करूं हूं देहका ममत्वतै ही अनन्त जन्म मरण भये है अर संसारके जितने दुःखनिके प्रकार है ते समस्त देहके संगमतैं ही मेरे हैं रागद्वेषमोहकामक्रोधादिकनिका उत्पत्तिका कारण हू एक देहका सम्बन्ध ही है ऐसैं देहतैं विरागताकूं प्राप्त होय समस्तव्रतनिकी दृढ़ता धारण करै बहुरि कहा करै सो कहैं हैं,—

शोकं भयमवसादं क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा ।
सत्त्वोत्साहमुदीर्य च मनःप्रसाध्यं श्रुतैरमृतैः ॥१२६॥

अर्थ—संन्यासके अवसरमें शोक भय विषाद स्नेह कलुषपना

अरति इत्यादिकनिकूं छांडि करिकै कायरपणाका अभाव करो अपना आत्मसत्त्वका प्रकाश करिकैं अर श्रुतरूप अमृतकरि मन जो है ताहि प्रसन्न करै ।

भावार्थ—अनादिकालतैं ही पर्यायमें संसारीके आत्मबुद्धि लगि रही है अर पर्यायका नाशकूं ही अपना नाश मानै है जब पर्यायका नाश होना अर धन परिग्रह स्त्री पुत्र मित्र बांधवादिक समस्त संयोगका वियोग होना दीखै है तब मिथ्यादृष्टिकै बड़ा शोक उपजै है सम्यग्दृष्टीकै शोक नाहीं उपजै है ऐसा विचार करै है, जो हे आत्मन्! पर्याय तो अनन्तानन्त ग्रहण होय होयकैं छूटी हैं यो देह रोगनिका उत्पत्तिका स्थान है अर नित्य ही क्षुधा तृषा शीत उष्ण भयादिक उपजावनेवाला है महाकृतघ्न है, अवश्य विनाशीक है, आत्माकै समस्त प्रकार दुःख क्लेशादि उपजावने वाला है, दुष्टके संगमकी ज्यों त्यागने योग्य है समस्त दुःखनिका बीज है महा संताप उद्वेगका उपजावनेवाला है, सदा काल भयका उपजावनेवाला है, बंदीगृहसमान पराधीन करनेवाला है, जेती दुःखनिकी जाति हैं ते समस्त याकै संगमतैं भोगिये है आत्मस्वरूपकूं भुलावनेवाला है चाहकी दाहका उपजावनेवाला है, महामलीन है कृमिनिका समूहकरि भरंया महादुर्गंधमय है दुष्ट भ्राताकी ज्यों नित्य क्लेशनिके उपजावनेकूं समर्थ अनमारण शत्रु है ऐसे देहका वियोग होनेका कहा शोक है यातैं ज्ञानी शोककूं छांडै हैं, मरणका भय नाहीं करैं हैं विषाद स्नेह कलुषपना तथा अरतिभावकूं त्यागकरि अर उत्साह साहस धैर्य प्रकट करके श्रुतज्ञानरूप अमृतका पानकरि मनकूं तृप्ति करैं हैं। अब इसही सूत्रका अर्थ

की दृढ़ता करनेकूं मृत्युमहोत्सवका पाठ अठारह श्लोकनिमें यहां उपकार जानि अर्थ सहित लिखिये है—

मृत्युमार्गे प्रवृत्तस्य वीतरागो ददातु मे ।
समाधि-बोधौ पाथेयं यावन्मुक्तिपुरी पुरः ॥

अर्थ—मृत्युके मार्गमें प्रवर्त्यो जो मैं ताकूं भगवान वीतराग जो हैं सो समाधि कहिये स्वरूपकी सावधानी अर बोध कहिये रत्नत्रयका लाभ सो ही जो पर्याय कहिये परलोकके मार्गमें उपकारक वस्तु सो देहु जितनेकमें मुक्तिपुरी प्रति जाय पहुंचूं या प्रार्थना करूं हूँ ।

भावार्थ—मैं अनादिकालतैं अनन्तकुमरण किये जिनकूं सर्वज्ञ वीतराग ही जानै है एकबार हू सम्यक्मरण नाहीं किया जो सम्यक्मरण करता तो फिर संसारमें मरणका पात्र नाहीं होता जातैं जहां देह मर जाय अर आत्माका सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र स्वभाव है सो विषयकषायनिकरि नाहीं घात्या जाय सो सम्यक्मरण है अर मिथ्याश्रद्धानरूप हुआ देहका नाशकूं ही अपना आत्माका नाश जानना संक्लेशतै मरण करना सो कुमरण है सो मैं मिथ्यादर्शनका अभाव करि देहकूं ही आपा मानि अपना ज्ञानदर्शनस्वरूपका घात करि अनन्त परिवर्तन किये सो अब भगवान वीतराग सौं ऐसी प्रार्थना करूं हूं जो मेरे मरणके समयमें वेदना मरण तथा आत्मज्ञान रहित मरण मत होहु क्योंकि सर्वज्ञ वीतराग जन्ममरणरहित भये हैं तातैं मैं हू सर्वज्ञ वीतरागका शरणसहित संक्लेशरहित धर्मध्यानतै प्राण त्याग

वीतरागही का शरण ग्रहण करूं हूं अब मैं अपने आत्माकूं समझाऊं हूँ—

कृमिजालशताकीर्णे जर्जरे देहपंजरे ।
भज्यमाने न भेतव्यं यतस्त्वं ज्ञानविग्रहः ॥

अर्थ—भो आत्मन् ! कृमिनिके सैकड़ां जालकरि भरया अर नित्य जर्जरा होता यो देहरूप पींजरा इसकूं नष्ट होतैं तुम भय मत करो जातैं तुम तो ज्ञानशरीर हो ।

भावार्थ—तुमारा रूप तो ज्ञान है जिसमें ये सकल पदार्थ उद्योतरूप हो रहे है अर अमूर्तीक ज्ञान ज्योतिःस्वरूप अखण्ड अविनाशी ज्ञाता दृष्टा है अर यह हाड़ मांस चमड़ामय महा-दुर्गंध विनाशीक देह है सो तुमारा रूपतैं अत्यंत भिन्न है कर्मके वशतै एक क्षेत्रमें अवगाहन करि एकसे होय तिष्ठै है तो हू तुमारैं इनके अत्यंत भेद है अर यो देह पृथ्वी जल अग्नि पवनके परमाणुनिका पिंड है सो अवसर पाय विखर जायगा तुम अवि नाशी अखंड ज्ञायकरूप हो इसके नाश होनेतैं भय कैसैं करो हो । अब और हू कहैं हैं—

ज्ञानिन् भयं भवेत्कस्मात्प्राप्ते मृत्युमहोत्सवे ।
स्वरूपस्थः पुरं याति देही देहान्तरस्थितिः ॥

भावार्थ—भो ज्ञानिन् ! कहिये हो ज्ञानी तुमको वीतरागी सम्यग्ज्ञानी उपदेश करै है जो मृत्युरूप महान् उत्सवको प्राप्त होतैं काहेतैं भय करो हो यो देही कहिये आत्मा सो अपने स्वरूप में तिष्ठता अन्य देहमें स्थितिरूप पुरकूं जाय है यामें भयका हेतु कहा है ।

भावार्थ—जैसे कोऊ एक जीर्णकुटीमेंतैं निकसि अन्य नवीन महलकूं प्राप्त होय सो तो बड़ा उत्सवका अवसर है तैसैं यो आत्मा अपने स्वरूपमें तिष्ठता ही इस जीर्ण देहरूप कुटीकूं छांडि नवीन देहरूप महलको प्राप्त होतै महा उत्साहका अवसर है यामें कुछ हानि नाहीं जो भय करिये अर जो अपने ज्ञायकस्वभावमें तिष्ठते परका अपना करि रहित परलोक जावोगे तो बड़ा आदर सहित दिव्य धातु उपधातु रहित वैक्रियकदेहमें देव होय अनेक महर्द्धिकनिमें पूज्य महान देव होवोगे अर जो यहां भयादिक करि अपना ज्ञानस्वभावकूं बिगाड़ि परमें ममता धारि मरोगे तो एकेन्द्रियादिकका देहमें अपने ज्ञानका नाश करि जड़ रूप होय तिष्ठोगे ऐसैं मलिन क्लेशसहित देहकूं त्यागि क्लेशरहित उज्वल देहमें जाना तो बड़ा उत्सवका कारण है—

सुदत्तं प्राप्यते यस्मात् दृश्यते पूर्वसत्तमैः ।
भुज्यते स्वर्भवं सौख्यं मृत्युभीतिः कुतः सताम् ॥

अर्थ—पूर्वकालमें भए गणधरादि सत्पुरुष ऐसैं दिखावैं हैं जो जिस मृत्युतैं भले प्रकार दिया हुवाका फल पाइये अर स्वर्गलोकका सुख भोगिये तातैं सत्पुरुषकै मृत्युका भय काहेतैं होय ।

भावार्थ—अपना कर्तव्यका फल तो मृत्यु भये ही पाइये है जो आप छहकायके जीवनिकूं अभयदान दिया अर रागद्वेष काम क्रोधादिकका घात करि असत्य अन्याय कुशील परधनहरण का त्यागकरि परमः सन्तोष धारणकरि अपने आत्माकूं अभयदान दिया ताका फल स्वर्गलोक विना कहां भोगनेमें आवै सो स्वर्ग लोकके

तो मृत्यु नाम मित्र के प्रसादतैं ही पाइये तातैं मृत्यु समान इस जीवका कोऊ उपकारक नाहीं यहां मनुष्य पर्यायका जीर्ण देहमें कौन कौन दुःख भोगता कितने काल तक रहता आर्तध्यान रौद्रध्यानकरि तिर्यंच नरकमें जाय परता तातैं अब मरणका भय अर देह कुटुम्ब परिग्रहका ममत्वकरि चिंतामणि कल्पवृक्ष समान समाधिमरणकूं बिगाड़ि भयसहित ममतावान हुवा कुमरण करि दुर्गति जावना उचित नाहीं और हू विचारै है—

आगर्भाद्दुःखसंतप्तः प्रक्षिप्तो देहपंजरे ।
नात्मा विमुच्यतेऽन्येन मृत्युभूमिपतिं विना ॥

अर्थ—यो हमारो कर्म नाम बैरी मेरा आत्माकूं देहरूप पींजरामें क्षेप्या सो गर्भमें आया तिस क्षणमें सदाकाल क्षुधा तृषा रोग वियोग इत्यादि अनेक दुःखनिकरि तप्तायमान हुवा पड़्या हूँ अब ऐसे अनेक दुःखनिकरि व्याप्त इस देहरूप पींजरातैं मोकूं मृत्यु नाम राजा विना कौन छुड़ावै।

भावार्थ—इस देहरूप पींजरेमे कर्मरूप शत्रुकरि पटक्या मैं इंद्रियनिके आधीन हुवा नाना त्रास सहूँ हुँ नित्य ही क्षुधा अर तृषाकी वेदना त्रास देवै है अर सासती स्वास उच्छ्वासकी पवनका खैंचना अर काढ़ना अर नानाप्रकार रोगनिका भोगना अर उदर भरनै वास्ते नाना पराधीनता अर सेवा कृषि वाणिज्यादिकनिकरि महा क्लेशित होय रहना अर शीत उष्ण दुष्टनिकरि ताड़न मारन कुवचन अपमान सहना कुटुम्बके आधीन होना धनके राजाके स्त्री पुत्रादिकके आधीन रहना ऐसा महान बंदीगृह

समान देहमेंतैं मरण नाम बलवान राजा विना कौन निकासै इस देहकूं कहां तांई बहता जाकूं नित्य उठावना बैठावना जलपावना स्नान करावना निद्रा लिवावना कामादिक विषयसाधन करावना नाना वस्त्र आभरणादिकरि भूषित करावना रात्रि दिन इस देहहीका दासपना करता हू आत्माकूं नाना त्रास देवै है भयभीत करै है आपा भुलावै है ऐसा कृतघ्न देहतैं निकसना मृत्यु नाम राजा विना नाहीं होय जो ज्ञानसहित देहसौं ममता छांडि सावधानीतैं धर्मध्यानसहित संक्लेशरहित वीतरागतापूर्वक जो समाधिमृत्यु नाम राजाका सहाय ग्रहण करूं तो फेरि मेरा आत्मा देह धारण ही नाहीं करै दुःखनिका पात्र नाहीं होय समाधिमरण नामा बड़ा न्यायमार्गी राजा है मोकूं याहीका शरण होहू। मेरे अपमृत्युका नाश होहू। और हू कहैं हैं—

सर्वदुःखप्रदं पिण्डं दूरीकृत्यात्मदर्शिभिः।
मृत्युमित्रप्रसादेन प्राप्यन्ते सुखसम्पदः॥

अर्थ—आत्मदर्शी जे आत्मज्ञानी हैं ते मृत्युनाम मित्रका प्रसादकरि सर्व दुःखका देनेवाला देहपिंडकूं दूर छांडिकरि सुखकी संपदाकूं प्राप्त होय हैं।

भावार्थ—जो इस सप्तधातुमय महा अशुचि विनाशीक देहकूं छांडि दिव्य वैक्रियक देहमें प्राप्त होय नाना सुख संपदाको प्राप्त होय है सो समस्त प्रभाव आत्मज्ञानीनिके समाधिमरणका है समाधिमरण समान इस जीवका उपकार करनेवाला कोऊ नाहीं है इस देहमें नाना दुःख भोगना अर महानरोगादि दुःख

भोगि करि मरना फिर तिर्यंच देहमें तथा नर्कमें असंख्यात अनंत कालतांई असंख्यात दुःख भोगना अर जन्ममरणरूप अनन्त परिवर्तन करना तहां कोऊ शरण नाहीं इस संसारमें परिभ्रमणसों रक्षा करनेकूं कोऊ समर्थ नाहीं कदाचित अशुभकर्मका मन्द उदयतैं मनुष्यगति उच्चकुल इन्द्रियपूर्णता सत्पुरुषनिका संगम भगवान् जिनेन्द्रका परमागमका उपदेश पाया है अब जो श्रद्धान ज्ञान त्याग संयमसहित समस्त कुटुम्ब परिग्रहमें ममत्वरहित देहतैं भिन्न ज्ञान स्वभावरूप आत्माका अनुभवकरि भयरहित च्यार आराधना शरण सहित मरण हो जाय तो इस समान त्रैलोक्यमें तीन कालमें इस जीवका हित है नाहीं जो संसार परिभ्रमणतैं छूट जाना सो समाधिमरण नाम मित्रका प्रसाद है—

मृत्युकल्पद्रुमे प्राप्ते येनात्मार्थो न साधितः ।
निमग्नो जन्मजम्बाले स पश्चात् किं करिष्यति ॥

भावार्थ—जो जीव मृत्यु नाम कल्पवृक्षकूं प्राप्त होतैं हू अपना कल्याण नाहीं सिद्ध किया सो जीव संसाररूप कर्दममें डूबा हुवा पाछैं कहा करसी ।

भावार्थ—इस मनुष्य जन्ममें मरणका संयोग है सो साक्षात् कल्पवृक्ष है जो वांछित लेना है सो लेहु जो ज्ञानसहित अपना निज स्वभाव ग्रहणकरि आराधनासहित मरण करो तो स्वर्गका महर्द्धिकपणा तथा इन्द्रपणा अहमिंद्रपणा पाय पीछैं तीर्थंकर तथा चक्रीपणा होय निर्वाण पावो मरणसमान त्रैलोक्यमें दाता नाहीं ऐसे दाताकूं पायकरि भी जो विषयकी वांछाकषायसहित ही

रहोगे तो विषयवांछाका फल तो नरक निगोद है मरण नाम कल्पवृक्षकूं विगाड़ोगे तो ज्ञानादि अक्षय निधानरहित भए संसार रूप कर्दममें डूब जाओगे अर भो भव्य हो जो ये वांछाका मार्‍या हुवा खोटे नीच पुरुषनिका सेवन करो हो अतिलोभी भए विषयनिके भोगनेकूं धनके वास्तै हिंसा चोरी कुशील परिग्रहमें आसक्त भये निंद्यकर्म करो हो अर वांछित पूर्ण हू नाहीं होय अर दुःखके मारे मरण करो हो कुटुम्बादिकनिकूं छांडि विदेशमें परिभ्रमण करो हो निंद्य आचरण करो हो अर निंद्यकर्म करिकै हू अवश्य मरण करो हो अर जो एकबार हू समता धारणकरि त्यागव्रतसहित मरण करो तो फेरि संसारपरिभ्रमणका अभाव-करि अविनाशीसुखकूं प्राप्त हो जावो तातैं ज्ञानसहित पंडितम-रण करना ही उचित है।

जीर्णं देहादिकं सर्वं नूतनं जायते यतः।
स मृत्युः किं न मोदाय सतां सातोत्थितिर्यथा॥

अर्थ—जिस मृत्युतै जीर्ण देहादिक सर्व छूटि नवीन हो जाय सो मृत्यु सत्पुरुषनिके साताका उदयकी ज्यों हर्षके अर्थि नाहीं होय कहा? ज्ञानीनिके तो मृत्यु हर्षके अर्थि ही है।

भावार्थ—यो मनुष्यनिको शरीर भोजन करावता नित्य ही समय समय जीर्ण होय है देवनिका देह ज्यों जरारहित नाहीं है दिन दिन बल घटै है कांति अर रूप मलीन होय है स्पर्श कठोर होय है समस्त नसानिके हाडनिके बंधान शिथिल होय हैं चाम ढीली होय मांसादिकनिकूं छांडि ज्वरलीरूप होय है

नेत्रनिकी उज्वलता बिगडै है कर्णनिमें श्रवण करनेकी शक्ति घटै है हस्तपादादिकनिमें असमर्थता दिन दिन बधै है गमनशक्ति मंद होय है चलते बैठते उठते स्वास बधै है कफकी अधिकता होय है राग अनेक बधैं हैं ऐसी जीर्ण देहका दुःख कहां तक भोगता अर कैसैं देहका घींसणा कहांतक होता, मरण नाम दातार विना ऐसे निंद्य देहकूं छुडाय नवीन देहमें वास कौन करावै जीर्ण देह है तिसमें बड़ा असाताका उदय भोगिये है सो मरण नाम उपकारी दाता विना ऐसी असाताकूं दूर कौन करै अर जे सम्यग्ज्ञानी हैं तिनकै तो मृत्यु होनेका बड़ा हर्ष है जो अब संयमव्रत त्याग शीलमें सावधान होय ऐसा यत्न कर जो फेरि ऐसे दुःखका भरया देहको धारण नाहीं होय सम्यग्ज्ञानी तो याहीकूं महा साताका उदय मानै है।

सुखं दुःखं सदा वेत्ति देहस्थश्च स्वयं व्रजेत्।
मृत्युभीतिस्तदा कस्य जायते परमार्थतः ॥

अर्थ—यो आत्मा देहमें तिष्ठतो हू सुखकूं तथा दुःखकूं सदाकाल जानै ही है अर परलोकप्रति हू स्वयं गमन करै है तो परमार्थतैं मृत्युका भय कौनकै होय।

भावार्थ—जो अज्ञानी बहिरात्मा है सो तो देहमें तिष्ठता हू मैं सुखी मैं दुखी मैं मरूं हूँ मैं क्षुधावान मैं तृषावान मेरा नाश हुवा ऐसा मानै है अर अंतरात्मा सम्यग्दृष्टी ऐसैं मानै है जो उपज्यो है सो मरैगा पृथ्वीजल अग्निपवनमय पुद्गलपरमाणुनिके पिंडरूप उपज्यो यो देह है सो विनशैगो मैं ज्ञानमय अमूर्तीक आत्मा

मेरा नाश कदाचित् नाहीं होय ये क्षुधातृषावातपित्तकफादिरोग-भय वेदना पुद्गलके हैं मैं इनका ज्ञाताहूं मैं यामें अहंकार वृथा करूं हूं इस शरीरके अर मेरे एक क्षेत्रमें तिष्ठनेरूप अवगाह है तथापि मेरा रूप ज्ञाता है अर शरीर जड़ है मैं अमूर्तीक, देह मूर्तीक, मैं अखंड एक हूं, शरीर अनेक परमाणुनिका पिंड है, मैं अविनाशी हूं देहविनाशीक है अब इस देहमें जो रोग तथा तृषादि उपजै तिसका ज्ञाता ही रहना मेरा भी ज्ञायक स्वभाव है परमें ममत्व करना सो ही अज्ञान है मिथ्यात्व है अर जैसें एक मकानको छांडि अन्य मकानमे प्रवेश करै तैसें मेरे शुभ अशुभ भावनिकरि उपजाया कर्मकरि रच्या अन्य देहमें मेरा जाना है इसमें मेरा स्वरूपका नाश नाहीं अब निश्चयकरि विचारतैं मरणका भय कौनके होय ।

संसारासक्तचित्तानां मृत्युर्भीत्यै भवेन्नृणां ।
मोदायते पुनः सोऽपि ज्ञानवैराग्यवासिनां ॥

अर्थ—संसारमें जिनका चित्त आसक्त है अपना रूपकूं जे जानै नाहीं तिनकै मृत्यु होना भयके अर्थि है अर जे निजस्वरूपके ज्ञाता है अर संसारतैं विरागी हैं तिनकै तो मृत्यु है सो हर्षके अर्थि ही है ।

भावार्थ—मिथ्यादर्शनके उदयतैं जे आत्मज्ञानकरि रहित देहहीकूं आपा माननेवाले अर खावना पीवना कामभोगादिक इंद्रियनिके विषयनिकूं ही सुख माननेवाले बहिरात्मा हैं तिनके तो अपना मरण होना बड़ा भयके अर्थि है जो हाय मेरा नाश

भया फेरि खावना पीवना कहां नाहीं है, नाहीं जानिये मरे पीछे कहा होयगा कैसैं मरूंगा अब यह देखना मिलना कुटुम्बका समागम सब मेरे गया अब कौनका शरण ग्रहण करूं कैसैं जीऊं ऐसैं महा संक्लेशकरि मरै है अर जे आत्मज्ञानी हैं तिनके मृत्यु आए ऐसा विचार उपजै है जो मैं देहरूप बंदीगृहमें पराधीन पड्या हुवा इंद्रियनिके विषयनिकी चाहनाकी दाहकरि अर मिले विषयनिकी अतृप्तिताकरि अर नित्य ही क्षुधा तृषा शीत रोगनिकरि उपजी महावेदना तिनकरि एकक्षण हू थिरता नाहीं पाई महान दुःख पराधीनता अपमान घोर वेदना अनिष्टसंयोग इष्टवियोग भोगतां ही संक्लेशतैं काल व्यतीत किया अब ऐसै क्लेश छुड़ाय पराधीनतारहित मेरा अनन्तसुखस्वरूप जन्ममरणरहित अविनाशी स्थानकूं प्राप्त करनेवाला यह मरणका अवसर पाया है यो मरण महासुखको देनेवालो अत्यंत उपकारक है अर यो संसारवास केवल दुःखरूप है यामें एक समाधिमरण ही शरण है और कहूं ठिकाना नाहीं है इस विना च्यारों गतिनिमें महा त्रास भोगो है। अब संसारवासतैं अति विरक्त मैं समाधिमरणका शरण ग्रहण करूं।

पुराधीशो यदा याति सुकृतस्य बुभुत्सया।
तदासौ वार्यते केन प्रपञ्चैः पञ्चभौतिकैः॥

अर्थ—जिस कालमें यो आत्मा अपना कियाका भोगनेकी इच्छाकरि परलोककूं जाय है तदि पंचभूत संबंधी देहादिक प्रपंचनिकरि याकूं कौन रोकै।

भावार्थ — इस जीवका वर्तमान आयु पूर्ण हो जाय अर जो अन्य परलोकसंबधी आयुकायादिक उदय आ जाय तदि परलोककूं गमन करते आत्माकूं शरीरादिक पंचभूत कोऊ रोकने समर्थ नाहीं हैं तातैं बहुत उत्साहसहित चार आराधनाका शरण ग्रहणकरि मरण करना श्रेष्ठ है।

मृत्युकाले सतां दुःखं यद्भवेद्व्याधिसंभवम्।
देहमोहविनाशाय मन्ये शिवसुखाय च॥

अर्थ—मृत्युका अवसर विषैं जो पूर्वकर्मका उदयतैं रोगादिक व्याधिकरि दुःख उत्पन्न होय है सो सत्पुरुषनके देहकेविषैं मोहका नाशके अर्थि है अर निर्वाणका सुखके अर्थि है।

भावार्थ —यो जीव जन्म लीयो तिस दिनतैं देहसौं तन्मय हुवा यामें वसनेकूं ही बड़ा सुख मानैहै या देहकूं अपना निवास जानै है यासूं ममता लग रही है यामें वसने सिवाय अपना कहूं ठिकाना नाहीं देखै है अब ऐसा देहमें जो रोगादिकरि दुःख उपजै है जब सत्पुरुषनिकै यासूं मोह नष्ट हो जाय है अर साक्षात् दुःखदाई अथिर विनाशीक दीखै है अर देहका कृतघ्नपना प्रकट दीखै है तदि अविनाशी पदके अर्थि उद्यमी होय है वीतरागता प्रकट होय है तदि ऐसा विचार उपजै है जो इस देहकी ममताकरि मैं अनन्तकाल जन्ममरण नाना वियोग रोग संतापादिक नरकादिक गतिनिमें दुःख भोगे अब भी ऐसे दुःखदाई देहमें ही फेरि हू ममत्व करि आपको भूलि एकेन्द्रियादि अनेक कुयोनिमें भ्रमणका कारण कर्म उपार्जन करनेकूं ममता करूं हूं जो अब इस

शरीरमें ज्वर काश श्वास शूल वात पित्त अतीसार मंदाग्नि इत्यादिक रोग उपजैं हैं सो इस देहमें ममत्व घटावनेके अर्थि बड़ा उपकार करैं हैं धर्ममें सावधानता करावैं हैं जो रोगादिक नाहीं उपजता तो मेरी ममता हू देहतैं नाहीं घटती अर मंद हू नाहीं होती, मैं तो मोहकी अंधेरी करि आंधा हुवा देहकूं अजर अमर मान रहा था सो अब यो रोगनिकी उत्पत्ति मोकूं चेत कराया अब इस देहकूं अशरण जानि ज्ञान दर्शन चारित्र तपहीकूं एक निश्चय शरण जानि आराधनाका धारक भगवान परमेष्ठीकूं चित्त में धारण करूं हूं अब इस अवसरमें हमारे एक जिनेन्द्रका वचन रूप अमृत ही परम औषधि होहू जिनेन्द्रका वचनामृत विना विषय कषायरूप रोगजनित दाहके मेटनेकूं कोऊ समर्थ नाहीं बाह्य औषधादिक तो असाता कर्मके मंद होते किंचित् काल कोऊ एक रोगकूं उपशम करै अर यो देह अनेक रोगनिकरि भर्‌या हुवा है अर कदाचित् एक रोग मिट्या तो अन्य रोगजनित घोर वेदना भोगि फेरि हू मरण करना ही पड़ैगा तातैं जन्मजरामरण-रूप रोगकूं हरनेवाला भगवानका उपदेशरूप अमृतहीका पान करूं अर औषधादिक हजारां उपाय करते हू विनाशीक देहमें रोग नाहीं मिटैगा तातैं रोगतैं आर्ति उपजाय कुगतिका कारण दुर्ध्यान करना उचित नाहीं रोग आवते हू बड़ा ही मानो जो रोगहीके प्रभावतैं ऐसा जीर्ण गल्या हुवा देहतैं मेरा छूटना होयगा रोग नाहीं आवे तो पूर्व कृत कर्म नाहीं निर्जरै अर देहरूप महा दुःख-दाई वन्दीगृहतैं मेरा शीघ्र छूटना हू नाहीं होय है अर यो रोग-रूप मित्रको सहाय ज्यों २ देहमें बधै है त्यों त्यों मेरा रागबंधनतैं

अर कर्मबन्धनतैं अर शरीरबंधनतैं छूटना होय है अर यो रोग तो देहमें है इस देहकूं नष्ट करैगा मैं तौ अमूर्तीक चैतन्यस्वभाव अविनाशी हूं ज्ञाता हूँ अर जो यो रोगजनित दुःख मेरे जाननेमें आवै सो मैं तो जाननेवालाहीहूं याकोलार मेरा नाश नाहीं जैसे लोहेका सङ्गतिमें अग्नि हू घणनिका घात सहै है तैसैं शरीरकी संगतितैं वेदनाका जानना मेरे हू है अग्नितैं भूंपड़ी बलै है भूंपड़ीके मांहि आकाश नाहीं बलै है तैसै अविनाशी अमूर्तीक चैतन्य धातुमय आत्मा ताका रोगरूप अग्निकरि नाश नाहीं अर अपना उपजाया कर्म आपकूं भोगना ही पड़ैगा कायर होय भोगूंगा तो कर्म नाहीं छांड़ैगा अर धैर्य धारण करि भोगूंगा तो कर्म नाही छांड़ैगा तातैं दोऊ लोकका विगाड़नेवाला कायरपनाकूं धिक्कार होहू कर्मका नाशकरनेवाला धैर्य ही धारण करना श्रेष्ठ है अर हे आत्मन् ! तुम रोग आये एते कायर होऊ हो सो विचार करो नरकनिमें यो जीव कौन कौन त्रास भोगी असंख्यातवार अनंतवार मारे विदारे चीरे फाड़े गये हो इहां तो तुमारे कहा दुःख है अर तिर्यंचगतिके घोर दुःख भगवान ज्ञानी हू वचनद्वारकरि कहनेकूं समर्थ नाहीं अर मैं तिर्यंच पर्यायमें पूर्व अनन्तवार अग्निमें बलि बलि मरया हूं अनंतवार जलमें डूबि डूबि मरा हूँ अनन्तवार विष भक्षण कर मरा हूं अनन्तवार सिंह व्याघ्रसर्पा-दिकनिकरि विदारया गया हूँ शस्त्रनिकरि छेद्या गया हूँ अनंतवार शीतवेदनाकरि मरा हूँ अनंतवार उष्णवेदनाकरि मरया हूँअनंत वार क्षुधाकी वेदनाकरि मरा हूँ अनंतवार तृषाकी वेदना करि मरा हूँ अब ये रोगजनित वेदना केतीक है रोग ही मेरा उप-

कार करै है रोग नाहीं उपजता तो देहतैं मेरा स्नेह नाहीं घटता अर समस्ततैं छूटि परमात्माका शरण नाहीं ग्रहण करता तातैं इस अवसरमें जो रोग है सोहू मेरा आराधना मरणमें प्रेरणाकरनेवाला मित्र है ऐसै विचारता ज्ञानी रोग आये क्लेश नाहीं करै है मोहके नाश करनेका उत्सव ही माने है।

ज्ञानिनोऽमृतसंगाय मृत्युस्तापकरोऽपि सन्।
आमकुम्भस्य लोकेऽस्मिन् भवेत्पाकविधिर्यथा ॥

अर्थ—यद्यपि इसलोकमें मृत्यु है सो जगतके आताप करने वाली है तो हू सम्यग्ज्ञानीके अमृतसंग जो निर्वाण ताके अर्थि है जैसैं काचा घड़ाकूं अग्निमें पकावना है सो अमृतरूप जलके धारणके अर्थि है जो काचा घड़ा अग्निमें नाहीं पकै तो घड़ामें जल धारण नाहीं होय है अग्निमें एकबारमें पकि जाय तो बहुत काल जलका संसर्गकूं प्राप्त होय तैसैं मृत्युका अवसरमें आताप समभावनिकरि एकबार सहि जाय तो निर्वाणकौ पात्र हो जाय।

भावार्थ—अज्ञानीकैं मृत्युका नामतैं भी परिणामतैं आताप उपजै है जो मैं अब चाल्या अब कैसैं जीऊं कहा करूं कौन रक्षा करै ऐसै संतापको प्राप्त होय है क्योंकि अज्ञानी तो बहिरात्मा है देहादिकका बाह्य वस्तुकूं ही आत्मा मानै है अर ज्ञानी जो सम्यग्दृष्टि है सो ऐसा मानै है जो आयु कर्मादिकका निमित्ततैं देहका धारण है सो अपनी स्थिति पूर्ण भये अवश्य विनशैगा मैं आत्मा अविनाशी ज्ञानस्वरूप हूं जीर्ण देह छांडि नवीनमें प्रवेश करते मेरा कुछ विनाश नाहीं है।

यत्फलं प्राप्यते सद्भिर्व्रतायासविडम्बनात् ।
तत्फलं सुखसाध्यं स्यान्मृत्युकाले समाधिना ॥

अर्थ—यहां सत्पुरुष हैं ते व्रतनिका बड़ा खेदकरि जिस फल कूं प्राप्त होइये सो फल मृत्यु अवसरमें थोरे काल शुभध्यानरूप समाधिमरणकरि सुखतैं साधने योग्य होय है

भावार्थ—जो स्वर्गमें इन्द्रादिक पद वा परंपराय निर्वाणपद पंच महाव्रतादिका वा घोर तपश्चरणादिककरि सिद्ध करिये है सो पद मृत्युका अवसरमें जो देह कुटुम्बादिसूं ममता छांडि भय-रहित हुवा वीतरागता सहित च्यारि आराधनाका शरण ग्रहण-करि कायरता छांडि अपना क्षायिक स्वभाव कूं अवलंबनकरि मरण करै तो सहज सिद्ध होय तथा स्वर्गलोकमें महर्द्धिक देव होय तहांतैं आय बड़ा कुलमें उपजि उत्तम संहननादि सामग्री पाय दीक्षा धारणकरि अपने रत्नत्रयकी पूर्णता कूं प्राप्त होय निर्वाण जाय है ।

अनार्तः शांतिमान्मर्त्यो न तिर्यग् नापि नारकः ।
धर्मध्यानी पुरो मर्त्योऽनशनीत्वमरेश्वरः ॥

अर्थ—जाकै मरणका अवसरमें आर्त्त जो दुःखरूप परिणाम नाहीं होय अर शांतिमान कहिये रागरहित द्वेषरहित समभावरूप चित्त होय सो पुरुष तिर्यंच नाहीं होय अर जोध र्मध्यान हित अनशनव्रत धारण करकैं मरै सो तो स्वर्गलोकमें इन्द्र होय तथा महर्द्धिक देव होय अन्य पर्याय नाहीं पावै ऐसा नियम है ।

भावार्थ—यो उत्तम मरणका अवसर पाय करिकैं आराधना सहित मरणमें यत्न करो अर मरण आवतैं भयभीत होय परिग्रहमें ममत्व धारि आर्त्त परिणामनिसौं मरणकरि कुगतिमें मत जावो यो अवसर अनंतभवनिमें नाहीं मिलैगा अर मरण छांडैगा नाहीं तातैं सावधान होय धर्मध्यानसहित धैर्य धारण करि देहका त्याग करो।

तप्तस्य तपसश्चापि पालितस्य व्रतस्य च।
पठितस्य श्रुतस्यापि फलं मृत्युः समाधिना॥

अर्थ—तपका सन्ताप भोगनेका अर व्रतनिके पालनेका अर श्रुतके पढनेका फल तो समाधि जो अपने आत्माकी सावधानी सहित मरण करना है।

भावार्थ—हे आत्मन्! जो तुम इतने काल इन्द्रियनिके विषयनिमें वांछारहित होय अनशनादि तप किया है सो अनंतकालमें आहारादिकनिका त्यागसहित संयम-सहित देहका ममतारहित समाधिमरणके अर्थि किया है अर जो अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य परिग्रहत्यागादि व्रत धारण किये हैं सो हू समस्त देहादिक परिग्रहमें ममताका त्यागकरि समस्त मनवचनकायतैं आरंभादिक कूं त्यागकरि समस्त शत्रु मित्रनिमे वैर राग छांडिकरि उपसर्गमे धीरज धारणकरि अपना एक ज्ञायकस्वभाव अवलम्बनकरि समाधिमरण करनेकै अर्थि किये हैं अर जो समस्त श्रुतज्ञानका पठन किया है सो हू संक्लेशरहित धर्मध्यानसहित होय देहादिकनितैं भिन्न आपकूं जानि भयरहित समाधिमरणके निमित्त ही विद्याका आराधनकरि काल व्यतीत किया है अर मरणका अव-

सरमें हू ममता भय द्वेष कायरता दीनता नाहीं छांडोगे तो इतने काल तप कीने व्रत पाले श्रुतका अध्ययन किया सो समस्त निरर्थक होवेंगे तातैं इस मरणके अवसरमें कदाचित् सावधानी मत बिगाड़ो ।

अतिपरिचितेष्ववज्ञा नवे भवेत्प्रीतिरिति हि जनवादः ।
चिरतरशरीरनाशे नवतरलाभे च किं भीरुः ॥

अर्थ—लोकनिका ऐसा कहना है जो जिस वस्तुका अतिपरिचय अतिसेवन होजाय तिसमें अवज्ञा अनादर होजाय है रुचि घटि जाय है अर नवीनका संगममें प्रीति होय है यह बात प्रसिद्ध है अर हे जीव तू इस शरीरको चिरकालसे सेवन किया अब याका नाश होतै अर नवीन शरीरका लाभ होतै भय कैसैं करो हो भय करना उचित नाहीं ।

भावार्थ—जिस शरीरकूं बहुत काल भोगि जीर्ण कर दीना साररहित बलरहित होगया अर नवीन उज्वल देह धारण करने का अवसर आया अब भय कैसैं करो हो यो जीर्ण देह तो विनसैहीगो इसमें ममता धारि मरण बिगाड़ि दुर्गतिका कारण कर्मबंध मत करो ।

शार्दूलविक्रीडितम् ।

स्वर्गादेत्य पवित्रनिर्मलकुले संस्मर्यमाणा जनै-
र्दत्वा भक्तिविधायिनां बहुविधं वाञ्छानुरूपं धनम्
भुक्त्वा भोगमहर्निशं परकृतं स्थित्वा क्षणं मंडले,
पात्रावेशविसर्जनामिव मतिं सन्तो लभन्ते स्वतः ॥

अर्थ—ऐसैं जो भयरहित होय समाधिमरणमें उत्साहित चार आराधनानि को आराधि मरण करै है ताके स्वर्गलोक विना अन्य गति नाहीं होय है स्वर्गनिमें महर्द्धिक देव ही होय है ऐसा निश्चय है बहुरि स्वर्ग में आयु का अन्त पर्यन्त महासुख भोगि करिकैं इस मनुष्यलोकविषैं पुण्यरूप निर्मल कुलमें अनेक लोकनिकरि चिंतवन करते करते जन्म लेय अपने सेवकजन तथा कुटुम्ब परिवार मित्रादि जननिकूं नानाप्रकारके वांछित धन भोगादिरूप फल देय अर पुण्यकरि उपजे भोगनिकूं निरंतर भोगि, आयुप्रमाण थोड़े काल पृथ्वीमंडलमें संयमादिसहित वीतरागरूप भये तिष्ठ करकै जैसैं नृत्यके अखाड़ेमें नृत्य करनेवाला पुरुष लोकनिके आनन्द उपजाय निकल जाय है तैसैं वह सत्पुरुष सकल लोकनिके आनंद उपजाय स्वयमेव देह त्यागि निर्वाणकूं प्राप्त होय है ॥ १८ ॥

दोहा ।

मृत्युमहोत्सव बचनिका, लिखी सदासुख काम ।
शुभ आराधनमरण करि, पाऊं निज सुखधाम ॥ १ ॥
उगणीसै ठारा शुकल, पंचमि मासि असाढ़ ।
पूरन लिखि वांचो सदा, मन धरि सम्यक गाढ़ ॥२॥

ऐसैं सल्लेखनाका वर्णनमें उपकारक जानि मृत्युमहोत्सव यामें लिखा है । यद्यपि याकी बचनिका संवत् (१६१८) उगणीससैं अठारामें लिखी थी सो अब इहाँ सल्लेखनाके कथनकै शामिल हुवा विना और विशेष लिख्याँ ही सवक होय यातैं तयार कथनी लिख दीनी । अब इहां सल्लेखना दोयप्रकार हैं एक कायसल्लेखना एक कषायसल्लेखना इहां सल्लेखना नाम सम्यक्प्रकारकरि

कृश करनेका है तहां जो देहका कृश करना सो तो कायसल्लेखना है क्योंकि इस कायकूं ज्यों पुष्ट करो सुखिया राखो त्यों इंद्रियनिके विषयांकी तीव्र लालसा उपजावै है आत्मविशुद्धताकूं नष्ट करै है काम लोभादिककी वृद्धि करै है निद्रा प्रमाद आलस्यादिक वधावै है परीषह सहनेमें असमर्थ होय है त्याग संयमकै सन्मुख नाहीं होय है आत्माकूं दुर्गतिमें गमन करावै है वात पित्त कफादि अनेक रोगनिकूं उपजाय महा दुर्ध्यान कराय संसारपरिभ्रमण करावै है यातैं अनशनादि तपश्चरण करि इस शरीरकूं कृश करना। रोगादिक वेदना नाहीं उपजै परिणाम अचेतन नाहीं होय यातैं प्रथम कायसल्लेखना करनेका सूत्र कहैं हैं—

आहारं परिहाप्य क्रमशः स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानं।
स्निग्धं च हापयित्वा खरपानं पूरयेत्क्रमशः ॥१२७॥
खरपानहापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या।
पञ्चनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्वयत्नेन ॥१२८॥

अर्थ—कायसल्लेखना करै सो अनुक्रमतैं करै अपना आयुका अवसर दीखै तिस प्रमाण देहसूं इंद्रियांस्यूं ममत्वरहित हुवा आहारके आस्वादनतैं विरक्त होय विचार करै जो हे आत्मन्! संसार परिभ्रमण करता तू एता आहार किया जो एक एक जन्मका एक एक कणकूं एकठा करिये तो अनंत सुमेरु प्रमाण होजाय अर अनन्त जन्मनिमें एता जल पिया जो एक एक जन्मकी एक एक बूंद ग्रहण करिये तो अनन्त समुद्र भरि जांय एते आहार जलसूं ही तृप्ति नाहीं भया तो अब रोग जरा-

दिकंकरि प्रत्यक्ष मरण नजीक आया अब इस अवसरमें किंचित्
आहारतैं तृप्ति कैसैं होयगी अर इस पर्यायमें भी जन्म लिया तो
दिनतैं नित्य आहार ही ग्रहण किया अर आहारका लोभी होयके
ही घोर आरंभ किया अर आहारहीका लोभतैं हिंसा असत्य
परधनलालसा अब्रह्म अर परिग्रहका बहुत संगमकरि अर दुर्ध्या-
नादिककरि कुकर्म उपार्जन किये आहार की गृद्धतातैं ही दीन-
वृत्ति करि पराधीन भया अर आहारका लोभी होय भक्ष्य अभक्ष्य
का विचार नाहीं किया रात्रिका दिनका योगका अयोगका विचार
नाहीं किया आहारका लोभी होय क्रोध अभिमान मायाचार लोभ
याचनाकूं प्राप्त हुवा आहार की चाहकरि अपना बड़ापन अभि-
मान नष्ट किया आहारका लोभी होय अनेक रागनिका घोर दुःख
सह्या आहारका लोभी होय करिकैं ही नीच जाति नीच कुलीनिकी
सेवा करी आहारका लोभी होय स्त्री के आधीन होय रह्या पुत्रके
आधीन होय रह्या आहारका लंपटी निर्लज्ज होय है आचार-
विचाररहित होय है आहारका लंपटी कटि कटि मरै है दुर्वचन
सहै है आहार के अर्थि ही तिर्यंच गतिमें परस्पर मरैं हैं
भक्षण करैं हैं बहुत कहनेकरि कहा अब अल्पकाल इस पर्यायमें
हमारे बाकी रह्या है तातैं रसनिमें गृद्धिता छांडि अर रस-
नाइन्द्रियकी लालसा छांडि आहारका त्याग करनेमें
उद्यमी नाहीं होऊंगा तो व्रत संयम धर्म यश परलोक
इनकूं बिगाड़ि कुमरणकरि संसारमें परिभ्रमण करूंगा अर ऐसा
निश्चय करकैं ही अतृप्तताका करनेवाला आहारका त्यागके अर्थि
कोऊ कालमे उपवास, कदे बेला, कदे तेला, कदे एकबार आहार

करना कदे नीरस आहार अल्प आहार इत्यादिक क्रमतैं अपनी शक्ति प्रमाण अर आयु की स्थिति प्रमाण आहारकूं घटाय अर दुग्धादिकहीकूं पीवै। बहुरि क्रमतैं दुग्धादिक सचिक्कणका हू त्यागकरि छाछि वा तप्तजलादिक ही ग्रहण करै पाछै क्रमतैं जलादिक समस्त आहारका त्यागकरि अपनी शक्तिप्रमाण उपवास करता पंच नमस्कारमें मनकूं लीनकरि धर्मध्यानरूप हुआ बड़ा यत्नतैं देहकूं त्यागै सो सल्लेखना जाननी। ऐसैं कायसल्लेखना वर्णन करी।

अब इहां कोऊ प्रश्न करे यो आहारादिक त्यागकरि मरण करना सो आत्मघात है आत्मघात करना अयोग्य कह्या है ताकूं उत्तर कहैं हैं—

जाकै बहुत काल सुखकटिकै मुनिपना वं श्रावकपना तथा महाव्रत अणुव्रत पलता दीखै अर स्वाध्याय ध्यान दान शील तप व्रत उपवासादि पलता होय तथा जिनपूजन स्वाध्याय धर्मोपदेश धर्मश्रवण चार आराधनाका सेवन आछी तरह निर्विघ्न सधता होय अर दुर्भिक्षादिकनिका भय हू नाहीं आया होय असाध्य रोग शरीरमें नाहीं आया होय तथा स्मरणने ज्ञानने नष्ट करनेवाली जरा हू नाहीं प्राप्त भई होय अर दशलक्षण रत्नत्रयधर्म देहसूं पलता होय ताकूं आहार त्याग सन्यास करना योग्य नाहीं धर्म सधता हू आहार त्यागि मरण करै है सो धर्मतैं पराङ्मुख भया त्याग व्रत शील संयमादिकरि मोक्षका साधक उत्तम मनुष्य पर्यायतैं विरक्त हुआ अपनी दीर्घ आयु होते हू अर धर्म सेवन बनते हू आहारादिकका त्याग करैं सो आत्मघाती होय है। जातैं धर्म संयुक्त शरीरकी बड़ी यत्नतैं रक्षा करना ऐसी भग-

वानकी आज्ञा है अर धर्मके सेवनेका सहकारी ऐसा देहकूं आहार त्यागकरि छांडि देगा तदि कहा देव नारकी तिर्यंचनिका देह संयमरहित तिनतैं व्रत, तप संयम सधैगा ? रत्नत्रयका साधक तो मनुष्यदेह ही है अर धर्मका साधक मनुष्यदेहकूं आहारादिक त्यागकरि छांडै है ताकै कहा कार्य सिद्ध होय है इस देहकूं त्यागने तैं हमारा कहा प्रयोजन सधैगा नवीन देह व्रत-धर्मरहित और धारण करेगा परन्तु अनन्तानन्त देह धारण करावनेका बीज जो कार्माण देह कर्ममय है ताकूं मिथ्यात्व असंयम कषायादिकका परिहार करि मारो आहारादिकका त्यागतैं तो औदारिक हाडमांस मय शरीर मरि नवीन अन्य उपजैगा अष्टकर्ममय कार्माणदेह मरैगा तदि जन्ममरणतैं छूटोगे । यातैं कर्ममय देहके मारनेकूं इस मनुष्य शरीरकूं त्यागि व्रत संयममें दृढ़ता धारणकरि आत्मा का कल्याण करो अर जब धर्म रहता नाहीं दीखै तब ममत्व छांडि अवश्य विनाशीककूं त्यागनेमें ममता नाहीं धरना ।

अब जैसैं कायका तपश्चरणकरि कृश करना तैसैं रागद्वेष-मोहादिक कषायका हू साथ ही कृशपना करना सो कषायसल्ले-खना है कषायनिकी सल्लेखना विना कायसल्लेखना वृथा है कायका कृशपना तो रोगी दरिद्री पराधीनतातै मिथ्यादृष्टिकै हू होय है जो देहके साथि रागद्वेषमोहादिकनिकूं कृश करि इसलोक परलोक सम्बन्धी समस्त वांछाका अभावकरि देहके मरणमें कुटुम्ब परिग्रहादिक समस्त परद्रव्यनितैं ममता छांडि परम वीत-रागतातैं संयमसहित मरण करना सो कषायसल्लेखना है। इहां विशेष जानना जो विषयकषायनिका जीतनेवाला होयगा तिसही

कै समाधिमरणकी योग्यता है विषयनिके आधीन अर कषायथुक्त के समाधिमरण नाहीं होय है संसारी जीवनिकै ये विषय कषाय बड़े प्रबल हैं बड़े बड़े सामर्थ्यधारीनिकरि नाहीं जीते जाय हैं अर बड़े बल के धारक चक्री, नारायण, बलभद्रादिकनिकूं भ्रष्ट करि आपके आधीन किये तातैं अति प्रबल हैं संसारमें जेते दुःख हैं तितने विषयके लम्पटी अभिमानी तथा लोभीकैं होय हैं केते जीव जिनदीक्षा धारण करकैं हू विषयनिकी आतापतैं भ्रष्ट होय हैं अभिमान लोभ नाहीं छांडि सकैं हैं अनादिकालतैं विषयनिकी लालसाकरि लिप्त अर कषायनिकरि प्रज्वलित संसारी आपा भूलि स्वरूपतैं भ्रष्ट होय रहे हैं यातैं विषय कषायनितैं वीतराग का कारण श्रीभगवतीआराधनाजीमें विषय कषायनिका स्वरूप विस्तार सहित परम निर्ग्रंथ श्रीशिवायन नाम आचार्यने प्रकट दिखाया है सो वीतरागका इच्छुक पुरुषनिकूं ऐसा परम उपकार करनेवाला ग्रन्थका निरन्तर अभ्यास करना। समाधिमरणका अवसरमें जीवका कल्याण करनेवाला उपदेशरूप अमृतकूं सहस्रधाररूप होय वर्षा करता भगवतीआराधना नाम ग्रन्थ है ताका शरण अवश्य ग्रहण करने योग्य है याहीतैं इहां ऐसा आराधना मरणका कथन अवसर पाय भगवतीका अर्थका लेश लेय लिखिये है। यहां विशेष जानना जो साधु मुनीश्वरनिके तो रत्नत्रयधर्मकी रक्षा करनेका सहायी आचार्यादिकनिका संघ तथा वैयावृत्य करनेवाले धर्मके उपदेश देनेवाले निर्यापकनिका बड़ा सहाय है तदि कर्मनिका विजयकरि आराधनाकूं प्राप्त होय है याहीतैं गृहस्थीनिकूं

हू धर्मवृद्धि श्रद्धानी ज्ञानी से साधर्मीनिका समागम अवश्य मिलाया चाहिये परन्तु यो पंचमकाल अति विषम है यातैं विषयानुरागीनिका तथा कषायीनिका संगम सुलभ है तथा रागद्वेष शोक भयका उपजावनेवाला आर्तध्यानका बधावनेवाला असंयममें प्रवृत्ति करावनेवालेनिका ही संगम बनि रह्या है जातैं स्त्री-पुत्र मित्र बांधवादिक समस्त अपने रागद्वेष विषयकषायनिमें लगाय आपा भुलावनेवाले हैं समस्त अपना विषय कषाय पुष्ट करनेका इच्छुक हैं धर्मानुरागी धर्मात्मा परोपकारी वात्सल्यताका धारी करुणारसकरि भीजेनिका संगम महा-उज्वल पुण्यके उदयतैं मिलै है तथा अपना पुरुषार्थतै उत्तम पुरुषनिका उपदेशका संगम मिलावना अर स्नेह मोहकी पासीनिमें उलझावनेवाले धर्मरहित स्त्रीपुरुषनिका संगमका दूरहीतैं परित्याग करना अर अवशतैं कुसंगी आजाय तो तिनसौं वचनालापका त्यागकरि मौनी होय रहना अर अपना कर्मके आधीन देशकालके योग्य जो स्थान होय तीमें शयन आसन करना अर जिनसूत्रनिका परम शरण ग्रहण करना जिनसिद्धांतका उपदेश धर्मात्मानितैं श्रवण करना त्याग संयम शुभध्यान भावनाकूं विस्मरण नाहीं होना अर धर्मात्मा साधर्मी हू अपने अर परके धर्मकी पुष्टता चाहता अर धर्मकी प्रभावना वांछता धर्मोपदेशादिरूप वैयावृत्यमें आलसी नाहीं होय। त्याग, व्रत, संयम, शुभध्यान शुभभावनामें ही आराधक साधर्मीकूं लीन करै अर कोऊ आराधक ज्ञानसहित हू कर्मके तीव्र उदयतैं तीव्र रोगादिक क्षुधा तृषादिक परीषहनिके सहनेमें असमर्थ होय व्रतनिका प्रति-

ज्ञातैं चलि जाय तथा अयोग्य वचनहू कहने लगि जाय तथा रुदनादिकरूप विलापरूप आर्तपरिणामरूप हो जाय तो साधर्मी बुद्धिमान पुरुष ताका तिरस्कार नाहीं करै कटुवचन नाहीं कहै कठोर वचन नाहीं कहै जातैं वेदनाकरि दुःखित होय अर पाछैं तिरस्कारका अवज्ञाका वचन सुनै तदि मानसीक दुःखतैं दुर्ध्यानकूं प्राप्त होय चलायमान हो जाय विपरीत आचरण करै तथा आत्मघात करै तातै आराधकका तिरस्कार करना योग्य नाहीं उपदेशदाता है सो महान् धीरता धारण करि आराधककूं स्नेह भरा वचन कहै मिष्ट वचन कहै हृदयमें प्रवेश करि जाय श्रवण करते ही समस्त दुःख विस्मरण हो जाय करुणारसतैं उपकारबुद्धितैं भरा वचन कहै। हो धर्मके इच्छुक ! अब सावधान होहू पूर्वकर्मके उदयतैं रोग वेदना तथा महा व्याधि उपजी है तथा परीषहनिका संताप उपज्या है अर शरीर निर्बल भया है आयु पूर्ण होनेका अवसर आया है तातै अब दीन मति होहू अब कायरता छांडि शूरपना ग्रहण करो कायर भये दीन भये असाता कर्म नाहीं छांडैगा कोऊ दुःख हरनेकूं समर्थ नाहीं है असाताकूं दूरिकरि साताकर्म देनेकूं कोऊ इन्द्र धरणेंद्र जिनेन्द्र अहिमिंद्र समर्थ हैं नाहीं यातैं अब कायरता है सो दोऊ लोक नष्ट करनेवाला धर्मसूं पराङ्मुखता करै है तातैं धैर्य धारि क्लेशरहित होय भोगोगे तो पूर्व कर्मकी निर्जरा होयगी नवीन कर्म बंधका अभाव होयगा बहुरि तुम जिनधर्मके धारक धर्मात्मा कहावो हो समस्त तुमकूं ज्ञानवान समझै है धर्मके धारकनिमें विख्यात हो अर व्रती हो अर व्रतसंयमकी यथाशक्ति प्रतिज्ञा

ग्रहण करी है अब त्याग संयममें शिथिलता दिखावोगे तो तुम्हारा यश अर परलोक तो विगडैहीगा परन्तु अन्य धर्मात्मानिका अर धर्मकी बडी निन्दा होयगी अर अनेक भोले जीव धर्मके मार्गमें शिथिल हो जांयगे जैसैं कुलवान मानी सुभट लोकनिके मध्य भुजास्फाळन करि पाछैं वैरीकूं सम्मुख आवतैं ही भयवान होय भागै तो अन्य लघुकिंकर कैसैं थिरता धारै अर दोय दिन जीया तो हू ताका जीवना हू धिक्कार होय है तैसैं तुम त्यागव्रतसंयमकी प्रतिज्ञा ग्रहणकरि अब शिथिल होवोगे तो निद्यताके पात्र होवोगे अर अशुभकर्म हू नाहीं छांडैगा अर आगानै बहुत दुःखनिका कारण नवीन कर्मका ऐसा दृढ बंध करोगे जो असंख्यातकाल-पर्यन्त तीव्ररस देगा अर जो तुम्हारे पूर्वै ऐसा अभिमान था जो मैं जिनेन्द्रका भक्त जैनी हूँ आज्ञाका प्रतिपालक हूँ जिनेन्द्रके कहे व्रतशील संयम धारण करूं हूँ जो श्रद्धान ज्ञान आचरण अनन्त भवनिमें दुलभ है सो वीतरागगुरुनिके प्रसादतैं प्राप्त भया हूं ऐसा निश्चय करकै हू अब किंचित् रोगजनित वेदना वा परीषह कर्मके उदय करि आवनेतैं कायर होय चलायमान होना अति लज्जाका कारण है वेदना का एता भय करो हो सो वेदनातैं मरण ही होयगा मरण तो एकवार अवश्य होना ही है जो देह धारया है सो अवश्य मरण करैहीगा।

अब जो वीतराग गुरुनिका उपदेश्या व्रतसंयमसहित काय-रतारहित उत्साह करि च्यारि आराधनाका शरणसहित जो मरण हो जाय तो इस समान त्रैलोक्यमें लाभ नाहीं, तीन लोक की राज्यसंपदा तो विनाशीक है पराधीन है आराधनाकी संपदा

अनन्तसुखदेनेवाली अविनाशी है अर जिस भयरहित धीरता-सहित मरणकूं मुनीश्वर आचार्य उपाध्याय चाहैं हैं अर समस्त व्रती संयमी सम्यग्दृष्टी चाहैं अर तुम हू निरन्तर वांछा करै थे सो मनोवांछित समाधिमरण नजीक आगया इस समान आनन्द कोऊ ही नाहीं है अर या वेदना बधै है सो तुम्हारा बड़ा उपकार करै है वेदनातै देहमें राग नष्ट हो जायगा पूर्व कर्म असातादिक बांधे थे तिनकी अल्पकालमें निर्जरा होयगी दुःख रोगनितैं भर्‌या देहरूप बन्दीगृहतैं जरूर निकसना होयगा विषय भोगनितैं विरक्तता होयगी परद्रव्यनितैं ममता घटैगी मरणका भय नाहीं रहैगा मित्र पुत्र स्त्री बांधवादिकनितैं ममता नष्ट होयगी इत्यादिक अनेक अनेक उपकार वेदनातैं हू जानहू अर कायर हूआ वेदना बधैगी संक्लेश बधैगा कर्मका उदय है सो अब टलैगा नाहीं यातैं अब दृढ़ता ही धारण करनेका अवसर है अर कर्मका जीतना तो शूरपना धारण करे ही होयगा कायर होय रोवोगे तड़फड़ाट करोगे तो कर्म तुमकूं मारि तिर्यंचादिक कुगतिकूं प्राप्त करेगा अनेक दुःखनिकूं प्राप्त होवोगे जैसैं कुलका साधर्मीनिका धर्मका यशवृद्धिकूं प्राप्त होय अर तुम दुःखके पात्र नाहीं होउ तैसैं प्रवर्तन करो जैसैं शूरवीर क्षत्रियकुलमें उपजैं हैं ते संग्राममें शस्त्रनिकरि दृढ़ संतापित भये भृकुटीसहित मरण करैं हैं परन्तु वैरीनितैं मुखकूं उलटा नाहीं फेरैं हैं तैसैं परमवीतरागीनिका शरण ग्रहण करता पुरुष अशुभकर्मनिके अति प्रहारतैं देहका त्याग करैं हैं परन्तु दीनता कायरताकूं प्राप्त नाहीं होय हैं। केई जिनलिंगके धारक उत्तम पुरुषनिके दुष्ट वैरी चारों तरफ अग्नि लगाय दीनी ताकी

घोरवेदना वचनके अगोचर तिस अग्निमें सर्वतरफतैं दग्ध होतैं हू अपना ऋण चुकने समान जानि पंच परमगुरुनिका शरणसहित धीरताकूं धारते दग्ध होय गये हैं परन्तु कायरताकूं नाहीं धारैं हैं ऐसा आत्मज्ञानकी प्रभावना है जो इस कलेवरतैं भिन्न अविनाशी अखण्ड ज्ञानस्वभावकूं अनुभव किया है तिस अनुभव करनेका फल अकंपपना भयरहितपना ही है। बहुरि मिथ्यादृष्टी अज्ञानी हू परलोकके सुखका अर्थी होय धैर्य धारण करै है वेदनामें कायर नाहीं होय है तदि संसारके समस्त दु:खनिके नाश करनेका इच्छुक जिनधर्मके धारक तुम कायर होय आत्माका हितकूं बिगाडो तथा उज्वल यशकूं मलीन करि दुर्गतिके पात्र कैसैं बनो तातैं अब सावधान होय धर्मका शरण ग्रहणकरि कर्मजनित वेदनाका विजय करो ऐसा अवसर अनन्तभवनिमें हू नाहीं मिल्या है या तीरां लागी नाव है अब प्रमादी रहोगे तो डूब जायगी समस्त पर्यायमें जो ज्ञानका अभ्यास किया श्रद्धान की उज्वलता करी तप त्याग नियम धार्‌या सो इस अवसरके अर्थ धारे थे अब अवसर आये शिथिल होय भ्रष्ट होओगे तो भ्रष्ट हुवा अर समता छांडे रोग तथा मरण तो टलैगा नाहीं अपना आत्माकूं केवल दुर्गतिरूप अन्ध कीचमें डबोवोगे। बहुरि जो लोकमें मरी रोग आ जाय तथा दुर्भिक्ष आ जाय तथा भयानक गहनवनमे प्रवेश हो जाय तथा दृढ़ भय आ जाय तथा तीव्ररोग वेदना आ जाय तो उत्तम कुलमें उपजे पूज्य पुरुष संन्यासमरण करै परन्तु निंद्य आचरण नीच पुरुषनिकी ज्यों कदाचित् नाहीं करै मरीके भयतैं

मदिरा नाहीं पीवै है दुर्भिक्ष आ जाय तो मांसभक्षण नाहीं करै--कांदा नाहीं खाय नीच चांडालादिकनिकी उच्छिष्ट नाहीं भक्षण करै, है भय आ जाय तो म्लेच्छ भील नाहीं हो जाय है कुकर्म हिंसा-दिक नाहीं करै है तैसैं रोगादिकनिकी प्रबल त्रास होतैं हू श्रावक-धर्मका धारक जिनधर्मी, कदाचित् अपने भावनिकूं विकाररूप नाहीं करै है अर धर्मकी अर त्यागकी व्रतकी साधर्मीनिकी प्रभा-वनाका इच्छुक होय अन्तकालमें अपना श्रद्धान ज्ञान आचरणकी उज्ज्वलता ही प्रगट करै है तिनका जन्म सफल होय है व्रत तप धर्म सफल होय है जगतमें प्रशंसाकूं प्राप्त होय है मरणकरि उत्तम देवनमें उपजै है अर मनुष्य पर्यायमें उत्तमपना भी येही है जो घोर आपदा वेदना आवतैं हू सुमेरुकी ज्यों अचल होय है अर समुद्रकी ज्यों क्षोभरहित होय है अर भो धर्मके आराधक! तुम अति घोर वेदनाके आवनैकरि आकुल मत होहू इस कलेव-रतैं भिन्न अपना ज्ञायकभावकूं अनुभव करो अर वेदना तीव्र आवतैं पूर्वैं भये वेदनाके जीतनेवाले उत्तम पुरुषनिका ध्यान करो। अहो आत्मन्! पूर्वैं जो साधुपुरुष सिंह व्याघ्रादि दुष्ट जीवनिकी डाढ़निकरि चाबे हुए हू आराधनामें लीन होते भये तुम्हारे कहा वेदना है।

बहुरि अति कोमल अंगका धारक अर तत्कालका दीक्षित ऐसे सुकुमाल स्वामीकूं स्यालनी अपना दोय बच्चनि करि सहित तीनरात्रि तीनदिन पर्यंत पगनिनैं भक्षण करते लगी सो उदर विदारा तदि मरण किया ऐसा घोरउपसर्गकूं सहकरि परम धैर्य-धारण करि उत्तम अर्थ साध्या तुम्हारे कहा वेदना है। बहुरि

सुकोशल स्वामीकी माताका जीव जो व्याघ्री ताकरि भक्षण किया हुवा उत्तमार्थ तैं नाहीं चिगे तुम्हारे कहा वेदना है। बहुरि भगवान गजकुमार स्वामीके समस्त अंगमें दुष्ट वैरी कीले ठोंक दिये तो हू उत्तमार्थ साध्या तुम्हारे कहा वेदना है। बहुरि सनत्कुमार नाम महामुनिके देहमें खाज, ज्वर, काश, शोष, तीव्र क्षुधाकी वेदना तथा वमन नेत्रशूल उदरशूलादिक अनेक रोग उपजे तिनकी घोर वेदनाकूं सौवर्ष पर्यंत साम्यभावतैं भोगी धैर्य नाहीं छांड्या तुम्हारे कहा वेदना है। बहुरि राणिकपुत्र गंगा नदीमें नावमें डूब गये परन्तु आराधनातैं नाहीं चिगे तुम्हारे कहा वेदना है। बहुरि भद्रबाहुनामा मुनिके तीव्रक्षुधाका रोग उपज्या तो हू अवमौदर्य नाम तपकी प्रतिज्ञा करि आराधनातैं नाहीं चिगे तुम्हारे कहा वेदना है। बहुरि ललितघटादि नामकरि प्रसिद्ध बत्तीस मुनि कौसांबीमें नदीके प्रवाहकरि बहे हुए हू आराधना मरण किया तुम्हारे कहा वेदना है। बहुरि चंपानगरीके बाह्य गंगाके तटविषैं धर्मघोष नाम मुनि एक महीनाका उपवासकी प्रतिज्ञाकरि तीव्र तृषावेदनातैं प्राण त्यागे परन्तु आराधनातैं नाहीं चिगे तुम्हारे कहा वेदना है। पूर्व जन्मका वैरी देव अपनी विक्रियाकरि शीतकी घोर वेदना करि व्याप्त किया हू श्रीदत्त नाम मुनि क्लेशरहित हुवा उत्तमार्थकूं सिद्ध किया तुम्हारे कहा वेदना है। बहुरि वृषभसेन नाम मुनि उष्णशिलातल अर उष्ण पवन अर उष्ण सूर्यका घोर आताप होते हू आराधनाकूं धारण करी तुम्हारे कहा वेदना है। बहुरि रोहेडनगरमें अग्नि नाम राजपुत्र क्रौंच नाम वैरीकरि शक्ति नाम आयुधतैं हत्या हू आराधना धारण करी तुम्हारे कहा वेदना

है। बहुरि काकंदी नाम नगरीविषैं अभयघोष नाम मुनिका समस्त अंगकूं चंडवेगनाम वैरी छेद्या तो हू घोर वेदनामें उत्तमार्थ साध्या तुम्हारे कहा वेदना है विद्युच्चर नाम चोर डांस अर मच्छरनिकरि भक्षण किया हुआ हू संक्लेशरहित मरणतैं उत्तमार्थ साध्या तुम्हारे कहा वेदना है। बहुरि चिलातिपुत्र नाम मुनिकूं पूर्वला वैरी शस्त्रनिकरि घात्या पाछैं घावनिमें स्थूल कीडे बहुत प्रवेश करि चलनीवत् छिद्र किये तो हू समभावनितैं प्रचुर-वेदनासहित उत्तमार्थ साध्या तुम्हारे कहा वेदना है। बहुरि दण्ड नामा मुनिकूं यमुनावक्र पूर्वला बैरी बाणनिकरि वेध्या ताकी घोर वेदना होते हू समभावनितैं आराधनाकूं प्राप्त भया तुम्हारे कहा वेदना है। बहुरि कुम्भकारकट नाम नगरमें अभिनन्दनादि पांचसै मुनि घाणीनिमें पेले हुए हू साम्यभावतैं नाहीं चिगे तुम्हारे कहा वेदना है। बहुरि चाणिक्यनामा मुनिकूं गायनिके रहनेके घरमें सुबन्ध नाम वैरी अग्नि लगाय दग्ध किये परन्तु प्रायोपगमन सन्यासतैं नाहीं चले तुम्हारे कहा वेदना है। कुलालनाम ग्रामका बहिर्भागविषैं वृषभसेन नाम मुनि संघसहितकूं रिष्टाम नाम वैरी अग्नि लगाय दग्ध किये ते परम वीतरागतातैं आराधनाकूं प्राप्त भये तुम्हारे कहा वेदना है। भो आराधनाका आराधक हो, हृदयमें चिंतवन करो एते मुनि असहाय एकाकी इलाज प्रतीकाररहित वैयावृत्त्यरहित हू परम धैर्य धारणकरि कायरता रहित समभावनितैं घोर उपसर्गसहित आराधना साधी इहां तुम्हारे कहा उपसर्ग है समस्त साधर्मी जन वैयावृत्त्यमें तत्पर हैं तो हू तुम कैसें क्लेशित हो रहे हो ये सब बड़े-बड़े पुरुष भये

तिनके कोऊ सहाई नाहीं था अर कोऊ वैयावृत्त्य करनेवाला नाहीं था असहाय था तिन ऊपरि दुष्ट वैरी घोर उपसर्ग किये अग्निमें दग्ध किये पर्वततैं पटक शस्त्रनितैं विदारे तथा तिर्यंचनिकरि विदारे गये, खाए गये, जलमें डुबोये गये, कुवचनके घोर उपद्रव किये तो हू साम्यभाव नाहीं तज्या तुम्हारे उपसर्ग नाहीं आया अर धर्मके धारक करुणावान धैर्यके धारक परमहितोपदेशमें उद्यमी समस्त परिकर हाजिर हैं अब आकुलताका कारण नाहीं तथा शीत उष्ण पवन वर्षादिकनिका उपद्रव नाहीं ऐसे अवसरमें हू कैसें शिथिल भए हो अर जो तुम्हारे रोगजनित अशक्तता जनित क्षुधा तृषादिक वेदना भई है तिसमें परिणाम मत लगावो साधर्मी जनके मुखतैं उच्चारण किये जिनेन्द्रका वचनरूप अमृत का पान करो तातैं समस्त वेदनारूप विषका अभाव होय परिणाम उज्ज्वल होय परमधर्ममें उत्साह होय पापकी निर्जरा होय कायरताका अभाव होय है अर वेदना आवतें चतुर्गतिनिमें जो दुःख भोगे तिनकूं चिंतवन करो इस संसारमें परिभ्रमण करता जीव कौन कौन वेदना नाहीं भोगी अनेक वार क्षुधा वेदनातैं तृषावेदनातैं मरा है अनेकवार अग्निमें दग्धि होय मरे, जलमें डूबि अनेक बार मरे, विषभक्षणतैं मरे, अनेक बार सिंह सर्प श्वानादिकनिकरि मारे गए ही शिखरतैं पड़िपड़ि मरे हो शस्त्रनिके घाततैं मरे हो अब कहा दुःख है अर जो दुःख नरक तिर्यंचगतिमें दीर्घकाल भोग्या है तिनकूं ज्ञानी भगवान जाने हैं इहां अब किंचित् वेदना अति अल्पकाल आई तातैं धैर्य मत छाड़ो जो घोर वेदना कर्मनिके वश होय चारों गतिनिमें भोगी है तिनकूं

कोटि जिह्वानिकरि असंख्यातकालपर्यंत कहनेकूं समर्थ नाहीं नरकमें जो दुःखकी सामग्री है तिनकी जात इस लोकमें है नाहीं कैसे दिखाई जाय भगवान केवलज्ञानी ही जानैं हैं जहां पंचम नरकताईंका उष्ण बिलनिमें उष्णता तो ऐसी है जो सुमेरु-परिमाण लोहेका गोला छोड़िये तो भूमि ऊपरि पहुँचता पहुँचता पाणी होय बहि जाय इहां तुम्हारे रोगजनित कहा उष्णता है, अर पंचम नरकका तीसरा भाग अर छठी सप्तमी पृथ्वीका बिलनिमें ऐसा शीत है जो सुमेरुप्रमाण गोलाका शीततैं खण्ड खण्ड हो जाय ऐसी वेदना यो जीव चिरकालपर्यंत भोगी है यहां मनुष्य-जन्ममें ज्वरादिक रोग जनित तथा तृषातैं उपजी तथा ग्रीष्मकालतैं उपजी उष्णवेदना तथा शीतज्वरादिकतैं उपजी वा शीतकालतैं उपजी शीतवेदना केती है अल्पकाल रहैगी सो धर्मके धारक ममत्वके त्यागी तिनकूं समभावनितैं नाहीं भोगनी कहा ? यो अवसर समभावनितैं परीसह सहनेको है अर क्लेशभाव करोगे तो कर्मका उदय छोड़नेका नाहीं कहां हू भोगोगे अर अपघाता-दिकतैं मरोगे तो नरकनिमें अनंतगुणी असंख्यातकाल वेदना भोगोगे अर पापके उदयतैं नारकीनिकै स्वभावहीतैं शरीरमें कोट्यां रोग सासता है। नरककी भूमिका स्पर्श ही कोटि बिच्छूनिका डंकतैं अधिक वेदना करनेवाली है नारकीनिके क्षुधा वेदना ऐसी है जो समस्त पृथ्वीके अन्नादिक भक्षण किए उपशम होय नाहीं अर एक कणमात्र मिलै नाहीं अर तृषावेदना ऐसी है जो समस्त समुद्रका जल पिये हू बुझै नाहीं अर एक बूंद मिलै नाहीं अर नरकधराकी पहली पटलकी महा कड़ी दुर्गंध मृत्तिका

ऐसी है जो एक कण इस मनुष्यलोकमें आ जाय तो आध आध कोश पर्यंतके पंचेंद्री मनुष्य तिर्यंच दुर्गंधतैं मरण करि जांय दूजा पटलकीतैं एक कोशका, ऐसैं पटल पटल प्रति आध आध कोश बधता सप्तम पृथ्वीका गुणचासमां पटलकी मृत्तिकामें ऐसी दुर्गंध है जो कण यहां आ जाय तो साढ़ा चौईस कोशतांई का पंचेन्द्री मनुष्य तिर्यंच दुर्गंधकरि प्राणरहित हो जाय अर ऐसा ही स्वरूप शब्दके अनुभवनिका दुःख वचनके अगोचर केवली ही जानैं हैं ऐसे दुःखनिकूं बहुत आरम्भ बहुपरिग्रहके प्रभावतैं सप्तव्यसन सेवनतैं अभक्ष्यनिके भक्षणतैं हिंसादिक पंचपापनिमें तीव्ररागतैं निर्माल्यभक्षणतैं घोर दुःखनिका पात्र नारकी होय है नारकीनिका मानसिक दुःख अपार है नारकीनिकै शरीर दुःख, क्षेत्रजनित दुःख, परस्पर कीये दुःख, असुरनिकरि उपजाये दुःख वचनके कहनेके गोचर नाहीं हैं सो चिंतवन करो अर नरकमें आयु पूर्ण भये बिना मरण नाहीं अर तिर्यंचनिके अर रोगी दरिद्री मनुष्यनिके पापका उदयतैं जे तीव्र दुःख होय हैं सो प्रत्यक्ष देखो ही हो वर्णन कहा करिये पराधीन तिर्यंचगतिके दुःख वचनरहितपना अर तिनके क्षुधाका तृषाका शीतका उष्णताका ताड़नाका अतिभार लादनेका नासिकाछेदन रज्जूनिकरि बांधनेका घोर दुःख है अर स्वाधीन खान पान चालना बैठना उठना जिनके नाहीं अर कोऊकूं सुखदुःखस्वरूप अभिप्राय जनाय कुछ उपाय उद्यम करना सो नाहीं इसके घर रहूँ इसके नाहीं रहूँ सो अपने आधीन नाहीं चांडाल म्लेच्छनिर्दयीनिके आधीन हू रहना अर ब्राह्मणादिकनिके आधीन होना कोऊ नाना

मारनिकरि मारै कोऊ आहार नाहीं देवै अर अल्प देवै अर भार बधता वहावै तो कोऊ राजादिकनिकै निकट जाय पुकार करनेका सामर्थ्य नाहीं कोऊ दयाकरि रक्षा कर सकै नाहीं नासिका गलि जाय, स्कंध गलि जाय, पीठ कट जाय, हजारां कीडा पड़ जांय तो हू पाषाणादिकनिका कर्कश भार लादना अर भार नाहीं बह्या जाय, चाल्या नाहीं जाय तदि मर्मस्थाननिमें चामड़ीनिका तथा लोहमय तीक्ष्ण आरनिका तथा लाठी लठनिका घात अर दुर्वचननि करि बड़ी जबरीतैं चलावना नासिकादि मर्मस्थाननिमें ऐसा जेवड़ा सांकल चाममय नाड़ीनिकरि बांधै जो हलन चलन नाहीं कर सकै ऐसे तिर्यंचगतिके प्रत्यक्ष दुःख देखो हो तुम्हारै कहा दुःख है। जलचर नभचर वनचर जीव परस्पर भक्षण करैं हैं छिपे हुएनिकूं हेरि हेरि निर्बलकूं सबल भक्षण करैं हैं शिकारी भील धीवर वागुरा देखत प्रमाण जहां जांय तहांतैं पकड़ि लावैं हैं, मारैं हैं, चीरैं हैं, विदारैं हैं, रांधैं हैं, भुलसैं हैं कौन दया करै पूर्व जन्ममें दयाधर्म धारया नाहीं धनका लोभी होय अनेक झूठ कपट छल कीया। ताका फल तिर्यंचगतिमें उदय आवै है सो अब चिंतवन करो अर मनुष्यनिमें इष्टका घोर दुःख है अर दुष्टनिका संयोगका अर निर्धन होनेका पराधीन वंदीगृहमें पड़नेका अपमान होनेका मारन ताड़न त्रासन भोगनेका अर रोगनिकी घोर वेदनाका अर जराकरि जर्जरा होनेका अर आंधा बहिरा गूंगा लूला पांगला होनेका, क्षुधा तृषा भोगनेका शीत उष्ण आतापादि भोगनेका, नीचकुल नीच क्षेत्रादिकमें उपजनेका, अंग उपांग गल जानेका, सिड़जानेका, वांछित आहार नाहीं मिलनेका घोर दुःख

भोगे तिनकूं चिंतवन करो यहां तुम्हारे कहा दुःख है। बहुरि नरक तिर्यंचगतिके दुःख तो अपार हैं परन्तु पापके उदयतैं मनुष्यगतिमें भी मानसिक दुःख हू अज्ञान भावतैं कषाय अभिमानके वश पड़्या जीवके अपार हैं कर्म बड़ा बलवान है जिनका वचन हू मस्तकमें तीक्ष्णशूल समान वेदना करै ऐसे महा दुष्ट निर्दयी महावक्र अन्यायमार्गी तिनकै शामिल कर्म उपजाय दे तिनकी रात दिन त्रास भोगना भयवान रहना अर जे उपकारी इष्ट प्राणनि समान जिनके संगम करि अपना जीवन सफल मानै था ऐसे स्त्री पुत्र मित्र स्वामी सेवकादिकनिका वियोग होनेका बाल्य अवस्थामें पुत्रीका विधवा होनेका तथा आजीविका भ्रष्ट होनेका धन लुटि जानेका अति निर्धन होनेका उदर भर भोजन नाहीं मिलनेका दुष्ट स्त्री कपूत पुत्र पावनेका बांधवनिमें तिरस्कार होनेका गुणज्ञस्वामीके वियोग होनेका तथा अपना अपवाद होने कलंक चढ़ानेका बड़ा दुःख भोगे है यातैं हे धीर ! यहां सन्यासके अवसरमें किंचित्मात्र उपजी कहा वेदना है कर्मके उदयतैं मनुष्यजन्ममें अग्निमें दग्ध हो जाय है, सिंह व्याघ्र सर्प दुष्ट गजादिककरि भक्षण करिये है हस्त पाद कर्ण नाशिका छेदै है शूली चढ़ावै हैं नेत्र पाड़ै है जिह्वा उपाड़ै है पापकर्मका उदयतैं मनुष्य जन्महूमें घोर दुःख भोगे है तथा दुष्ट वैरीनिके प्रयोगतैं दंडनिकरि वेदनकरि मुसंडीनिकरि मुद्गरनिकरि चामठनिकरि लोहडीनिकरि मारे गये हो शस्त्रनतैं विदारे गये लात घमूका ठोकरनिकी मार पादवाड़निकी मार तथा दलना वालना सब पराधीन होय भोगे हैं जो स्वाधीन होय कर्मके उदयजनित त्रासकूं

साम्यभावनितैं एकबार भोगै तो दुःखनिका पात्र नाहीं होय समस्त रोग अनेकबार भोगे है अब तुम्हारे ये रोग शीघ्र निर्जरैगा अर रोग विना ऐसा जीर्ण दुष्ट कलेवरतैं छूटना नाहीं होय देहतैं ममता नाहीं घटे धर्ममें प्रीति नाहीं बधै तातैं रोगजनित वेदनाकूं हूँ उपकार करनेवाली जानि हर्ष ही करो। हे धीर जो दुःख तुम संसारमें भोगे हैं तिनके अनंतवें भाग हू तुम्हारे दुःख नाहीं है अब इस अवसरमें कायर होय धर्मकूं मलीन कैसैं करो हो जो तुम कर्मके वश होय चतुर्गतिमें घोर वेदना भोगी तो इहां धर्मरूप तप व्रत संयम धारण करते वेदना भोगनेका कहा भय करो हो कर्मके वश होय जो वेदना अनंतवार भोगी सो वेदना धर्मकी रक्षाके अर्थि जो एक बार समभावनितैं सहो तो बड़ी निर्जरा हो जाय, भो धीर तुम भय रहित होहू वा भयसहित होहू इलाज करो वा मत करो प्रबल उदय आया कर्म तो नाहीं रुकैगा इलाज हू कर्मका मंद उदय भये कार्य करै है पापका प्रबल उदय होतैं अति शक्तिवान हू औषधि बहुत यत्नतैं युक्त किया हुवा हू वेदनाका नाश नाहीं करि सकै है जे असंयमी योग्य अयोग्य समस्त भक्षण करनेवाला त्यागव्रतरहित रात्रि दिन समस्त प्रतीकार करे तो हू कर्मके प्रबल उदयतैं रोगकरि रहित नाहीं होय तो तुम संयम व्रत सहित अयोग्यका त्यागी कैसैं आकुल भये प्रतीकार वांछो हो इहां राजा समान सामग्री अन्य कौनकै होय अर जिनकैं भक्ष्य अभक्ष्य, योग्य अयोग्यका विचार नाहीं, हिंसाके कारण महान आरम्भ करनेका जिनके भय नाहीं दया नाहीं अर बड़ेबड़े धन्वंतरि सारिखे अनेक वैद्य अर अनेक ही औषधि होय तो हू

कर्मका उदयजनित वेदनाकूं उपशम नाहीं करै तदि त्यागी व्रती तुम अर दयावान् व्रती वैयावृत्य करनेवाले कैसैं तुम्हारा रोग हरैंगे समस्त वेदनाका उपशम करनेवाला जिनेन्द्रका वचनरूप औषध ग्रहण करि परम साम्यभावरूप अभेद्य चक्रकूं धारण करो पूर्वकर्मका उदयरूप रसकूं समभावनितै भोगो ज्यूं अशुभ की निर्जरा हो जाय अर नवीनकर्मका बन्ध नाहीं होय मरण तो एक पर्यायमें एकबार होना ही है परन्तु संयमसहित मरणका अवसर तो इहां प्राप्त भया है तातैं बड़ा हर्ष सहित मरण करो जातैं अनेक जन्म धारि धारि अनेक मरण नाहीं करो अर अति अल्प जीवनमें धर्म छांडि आर्तपरिणामी मति होहू अशुभकर्मके उदयके रोकनेकूं इंद्रादिकसहित समस्त देव समर्थ नाहीं ताहि ये अल्पशक्ति-धारी कैसैं रोकेंगे जिस वृक्षके भंग करनेकूं गजेंद्र समर्थ नाहीं तिस वृक्षकूं दीन निर्बल सूसा कैसे भंग करै ? जिस नदीके प्रबल प्रवाहमें महानदेहका धारक अर महा बलवान हस्ती बहता चल्या जाय तिस प्रवाहमें सूसाका बहनेका कहा आश्चर्य, जाकर्मका उदयकूं तीर्थंकर चक्रवर्ति नारायणबल-भद्र अर देवनिसहित इंद्रहू रोकनेकूं समर्थ नाहीं तिसकर्मकूं अन्य कोऊ रोकनेकूं समर्थ है कहा ? तातैं कर्मके उदयकूं अरोक जानि असाताका उदयमे क्लेशरूप मत होहू शूरपना ग्रहण करो अर साम्यभावतैं कर्मकी निर्जरा करो अर कर्मके उदयतैं दुःखित होहुगे रोवोगे विलाप करोगे दीनता करोगे तो वेदना नाहीं मिटैगी अर नाहीं घटैगी वेदना वर्धैहीगी धर्म अर व्रत संयम यश नष्ट होय आर्तध्यानतैं घोर दुःखके भोगनेवाले तिर्यंच जाय उपजोगे यामैं

संशय नाहीं है जो असाताका उदयमें सुखके अर्थि रोवना है विलाप करना है, दीनता भाषण करना है सो तेलके अर्थ वालू रेतका पेलना है तथा घृतके निमित्त जलकूं विलोवना है तथा तंदुलके निमित्त परालकूं खोदना है सो केवल खेदके निमित्त है आगानै तीव्रबंधनके निमित्त है। बहुरि जैसैं कोऊ पुरुष अज्ञान-भावनातैं पूर्व अवस्थामें किसीसौं धन करज लेय भोग्या अब करार पूर्ण भये आय मांगै तदि न्यायमार्गी तो हर्ष मानि ऋण चुकायकरि अपना भार ज्यों उतारि सुखी होय तैसैं धर्मके धारक पुरुष तो कर्मके उदयतैं आया रोग दरिद्र उपसर्ग परीषह तिनके भोगनेतैं ऋण दूर होनेकी ज्यों मानि सुखी होय हैं जो अवार हमारे पूर्वकृतकर्म उदय आया है भला अवसरमें आया अवार हमारे ज्ञानरूप प्रचुर धन है भगवान पंचपरमेष्ठीका शरण है साधर्मीनिका बड़ा सहाय है सो सहज ऋणका भार उतारि निराकुल सुखतैं प्राप्त होस्यूं अपना कषायादि भावनितैं उपजाया कर्म ऐसा बलवान है जो ऋद्धिका विद्याका बंधुजनका धनसंपदा का शरीरका मित्रनिका देवदानवनिका सहायका बलकूं आधी क्षणमें नष्ट करै है कर्मरूप ऋण छूटै नाहीं। बहुरि रोग शोक जीवन मरण अन्य किसीहीके नाहीं उदय आया होय अर तुम्हारे ही उदय आया होय तो दुःख करना उचित है क्षुधा तृषा रोग वियोग जन्म जरा मरण कौनके उदयके अवसरमें त्रास नाहीं देवैं हैं समस्त संसारी जीवनिके उदय आवैं हैं मरण समस्तकूं प्राप्त होय है चारूंगतिनिमें कर्मका उदय आवै है तातैं जो पूर्व अवस्थामें बंध किया ताका उदयमें आकुलता त्यागि परम धैर्य

धारणकरि समभावनितैं कर्मकाविजय करो समस्त दुःखनिकाविजय करनेका अवसरमें अब काहेका विषाद करोहो, सम्यग्दृष्टी तो आजन्मतैं समाधिमरणही की वांछाकरै है सो योअवसर महा कठिन प्राप्त भयो है समस्त दुःखनिका नाशका अवसर कठिनतातैं पाया है उत्साहका अवसरमें विषाद करना उचित नाहीं यो अवसर चूक्यां फिर अनंतकालमें नाहीं मिलैगो। बहुरि अरहंत सिद्ध आचार्यादिक भगवान परमेष्ठी अर समस्त साधर्मीनिकी साखतैं जो त्याग संयम ग्रहण किया तिस त्यागका भंग करनेतैं पंचपरमेष्ठीनितैं पराँमुखता भई समस्त धर्मको लोप भयो धर्मके दूषण लगायो धर्मका मार्गकी विराधना करी अपना दोऊलोक नष्ट किया अर मरण तो अवश्य होयहीगा मरण अर दुःखको व्रत संयम भंग किये हू नाहीं दूर होयगा जो कार्य राजकूं अर पंचोंकूं साखी करि करै अर फेर वाकूं लोपै तो तीव्र दंडने महाअपराधने प्राप्तहोय अर समस्तलोकमें धिक्कार अर तिरस्कारकूं प्राप्त होय है अर परलोकमें अनन्तकाल पर्यंत अनंत जन्ममरण रोग शोक वियोग होनेका पात्र होय है जो त्याग करि भंग करना है सो महा अपराध है जो त्याग नाहीं करै सो तो अनादिका संसारी है ही वाने तो त्याग संयम व्रत पाया ही नाहीं अर जो त्याग करि व्रत संयम-सैन्यास विगाड़े है ताकै धर्मवासना अनंतानंतकालमें दुर्लभ है। बहुरि आहारकी गृद्धिता है सो तो अति निंद्य है जे उत्तम पुरुष हैं ते तो क्षुधा वेदनाकूं प्राणापहारिणी जानि क्षुधाका इलाज मात्र आहार करैं हैं सो हू बड़ी लज्जाहै आहारकी कथा हू दुर्ध्यानकूं करनेवाली जानि

त्याग करैं हैं यो हाड मांसमय देह आहार विना रहै नाहीं अर देह विना तप व्रत संयमरूप रत्नत्रयमार्ग पलै नाहीं तातैं रत्नत्रयका पालनकै अर्थि रस नीरस जैसा कर्म विधि मिलावै तैसा निर्दोष उज्ज्वल भोजनतैं उदर पूर्ण करै है रसना इन्द्रियकी लंपटताने कदाचित् प्राप्त नाहीं होय है, मनुष्यजन्मकी सफलता तो आहारका लंपटताके जीतनेतैं ही है तिर्यंचगतिमें तो आहारकी लंपटतातैं बलवान होय सो निर्बलनै तथा परस्पर भक्षण करै है आहारकी गृद्धितातैं माता पुत्रकूं भक्षण करै है मनुष्य गतिमें हू नीच उच्च जातिका भेद समस्त आचारका भेद भोजनके निमित्ततैं ही है इसलोकमें जेता निंद्य आचरण हैं तितना भोजनका विचाररहितकै ही है अर भोजनमें जिनके लंपटीपना नाहीं ते उज्ज्वल हैं वांछारहित हैं ते उत्तम हैं अर नीच उच्च जाति कुलका भेद भी भोजनके निमित्त तैं ही है आहारका लंपटी घोर आरम्भ करै है बाग बगीचेनिमें एक अपने जीमनेके अर्थि कोट्यां त्रस जीवनिकूं मारै है महापापकी अनुमोदना करै है अभक्ष्य भक्षण करैहै असत्य वचन हिंसादिक महापापके वचन आहारका लंपटो बोले है आहारका लंपटी सुन्दर भोजन वास्ते चोरी करै है कुशील सेवन करै है भोजनका लंपटी धन परिग्रहमें महामूर्छावान होय है अन्य लोकनिकूं मारि झूठ बोलैं चोरी करकै हू मिष्ठ भोजनवास्तै धन संग्रह करै है मिष्ठ भोजन वास्ते क्रोध करै है मान करै है कपट छल करै है चोरो करैं है कुलका क्रम नष्ट करै है नीच जातिके शामिल हो जाय है नीच कुलके मद्यमांसके भक्षकनिका दासपना अंगीकार करै है भोजनका लंपटी निर्लज्ज होय

जाय है भोजनका लंपटी अपना पदस्थ उच्चता जाति कुल आचार नाहीं देखै है स्वादिष्ट भोजन देखि मन बिगाड दे है बहुत धनका धनी अर अपने गृहमें सुन्दर भोजन नित्य मिलता हू नीचनिकै रंकनिकै शूद्रनिकै म्लेच्छ मुसलमानकै घर हू भोजन जाय करै है भोजनका लोलुपी ग्राम नगरमें विकता नीच वृत्तिकरि कीया अर समस्त मुसलमानादिक जिनकूं स्पर्श कर जाय बेच जाय ऐसे अधम भोजनकूं खरीद ल्यावै है भोजनका लंपटी तपश्चरण ज्ञानाभ्यास श्रद्धान आचरण समस्त शील संयमकूं दूरतैं ही छांडै है अपना अपमान होना नाहीं देखै है अभक्ष्यमें उच्छिष्टमें मांसादिकनिमें आसक्त हो जाय है अयोग्य आचरणकरि अपने कुलका क्रमकूं नष्ट करै है मलीन करै है जिह्वा इन्द्रियकी लंपटता कहा कहा अनर्थ नाहीं करै ? शाधना देखना तो आहारके लंपटीकै है ही नाहीं अर ये आहार कैसा है कहांतैं आया है ऐसा विचार आहारका लंपटोकै नाहीं रहे है जो आहारका लपटी है ताकी तीक्ष्णबुद्धि हू मन्द हो जाय है बुद्धि विपरीत हो जाय सुमार्ग छांडि कुमार्गमें प्रवीण हो जाय है धर्मतैं पराङ्मुख हो जाय है सो देखिये है केई पुरुष अनेक शास्त्र पढ्या है वचनादिकरि अनेक जीवनिकूं शुभमार्गका उपदेश करै है तथा बहुत कालतैं सिद्धान्त श्रवण करै है तो तिनकै सत्यार्थ श्रद्धान ज्ञान आचरण नाहीं होय है विपरीत मार्गतैं नाहीं छूटै है सो समस्त अन्याय अभक्ष्य भोजन करनेका फल है मुनीश्वरनिकै तो प्रधान आहारकी शुद्धता ही है अर श्रावककै हू समस्त बुद्धिकी शुद्धताका कारण एक भोजनकी शुद्धता ही जानो आहारका लंपटीकै योग्य

का, अयोग्यका शोधनेका, नेत्रनितैं देखनेका थिरपना नाहीं होय धैर्यरहित शीघ्रतातैं भक्षण ही करै है जिह्वा का लंपटी मान सन्मान सत्कार अपना उच्च पदस्थता नाहीं देखता मिष्ट भोजन मिलै वहां परम निधीनिका लाभ गिनै है भोजनका लंपटी मिष्ट भोजन देने-वालेके आधीन होय माताका पिताका स्वामीका गुरुका उपकार लोपि अपकार ग्रहण करै है भोजनके लंपटीका विनय अपना स्त्रीपुत्र हू नाहीं करै है भोजनका लंपटीकै धर्मका श्रद्धान भी नाहीं होय है जातैं सम्यग्दृष्टी आत्मीक सुखकूं सुख जानै ताकै तो इन्द्रियनिका विषयजनित सुखमें अत्यन्त अरुचि होय है जाकूं सुन्दर भोजन ही सुख दीख्या सो तो विपरीत ज्ञानी मिथ्यादृष्टी ही है जिह्वाका लंपटी है सो महाअभिमानी हू उच्चकुली हू नीच-निका चाटुकार स्तवन करै है तथा भोजनका लंपटी दीन हुवा परका मुख देखता फिरै है याचना करै है, नाहीं करनेयोग्य कर्म करै है एक भोजनकी चाहतैं शालिमच्छ सप्तम नरक जाय है अर अनेक जन्तु भक्षणकरि महामच्छ हू सप्तम नरक जाय है देखहु सुभौम नाम चक्रवर्ती देवोपनीत भी दशांग भोगनितैं तृप्त नाहीं भया अर कोऊ विदेशीका लाया फलके रसकी गृद्धताकरि कुटुम्बसहित समुद्रमें डूबि सप्तम नरक गया औरनिकी कहा कथा अर ऐसा जिनेन्द्रका वचनरूप अमृतपान करनेतैं हू जो तुम्हारै आहारमें, रसवान भोजनमें गृद्धता नाहीं नष्ट भई तो जानिये है तुम्हारै अनन्तकाल असंख्यातकाल संसारमें परिभ्रमण करना अर क्षुधा तृषा रोग वियोग जन्म मरण अनन्त बार भोगना है अर जो तुम या विचारो हो जो मैं भोजनपान कर

तृषाकूं मेटि तृप्त होऊंगा सो कदाचित् आहारकरि तृप्तता नाहीं होयगी क्षुधा तृषाकी वेदना तो असाता नाम कर्मके नाशतैं मिटैगी आहार करनेतैं नाहीं घटैगी आहारतैं तो अधिक गृद्धिता वधैगी जैसैं अग्नि ईन्धन करि तृप्त नाहीं होय अर समुद्र नदीनि-करि तृप्त नाहीं होय तैसैं आहारतैं तृप्तता नाहीं होयगी, लालसा अधिक अधिक बधैगी लाभांतरायके अत्यन्त क्षयोपशमतैं उपज्या अत्यन्त बल वीर्य तेज कांतिके करनेवाला मानसिक आहार असंख्यातकालपर्यन्त स्वर्गमें इन्द्र अहमिन्द्रका सुख भोग्या तो हू क्षुधा वेदनाकी अभावरूप तृप्तता नाहीं भई तथा चक्रवर्ती नारायण बलभद्र प्रतिनारायण भोगभूमिके मनुष्यादि लाभांतराय भोगान्तरायका अत्यन्तक्षयोपशमत प्राप्त भया दिव्य आहार ताकूं बहुतकाल भोग करकै हू क्षुधा वेदना नाहीं दूर करी तो तुम्हारे किंचित् मात्र अन्नादिक भक्षण करि कैसैं तृप्तता होयगी तातैं धैर्य धारण करि आहारकी बांछाके जीतनेमें यत्न करो अबआहार केताक भक्षण करोगे अर याका स्वाद केतेक काल है जिह्वाका स्पर्श मात्र स्वाद है गिल गयां पाछैं स्वाद नाहीं पहले स्वाद नाहीं केवल अधिक अधिक तृष्णा बधावै है समस्त प्रकारके आहार भक्षण तुम अनादितैं किये हैं तदि तृप्ति नाहीं भई तो अब अन्तकालमें कंठगतप्राणके समय किंचित् आहारतैं तृप्ति कैसैं होयगी तातैं दृढ़ता धारणकरि अपना आत्महितकूं करो अर ऐसा कोऊ आहार भी लोकमें अपूर्व नाहीं है जाकूं तुम नाहीं भोग्या जो समस्त समुद्रका जलपीये तृप्त नाहीं भया तो ओसको बूंदको चाटनेकरि कैसैं तृप्त होहुगे अर पूर्वकालमें हू रात्रिदिन आहारकै

निमित्त ही दुःखित हुआ पर्याय व्यतीत करी है देखो बहुतकाल तो आहारका स्वादकी वांछा रहै सो दुःख, अर आहारकी विधि मिलावनेकूं सेवा वणिज इत्यादिककरि धन उपार्जन करनेमें दुख-दीनता करतां पराधीन रहा हू दुःख, धन खरच होता दीखै तामें दुःख, स्त्रीपुत्रादिक आहारका विधि मिलावै तिनकै आधीन होने का दुःख तथा आप बहुतकाल पर्यंत बचाना आरम्भ करना अर भोजन तय्यार नाहीं होय तेतैं वांछासहित रहना सो हू दुःख, कोऊ रसादिक सामग्री नाहीं तो लावनेका दुःख, अपनी इच्छा-प्रमाण नाहीं मिलै तो दुःख, अर मिष्टभोजन भक्षण करते खाटा की लालसा फिर चिरपराकी लालसा फिर मीठाकी लालसा इत्या-दिक बारंबार अनेक लालसा जहां नाहीं घटै तहां सुख कहां ? अर जिह्वाके स्पर्शमात्र हुआ अर निगलै है, श्रेष्ठ मनवांछित हू आहार एक क्षणमें जिह्वाका मूलकूं उलंघन करै है एक जिह्वाका अग्र ही स्वाद जानैहै, जिह्वा नाहींभिडै तितनैस्वाद नाहीं अरजिह्वातैं पार उतरया कि स्वाद जिह्वा केनाहीं एक निमेषमात्र आहारका स्पर्श का स्वाद है तिसके निमित्त घोर दुर्ध्यान करै है महासंकट भोगै है अर भोजन करकै हू वांछारहित नाहीं होय है तातैं ऐसा दुःखका करनेवाला आहारके त्यागका अवसर आया इस अवसरकूं महा दुर्लभ अक्षय निधानका लाभ समान जानो आहारके स्वादमें अति विरक्त होहु यहां जो दृढ परिणामनितैं आहारमें विरक्त होहुगे तो स्वर्गलोकमें जाय उपजोगे जहां हजारां वर्षताईं क्षुधावेदना नाहीं उपजैगी जहां जितना सागर प्रमाण आयु तितना हजार वर्ष पर्यंत तो भोजनकी इच्छा ही नाहीं उपजै अर पाछें किंचित् इच्छा

उपजै तदि कंठनिमें अमृत परमाणु ऐसे द्रवैं सो एक क्षणमात्रमें इच्छाको अभाव हो जाय सो समस्त प्रभाव असंख्यातवर्ष पर्यन्त क्षुधावेदना नष्ट होनेरूप पूर्वजन्ममें आहारकी लालसा छाँडि अनशनतप अवमौदर्यतप रसपरित्यागतपके करनेका है। ये तिर्यंच मनुष्यगतिमें जो क्षुधा तृषा रोगादिकका घोर दुःख अनंत कालतैं भोगे हैं सो समस्त आहारकी लम्पटताका प्रभाव है जिन-जिन आहारकी लंपटता छांडी ते क्षुधादिवेदना रहित कवलाहार-रहित दिव्य देव होय हैं जो अब इस वेदनातैं दुःखित हो तो आहारके त्यागमें ही अचल प्रवर्तो जो अल्पकालमें वेदना रहित कल्पवासी देवनिमें जाय उपजो अर आहार भक्षण करने करिकै तो वेदनारहित नाहीं होवोगे। बहुरि समस्त दुःखनिका मूल कारण इस जीवके एक शरीरका ममत्व है याकी ममतातैं याकी रक्षाके निमित्ततैं ही अनंतानंतकालपर्यंत दुःख भोगे हैं जेते क्षुधा तृषा रोगादिक परीषहनिका दुःख है ते समस्त एकदेहकी ममतातैं हैं जे महत पुरुष देहमें ममताका त्यागी भये हैं तिनके हाडमांस चाममय महा दुर्गंध रोगनिका भरा देह धारण नाहीं होय। जेतैं संसारका अभाव नाहीं होय तितने इन्द्रादिकदेवनिका दिव्य देह प्राप्त होय है पाछै शीलसंयमादि सामग्री पाय निर्वाणकूं प्राप्त होय है जो देहकी वेदनातैं दुःखी हो तो शीघ्र ही देहकी ममता लालसा छांडो जो देह नाहीं धारो अर आहारकी चाहतैं दुखीहो तो आहारहीका त्याग करो जो फेरि क्षुधा तृषादिक वेदनातैं आहार ग्रहण नाहीं करो क्रमतैं देहकूं ऐसैं कृश करो जैसे वात-पित्तकफका विकार मन्द होता जाय परिणामनिकी विशुद्धता

बधती जाय ऐसैं आहारका त्यागका क्रम पूर्वं कह्या ही है पाछै अन्तकालमें जेती शक्ति होय तिस प्रमाण जलकाहू त्याग करना अन्तकालमें जेती शक्ति रहै तेतैं पंच नमस्कारमंत्रका तथा द्वादश-भावनाका स्मरण करना जब शक्ति घट जाय तो अरहंत नामकाही सिद्धका ध्यान मात्र करना अर जब शक्ति नाहीं रहै तदि धर्मात्मा वात्सल्य अंगका धारक स्थितिकरणमें सावधान ऐसे साधर्मी निरन्तर चार आराधना पंचनमस्कार मधुर स्वरनितैं बड़ी धीरतातैं श्रवण करावै जैसें आराधक का निर्बल शरीरमें मस्तकमें वचन करि खेद दुःख नाहीं उपजै अर श्रवण करनेमें चित्त लग जाय तैसैं श्रवण करावै। बहुत आदमी मिलि कोलाहल नाहीं करैं एक एक साधर्मी अनुक्रमतैं धर्मश्रवण जिनेंद्रनाम स्मरण करावै अर आराधकके निकट बहुत जनांका वा संसारीक ममत्व मोहकी कथा करनेवालेनिका आगमन रोक देवै पंच नमस्कार वा च्यार शरण इत्यादिक वीतराग कथा सिवाय नजीक नाहीं करै दोय चार धर्मके धारक सिवाय अन्यका समागम नाहीं रहै अर आराधक हू सल्लेखना का पांच अतीचार दूर ही तैं त्यागै, तिन पंच अतीचारनिके कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

जीवितमरणाशंसे भयमित्रस्मृतिनिदाननामानः।
सल्लेखनातिचाराः पंच जिनेन्द्रैः समादिष्टाः ॥१२९॥

अर्थ—सल्लेखना करकैं जो जीवनेकी वांछा करै जो दोय दिन जीऊं तो ठीक है सो अतीचार है ।।१।। अर मरणकी वांछा करै जो अब मरण हो जाय तोठीक है सो मरणाशंसा नाम अती-

चार है ॥ २ ॥ अर भय करना जो देखिये मरणमें कैसा दुःख होयगा कैसे सहूँगा सो भय नाम अतीचार है ॥३॥ अर अपने स्वजन पुत्रपुत्रीमित्रनिकूं याद करना सो मित्रस्मृति नाम अतीचार है ॥४॥ आगामी पर्यायमें विषयभोग स्वर्गादिककी वांछा करना सो निदान नामा अतीचार है ॥५॥ ऐसैं पंच अतीचार सल्लेखना के जिनेंद्र ने कहे हैं।

भावार्थ—सल्लेखनामरणमें समस्त त्याग करि केवल अपना शुद्ध ज्ञायकभावका अवलंबन करि समस्त देहादिकतैं ममत्व छांडि संन्यास धारा फेरहू जीवनेकी मरनेकीवांछाकरना भयकरना मित्रनिमें अनुराग करना, आगै सुखकी वांछा करना सो परिणामनिकी उज्वलता नष्ट करि रागद्वेष मोह बधावने वाले परिणाम हैं तातैं सल्लेखनाकूं मलीन करनेवाले अतीचार कहे निर्विघ्न आराधनाका धारणतैं गृहस्थके स्वर्गलोकमें महर्द्धिक होना तो वर्णन किया पाछैं संयम धरि निःश्रेयस कहिये निर्वाणकूं प्राप्त होय है।

तिस निःश्रेयसका स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

निःश्रेयसमभ्युदयं निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम्।
निःपिबति पीतधर्मा सर्वैर्दुःखैरनालीढः ॥ १३० ॥

अर्थ—ऐसैं सम्यग्दृष्टी अन्तसल्लेखनासहित बाराव्रतकूं धारण करै है सो जिनेन्द्रका धर्मरूप अमृत पान करि तृप्त हुआ तिष्ठै है यातैं जो पीतधर्मा कहिये आचरण किया है धर्म जानैं ऐसा धर्मात्मा श्रावक है सो अभ्युदय जो स्वर्गका महर्द्धिकपना असंख्यातकालपर्यंत भोगि फिर मनुष्यनिमें उत्तम राज्यादिक विभव पाय फिर संसार देह भोगनितैं विरक्त होय

शुद्ध संयम अङ्गीकार करि निःश्रेयस जो निर्वाण है ताहि निःपिवति नाम आस्वादन करै है अनुभव करै है कैसाक है निःश्रेयस निस्तीर कहिये तीर जो पर्यंत ताकरि रहित है बहुरि दुस्तर है जाका पार नाहीं है बहुरि सुखका समुद्र है ऐसा निर्वाण में समस्त दुःखनिकरि अस्पृष्ट हुवा संता भोगे है अब और हू निःश्रेयसका स्वरूप कहिये है—

जन्मजरामयमरणैः शोकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम् ।
निर्वाणं शुद्धसुखं निःश्रेयसमिष्यते नित्यं ॥१३१॥

अर्थ—जो जन्म जरा रोग मरण करिके रहित अर शोक दुःख भय करि रहित अर नित्य अविनाशी समस्त परके संयोग रहित केवल शुद्ध सुखस्वरूप जो निर्वाण है ताहि निःश्रेयस इष्ट कहिये है बहुरि निःश्रेयसका स्वरूपकूं कहैं हैं—

विद्यादर्शनशक्तिस्वास्थ्यप्रल्हादतृप्तिशुद्धियुजः ।
निरतिशया निरवधयो निःश्रेयसमावसन्ति सुखम् ॥१३२॥

अर्थ—विद्या कहिये ज्ञान अर अनंतदर्शन अनंतवीर्य अर स्वास्थ्य कहिये परम वीतराग अर प्रल्हाद कहिये अनंतसुख अर तृप्ति जो विषयनिकी निर्वांछकता, शुद्धि जो द्रव्यकर्मरहितता इनकरि आत्मसंबंधकूं प्राप्त भये अर निरतिशया कहिये ज्ञानादिक पूर्वोक्त गुणनिकी हीन अधिकता रहित अर निरवधयः कहिये कालकी मर्यादारहित भये संते निःश्रेयस जो निर्वाण तामें सुखरूप जैसें होय तैसें बसते हैं।

भावार्थ—धर्मके प्रभावतैं आत्मा निःश्रेयसमें बसै है केवल-

ज्ञान केवलदर्शन अनन्तशक्ति परमवीतरागतारूप निराकुलता अनंतसुख विषयनिकी निर्वांछकता कर्ममलरहितता इत्यादिक गुणरूप होय गुणनिकी हीनाधिकतारहित कालकी मर्यादारहित सुखरूप अनंतानंत काल बसै है अब और हू निःश्रेयसका स्वरूप कहैं हैं—

काले कल्पशतेऽपि च गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या ।
उत्पातोऽपि यदि स्यात्त्रिलोकसंभ्रान्तिकरणपटुः ॥१३३॥

अर्थ—अनंतानंत कल्पकाल व्यतीत हो जाय तो हू मुक्तजीवनिकै विकार जो स्वरूपको अन्यथा-भाव सो नाहीं लखिये है, नाहीं प्रमाणकरि जानने योग्य है बहुरि त्रैलोक्यके संभ्रम करने में समर्थ ऐसा कोऊ उत्पात हू होय तोहू सिद्धनिकै विकार नाहीं होय है। और हू सिद्धनिका स्वरूप कहैं हैं—

निःश्रेयसमधिपन्नास्त्रैलोक्यशिखामणिश्रियं दधते ।
निःकीटकालिकाच्छविचामीकरभासुरात्मानः ॥ १३४ ॥

अर्थ—निर्वाणकूं प्राप्त भये ऐसे मुक्तजीव हैं ते किट्ट अर कालिकारहित कांतिमान सुवर्णवत् द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मरूप मलरहित प्रकाशमानस्वरूप भए त्रैलोक्यका शिखामणिकी लक्ष्मीकूं धारण करैं हैं। अर संन्यासके धारक पुरुष स्वर्गकूं प्राप्त होय हैं—

पूजार्थाज्ञैश्वर्यैर्बलपरिजनकामभोगभूयिष्ठैः ।
अतिशयितभुवनमद्भुतमभ्युदयं फलति सद्धर्मः ॥१३५॥

अर्थ—बहुरि सम्यग्धर्म है सो अभ्युदयं फलति कहिये इन्द्रा-

दिकपदवीकूं फलै कैसाक अभ्युदयकूं फलै है जो पूजा अर अर्थ अर आज्ञा अर ऐश्वर्य करकैं अर बल अर परिकरका जन अर काम-भोगनिकी प्रचुरताकरि तीन भुवनकूं उल्लंघन करै अर त्रैलोक्यमें आश्चर्यरूप ऐसा अभ्युदयकूं यो सम्यग्धर्मही फलै है।

भावार्थ—तीन लोकमें जो देखनेमें श्रवणमें चिंतवनमें नाहीं आवै ऐसा अद्भुत अभ्युदय सम्यग्धर्म ही का फल है धर्मका प्रभावही तैं इन्द्रपना अहमिंद्रपना पाइये है।

अब श्रावकधर्मके ग्यारह पद हैं जैसा जाका सामर्थ्य होय सो ही पद ग्रहण करो ऐसा कहैं हैं—

श्रावकपदानि देवैरेकादश देशितानि येषु खलु ।
स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह संतिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः ॥ १३६ ॥

अर्थ—भगवान सर्वज्ञदेव श्रावकधर्मके एकादश स्थान कहैं हैं ते स्थान पूर्वके स्थाननिके गुणनिकरि सहित अनुक्रमतैं विवर्द्धित भये तिष्ठैं हैं श्रावकपदके ग्यारह पद हैं—दर्शन १, व्रत २, सामायिक ३, प्रोषधोपवास ४, सचित्तत्याग ५, रात्रिभोजनत्याग ६, ब्रह्मचर्य ७, आरंभत्याग ८, परिग्रहत्याग ९, अनुमतित्याग १०, उद्दिष्टआहारत्याग ११, ऐसै ग्यारह पद हैं। जो ऊपरले पदका आचार करैगा ताकै पाछला पदका समस्त व्रत नियमादि आचरण धारण होयगा अर ऐसा नाहीं जो ऊपरला पदका तो व्रत नियम धारा अर नीचला है ही नाहीं ऐसै जो ब्रह्मचर्य धारैगा ताकै दर्शनादिक छह स्थानका आचरण नियमसूं होय आठवां पदमें नीचले सप्त स्थानका आचरण होय ही।

अब प्रथम दर्शन नाम स्थानका धारकका लक्षण कहैं हैं—

सम्यग्दर्शनशुद्धः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः ।
पञ्चगुरुचरणशरणो दार्शनिकस्तत्त्वपथगृह्यः ॥ १३७ ॥

अर्थ—जो सम्यग्दर्शनके पच्चीस मलदोषनिकरि रहित होय अर निरन्तर संसारवासमें अर देहका संगममें अर इन्द्रियनिके भोगनिमें विरक्त होय अर पंच परमेष्ठी ही जाके शरण होय अर सर्वज्ञभाषित जीवादिकतत्व ताका श्रद्धान करने वाला होय सो सत्यार्थमार्गमें ग्रहण करने योग्य दार्शनिक श्रावक प्रथमपदका धारक होय।

भावार्थ—जो स्याद्वादरूप परमागमके प्रसादतैं निश्चय० यवहाररूप दोऊ नयनिकरि निर्णयपूर्वक स्वतत्त्व अर परतत्त्वकूं जानि श्रद्धान दृढ़ किया होय जाति कुलादि अष्टमदरहित होय अभिमान-मंदताकरि आपकूं समस्त गुणवंतनिके गुण विचारि आपकूं तृणसमान लघु मानता होय अर यद्यपि अप्रत्याख्यानावरणके उदय की जबरीतैं अपना विषयनिमें राग नाहीं घटा है अर समस्त गृहके आरंभनिमें वर्तैं है तो हू या जानैं है ये हमारे समस्त मोहके प्रभावतैं अज्ञान भाव हैं त्यागने योग्य हैं कब यासूं छूटूं मेरा हाल तीव्र रागभावपरिणामनिकूं चलायमान करै है। बहुरि धर्मात्मा जननिके उत्तम गुण ग्रहण करनेमें जाकै अनुराग अर रत्नत्रयके धारकनिमें जाके बड़ा विनय अर धर्मके धारकनिमें बड़ा अनुराग धारै सो ही सम्यग्दृष्टि होय है जो देहादिक तथा रागद्वेष मोहादिकनितैं अनादिका मिल्या हू अपना ज्ञायकस्वभावकूं भेदविज्ञानका बल,

करि भिन्न अनुभवै है अर जीवसूं मिल्या हुवा हू देहकूं वस्त्र समान न्यारा जानै है अर अष्टादशदोषरहित सर्वज्ञ वीतरागमेही देवबुद्धिकरि आराधना करै हैं अर दोषसहितमें देवबुद्धि नाहीं करै अर दयारूप ही धर्म है हिंसामें कदाचित तीनकालमें धर्म नाहीं आरम्भ परिग्रहरहित ही गुरु हैं अन्य गुरु नाहीं ऐसा दृढ़ श्रद्धान होय अर कोऊ जीव कोऊकूं मारै नाहीं, जिवावै नाहीं दुःखी करै नाहीं, सुखी करै नाहीं उपकार अपकार करै नाहीं, दरिद्री धनाढ्य करै नाहीं केवल अपना भावनितैं बंध किया कर्मनिका उदयतैं जीवैं हैं मरै हैं सुखित दुखित होय हैं, दरिद्री धनाढ्य होय हैं अपना कर्मके उदयतैं उपज्या संसारमें भोग भोगै है भक्तितैं पूजे व्यंतरादिक देव मंत्र जंत्रादिक समस्त पुण्य-हीणके कुछ उपकार अपकार करनेकूं समर्थ नाहीं है, पुण्य नष्ट हो जाय तदि समस्त मंत्रादिक हू शत्रु होय हैं पुण्य पापके प्रबल उदयतैं माटी धूली भस्म पाषाणादि देवताका रूप होय उपकार अपकार करै हैं बहुरि सम्यग्दृष्टिकैं ऐसा निश्चय है जिस जीवकै जिस देशमें जिस कालमें जिस विधान करकै जन्म वा मरण वा लाभ अलाभ सुख दुःख होना जिनेन्द्र भगवान दिव्यज्ञानकरि जान्या है तिस जीवके तिस देशमें तिस कालमें तिस विधान करकै जन्म मरण लाभ अलाभ नियमतै होय ही ताहि दूर कर-नेकूं कोऊ इन्द्र अहमिन्द्र जिनेन्द्र समर्थ नाहीं है ऐसैं समस्त द्रव्यनिकी समस्त पर्यायनिकूं जानै है श्रद्धान करै है सो सम्यग्दृष्टि दार्शनिक श्रावक प्रथमपदका धारक जानना।

अब दूजा पदकूं कहैं हैं,—

निरतिक्रमणमणुव्रतपञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि ।
धारयते निःशल्यो योऽसौ व्रतिनां मतो व्रतिकः ॥१३८॥

अर्थ—जो अतीचाररहित पंच अणुव्रत अर सप्त शील इन बारहव्रतनिकूं माया मिथ्या निदान शल्यकरि रहित हुवा धारण करै सो व्रतीनकै मध्य याकूं व्रतीश्रावक कहिये है ॥२॥

अब तीसरा पदकूं कहैं हैं—

चतुरावर्तत्रितयश्चतुःप्रणामस्थितो यथाजातः ।
सामयिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धिस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी॥१३९॥

अर्थ—सामायिकमें पंचनमस्कारकी आदिमें अर अंतमें अर थोस्सामिकी आदिमें एक एक प्रणाम अर एक एक प्रणाममे तीन तीन आवर्त अर कायोत्सर्ग अर बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह-रहितता अर देववंदनाका प्रारम्भ समाप्तिमें दोय बार बैठना ऐसें तीन काल वंदना करै ताकै सामायिक नाम तीसरा स्थान जानना याकी विशेष विधि बहुज्ञानी गुरुनिकी परिपाटीतैं कहैं सो प्रमाण है ॥३॥

अब चौथा प्रोषधस्थान कहैं हैं—

पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य ।
प्रोषधनियमविधायी प्रणधिपरः प्रोषधानशनः ॥१४०॥

अर्थ—एक एक मास में दोय अष्टमी अर दोय चतुर्दशी ऐसें चार जे पर्वदिन तिनमे अपनी शक्तिकूं नाहीं छिपाय करकै आहार पानादिकका त्याग वा नीरस आहार वा अल्प आहार वा कंजिका धारण करि अर शुभध्यानमें लीन हुवा नियम धारण

करकै चार पर्वमें रहै सो प्रोषधानशननाम चतुर्थ स्थान है ॥ ४ ॥

अब सचित्तत्याग नाम पंचमपद श्रावकका है ताहि कहैं हैं-

मूलफलशाकशाखाकरीरकन्दप्रसूनवीजानि ।
नामानि योऽत्ति सोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्तिः ॥१४१।

अर्थ—जो श्रावक मूल फल पत्र डाहली करीर कहिये वंश किरण (कैरिया) अर कन्द अर फूल अर वीज ये अग्निकरि पके हुए नाहीं होय काचे होंय तिनकूं निरर्गल हुआ भक्षण नाहीं करै सो श्रावक दयाकी मूर्ति सचित्तविरतनाम पंचमपद अंगीकार करै है ॥५॥

अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम् ।
स च रात्रिभुक्तिविरतः सत्वेष्वनुकम्पमानमनाः ॥१४२॥

अर्थ—जो प्राणीनिकी अनुकंपा दयारूपमनका धारक पुरुष रात्रि में अन्न कर किया भोजन अर पान कहिये जल दुग्ध शरवत इत्यादि पीवने योग्य अर खाद्य कहिये पेडा मोदक पाकादिक अर लेह्य आस्वादन करनेका तांबूल इलायची सुपारी लवंग अन्य औषधादिक ऐसैं चार प्रकार कहनेकरि समस्त भक्षण करने योग्य पीवने योग्यकूं रात्रिमें भक्षण नाहीं करै सो रात्रिभुक्ति विरत नाम छठा पदका धारक श्रावक होय है ॥६॥

अब ब्रह्मचर्य नाम सप्तम स्थानकूं कहैं हैं—

मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतगंधिबीभत्सं ।
पश्यन्नङ्गमनङ्गाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः ॥१४३।

अर्थ—यो अंग जो शरीर है सो माताको रुधिर पिताको

वीर्यरूप मलतैं उपज्यो है यातैं याका मल ही बीज है अर यो मलकूं ही उत्पन्न करै है तातैं मलकी योनि है अर सासता नव-द्वार मल ही कूं झारै है अर महादुर्गंध है अर घृणाका स्थान है ऐसा शरीरकूं देखता संता जो कामतैं विरक्त होय सो ब्रह्मचारी है सप्तम पद है। यो ब्रह्मचारी है सो अपनी विवाही स्त्रीका सम्बन्ध अर निकट एक स्थान में शयन नाहीं करै है पूर्व भोग भोग्या ताकी कथा चितवन नाहीं करै है कामोद्दीपन करनेवाला पुष्ट आहार त्याग करै है राग उपजावनेवाला वस्त्र आभरण नाहीं पहरै है गीतनृत्य वादित्रनिका श्रवण अवलोकन त्यागे है पुष्पमाला सुगंध विलेपन अतर फुलेलादि त्यागै है शृंगारकथा हास्यकथारूप काव्य नाटकादिकनिका पठन श्रवणकूं त्यागै है तांबूलादिक रागकारी वस्तु दूर ही तैं त्यागै है ताकै ब्रह्मचर्य नाम सप्तम पद श्रावकका है ॥ ७ ॥ अब फिर परिणाम बधै तो आरम्भत्याग करै है—

सेवाकृषिवाणिज्यप्रमुखादारम्भतो व्युपारमति ।
प्राणातिपातहेतोर्योऽसावारम्भविनिवृत्तः ॥१४४॥

अर्थ—जो सेवा अर कृषि अर वाणिज्य इत्यादि असिकर्म लिखनकर्म शिल्पकर्म इत्यादि हिंसाका कारण जे आरम्भ तिनतैं विरक्त होय सो आरम्भविनिवृत्ति नाम अष्टमपदधारी श्रावक है

भावार्थ—धनउपजावनेका कारण समस्त व्यापारादि पापके आरम्भ त्यागे है अर जो स्त्रीपुत्रादिकनिकूं समस्त परिग्रहका विभाग करि अल्पधन निकट राखै नवीन उपार्जन नाहीं करै अर जो अल्पधन निकट राख्यो तामेंसूं दुःखितबुभुक्षितनिका उपकार

करना तथा अपने शरीरका साधन औषधि-भोजन वस्त्रादिकमें लगावै तथा आपका हित ममत्ववाला तथा साधर्मीनिके दुःख निवारणके अर्थि देवै अन्य पापके आरम्भमें नाहीं लगावै अर कदाचित् मर्यादारूप अल्पधन राख्या अर ताकूं चोर वा दाइयादार दुष्ट राजादिक हर ले तो क्लेश नाहीं करै तथा फेरि नाहीं उपजावनेमें यत्न करै त्याग करि ऊंचा ही चढै जो अहो मैं रागी मोही होय एता परिग्रह राख्या था सो गया मेरा बड़ा उपकार किया ममता आरम्भ रक्षा भयादिक समस्त क्लेशतैं छूट्या, याका बड़ा दुर्ध्यान था सहज ही छूट्या। ऐसा भाव जाकै होय ताकै आरम्भनिवृत नाम अष्टम स्थान है।

अब नवमस्थान परिग्रहत्याग ताहि कहैं हैं:—

बाह्येषु दशसु वस्तुषु ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः।
स्वस्थः संतोषपरः परिचित्तपरिग्रहाद्विरतः॥ १४५॥

अर्थ—बाह्य दशप्रकारक परिग्रहमें ममत्व छांडि करकैं अर हमारा किंचित् कुछ हू नाहीं ऐसे निर्ममत्वपनामें रत आसक्त रहै अर देहादिक रागादिक समस्त परद्रव्य परपर्यानिमें आत्मबुद्धिरहित होय अपना अविनाशी ज्ञायकभावमें स्थिर रहै अर जो भोजन वस्त्र स्थान कर्म मिलाया तातैं अधिक नाहीं चाहता सन्तोषमें तत्पर समस्त वांछा दीनतारहित तिष्टै अर परिचयमें जो परिग्रह है तातैं अति विरक्त रहै सो परिग्रहत्यागी नाम नवमा श्रावक होय है।

भावार्थ—नवमा श्रावककै रुपैया मोहर सुवर्ण रूपी गहणे आभरणादिक सकल परिग्रहका त्याग है कोऊ शीत उष्णताकी

वेदना दूर करने मात्र अल्पमोलका प्रमाणीक वस्त्र रहे तथा हस्त-पादादि धोवनेके अर्थि वा जल पीवनेका पात्र मात्र परिग्रह है सो परिग्रहत्याग नाम स्थान है। अर जो गृहमें वा अन्य एकांत स्थानमें शयन आसनादिक करै है अर भोजन वस्त्रादिक जो घरका देवै सो अंगीकार करै अर सिवाय औषध आहार पान वस्त्रादिकनिकी तथा शरीरका टहल करानेको आपके इच्छा होय सो स्त्री पुत्रादिकनिकूं कहै अर घरका स्त्रीपुत्रादिक कर दे तो करो अर नाहीं करै तो वासूं उजर करै नाहीं जो हमारा मकान है धन है आजीविका है हमारा कह्या कैसैं नाहीं करो ऐसा उजर वा परिणाममें संक्लेशादि चिंतवन नाहीं करै ताकै परिग्रहत्याग नाम नवमा स्थान है ॥ ९ ॥

अब अनुमतित्याग नाम दशमा स्थानकूं कहै हैं:—

अनुमतिरारम्भे वा परिग्रहे वैहिकेषु कर्मसु वा ।
नास्ति खलु यस्य समधीरनुमतिविरतः स मन्तव्यः ॥१४६॥

अर्थ—जाकै आरंभमें वा परिग्रहमें वा इस लोकसम्बन्धी-कर्मं जे विवाहादिक तथा गृह वनावना विणज सेवा इत्यादिक क्रियामें कुटुम्बका लोग पूछै तो हू अनुमोदना नाहीं देना तुम भला किया ऐसा मन वचन कायतैं नाहीं करना जाकै रागादि-रहित समवुद्धि होय सो श्रावक अनुमतिविरत है।

भावार्थ—जो भोजन खारा वा कडवा मीठा इत्यादिक स्वाद सहित वा स्वादरहितमें रागद्वेषरहित होय सुन्दर असुन्दर नाहीं कहै तथा वेटाका वेटीका लाभका अलाभका हानिका वृद्धिका दुःखका सुखका समस्त कार्यनिकै माहीं हर्षविषादरहित होय अनुमो-

दना नाहीं करै ताके अनुमतिविरत नाम दशमा स्थान होय है ।

अब उद्दिष्टत्याग नाम ग्यारमा स्थानकूं कहै हैं—

गृहतो मुनिवनमित्वा गुरूपकंठे व्रतानि परिगृह्य ।
भैक्ष्याशनस्तपस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखंडधरः ॥ १४७ ॥

अर्थ—जो समस्त गृहका त्याग करि अपना गृहतैं मुनीश्वरनिके तिष्ठवेका वनमें प्राप्त होय गुरुनिकै समीप व्रतनिकूं ग्रहण करकै तपश्चरण करता वस्त्रका खंडकूं धारण करता भिक्षा भोजन करै सो उत्कृष्ट श्रावक होय है।

भावार्थ—जो समस्त गृह कुटुम्बतैं विरक्त होय वनमें जाय मुनीश्वरनिकै निकट दीक्षा ग्रहण करै अर एक कोपीन मात्र वा कोपीन अर खण्डवस्त्र जातैं समस्त अंग नाहीं ढकै, मस्तक ढकै तो पग ढकै नाहीं अर पग ढकै तो मस्तक ढकै नाहीं केवल किंचित् डांस, मांछर, शीत, आताप, वर्षा पवनका परीसहमें सहारा रहै अर भिक्षाभोजन अजाचीकवृत्तिमें मौनतैं ग्रहण करै आपके निमित्त भोजन किया हुवा ग्रहण करै नाहीं, न्योतातै बुलाया जाय नाहीं, आपके निमित्त कुछ भी आरम्भ जाने तो भोजनका त्याग करै वनमें वा बाह्य वस्तिकामें रहै उपसर्ग परीषह आजाय तो निर्भय हुवा सहै, कायरता दीनता करै नाहीं ध्यान-स्वाध्यायमें सदाकाल लीन रहै गृहस्थके घर विना बुलाया जावै गृहस्थ आपके निमित्त भोजन किया तामेंतैं भक्तिपूर्वक दिया हुवा ग्रहण करै सो रससहित वा रसरहित कडवा खारा मीठा जो गृहस्थ दे सो समभावनितैं आहार ग्रहण करै एक दिनमें एकवार आहारपान ग्रहण करै अंतराय हो जाय तो उपवास करै अनश-

नादिक तपमें शक्तिप्रमाण उद्यमी रहै सो उद्दिष्टआहा
नाम ग्यारमा उत्कृष्टश्रावकका स्थान है। ऐसैं श्रावकधर्मके
स्थान कहे तिनमे अपनी शक्तिप्रमाण अंगीकार करो। अ
कहैं हैं—

पापमरातिर्धर्मो बन्धुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन्।
समयं यदि जानीते श्रेयो ज्ञाता ध्रुवं भवति ॥१४८॥

अर्थ—इस जीवका पाप वैरी है अर धर्म सो बंधु है
दृढ़ निश्चय करता जो आपकूं जानै तदि यो अपना कल्या
जाननेवाला होय है।

भावार्थ—संसारमें दुःखका देनेवाला इस जीवका कोऊ
है नाहीं एक अपना विषयादि विपरीत अनुरागतैं पा
उपजाया सो वैरी है अन्य तो बाह्य निमित्तमात्र हैं अन्य जे
चन बोलनेवाला दोषनिकूं घोषणा करनेवाला धनका अर अ
विकाका अर स्थानका जबरीतैं हरनेवाला तथा ताडन म
बंधन छेदन करनेवाला मेरा उपजाया पापका उदयतैं स
सम्बन्ध है अपना पापकर्म विना अन्य पुरुषनिकूं वैरी सम
सो मिथ्याज्ञानी जिनेन्द्रका आगम जान्या नाहीं ऐसैं ही
जीवका उपकारक बंधु है सो पुण्यकर्म है जो पुण्यकर्मका उद
विना अन्यकूं उपकारक जानै है सो भगवानका आगमका ज्ञा
नाहीं समझै मिथ्याज्ञानी है अब श्रावकाचारका उपदेशकूं समा
करता श्रीसमन्तभद्रस्वामी फल प्रतिपादन करता सन्ता सू
कहैं हैं—

येन स्वयं वीतकलंकविद्यादृष्टिक्रियारत्नकरण्डभावम् ।
नीतस्तमायाति पतीच्छयेव सर्वार्थसिद्धिस्त्रिषु विष्टपेषु १४९

अर्थ—जो पुरुष अपना आत्माकूं कलंक अतीचारनिकरि रहित ज्ञानदर्शनचारित्ररूप रत्ननिका करण्ड कहिये पिटारा पात्रपणानै प्राप्त करै है तिस पुरुषनै तीन भुवनिमें सर्व वांछित अर्थ की सिद्धि अपना पतिकी इच्छा करकै ही प्राप्त होय है।

भावार्थ—जो पुरुष अपने आत्माकूं सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्ररूप रत्ननिका पात्र किया ताकूं तीन भुवनकी सर्वोत्कृष्ट अर्थकी सिद्धि स्वयमेव प्राप्त होय है ऐसा नियम है। अब प्रार्थना करै हैं—

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव,
सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु ।
कुलमिव गुणभूषा कन्यका संपुनीताज्जिन-
पतिपदपद्मप्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः ॥१५०॥

इति श्रीस्वामिसमंतभद्राचार्यविरचितोपासकाचारे
पञ्चमः परिच्छेदः ॥ ५॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवानका चरणकमलकूं अवलोकन करती ऐसी सम्यग्दर्शनलक्ष्मी है सो कामी पुरुषके सुखकी भूमि ऐसी कामिनीकी ज्यों मोकूं सुखी करो अर शुद्धशीला शुद्धस्वभावका धारक माता जैसैं पुत्रनै पालना करै तैसैं मनै पालना करो अर शीलादिक गुणही हैं आभूषण जाकै ऐसी कन्या कुलनै पवित्र करै तैसैं मनै पवित्र करो, उज्वल करो।

भावार्थ—जैसैं कामकी आतापका धारककूं कामिनी सुखी करै है अर जैसैं शुद्धस्वभावकी धारक माता पुत्रकी पालना करै है अर गुणवान कन्या कुलनै पवित्र करै है तैसैं जिनपति जो शुद्धात्मा तानैं भावांतैं साक्षात् अवलोकन करानेवाली सम्यग्दर्शन की लक्ष्मी है सो मेरे मिथ्याज्ञानजनित आताप दूर करकैं मोकूं नित्य अनंतज्ञानादिरूप आत्मीकसुखकूं प्राप्त करो अर संसारके जन्मजरामरणादि दुःख निवारण करि मेरे अनंत चतुष्टयादिक स्वरूपकूं पुष्ट करो अर रागद्वेष मोहरूप मलकूं दूरि करि मेरा आत्मस्वरूपकूं उज्ज्वल करो।

इति श्रीस्वामी समंतभद्राचार्यविरचित रत्नकरंड-
श्रावकाचारकी देशभाषामयवचनिका
समाप्त भई ॥

—※—

टीकाकार प्रशस्ति

दोहा ।

मंगल श्रीअरहंत जिन, मंगल श्रीजिनवानि ।
सिद्ध साधु जिनधर्म नित, करैं विघ्नकी हानि ॥ १ ॥

चौपाई ।

देशधर्मधरकूं आधार, रत्नकरण्ड श्रावकाचार ।
स्वामी समंतभद्र रचि सार, कीनौ भव्यनिको उपगार ॥२॥
याकी महिमा कहत न बणै, सुधि धारे कर्मनिकूं हणै ।
याकी देशवचनिका होय, तो याकूं समझै सब कोय ॥३॥
यो विचारि उद्यम मैं कियो, तुच्छबुद्धि माफिक लिख दियो ।
भूल चूक पर चित नहिं धरो, दोष टालि गुण संग्रह करो ॥४॥
राग द्वेष मद वश हम परे, चूकरहित गुण कैसैं धरे ।
ज्ञानी ऐसा कर निरधार, दयासहित तिष्ठो अविकार ॥५॥
संवत उगणीसै उगणीस, मँगसिर वदि अष्टमि दिनईस ।
लिखनेका आरम्भ जु कियो, शुभ उपयोगमांहि चित दियो ६
संवत उगणीसै अरु बीस, चैतकृष्ण चउदश निज सीस ।
पूरण कर स्थापन जब किया, शुभ उद्यमका निज फल लिया ।७

दोहा ।

जयपुर नगर मनोज्ञ अति, धनमति धर्म विचार ।
वरणाश्रम आचारको, अति उज्ज्वल आधार ॥ ८ ॥

यामें राज करै निपुण, रामसिंह जनपाल।
क्रोध लोभ मद टारिकैं, विघ्न हरणकूं ढाल ॥९॥
जैनी जन यहां बहु वसैं, दया धर्म निज धारि।
स्याद्वादज्ञायक प्रबल, मत एकांत निवारि ॥१०॥
गोत काशलीवाल है, नाम सदासुख जास।
सैली तेरापंथमे, करै जु ज्ञान अभ्यास ॥११॥
जिनसिद्धांत प्रसादतै, लिखी वचनिका सार।
पढि सुणि श्रद्धा भक्तितैं, करो धर्म निरधार ॥१२॥
मेरे शुभ उपयोगतैं, बढ्यो जु अति उत्साह।
तातैं उद्यम करि लिखी, अन्य नहीं कछु चाह ॥१३॥
समयसार गुन कहनकूं, शक्ति न सुरुगुरु होय।
ताको शरण सदा रहो, रागादिक मल धोय ॥१४॥
हे जिनवाणी भगवती, भुक्तिमुक्ति दातार।
तेरे सेवनतैं रहै, सुखमय नित अविकार ॥१५॥
दुःख दरिद्र जान्यो नाहीं, चाह न रही लगार।
उज्ज्वल यश मम विसारो, यो तेरो उपकार ॥१६॥
अडसठ वरस जु आयुके, बीते तुझ आधार।
शेष आयु तव शरणतैं, जाहु यही मम सार ॥१७॥
जितने भव तितने रहो, जैनधर्म अमलान।
जिनवरधर्म विना जु मम, अन्य नहीं कल्याण ॥१८॥
जिनवाणीसूं वीनती, मरण वेदना रोक।
आराधनके शरणतैं, देहु मुझे परलोक ॥१९॥

बालमरण अज्ञानतैं, करे जु अपरम्पार।
अब आराधन शरणतैं, मरण होहु अविकार ॥ २० ॥
हरि प्रनीत कुमरण हरो, करो जु ज्ञान अखण्ड।
मोकूं नित भूषित करो, शास्त्र जु रत्नकरण्ड ॥ २१ ॥

—❀—

रत्नकरण्डश्रावकाचारकी श्लोकानुक्रमणिका

—:—:—